संस्कृत शिक्षण सरणी

लेखक

आचार्य राम शास्त्री

आचार्य राम शास्त्री जी द्वारा लिखित 'संस्कृत शिक्षण-सरणी' लेखक का अद्‌भुत ग्रन्थ है। उनके अनुसार ग्रन्थ का प्रयोजन संस्कृत-भाषा का व्यावहारिक शिक्षण है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ में संस्कृत व्याकरण के प्रायः सभी उपयोगी विषयों को ध्यान में रखकर उदाहरण सहित लिखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ के सम्यक् अभ्यास से संस्कृत-भाषा के व्यवहार में बहुत सुगमता होगी। जो व्यक्ति संस्कृत-ज्ञान बिना सूत्र-सिद्धि के करना चाहते हैं, वे सूत्र-सिद्धि छोड़कर पढ़ सकते हैं और जो विद्यार्थी व्याकरण पढ़ना चाहते हैं, वे सूत्र सिद्धियों के साथ भी पढ़ सकते हैं। स्थान-स्थान पर टिप्पणी में पाणिनीय नियमों का समावेश कर देने से ग्रन्थ की प्रामाणिकता और भी बढ़ गई है। संस्कृत के शिक्षण में ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण उपादेयता है।

मूल्य : ₹ 300.00

संस्कृत-शिक्षण-सरणी

लेखक

आचार्य राम शास्त्री

भारतीय-संस्कृति-रक्षणसक्षणाः संस्कृत-प्रचारे बद्ध-परिकराः

भवेयुरिति रामशास्त्रिणः चरमोऽभिलाषः

प्रकाशक

आचार्य राम शास्त्री ज्ञानपीठ

संस्कृत नगर, रोहिणी

दिल्ली

प्रस्तावना

स्वतंत्रता सेनानी राजवैद्य आचार्य रामशास्त्री जी द्वारा प्रणीत संस्कृत शिक्षण सरणी का यह द्वितीय संस्करण पाठकों की सेवा में अर्पित करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। इसका पहला प्रकाशन १९८३ में हुआ था, उसके लगभग १५ वर्ष बाद इसकी माँग बढ़ने के कारण यह पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम संस्करण में व्याकरण के कीर्ति-स्तम्भ विद्वद्वरेण्य महामहोपाध्याय स्व० श्री युधिष्ठिर मीमांसक और मनीषिप्रवर दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पूर्व कुलपति डॉ० रामकरण शर्मा की सम्मतियाँ प्रकाशित हुई हैं। उनके अध्ययन से इस ग्रन्थ की महत्ता का सहज में ही अनुमान किया जा सकता है।

यह ग्रन्थ केवल पुस्तक मात्र ही नहीं है, अपितु व्याकरण जैसे गम्भीर विषय को नवीन सन्तति परम्परा में अमृत-बिन्दु की तरह पिलाने का प्रयास है। वास्तव में सरलता, सहजता और सुबोधता हमारी प्राचीन शिक्षापद्धति की अद्वितीय विशेषताएँ रही हैं। धीरे-धीरे इनका ह्रास, विशेषकर संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में होता आ रहा है। उसी का यह परिणाम है कि वर्तमान में विद्यालयों में संस्कृत के छात्र अध्ययन में रुचि समुत्पन्न न होने के कारण या तो कक्षाओं में भाग नहीं लेते हैं अथवा विषय परिवर्तन कर लेते हैं। शिक्षा की इस दुर्गमता की अभिव्यक्ति गुजराती भाषा में 'शिक्षा' के अर्थ में स्पष्ट होती है, जहाँ 'मैं उसको अच्छी शिक्षा दूँगा' कहने के अभिप्राय में दण्ड और तर्जन का भाव शिक्षा शब्द में सन्निहित रहता है। इस दृष्टि से संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में जितना काम होना चाहिये, वह नहीं हो पाया है। एक प्रकार से यही इस ग्रन्थ के उद्भव की प्रस्तावना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सरल से सरल और सोदाहरण पद्धति पर चौदह प्रकरणों में माध्यमिक विद्यालयों और स्नातक कक्षा के छात्रों में संस्कृत के प्रति सहज रुचि और उनके संस्कृत लिखने-पढ़ने में दक्षता प्रदान करने का महनीय प्रयास किया गया है, जो एक अतिशय प्रशंसनीय कार्य है। इसके लेखक स्व० आचार्य रामशास्त्री जी इस शताब्दी के उल्लेखनीय आचार्यों में परिगणित किये जाते हैं। प्रज्ञाचक्षु होने पर भी उनकी ज्ञानचक्षु अद्वितीय थी। भारतीय संस्कृत वाङ्मय की विभिन्न धाराओं के वे निष्णात विद्वान् थे और गम्भीर तत्त्वचिन्तक थे। उनके उदात्त व्यक्तित्व में सहृदयता और परोपकार का भाव बहुत गहराई तक विद्यमान था। उनका मनोबल बहुत ऊँचा था और इसके मूल में हमारे प्राचीन ऋषियों, मनियों और आचार्यों के समान साधना अन्तर्निहित थी। संसार के प्रपंच

से इतने निर्लिप्त थे कि कोई भी कठिनाई उनको एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं कर सकती थी और जब वे विभिन्न प्रसंगों में अपने अनुयायिओं और शिष्यों के यहाँ जाते थे तो उनके गम्भीर अट्टहास से ऐसा प्रतीत होता था जैसे समस्त अमंगलों का नाश हो गया है। एक से एक महान् उद्योगपति, राजपरिवार, बड़े से बड़े राजनेता और विद्वान् उनके अनुयायियों में थे जिनके नामोल्लेख से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ हो सकता है, यह उनकी जनप्रियता का प्रमाण था।

मुझे २० वर्षों तक उनका अनुग्रह प्राप्त करने का अवसर मिला है। उनकी आयुर्वेद की विद्वत्ता, उनकी विशेष प्रतिष्ठा का विषय था और वे स्वास्थ्य के क्षेत्र में मेरे जैसे संस्कृत और समाजसेवियों को निश्चिन्त रहने के आशीर्वाद के साथ-साथ शक्ति प्रदान करते थे। शास्त्रीजी के शतायु होने पर उनके जन्मदिनस पर तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय विश्वनाथ प्रतापसिंह ने तालकटोरा स्टेडियम में उन्हें सम्मानित किया। माननीय पूर्व केन्द्रीय मन्त्री एवं लोकसभा अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय संस्कृत शिक्षा सम्मेलन के सभापति डॉ० बलराम जाखड़ ने उनके सम्मान-समारोह में सम्मान की अंजलियाँ अर्पित की थीं। उनके दिवंगत होने पर आर्य समाज, बिरला मंदिर रोड, नई दिल्ली में समवेत हजारों लोगों ने उनको श्रद्धांजलि अर्पित की थी और माननीय दिल्ली राज्य के मुख्यमन्त्री श्री साहिब सिंह वर्मा जी ने एक सड़क का नाम उनके नाम से करने तथा एक संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की घोषणा की थी, जिसके प्रयास चल रहे हैं।

यह प्रेरणा का विषय है कि उनके द्वारा पालित पोषित दत्तक पुत्र श्री सुरेन्द्र भारद्वाज शास्त्री उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए निरन्तर इतने प्रयत्नशील हैं कि बहुत कम औरस पुत्र ही इस प्रकार के होते होंगे। इनके प्रयास से उनकी स्मृति में पुरस्कारों की स्थापना की गयी है, उनकी पुण्य-तिथियों पर समारोह आयोजित किये जा रहे हैं। उनकी पुस्तक के इस द्वितीय संस्करण का प्रकाशन भी एक ओर संस्कृत की अमूल्य सेवा है तो दूसरी ओर आचार्यश्री रामशास्त्री जी की स्मृति में मूर्तिमान् श्रद्धांजलि का समर्पण है। मैं इस प्रयास के लिए श्री सुरेन्द्र भारद्वाज शास्त्री और उनके मित्रों तथा अनुयायियों को बधाई देता हूँ और पूज्य श्री शास्त्री जी के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

वाराणसी
मार्गशीर्ष-पूर्णिमा
वि० सं० २०५४

डॉ० मण्डन मिश्र
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशकीय

स्वसुख निरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥

हरियाणा की हरी-भरी पावन धरती। यह धर्मक्षेत्र भी है और कुरुक्षेत्र भी। इस वैदिक संस्कृति की उद्गमस्थली ग्राम ठोल, जिला कुरुक्षेत्र में श्री चमेल जी तुलाराम के घर ५ मार्च १८९० को श्री शास्त्री जी का जन्म हुआ। संसार में कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जो साधारण परिस्थितियों में जन्म लेकर अपने सतत अध्यवसाय, कठोर परिश्रम, कार्य एवं कर्तव्य निष्ठा से साधारण मनुष्यों की पङ्क्ति से आगे निकल जाते हैं। इसी श्रेणी में आते हैं श्रद्धेय पं० आचार्य राम शास्त्री जी भी, जो एक साधारण किसान परिवार में जन्म लेकर अपने उन्नत चरित्र, दृढ़ संकल्प एवं कर्मठता के कारण बाल्यावस्था से प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी आर्य समाज, आयुर्वेद तथा संस्कृत जगत् के मूर्धन्य विद्वान बने। जिस कार्य का आप वचन दे देते थे उसे अटल सत्य व्यवहार सहित पूरा निभाते थे।

धन्य थे आपके पूज्य पितृचरण, प्रेरक एवं गुरुवर जिन्होंने आपको "सच्चा ब्राह्मण" बनाने का सत्संकल्प करके देववाणी के अध्ययन के लिए प्रेरित किया। आपने गुरुवर स्वनाम धन्य पं० श्यामलाल शास्त्री (वृद्धजी) पं० रघुवीर दास, पं० अनन्त राम, पं० मथुरा दास से अम्बाला, कुरुक्षेत्र, नवलगढ़, में संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् लाहौर तथा काशी में पंडित ईश्वर चन्द्र दर्शनाचार्य, पंडित देवनारायण तिवारी जैसे ख्याति प्राप्त विद्वानों के श्रीचरणों में बैठकर वेद-वेदाङ्ग, न्याय आदि दर्शन तथा व्याकरण का गम्भीर अध्ययन करके आप सच्चे अर्थों में "पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ" पदवी के अधिकारी बने। प्रकाण्ड आयुर्वेद विद्वान् काशी के वैद्य सम्राट् श्री त्र्यम्बक शास्त्री जी के सान्निध्य में रहकर आपने आयुर्वेद चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् बड़े गाँव बनारस में वैद्य बलदेव प्रसाद आयुर्वेद चिकित्सालय में अच्छे चिकित्सक के रूप में ख्याति प्राप्त

की। आपने देववाणी का प्राचीन पद्धति से सम्पूर्ण अध्ययन करके शास्त्र-निष्णात बनकर असंख्य छात्रों को लगभग पचास वर्ष विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में निःशुल्क पढ़ाकर संस्कृत भाषा का विद्वान् बनाया।

आप आयुर्वेद चिकित्सा, स्वाध्याय व लेखन में निरन्तर व्यस्त रहते हुए भी सिद्धान्तों का मनन करते रहते थे। आप महर्षि दयानन्द के प्रबल समर्थक थे। आपके रक्त के एक-एक कण में आर्य समाज और ऋषि निष्ठा विद्यमान थी। आप आर्य समाज के श्वेताम्बर संन्यासी थे। आप देश एवं समाज की गिनी चुनी उन दिव्य विभूतियों में थे, जिन्होंने अपना समस्त जीवन देश तथा समाज के हित में लगा दिया। देश रक्षा आन्दोलन में उन स्वतंत्रता सेनानियों की पहली पंक्ति में आते हैं, जिन्होंने छुपे तौर पर काम तो बहुत किया, यहाँ तक कि कारावास में भी रहे, परन्तु पेन्शन लेने के लिए अपना नाम तक प्रस्तुत न किया। निर्लोभी एवं लोकेषणा रहित धन के लोभ से आप कोसों दूर थे। आप वर्तमान १०५ वर्ष पार कर १०६वें वर्ष में प्रवेश कर चुके थे। आपने अपने हाथों से लाखों रुपये कमाये, परन्तु कभी एक पैसे का भी संग्रह नहीं किया। एक साथ हजारों रुपये आते, परंतु वांछित औषधियां बनाने के बाद जो पैसा बचता उसको दान कर देते थे। आपने अपने जीवन में बहुत सी गरीब कन्याओं का विवाह खर्च उठाया और कई विद्यार्थियों को पढ़ा लिखा कर जीविका के योग्य बनाया जो आज लाखों रुपये की सम्पत्ति के मालिक हैं। इस समय भी कई बच्चों की पढ़ाई का पूर्ण खर्च वहन कर रहे थे। उन्होंने वास्तव में "**दानानाम् ब्रह्मदानं विशिष्यते**" को सार्थक किया।

आप जैसे प्राणाभिषक् पीयूषपाणी वैद्य विरले ही थे, जिन्होंने चिकित्सा जगत् में इतनी ख्याति अर्जित की। आपने अपने जीवन में कभी किसी रोगी से रोग नहीं पूछा, निदान आप स्वयं करते थे। जहाँ आप धनवान् रोगियों से हजारों रुपया लेकर औषध देते थे वहाँ अपने निर्धन रोगियों को न केवल निःशुल्क औषध प्रदान करते थे अपितु समय-समय पर खुराक के लिये पैसे भी देते रहते थे। वर्तमान में आप "नीरोग आयु का रहस्य" अमूल्य ग्रन्थ लिखने में व्यस्त थे जो आपके आयुर्वेद क्षेत्र में व्यतीत सत्तर साल के अनुभव का निचोड़ है, जो शीघ्र प्रकाश्य है।

आचार्य जी द्वारा रचित "संस्कृत शिक्षण सरणी" ग्रन्थ उनकी लोकोत्तर प्रतिभा का परिचायक है तथा उनकी साहित्यिक सेवाओं के प्रस्तुतीकरण स्वरूप पाण्डित्य का सौरभ देश की विद्वान् मंडली में व्याप्त है। आप संस्कृत साहित्य के बहुश्रुत

उद्भट विद्वान् थे। आपके व्यक्तित्व का निर्माण संश्लिष्ट भारतीय संस्कृति के ताने बाने में हुआ था। आपकी गणना भारतीय ऋषि परम्परा में थी। आप विद्यानुरागियों और ज्ञानार्जन के लिए आये जिज्ञासुओं के लिए तीर्थ स्थान थे। आपके जीवन में अगाध पांडित्य के अतिरिक्त अहंभाव-शून्यता, निस्पृहता, अनिर्वचनीयता, सरलता, अकृत्रिमता व उदारता आपकी गौरवान्वित शृङ्खला में आबद्ध थे। आपका मधुर स्वभाव स्नेहपूर्ण व्यवहार एक साधारण विद्यार्थी को भी आपसे मिलने और निःसंकोच वार्ता करने का अवसर प्रदान करता था। यह ग्रन्थ आचार्य जी के संस्कृत अध्ययन की बहुमूल्य निधि है। यह ग्रन्थ छात्र तथा अध्यापक दोनों वर्ग के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य कर रहा है। इस ग्रन्थ की उपयोगिता देखते हुए विभिन्न शिक्षण संस्थाओं ने यथा- श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (भारत सरकार), दिल्ली शिक्षा निदेशालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक तथा राजस्थान संस्कृत शिक्षा निदेशालय आदि ने इसे मान्यता प्रदान की है। आपके प्रौढ़ पाण्डित्य का यथार्थ मूल्यांकन करके पूर्व लोकसभा अध्यक्ष डॉ० बलराम जाखड़ ने आपको संसद भवन में सम्मानित करते हुए एक चांदी की शील्ड व ५१०० रुपये प्रदान किये। इसी ग्रन्थ पर बम्बई में आर्य समाज शान्ताक्रुज ने भी आप ही के करकमलों द्वारा शाल श्रीफल व स्वर्णपदक श्रद्धेय आचार्य जी को प्रदान किया। आचार्य जी को शतायु होने पर डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी ने महात्मा हंसराज दिवस पर प्रधानमंत्री के द्वारा सम्मानित कराया। आज आचार्य जी हमारे मध्य नहीं हैं तथापि अनेक संस्थाओं से उनके अभिनन्दन हेतु अनेक पत्र आते रहते हैं।

केप्टन देवरत्न आर्य
अध्यक्ष
आचार्य राम शास्त्री ज्ञानपीठ

Bal Ram Jakhar
Former Union Minister

40, Canning Lane,
New Delhi - 110001
Tel. : 3385207

राजवैद्य गुरुप्रवर आचार्य ,राम शास्त्री संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् एवं भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। इस शताब्दी के अग्रगण्य संस्कृत विद्वानों तथा आयुर्वेद के महान् चिकित्सकों में आपका एक विशेष स्थान है। संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में शास्त्रीजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अध्ययन और अध्यापन दोनों ही बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने संस्कृत के स्वरूप को सरलतम शैली में प्रस्तुत किया जिससे सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी इसका लाभ मिला। इतना ही नहीं, वे प्रखर प्रतिभा सम्पन्न, उदारमना एवं बहुमुखी व्यक्तित्व वाले थे। संस्कृत के साथ-साथ वे आयुर्वेद शास्त्र के अच्छे ज्ञाता और एक कुशल चिकित्सक भी थे। आज भी उनकी शिष्य परम्परा अक्षुण्ण है। वे नेत्रहीन होते हुए भी आँखों वालों से बढ़कर थे, वे सदैव दूसरों का सहारा बनते रहे। गरीब कन्याओं के विवाह का खर्च उठाना, गरीब छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करना, निर्धन रोगियों को निःशुल्क औषधि देना तथा आजीवन संस्कृत का निःशुल्क अध्यापन उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य रहा। आप अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी रहे, यहाँ तक कि कारावास में भी रहे परंतु पेंशन के लिए अपना नाम तक प्रस्तुत न किया, ऐसा उनका देश प्रेम था। उन्होंने अपना समस्त जीवन देश तथा समाज के हित में लगा दिया। वे अपने आप में एक चलती फिरती संस्था थे। जब कभी समय मिलता उनके सान्निध्य का लाभ मुझे मिलता और आनन्द प्राप्त होता था। इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से मुझे बहुत लाभ मिला है। वे मरणोपरान्त भी अपनी सुकृतियों से हमारे बीच में अमर रहेंगे। संस्कृत जगत् इनका सदैव ऋणी रहेगा।

(बलराम जाखड़)

सम्मति

स्वतन्त्र भारत की महत्त्वाकांक्षाओं में संस्कृत वाङ्मय का प्रचार एवं प्रसार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भावनात्मक, भाषागत एवं सांस्कृतिक राष्ट्रिय एकता का यह अनुपम प्रतीक संस्कृत वाङ्मय, देश के समस्त भागों में समान रूप से सुलभ होते हुए भी कुछ लोक-प्रचलित भ्रान्तियों के कारण, कुछ हमारी संकीर्णताओं के कारण, दुर्गम, दुर्बोध एवं दुर्लभ सा बना हुआ है। आवश्यकता है— लोगों को केवल यह बोध कराने की, कि संस्कृत भाषा इस देश की सरलतम व्यापक भाषा है— "सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।"

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि पण्डित प्रवर आचार्य श्री राम शास्त्री जी की 'संस्कृत शिक्षण सरणी' सर्वतोभावेन इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए "प्रकाशस्तम्भ" का कार्य कर रही है। इस "सरणी" में जिस शैली से संस्कृत भाषा की प्रवृत्तियों का, प्रकृति-प्रत्ययों का विश्लेषण एवं संश्लेषण प्रस्तुत किया गया है वह निश्चित रूप से संस्कृत को व्यापक रूप में सभी के समक्ष प्रकट कर सकेगी।

विद्वान्, मनीषी लेखक के प्रति इस अनुपम कृति के लिये अपनी सादर हार्दिक बधाई अर्पित करते हुए जिज्ञासु पाठकों एवं संस्कृतानुरागियों से साग्रह निवेदन करना चाहता हूँ कि इस ग्रन्थ का संस्कृत के प्रचार के हित में अधिकाधिक उपयोग करें।

डॉ० रामकरण शर्मा

पूर्व कुलपति

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

एवं कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति

श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली- ११००१६

द्वे वचसी

इदं महत्प्रमोदावहं यन्मनीषिप्रवरैर्विद्वद्वरैः स्वनामधन्यैर्वैद्यराजैः संस्कृतभाषाशिक्षणनिपुणैराचार्यवरैः रामशास्त्रिभिर्विरचितः 'संस्कृत-शिक्षण-सरणी'-नामकोऽयमत्यन्तं वैदुष्यपूर्णो ग्रन्थः पूर्वं मुद्रितोऽपीदानीं पुनर्मुद्रणायत्तस्तिष्ठति।

ग्रन्थेऽस्मिन् ग्रन्थकर्तृभिः संस्कृतभाषाशिक्षणस्य पाणिनीयव्याकरणाभिमताः सर्वेऽपि पक्षाः सरलया शैल्या समुपनिबद्धा दरीदृश्यन्ते। भाषाशिक्षणस्य सर्वप्रमुखो विषयोऽस्ति वाक्यरचनाकौशलस्य छात्रेषु प्रतिसङ्क्रमः स च शास्त्रिवरैरस्मिन् ग्रन्थे प्रामुख्येन निर्व्यूढो वरीवर्ति।

यद्यपि व्याकरणेन कदापि वाक्यविरचनरीतिर्न साक्षादनुशासनविषयीक्रियते तथापि 'समयज्ञानार्थं चेदं पदलक्षणाया वाचोऽन्वाख्यानं व्याकरणं वाक्यलक्षणाया वाचोऽर्थलक्षणम्' इति न्यायभाष्यकारोक्तिमनुसृत्य 'वाक्यलक्षणाया वाचः परिज्ञापनमेव व्याकरणस्य मुख्यमुद्देश्यं' निश्चिन्वन्ति विपश्चितः।

'संस्कृत-शिक्षण-सरणी' नामकेऽस्मिन् ग्रन्थरत्ने प्रज्ञाचक्षुर्भिरपि प्राज्ञचक्षुर्भिराचार्यप्रवरैर्व्याकरणस्य तन्मुख्यमुद्देश्यं स्वकीयेन हृद्येन संभाषणादिग्रथनप्रयासेन सम्यक् परिपूरितमिति कथने न मे सन्देहलेशावकाशः।

प्रयासेऽस्मिन् 'पदलक्षणाया वाचोऽन्वाख्यानं व्याकरणम्' इति यः प्रथमः कल्पः सोऽपि तैर्न नूनं पराकृतः किन्तु प्रकरणविशेषान् संग्रथ्य सर्वेऽपि पाणिनीयव्याकरणस्य परिनिष्ठितपदबोधकाः पक्षा अपि तैर्यथायथं स्वग्रन्थेऽस्मिन् सन्निवेशिता इति महत्कौशलमेषां महात्मनां दृग्गोचरीभवति।

अस्य ग्रन्थस्य परिशीलनेन यथा संस्कृतभाषाशिक्षणक्षेत्रे प्रविविक्षूणा सौकर्यं सौलभ्यमावहति तथैव पाणिनीयव्याकरणस्य दुरूहाभिमते क्षेत्रे प्रविविक्षूणामपि मार्गः आञ्जस्येन प्रशस्तो भवतीति द्विविधोऽस्य ग्रन्थस्य लाभः।

दिवङ्गतानामाचार्यप्रवराणां सच्छिष्येण पुत्रकल्पेन श्रीमता सुरेन्द्रभारद्वाजमहोदयेन ग्रन्थोऽयं पुनः प्राकाश्यं नीयते इति महत्सौभाग्यं संस्कृतशिक्षाक्षेत्रस्य। तदर्थं सुरभारतीसमुपासकः सुरेन्द्रभारद्वाजः अभिनन्द्यते भूयो भूयः शुभाशीर्भिश्च संयोज्यते।

आशास्यते च ग्रन्थराजोऽयमनुदिन संस्कृतशिक्षानिरतानां छात्राणां छात्राध्यापकानां, स्वाध्यायनिरतानामध्यापकानां च मार्गदर्शकः स्यात् अग्रे चास्य पुनः पुनः भूयांसि संस्करणानि प्रकाश्येरन्निति।

विदुषां वशंवदः

वाचस्पत्युपाध्यायः

डॉ० नोदनाथ मिश्र
उप शिक्षा सलाहकार (संस्कृत)

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय
(शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

सभी भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा, भारत की बहूमुल्य सम्पत्तियों में से एक अनुपम गौरवपूर्ण सम्पत्ति है। इसके अध्ययन से मानवमात्र को अनुशासन और पवित्र जीवन की आन्तरिक प्रेरणा मिलती है। यह राष्ट्र को एकता सूत्र में बाँधकर समन्वय-संस्कृति की धारा प्रवाहित करने वाली सभी भाषाओं की आत्मा है। प्राचीन समय में संस्कृत की आवश्यकता जितनी थी, उससे कहीं अधिक संस्कृत की आवश्यकता आज के समय में है। संस्कृत एवं संस्कृति हमारे समाज की धरोहर है। संस्कृत भाषा में ही भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। परमूज्य आचार्यप्रवर राजवैद्य आचार्यश्री रामशास्त्री जी की 'संस्कृत-शिक्षण-सरणी' एकाकी ही अनेक अनुवाद विषयक ग्रन्थों की पूर्ति करती है। इसमें व्याकरण के सभी विषयों का समावेश है, यथा— संधि, समास, शब्दरूप, धातुरूप, वाच्य-परिवर्तन, कारक, उपसर्ग, प्रत्यय, क्रियाविशेषण, अव्यय, धातुकोष आदि। प्रस्तुत ग्रन्थरत्न प्रशिक्षण की दृष्टि से उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय है। मेरा तो विश्वास है कि संस्कृत के छात्र इसको पढ़कर मातृभाषा के सदृश संस्कृत बोल पायेंगे और शिक्षक बनकर संस्कृत के प्रति 'मृतभाषा' के मिथ्यापवाद को जन-जीवन से समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो पायेंगे। संस्कृत जगत् इस उपकार के लिए आचार्यश्री का सदैव ऋणी रहेगा। इस पुनीत कार्य के लिए आचार्यश्री को मेरे शत-शत प्रणाम। इस संस्करण के प्रकाशन हेतु श्री सुरेन्द्र भारद्वाज शास्त्रीजी को अनेकशः धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि ये सदा देववाणी के प्रचार प्रसार में सेवारत रहेंगे।

विनीत
नोदनाथ मिश्र

डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकरः

सत्यानन्दमहापीठम्
आई० पी० मार्गः, जादवपुरम्,
कलकत्ता-700032

प्रज्ञाचक्षुष्मताम् आचार्य रामशास्त्रि-राजवैद्यमहाभागानां संस्कृत-शिक्षण-सरणी नाम कृतिः श्रीमता सुरेन्द्रभारद्वाजमहाभागेन अवलोकनार्थं मे प्रदत्ता। संस्कृत भाषायाः सम्यग् आकलनं कारयितुम् आधुनिककाले डॉ० भांडारकर, कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी, वेदमूर्ति सातवेलकर, आपटे, काके-प्रभृतिभिः विद्वद्वरैः यानि अभिनवपद्धत्युनसारीणि व्याकरणात्मकानि पाठ्यपुस्तकानि विलिखितानि, तेषु आचार्याणाम् इदं ६०० पृष्ठात्मकं बृहदाकारं पुस्तकम् अग्रगण्यमिव मे भाति। सम्प्रति अव्याकारणं संस्कृतभाषाध्यापनं प्रचारयितुं केचन महानुभावाः प्रयतन्ते। परम् अव्याकरणं संस्कृताध्ययनं भिन्नद्रोण्या तरंगिणीतरणमिव अपथ्यसहितं भेषजमिव वा न हिताय कल्पते। पाणिनीय-शब्दानुशासनस्य आकलनं कर्तुं कारयितुं च या स्वाध्यायमयी तपश्चर्या अपेक्ष्येते, तदर्थम् आवश्यकं प्रज्ञाबलं नवच्छात्रेषु न विद्यते। अतः तेषां सुखबोधाय इयं संस्कृत-शिक्षण-सरणी भृशमुपकारिणी भवेत्। अस्य दुर्लभतां गतस्य ग्रन्थस्य नवीनावृत्तिप्रकाशनं संस्कृतभाषाध्ययनेच्छूनां महते उपकाराय कल्पते। एतदर्थं श्रीसुरेन्द्रभारद्वाजमहोदयानां सहार्दम् अभिनन्दनं करोमि।

१७-११-९७
सत्यानन्दमहापीठम्

श्रीधर भास्कर वर्णेकरः
प्रज्ञाभारती
कुलाचार्यः सत्यानन्दमहापीठस्य

युधिष्ठिर मीमांसक

बहालगढ़ (सोनीपत)

श्री माननीय पण्डित राम शास्त्री जी द्वारा लिखित 'संस्कृत-शिक्षण-सरणी' नामक ग्रन्थ सरसरी दृष्टि से देखा। लेखक के अनुसार ग्रन्थ का प्रयोजन संस्कृत-भाषा का व्यावहारिक शिक्षण है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ में संस्कृत व्याकरण के प्रायः सभी उपयोगी विषयों को ध्यान में रखकर सोदाहरण लिखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ के सम्यक् अभ्यास से संस्कृत-भाषा के व्यवहार में बहुत सुगमता होगी। स्थान-स्थान पर टिप्पणी में पाणिनीय नियमों का समावेश कर देने से जहाँ ग्रन्थ की प्रामाणिकता बढ़ी वहाँ पाणिनीय व्याकरण के अध्येताओं को भी संस्कृत-भाषा के व्यवहार में कुशलता प्राप्त करने वाले छात्रों को उसे व्यवहारोपयोगी बनाने के लिये प्राचीन काल में भी भट्टिकाव्य, रावणार्जुनीय काव्य और धातु काव्य आदि लक्ष्य-लक्षण-प्रधान ग्रन्थों की रचना हुई थी, परन्तु वर्तमान काल में संस्कृत भाषा के ह्रास के कारण उन ग्रन्थों का पठन-पाठन नहीं होता। फल यह हुआ कि साम्प्रतिक व्याकरणाचार्य परीक्षोत्तीर्ण छात्र भी एक पृष्ठ भी संस्कृत में नहीं लिख सकते, भाषण की तो कथा ही दूर की बात है।

हमारे विचार में यह ग्रन्थ जिन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति अथवा सिद्धान्त-कौमुदी का अध्ययन कर लिया है उन छात्रों को संस्कृत भाषा के व्यवहार (लेखन व भाषण) में पटु बनाने के लिए अधिक उपयोगी है।

बहालगढ़

विदुषां वशंवदः
युधिष्ठिर मीमांसक

प्रथम संस्करण का लेखकीय

अपनी पुस्तक के विषय में जो इस समय आपके करकमलों में है, बता देना तथा थोड़ा समझा देना उचित समझता हूँ। जो व्यक्ति, संस्कृत-ज्ञान, बिना सूत्र-सिद्धि के करना चाहते हैं, वे सूत्र-सिद्धि छोड़कर पढ़ें। जो विद्यार्थी व्याकरण पढ़ते हैं, वे सूत्र सिद्धियों के साथ पढ़ें। इस पुस्तक में अभ्यासार्थ मैंने, २९२८ वाक्य, १४२ धातुएँ तथा उनके रूपों के साथ वाक्य भी बना दिये हैं। कृत्प्रयय २२, तद्धित प्रत्यय ६० हैं, प्रत्येक को अनेक वाक्य बनाकर समझाया है। अर्थात् जो भी मैंने लिखा है, उसको विस्तार से वाक्यों में दर्शा दिया है। प्रमाणार्थ लगभग १२०० सूत्र दिये हैं। शेष विस्तृत जानकारी के लिए विषय सूचि को देखें। अधिक क्या लिखें, प्रबुद्ध पाठक वृन्द स्वयं ही इस पुस्तक को अपनी कसौटि पर परख लेगें।

अध्यापकों के लिए

हमारा अपना विश्वास है— यदि अध्यापक छात्र को कर्त्ता, कर्म, क्रिया— ये तीन को अच्छी तरह समझादें, और छात्र को समझ में आ जाये, तो समझो कि छात्र ने संस्कृत के प्रथम सोपान पर चरण रख लिया है। जो-ने, से, का, के, की, रा, रे री, में, पर, छात्र को ये विभक्ति चिह्न समझाते हैं, उनके छात्र सदा संस्कृत में भूल करते रहेंगे। यह मैंने अपने उदाहरणों से समझाने का प्रयत्न किया है। क्योंकि भाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से बोली जाती है, जैसे पूर्व में कहते हैं— "मैं खाना खा लिया हूँ, कौन-कौन छात्र खा लिए हैं।" बनारस में मेरा इन बातों पर बहुत झगड़ा होता रहा है और यदि छात्र विशेष्य-विशेषण समझ जाता है, तो समझो कि संस्कृत द्वार में प्रविष्ट हो गया है। और जब वह लकारार्थ, वाच्य परिवर्तन जान लेता है, तब समझना चाहिये कि वह संस्कृत साहित्य-रूपी गृह में प्रविष्ट हो गया है। मैंने सन्धि और समासों को अन्त में स्थान दिया है, क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि सन्धि समास का विग्रह विद्यार्थी तब ही कर सकता है, जब उसे शब्दार्थ का ज्ञान हो। इस लिए पहले मैंने शब्दार्थ समझाने का ही प्रयास किया है। जब छात्र सब कुछ जान जाये तब उसे श्लोकान्वय समझाना चाहिये और उसे व्याकरण पूछते रहना चाहिये।

आभार

ये चिरकालिक मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई, मेरे शिष्य आर्ष गुरुकुल चित्तौगढ़ के आचार्य श्री पण्डित भीमसेन जी के सुपुत्र श्री देवेन्द्र शेखावत जी व्याकरणाचार्य

एम० ए० के द्वारा, जो दिन में अध्यापन करते और रात को घण्टों बैठकर निःस्वार्थ भावना से मेरी पुस्तक लिखते। मैं अपने इस पौत्र को सिवा आशीर्वाद के इसका कोई मूल्य नहीं दे सकता, जिसने अपना अमूल्य समय मुझे दिया। ईश्वर ऐसी सुशील, सर्वगुण सम्पन्न सन्तान सबके घर दे। मेरी यह इच्छा फिर भी पूर्ण न होती, यदि प्रिय पण्डित श्रीयुत् सत्यानन्द जी वेदवागीश व्याकरणचार्य, एम० ए० मुझे न मिलते, आपने गृहस्थ कार्यों में अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी पुस्तक की प्रेस कॉपी तैयार की। मैं तो कौमुदी क्रम से पढ़ा हूँ, आपने अष्टाध्यायी क्रम से सूत्र दे दिये, यथा स्थान सिद्धियाँ लिखकर यह पुस्तक अष्टाध्यायी क्रम से पढ़ने वालों के लिए अत्यन्त उपयोगी बना दी। साथ ही आप ने प्रूफ रीडिंग, शुद्धाशुद्ध पत्र, विषय सूची आदि तैयार करके पुस्तक को पूर्ण कर दिया, जो कि मैं नेत्रहीन होने के कारण ये सब करने में असमर्थ था। इनका मैं इस उपकार के लिए हृदय से आभारी तथा चिर ऋणी रहूँगा। आर्थिक रूप से इस पुस्तक में सहायता करने वालों का स्मरण न करना कृतघ्नता होगी।

सर्व प्रथम मैं अपने प्रिय सुहृद् सदा हित-चिन्तक, श्री देवेन्द्र कुमार जी कपूर जिन्होंने इस पुस्तक के लिए बारह हज़ार रुपया दिया है, तथा अपने प्रिय शिष्य राष्ट्रपति के चिकित्सक, वैद्यवाचस्पति, कविराज ओम्प्रकाश जी का जिन्होंने बारह हजार रुपया भेंट स्वरूप दिया— इन दोनों का मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। श्री कविराज ओम्प्रकाश जी को मुझे उस समय गुरुकुल भटिण्डे में पढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब यह तीव्र बुद्धि बालक प्राज्ञ कक्षा में पढ़ता था। इनकी कुल-शालीनता है, कि इतने ऊँचे पद को प्राप्त करके भी सुशिष्यों जैसी नम्रता का व्यवहार करते हैं। मेरे बारम्बार मना करने पर भी कि आप तो बहुत बड़े हो ऐसा न करो, चरण स्पर्श करते हैं। जब कभी मुझे आर्थिक आवश्यकता पड़ती है, तब ये मेरे लिए कल्पतरु बन जाते हैं।

सैनी प्रिण्टर्स के संस्थापक पं० श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री ने न केवल मुद्रण अपितु प्रेस सम्बन्धी अन्य कार्यों में भी सहयोग दिया।

प्रिय श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री मेरे दिवंगत शिष्य श्री रघुवीर सिंह शास्त्री सांसद के सुयोग्य शिष्य हैं अतएव मेरा इनके लिए पौत्र-तुल्य स्नेह है। इसी श्रद्धापूर्ण भाव से इन्होंने मेरे कार्य को शीघ्र पूरा करने का यथासंभव प्रयत्न किया है। इनके इस सहयोग के लिए मैं इनको धन्यवाद सहित हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ।

आचार्य राम शास्त्री वैद्य

पूज्यपाद श्रद्धेय आचार्य प्रवर रामशास्त्री जी भारतीय संस्कृत वाङ्मय के निष्णात लब्धप्रतिष्ठ प्रकाण्ड पंडित और मर्मज्ञ हैं। आपने तप और साधना द्वारा ज्ञानार्जन किया है, आप में विद्या और साधना का अपूर्व समन्वय है,

आप वे सारस्वत शिखर हैं जिनमें ज्ञान का गौरव मानवता की ऊंचाई तथा सहृदयता के निर्झर हर क्षण निनादित होते रहते हैं, इसका कारण कदाचित् यह रहा है कि ज्ञान का रस साधना की आंच में पक कर मधुर आसव के रूप में कहीं निरन्तर मुक्त बरसता हुआ मिला है तो वह श्री शास्त्री जी के यहां,,

शास्त्री जी की लोकोत्तर प्रतिभा तथा साहित्यिक सेवाओं के प्रस्तुतीकरण स्वरूप पाण्डित्य का सौरभ देश की विद्वन्मण्डली में व्याप्त है, आप संस्कृत साहित्य के बहु-श्रुत उद्भट् विद्वान् हैं, आपके व्यक्तित्व का निर्माण संश्लिष्ट भारतीय संस्कृति के ताने बाने से हुआ है आपकी गणना भारतीय ऋषि परम्परा में है

आपकी अलौकिक प्रतिभा शास्त्रों में अबाधित गति, उन्मुक्त भाव से समस्त विषय का आलोडन करती है"

अपार ज्ञान राशि के साथ ही साधना के निरूपाधिक धरातल पर प्रशस्ततर आरोहण श्री शास्त्री जी का वैशिष्ठ्य है, ज्ञान का उनका अक्षयस्रोत जब प्रवहण-शील होता है तब प्रश्नकर्ता अभिभूत हो अखण्ड ज्ञान राशि में अपनी स्थिति को खोया हुआ सा अनुभव करता है। वस्तुत: आप विद्यानुरागियों और ज्ञानार्जन के लिए आये जिज्ञासुओं के लिए तीर्थ स्थान हैं। आपके जीवन में अगाध पाण्डित्य के अतिरिक्त अहंभाव शून्यता निस्पृहता का भाव, अनिर्वचनीयता सरलता, अकृत्रिमता व उदारता आपकी गौरवान्वित श्रृंखला में आबद्ध है,, आपका मधुर स्वभाव स्नेहपूर्ण व्यवहार, एक साधारण विद्यार्थी को भी आपसे मिलने और नि:संकोच वार्ता करने का अवसर प्रदान करता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री शास्त्री जी के संस्कृत अध्ययन की बहुमूल्य सम्पत्ति है। इसमें संस्कृत भाषा के ज्ञान के लिए अनिवार्य सम्पूर्ण व्याकरण अनुवाद और अभ्यासों के द्वारा दुरूहता को समाप्त कर अत्यन्त सरल रीति से समझाया गया है, जिससे छात्र शीघ्र ही अनुवाद के नियमों का बोध करके संस्कृत समझने लिखने पढ़ने एवं उत्कृष्ट संस्कृत बोलने तथा विशिष्ट अनुवाद करने में आशातीत सफलता प्राप्त करके संस्कृत का उत्तम शिक्षक बन सकता है,,

संस्कृत के जिज्ञासुजनों के लिए प्रस्तुत ग्रन्थरत्न उपादेय एवं अनूठी रचना है। अपनी निराली शैली में सन्धि, समास, शब्दरूप, धातुरूप, वाच्यपरिवर्तन कारक उपसर्ग" प्रत्यय क्रिया विशेषण अन्वय धातुकोष तथा व्याकरण के अन्य आवश्यक विषयों को सरल सुबोध बना दिया है

मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ का सार्वदेशिक स्वागत किया जायेगा, संस्कृत के प्रेमी विद्वानों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, के छात्रों, छात्राओं के लिए अत्यन्त उपयोगी रहेगा, एवं पुस्तकालयों द्वारा इसका संग्रह किया जायेगा

इस ग्रन्थ की अद्वितीयता एवं उपादेयता स्वयं सिद्ध है

मुख्याधिष्ठाता
महर्षि दयानन्द आर्ष महाविद्यालय
श्री गुरुकुल चितौडगढ़, राजस्थान

यज्ञदेव वेदवागीश
वेद-नैरुक्त-व्याकरणाचार्य एम. ए. ।

पूज्य गुरु जी से मेरा संपर्क तब हुआ, जब सैंतीस वर्ष पूर्व में मैट्रिक परीक्षा में पढ़ता था। इसे मैं अपना सोभाग्य मानता हूं, कि संस्कृत सिखाने के लिए प्रभुकृपा इनके रूप में अवतरित हुई। १९४५-४६ के दो वर्षों में उनके साथ पर्याप्त समय बिताया, और बड़े-बड़े संस्कृत के विद्वतल्लजों के वहां जाना भी हुआ, परन्तु आचार्य राम शास्त्री जी जैसा धाराप्रवाह संस्कृतभाषी नहीं मिला। संस्कृत सिखाने की इनकी अपनी ही शैली है। इनका संस्कृत सिखाने का और वाक्यों को बुलवाकर अभ्यास कराने का ढंग विशेष महत्व रखता है। इनकी यह विशेषता "प्रत्यक्ष विधि" से आप ग्रन्थ रूप में पाकर हर्षातिरेक से हर्षित हो उठेंगे। एक ही वाक्य को बीसियों प्रकार से बनाने के लिए आचार्य जी मुझे प्रेरित करते थे, यथा—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा प्रत्ययों में। जिससे मेरा संस्कृत लिखने और बोलने में आत्म विश्वास बनने लगा। जितनी संस्कृत आचार्य जी से मैट्रिक परीक्षा के निमित्त सीखी उसी के भरोसे छः वर्ष विज्ञान का छात्र रह एम० एस० सी० करने के बाद, एक अक्षर भी बिना किसी और से पढ़े, संस्कृत से एम० ए० करने की धृष्टता की। सरस्वती मां की कृपा रही, कि अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हो गया, और बरसों संस्कृत अध्यापन की विधियां पढ़ाने का सुअवसर मिला। आचार्य जी द्वारा कराए गये अभ्यास कार्य की कापियां अभी तक सम्भाले हुए हूं। उनको सर्वोपयोगी बनाने के लिए आचार्य जी ने बानवें वर्ष की आयु में पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का आयोजन किया है। यह उनके अध्यवसाय का प्रतीक मात्र है। अशिक्षित परिवार में जन्म ले बाल्यकाल में ही शारीरिक चक्षु खोकर भी संस्कृत में पाण्डित्य और आयुर्वेद में गहरी पैठ पाने के लिए संकल्प की कितनी दृढ़ता चाहिये, इसका अनुमान लगाना सहज नहीं है। कभी इस विशाल भण्डार को पुनः अभ्यास में लाने का अवसर मिलेगा ऐसी कामना है, क्यों कि इसके थोड़े से अंश का ही अभ्यास किया था। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के लिए यह अद्वितीय ग्रन्थ है। और इसे संस्कृत लिखने-बोलने की विशेष योग्यता के इच्छुक छात्रों को अवश्य अभ्यास में लाना चाहिये। स्वयं शिक्षक के रूप में यह ग्रन्थ छात्रों का पथ-प्रदर्शन करेगा।

विनीत

सत्यपाल दुग्गल सिद्धान्त वाचस्पति
M.Sc., M.A. (Sans.)
P.H.D. Michigan (U.S.A.)

कार्तिक २६, १९०४ (शक)
प्रिंसीपल
डी० ए० वी० शिक्षा महाविद्यालय
अबोहर—१५२११६

विषय-सूची

'संस्कृत-शिक्षण-सरणी' ग्रन्थः

ओ३म्

चित्तौड़गढ़ (राज०) के आर्ष गुरुकुल संस्कृत विद्यालय में, मैं ठहरा हुआ था। उस दिन विद्यालय में एक सभा हो रही थी। व्याख्यान का विषय था 'मानव जीवन की उन्नति और संस्कृत भाषा'। सभी वक्ता संस्कृत भाषा में ही बोल रहे थे। मैंने भी एक घण्टे तक उपर्युक्त विषय पर प्रकाश डाला। सभा-समाप्ति के पश्चात् कुछ छात्रों ने आकर मुझे घेर लिया। कहने लगे 'शास्त्री जी! हमने ऐसी सुललित और धाराप्रवाह संस्कृत आज ही सुनी है। बड़ा ही आनन्द आया। जी करता था कि आप बोलते ही जायें और हम सुनते ही रहें। कृपा करके हमें भी ऐसी ही संस्कृत सिखा दीजिये। हमें भी पढ़ते हुए कई वर्ष हो गये, किन्तु कुछ विशेष पल्ले नहीं पड़ा। हम तो यह चाहते हैं कि आप हमें आरम्भ से ही संस्कृत सिखायें'। छात्रों के संस्कृत-प्रेम और तीव्र अभीप्सा को देखते हुए, मुझे उन्हें 'अवश्य सिखाउंगा।' यह कहकर स्वीकृति देनी पड़ी। कुछ मास गुरुकुल में ही निवास करने का निश्चिय किया गया।

दूसरे दिन ही देवेन्द्र अपने जिज्ञासु सहपाठियों को लेकर बड़ी श्रद्धापूर्वक उपस्थित हो गया। देवेन्द्र, सुरेन्द्र, चन्द्रशेखर, भानुप्रकाश, मोहन, अर्जुनदेव, वेदपाल आदि सभी छात्र सेवा-भावी श्रद्धालु और अध्ययनप्रिय थे। मैंने उन्हें कहा 'देखो बच्चो! मैं तुम्हें अत्यन्त सरल उपाय से संस्कृत सिखाने का प्रयत्न करूंगा। तुम सावधान होकर समझने का प्रयत्न करो। जहाँ समझ में न आवे वहाँ पूछते जाओ।'

कारक और विभक्तियाँ

देखो! सबसे पहिले हम कारक, सम्बन्ध और विभक्तियों के विषय में समझायेंगे। जब हम कोई वाक्य बोलते हैं, तो उसमें कोई न कोई क्रिया अवश्य होती है। बिना क्रिया का कोई वाक्य नहीं होता। उस क्रिया के कई कारण होते हैं, जिनके कि होने से उस क्रिया का होना सम्भव होता है। क्रिया के उन कारणों को ही 'कारक' कहा जाता है[1]। ये कारक ही क्रिया को सिद्ध करते हैं[2]। 'देवेन्द्र बाग में पेड़ से छड़ी से वेदपाल के लिये फल तोड़ता है' इस वाक्य में 'तोड़ता है' यह क्रिया पद है। 'तोड़ना' क्रिया के कारण (=साधक) छः हैं। देवेन्द्र, बाग, पेड़, छड़ी, वेदपाल और फल। ये छः ही 'तोड़ना' क्रिया के कारक कहलाते हैं। देवेन्द्र 'कर्त्ता' कारक है। बाग 'अधिकरण' कारक है। पेड़ 'अपादान' कारक है। छड़ी 'करण' कारक है। वेदपाल 'सम्प्रदान' कारक है और फल 'कर्म' कारक है।

---

१. 'कारकशब्दश्च निमित्तपर्यायः। कारकं हेतुरित्यनर्थान्तरम्॥ काशिका १.४.२३

२. 'क्रियानिर्वर्त्तकं कारकम्।,

'कर्त्ता' उसे कहते हैं जो क्रिया के करने में स्वतन्त्र हो ।[१] जो क्रिया का आधार हो उसे 'अधिकरण' कहते हैं ।[२] किसी वस्तु के दूसरी वस्तु से अलग होने की क्रिया में जो वस्तु स्थिर रहती है उसे 'अपादान' कहते हैं ।[३] क्रिया की सिद्धि में जो वस्तु कर्त्ता की सबसे अधिक सहायक होती है उसे 'करण कहते हैं ।[४] जिसको लक्ष्य में रखकर कोई क्रिया की जाती है तथा जिसको कोई वस्तु दी जाती है उसे 'सम्प्रदान' कहते हैं ।[५] क्रिया के करने में कर्त्ता का जो इष्टतम पदार्थ है उसे 'कर्म' कहते हैं ।[६]

इन छः कारकों के अतिरिक्त भी वाक्य में एक वस्तु रहती है उसे 'सम्बन्ध' कहा जाता है। ऊपर के वाक्य में—'देवेन्द्र श्याम के बाग में पेड़ से'''। इस प्रकार बाग के किसी स्वामी का कथन किया जा सकता है। किन्तु क्योंकि 'श्याम' अथवा किसी अन्य भी स्वामी का तोड़ने की क्रिया में कारणत्व अपेक्षित नहीं होता है, अतः उसे कारक नहीं माना जाता है। सरलतम भाषा में इस बात को ऐसे भी कहा जा सकता है कि जिसका क्रिया से सीधा सम्बन्ध रहता है उसे 'कारक' कहते हैं और जिसका क्रिया से कोई सीधा वास्ता नहीं है, वह कारक न होकर केवल सम्बन्ध कहलाता है।

छः कारक और सम्बन्ध ये कुल सात चीजें हैं। विभक्तियों की दृष्टि से इन सातों को इस क्रम से लिखा जाता है—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण। इन कर्त्ता आदि सातों को सूचित करने के लिए सात विभक्तियों का उपयोग किया जाता है। कर्त्ता को सूचित करने के लिये तृतीया अथवा प्रथमा विभक्ति। कर्म के बोध के लिये द्वितीया विभक्ति। करण को बताने के लिये तृतीया। सम्प्रदान को सूचित करने में चतुर्थी। अपादान में पञ्चमी। सम्बन्ध में षष्ठी। अधिकरण में सप्तमी। किसी को सम्बोधित करने में=सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है।[७]

---

१. स्वतन्त्रः कर्त्ता। अष्टा० १.४.५४।

२. आधारोऽधिकरणम्। अष्टा० १.४.४५।

३. ध्रुवमपायेऽपादानम्। अष्टा० १.४.२४।

४. साधकतमं करणम्। अष्टा० १.४.४२।

५. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्। अष्टा० १.४.३२।

६. कर्तुरीप्सिततमं कर्म। अष्टा० १.४.४९।

७. कर्तृकरणयोस्तृतीया। अष्टा० २.३.१८॥ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। अष्टा० २.३.४६॥ कर्मणि द्वितीया। अष्टा० २.३.२॥ चतुर्थी सम्प्रदाने। अष्टा० २.३.१३॥ अपादाने पञ्चमी। अष्टा २.३.२८॥ षष्ठी शेषे। अष्टा० २.३.५०॥ सप्तम्यधिकरणे च। अष्टा० २.३.३६॥

ये कर्त्ता, कर्म आदि एक, दो अथवा बहुत भी हो सकते हैं। एक को कहने में एकवचन। दो के कहने में द्विवचन और बहुतों के कहने में बहुवचन होता है। ये 'एकवचन', 'द्विवचन' और 'बहुवचन' प्रत्ययों की संज्ञाएं (=नाम) हैं। कर्त्ता आदि के सात होने के कारण सात विभक्तियां होती हैं और एक, दो या बहुत के कारण प्रत्येक विभक्ति में तीन वचन होते हैं।[1] सात विभक्तियाँ और तीन वचन निम्नलिखित हैं--

कारक	विभक्तिनाम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(कर्त्ता)	प्रथमा	सुँ	औ	जस्
(कर्म)	द्वितीया	अम्	औट्	शस्
(करण)	तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
(सम्प्रदान)	चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
(अपादान)	पञ्चमी	ङसिँ	भ्याम्	भ्यस्
[सम्बन्ध]	षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
(अधिकरण)	सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्
[सम्बोधन]	प्रथमा	(पूर्ववत्)		

इन सात विभक्तियों में, प्रत्येक के तीन वचन होने से कुल २१ इक्कीस प्रत्यय हैं। इनको 'सुप्' प्रत्यय कहते हैं। सुप् जिसके अन्त में हो उसे सुबन्त कहते हैं। क्रियावाची शब्दों को (=तिङन्तों को) छोड़कर शेष सारे शब्द सुबन्त होते हैं। कारक और विभक्ति के विषय का विशिष्ट विवेचन यथास्थान बाद में किया जायगा।

क्रिया

अब क्रिया के विषय में कुछ समझाते हैं। कर्त्ता की चेष्टा या सत्ता को क्रिया कहते हैं। कर्त्ता के बिना क्रिया नहीं रहती, क्रिया का कर्त्ता अवश्य होता है। क्रिया दो प्रकार की होती है—सकर्मक और अकर्मक। जिस क्रिया का फल (प्रभाव) कर्त्ता पर ही रहता है उसे 'अकर्मक' क्रिया कहते हैं। जैसे—'मोहन सोता है' यहां सोने की (=शयन की) क्रिया है। उसका फल मोहन (कर्त्ता) पर ही आश्रित है। अतः 'सोना' यह अकर्मक क्रिया हुई। जहाँ क्रिया का फल कर्त्ता के अतिरिक्त किसी अन्य पर पड़े उसे 'सकर्मक' क्रिया कहते हैं। जैसे—'मोहन जगदीश को पीटता है।' यहाँ 'पीटना' क्रिया का फल कर्त्ता मोहन पर न होकर, कर्म जगदीश पर पड़ता है; अतः 'पीटना' सकर्मक क्रिया है। सरल भाषा में कहें तो—जहाँ वाक्य के उच्चारण करने पर 'क्या', 'किसको' का प्रश्न शेष न रहे वह 'अकर्मक' क्रिया और जहाँ 'क्या'

---

१. सुपः। अष्टा० १.४.१०३॥ विभक्तिश्च। अष्टा० १.४.१०४।

'किसको' का प्रश्न शेष रह जाये वह 'सकर्मक' क्रिया है। 'मोहन सोता है', 'मोहन जागता है' इस प्रकार के वाक्यों में 'क्या' सोता है अथवा 'क्या' जागता है अथवा 'किसको जागता है' इत्यादि प्रश्न शेष नहीं रहते हैं, अतः 'सोना' 'जागना' आदि क्रियाएँ अकर्मक हैं। किन्तु, 'मोहन खाता है', 'मोहन पढ़ता है' आदि में 'क्या' खाता है ? 'क्या' पढ़ता है ?' आदि प्रश्न शेष रहते हैं अतः 'खाना' और 'पढ़ना' आदि क्रियाएँ सकर्मक हैं।

धातु

इन दोनों प्रकार की क्रियाओं का वर्णन करने के लिये संस्कृत में जिन क्रिया-वाची (खादति, पठति, शेते, जागर्ति आदि) शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उनके मूल शब्दांशों को 'धातु' कहते हैं। वे भू आदि धातुएँ लगभग दो हजार हैं।[1] इनका संग्रह अर्थसहित, अष्टाध्यायी के परिशिष्ट रूप 'धातुपाठ' नामक पुस्तक में पाणिनि महर्षि ने किया है। क्रियाओं की द्विविधता के कारण धातुएँ भी दो प्रकार की हैं—अकर्मक और सकर्मक।

मुख्य मुख्य अकर्मक धातुएँ निम्नाङ्कित रूप से हैं—

लज्जा अर्थ वाली	लज्ज् (ओलस्जी), ह्री,
सत्ता "	भू, अस्, विद्, वृतु,
स्थिति "	स्था,
जागरण "	जागृ,
वृद्धि "	वृध्, एध्, प्याय्,
क्षय "	क्षि,
भय "	भी,
जीवन "	जीव्, अन्,
मरण "	मृङ्।
शयन "	शीङ्, स्वप्, सस्
क्रीडा "	क्रीड्, खेल्, रम्,
रुचि "	रुच्,
दीप्ति "	दीप्, ज्वल्

इन अकर्मक धातुओं को स्मरण रखने के लिये निम्नलिखित कारिका स्मरण कर लेनी चाहिये—लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भय-जीवित-मरणम्। शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणं तेऽकर्मकमाहुः॥

---

[1] भूवादयो धातवः। अष्टा० १.३.१

यह थोड़ा सा अकर्मक और सकर्मक धातुओं के विषय में मैंने समझाया है। अच्छा, देवेन्द्र ! तुम बताओ 'मोहन लिखता है' इस वाक्य में प्रयुक्त क्रिया सकर्मक है या अकर्मक ?

देवेन्द्र—गुरुजी ! सकर्मक है, क्योंकि यहाँ 'क्या' का प्रश्न शेष रह जाता है—क्या लिखता है ?

मैं—अच्छा, 'मोहन खेलता है' इसमें ?

देवेन्द्र—गुरुजी ! यहाँ भी सकर्मक क्रिया ही प्रतीत होती है, क्योंकि यहाँ भी 'क्या' का प्रश्न शेष रहता है।

मैं—नहीं यह तुम्हारा भ्रम है। 'खेलना' क्रिया अकर्मक ही है, क्योंकि खेलने की क्रिया, कर्ता मोहन के ही आश्रित है।

यहाँ जो 'क्या' प्रश्न शेष रहता है वह उस प्रकार का नहीं है जैसा कि 'क्या खाता है ?' इत्यादि में है। 'क्या खेलता है ?' ऐसे प्रश्नों में 'क्या' से खेलने का साधन या विषय पूछा गया है—गेंद से या रिंग से खेलता है ? जबकि 'क्या खाता है', 'क्या लिखता है ?' आदि में 'क्या' से कर्म 'लड्डू', 'रोटी' और 'पत्र', 'निबन्ध' आदि कर्म के विषय में पूछा जाता है। अतः खेलना क्रिया अकर्मक है। अच्छा 'जगदीश खाता है' इसमें जो क्रिया है, वह कैसी है ?

देवेन्द्र—अकर्मक।

मैं—क्यों, अकर्मक कैसे हुई ? यह तो सकर्मक है।

देवेन्द्र—गुरु जी ! यहाँ खाने का प्रभाव तो कर्ता जगदीश पर पड़ेगा फिर यह सकर्मक कैसे हुई ?

मैं—ठीक है, जगदीश पर पड़ेगा। यह तो प्रत्येक क्रिया के विषय में है, किन्तु जहाँ (कर्त्ता के अतिरिक्त) कर्म पर भी क्रिया का असर पड़े उसे सकर्मक कहते हैं। कोई किसी जीवित चीज को खाता है तो वहाँ 'जीवित वस्तु' रूप कर्म पर स्पष्ट क्रिया का प्रभाव प्रतीत होता है। जड़ 'लड्डु' आदि वस्तुओं पर भी, खाने की क्रिया करने पर, उनका चूरा-चूरा होना, भीगना, रस बनना आदि कुछ प्रभाव होता ही है। अतः 'खाना' क्रिया सकर्मक है। अच्छा, अब, मैं कुछ वाक्य बोलता हूं, तुम साथ-साथ यह बताते जाओ कि उनमें अकर्मक क्रिया है या सकर्मक ?

देवेन्द्र—

सत्यपाल जागता है	यहाँ 'जागना'	क्रिया	अकर्मक	है।
वृक्ष बढ़ते हैं	" 'बढ़ना'	"	"	"
मनुष्य जीते हैं	" 'जीना'	"	"	"

वे मरते हैं	यहाँ 'मरना' क्रिया अकर्मक है
वे डरते हैं	" 'डरना' " " "
वे पढ़ते हैं	" 'पढ़ना' " सकर्मक है।
लड़के ठहरेंगे	" 'ठहरना' " अकर्मक है।
लड़के कहते हैं	" 'कहना' " सकर्मक है।

यहाँ तक मैंने कारक, विभक्ति और क्रिया के विषय में मुख्य-मुख्य बातें बताई हैं। कारकों के विषय में विस्तार से यथास्थान बाद में बताया जायेगा, फिर भी इतना और जान लेना चाहिये कि, वाक्य-प्रयोग के समय सभी कारकों का सदा उच्चारण या प्रयोग नहीं हुआ करता। क्रिया के वे कारक तो अवश्य होते हैं, किन्तु वे अति प्रसिद्ध होते हैं इसलिए अथवा पूर्व-प्रसङ्ग के कारण उनको बोला नहीं जाता—वे अवगत रहते हैं। जैसे 'सुरेन्द्र देवेन्द्र को देखता है' इस वाक्य में देखने वाला=कर्ता सुरेन्द्र और जिसे देखा जा रहा है वह देवेन्द्र=कर्म दोनों वाक्य में हैं, किन्तु देखने की क्रिया का साधकतम कारक नेत्र रूपी=करण उच्चारित नहीं है। फिर भी वह करण है। इसी प्रकार 'वह सारे जीवन भर धन बांटता रहा' यहाँ सम्प्रदान। 'सारे फूल तोड़कर ले आया' यहाँ अपादान। 'मैं गहरी नींद सोया' यहाँ अधिकरण अप्रयुक्त हैं। इनके साथ ही अन्य कुछ कारक भी अप्रयुक्त हैं। अभिप्राय-बोध कराने के लिए भाषा का प्रयोग किया जाता है। मुख्य-मुख्य कारकों के प्रयोग से ही जब अभिप्राय-बोधन का कार्य चल जाता है, तो सब कारकों का प्रयोग आवश्यक नहीं होता। सम्बन्ध (षष्ठी विभक्ति) का प्रत्येक कारक के साथ भी प्रयोग हो सकता है, जैसे 'वेदपाल के भाई ने अलवर के बाजार में गंगाराम की दुकान से मोहन के रुपयों से दूध की मिठाई गुरु की माता के लिए खरीदी थी' इस वाक्य में सभी कारकों के साथ स्वामित्व-बोधक (सम्बन्ध-द्योतक) कोई न कोई वस्तु प्रयुक्त है। कभी-कभी एक ही वाक्य में एक से अधिक समान कारक हो सकते हैं जैसे—'राम बकरी को गांव ले जाता हैं' यहाँ बकरी और गाँव दो कर्म हैं। इस वाक्य में जो 'ले जाना' क्रिया है वह द्विकर्मक=(दो कर्म वाली) है। इस विषय में विस्तार से विचार बाद में किया जायेगा। 'सर्वमित्र पत्र लिखता है'। इस वाक्य में 'लिखना' रूप क्रिया के अनेक करण रूप कारक(=सहायक) हो सकते हैं जैसे—कलम, हाथ, योग्यता आदि। इनमें से सबका अथवा दो का अथवा एक का भी प्रयोग किया जा सकता है। सभी में तृतीया विभक्ति का ही प्रयोग होगा जैसे—'सर्वमित्र हाथ से कलम से योग्यतापूर्वक पत्र लिखता है'='सर्वमित्रः हस्तेन लेखन्या योग्यतया पत्रं लिखति।'

अब मैं कुछ वाक्य बोलूंगा, उनमें से तुम लोग बारी-बारी से भिन्न-भिन्न

कारकों और क्रियाओं को छाँटकर बताओ और साथ ही साथ उनका संस्कृत में अनुवाद भी करते जाओ।

मैं—'चन्द्रशेखर सत्यपाल को पुस्तक देता है।'

देवेन्द्र—चन्द्रशेखर कर्ता, सत्यपाल सम्प्रदान, पुस्तक कर्म और 'देता है' यह सकर्मक क्रिया है।

चन्द्रशेखरः सत्यपालाय पुस्तकं ददाति।

मैं—'वेदप्रकाश जगदीश को हाथ से पुस्तक देता है।'

सुरेन्द्र—वेदप्रकाश कर्ता, जगदीश सम्प्रदान, 'हाथ से' करण, पुस्तक कर्म और 'देता है' यह सकर्मक क्रिया है।

वेदप्रकाशः जगदीशाय हस्तेन पुस्तकं ददाति।

मैं—'वेदपाल रथ से मथुरा नगर से गोकुल गया।'

चन्द्रशेखर—वेदपाल कर्ता, 'रथ से' करण, 'मथुरा नगर से' अपादान, गोकुल कर्म और 'गया' सकर्मक क्रिया है।

वेदपालः रथेन मथुरानगरात् गोकुलम् अगमत्।

मैं—'शम्भुनाथ का लड़का है।'

भानुप्रकाश—शम्भुनाथ सम्बन्ध, लड़का कर्ता और 'है' यह अकर्मक क्रिया है।

शम्भुनाथस्य पुत्रः अस्ति।

मैं—'दिनेश राकेश के कुत्ते को घर से लाकर डंडे से मारता है।'

मोहन—दिनेश कर्ता, राकेश सम्बन्ध, कुत्ता कर्म, घर अपादान, 'लाकर' सकर्मक क्रिया, डंडा करण और मारना सकर्मक क्रिया है।

दिनेशः राकेशस्य कुक्कुरं गृहात् आनीय दण्डेन ताडयति।

मैं—'तिलों में तेल है'।

वेदपाल—तिल अधिकरण, तैल कर्त्ता और 'है' अकर्मक क्रिया है।

तिलेषु तैलम् अस्ति।

मैं—'वृक्षों पर पक्षी बैठते हैं'।

अर्जुनदेव—वृक्ष अधिकरण, पक्षी कर्त्ता और 'बैठते हैं' अकर्मक क्रिया।

वृक्षेषु पक्षिणः उपविशन्ति।

---

१ अकर्मक धातुएं भी णिजर्थ में—करवाने के अर्थ में सकर्मक हो जाती हैं।

मैं—'नरेश ! तू रमेश के बाग से फल लाकर रूमाल में रखकर अपने हाथ से हरिश्चन्द्र को दे'।

देवेन्द्र—नरेश सम्बोधन, तू कर्त्ता, रमेश सम्बन्ध, बाग अपादान, फल कर्म, लाकर सकर्मक क्रिया, रूमाल अधिकरण, रखकर सकर्मक क्रिया, अपने सम्बन्ध, हाथ करण, हरिश्चन्द्र सम्प्रदान और 'दे' यह सकर्मक क्रिया है।

नरेश ! त्वं रमेशस्य उद्यानात् फलानि आनीय करपटे निधाय स्वस्य हस्तेन हरिश्चन्द्राय यच्छ।

मैं—'देवेन्द्र कुए से बाल्टी से पानी खींचकर योगेन्द्र से स्नान के लिए कहने लगा।'

सुरेन्द्र—देवेन्द्र कर्त्ता, कुआ अपादान, बाल्टी करण, पानी कर्म, 'खींचकर' सकर्मक क्रिया, योगेन्द्र कर्म और (स्नान के लिए) 'कहने लगा' सकर्मक क्रिया है।

देवेन्द्रः कूपात् उदञ्चनेन जलम् उद्धृत्य योगेन्द्रं स्नातुम् अकथयत् (अचकथत्)।

मैं—'मोहन ! तूने सत्यपाल से क्या कहा ?'

चन्द्रशेखर—मोहन सम्बोधन, तूने कर्त्ता, सत्यपाल कर्म, क्या कर्म और 'कहा' यह सकर्मक क्रिया है।

मोहन ! त्वं सत्यपालं किम् अवादीः ?

मैं—'देवेन्द्र योगेन्द्र से कुछ नहीं कहता और अर्जुनदेव को अपनी पुस्तक देता है'।

भानुप्रकाश—देवेन्द्र कर्त्ता, योगेन्द्र कर्म, 'कुछ नहीं अव्यय, 'कहता' सकर्मक क्रिया, 'और' अव्यय, अर्जुनदेव सम्प्रदान, अपनी सम्बन्ध, पुस्तक कर्म और 'देता है' सकर्मक क्रिया है।

देवेन्द्रः योगेन्द्रं किमपि न कथयति अर्जुनदेवाय च पुस्तकं ददाति।

मैं—'मोहन ! क्या तू कार से स्कूल जाता है' ?

अर्जुनदेव—मोहन सम्बोधन, क्या अव्यय. तू कर्त्ता, कार करण, स्कूल कर्म और 'जाता है' यह सकर्मक क्रिया है।

मोहन ! किं त्वं कारयानेन विद्यालयं गच्छसि ?

इन वाक्यों के प्रयोग से तुम्हें कारकों की पहचान भली प्रकार हो गई है। अब हम तुम्हें शब्द-रूपों के विषय में बतायेंगे। तीनों वचनों और सातों विभक्तियों से युक्त जो शब्द का रूप है वही शब्दरूप कहलाता है। हिन्दी भाषा में केवल एक वचन और बहुवचन ही होते हैं, जबकि संस्कृत भाषा में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ये तीन वचन होते हैं। हिन्दी भाषा में दो वस्तुओं को कहने के लिए 'दो' शब्द साथ लगाना पड़ता है। जैसे—'दो लड़के' जबकि संस्कृत में केवल शब्द का

द्विवचनान्त रूप बोलने से भी काम चल जाता है, जैसे—बालकौ। सबसे पहले अकारान्त पुंलिङ्ग 'राम' शब्द, आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'रमा' शब्द और अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'फल' शब्द के रूप सिखाते हैं—

शब्द-रूप

अकारान्त पुंलिङ्ग राम शब्द

विभक्तिनाम	कारक	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	(कर्त्ता)	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	(कर्म)	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	(करण)	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	(सम्प्रदान)	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	(अपादान)	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	[सम्बन्ध]	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	(अधिकरण)	रामे	रामयोः	रामेषु
[प्रथमा—	सम्बोधन]	हे राम !	हे रामौ !	हे रामाः !

विशेष—जिन शब्दों में रेफ (—र्) अथवा ष् होता है उनकी तृतीया के एकवचन और षष्ठी के बहुवचन में न को ण हो जाता है[1]—रामेण, रामाणाम्। जहां र या ष नहीं है वहां नकार (न) ही रहता है, जैसे—देवेन, देवानाम्। किन्तु द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में अन्त में सदा नकार ही रहेगा वहां णकार नहीं होगा[2], जैसे—रामान्, देवान्।

जितने भी अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द हैं, उनके रूप राम शब्द के समान चलेंगे। यथा—देव, पुरुष, ग्राम, घट, देश, हस्त, रथ, सूर्य, चन्द्र, वात, पट, वर्ण आदि।

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग रमा शब्द

विभक्तिनाम	कारक	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	(कर्त्ता)	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	(कर्म)	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	(करण)	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	(सम्प्रदान)	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पञ्चमी	(अपादान)	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी	[सम्बन्ध]	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	(अधिकरण)	रमायाम्	रमयोः	रमासु
[प्रथमा	सम्बोधन]	हे रमे	हे रमे	हे रमाः

१ 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि,' 'रषाभ्यां नो णः समानपदे'। अष्टा. ८.४.२, १.
२ 'पदान्तस्य' अष्टा० ८. ४. ३७.

रमा शब्द के समान ही आकारान्त स्त्रीलिङ्ग—कक्षा, रेखा, लता, गङ्गा, यमुना, माला, शाला, यशोदा, कौशल्या, सुमित्रा, सरला, कन्या, बालिका आदि शब्दों के रूप चलेंगे।

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग फल शब्द

प्रथमा	(कर्त्ता)	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	(कर्म)	फलम्	फले	फलानि

तृतीया विभक्ति से लेकर सप्तमी तक शेष रूप अकारान्त पुँल्लिङ्ग राम शब्द के समान चलेंगे, जैसे—फलेन, फलाभ्याम्, फलैः आदि। सभी अकारान्त नपुंसक लिंग शब्दों की यही स्थिति है। सम्बोधन में – हे फल, हे फले, हे फलानि।

जिस शब्द में रेफ अथवा ष होगा उसकी प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में न को ण हो जायेगा, जैसे—नगरं नगरे नगराणि, नगरं नगरे नगराणि। तृतीया के एकवचन तथा षष्ठी के बहुवचन में 'राम' शब्द के समान ही न को ण होगा ही जैसे—नगरेण, नगराणाम्। सभी अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप फल के समान चलेंगे। यथा—नगर, मुख, शाक, भोजन, जल, रत्न, वस्त्र, कमल, दुग्ध, घृत, अन्न, तैल, स्थल आदि।

विशेष्य और विशेषण

अब विशेष्य और विशेषण को भी समझना चाहिए। 'विशेषण' उसे कहते हैं जो विशेष्य को दूसरों से अलग कर दे।[1] जो अलग किया जाय उसे विशेष्य कहते हैं। उदाहरण—जैसे बहुत से बालक बैठे हों और कोई आकर कहे 'मैं बालक को लड्डू दूंगा'। ऐसा कहने पर सभी बालक लड्डू लेने आयेंगे, किन्तु जब यह कहा जाए कि 'मैं पीले कमीज वाले बालक को लड्डू दूंगा' तब 'पीले कमीज वाला' विशेषण हुआ, इसने उस लड़के (—विशेष्य) को अन्य लड़कों से अलग कर दिया और इसीलिए उस पीले कमीज वाले को लड्डू मिलेंगे सबको नहीं। जो लिङ्ग, विभक्ति और वचन विशेष्य के होंगे वही विशेषण के भी होंगे, जैसे—'इस लम्बे मनुष्य के हाथ पांव भी लम्बे हैं और अंगुलियां भी लम्बी हैं, किन्तु इसका ललाट लम्बा नहीं है'।

सर्वनाम विशेषण

जो नाम(=सञ्ज्ञा) के साथ विशेषण रूप में प्रयुक्त होते हैं अथवा जो अकेले भी नाम =(सञ्ज्ञा) के स्थान पर आते हैं उन्हें 'सर्वनाम' अथवा सर्वनाम विशेषण कहते हैं। ये सर्वनाम लगभग चौंतीस हैं। उनमें से मुख्य ये हैं—सर्व, उभय, अन्य,

---

१ भेदकानि विशेषणानि भवन्ति।

तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्[1]। सर्वनाम का स्वरूप समझने के लिए इन वाक्यों पर ध्यान दो—'जो ग्वाला हमें दूध देता है, उसको आज पुलिस ने पकड़ लिया है ='यः गोपालः अस्मभ्यं दुग्धं प्रयच्छति तम् अद्य राजपुरुषाः अग्रहीषुः'। यहां 'यः=जो' सर्वनाम विशेषण के रूप में आया है क्योंकि यह गोपाल=ग्वाला (नाम) का विशेषण है। 'तम्=उसको' यह केवल सर्वनाम है क्योंकि यह गोपाल (=ग्वाला) नाम के स्थान पर आया है। नाम (सञ्ज्ञा) का पुनः पुनः उच्चारण न करना पड़े इस कारण भी सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। 'मोहन ने रोटी खाई, मोहन विद्यालय गया, मोहन पढ़ा, मोहन खेला और मोहन सो गया (= मोहनः करपट्टिकाम् अखादीत्, मोहनः विद्यालयम् अगमत्, मोहनः अक्रीडीत् मोहनः अशयिष्ट च।' इस वाक्य में पाँच बार मोहन नाम आया है, किन्तु सर्वनाम का प्रयोग करने पर केवल एक बार मोहन नाम बोलना पड़ेगा। शेष चार स्थानों पर नाम के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग हो जायेगा। जैसे 'मोहन ने रोटी खाई, वह विद्यालय गया, वह पढ़ा, वह खेला और वह सो गया (=मोहनः करपट्टिकाम् अखादीत्, सः विद्यालयम् अगमत्, सः अपाठीत्, सः अक्रीडीत्, सः अशयिष्ट च) यहां सर्वत्र 'मोहन' नाम (सञ्ज्ञा) के स्थान पर 'सः=वह' सर्वनाम प्रयुक्त हुआ है।

तद्, यद्, एतद् और किम् इन चार सर्वनामों के तीनों लिङ्गों में रूप याद करो—

तद् शब्द (सर्वनाम) पुँल्लिङ्ग

प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

तद् शब्द (सर्वनाम) स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः

१ सर्वादीनि सर्वनामानि। अष्टा. १.१.२७.

चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पञ्चमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

तद् शब्द (सर्वनाम) नपुंसकलिङ्ग

प्रथमा	तत्	ते	तानि
द्वितीया	तत्	ते	तानि

शेष विभक्तियों में पुँलिङ्ग तत् शब्द के समान ही इसके भी रूप चलेंगे।

यद् शब्द (सर्वनाम) पुंल्लिङ्ग

प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
प०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययोः	येषु

यद् शब्द (सर्वनाम) स्त्रीलिङ्ग

या	ये	याः
याम्	ये	याः
यया	याभ्याम्	याभिः
यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
यस्याः	ययोः	यासाम्
यस्याम्	ययोः	यासु

यद् शब्द (सर्वनाम) नपुंसकलिङ्ग

प्र०	यत्	ये	यानि
द्वि०	यत्	ये	यानि

शेष विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग यद् शब्द के समान रूप चलेंगे।

एतद् शब्द (सर्वनाम) पुंल्लिङ्ग

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्	एतौ	एतान्
तृ०	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
प०	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

किम् शब्द (सर्वनाम) पुंल्लिङ्ग

कः	कौ	के
कम्	कौ	कान्
केन	काभ्याम्	कैः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
कस्य	कयोः	केषाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु

एतद् शब्द (सर्वनाम) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्	एते	एताः
तृ०	एतया	एताभ्याम्	एताभिः

किम् शब्द (सर्वनाम) स्त्रीलिङ्ग

का	के	काः
काम्	के	काः
कया	काभ्याम्	काभिः

च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष०	एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयोः	एतासु

कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
कस्याः	कयोः	कासाम्
कस्याम्	कयोः	कासु

एतद् शब्द (सर्वनाम) नपुंसकलिङ्ग

प्र०	एतत्	एते	एतानि
द्वि०	एतत्	एते	एतानि

शेष विभक्तियों में पुल्लिङ्ग एतद् शब्द के समान रूप चलेंगे।

किम् शब्द (सर्वनाम) नपुंसकलिङ्ग

किम्	के	कानि
किम्	के	कानि

शेष विभक्तियों में पुल्लिङ्ग किम् शब्द के समान रूप चलेंगे।

तत् शब्द वह, उस, उन इत्यादि अर्थों में आता है। यत् शब्द जो, जिस, जिन आदि अर्थों में आता है। एतत् शब्द यह, इस, इन, आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। किम् शब्द क्या, कौन, किस, किन आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

पहिले बताया जा चुका है कि विशेष्य और विशेषण दोनों के लिङ्ग, विभक्ति और वचन एक समान ही होते हैं। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इसमें त्रुटि न होने पावे। जैसे—'सः बालकौ' यहाँ वचन की अशुद्धि है। 'सः' एकवचन है और 'बालकौ' द्विवचन है। 'तौ बालकौ' होना चाहिये। इसी प्रकार 'सः बालकात्' यहाँ विभक्ति की अशुद्धि है। 'सः' प्रथमा विभक्ति और 'बालकात्' पञ्चमी विभक्ति का रूप है। 'तस्मात् बालकात्' ऐसा होना चाहिये। 'तस्मै बालिकायै' यहाँ लिङ्ग की अशुद्धि है। 'तस्मै' पुंलिङ्ग है और 'बालिकायै' स्त्रीलिङ्ग है। 'तस्यै बालिकायै' ऐसा होना चाहिये।

अब हम उपर्युक्त सर्वनाम शब्दों के प्रयोग के अभ्यास की दृष्टि से कुछ वाक्यों
1 संस्कृत में अनुवाद करवाते हैं—

अभ्यास

१. हिन्दी—विमला ! यह माला तू इस लड़की को क्यों नहीं देती है ?

विमला सम्बोधन। यह सर्वनाम (माला का विशेषण है।) माला कर्म। तू, कर्ता। 'इस' सर्वनाम विशेषण है। लड़की सम्प्रदान। 'क्यों नहीं' अव्यय। 'देती है' क्रिया।

संस्कृत—विमले ! एतां मालां त्वम् एतस्यै बालिकायै कथं न यच्छसि ?

२. हि०—ये लड्डू उषा, स्वप्ना को देगी। ये सर्वनाम विशेषण। लड्डू कर्म। उषा कर्ता। स्वप्ना सम्प्रदान। देगी क्रिया।

सं०—एतानि मोदकानि उषा स्वप्नायै दास्यति।

३. हि०—स्वप्ना तू किस पाठशाला में पढ़ती है ? 'स्वप्ना' सम्बोधन। 'तू' कर्ता। 'किस' सर्वनाम विशेषण। 'पाठशाला' अधिकरण। 'पढ़ती है' क्रिया।

सं०—स्वप्ने ! त्वं कस्यां पाठशालायां पठसि ?

४. हि०—'जिस पाठशाला में मोहन का लड़का पढ़ता है, उसी में जगदीश का लड़का भी पढ़ता है। ('जिस' पाठशाला का सर्वनाम विशेषण। 'पाठशाला' अधिकरण। 'मोहन' सम्बन्ध। 'लड़का' कर्त्ता। 'पढ़ता है' क्रिया। 'उसी में' सर्वनाम **अधिकरण**। 'जगदीश' सम्बन्ध। 'लड़का' कर्त्ता। 'भी' अव्यय। 'पढ़ता है' क्रिया।)

सं०—यस्यां पाठशालायां मोहनस्य तनयः पठति तस्यामेव जगदीशस्य पुत्रः अपि पठति।

५. हि०—'उस कुए से जल ला, जिस कुए का जल मीठा है।' ('उस' सर्वनाम विशेषण। 'कुआ' अपादान। 'जल' कर्म। 'ला' क्रिया। 'जिस' सर्वनाम विशेषण। 'कुआ' सम्बन्ध। 'जल' कर्त्ता। 'मीठा' विशेषण। 'है' क्रिया।)

सं०—तस्मात् कूपात जलम् आनय यस्य कूपस्य मधुरं जलम् अस्ति।

६. हि०—'बन्दर पैरों से चलता है और दो हाथों से वृक्ष से फल तोड़कर खाता है।' ('बन्दर' कर्त्ता। 'पैर' करण। 'चलता है' क्रिया। 'और' अव्यय। 'दो' विशेषण। 'हाथ' करण। 'वृक्ष' अपादान। 'फल' कर्म। 'तोड़कर' क्रिया। 'खाता है' क्रिया।)

सं०—वानरः पादाभ्यां चलति हस्ताभ्यां च वृक्षात् फलानि त्रोटयित्वा खादति (अत्ति)।

७. हि०—'मां ! तूने लड्डू किस पात्र में रख दिये हैं ? जिसमें रक्खे हैं उसमें से जल्दी निकाल, मुझे भूख लग रही है।) 'मां !' सम्बोधन। 'तूने' कर्त्ता। 'लड्डू' कर्म। 'किस' सर्वनाम विशेषण। 'पात्र' अधिकरण। 'रख दिये हैं' क्रिया। 'जिसमें' सर्वनाम। 'रक्खे हैं' क्रिया। 'उसमें से' अपादान। 'जल्दी' अव्यय। 'निकाल' क्रिया। 'मुझे' सर्वनाम कर्म। 'भूख' कर्त्ता। 'लग रही है' क्रिया।

सं०—मातः ! त्वं मोदकानि कस्मिन् पात्रे अस्थापयः ? यस्मिन् अतिष्ठिपः तस्मात् शीघ्रम् निस्सारय, मां क्षुध् बाधते।

८. हि०—'इस मूर्ख मनुष्य के दिल में दया नहीं है।' ('इस' सर्वनाम विशेषण। 'मूर्ख' विशेषण। 'मनुष्य' सम्बन्ध। 'दिल' अधिकरण : 'दया' कर्त्ता। 'नहीं' अव्यय। 'है' क्रिया।

सं०— अस्य मूर्खस्य मनुष्यस्य हृदये दया न अस्ति ।

९. हि०—'इस विद्यालय में जो अध्यापक हैं, उन्हें मैं जानता हूं ।' ('इस' सर्वनाम विशेषण । 'विद्यालय' अधिकरण । 'जो' सर्वनाम विशेषण । 'अध्यापक' कर्त्ता । 'हैं' क्रिया । 'उन्हें' कर्म । 'मैं' कर्त्ता । 'जानता हूं' क्रिया ।)

सं०— अस्मिन् विद्यालये ये अध्यापकाः सन्ति तान् अहं जानामि ।

१०. हि०—'इस पाठशाला का प्रबन्ध कौन करता है ?' ('इस' सर्वनाम विशेषण । 'पाठशाला' सम्बन्ध । 'प्रबन्ध' कर्म । 'कौन' कर्त्ता सर्वनाम । 'करता है' क्रिया ।)

सं०— एतस्याः पाठशालायाः प्रबन्धं कः करोति ?

११. हि०—'इस डण्डे से उस वृक्ष से फल नहीं तोड़ना ।' ('इस' सर्वनाम विशेषण । 'डण्डा' करण । 'उस' सर्वनाम विशेषण । 'वृक्ष' अपादान । 'फल' कर्म । 'नहीं' अव्यय । 'तोड़ना' क्रिया ।

सं० — एतेन दण्डेन तस्मात् वृक्षात् फलानि न त्रोटय ।

१२. हि०—'जिन दांतों से तू भोजन खाता है, उनमें रोग है ।' ('जिन' सर्वनाम विशेषण । 'दांत' करण । 'तू' सर्वनाम कर्त्ता । 'भोजन' कर्म । 'खाता है' क्रिया । 'उनमें' अधिकरण । 'रोग' कर्त्ता । 'है' क्रिया ।

सं०— यैः दन्तैः त्वं भोजनं खादसि तेषु रोगः अस्ति ।

१३. हि०—'यह धोबी अच्छे कपड़े नहीं धोता इसलिये इसे कोई कपड़े नहीं देता है ।' ('यह' सर्वनाम विशेषण । 'धोबी' कर्त्ता । 'अच्छे' विशेषण । 'कपड़े' कर्म । 'नहीं' अव्यय । 'धोता' क्रिया । 'इसलिये' अव्यय । 'इसे' सम्प्रदान अथवा सम्बन्ध । 'कोई' कर्त्ता । 'कपड़े' कर्म । 'नहीं' अव्यय । 'देता' क्रिया ।

सं०—एषः रजकः शोभनानि वस्त्राणि नैव प्रक्षालयति, अतएव एतस्मै (एतस्य वा) कः अपि वस्त्राणि न ददाति ।

१४. हि० 'जो फल तू खाता है, वे मैं नहीं खाता हूं ।' ('जो' सर्वनाम विशेषण । 'फल' कर्म । 'तू' कर्त्ता सर्वनाम । 'खाता है' क्रिया । 'वे' कर्म सर्वनाम । 'मैं' कर्त्ता सर्वनाम । 'नहीं' अव्यय । 'खाता' क्रिया ।)

सं०— यानि फलानि त्वं खादसि (=भक्षयसि) तानि अहं न खादामि ।

१५. हि०—'इनसे मैं कुछ नहीं कहता, ये तो मूर्ख हैं ।' 'इनसे' कर्म सर्वनाम । 'मैं' कर्त्ता । 'कुछ' अव्यय । 'नहीं' अव्यय । 'कहता' क्रिया । 'ये' सर्वनाम । 'तो' अव्यय '। मूर्ख' कर्त्ता । 'हैं' क्रिया ।)

सं०— एतान् अहम् किमपि न कथयामि, एते तु मूर्खाः सन्ति ।

१६. हि० — 'इन्हें समझाओ कि, पाप से दुःख की और धर्म से सुख की वृद्धि होती है ।' ('इन्हें' सर्वनाम कर्म । 'समझाओ' क्रिया । 'कि' अव्यय । 'पाप' करण । 'दुःख' सम्बन्ध । 'और' अव्यय । 'धर्म' करण । 'सुख' सम्बन्ध । 'वृद्धि' कर्त्ता । 'होती है' क्रिया ।

सं०— एतान् बोधयत यत् पापेन दुःखस्य धर्मेण च सुखस्य वृद्धिः भवति ।

१७. हि०—'इन्हें कुछ नहीं देना, नष्ट कर देंगे ।' ('इन्हें' सर्वनाम सम्प्रदान । ['तू' कर्त्ता छिपा हुआ है जो कि क्रिया से जाना जा रहा है] । 'कुछ' अव्यय । 'नहीं' अव्यय । 'देना' क्रिया । 'नष्ट कर देंगे' क्रिया ।)

सं०— एतेभ्यः किमपि न यच्छ, नाशयिष्यन्ति ।

१८. हि०—'जिन में दया होती है, वे सबके प्यारे होते हैं ।' ('जिनमें' सर्वनाम अधिकरण । 'दया' कर्त्ता । 'होती है' क्रिया । 'वे' सर्वनाम कर्त्ता । 'सबके' सम्बन्ध । 'प्यारे' विशेषण (कर्त्ता के) । 'होते हैं' क्रिया ।)

सं०— येषु दया भवति, ते सर्वेषां प्रियाः भवन्ति ।

१६. हि०—'यह ग्रन्थ मैं नहीं पढ़ता ।' ('यह' सर्वनाम विशेषण । 'ग्रन्थ' कर्म । 'मैं' कर्त्ता । 'नहीं' अव्यय । 'पढ़ता' क्रिया ।)

सं०— एतं ग्रन्थम् अहं न पठामि ।

२०. हि०—'इस मूर्ख को मैं यह विद्या कैसे दूं ।' ('इस' सर्वनाम विशेषण । 'मूर्ख' सम्प्रदान । 'मैं' कर्त्ता । 'यह' सर्वनाम विशेषण । 'विद्या' कर्म । 'कैसे' अव्यय 'दूं' क्रिया ।)

सं०— एतस्मै मूर्खाय अहम् एतां विद्यां कथं यच्छानि ?

सर्वनाम वाची शब्दों में तद्, यद्, एतद् और किम् इन चार शब्दों के प्रयोग और रूप सिखा दिये हैं । अब इदम् और अदस् सर्वनाम वाची शब्दों के रूप और प्रयोग सिखाते हैं । ये दोनों शब्द सर्वनाम विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं । इनका अर्थ है 'यह, इस, इन' आदि ।

इदम् शब्द पुंल्लिङ्ग

प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम् (एनम्)	इमौ (एनौ)	इमान् (एनान्)
तृ०	अनेन (एनेन)	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः

ष०	अस्य	अनयोः (एनयोः)	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः (एनयोः)	एषु

इदम् शब्द स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम् (एनाम्)	इमे (एने)	इमाः (एनाः)
तृ०	अनया (एनया)	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
प०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
ष०	अस्याः	अनयोः (एनयोः)	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयोः (एनयोः)	आसु

इदम् शब्द नपुंसकलिङ्ग

प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम् (एनत्)	इमे (एने)	इमानि (एनानि)

शेष विभक्तियों में पुँल्लिङ्ग इदम् शब्द के समान रूप होंगे।

अदस् शब्द पुंल्लिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
प०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

अदस् शब्द स्त्रीलिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमुम्	अमू	अमूः
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
प०	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
ष०	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

अदस् शब्द नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अदः	अमू	अमूनि	आगे पुँलिङ्ग के समान
द्वि०	अदः	अमू	अमूनि	

इदम् और अदस् शब्दों के प्रयोग के विषय में सामान्यतया प्रसिद्ध है कि, इदम् शब्द समीप वाले के लिये और अदस् शब्द दूर वाले के लिये आता है। किन्तु साहित्य में अदस् शब्द का प्रयोग समीप वाले के लिये भी हुआ है। यथा – मुद्राराक्षस नाटक में सूत्रधार कहता है 'अमी नो गृहाः'=ये हमारे घर हैं। यहां गृह शब्द पुँल्लिङ्ग और बहुवचन है।

तिङन्त-प्रकरण

अब आज हम तिङन्त-प्रकरण में लकारार्थ का विषय समझायेंगे। लकार दस होते हैं—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्।
ये दस प्रत्यय हैं। इन दसों में से प्रत्येक के आरम्भ में 'ल्' है इसलिए इनको लकार कहते हैं। आरम्भ के छः लकारों के अन्त में 'ट्' है इसलिए उन्हें टित् लकार कहते हैं और अन्त के चार ङित् लकार कहलाते हैं, क्योंकि उनके अन्त में 'ङ्' है। इनमें ल् और ट् तथा ल् और ङ् के मध्य में जो स्वर हैं उन्हें क्रम से स्मरण कर लो और अन्त में (छः तक) ट् तथा बाद में ङ् लगा लो, दस लकारों के नाम स्मरण हो जायेंगे। स्वर इस क्रम से हैं—अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ; अ, इ, उ, ऋ।

इन दस लकारों में से पांचवां लेट् लकार केवल वेद में प्रयुक्त होता है, लौकिक संस्कृत भाषा में उसका प्रयोग नहीं होता। लेट् लकार पृथक् कर देने पर नौ ही लकार शेष रहने चाहियें। किन्तु लोक में फिर भी दस लकार प्रसिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि लिङ् लकार के दो भेद हैं—एक विध्यादि लिङ् और दूसरा आशीर्लिङ्। इस प्रकार लकार दस के दस ही कहलाते हैं।

लिट् लकार के प्रथम पुरुष के रूपों का ही प्रायः प्रयोग होता है, अतः हम सब धातुओं के लिट् लकार के प्रथम पुरुष के रूप ही देंगे। आशीर्लिङ् का प्रयोग भी अत्यल्प होता है, अतः उसके रूप केवल 'भू' धातु के ही देंगे अन्य धातुओं के नहीं।

संस्कृत में तीन पुरुष होते हैं—प्रथम, मध्यम, और उत्तम। मैं, हम दो और हम सब के लिए उत्तम पुरुष आता है। तू, तुम दो, और तुम सब के लिए मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है। शेष सबके लिए अर्थात् वह, वे दो और वे सब के लिए प्रथम पुरुष का प्रयोग होता है।

संस्कृत में शब्दरूपों के समान क्रिया-रूपों में भी तीन वचन होते हैं—एक. वचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के कहने में एकवचन, दो के कहने में द्विवचन और बहुतों के कहने में बहुवचन होता है।

ऊपर बताया गया था कि ये दस लकार (लट्, लिट् आदि) प्रत्यय हैं। ये धातु से होते हैं। किन्तु कभी भी इनका धातु के साथ व्यवहार में (प्रयोग के समय) उच्चारण या श्रवण नहीं होता। इनके स्थान पर तिप् आदि प्रत्ययों का ही प्रयोग होता है। इन तिप् आदि १८ अठारह प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं।[1] इनमें से आरम्भ के ९ नौ प्रत्ययों का नाम परस्मैपद और अन्त के नौ प्रत्ययों का नाम आत्मनेपद है।[2] जिस धातु से परस्मैपद प्रत्यय होते हैं, उस धातु को परस्मै-

---

१. 'तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-झ-थास्-आथाम्-ध्वम्-इड्-वहि-महिङ्' अष्टा० ३.४.७८

२. 'लः परस्मैपदम्', 'तङानावात्मनेपदम्' अष्टा० १.४.९९.१००

पदी कहते हैं और जिस धातु से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं, उस धातु को आत्मनेपदी कहते हैं। जिस धातु से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं उस धातु को उभयपदी कहते हैं। ऊपर जो तीन पुरुष और तीन वचन बताये गये थे वे वास्तव में इन प्रत्ययों के ही नाम हैं। क्रमशः तीन-तीन के समुदाय की प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष संज्ञा (नाम) है।[1] क्रमशः एक-एक की एकवचन, द्विवचन, और बहुवचन संज्ञा है।[2] अब हम इन अठारह प्रत्ययों की तालिका देते हैं जिससे समझने में सुविधा हो।

परस्मैपद प्रत्यय

पुरुषनाम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरुष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद प्रत्यय

प्रथम०	त	आताम्	झ
मध्यम०	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम०	इट्	वहि	महिङ्

इस प्रकार यह थोड़ा-सा लकारार्थ विषय में पुरुष वचन आदि के सम्बन्ध में बताया गया है। लकारों का अर्थ (=किस किस काल में अथवा अर्थ में इनका प्रयोग होता है) भू धातु के रूपों के साथ बतायेंगे।

ये लकार (=लट्, लिट् आदि) प्रत्यय कर्त्ता, कर्म और भाव इन तीनों में होते हैं। सकर्मक धातुओं से कर्त्ता और कर्म में तथा अकर्मक धातुओं से कर्त्ता और भाव में।[3] अभी हम केवल लकारों का कर्त्ता का विषय अर्थात् कर्तृवाच्य समझायेंगे। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के सम्बन्ध में बाद में बताया जायेगा।

पाणिनि ने धातुओं को दस वर्गों में विभाजित किया है। ये वर्ग गण कहलाते हैं। धातुओं के दस गण ये हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि। एक ग्यारहवां गण भी है जिसे कण्ड्वादि गण कहते हैं। इस गण में पठित शब्द धातु भी कहलाते हैं और प्रातिपदिक भी। इन गणों

---

१. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः। अष्टा० १.४.१०१

२. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः। अष्टा० १.४.१०२

३. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः। अष्टा० ३.४.६९

के नाम, उस उस गण के आरम्भ में पढ़ी गई धातु के आधार पर पड़े हैं। जिस गण के आदि में भू धातु है उसे भ्वादि कहते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र।

धातुओं के अन्य भी दो विभाग हैं—सेट् और अनिट्। जिन धातुओं से आर्धधातुक प्रत्ययों में अर्थात् तव्यत्, तुमुन्, तास्, स्य आदि प्रत्ययों में इट् आगम होता है,[1] उसे सेट् धातु कहते हैं और जिन धातुओं से इन प्रत्ययों में इट् नहीं होता उन धातुओं को अनिट् कहते हैं। सरल भाषा में यों समझना चाहिये कि जिस धातु के रूपों में लिट्, लुट्, लृट्, लृङ् और लुङ् में तथा तुमुन् आदि में मध्य में इ दिखाई दे वह सेट् धातु है। जैसे—पेठिथ, पठितासि, पठिष्यति, अपठिष्यत्, अपाठिष्टाम्, पठितुम् आदि में इ है अतः पठ् धातु सेट् है। तथा—पपक्थ, पक्तासि, पक्ष्यति, अपक्ष्यत्, अपाक्ताम्, पक्तुम् आदि में इ नहीं है अतः पच् (=डुपचष्) धातु अनिट् है। धातुपाठ में अधिक धातुएँ सेट् ही हैं। अनिट् धातुएँ कम हैं। तुम सब छात्रों के लाभ के लिए सभी अनिट् धातुओं को यहां बता देते हैं।

सभी स्वरान्त (=अजन्त) धातुएँ प्रायः अनिट् होती हैं—जैसे स्ना, पा, जि, पी, श्रु, कृ, हृ, म्लै, श्यो, छो, सो, आदि। किन्तु स्वरान्त धातुओं में से ये धातुएँ सेट् हैं—कथ, यध, आदि सभी ह्रस्व अकारान्त धातुएँ। कॄ, गॄ आदि समस्त दीर्घ ॠकारान्त धातुएं; ह्रस्व ऋकारान्त धातुओं में से वृङ् और वृञ्। इकारान्त धातुओं में से श्वि, डीङ्, शीङ्, श्रिञ्। धूञ् लूञ्, आदि समस्त दीर्घ ऊकारान्त धातुएँ। ह्रस्व उकारान्त धातुओं में से रु, स्नु, क्षु, ऊर्णुञ्, यु, णु, क्ष्णु। अर्थात् इन 'कथ' से लेकर 'क्ष्णु' तक की धातुओं को छोड़कर शेष सभी स्वरान्त धातुएँ अनिट् हैं।

कवर्गान्त धातुओं में से केवल शक धातु (शक मर्षणे [दि०] तथा शक्लृ शक्तौ [स्वा०]) अनिट् है, शेष सब सेट्।

सकारान्त धातुओं में से घस् तथा वस् (निवासे) ये दो धातु अनिट् हैं, शेष सब सेट्।

भकारान्त धातुओं में से रभ्, यभ्, और लभ् धातु ही अनिट् हैं, शेष सब सेट्।

मकारान्त धातुओं में से यम्, रम्, नम् और गम् धातुएँ अनिट् हैं, शेष सब सेट्। नकारान्त धातुओं में से हन् और मन् (ज्ञाने) धातु अनिट् हैं, शेष सब सेट्।

चवर्गान्त धातुओं में से पच्, वच्, विच्, रिच्, रञ्ज्, प्रछ्, निज्, सिच्, मुच्, भज्, भञ्ज्, भ्रस्ज्, त्यज्, यज्, युज्, सज्, मस्ज्, भुज्, स्वज्, सृज् और मृज् से धातुएँ अनिट् हैं, शेष सब सेट् हैं।

---

१. आर्धधातुकस्येड् वलादेः (अष्टा० ७. २. ३५)

दकारान्तों में से अद्, हृद्, स्कन्द्, भिद्, छिद्, क्षुद, शद्, सद्, स्विद्, पद्, खिद्, तुद्, नुद्, विद् (सत्तायाम्), विद् (विचारणे) अनिट् हैं, शेष सब सेट् हैं।

धकारान्त धातुओं में से रुध्, राध्, युध्, बन्ध्, साध्, क्रुध्, क्षुध्, शुध्, बुध् (अवगमने [दि०]) और सिध् (संराद्धौ) ये धातुएँ अनिट् हैं, शेष सब सेट् हैं।

पकारान्त धातुओं में से तप्, तिप्, आप्, वप्, स्वप्, लिप्, लुप् तृप्, दृप्, सृप्, शप्, छुप्, क्षिप्. ये धातुएँ अनिट् हैं, शेष सेट् हैं।

शकारान्त धातुओं में से दिश्, दृश्, दंश्, मृश्, स्पृश्, रिश्, रुश्, क्रुश्, विश्, और लिश् धातु अनिट् हैं, शेष सब सेट् हैं।

षकारान्तों में से शिष्, पिष्, शुष्, पुष्, त्विष्, विष्, श्लिष्, तुष्, द्विष् और कृष्, अनिट् हैं, शेष सब सेट् हैं।

हकारान्तों में से दिह्, दुह्, मिह्, रुह्, वह्, नह्, दह्, और लिह् ये धातुएँ अनिट् हैं, शेष सब सेट् हैं।

उपर्युक्त अनिट्-सेट् के विषय को सदा स्मरण रखने के लिए तुम लोग आचार्य व्याघ्रभूति नाम के प्राचीन वैयाकरण द्वारा रचित इन कारिकाओं को स्मरण कर लो। इनका क्रम काशिका के अनुसार है—

अनिट् स्वरान्तो भवतीति दृश्यताम्, इमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः।
अदन्तमृदन्तमृतां च वृङ्वृञौ, श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि ॥१॥
गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ, क्षुवन्तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णुवः।
इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥२॥
शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते, घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी।
रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे ॥३॥
यमिर्नमन्तेष्वनिडेक इष्यते, रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः।
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो' गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ॥४॥
दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः।
इमेऽनिटोऽष्टाविह मुक्तसंशया, गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्त्तिताः ॥५॥
दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं, रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम्।
लिशिं च शान्ताननिटः पुराणगाः, पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ॥६॥
रुधिः सराधिर्युधिबन्धिसाधयः, क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः।
इमे तु धान्ता दश ये ऽनिटो मतास्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे ॥७॥
शिषिं पिषिं शुष्यतिपुष्यती त्विषिं, विषिं श्लिषिं तुष्यतिदुष्यती द्विषिम्।
इमान् दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ, गणेषु षान्तान् कृषिकर्षती तथा ॥८॥

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं, लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम् ।
स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं, प्रतीहि पान्तान् पठितांस्त्रयोदश ॥९॥
अदिं हृदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन्, शदिं सदिं स्विद्यतिपद्यती खिदिम् ।
तुदिं नुदिं विद्यतिविन्त इत्यपि, प्रतीहि दान्तान् दश पञ्च चानिटः ॥१०॥
पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन्, निजिं सिचिं मुचिभजिभञ्जिभृज्जतीन् ।
त्यजिं यजिं युजिरुचिसञ्जिमज्जतीन्, भुजिं स्वजिं सृजिमृजी विद्ध्यनिट्स्वरान् ॥११॥

कुछ सेट् धातुएँ भी ऐसी हैं जिनसे त्वा (=क्त्वा) आदि कुछ विशिष्ट प्रत्ययों में इ (=इट्) नहीं होता । यथा—श्रि, यु, लू, भू, वृ आदि ।[1] इनके श्रित्वा, युत्वा, लूत्वा, भूत्वा, और वृत्वा आदि रूप बनेंगे । कुछ अनिट् धातुएँ भी ऐसी हैं जिनसे स्य आदि प्रत्ययों में इट् हो जाता है. जैसे कृ, हन् आदि ।[2] इनके करिष्यति, हनिष्यति आदि रूप बनेंगे ।

अब भ्वादिगणीय धातुओं में से कुछ मुख्य-मुख्य धातुओं के रूपों का अभ्यास करवाते हैं ।

१. भू (सत्तायाम्) सत्ता=अस्तित्व=होना (परस्मैपदी)

लट् लकार—लट् लकार वर्तमान काल में होता है ।[3] क्रिया के आरम्भ से लेकर क्रिया की समाप्ति-पर्यन्त के काल को वर्त्तमान काल कहते हैं । यदि लट् लकार के रूप के साथ 'स्म' अव्यय और लगा दिया जाय तो लट् का प्रयोग भूतकाल में भी होता है ।[4]

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम०	भवति (=वह होता है)	भवतः (=वे दो होते हैं)	भवन्ति (=वे सब होते हैं)
मध्यम०	भवसि (=तू होता है)	भवथः (=तुम दो होते हो)	भवथ (=तुम सब होते हो)
उत्तम०	भवामि (=मैं होता हूं)	भवावः (=हम दो होते हैं)	भवामः (=हम सब होते हैं)

१. श्र्युकः किति (अष्टा० ७.२.११)
२. ऋद्धनोः स्ये (अष्टा० ७.२.७०)
३. वर्त्तमाने लट् (अष्टा० ३.२.१२३)
४. लट् स्मे (अष्टा० ३.२.११८)

लिट् लकार

लिट् का प्रयोग परोक्ष अनद्यतन भूतकाल में होता है।[1] ऐसा भूतकाल जो प्रयोग करने वाले की आंखों के सामने का विषय न हो तथा जो आज का न हो। प्रायः पुराने समय के वर्णन करने में इसका प्रयोग अधिक होता है। जैसे—अयोध्या में राम रहता था = अयोध्यायां रामः उवास।

प्र० बभूव (=वह हुआ था) बभूवतुः (=वे दो हुए थे) बभूवुः (=वे सब हुए थे)
म० बभूविथ (तू हुआ था) बभूवथुः (तुम दो हुए थे) बभूव (तुम सब हुए थे)
उ० बभूव (मैं हुआ था) बभूविव (हम दो हुए थे) बभूविम (हम सब हुए थे)

लुट् लकार

लुट् का प्रयोग अनद्यतन भविष्यत् काल के विषय में होता है।[2] अर्थात् ऐसे भविष्यत् काल में जो आज का न हो, जैसे कल होगा, परसों होगा। आज होने वाले कार्य में उसका प्रयोग नहीं होता।

प्र० भविता (वह होगा) भवितारौ (वे दो होंगे) भवितारः (वे सब होंगे)
म० भवितासि (तू होगा) भवितास्थः (तुम दो होओगे) भवितास्थ (तुम सब होओगे)
उ० भवितास्मि (मैं होऊंगा) भवितास्वः (हम दो होएंगे) भवितास्मः (हम सब होएंगे)

लृट् लकार

सामान्य भविष्यत् काल के विषय में लृट् का प्रयोग होता है।[3] जब बिना किसी विशेषण के भविष्यत् काल का कार्य हो अर्थात् दो मिनट के बाद का हो चाहे वर्ष के बाद का, किन्तु उसके साथ 'कल' 'परसों' अथवा इस प्रकार का अन्य कोई विशेषण न हो तो सर्वत्र लृट् का प्रयोग होता है। 'आज होगा' इस विषय में भी लृट् होता है।

प्र० भविष्यति (वह होगा) भविष्यतः (वे दो होंगे) भविष्यन्ति (वे सब होंगे)
म० भविष्यसि (तू होगा) भविष्यथः (तुम दो होओगे) भविष्यथ (तुम सब होओगे)
उ० भविष्यामि (मैं होऊँगा) भविष्यावः (हम दो होंगे) भविष्यामः (हम सब होंगे)

लोट् लकार

लोट् का प्रयोग आज्ञा देना, अनुमति लेना, प्रशंसा करना, प्रार्थना करना,

१. परोक्षे लिट्। अष्टा.३.२.११५
२. अनद्यतने लुट्। अष्टा-३.३.१५
३. लृट् शेषे च। अष्टा।३.३.१३

निमन्त्रण देना आदि अर्थों में होता है ।[१] आशीर्वाद अर्थ में भी इसका प्रयोग देखा जाता है ।[२]

प्र०	भवतु (वह होवे) भवतात् (”)	भवताम् (वे दो होवें)	भवन्तु (वे सब होवें)
म०	भव (तू हो) भवतात् (”)	भवतम् (तुम दो होओ)	भवत (तुम सब होओ)
उ०	भवानि (मैं होऊँ)	भवाव (हम दो होवें)	भवाम (हम सब होवें)

लोट् लकार के प्रथम व मध्यम पुरुप के एकवचन में एक पक्ष में 'तात्' वाला रूप भी बनता है। इसका प्रयोग केवल आशीर्वाद देने के अर्थ में ही होता है अन्यत्र नहीं ।[३]

लङ् लकार

लङ् लकार अनद्यतन भूतकाल के विषय में प्रयुक्त होता है। ऐसा भूतकाल जो आज से पहिले का हो उसमें इसका प्रयोग होता है, जैसे 'वह कल हुआ था,' गत वर्ष हुआ था' आदि। जहाँ आज के भूतकाल के कार्य की चर्चा हो वहां लङ् लकार नहीं होगा।

प्र०	अभवत् (वह हुआ था)	अभवताम् (वे दो हुए थे)	अभवन् (वे सब हुए थे)
म०	अभवः (तू हुआ था)	अभवतम् (तुम दो हुए थे)	अभवत (तुम सब हुए थे)
उ०	अभवम् (मैं हुआ था)	अभवाव (हम दो हुए थे)	अभवाम (हम सब हुए थे)

सभी ङित् लकारों में (=लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् इनमें) उत्तम पुरुष के वस् मस् के स् का लोप हो जाता है ।[४] लोट् लकार में भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।[५]

विधिलिङ् लकार

विध्यादि लिङ् लकार उन सभी अर्थों में (आशीर्वाद अर्थ को छोड़कर) होता है जो लोट् लकार के प्रसङ्ग में बताये थे[६]। किन्तु विधि और निषेध में इसका विशेष

१. लोट् च। अष्टा.३.३.१६२.

२. आशिषि लिङ्लोटौ। अष्टा.३.३.१७३.

३. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्। अष्टा.७.१.३५.

४. नित्यं ङितः। अष्टा.३.४.९९.

५. लोटो लङ्वत्। अष्टा.३.४.८५.

६. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। अष्टा.३.३.१६१.

रूप से प्रयोग होता है। जैसे— 'स्वर्गकामः यजेत'=स्वर्गप्राप्ति की इच्छा वाला यज्ञ करे।

'न सुरां पिबेत्'= शराब नहीं पीनी चाहिए अथवा शराब न पीवे। सम्भावना और सामर्थ्य अर्थ में भी इस लिङ् लकार का प्रयोग होता है; जैसे—'अपि कटाहपाकं भुञ्जीत'=वह तो पूरी कड़ाही का पाक ही खा जाये ऐसा सम्भव है।[1] मन्ये अद्य वर्षः भवेत्[2]=सम्भव है आज वर्षा हो जाय। 'भवान् खलु महाभारं वहेत्'=आप इस बड़े भार को ढो सकते हैं।[3] योग्यता अर्थ में भी लिङ् लकार प्रयुक्त होता है[4], जैसे—'भवान् पारितोषिकं लभेत'=आप इनाम प्राप्त करने के योग्य हैं।

प्र०	भवेत् (वह होवे)	भवेताम् (वे दो होवें)	भवेयुः (वे सब होवें)
म०	भवेः (तू हो)	भवेतम् (तुम दो होओ)	भवेत (तुम सब होओ)
उ०	भवेयम् (मैं होऊँ)	भवेव (हम दो होवें)	भवेम (हम सब होवें)

आशीर्लिङ् लकार

यह लिङ् लकार केवल आशीर्वाद देने के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।[5] जैसे—'सः वर्चस्वी भूयात्'=वह वर्चस्वी होवे ऐसी हमारी कामना है। 'त्वं विद्वान् भूयाः'=तुम विद्वान् बनो ऐसी हमारी अभिलाषा है।

प्र०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उ०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

लुङ् लकार

लुङ् का प्रयोग सामान्य भूतकाल में होता है।[6] अर्थात् जब भूतकाल के साथ 'कल' 'परसों' आदि विशेषण न हों और प्रयोक्ता के अपने अनुभव का विषय हो चाहे किसी अन्य के अनुभव का तथा अभी बीते हुए का वर्णन हो चाहे पहिले बीते हुए का सर्वत्र भूतकाल में लुङ् लकार का प्रयोग होता है। 'आज हुआ' 'आज पढ़ा' आदि आज के भूतकाल में भी लुङ् लकार ही प्रयुक्त होता है, लङ् नहीं।

---

१. 'सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे। अष्टा.३.३.१५४.

२. वृष्टि का वाचक वर्ष शब्द एकवचन में आता है, जैसे 'वर्षाय कपिला विद्युत्'। ऋतुपरक वर्षा शब्द स्त्रीलिङ्ग है और बहुवचनान्त भी—'वर्षासु दधि न भुञ्जीत'

३. शकि लिङ् च। अष्टा.३.३.१७२.

४. अर्हे कृत्यतृचश्च। अष्टा.३.३.१६९.

५. आशिषि लिङ्लोटौ। अष्टा.३.३.१७३.

६. लुङ्। अष्टा.३.२.११०.

प्र०	अभूत् (वह हुआ)	अभूताम् (वे दो हुए)	अभूवन् (वे सब हुए)
म०	अभूः (तू हुआ)	अभूतम् (तुम दो हुए)	अभूत (तुम सब हुए)
उ०	अभूवम् (मैं हुआ)	अभूव (हम दो हुए)	अभूम (हम सब हुए)

लुङ् लकार के रूप के साथ 'माङ्' अव्यय (=मा शब्द) लगा देने से यह लकार निषेध अर्थ वाला हो जाता है। अर्थात् निषेध करने के अर्थ में 'माङ्' का प्रयोग करने की स्थिति में लुङ् होता है।[1] तब इसका भूतकाल अर्थ नहीं रहता। 'मा' (=माङ्) साथ लग जाने पर रूप से पहिले लगने वाले अ तथा आ (अट्, आट्) नहीं लगते।[2] जैसे 'खिन्नः मा भूः'=दुःखी मत होओ। निषेध अर्थ में लङ् लकार का भी प्रयोग होता है, यदि उसके साथ 'मा स्म' ये दो अव्यय लगाये जायँ। जैसे—'खिन्नः मा स्म भवः'=दुःखी मत होओ।

भूतकाल में प्रयुक्त होने वाले लकारों के विषय में यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि 'आज' 'कल' आदि की कोई शर्त्त न हो तो लिट्, लङ्, लुङ् इन तीनों में से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है।

लृङ् लकार

हेतु (=कारण) और हेतुमान् (=फल) के विवेचन के सम्बन्ध में जब किसी क्रिया की असिद्धि हो गई हो अर्थात् क्रिया न हो सकी हो तो ऐसे भूतकाल में लृङ् लकार का प्रयोग होता है[3], जैसे—'यदि त्वं विद्वान् अभविष्यः तर्हि सुखं प्राप्स्यः'=यदि तू विद्वान् बनता तो सुख पाता। इस प्रकार के भविष्यत्काल में भी इसका प्रयोग माना गया है। सरल रूप से यहाँ यह कहा जा सकता है कि जहाँ कोई शर्त्त लगी हुई हो और किसी क्रिया का न होना वक्तव्य हो वहाँ लृङ् लकार होता है।

प्र०	अभविष्यत् (यदि वह होता)	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म०	अभविष्यः (यदि तू होता)	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ०	अभविष्यम् (यदि मैं होता)	अभविष्याव	अभविष्याम

अभ्यास

१. जब मैं यहाँ आता हूं तो वह धूर्त्त भी यहीं होता है।
यदा अहम् अत्र आगच्छामि तदा सः धूर्त्तः अपि अत्रैव भवति।
२. तू विद्यालय में नहीं होता है= त्वं विद्यालये न भवसि।
३. अयोध्या में कौन राजा था ?= अयोध्यायां कः राजा बभूव ?
४. दशरथ के चार पुत्र थे= दशरथस्य चत्वारः पुत्राः बभूवुः।

---

१. माङि लुङ्। अष्टा.३.३.१७५. २. न माङ्योगे। अष्टा.६.४.७४.
३. लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ; भूते च। अष्टा० ३.३.१३९; १४०.

५. हम सब कल उस घर में नहीं होंगे।
वयं श्वः तस्मिन् गृहे न भवितास्मः।

६. क्या वे सब आज सायङ्काल विद्यालय में होंगे ?
किम् ते अद्य सायं विद्यालये भविष्यन्ति ?

७. तेरा संसार में यश हो= तव लोके कीर्त्तिः भवतात् (भवतु)।

८. तू सफल हो= त्वं सफलः भव (भवतात्)।

९. मैं कहाँ होऊँ ?= अहम् कुत्र भवानि ?

१०. तू कल कहाँ था ?= त्वं ह्यः कुत्र अभवः ?

११. इस समय तुमको यहाँ होना चाहिये।
एतस्मिन् समये त्वम् अत्र भवेः।

१२. तू आयुष्मान् हो= त्वम् आयुष्मान् भूयाः।

१३. मैं आज यहाँ नहीं था= अहम् अद्य अत्र न अभूवम्।

१४. तू यदि यहाँ होता, तो मैं तुझे पढ़ाता।
त्वं यदि अत्र अभविष्यः तर्हि अहं त्वाम् अपाठयिष्यम्।

१५. मूर्खों के आगे मत हो= मूर्खाणाम् अग्रे मा भूः (मा स्म भवः)।

१६. तुमको अपने घर में होना चाहिये= त्वं स्वस्मिन् गृहे भवेः।

१७. जब मैं यहाँ आऊँ, इन सबको यहीं होना चाहिये।
यदा अहम् अत्र आगच्छेयं, तदा इमे (अमी) अत्रैव भवेयुः।

१८. श्लोक :— न ते धर्मेऽधिकारोऽस्ति, मा भूरात्मप्रशंसकः।
पिबन्त्येवोदकं गावः, मण्डूकेषु रुवत्स्वपि॥

तेरा धर्म में अधिकार नहीं, अपनी प्रशंसा मत कर
मेंढकों के टर्राते रहने पर भी गायें पानी पीती ही हैं।

(२) गम् (गम्लृ) गतौ [गति=जाना] परस्मैपदी

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में गम् के म् के स्थान पर छ् आदेश हो जाता है[1]। ग और छ् के मध्य में (त्) च् भी आ जाता है।[2] अर्थात् गम् के स्थान पर उपर्युक्त चार लकारों में गच्छ् का प्रयोग होता है।

लट् (वर्तमान काल)

प्र०	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म०	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ०	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

१. इषुगमियमां छः। अष्टा.७.३.७७

२. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। अष्टा.६.१.७१॥ स्तोः श्चुना श्चुः। अष्टा.८.४.४०

लिट् (परोक्ष अनद्यतन भूतकाल)

प्रथम०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः

लुट् (अनद्यतन भविष्यत् काल)

प्र०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
म०	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
उ०	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

लृट् (सामान्य भविष्यत् काल)

प्र०	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म०	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उ०	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

लोट् (आज्ञा तथा आशीर्वाद आदि)

प्र०	गच्छतु (गच्छतात्)	गच्छताम्	गच्छन्तु
म०	गच्छ (गच्छतात्)	गच्छतम्	गच्छत
उ०	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लङ् (अनद्यतन भूतकाल)

प्र०	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
म०	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उ०	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

विधिलिङ् (विधि, सम्भावना आदि)

प्र०	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
म०	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उ०	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लुङ् (सामान्य भूतकाल)

प्र०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म०	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

लृङ् (कारण-निर्देश-पूर्वक क्रिया की असिद्धि बताना)

प्र०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
म०	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उ०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

अभ्यास

१. तुम दोनों कहाँ जाते हो ?= युवां कुत्र गच्छथ: ?
२. विश्वामित्र राजा दशरथ के पास गया।
विश्वामित्र: राज्ञ: दशरथस्य समीपे जगाम।
३. मैं कल मथुरा जाऊँगा= अहं श्व: मथुरां गन्तास्मि।
४. आज तू कहाँ जायेगा ?=अद्य त्वं कुत्र गमिष्यसि ?
५. लड़को ! तुम सब जाओ=बालका: ! यूयं गच्छत।
६. तू कल कहाँ गया था ?=त्वं ह्य: कुत्र अगच्छ: ?
७. तुम सबको वहाँ जाना चाहिये=यूयं तत्र गच्छेत।
८. आज मैं विद्यालय नहीं गया=अद्य अहं विद्यालयं न अगमम्।
९. यदि तू यहाँ आता तो मेरे साथ भोजन करता।
यदि त्वम् अत्र आगमिष्य: तर्हि मया सह भोजनम् अकरिष्य:।
१०. तू घर मत जा= त्वं गृहं मा गम: (मा स्म गच्छ:)

(३) स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ=ठहरना (परस्मै०)

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में स्था के स्थान पर तिष्ठ् का प्रयोग होता है।[1]

लट् (वर्त्तमानकाल)

प्र०	तिष्ठति	तिष्ठत:	तिष्ठन्ति
म०	तिष्ठसि	तिष्ठथ:	तिष्ठथ
उ०	तिष्ठामि	तिष्ठाव:	तिष्ठाम:

लिट् (परोक्ष अनद्यतन भूतकाल)

प्रथम०	तस्थौ	तस्थतु:	तस्थु:

लुट् (अनद्यतन भविष्यत् काल)

प्र०	स्थाता	स्थातारौ	स्थातार:
म०	स्थातासि	स्थातास्थ:	स्थातास्थ
उ०	स्थातास्मि	स्थातास्व:	स्थातास्म:

लृट् (सामान्य भविष्यत् काल)

प्र०	स्थास्यति	स्थास्यत:	स्थास्यन्ति
म०	स्थास्यसि	स्थास्यथ:	स्थास्यथ
उ०	स्थास्यामि	स्थास्याव:	स्थास्याम:

---

१. 'पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां
पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा:। अष्टा.७.३.७८..

लोट् (आज्ञा, आशीर्वाद आदि)

प्र०	तिष्ठतु (तिष्ठतात्)	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
म०	तिष्ठ (तिष्ठतात्)	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उ०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ् (अनद्यतन भूतकाल)

प्रथम०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
मध्यम०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उत्तम०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ् (विधि, सम्भावना आदि)

प्रथम०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
मध्यम०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उत्तम०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

लुङ् (सामान्य भूतकाल)

प्रथम०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
मध्यम०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
उत्तम०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

लृङ् (कारण-निर्देश-पूर्वक क्रिया की असिद्धि बताना)

प्रथम०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
मध्यम०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उत्तम०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

अभ्यास

१. तू कहाँ ठहरता है ?=त्वं कुत्र तिष्ठसि ?

२. सीता, राम और लक्ष्मण अगस्त्य मुनि के आश्रम में ठहरे थे।
सीतारामलक्ष्मणाः मुनेः अगस्त्यस्य आश्रमे तस्थुः।

३. कल हम तेरे घर ठहरेंगे=श्वः वयं तव गृहे स्थातास्मः।

४. आज मैं अपने मित्र के घर ठहरूँगा।
अद्य अहम् स्वस्य मित्रस्य गृहे स्थास्यामि।

५. तुम दोनों यहीं ठहरो=युवाम् अत्रैव तिष्ठतम्।

६. कल वे मेरे पास नहीं ठहरे=ह्यः ते मम समीपे न अतिष्ठन्।

७. आप सबको यहीं ठहरना चाहिये=भवन्तः अत्रैव तिष्ठेयुः (तिष्ठन्तु)

८. वे उस दुष्ट के घर मत ठहरें=ते तस्य खलस्य गृहे मा स्थुः (मा स्म तिष्ठन्)

९. आज सुबह तू कहाँ ठहरा था ?=अद्य प्रातः त्वं कुत्र अस्थाः ?

२०. यदि तू यहाँ ठहरता तो मच्छर पीड़ा देते।
यदि त्वम् अत्र अस्थास्यः तर्हि मशकाः त्वाम् अपीडयिष्यन् (अदङ्क्ष्यन्

(४) पा (पाने) = पीना (परस्मै०)

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में पा के स्थान पर पिब आदेश होता है।[1]

लट्

पिबति	पिबतः	पिबन्ति
पिबसि	पिबथः	पिबथ
पिबामि	पिबावः	पिबामः

लिट्

पपौ	पपतुः	पपुः

लुट्

पाता	पातारौ	पातारः
पातासि	पातास्थः	पातास्थ
पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

लृट्

पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

लोट्

पिबतु (पिबतात्)	पिबताम्	पिबन्तु
पिब (पिबतात्)	पिबतम्	पिबत
पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ्

अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम

विधिलिङ्

पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

लुङ्

अपात्	अपाताम्	अपुः
अपाः	अपातम्	अपात
अपाम्	अपाव	अपाम

लृङ्

अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

अभ्यास

१. तू दूध क्यों नहीं पीता ?=त्वं दुग्धं किमर्थं न पिबसि ?
२. यजमान ने यज्ञ के अन्त में सोम पी लिया।
यजमानः यज्ञस्य अन्ते सोमं पपौ।
३. मैं कल तुम्हारे घर दूध पीऊँगा=अहं श्वः तव गृहे दुग्धं पातास्मि।
४. आज सब दूध मैंने पी लिया तू क्या पीयेगा ?
अद्य सकलं क्षीरम् अहम् अपां त्वं किं पास्यसि ?
५. आप सब यहीं दूध पीएँ=भवन्तः अत्रैव पयः पिबन्तु (पिबेयुः)।

---

१. पाघ्राध्मा......पिबजिघ्रधम......सीदाः ॥ अष्टा.७.३.७८.

६. कल उसने मेरे घर पानी भी नहीं पिया।
ह्यः सः मम सदने जलम् अपि न अपिबत्।
७. वे सब खेलकर जल मत पीवें=ते क्रीडित्वा उदकं मा पुः (मा स्म पिबन्)
८. इन सबको खाने से पहिले पानी पी लेना चाहिये।
एते भोजनात् प्राक् जलं पिबेयुः।
९. यदि तू दूध पीता तो मोटा हो जाता।
यदि त्वं क्षीरम् अपास्यः तर्हि स्थूलः अभविष्यः।

(५) दृश् (दृशिर्) प्रेक्षणे (=देखना) परस्मै०

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में दृश् के स्थान पर पश्य आदेश हो जाता है।[1]

	लट्	
पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
	लिट्	
ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
	लुट्	
द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः
	लृट्	
द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः
	लोट्	
पश्यतु (पश्यतात्)	पश्यताम्	पश्यन्तु
पश्य (पश्यतात्)	पश्यतम्	पश्यत
पश्यानि	पश्याव	पश्याम

	लङ्	
अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम
	विधिलिङ्	
पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
पश्येयम्	पश्येव	पश्येम
	लुङ्[2]	
(१) अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम
(२) अद्राक्षीत्	अद्राष्टाम्	अद्राक्षुः
अद्राक्षीः	अद्राष्टम्	अद्राष्ट
अद्राक्षम्	अद्राक्ष्व	अद्राक्ष्म
	लृङ्	
अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

---

१. पाघ्राध्मास्था......दृशर्ति......पश्यर्छ......। अष्टा.७.३.७८.

२. 'इरितो वा'। अष्टा.३.१.५७. से, दृश् धातु के लुङ् में च्लि के स्थान पर एक पक्ष में अङ् आदेश होगा। अङ् होने पर 'अदर्शत्' आदि और सिच् होने पर 'अद्राक्षीत्' आदि रूप बनेंगे।

अभ्यास

१. तू इधर उधर क्या देखता है ? = त्वम् इतस्ततः किं पश्यसि ?
२. राम ने लक्ष्मण को कुटिया में देखा = रामः लक्ष्मणं कुटीरे ददर्श ।
३. मैं कल प्रातःकाल बीमार देखूंगा = अहं श्वः प्रातःकाले रुग्णं द्रष्टास्मि ।
४. क्या आज तू नुमाइश नहीं देखेगा ? = किम् अद्य त्वं प्रदर्शनीं न द्रक्ष्यसि ?
५. कल उसने मुझे यहाँ नहीं देखा = ह्यः सः माम् अत्र न अपश्यत् ।
६. आप सब इधर देखें = भवन्तः इतः पश्यन्तु (पश्येयुः)
७. यह योगीराज तो आत्मतत्त्व को भी देख ले ।
अयं योगिराट् तु आत्मतत्त्वम् अपि पश्येत् ।
८. इधर मत देख = इतः मा दर्शः (मा द्राक्षीः, मा स्म पश्यः) ।
९. आज मैंने उसे बाग में देखा था = अद्य अहं तम् उद्याने अदर्शम् (अद्राक्षम्)
१०. यदि तू उसे देखता तो आश्चर्य करता ।
यदि त्वं तम् अद्रक्ष्यः तर्हि आश्चर्यम् अकरिष्यः ।

(६) दाण् (दा) दाने (देना) परस्मै०

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में दा (दाण्) के स्थान पर यच्छ् आदेश होता है ।[1]

लट्

यच्छति	यच्छतः	यच्छन्ति
यच्छसि	यच्छथः	यच्छथ
यच्छामि	यच्छावः	यच्छामः

लिट्

ददौ	ददतुः	ददुः

लुट्

दाता	दातारौ	दातारः
दातासि	दातास्थः	दातास्थ
दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

लृट्

दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

लोट्

यच्छतु (यच्छतात्)	यच्छताम्	यच्छन्तु
यच्छ (यच्छतात्)	यच्छतम्	यच्छत
यच्छानि	यच्छाव	यच्छाम

लङ्

अयच्छत्	अयच्छताम्	अयच्छन्
अयच्छः	अयच्छतम्	अयच्छत
अयच्छम्	अयच्छाव	अयच्छाम

विधिलिङ्

यच्छेत्	यच्छेताम्	यच्छेयुः
यच्छेः	यच्छेतम्	यच्छेत
यच्छेयम्	यच्छेव	यच्छेम

---

१. पाघ्राध्मा···दाण्···यच्छ···सीदाः । अष्टा.७.३.७८.

लुङ्			लृङ्		
अदात्	अदाताम्	अदुः	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
अदाः	अदातम्	अदात	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
अदाम्	अदाव	अदाम	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

अभ्यास

१. तू इसको अपनी पुस्तक क्यों नहीं देता ?
त्वं अस्मै (अमुष्मै) स्वं पुस्तकं कथं न यच्छसि ?

२. राम ने विभीषण को राज्य दिया = रामः विभीषणाय राज्यं ददौ।

३. क्या तू कल अपनी पुस्तक जगदीश को देगा ?
किं त्वं श्वः स्वं पुस्तकं जगदीशाय दातासि ?

४. आज रमेश राकेश को कुछ रुपये देगा।
अद्य रमेशः राकेशाय कानिचिद् रूप्यकाणि दास्यति।

५. मैं इस दुष्ट को क्या दूं ? = अहम् एतस्मै खलाय किं यच्छेयम् (यच्छानि) ?

६. कल तूने उसको क्या दिया ? = ह्यः त्वं तस्मै किम् अयच्छः ?

७. तुम सबको गरीबों को दान देना चाहिये।
यूयं दरिद्रेभ्य. दानं यच्छेत।

८. समर्थ मांगने वाले को कुछ मत दे।
समर्थाय भिक्षुकाय किमपि मा दाः (मा स्म यच्छः)

९. तुमको मेहनत करने वालों को देना चाहिये।
यूयं परिश्रमं कर्तृभ्यः यच्छेत।

१०. यदि तू दान देता तो स्वर्ग में जाता।
यदि त्वं दानम् अदास्यः तर्हि स्वर्गम् अगमिष्यः।

११. आज मैंने उसे कुछ नहीं दिया = अद्य अहं तस्मै किमपि न अदाम्।

१२. श्लोक— पाण्डवानां सभामध्येऽदुर्योऽधनः समागतः।
तस्मै गां च हिरण्यं च विविधान्याभरणानि च॥

पाण्डवों के दरबार में जो भी निर्धन आया उसे उन्होंने गाय, सोना और अनेक प्रकार के आभूषण प्रदान किये।

(७) गद् (व्यक्तायां वाचि) [=बोलना] परस्मै०

लट्		
गदति	गदतः	गदन्ति
गदसि	गदथः	गदथ
गदामि	गदावः	गदामः

लिट्		
जगाद	जगदतुः	जगदुः

लुट्		
गदिता	गदितारौ	गदितारः
गदितासि	गदितास्थः	गदितास्थ
गदितास्मि	गदितास्वः	गदितास्मः

लृट्		
गदिष्यति	गदिष्यतः	गदिष्यन्ति
गदिष्यसि	गदिष्यथः	गदिष्यथ
गदिष्यामि	गदिष्यावः	गदिष्यामः

लोट्		
गदतु (गदतात्)	गदताम्	गदन्तु
गद (गदतात्)	गदतम्	गदत
गदानि	गदाव	गदाम

लङ्		
अगदत्	अगदताम्	अगदन्
अगदः	अगदतम्	अगदत
अगदम्	अगदाव	अगदाम

विधिलिङ्		
गदेत्	गदेताम्	गदेयुः
गदेः	गदेतम्	गदेत
गदेयम्	गदेव	गदेम

लुङ्[1]

(१)	अगादीत्	अगादिष्टाम्	अगादिषुः
	अगादीः	अगादिष्टम्	अगादिष्ट
	अगादिषम्	अगादिष्व	अगादिष्म
(२)	अगदीत्	अगदिष्टाम्	अगदिषुः
	अगदीः	अगदिष्टम्	अगदिष्ट
	अगदिषम्	अगदिष्व	अगदिष्म

लृङ्		
अगदिष्यत्	अगदिष्यताम्	अगदिष्यन्
अगदिष्यः	अगदिष्यतम्	अगदिष्यत
अगदिष्यम्	अगदिष्याव	अगदिष्याम

(८) वद् (व्यक्तायां वाचि) = बोलना (परस्मै०)

वद् धातु के रूप भी गद् के समान ही चलेंगे। केवल लिट् और लुङ् में थोड़ा भेद है।

लट् वदति। लिट्—उवाद ऊदतुः ऊदुः। लुट्—वदिता। लृट्—वदिष्यति। लोट्—वदतु। लङ्—अवदत्। विधिलिङ्—वदेत्। लुङ्—अवादीत्[2]। लृङ्—अवदिष्यत्।

---

१. गद् धातु के लिङ् लकार में अकार को 'वदव्रजहलन्तस्याचः' अष्टा. ७ २.३ से नित्य वृद्धि (आ) प्राप्त थी उसको 'अतो हलादेर्लघोः' ७.२.७ ने विकल्प से निषिद्ध कर दिया। फलतः दो रूप होंगे—'अगादीत्' आदि और 'अगदीत्' आदि।

२. लुङ् लकार के 'अवादीत्' आदि रूपों में 'वदव्रजहलन्तस्याचः' ७.२.३. से नित्य वृद्धि ही रहेगी।

अभ्यास

१. वे दोनों क्या कहते हैं ?=तौ किं गदतः (वदतः) ?

२. राम लक्ष्मण ने सीता से कहा=रामलक्ष्मणौ सीतां जगदतुः (ऊदतुः)

३. मैं यह बात तुम्हें कल कहूंगा।
अहं इमाम् वार्तां त्वां श्वः गदितास्मि (वदितास्मि)।

४. वह आज कुछ नहीं बतायेगा=सः अद्य किमपि न गदिष्यति (वदिष्यति)

५. मैं क्या कहूं ?=अहं किं गदानि (वदानि) ? गदेयम् (वदेयम्) ?

६. तूने कल अपने मित्र से क्या कहा ?
त्वं ह्यः स्वं मित्रं किम् अगदः (अवदः) ?

७. तुझे अपनी बात अध्यापक को कहनी चाहिये।
त्वं स्वां वार्ताम् अध्यापकं गदेः (वदेः)।

८. आज उसने मुझे कुछ नहीं कहा।
अद्य सः माम् किमपि न अगादीत् (अगदीत्, अवादीत्)।

९. यदि तू कहता तो तुझे मैं अपनी पुस्तकें दे देता।
यदि त्वम् अगदिष्यः (अवदिष्यः) तर्हि तुभ्यम् अहं स्वानि पुस्तकानि अदास्यम्।

१०. ऐ बच्चे ! ऐसा बड़ों से मत बोल।
अयि बाल ! मा एवं (=मैवं) वृद्धान् गादीः (गदीः; वादीः) [मा स्म गदः/ मा स्म वदः] वृद्धान् एवम्।

(९) पठ् (व्यक्तायां वाचि)=पढ़ना (परस्मै०)

पठ् धातु के रूप भी गद् धातु के रूपों के तुल्य ही चलेंगे। केवल लिट् लकार के रूपों में भेद है।

लट्—पठति। लिट्—पपाठ पेठतुः पेठुः। लुट्—पठिता। लृट्—पठिष्यति। लोट्—पठतु। लङ्—अपठत्। विधिलिङ्—पठेत्। लुङ्—(१)—अपाठीत्, (२)—अपठीत्। लृङ्—अपठिष्यत्।

अभ्यास

१. तू कहाँ पढ़ता है ?=त्वं कुत्र पठसि ?

२. कृष्ण और सुदामा सान्दीपनि के आश्रम में पढ़ते थे।
कृष्णसुदामानौ सान्दीपनेः आश्रमे पेठतुः।

३. हम दोनों कल बाग में पढ़ेंगे=आवां श्वः आरामे पठितास्वः।

४. आज हम दोनों आप के पास पढ़ेंगे=अद्य आवां भवतां समीपे पठिष्यावः।

५. मैं न्याय पढूँ या व्याकरण ?=अहं न्यायं पठानि उत व्याकरणम् ?

६. क्या तूने कल कुछ पढ़ा ?=किं त्वं ह्यः किञ्चित् अपठः ?
७. तुम सबको संस्कृत पढ़नी चाहिये=यूयं संस्कृतं पठेत ।
८. आज मैंने कुछ नहीं पढ़ा=अद्य अहं किमपि न अपाठिषम् (अपठिषम्) ।
९. तू इस पुस्तक को मत पढ़ ।
त्वम् इदं पुस्तकं मा पाठीः/मा पठीः/मा स्म पठः ।
१०. यदि तू मेरे पास होता तो संस्कृत पढ़ता ।
यदि त्वं मम पार्श्वे अभविष्यः तर्हि संस्कृतम् अपठिष्यः ।

(१०) गै (शब्दे) [=गाना] परस्मै०

लट्			लङ्		
गायति	गायतः	गायन्ति	अगायत्	अगायताम्	अगायन्
गायसि	गायथः	गायथ	अगायः	अगायतम्	अगायत
गायामि	गायावः	गायामः	अगायम्	अगायाव	अगायाम
लिट्			विधिलिङ्		
जगौ	जगतुः	जगुः	गायेत्	गायेताम्	गायेयुः
लुट्			गायेः	गायेतम्	गायेत
गाता	गातारौ	गातारः	गायेयम्	गायेव	गायेम
गातासि	गातास्थः	गातास्थ	लुङ्		
गातास्मि	गातास्वः	गातास्मः	अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषुः
लृट्			अगासीः	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
गास्यति	गास्यतः	गास्यन्ति	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म
गास्यसि	गास्यथः	गास्यथ	लृङ्		
गास्यामि	गास्यावः	गास्यामः	अगास्यत्	अगास्यताम्	अगास्यन्
लोट्			अगास्यः	अगास्यतम्	अगास्यत
गायतु (गायतात्)	गायताम्	गायन्तु	अगास्यम्	अगास्याव	अगास्याम
गाय (गायतात्)	गायतम्	गायत			
गायानि	गायाव	गायाम			

अभ्यास

१. ये सब अच्छा गाते हैं=इमे शोभनं गायन्ति (सुष्ठु गायन्ति) ।
२. लव और कुश ने रामायण गायी=लवकुशौ रामायणं जगतुः ।
३. हम दोनों कल गायेंगे=आवां श्वः गातास्वः ।
४. क्या तू आज नहीं गायेगा=किं त्वम् अद्य न गास्यसि ?

५. मैं क्या गाऊँ ? अहम् किं गायानि ?
६. तुम सबने कल बड़ा अच्छा गाया=यूयं ह्यः अतिसुन्दरम् अगायत।
७. लड़कों को आज गाना चाहिये=बालकाः अद्य गायेयुः।
८. आज तूने बहुत अच्छा गाया=अद्य त्वं सुतराम् अगासीः।
९. अब वे सब मत गायें=अधुना ते मा गासिषुः (मा स्म गायन्)।
१०. यदि तू गाता तो मैं तुम्हें इनाम देता।

यदि त्वम् अगास्यः तर्हि अहं तुभ्यं पारितोषिकम् अदास्यम्।

(११) स्मृ (आध्याने) [=स्मरण करना] परस्मै०

लट्

स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः

लिट्

सस्मार	सस्मरतुः[1]	सस्मरुः[1]

लुट्

स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः
स्मर्तासि	स्मर्तास्थः	स्मर्तास्थ
स्मर्तास्मि	स्मर्तास्वः	स्मर्तास्मः

लृट्

स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति
स्मरिष्यसि	स्मरिष्यथः	स्मरिष्यथ
स्मरिष्यामि	स्मरिष्यावः	स्मरिष्यामः

लोट्

स्मरतु (स्मरतात्)	स्मरताम्	स्मरन्तु
स्मर (स्मरतात्)	स्मरतम्	स्मरत
स्मराणि	स्मराव	स्मराम

लङ्

अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम

वि० लिङ्

स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः
स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत
स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम

लुङ्

अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः
अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट
अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म

लृङ्

अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्
अस्मरिष्यः	अस्मरिष्यतम्	अस्मरिष्यत
अस्मरिष्यम्	अस्मरिष्याव	अस्मरिष्याम

अभ्यास

१. मैं अपने मित्रों को याद करता हूं=अहं स्वानि मित्राणि स्मरामि।
२. दशरथ ने राम, लक्ष्मण और सीता को याद किया।
=दशरथः रामलक्ष्मणौ सीतां च सस्मार।

---

१. ऋतश्च संयोगादेर्गुणः। अष्टा० ७.४.१० से गुण।

३. मैं पाठ कल याद करूँगा=अहं पाठं श्वः स्मर्तास्मि ।
४. हम सब आज सूत्र याद करेंगे=वयम् अद्य सूत्राणि स्मरिष्यामः ।
५. जल्दी याद कर घूमने जायेंगे=झटिति स्मर भ्रमणाय गमिष्यामः ।
६. मैंने कल श्लोक याद किये थे, आज भूल गया ।
अहं ह्यः श्लोकान् अस्मरम् अद्य व्यस्मार्षम् ।
७. सब लड़कों को पहिले अष्टाध्यायी याद करनी चाहिये फिर साहित्य पढ़ना चाहिये ।
सर्वे बालकाः प्रथमम् अष्टाध्यायीं स्मरेयुः तदनन्तरं साहित्यं पठेयुः ।
८. क्या आज कुछ याद किया ?=किम् अद्य किञ्चित् अस्मार्षीः ?
९. तू बीती बात को याद मत कर=त्वं गतां वार्त्तां मा स्मार्षीः (मा स्म स्मरः ।)
१०. यदि तू मुझे याद करता तो मैं आ जाता ।
यदि त्वं माम् अस्मरिष्यः तर्हि अहम् आगमिष्यम् ।
११. श्लोक—

स्मर्तव्यो ऽस्मि त्वया मित्र !
न स्मरिष्याम्यहं तव ।
स्मरणं चेतसो धर्मः,
तच्चेतश्च त्वया हृतम् ॥

हे मित्र ! (तुम जा रहे हो) मुझे भी अवश्य याद करना । नहीं भाई ! मैं तुम्हें बिल्कुल याद नहीं करूँगा । क्यों, क्या बात है ? बात यह है कि किसी को याद रखना, यह तो मन का धर्म (गुण) है, और वह मन मेरा तुमने हर लिया है, अब मन के अभाव में, मैं तुम्हें कैसे याद कर सकूँगा ।

(१२) श्रु (श्रवणे=सुनना) परस्मै०

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में श्रु के स्थान पर शृ आदेश हो जाता है और धातु तथा प्रत्यय के बीच श्नु (=णो अथवा णु) भी लग जाता है[1] ।

लट्			लिट्		
शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ		लुट्	
शृणोमि	शृणुवः (शृण्वः)	शृणुमः (शृण्मः)	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः

१. श्रुवः शृ च । अष्टा ३.१.७४

श्रोतासि	श्रोतास्थः	श्रोतास्थ
श्रोतास्मि	श्रोतास्वः	श्रोतास्मः

लृट्

श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

लोट्

शृणोतु (शृणुतात्)	शृणुताम्	शृण्वन्तु
शृणु (शृणुतात्)	शृणुतम्	शृणुत
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

लङ्

अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
अशृणवम्	अशृणुव (अशृण्व)	अशृणुम (अशृण्म)

वि० लिङ्

शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लुङ्

अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

लृङ्

अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्
अश्रोष्यः	अश्रोष्यतम्	अश्रोष्यत
अश्रोष्यम्	अश्रोष्याव	अश्रोष्याम

अभ्यास

१. तू कुछ नहीं सुनता = त्वं किमपि न शृणोषि ।

२. रावण ने किसी की बात नहीं सुनी = रावणः कस्य अपि वार्तां न शुश्राव ।

३. आज मुझे फुरसत नहीं कल तुम्हारी बात सुनूंगा ।
अद्य मम अवकाशो नास्ति श्वः तव वार्तां श्रोतास्मि ।

४. क्या तू आज मेरी बात सुनेगा ? किं त्वम् अद्य मम वार्तां श्रोष्यसि ।

५. बच्चो ! सुनो वह क्या कहता है = बालकाः ! शृणुत सः किं गदति ।

६. कल मैंने जो सुना वह याद कर लिया - ह्यः अहं यत् अशृणवं तत् अस्मरम् ।

७. तुमको अपने गुरुजनों की बात सुननी चाहिये ।
यूयं स्वगुरुजनानां वार्तां शृणुयात ।

८. इस मूर्ख की बात मत सुन = अस्य मूढ़स्य वार्त्तां मा श्रौषीः (मा स्म शृणोः) ।

९. मैंने अभी तेरी बात नहीं सुनी = अहम् अधुना तव वार्तां न अश्रौषम् ।

१०. इसने क्या कहा यह किसी ने नहीं सुना = अयं किम् अगादीत् कः अपि न अश्रौषीत् ।

११. यदि तू मेरी बात सुनता तो तेरी यह दशा न होती ।
यदि त्वं मम कथनम् अश्रोष्यः तर्हि तव इयं दशा न अभविष्यत् ।

१२. श्लोक—'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम् ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते' ॥

(व्यास जी कहते हैं कि—) मैं हाथ ऊपर उठा उठा कर चिल्ला रहा हूं किन्तु मेरी कोई नहीं सुनता है। (मेरा कहना यह है कि) धर्म के सेवन से अर्थ और काम में भी सफलता मिलती है, ऐसे इस धर्म का सेवन तुम लोग क्यों नहीं करते हो।

(१३) जि जये (=जीतना)

	लट्			लङ्	
जयति	जयतः	जयन्ति	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
जयसि	जयथः	जयथ	अजयः	अजयतम्	अजयत
जयामि	जयावः	जयामः	अजयम्	अजयाव	अजयाम
	लिट्			वि० लिङ्	
जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
	लुट्		जयेः	जयेतम्	जयेत
जेता	जेतारौ	जेतारः	जयेयम्	जयेव	जयेम
जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ		लुङ्	
जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
	लृट्		अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म
जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ		लृङ्	
जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
	लोट्		अजेष्यः	अजेष्यतम्	अजेष्यत
जयतु (जयतात्)	जयताम्	जयन्तु	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम
जय (जयतात्)	जयतम्	जयत			
जयानि	जयाव	जयाम			

इस जि धातु से पूर्व वि अथवा परा उपसर्ग लगने पर यह धातु आत्मनेपदी हो जाती है[1]। इस धातु का अभ्यास द्विकर्मक धातुओं के प्रकरण में कराया जायेगा।

(१४) पत् (पत्लृ) गतौ = (गिरना) परस्मै०

	लट्			लिट्	
पतति	पततः	पतन्ति	पपात	पेततुः	पेतुः
पतसि	पतथः	पतथ		लुट्	
पतामि	पतावः	पतामः	पतिता	पतितारौ	पतितारः

1. विपराभ्यां जेः। अष्टा० १.३.१९

पतितासि	पतितास्थः	पतितास्थ
पतितास्मि	पतितास्वः	पतितास्मः

लृट्

पतिष्यति	पतिष्यतः	पतिष्यन्ति
पतिष्यसि	पतिष्यथः	पतिष्यथ
पतिष्यामि	पतिष्यावः	पतिष्यामः

लोट्

पततु (पततात्)	पतताम्	पतन्तु
पत (पततात्)	पततम्	पतत
पतानि	पताव	पताम

लङ्

अपतत्	अपतताम्	अपतन्
अपतः	अपततम्	अपतत
अपतम्	अपताव	अपताम

वि० लिङ्

पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
पतेः	पतेतम्	पतेत
पतेयम्	पतेव	पतेम

लुङ्

अपप्तत्	अपप्तताम्	अपप्तन्
अपप्तः	अपप्ततम्	अपप्तत
अपप्तम्	अपप्ताव	अपप्ताम

लृङ्

अपतिष्यत्	अपतिष्यताम्	अपतिष्यन्
अपतिष्यः	अपतिष्यतम्	अपतिष्यत
अपतिष्यम्	अपतिष्याव	अपतिष्याम

अभ्यास

१. इस वृक्ष से फल गिरते हैं=अस्मात् वृक्षात् फलानि पतन्ति ।

२. उस वृक्ष से बहुत वर्ष पहिले दो बालक गिरे थे ।
तस्मात् वृक्षात् बहुभ्यः वर्षेभ्यः प्राक् द्वौ बालकौ पेततुः ।

३. तू कल स्पर्धा में गिर जायगा=त्वं श्वः स्पर्धायां पतितासि ।

४. ज्योतिषी कहते हैं, आज बिजली गिरेगी ।
ज्योतिर्विदः कथयन्ति अद्य विद्युत् पतिष्यति ।

५. फसल भरे खेत पर ओले न गिरें=सस्यपरिपूर्णे क्षेत्रे करकाः न पतन्तु ।

६. क्या तू कल दीवार से गिर गया था ?=किं त्वं ह्यः भित्तेः अपतः ?

७. शायद आज पक्के हुए आम गिर जावें ।=मन्ये अद्य पक्वानि आम्राणि पतेयुः ।

८. धीरे-धीरे चल गिर मत जाना=शनैः शनैः चल मा पप्तः (मा स्म पतः) ।

९. यदि घोड़ा दौड़ता तो तू गिर जाता=यदि अश्वः अधाविष्यत् तर्हि त्वम् अपतिष्यः ।

१०. राम का वन जाना सुनकर राजा दशरथ भूमि पर गिर गया ।
रामस्य वनगमनं श्रुत्वा राजा दशरथः भूमौ पपात ।

(१५) घ्रा (गन्धोपादाने)=[सूंघना] परस्मै०

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में घ्रा के स्थान पर जिघ्र आदेश हो जाता है ।[1]

---

१. पाघ्राध्मा.........पिबजिघ्रधम...........। अष्टा. ७.३.७८

लट्			लङ्		
जिघ्रति	जिघ्रतः	जिघ्रन्ति	अजिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्
जिघ्रसि	जिघ्रथः	जिघ्रथ	अजिघ्रः	अजिघ्रतम्	अजिघ्रत
जिघ्रामि	जिघ्रावः	जिघ्रामः	अजिघ्रम्	अजिघ्राव	अजिघ्राम

लिट्		
जघ्रौ	जघ्रतुः	जघ्रुः

वि० लिङ्		
जिघ्रेत्	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः
जिघ्रेः	जिघ्रेतम्	जिघ्रेत
जिघ्रेयम्	जिघ्रेव	जिघ्रेम

लुट्		
घ्राता	घ्रातारौ	घ्रातारः
घ्रातासि	घ्रातास्थः	घ्रातास्थ
घ्रातास्मि	घ्रातास्वः	घ्रातास्मः

लुङ्[1]			
(१)	अघ्रात्	अघ्राताम्	अघ्रुः
	अघ्राः	अघ्रातम्	अघ्रात
	अघ्राम्	अघ्राव	अघ्राम
(२)	अघ्रासीत्	अघ्रासिष्टाम्	अघ्रासिषुः
	अघ्रासीः	अघ्रासिष्टम्	अघ्रासिष्ट
	अघ्रासिषम्	अघ्रासिष्व	अघ्रासिष्म

लृट्		
घ्रास्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति
घ्रास्यसि	घ्रास्यथः	घ्रास्यथ
घ्रास्यामि	घ्रास्यावः	घ्रास्यामः

लोट्		
जिघ्रतु (जिघ्रतात्)	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु
जिघ्र (जिघ्रतात्)	जिघ्रतम्	जिघ्रत
जिघ्राणि	जिघ्राव	जिघ्राम

लृङ्		
अघ्रास्यत्	अघ्रास्यताम्	अघ्रास्यन्
अघ्रास्यः	अघ्रास्यतम्	अघ्रास्यत
अघ्रास्यम्	अघ्रास्याव	अघ्रास्याम

अभ्यास

१. तू क्या सूंघता है ?=त्वं किं जिघ्रसि ?

२. राजा ने गुलाब के फूल सूंघे थे=नृपः पाटलस्य पुष्पाणि जघ्रौ।

३. हम इन सुगन्धित तेलों को कल सूंघेंगे=वयम् इमानि सुगन्धितैलानि श्वःघ्रातास्मः

४. आज वह इन दवाइयों को सूंघेगा=अद्य सः इमानि औषधानि घ्रास्यति।

५. कपूर और चन्दन को सूंघ गर्मी शान्त हो जायेगी।
कर्पूरं मलयजं च जिघ्र ऊष्मा शमिष्यति।

६. उसने कल इन जहरीले पात्रों को क्यों सूंघा ?
सः ह्यः एतानि विषाक्तानि पात्राणि किमर्थम् अजिघ्रत् ?

७. तुमको नसवार नहीं सूंघनी चाहिये=त्वं नस्यं न जिघ्रेः।

---

१. घ्रा धातु के लुङ् लकार में सिच् का 'विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः' अष्टा० २.४.७८ से पक्ष में लुक् हो जाने से 'अघ्रात्' आदि और 'अघ्रासीत्' आदि दो प्रकार के रूप बनेंगे। अलुक् पक्ष में 'यमरमनमातां सक् च' (७-२-७३) से इट् और सक् आगम हुए।

८. ये बदबू वाले हैं, इन पत्तों को मत सूंघ।
पूतिगन्धीनि एतानि, एतानि पत्राणि मा घ्राः (मा घ्रासीः) मा स्म जिघ्रः।

९. यदि तू इस बोतल को सूंघता तो मूर्छित हो जाता।
यदि त्वम् एतां काचकुप्पिकाम् अघ्रास्यः तर्हि मूर्छितः अभविष्यः।

(१६) भ्रमु चलने=(भ्रमण करना) परस्मै०

लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ् इन चार लकारों में भ्रम् धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच, पक्ष में य (=श्यन्) विकरण होगा,[1] एक पक्ष में अ (=शप्) ही रहेगा। इसलिये चारों लकारों में दो-दो रूप बनेंगे।

लट्

(१)	भ्रमति	भ्रमतः	भ्रमन्ति
	भ्रमसि	भ्रमथः	भ्रमथ
	भ्रमामि	भ्रमावः	भ्रमामः
(२)	भ्रम्यति[2]	भ्रम्यतः	भ्रम्यन्ति
	भ्रम्यसि	भ्रम्यथः	भ्रम्यथ
	भ्रम्यामि	भ्रम्यावः	भ्रम्यामः

लिट्[3]

बभ्राम	बभ्रमतुः / भ्रेमतुः	बभ्रमुः / भ्रेमुः

लुट्

भ्रमिता	भ्रमितारौ	भ्रमितारः
भ्रमितासि	भ्रमितास्थः	भ्रमितास्थ
भ्रमितास्मि	भ्रमितास्वः	भ्रमितास्मः

लृट्

भ्रमिष्यति	भ्रमिष्यतः	भ्रमिष्यन्ति
भ्रमिष्यसि	भ्रमिष्यथः	भ्रमिष्यथ
भ्रमिष्यामि	भ्रमिष्यावः	भ्रमिष्यामः

लोट्

(१)	भ्रमतु (भ्रमतात्)	भ्रमताम्	भ्रमन्तु
	भ्रम (भ्रमतात्)	भ्रमतम्	भ्रमत
	भ्रमाणि	भ्रमाव	भ्रमाम
(२)	भ्रम्यतु (भ्रम्यतात्)	भ्रम्यताम्	भ्रम्यन्तु
	भ्रम्य (भ्रम्यतात्)	भ्रम्यतम्	भ्रम्यत
	भ्रम्याणि	भ्रम्याव	भ्रम्याम

लङ्

(१)	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्
	अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत
	अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम
(२)	अभ्रम्यत्	अभ्रम्यताम्	अभ्रम्यन्
	अभ्रम्यः	अभ्रम्यतम्	अभ्रम्यत
	अभ्रम्यम्	अभ्रम्याव	अभ्रम्याम

वि० लिङ्

(१)	भ्रमेत्	भ्रमेताम्	भ्रमेयुः
	भ्रमेः	भ्रमेतम्	भ्रमेत
	भ्रमेयम्	भ्रमेव	भ्रमेम
(२)	भ्रम्येत	भ्रम्येताम्	भ्रम्येयुः
	भ्रम्येः	भ्रम्येतम्	भ्रम्येत
	भ्रम्येयम्	भ्रम्येव	भ्रम्येम

---

१. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। अष्टा० ३.१.७०

२. भ्वादि गण की 'भ्रम्' धातु के श्यन् वाले रूपों में ह्रस्व 'भ्र' ही रहेगा 'भ्रम्यति' भ्रम्यतः आदि। 'भ्राम्यति' आदि रूप दिवादिगणीय 'भ्रमु अनवस्थाने' के बनते हैं।

३. लिट् लकार के द्विवचन, बहुवचन में 'वा जॄभ्रमुत्रसाम्' अष्टा० ६.४.१२४ से एक पक्ष में अभ्यासलोप और एत्व होगा।

लुङ्[1]			लृङ्		
अभ्रमीत्	अभ्रमिष्टाम्	अभ्रमिषुः	अभ्रमिष्यत्	अभ्रमिष्यताम्	अभ्रमिष्यन्
अभ्रमीः	अभ्रमिष्टम्	अभ्रमिष्ट	अभ्रमिष्यः	अभ्रमिष्यतम्	अभ्रमिष्यत
अभ्रमिषम्	अभ्रमिष्व	अभ्रमिष्म	अभ्रमिष्यम्	अभ्रमिष्याव	अभ्रमिष्याम

अभ्यास

१. वह बगीची में घूमता है=सः वाटिकायां भ्रमति (भ्रम्यति)।
२. राक्षस दण्डक वन में घूमते थे=राक्षसाः दण्डकारण्ये बभ्रमुः (भ्रेमुः)।
३. हम दोनों कल तेरे साथ घूमेंगे=आवां श्वः त्वया सह भ्रमितास्वः।
४. आज तुम सब तो नदी के किनारे घूमोगे=अद्य यूयं तु नद्याः तटे भ्रमिष्यथ।
५. क्या मैं मेरे मित्रों के साथ घूम लूं ?=किम् अहं स्वैः मित्रैः सह भ्रमाणि (भ्रम्याणि)।
६. तू कल धूप में क्यों घूमा था ?=त्वं ह्यः आतपे किमर्थम् अभ्रमः (अभ्रम्यः)।
७. तुमको प्रातःकाल सैर करनी चाहिये=त्वं प्रातःकाले भ्रमेः (भ्रम्येः)।
८. आज मैंने बाग में खूब भ्रमण किया=अद्य अहम् उद्याने सम्यक् अभ्रमिषम्।
९. यदि तू घूमता तो स्वस्थ रहता=यदि त्वम् अभ्रमिष्यः तर्हि स्वस्थः अभविष्यः।
१०. इधर उधर व्यर्थ मत घूम=इतस्ततः निरर्थकं मा भ्रमीः (मास्म भ्रमः/भ्रम्यः)।

(१७) क्रम् (क्रमु) पादविक्षेपे=(टहलना) परस्मै०

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चारों लकारों में क्रम् धातु और तिङ् प्रत्ययों के मध्य एक पक्ष में (शप्) अ और एक पक्ष में श्यन् (य) विकरण रहेगा[2] इसलिये इन लकारों में दो-दो रूप बनेंगे। इन दोनों प्रकार के रूपों में 'क्रम्' की उपधा को दीर्घ होकर 'क्राम्' ही बनेगा।[3]

	लट्			लिट्		
(१)	क्रामति	क्रामतः	क्रामन्ति	चक्राम	चक्रमतुः	चक्रमुः
	क्रामसि	क्रामथः	क्रामथ	लुट्		
	क्रामामि	क्रामावः	क्रामामः	क्रमिता	क्रमितारौ	क्रमितारः
(२)	क्राम्यति	क्राम्यतः	क्राम्यन्ति	क्रमितासि	क्रमितास्थः	क्रमितास्थ
	क्राम्यसि	क्राम्यथः	क्राम्यथ	क्रमितास्मि	क्रमितास्वः	क्रमितास्मः
	क्राम्यामि	क्राम्यावः	क्राम्यामः			

१. लुङ् में प्राप्त वृद्धि का (अथवा विकल्प-वृद्धि का) 'ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्' अष्टा० ७.२.५ से निषेध होता है। यही बात क्रम आदि में लागू होगी।
२. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। अष्टा० ३.१.७०।
३. क्रमः परस्मैपदेषु। अष्टा० ७.३.७६

लृट्

क्रमिष्यति	क्रमिष्यतः	क्रमिष्यन्ति
क्रमिष्यसि	क्रमिष्यथः	क्रमिष्यथ
क्रमिष्यामि	क्रमिष्यावः	क्रमिष्यामः

लोट्

(१) क्रामतु (क्रामतात्)	क्रामताम्	क्रामन्तु
क्राम (क्रामतात्)	क्रामतम्	क्रामत
क्रामाणि	क्रामाव	क्रामाम
(२) क्राम्यतु (क्राम्यतात्)	क्राम्यताम्	क्राम्यन्तु
क्राम्य (क्राम्यतात्)	क्राम्यतम्	क्राम्यत
क्राम्याणि	क्राम्याव	क्राम्याम

लङ्

(१) अक्रामत्	अक्रामताम्	अक्रामन्
अक्रामः	अक्रामतम्	अक्रामत
अक्रामम्	अक्रामाव	अक्रामाम
(२) अक्राम्यत्	अक्राम्यताम्	अक्राम्यन्
अक्राम्यः	अक्राम्यतम्	अक्राम्यत
अक्राम्यम्	अक्राम्याव	अक्राम्याम

वि० लिङ्

(१) क्रामेत्	क्रामेताम्	क्रामेयुः
क्रामेः	क्रामेतम्	क्रामेत
क्रामेयम्	क्रामेव	क्रामेम
(२) क्राम्येत्	क्राम्येताम्	क्राम्येयुः
क्राम्येः	क्राम्येतम्	क्राम्येत
क्राम्येयम्	क्राम्येव	क्राम्येम

लुङ्

अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः
अक्रमीः	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

लृङ्

अक्रमिष्यत्	अक्रमिष्यताम्	अक्रमिष्यन्
अक्रमिष्यः	अक्रमिष्यतम्	अक्रमिष्यत
अक्रमिष्यम्	अक्रमिष्याव	अक्रमिष्याम

अभ्यास

१. मेरे सारे मित्र बाग में टहलते हैं।
मम सर्वाणि मित्राणि उद्याने क्रामन्ति (क्राम्यन्ति)

२. श्री कृष्ण हिमालय की चोटियों पर टहलते थे।
श्री कृष्णः हिमाचलस्य सानुषु चक्राम।

३. हम तो कल मामा के साथ बाग में टहलेंगे।
वयं तु श्वः मातुलेन साकम् उद्याने क्रमितास्मः।

४. वे सब आज किले पर टहलेंगे = ते अद्य दुर्गे क्रमिष्यन्ति।

५. क्या हम दोनों छत पर टहलेंगे = किम् आवां छदिषि क्रामाव (क्राम्याव)

६. मैं कल उसके साथ नहीं टहला अहं ह्यः तेन सह न अक्रामम् (अक्राम्यम्)

७. छात्रों को सवेरे वन में टहलना चाहिए = छात्राः प्रातः वने क्रामेयुः (क्राम्येयुः)

८. आज अतिथि तालाब के किनारे टहले थे = अद्य अतिथयः तडागस्य तटे अक्रमिषुः।

९. यदि तू हमारे साथ टहलता तो मोरों का नृत्य देखता = यदि त्वम् अस्माभिः सह अक्रमिष्यः तर्हि मयूराणां नृत्यम् अद्रक्ष्यः।

१०. इस घने जङ्गल में मत टहल=अस्मिन् गहने वने मा क्रमीः (मा स्म क्रामः/क्राम्यः)

(१८) त्यज् (हानौ)=त्यागना, छोड़ना [परस्मै०]

लट्

त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति
त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ
त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः

लिट्

तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः

लुट्

त्यक्ता	त्यक्तारौ	त्यक्तारः
त्यक्तासि	त्यक्तास्थः	त्यक्तास्थ
त्यक्तास्मि	त्यक्तास्वः	त्यक्तास्मः

लृट्

त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यतः	त्यक्ष्यन्ति
त्यक्ष्यसि	त्यक्ष्यथः	त्यक्ष्यथ
त्यक्ष्यामि	त्यक्ष्यावः	त्यक्ष्यामः

लोट्

त्यजतु (त्यजतात्)	त्यजताम्	त्यजन्तु
त्यज (त्यजतात्)	त्यजतम्	त्यजत
त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम

लङ्

अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्
अत्यजः	अत्यजतम्	अत्यजत
अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम

वि० लिङ्

त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयुः
त्यजेः	त्यजेतम्	त्यजेत
त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम

लुङ्

अत्याक्षीत्	अत्याक्ताम्	अत्याक्षुः
अत्याक्षीः	अत्याक्तम्	अत्याक्त
अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म

लृङ्

अत्यक्ष्यत्	अत्यक्ष्यताम्	अत्यक्ष्यन्
अत्यक्ष्यः	अत्यक्ष्यतम्	अत्यक्ष्यत
अत्यक्ष्यम्	अत्यक्ष्याव	अत्यक्ष्याम

अभ्यास

१. वीर लोग कभी शरणागत का त्याग नहीं करते हैं।
वीराः कदापि शरणागतं न त्यजन्ति।

२. हक़ीकत राय ने धर्म की रक्षा के लिये प्राण त्याग दिये।
हकीकतरायः धर्मस्य रक्षायै प्राणान् तत्याज।

३. यह यजमान कल अपने सब व्यसन छोड़ देगा।
अयं यजमानः श्वः स्वानि सर्वाणि व्यसनानि त्यक्ता।

४. हम आज सायङ्काल झूठ बोलना छोड़ देंगे।
वयम् अद्य सायङ्काले मिथ्याभाषणं त्यक्ष्यामः।

५. हे शिष्यो ! तुम आलस्य को शीघ्र छोड़ दो।
भोः शिष्याः ! यूयं सपदि आलस्यं त्यजत।

६. कल स्वामी शिवानन्द ने पीले कपड़े त्याग दिये।
   ह्यः स्वामी शिवानन्दः पीतानि वस्त्राणि अत्यजत्।
७. हम सब को चोरी छोड़ देनी चाहिए=वयं स्तेयं त्यजेम।
८. इन वानप्रस्थियों ने आज अपने घर त्याग दिये।
   इमे वानप्रस्थाश्रमिणः अद्य स्वानि गेहानि अत्याक्षुः।
९. यदि वे गुड़ त्याग देते तो रसगुल्ले पाते।
   यदि ते गुडम् अत्यक्ष्यन् तर्हि रसगोलान् अलप्स्यन्त (प्राप्स्यन्)।
१०. कभी भी काम के वश में होकर, अथवा भय से अथवा लोभ से धर्म का त्याग न करे='न जातु कामात् न भयात् न लोभात् धर्मं त्यजेत्।
११. हे पुत्र ! सब बुराइयाँ छोड़ दे, पर अच्छाइयाँ मत छोड़।
   हे पुत्र ! विश्वानि दुरितानि त्यज, किन्तु भद्राणि मा त्याक्षीः (मा स्म त्यजः)

(१९) दह् (भस्मीकरणे)=जलाना (परस्मै०)

लृट्, लृङ्, और लुङ् इन तीन लकारों में दह् के दकार को धकार हो जायेगा। क्योंकि वहाँ दह् के तुरन्त बाद स्य अथवा सिच् का स् वर्त्तमान है।[1] लुङ् के रूपों में प्र० द्वि०; म० द्वि० और म० ब० में स् परे न रहने से द् को ध् नहीं होगा।

लट्

दहति	दहतः	दहन्ति
दहसि	दहथः	दहथ
दहामि	दहावः	दहामः

लिट्

ददाह	देहतुः	देहुः

लुट्

दग्धा	दग्धारौ	दग्धारः
दग्धासि	दग्धास्थः	दग्धास्थ
दग्धास्मि	दग्धास्वः	दग्धास्मः

लृट्

धक्ष्यति	धक्ष्यतः	धक्ष्यन्ति
धक्ष्यसि	धक्ष्यथः	धक्ष्यथ
धक्ष्यामि	धक्ष्यावः	धक्ष्यामः

लोट्

दहतु (दहतात्)	दहताम्	दहन्तु
दह (दहतात्)	दहतम्	दहत
दहानि	दहाव	दहाम

लङ्

अदहत्	अदहताम्	अदहन्
अदहः	अदहतम्	अदहत
अदहम्	अदहाव	अदहाम

वि० लिङ्

दहेत्	दहेताम्	दहेयुः
दहेः	दहेतम्	दहेत
दहेयम्	दहेव	दहेम

---

१. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः। अष्टा० ८.२.३७.

लुङ्			लृङ्		
अधाक्षीत्	अदाग्धाम्	अधाक्षुः	अधक्ष्यत्	अधक्ष्यताम्	अधक्ष्यन्
अधाक्षीः	अदाग्धम्	अदाग्ध	अधक्ष्यः	अधक्ष्यतम्	अधक्ष्यत
अधाक्षम्	अधाक्ष्व	अधाक्ष्म	अधक्ष्यम्	अधक्ष्याव	अधक्ष्याम

अभ्यास

१. यह रसोइया बहुत लकड़ियाँ जलाता है=अयं सूपकारः बहूनि काष्ठानि दहति।

२. हनुमान ने रावण की लङ्का जला दी=हनूमान् रावणस्य लङ्कां ददाह।

३. ये मजदूर कल इस कूड़े के ढेर में आग लगायेंगे।
एते श्रमिकाः श्वः इमम् अवकरराशिं दग्धारः।

४. हम आज इस सूखे पेड़ को जला देंगे=वयम् अद्य इमं शुष्कवृक्षं धक्ष्यामः।

५. विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को उपदेश दिया—'तुम काम और क्रोध को जला दो'=विश्वामित्रः रामलक्ष्मणौ उपदिदेश—'युवां कामक्रोधौ दहतम्'।

६. हमने तो कल इतनी तीलियाँ जलादीं, तूने तो एक भी नहीं जलाई।
वयं तु ह्यः एतावतीः शलाकाः अदहाम, त्वं तु एकाम् अपि न अदहः।

७. हमें रावण के पुतले को नहीं अपितु अपने पाप को जलाना चाहिये।
वयं रावणस्य प्रतिकृतिं न दहेम प्रत्युत स्वपापं दहेम।

८. तुम दोनों ने आज गोबर के ढेर को क्यों जलाया ?
युवाम् अद्य गोमयनिकायं किमर्थम् अदाग्धम् ?

९. राष्ट्रीय सम्पत्ति को मत जलाओ=राष्ट्रियसम्पत्तिं मा दाग्ध (मा स्म दहत)।

१०. यदि तू मिर्च नहीं जलाता तो खाँसी नहीं होती=यदि त्वं मरिचं न अधक्ष्यः तर्हि कासः न अभविष्यत्।

(२०) शुच् (शोके)=शोक करना (परस्मै०)

लट्			लृट्		
शोचति	शोचतः	शोचन्ति	शोचिष्यति	शोचिष्यतः	शोचिष्यन्ति
शोचसि	शोचथः	शोचथ	शोचिष्यसि	शोचिष्यथः	शोचिष्यथ
शोचामि	शोचावः	शोचामः	शोचिष्यामि	शोचिष्यावः	शोचिष्यामः

लिट्		
शुशोच	शुशुचतुः	शुशुचुः

लुट्			लोट्		
शोचिता	शोचितारौ	शोचितारः	शोचतु (शोचतात्)	शोचताम्	शोचन्तु
शोचितासि	शोचितास्थः	शोचितास्थ	शोच (शोचतात्)	शोचतम्	शोचत
शोचितास्मि	शोचितास्वः	शोचितास्मः	शोचानि	शोचाव	शोचाम

लङ्			लुङ्		
अशोचत्	अशोचताम्	अशोचन्	अशोचीत्	अशोचिष्टाम्	अशोचिषुः
अशोचः	अशोचतम्	अशोचत	अशोचीः	अशोचिष्टम्	अशोचिष्ट
अशोचम्	अशोचाव	अशोचाम	अशोचिषम्	अशोचिष्व	अशोचिष्म
वि० लिङ्			लृङ्		
शोचेत्	शोचेताम्	शोचेयुः	अशोचिष्यत्	अशोचिष्यताम्	अशोचिष्यन्
शोचेः	शोचेतम्	शोचेत	अशोचिष्यः	अशोचिष्यतम्	अशोचिष्यत
शोचेयम्	शोचेव	शोचेम	अशोचिष्यम्	अशोचिष्याव	अशोचिष्याम

अभ्यास

१. मनुष्य जो वस्तु नष्ट हो गई उसे नहीं सोचते=सज्जनाः नष्टं वस्तु न शोचन्ति ।

२. जब सीता को रावण हर ले गया, तब राम ने उसे बहुत सोचा ।
यदा सीतां रावणः जहार, तदा रामः तां भृशं शुशोच ।

३. मैं भविष्य को नहीं सोचूंगा केवल वर्त्तमान को ही सोचता हूं ।
नाहं भविष्यं शोचिष्यामि (शोचितास्मि) केवलं वर्त्तमानं चिन्तयामि ।

४. मेरी औषध खाले मैं तुझे सब रोगों से छुड़ा दूंगा, मत सोच ।
मम औषधं सेवस्व अहं त्वां सर्वरोगेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शोचीः (मा स्म शोचः)

५. यह पड़ोसी कल फूटे घड़े पर शोक कर रहा था ।
अयं प्रतिवेशी ह्यः भग्नं घटम् अशोचत् ।

६. विद्वानों को किसी वस्तु का शोक नहीं करना चाहिये ।
विद्वांसः किमपि वस्तु न शोचेयुः (शोचन्तु) ।

७. जो सम्पत्ति में खुश नहीं होते और विपत्ति में शोक नहीं करते वे संसार में पूजे जाते हैं ।=ये सम्पत्तौ न हृष्यन्ति विपत्तौ च न शोचन्ति ते जगति पूज्यन्ते ।

८. आज वह राजा मर गया, किसी ने शोक नहीं किया ।
अद्य सः नृपः अमृत, कोऽपि तं न अशोचीत् ।

९. यदि मैं धन के विषय में सोचता तो धन इकट्ठा कर लेता, पर मैंने इस विषय में कभी नहीं सोचा ।

यदि अहं धनम् अशोचिष्यं तर्हि बहु उपार्जयिष्यम्, परन्तु अहम् अस्मिन् विषये न कदापि अशोचिषम् ।

अब तक २० धातुओं के प्रायः सभी लकारों में पूरे रूप लिखकर उनके वाक्यों में अभ्यास सिखाये हैं । अब कुछ और परस्मैपदी धातुओं के प्रयोग सिखायेंगे । उनके रूप सरल हैं, अतः उनका निर्देशमात्र करेंगे । शेष रूप पूर्ववत् स्वयं बना लेने चाहियें ।

(२१) रक्ष् (पालने)=रक्षा करना, पालना (परस्मै०)

लट्—रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	लङ्—अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्
लिट्—ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	वि. लिङ्—रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः
लुट्—रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः	लुङ्—अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः
लृट्—रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति	लृङ्—अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्
लोट्—रक्षतु (रक्षतात्)	रक्षताम्	रक्षन्तु			

अभ्यास

१. वे बेचारे रात दिन धन की रक्षा करते हैं=ते वराकाः अर्हनिशं धनं रक्षन्ति ।

२. जो रात दिन धन की रक्षा करते हैं और भोग नहीं करते, वे धन के चौकीदार हैं ।
ये नक्तन्दिनं द्रविणं रक्षन्ति न च भुञ्जते ते धनस्य प्रहरिणः सन्ति ।

३. राम ने वन में महर्षियों की रक्षा की=रामः अरण्ये महर्षीन् ररक्ष ।

४. लोग इस आशा से बच्चों को पालते हैं कि वे उनकी बुढ़ापे में रक्षा करेंगे ।
'एते मम पुत्राः वार्द्धक्ये मां रक्षिष्यन्ति (रक्षितारः)' इमाम् आशाम् अवलम्ब्य जनाः पुत्रान् पोषयन्ति ।

५. धनियों को गरीबों की रक्षा करनी चाहिये=धनिकाः निर्धनान् रक्षेयुः (रक्षन्तु) ।

६. वीरदेव ने कल आततायियों से महिलाओं की रक्षा की ।
वीरदेवः ह्यः आततायिभ्यः महिलाः अरक्षत् ।

७. यदि वह पुलिस वाला उसकी रक्षा न करता तो चोर उसे मार डालते ।
यदि सः राजपुरुषः तं न अरक्षिष्यत् तर्हि चौराः तम् अहनिष्यन् ।

८. आज राम और श्याम ने इन घोड़ियों की रक्षा की ।
अद्य रामश्यामौ एताः वडवाः अरक्षिष्टाम् ।

९. इस पापी की रक्षा मत कर=इमं पापिनं मा रक्षीः (मा स्म रक्षः)

१०. आज हमारी सोने की बारी है, कल हम मकान की रक्षा करेंगे ।
अद्य अस्माकं शायिका अस्ति, श्वः वयं भवनं रक्षितास्मः ।

(२२) वस् (निवासे)=रहना, निवास करना (परस्मै०)

लट्—वसति	वसतः	वसन्ति	लृट्	वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति
				वत्स्यसि	वत्स्यथः	वत्स्यथ
लिट्[1]—उवास	ऊषतुः	ऊषुः		वत्स्यामि	वत्स्यावः	वत्स्यामः
लुट्—वस्ता	वस्तारौ	वस्तारः	लोट्	वसतु (वसतात्)	वसताम्	वसन्तु

---

१ लिट् में प्र० पु० के एकवचन में 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' अष्टा.६.१.१७ से तथा द्विवचन-बहुवचन में 'वचिस्वपियजादीनां किति' अष्टा.६.१.१५ से व को उ सम्प्रसारण हो गया ।

लङ्—अवसत्	अवसताम्	अवसन्	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
वि. लिङ्—वसेत्	वसेताम्	वसेयुः	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म
लुङ्—अवात्सीत्	अवात्ताम्	आवात्सुः	लृङ्—अवत्स्यत्	अवत्स्यताम्	अवत्स्यन्

अभ्यास

१. तुम सब कहाँ रहते हो ?=यूयं कुत्र वसथ ?

२. कृष्ण सुदामा के साथ पाँच वर्ष सांदीपनि के आश्रम में पढ़ा और दोनों वहीं रहे। कृष्णः सुदाम्ना सह पञ्च वर्षाणि यावत् सान्दीपनेः आश्रमे पपाठ, उभावपि च तस्मिन् एव आश्रमे ऊषतुः।

३. मैं कल अपने गांव में रहूँगा=अहं श्वः स्वग्रामे वस्तास्मि।

४. तू आज कहाँ रहेगा ?=त्वम् अद्य कुत्र वत्स्यसि ?

५. आप कुछ दिन हमारे घर रहिये।
भवन्तः कानिचिद् दिनानि यावद् अस्माकं गृहे वसन्तु (वसेयुः)।

६. बनारस में आप कहाँ रहे थे ?=वाराणस्यां भवन्तः कुत्र अवात्सुः (अवसन्) ?

७. यदि वे दोनों मेरे साथ बनारस में रहते तो संस्कृत बोलते।
यदि तौ मया साकं वाराणस्यां अवत्स्यताम् तर्हि संस्कृतम् अगदिष्यताम्।

८. वे उस, झरोखों से रहित कमरे में न रहें।
ते तस्मिन् निर्गवाक्षे प्रकोष्ठे मा वात्सुः (मा स्म वसन्)।

(२३) तॄ प्लवनसन्तरणयोः (=तैरना, पार करना) (परस्मै०)

ॠकारान्त तॄ धातु के लुट्, लृट् और लृङ् लकारों के रूपों में इट् को विकल्प से दीर्घ होता है[1] अतः इन लकारों में दो दो रूप बनेंगे।

लट्—तरति	तरतः	तरन्ति	वि. लिङ्—तरेत्	तरेताम्	तरेयुः
लिट्—ततार	तेरतुः	तेरुः	लुङ्[2]—अतारीत्	अतारिष्टाम्	अतारिषुः
लुट्—(१) तरिता	तरितारौ	तरितारः	अतारीः	अतारिष्टम्	अतारिष्ट
(२) तरीता	तरीतारौ	तरीतारः	अतारिषम्	अतारिष्व	अतारिष्म
लृट् (१) तरिष्यति	तरिष्यतः	तरिष्यन्ति			
(२) तरीष्यति	तरीष्यतः	तरीष्यन्ति	लृङ् (१) अतरिष्यत्	अतरिष्यताम्	अतरिष्यन्
लोट्—तरतु (तरतात्)	तरताम्	तरन्तु			
लङ्—अतरत्	अतरताम्	अतरन्	(२) अतरीष्यत्	अतरीष्यताम्	अतरीष्यन्

---

१. वृतोवा। अष्टा.७.२.३८.।

२. लुङ् में 'सिचि च परस्मैपदेषु' अष्टा.७.२.४० से दीर्घत्व का निषेध।

अभ्यास

१. धर्मात्मा ही संसार सागर को तरते हैं, बाकी सब बीच सागर में डूबते हैं।
धर्मात्मानः एव संसारसागरं तरन्ति, अन्ये मध्येसागरं निमज्जन्ति।

२. सीता को ढूंढने के लिए हनुमान ने समुद्र को तैरा।
सीताम् अन्वेष्टुं हनूमान् समुद्रं ततार।

३. मैं इस नदी को तैरूंगा।
अहम् इमां नदीं तरितास्मि (तरीतास्मि) तरिष्यामि (तरीष्यामि)।

४. अब सब तालाब को पार करें = अधुना सर्वे तडागं तरन्तु (तरेयुः)।

५. यदि तू इस नदी को तैर जाता तो इनाम पाता।
यदि त्वम् इमाम् आपगाम् अतरिष्यः, तर्हि पारितोषिकम् प्राप्स्यः।

६. उस भयङ्कर नदी को मत तैर।
तां भीषाणां निम्नगां मा तारीः (मा स्म तरः)।

७. तूने तो इस धारा को आज पार किया है, मैंने तो कल ही इसे पार कर लिया था।
त्वं तु इमां धाराम् अद्य अतारीः, अहं तु ह्यः एव एताम् अतरम्।

(२४) स्खल् (सञ्चलने) = फिसलना (परस्मै०)

लट्—	स्खलति	स्खलतः	स्खलन्ति
लिट्—	चस्खाल	चस्खलतुः	चस्खलुः
लुट्—	स्खलिता	स्खलितारौ	स्खलितारः
लृट्—	स्खलिष्यति	स्खलिष्यतः	स्खलिष्यन्ति
लोट्—	स्खलतु (स्खलतात्)	स्खलताम्	स्खलन्तु
लङ्—	अस्खलत्	अस्खलताम्	अस्खलन्
वि० लिङ्—	स्खलेत्	स्खलेताम्	स्खलेयुः
लुङ्[1]—	अस्खालीत्	अस्खालिष्टाम्	अस्खालिषुः
	अस्खालीः	अस्खालिष्टम्	अस्खालिष्ट
	अस्खालिषम्	अस्खालिष्व	अस्खालिष्म
लृङ्—	अस्खलिष्यत्	अस्खलिष्यताम्	अस्खलिष्यन्

अभ्यास

१. मनुष्य बार बार फिसलते हैं, किन्तु फिसल के संभलना अच्छी बात है।
मनुष्याः मुहुर्मुहुः स्खलन्ति, किन्तु स्खलित्वा समुत्थानं वरम्।

---

१ अतो ल्रान्तस्य (अष्टा.७.२.२) से नित्य वृद्धि।

२. पहिले जब लोग धर्म से फिसलते थे, तो प्रायश्चित्त करते थे, अब कोई परवाह नहीं करता।

पुरा यदा मनुष्याः धर्मात् चस्खलुः (अस्खलिषुः, अस्खलन्) तदा प्रायश्चित्तं चक्रुः (अकार्षुः, अकुर्वन्), इदानीं स्खलनम् उपेक्षन्ते।

३. देखिये, फिसल मत जाना, रास्ता फिसलने वाला है।

अवधत्स्व मा स्खालीः (मा स्म स्खलः), पिच्छिलः पन्थाः।

४. कल यहाँ यात्री फिसल गये थे, आज पत्थर लगा दिये, अब कोई नहीं फिसला।

ह्यः अत्र यात्रिणः अस्खलन्, अद्य पाषाणाः स्थापिताः, इदानीं कोऽपि न अस्खालीत्।

(२५) हस् (हसे) हसने=हँसना [परस्मै०]

लट्—हसति	हसतिः	हसन्ति	वि० लिङ्—हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
लिट्—जहास	जहसतुः	जहसुः	लुङ्[1]—अहसीत्	अहसिष्टाम्	अहसिषुः
लुट्—हसिता	हसितारौ	हसितारः	अहसीः	अहसिष्टम्	अहसिष्ट
लृट्—हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति	अहसिषम्	अहसिष्व	अहसिष्म
लोट्—हसतु(हसतात्)	हसताम्	हसन्तु	लृङ्—अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्
लङ्—अहसत्	अहसताम्	अहसन्			

अभ्यास

१. जो सदा हंसते हैं, उनके पास सब लोग आते हैं; जो रोते हैं उनके पास कोई नहीं।

ये सर्वदा हसन्ति तान् जनाः उपसर्पन्ति (अभिनन्दन्ति च), ये रुदन्ति ते न कस्मै चिदपि रोचन्ते।

२. अष्टावक्र को देखकर जनक राजा के सब सभासद् हंसने लगे।

अष्टावक्रम् अवलोक्य जनकस्य राज्ञः समे सभासदः जहसुः (अहसिषुः, अहसन्)।

३. गरीबों को देखकर मत हंसो=विलोक्य निर्धनान् मा हसिष्ट (मा स्म हसत)।

४. जो किसी की बुरी अवस्था पर हंसते हैं, उन पर ईश्वर प्रसन्न नहीं होता।

ये कस्यचिद् दुरवस्थां हसन्ति, तेषु ईश्वरः न प्रसीदति।

५. हम विपत्ति में भी हंसेंगे=वयं विपत्तौ अपि हसितास्मः (हसिष्यामः)।

६. प्रतिदिन हंसो, स्वस्थ रहोगे=प्रत्यहं हसत (हसेत), स्वास्थ्यं प्राप्स्यथ।

---

१. हस् धातु एदित् (=जिसके उपदेशावस्था के अन्तिम एकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ) है अतः लुङ् में 'ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्' अष्टा. ७.२.५. से वृद्धि का निषेध हुआ।

७. भगवान् करे तुम सदा हंसते रहो=ईशकृपया यूयं सदा हसेत (हसत)।

८. यदि तुम सभा में न हंसते तो अध्यक्ष तुम पर क्रुद्ध नहीं होता।
यदि त्वं सभायां न अहसिष्यः तर्हि अध्यक्षः तुभ्यं न अक्रोत्स्यत्।

(२६) क्रीड् (क्रीड़्) विहारे=खेलना [परस्मै०]

लट्—क्रीडति	क्रीडतः	क्रीडन्ति	लङ्—अक्रीडत्	अक्रीडताम्	अक्रीडन्
क्रीडसि	क्रीडथः	क्रीडथ	वि० लिङ्—क्रीडेत्	क्रीडेताम्	क्रीडेयुः
क्रीडामि	क्रीडावः	क्रीडामः	लुङ्—अक्रीडीत्	अक्रीडिष्टाम्	अक्रीडिषुः
लिट्—चिक्रीड	चिक्रीडतुः	चिक्रीडुः	अक्रीडीः	अक्रीडिष्टम्	अक्रीडिष्ट
लुट्—क्रीडिता	क्रीडितारौ	क्रीडितारः	अक्रीडिषम्	अक्रीडिष्व	अक्रीडिष्म
लृट्—क्रीडिष्यति	क्रीडिष्यतः	क्रीडिष्यन्ति	लृङ्—अक्रीडिष्यत्	अक्रीडिष्यताम्	अक्रीडिष्यन्
लोट्—क्रीडतु(क्रीडतात्)	क्रीडताम्	क्रीडन्तु			

अभ्यास

१. छोटे ब्रह्मचारी मैदान में खेलते हैं=लघवः ब्रह्मचारिणः क्रीडाङ्गने क्रीडन्ति।

२. पाण्डव और कौरव एक साथ खेलते थे।
पाण्डवाः कौरवाश्च सम्मिल्य चिक्रीडुः (अक्रीडन्, अक्रीडिषुः)।

३. तेरा मित्र तो बम्बई चला गया, तू कल किसके साथ खेलेगा?
तव मित्रं तु मुम्बापुरीं गतं, त्वं श्वः केन सह क्रीडितासि?

४. हम तो आज बाग में गेंद से खेलेंगे।
वयं तु अद्य उपवने कन्दुकेन क्रीडिष्यामः।

५. मैं बरामदे में किसके साथ खेलूं?=अहं प्रघाणे केन सह क्रीडानि?

६. स्कूल से आकर सब को खेलना चाहिये।=विद्यालयात् आगत्य सर्वे क्रीडेयुः।

७. दुष्ट लड़कों के साथ मत खेलना=दुष्टैः बालकैः सह मा क्रीडीः (मा स्म क्रीडः)।

८. यदि तू सब खेल खेलता, तो रूस देश जाता।
यदि त्वं सर्वाः क्रीडाः अक्रीडिष्यः, तर्हि रूसदेशम् अगमिष्यः।

(२७) तप (सन्तापे)=तप करना [परस्मै०]

लट्—तपति	तपतः	तपन्ति	वि० लिङ्—तपेत्	तपेताम्	तपेयुः
लिट्—तताप	तेपतुः	तेपुः	लुङ्—अताप्सीत्	अताप्ताम्	अताप्सुः
लुट्—तप्ता	तप्तारौ	तप्तारः	अताप्सीः	अताप्तम्	अताप्त
लृट्—तप्स्यति	तप्स्यतः	तप्स्यन्ति	अताप्सम्	अताप्स्व	अताप्स्म
लोट्—तपतु(तपतात्)	तपताम्	तपन्तु			
लङ्—अतपत्	अतपताम्	अतपन्	लृङ्—अतप्स्यत्	अतप्स्यताम्	अतप्स्यन्

अभ्यास

१. जो तप करते हैं, वे ही सुखी होते हैं = ये तपः तपन्ति ते एव सुखिनः भवन्ति ।

२. जिन्होंने पूर्वजन्म में तप किया, वे आज मन्त्री बने बैठे, हैं भगतसिंह जैसे तप करके मर गये ।

ये पूर्वजन्मनि तपः तेपुः (अताप्सुः, अतपन्) ते अद्य मन्त्रिपदं भजन्ति, भगतसिंह-सदृशाः तपन्तः मृत्युम् प्रापन् ।

३. तप करो, तप का फल उत्तम होता है = तपत (तपेत), तपसः फलं श्रेष्ठं भवति ।

४. हम विद्या के लिये तप करेंगे = वयं विद्यायै तप्स्यामः (तप्तास्मः) ।

५. मैंने बचपन में बहुत तप किया, इसलिये थोड़ा सा पढ़ लिया ।
अहं बाल्ये भृशम् अतपम् (अताप्सम्), अतः किञ्चित् अपठम् (अपठिषम्) ।

६. यदि आप लोग तप करते तो व्याकरण जान लेते ।
यदि भवन्तः अतप्स्यन् तर्हि व्याकरणम् अवापमिष्यन् ।

७. लोगों को दिखाने के लिये तप मत कर ।
लोकान् दर्शयितुं मा ताप्सीः (मा स्म तपः) ।

८. पार्वती ने तप किया, इसलिये शिव जैसा पति पाया ।
पार्वती तपः तताप अतएव शिवसदृशं भर्तारम् अलभत । (लेभे)

९. उस दढ़ियल ने कल पाँच अग्नियों के बीच तप किया ।
सः जटिलः ह्यः पञ्चाग्नीनां मध्ये तपः अतपत् ।

अब हम तुम्हें आत्मनेपदी धातुओं के रूप समझाते हैं । त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि और महिङ् इन नौ प्रत्ययों का नाम आत्मनेपद है । किसी भी शब्द के अन्तिम अच् (=स्वर) को [और उसके बाद कोई व्यञ्जन (=हल्) अक्षर आ जावे तो उस व्यञ्जन सहित स्वर को] व्याकरण में 'टि' कहते हैं ।[1] जैसे 'राम' शब्द में 'अ' टि । 'शरद्' शब्द में 'अद्' टि इत्यादि । आत्मनेपदी धातुओं के रूपों में जो आमनेपद प्रत्यय लगाते हैं उनके 'टि' भाग को [जैसे 'त' के अ को, 'आताम्' के आम् को] टित् लकारों में (=लट्, लिट्, लुट्, लृट् आदि में) 'ए' आदेश हो जाता है[2] । ङित् लकारों में (=लङ् आदि में) ऐसा नहीं होता ।

---

१. 'अचोऽन्त्यादि टि' अष्टा. १.१.६४.

२. टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ अष्टा. ३.४.७९.

(२८) मुद् (हर्षे)=प्रसन्न होना (आत्मनेपदी)

लट्			लङ्		
मोदते	मोदेते	मोदन्ते	अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे	अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्
मोदे	मोदावहे	मोदामहे	अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि

लिट्			वि० लिङ्		
मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्
			मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्
			मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि

लुट्		
मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः
मोदितासे	मोदितासाथे	मोदिताध्वे
मोदिताहे	मोदितास्वहे	मोदितास्महे

लुङ्		
अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत
अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिढ्वम् / अमोदिद्वम्
अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि

लृट्		
मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते
मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे
मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे

लृङ्		
अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त
अमोदिष्यथाः	अमोदिष्येथाम्	अमोदिष्यध्वम्
अमोदिष्ये	अमोदिष्यावहि	अमोदिष्यामहि

लोट्		
मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्
मोदै	मोदावहै	मोदामहै

अभ्यास

१. बच्चे लड्डुओं से खुश होते हैं=बालकाः मोदकैः मोदन्ते ।

२. हनुमान को देखकर सीता प्रसन्न हुई=हनुमन्तं दृष्ट्वा सीता मुमुदे ।

३. कल जब मेरा मित्र आयेगा, तब मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा ।
श्वः यदा मम मित्रम् आगन्ता तदा अहं भृशं मोदिताहे ।

४. वे सब आज माता पिता को देखकर प्रसन्न होंगे ।
ते अद्य पितरौ दृष्ट्वा मोदिष्यन्ते ।

५. मेरी बातों पर ध्यान न देवें, आप सब प्रसन्न होवें ।
मम वार्त्तासु ध्यानं न यच्छन्तु, भवन्तः मोदन्ताम् ।

६. सूची में अपना नाम देखकर कल तू बहुत प्रसन्न हुआ था ।
सूच्यां स्वं नाम अवलोक्य ह्यः त्वम् अत्यन्तम् अमोदथाः ।

७. इन सबको प्रसन्न होना चाहिये, आज अवकाश है ।
एते मोदेरन्, अद्य अवकाशः अस्ति ।

८. अरे ! अभी से मत प्रसन्न हो, परीक्षाफल आने दे ।
अयि ! इदानीम् मा मोदिष्ठाः (मा स्म मोदथाः), परीक्षाफलम् आगच्छेत् ।

९. अपने मित्र के पत्र को पाकर आज मुझे बहुत प्रसन्ता हुई ।
स्वस्य मित्रस्य पत्रम् प्राप्य अद्य अहं नितराम् अमोदिषि ।

१०. यदि आप प्रसन्न होते, तो हम सब भी बहुत प्रसन्न होते ।
यदि भवान् अमोदिष्यत तर्हि वयम् अपि सुतराम् अमोदिष्यामहि ।

(२९) यत् (यती) प्रयत्ने=प्रयत्न करना [आत्मनेपदी]

लट्

यतते	यतेते	यतन्ते
यतसे	यतेथे	यतध्वे
यते	यतावहे	यतामहे

लिट्

येते	येताते	येतिरे

लुट्

यतिता	यतितारौ	यतितारः
यतितासे	यतितासाथे	यतिताध्वे
यतिताहे	यतितास्वहे	यतितास्महे

लृट्

यतिष्यते	यतिष्येते	यतिष्यन्ते
यतिष्यसे	यतिष्येथे	यतिष्यध्वे
यतिष्ये	यतिष्यावहे	यतिष्यामहे

लोट्

यतताम्	यतेताम्	यतन्ताम्
यतस्व	यतेथाम्	यतध्वम्
यतै	यतावहै	यतामहै

लङ्

अयतत	अयतेताम्	अयतन्त
अयतथाः	अयतेथाम्	अयतध्वम्
अयते	अयतावहि	अयतामहि

वि० लिङ्

यतेत	यतेयाताम्	यतेरन्
यतेथाः	यतेयाथाम्	यतेध्वम्
यतेय	यतेवहि	यतेमहि

लुङ्

अयतिष्ट	अयतिषाताम्	अयतिषत
अयतिष्ठाः	अयतिषाथाम्	अयतिध्वम्
अयतिषि	अयतिष्वहि	अयतिष्महि

लृङ्

अयतिष्यत	अयतिष्येताम्	अयतिष्यन्त
अयतिष्यथाः	अयतिष्येथाम्	अयतिष्यध्वम्
अयतिष्ये	अयतिष्यावहि	अयतिष्यामहि

अभ्यास

१. सब छात्र परीक्षा में उत्तीर्ण होने का यत्न करते हैं ।
सर्वे छात्राः परीक्षाम् उत्तरीतुं यतन्ते ।

२. भरत ने राम को मनाने का यत्न किया=भरतः रामम् अनुनेतुं येते ।

३. कल मैं वहाँ जाने का प्रयत्न करूँगा=श्वः अहं तत्र गमनाय यतिताहे ।

४. क्या आज तुम सब मेरे पास आने का प्रयत्न करोगे ?
किमद्य यूयं मम समीपम् आगन्तुं यतिष्यध्वे ?

५. मन लगाकर व्याकरण पढ़ने का यत्न करो।
दत्तचित्ताः भूत्वा व्याकरणं पठितुं यतध्वम्।

६. कल मैंने बड़ा यत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुआ।
ह्यः अहं नितराम् अयते किन्तु सफलो नैव अभवम्।

७. आप सबको मिलकर यत्न करना चाहिये, कार्य अवश्य होगा।
भवन्तः सङ्गत्य यतेरन् कार्यम् अवश्यं सेत्स्यति।

८. आज तूने मन्त्र याद करने का यत्न नहीं किया।
अद्य त्वं मन्त्रान् स्मर्तुं न अयतिष्ठाः।

९. यदि तू यत्न करता, तो उनको लाने में अवश्य सफल होता।
यदि त्वम् अयतिष्यथाः, तर्हि तान् आनेतुम् अवश्यम् सफलः अभविष्यः।

१०. यह टूट गया है, यत्न मत कर, अब नहीं जुड़ेगा।
इदं भग्नम् अस्ति, मा यतिष्ठाः (मा स्म यतथाः), अधुना न संयोक्ष्यते।

(३०) शकि (=शङ्क्) शङ्कायाम् [शङ्का करना]

जिस धातु के उपदेशावस्था (=मूलपाठ) में वर्त्तमान अन्तिम ह्रस्व इकार का लोप (=इत्सञ्ज्ञा के बाद लोप) हो जाता है, उस धातु के बचे हुए स्वर (=अच्) के बाद न् (=नुम्) अक्षर आ जाता है[1], और फिर उस न् के स्थान पर अनुस्वार आदेश होता है, और उस अनुस्वार के स्थान पर परले व्यञ्जन के अनुसार उस उस वर्ग का पञ्चम अक्षर हो जाता है[2], जैसे शकि→शक्→शन्क्→शंक्→शङ्क्=शङ्क्। यही नियम सर्वत्र इदित् [=उपदेशावस्था में इकारान्त (ह्रयच्)] धातुओं के विषय में ध्यान रखना चाहिये।

	लट्	
शङ्कते	शङ्केते	शङ्कन्ते
शङ्कसे	शङ्केथे	शङ्कध्वे
शङ्के	शङ्कावहे	शङ्कामहे
	लिट्	
शशङ्के	शशङ्काते	शशङ्किरे
	लुट्	
शङ्किता	शङ्कितारौ	शङ्कितारः
शङ्कितासे	शङ्कितासाथे	शङ्किताध्वे
शङ्किताहे	शङ्कितास्वहे	शङ्कितास्महे

	लृट्	
शङ्किष्यते	शङ्किष्येते	शङ्किष्यन्ते
शङ्किष्यसे	शङ्किष्येथे	शङ्किष्यध्वे
शङ्किष्ये	शङ्किष्यावहे	शङ्किष्यामहे
	लोट्	
शङ्कताम्	शङ्केताम्	शङ्कन्ताम्
शङ्कस्व	शङ्केथाम्	शङ्कध्वम्
शङ्कै	शङ्कावहै	शङ्कामहै

१. इदितो नुम् धातोः। अष्टा. ७.१.५८.
२. 'नश्चापदान्तस्य झलि'; 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' अष्टा. ८.३.२४., ८.४.५८.

लङ्			लुङ्		
अशङ्कत	अशङ्केताम्	अशङ्कन्त	अशङ्किष्ट	अशङ्किषाताम्	अशङ्किषत
अशङ्कथाः	अशङ्केथाम्	अशङ्कध्वम्	अशङ्किष्ठाः	अशङ्किषाथाम्	अशङ्किध्वम्
अशङ्के	अशङ्कावहि	अशङ्कामहि	अशङ्किषि	अशङ्किष्वहि	अशङ्किष्महि
वि० लिङ्			लृङ्		
शङ्केत	शङ्केयाताम्	शङ्केरन्	अशङ्किष्यत	अशङ्किष्येताम्	अशङ्किष्यन्त
शङ्केथाः	शङ्केयाथाम्	शङ्केध्वम्	अशङ्किष्यथाः	अशङ्किष्येथाम्	अशङ्किष्यध्वम्
शङ्केय	शङ्केवहि	शङ्केमहि	अशङ्किष्ये	अशङ्किष्यावहि	अशङ्किष्यामहि

अभ्यास

१. तू इस कार्य में व्यर्थ ही शङ्का करता है=त्वम् अस्मिन् कर्मणि व्यर्थम् एव शङ्कसे ।

२. रावण को राम के आने की शङ्का नहीं थी=रावणः रामागमनं न शशङ्के ।

३. कल वे ईश्वर की व्यापकता के विषय में शङ्का करेंगे ।
श्वः ते ईश्वरस्य व्यापकतायाः विषये शङ्कितारः ।

४. आज मैं शङ्का करूंगा, तू उत्तर देना=अद्य अहं शङ्किष्ये, त्वम् उत्तरं दास्यसि ।

५. आप शङ्का करें, मैं उत्तर अवश्य दूंगा ।
भवन्तः शङ्कन्ताम्, अहम् अवश्यम् उत्तरिष्यामि ।

६. कल मैंने जिस बात की शङ्का की थी वही हुई ।
ह्यः अहं यां वार्त्ताम् अशङ्के सा एव अभवत् ।

७. तुझे मेरे घर भोजन करने में शङ्का नहीं करनी चाहिये ।
त्वम् मम गृहे भोजनाय न शङ्केथाः ।

८. आज मैंने मानव के चन्द्रमा पर पहुंचने में शङ्का की थी, किन्तु उसने समाधान कर दिया ।
अद्य अहं मानवस्य चन्द्रगमने अशङ्किषि, किन्तु सः समाधानम् अकार्षीत् ।

९. यदि वह सूर्य के घूमने के विषय में शङ्का करता, तो मैं उसे समझा देता ।
यदि सः सूर्यघूर्णने अशङ्किष्यत, तर्हि अहं तम् अबोधयिष्यम् ।

१०. उपासना में शङ्का मत कर=उपासनायां मा शङ्किष्ठाः (मा स्म शङ्कथाः) ।

इसी प्रकार की कुछ अन्य आत्मनेपदी धातुओं के भी अभ्यास करवायेंगे । जहाँ रूप में कोई भेद है वहां तो उस उस लकार के पूरे रूप लिखेंगे, अन्यथा केवल प्रथम पुरुष के ही रूप लिखेंगे ।

(३१) वृत् (वृतु) वर्त्तने [सत्ता=होना, बरतना] आत्मने०

वृत् धातु यद्यपि आत्मनेपदी है तथापि लृट्, लृङ् और लुङ् इन तीन लकारों

में इससे विकल्प से परस्मैपद प्रत्यय भी होते हैं[1] फलतः तीनों लकारों में दो दो रूप बनेंगे। जब परस्मैपद प्रत्यय होंगे तब (लृट्, लृङ् में) इड् आगम भी नहीं होगा[2]। लुङ् में परस्मैपदों के पक्ष में च्लि के स्थान पर अ (=अङ्) होगा[3]। आत्मनेपदों में तो स्(=सिच्) ही रहेगा।

लट्

वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

लिट्

ववृते	ववृताते	ववृतिरे

लुट्

वर्तिता	वर्तितारौ	वर्तितारः

लृट्

आत्म.	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे
पर.	वर्त्स्यति	वर्त्स्यतः	वर्त्स्यन्ति
	वर्त्स्यसि	वर्त्स्यथः	वर्त्स्यथ
	वर्त्स्यामि	वर्त्स्यावः	वर्त्स्यामः

लोट्

वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्

लङ्

अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त

वि० लिङ्

वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्

लुङ्

आत्म.	अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत
	अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिढ्वम्
	अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि
पर.	अवृतत्	अवृतताम्	अवृतन्
	अवृतः	अवृततम्	अवृतत
	अवृतम्	अवृताव	अवृताम

लृङ्

(आत्म०)—

अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

(परस्मै०)—

अवर्त्स्यत्	अवर्त्स्यताम्	अवर्त्स्यन्
अवर्त्स्यः	अवर्त्स्यतम्	अवर्त्स्यत
अवर्त्स्यम्	अवर्त्स्याव	अवर्त्स्याम

इस धातु का वाक्यों में अभ्यास, उपसर्ग सहित धातुओं के अभ्यास के प्रसङ्ग में करायेंगे।

(३२) वृध् (वृधु) वृद्धौ [=बढ़ना] आत्मने०

वृत् धातु के समान ही वृध् धातु के भी लृट्, लृङ् और लुङ् में आत्मनेपद और परस्मैपद के दो-दो रूप बनेंगे।

---

१. 'द्युद्भ्यो लुङि', 'वृद्भ्यः स्यसनोः'। अष्टा. १.३.९१,९२॥

२. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः। अष्टा. ७.२.५९॥

३. पुषादिद्युताद्य् लृदितः परस्मैपदेषु। (अष्टा. ३.१.५५)

लट्

वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते

लिट्

ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे

लुट्

वर्धिता	वर्धितारौ	वर्धितारः

लृट्

आत्म.	वर्धिष्यते	वर्धिष्येते	वर्धिष्यन्ते
	वर्धिष्यसे	वर्धिष्येथे	वर्धिष्यध्वे
	वर्धिष्ये	वर्धिष्यावहे	वर्धिष्यावहे
पर.	वर्त्स्यति	वर्त्स्यतः	वर्त्स्यन्ति
	वर्त्स्यसि	वर्त्स्यथः	वर्त्स्यथ
	वर्त्स्यामि	वर्त्स्यावः	वर्त्स्यामः

लोट्

वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्

लङ्

अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त

वि० लिङ्

वर्धेत	वर्धेयाताम्	वर्धेरन्

लुङ्

आत्म.	अवर्धिष्ट	अवर्धिषाताम्	अवर्धिषत
	अवर्धिष्ठाः	अवर्धिषाथाम्	अवर्धिढ्वम्
	अवर्धिषि	अवर्धिष्वहि	अवर्धिष्महि
पर.	अवृधत्	अवृधताम्	अवृधन्
	अवृधः	अवृधतम्	अवृधत
	अवृधम्	अवृधाव	अवृधाम

लृङ्

(आत्मने०)—

अवर्धिष्यत	अवर्धिष्येताम्	अवर्धिष्यन्त
अवर्धिष्यथाः	अवर्धिष्येथाम्	अवर्धिष्यध्वम्
अवर्धिष्ये	अवर्धिष्यावहि	अवर्धिष्यामहि

(परस्मै०)—

अवर्त्स्यत्	अवर्त्स्यताम्	अवर्त्स्यन्
अवर्त्स्यः	अवर्त्स्यतम्	अवर्त्स्यत
अवर्त्स्यम्	अवर्त्स्याव	अवर्त्स्याम

अभ्यास

१. इस लड़के का भार प्रतिदिन बढ़ता है।
अस्य बालकस्य भारः प्रतिदिनं वर्धते।

२. राम के वन जाने पर वन के वृक्ष खूब बढ़े।
वनं गतवति रामे आरण्याः वृक्षाः भृशं ववृधिरे।

३. तुम्हारा वजन इस महीने में बढ़ेगा =तव भारः अस्मिन् मासे वर्धिता।

४. आज खुशी के कारण उसका सेर खून बढ़ जायेगा।
अद्य मोदेन तस्य सेटकं रक्तं वर्द्धिष्यते (वर्त्स्यति)।

५. तुम सब यश के साथ बढ़ो=यूयं यशसा वर्धध्वम्।

६. यह पौधा कल आधा अङ्गुल बढ़ा =अयं क्षुपः ह्यः अर्धाङ्गुलमात्रम् अवर्धत।

७. तुम सबको व्रताभ्यास में भी आगे बढ़ना चाहिये।
यूयं व्रताभ्यासे अपि अग्रं वर्धध्वम्।

८. क्या आज तू दौड़ने में सबसे आगे बढ़ा था ?
किम् अद्य त्वं धावने सर्वेभ्यः अवर्धिष्ठाः।

९. आगे मत बढ़, सिंह का भय है।
मा वर्धिष्ठाः (मा वृधः) मा स्म वर्धथाः, सिंहात् भयम् अस्ति।

१०. यदि वे दोनों आगे बढ़ जाते तो जीत जाते।
यदि तौ अवर्धिष्येताम् तर्हि व्यजेष्येताम्।

(३३) रुच् (दीप्तावभिप्रीतौ च) चमकना, अच्छा लगना [आत्मने०]

रुच् धातु से लुङ् लकार में एक पक्ष में परस्मैपद प्रत्यय भी होंगे[1]।

लट्—रोचते	रोचेते	रोचन्ते
लिट्—रुरुचे	रुरुचाते	रुरुचिरे
लुट्—रोचिता	रोचितारौ	रोचितारः
लृट्—रोचिष्यते	रोचिष्येते	रोचिष्यन्ते
लोट्—रोचताम्	रोचेताम्	रोचन्ताम्
लङ्—अरोचत	अरोचेताम्	अरोचन्त
वि०लिङ्—रोचेत	रोचेयाताम्	रोचेरन्

(आत्म०)— लुङ्

अरोचिष्ट	अरोचिषाताम्	अरोचिषत
अरोचिष्ठाः	अरोचिषाथाम्	अरोचिढ्वम्
अरोचिषि	अरोचिष्वहि	अरोचिष्महि
(पर०) अरुचत्	अरुचताम्	अरुचन्
अरुचः	अरुचतम्	अरुचत
अरुचम्	अरुचाव	अरुचाम

लृङ्

अरोचिष्यत	अरोचिष्येताम्	अरोचिष्यन्त

अभ्यास[2]

१. मुझे वह अच्छा नहीं लगता = मह्यं सः न रोचते।

२. यक्ष को युधिष्ठिर के उत्तर वाक्य बड़े अच्छे लगे।
यक्षाय युधिष्ठिरस्य उत्तरवाक्यानि अत्यन्तं रुरुचिरे।

३. कल उस बाग के आम सबको बहुत अच्छे लगेंगे।
श्वः तस्य उपवनस्य रसालानि सर्वेभ्यः भृशं रोचितारः।

४. क्या सभा में आज मेरी उपस्थिति सबको अच्छी लगेगी ?
किं सभायाम् अद्य मम उपस्थितिः सर्वेभ्यः रोचिष्यते ?

५. इसको पढ़ाई अच्छी लगे, ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।
अस्मै अध्ययनं रोचताम्, इति परमेश्वरं प्रार्थये अहम्।

६. कल तेरी बातें देवेन्द्र को अच्छी नहीं लगीं = ह्यः तव वार्ताः देवेन्द्राय न अरोचन्त।

७. साक्षात्कार में नम्रता से उत्तर देना और सबके मन को भा जाना।
साक्षात्कारे विनयेन उत्तराणि यच्छ सर्वेभ्यश्च रोचस्व।

---

१. द्युद्भ्यो लुङि। अष्टा० १।३।९१

२. रुच् धातु के प्रयोग-वाक्यों में यह ध्यान रखना चाहिये कि जिसको कोई वस्तु अच्छी लगती है उसमें चतुर्थी विभक्ति आती है। [रुच्यर्थानां प्रीयमाणः; चतुर्थी सम्प्रदाने, अष्टा० १।४।३३; २।३।१३] अच्छी लगने वाली वस्तु कर्ता होती है।

८. मेरी समझ में यह घी तुम्हें अच्छा लगना चाहिये ।
मम विचारणायाम् इदं सर्पिः तुभ्यं रोचेत ।
९. आज मुझे भोजन बिल्कुल अच्छा नहीं लगा ।
अद्य मह्यं भोजनं किञ्चिदपि न अरोचिष्ट (अरुचत्)
१०. यदि भोजन सबको अच्छा लगता, तो कोई न उठता ।
यदि भोजनं समेभ्यः अरोचिष्यत, तर्हि कोऽपि न उदस्थास्यत् ।
११. पापी किसी को अच्छा न लगे ।
पापी कस्मैचिदपि मा रोचिष्ट (मा रुचत्, मा स्म रोचत) ।
१२. जन्म से अन्धा होने के कारण मैं अपनी माँ को कभी अच्छा नहीं लगा ।
जन्मना अन्धत्वात् स्वजनन्यै अहं कदापि न अरोचे (अरुचम्/अरोचिषि) ।

(३४) द्युत् (दीप्तौ)=चमकना [आत्मने०]

द्युत् धातु के लुङ् में पूर्ववत् आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होंगे ।[1]

लट्—द्योतते	द्योतेते	द्योतन्ते
द्योतसे	द्योतेथे	द्योतध्वे
द्योते	द्योतावहे	द्योतामहे
लिट्—दिद्युते	दिद्युताते	दिद्युतिरे
लुट्—द्योतिता	द्योतितारौ	द्योतितारः
लृट्—द्योतिष्यते	द्योतिष्येते	द्योतिष्यन्ते
लोट्—द्योतताम्	द्योतेताम्	द्योतन्ताम्
लङ्—अद्योतत	अद्योतेताम्	अद्योतन्त
वि. लिङ्—द्योतेत	द्योतेयाताम्	द्योतेरन्

(आत्म०)—	लुङ्	
अद्योतिष्ट	अद्योतिषाताम्	अद्योतिषत
अद्योतिष्ठाः	अद्योतिषाथाम्	अद्योतिध्वम्
अद्योतिषि	अद्योतिष्वहि	अद्योतिष्महि
(पर.)-अद्युतत्	अद्युतताम्	अद्युतन्
अद्युतः	अद्युततम्	अद्युतत
अद्युतम्	अद्युताव	अद्युताम
	लृङ्	
अद्योतिष्यत	अद्योतिष्येताम्	अद्योतिष्यन्त

अभ्यास

१. रात्रि में आकाश में तारे चमकते हैं=रात्रौ आकाशे तारकाः द्योतन्ते ।
२. वह धूमकेतु सौ वर्ष पहिले चमका था ।
सः धूमकेतुः शतात् वर्षेभ्यः प्राक् दिद्युते ।
३. कल यह तारा इस स्थान पर चमकेगा ।
श्वः इयं तारा अस्मिन् स्थाने द्योतिता ।
४. आज वर्षा हो रही है इसलिये खेत में जुगनू नहीं चमकेंगे ।
अद्य वर्षः भवति, अतः क्षेत्रे खद्योताः न द्योतिष्यन्ते ।

---

१. द्युद्भ्यो लुङि । अष्टा० १।३।९१।

५. हे स्नातको ! तुम दोनों ब्रह्मतेज से खूब चमको।
हे स्नातकौ ! युवां ब्रह्मवर्चसेन सुतरां द्योतेथाम् (द्योतेयाथाम्)।

६. कल हम रात्रि में जङ्गल में आ रहे थे, अचानक शेर की आंखें चमकीं।
ह्यः वयं निशायाम् अरण्ये आगच्छन्तः आस्म, अकस्मात् सिंहस्य नेत्रे अद्योतेताम्।

७. ब्रह्मचर्य के पालन से तो छात्रों के चेहरे चमकने चाहियें।
ब्रह्मचर्यस्य पालनेन तु छात्राणां मुखानि द्योतेरन्।

८. बहुत साफ किया, पर आज ये बरतन चमके ही नहीं।
भृशम् अमार्जिषम् (अमार्क्षम्) परम् अद्य एतानि पात्राणि न अद्योतिषत (अद्युतन्)।

९. यदि चार दिन सूर्य चमकता, तो समिधाएं सूख जातीं।
यदि चतुरः दिवसान् यावत् सूर्यः अद्योतिष्यत तर्हि समिधः अशोक्ष्यन्।

१०. इतना मत चमक, कि लोग तुझसे जलने लग जायें।
एवं मा द्योतिष्ठाः (मा द्युतः; मा स्म द्योतथाः) यत् जनाः तुभ्यम् ईर्ष्येयुः।

(३५) सेव् (षेवृ) सेवने=सेवा करना [आत्मनेपदी]

इस धातु का प्रयोग सेवा करना और सेवन करना अर्थात् प्रयोग में लाना दोनों अर्थों में होता है।

लट्—सेवते	सेवेते	सेवन्ते	लङ्—असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
लिट्—सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे	वि. लिङ्—सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
लुट्—सेविता	सेवितारौ	सेवितारः	लुङ्—असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
लृट्—सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते	लृङ्—असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
लोट्—सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्			

अभ्यास

१. शिष्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरुओं की सेवा करते हैं।
शिष्याः ज्ञानप्राप्तये गुरून् सेवन्ते।

२. दयानन्द ने गुरु विरजानन्द की खूब सेवा की।
दयानन्दः गुरुं विरजानन्दं सुतरां सिषेवे।

३. कल मैं इन पीली गोलियों का सेवन करूँगा।
श्वः अहम् एताः पीतवर्णाः गुटिकाः सेविताहे।

४. जो आज मेरी सेवा करेगा, उसे मैं जलेबी दूंगा।
यः अद्य मां सेविष्यते, तस्मै अहं कुण्डलिनीः दास्यामि।

५. दर्शनशास्त्र में पाण्डित्य चाहते हो, तो ईश्वरचन्द्र जी की सेवा करो।
दर्शनशास्त्रे पाण्डित्यम् इच्छथ चेत् ईश्वरचन्द्रमहाभागं सेवध्वम्।

६. कल उस रोगी ने विजयपर्पटी का सेवन किया था।
ह्यः सः रुग्णः विजयपर्पटीम् असेवत।

७. तुमको तन मन धन से मातापिता की सेवा करनी चाहिये।
त्वं देहमनोद्रविणैः पितरौ सेवेथाः।

८. क्या हम दोनों ने आज उपदेशकों की सेवा नहीं की?
किम् आवाम् अद्य उपदेशकान् न **असेविष्वहि**।

९. जगत् को मिथ्या कहने वाले और अपने आपको ब्रह्म मानने वालों की कभी सेवा मत कर।=जगत् मिथ्याभाषिणः स्वात्मानं च ब्रह्म मन्यमानान् कदापि मा सेविष्ठाः (मा स्म सेवथाः)।

१०. यदि तू दिनभर धूप का सेवन करता, तो रोमछिद्र खुल जाते।
यदि त्वम् अखिलं दिनम् आतपम् असेविष्यथाः, तर्हि रोमरन्ध्राणि उदघटिष्यन्त

(३६) क्षम्[1] (क्षमूष्) सहने=[सहन करना. क्षमा करना] आत्मने०

लट्

क्षमते	क्षमेते	क्षमन्ते
क्षमसे	क्षमेथे	क्षमध्वे
क्षमे	क्षमावहे	क्षमामहे

लिट्

चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे

लुट्

(१)	क्षमिता	क्षमितारौ	क्षमितारः
	क्षमितासे	क्षमितासाथे	क्षमिताध्वे
	क्षमिताहे	क्षमितास्वहे	क्षमितास्महे
(२)	क्षन्ता	क्षन्तारौ	क्षन्तारः
	क्षन्तासे	क्षन्तासाथे	क्षन्ताध्वे
	क्षन्ताहे	क्षन्तास्वहे	क्षन्तास्महे

लृट्

(१)	क्षमिष्यते	क्षमिष्येते	क्षमिष्यन्ते
	क्षमिष्यसे	क्षमिष्येथे	क्षमिष्यध्वे
	क्षमिष्ये	क्षमिष्यावहे	क्षमिष्यामहे
(२)	क्षंस्यते	क्षंस्येते	क्षंस्यन्ते
	क्षंस्यसे	क्षंस्येथे	क्षंस्यध्वे
	क्षंस्ये	क्षंस्यावहे	क्षंस्यामहे

लोट्

क्षमताम्	क्षमेताम्	क्षमन्ताम्
क्षमस्व	क्षमेथाम्	क्षमध्वम्
क्षमै	क्षमावहै	क्षमामहै

लङ्

अक्षमत	अक्षमेताम्	अक्षमन्त
अक्षमथाः	अक्षमेथाम्	अक्षमध्वम्
अक्षमे	अक्षमावहि	अक्षमामहि

वि० लिङ्

क्षमेत	क्षमेयाताम्	क्षमेरन्
क्षमेथाः	क्षमेयाथाम्	क्षमेध्वम्
क्षमेय	क्षमेवहि	क्षमेमहि

---

१. क्षम् धातु के लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् इन चार लकारों में इ (इड्आगम) के विकल्प (स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा अष्टा. ७।२।४४।।) से होने के कारण दो-दो रूप बनेंगे।

लुङ्			(१) लृङ्		
(१) अक्षमिष्ट	अक्षमिषाताम्	अक्षमिषत	अक्षमिष्यत	अक्षमिष्येताम्	अक्षमिष्यन्त
अक्षमिष्ठाः	अक्षमिषाथाम्	अक्षमिढ्वम्	अक्षमिष्यथाः	अक्षमिष्येथाम्	अक्षमिष्यध्वम्
अक्षमिषि	अक्षमिष्वहि	अक्षमिष्महि	अक्षमिष्ये	अक्षमिष्यावहि	अक्षमिष्यामहि
(२) अक्षंस्त	अक्षंसाताम्	अक्षंसत	(२) अक्षंस्यत	अक्षंस्येताम्	अक्षंस्यन्त
अक्षंस्थाः	अक्षंसाथाम्	अक्षंध्वम्	अक्षंस्यथाः	अक्षंस्येथाम्	अक्षंस्यध्वम्
अक्षंसि	अक्षंस्वहि	अक्षंस्महि	अक्षंस्ये	अक्षंस्यावहि	अक्षंस्यामहि

अभ्यास

१. मैं अब तो तुम्हें क्षमा करता हूं, आगे ऐसा न हो।
अहम् अधुना तु त्वां क्षमे, परस्तात् मैवं भूत्।

२. श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को बार-बार क्षमा किया।
श्रीकृष्णः शिशुपालं पुनः पुनः चक्षमे।

३. कल प्रधानमन्त्री सब अपराधियों को क्षमा कर देगा।
श्वः प्रधानमन्त्री सर्वान् अपराधिनः क्षमिता (क्षन्ता)।

४. आज तुम्हारे पिता तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा कर देंगे।
अद्य तव पिता तव सर्वान् अपराधान् क्षंस्यते (क्षमिष्यते)।

५. राजनीति के व्यवहार में कोई किसी को क्षमा नहीं करता।
राजनीतिव्यवहारे कोऽपि कमपि न क्षमते।

६. हे दयालु! मेरी गलतियों को क्षमा कर दे।
हे दयालो! मम सर्वाः त्रुटीः क्षमस्व।

७. कल जज ने उस हत्यारे को क्षमा नहीं किया।
ह्यः न्यायाधीशः तं हन्तारं न अक्षमत।

८. स्वामी दयानन्द ने जगन्नाथ को क्षमा कर दिया।
स्वामी दयानन्दः जगन्नाथं चक्षमे (अक्षमत, अक्षमिष्ट, अक्षंस्त)।

९. ये बच्चे हैं, आपको इनको क्षमा कर देना चाहिये।
इमे बालकाः सन्ति, भवान् एतान् क्षमेत।

१०. इस दुष्ट को क्षमा मत कर=इमं दुष्टं मा क्षमिष्ठाः (क्षंस्थाः, मा स्म क्षमथाः)।

११. आज तो मैंने उन्हें क्षमा कर दिया=अद्य तु अहम् एतान् अक्षमिषि (अक्षंसि)।

१२. यदि पृथ्वीराज मुहम्मदगौरी को क्षमा न करता, तो भारत की दुर्दशा न होती।
यदि पृथ्वीराजः मुहम्मदगौरी इति नामकं यवनं न अक्षमिष्यत (अक्षंस्यत) तर्हि भारतवर्षस्य दुर्दशा न अभविष्यत्।

१३. बार बार अपराध करने वाले को कौन क्षमा करे।
असकृत् अपराध्यन्तं कः क्षमेत।

(३७) रम् (रमु) क्रीडायाम्=[खेलना, रमण करना] आत्मने०

लट्—रमते	रमेते	रमन्ते	लङ्—अरमत	अरमेताम्	अरमन्त
लिट्—रेमे	रेमाते	रेमिरे	वि. लिङ्—रमेत	रमेयाताम्	रमेरन्
लुट्—रन्ता	रन्तारौ	रन्तारः	लुङ्—अरंस्त	अरंसाताम्	अरंसत
लृट्—रंस्यते	रंस्येते	रंस्यन्ते	अरंस्थाः	अरंसाथाम्	अरंध्वम्
लोट्—रमताम्	रमेताम्	रमन्ताम्	अरंसि	अरंस्वहि	अरंस्महि
			लृङ्—अरंस्यत	अरंस्येताम्	अरंस्यन्त

रम् धातु से पूर्व वि, आङ्, परि, और उप इनमें से कोई उपसर्ग लगा हो तो रम् से परस्मैपद प्रत्यय होते हैं।[1]

वि+रम् (परस्मै०)			आ+रम् (परस्मै०)		
लट्—विरमति	विरमतः	विरमन्ति	लट्—आरमति	आरमतः	आरमन्ति
लिट्—विरराम	विरेमतुः	विरेमुः	लिट्—आरराम	आरेमतुः	आरेमुः
लुट्—विरन्ता	विरन्तारौ	विरन्तारः	लुट्—आरन्ता	आरन्तारौ	आरन्तारः
लृट्—विरंस्यति	विरंस्यतः	विरंस्यन्ति	लृट्—आरंस्यति	आरंस्यतः	आरंस्यन्ति
लोट्—विरमतु (विरमतात्)	विरमताम्	विरमन्तु	लोट्—आरमतु (आरमतात्)	आरमताम्	आरमन्तु
लङ्—व्यरमत्	व्यरमताम्	व्यरमन्	लङ्—आरमत्	आरमताम्	आरमन्
वि. लिङ्—विरमेत्	विरमेताम्	विरमेयुः	वि. लिङ्—आरमेत्	आरमेताम्	आरमेयुः
लुङ्[2]—व्यरंसीत्	व्यरंसिष्टाम्	व्यरंसिषुः	लुङ्—आरंसीत्	आरंसिष्टाम्	आरंसिषुः
व्यरंसीः	व्यरंसिष्टम्	व्यरंसिष्ट	आरंसीः	आरंसिष्टम्	आरंसिष्ट
व्यरंसिषम्	व्यरंसिष्व	व्यरंसिष्म	आरंसिषम्	आरंसिष्व	आरंसिष्म
लृङ्—व्यरंस्यत्	व्यरंस्यताम्	व्यरंस्यन्	लृङ्—आरंस्यत्	आरंस्यताम्	आरंस्यन्

इसी प्रकार परि+रम् के परिरमति, परिरराम आदि और उप+रम् के उपरमंति; उपरराम आदि रूप बनेंगे।

अभ्यास

१. योगी समाधि में ईश्वर के साथ रमण करते हैं।
   योगिनः समाधौ ईश्वरेण सह रमन्ते।

२. अच्छे आदमियों का मन नगर में रमण नहीं करेगा।
   साधूनां चित्तं नगरे न रंस्यते (रन्ता)।

---

१. व्याङ्परिभ्यो रमः, उपाच्च। अष्टा० १।३।८३, ८४।

२ यमरमनमातां सक् च (अष्टा० ७.२.७३) से स् (=सक्) आगम हुआ और इट् आगम भी।

३. इस दुर्व्यसन से हट जा=विरम अस्मात् दुर्व्यसनात् ।

४. वह मेरे कहने से कल झगड़े से हट गया ।
सः मम वचनात् ह्यः कलहात् व्यरमत् ।

५. आप लोगों को बुरी आदतों से हट जाना चाहिये ।
भवन्तः दुर्व्यसनेभ्यः विरमेयुः ।

६. विष्णु और मोहन आज जयपुर जाने से रुक गये ।
विष्णुमोहनौ अद्य जयपुरगमनात् व्यरंसिष्टाम् ।

७. यदि तू पहिले कार्य से हट जाता, तो इतना न थकता ।
यदि त्वं पूर्वं कार्यात् व्यरंस्यः, तर्हि एवं परिश्रान्तः न अभविष्यः (तर्हि एवं न पर्यश्रमिष्यः) ।

८. धर्माचरण से कभी मत रुको, पापाचरण की ओर मत झुको,
धर्माचरणात् कदापि मा विरंसीः (मा स्म विरमः), पापाचरणे कदापि मा प्रवर्तिष्ठाः (मा प्रवृतः; मा स्म प्रवर्त्तथाः) ।

९. बहुत मना करने पर भी शिशुपाल गाली देने से नहीं रुका ।
बहुवारितः अपि शिशुपालः गालिप्रदानात् न विरराम ।

१०. मुझे आशा है कि कल तुम इस मुकदमे से हट जाओगे ।
अहम् आशासे यत् श्वः यूयम् अस्मात् अभियोगात् विरन्तास्थ ।

११. हे प्रभो ! मेरा चित्त सदा सत्य में ही लगे ।
हे प्रभो ! मदीयं चित्तं सदा सत्ये ह्येव रमताम् ।

(३८) कपि (=कम्प्) चलने=चलना, काँपना [आत्मने०]

लट्—	कम्पते	कम्पेते	कम्पन्ते
लिट्—	चकम्पे	चकम्पाते	चकम्पिरे
लुट्—	कम्पिता	कम्पितारौ	कम्पितारः
लृट्—	कम्पिष्यते	कम्पिष्येते	कम्पिष्यन्ते
लोट्—	कम्पताम्	कम्पेताम्	कम्पन्ताम्
लङ्—	अकम्पत	अकम्पेताम्	अकम्पन्त
वि. लिङ्—	कम्पेत	कम्पेयाताम्	कम्पेरन्
लुङ्—	अकम्पिष्ट	अकम्पिषाताम्	अकम्पिषत
लृङ्—	अकम्पिष्यत	अकम्पिष्येताम्	अकम्पिष्यन्त

अभ्यास

१. चोर पुलिस वाले को देखकर भय से काँपने लगते हैं ।
चौराः राजपुरुषं दृष्ट्वा भयेन कम्पन्ते ।

२. राम को देखकर राक्षस कांपे=रामम् अवलोक्य राक्षसाः चकम्पिरे (अकम्पन्त; अकम्पिषत) ।

३. वे यदि कश्मीर में बिना कपड़े के जायेंगे तो सर्दी से काँपेंगे।
ते यदि ऋते वस्त्रेभ्यः कश्मीरान् गमिष्यन्ति तर्हि शैत्येन कम्पिष्यन्ते।

४. तुम वीर हो, डाकू के भय से तुम्हें नहीं काँपना चाहिये।
शूराः स्थ, दस्योः भयेन यूयं न कम्पध्वम् (न कम्पेध्वम्)।

५. यहाँ की बर्फीली हवा से तू कल ही काँप गया था, मैं तो आज भी नहीं काँपा।
अत्रत्येन हिममयेन वातेन त्वं ह्यः एव अकम्पथाः, अहं तु अद्यापि न अकम्पिषि।

६. साक्षात्कार के समय प्रश्नों की बौछार से काँपना मत।
साक्षात्कारकाले प्रश्नानां वर्षेण मा कम्पिष्ठाः (मा स्म कम्पथाः)।

७. यदि उस समय तू न कांपता, तो लोग तुझे चोर न समझते।
यदि तदानीं त्वं न अकम्पिष्यथाः, तर्हि जनाः त्वां चोरं न अमंस्यन्त।

(३९) लभ् (डुलभष्) प्राप्तौ=प्राप्त करना, पाना [आत्मने०]

लट्—लभते	लभेते	लभन्ते
लिट्—लेभे	लेभाते	लेभिरे
लुट्—लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
लृट्—लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
लोट्—लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
लङ्—अलभत	अलभेताम्	अलभन्त

वि. लिङ्—लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
लुङ्—अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि
लृङ्—अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त

अभ्यास

१. जो निरन्तर प्रयत्न करते हैं वे ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं।
ये अनवरतं प्रयतन्ते ते परमेश्वरं लभन्ते।

२. नचिकेता ने यमाचार्य से तीन वर प्राप्त किये।
नचिकेताः यमाचार्यात् त्रीन् वरान् लेभे।

३. हम कल गुरुजी से सौ रुपये इनाम प्राप्त करेंगे।
वयं श्वः गुरुचरणेभ्यः शतं रूप्यकाणि पारितोषिकं लब्धास्महे।

४. मैंने कल गाय की सेवा की थी इसलिये मुझे आज दूध मिलेगा।
अहं ह्यः गाम् असेवे अतः अहम् अद्य दुग्धं लप्स्ये।

५. खूब सेवा करो और मेवा पाओ=सुतरां सेवध्वं सुफलं च लभध्वम्।

६. खूब ढूंढा पर मुझे कल चाकू नहीं मिला।
भृशम् अन्वेष्यं परं नाहं ह्यः लवित्रम् अलभे।

७. इस वर्ष तुम्हें परीक्षा में सफलता प्राप्त करनी ही चाहिये।
ऐषमः यूयं परीक्षायां साफल्यं लभेध्वम् एव।

८. आज प्रातः मुझे मेरे मामा का पत्र मिला ।
अद्य प्रातः अहं मम मातुलस्य पत्रम् अलप्सि ।

९. युक्ति से पुरुषार्थ करो और दुःख मत पाओ ।
युक्त्या पुरुषार्थं कुरु दुःखं च मा लब्धाः (मा स्म लभथाः) ।

१०. यदि वे दोनों रोजगार पा जाते तो उनके बच्चे दुःखी न होते ।
यदि तौ आजीविकाम् अलप्स्येतां तर्हि तयोः बालकाः दुःखिनः न अभविष्यन् ।

(४०) त्रै (त्रैङ्) पालने=पालन करना, रक्षा करना [आत्मनेपदी]

लट्—	त्रायते	त्रायेते	त्रायन्ते
	त्रायसे	त्रायेथे	त्रायध्वे
	त्राये	त्रायावहे	त्रायामहे
लिट्—	तत्रे	तत्राते	तत्रिरे
लुट्—	त्राता	त्रातारौ	त्रातारः
लृट्—	त्रास्यते	त्रास्येते	त्रास्यन्ते
लोट्—	त्रायताम्	त्रायेताम्	त्रायन्ताम्
लङ्—	अत्रायत	अत्रायेताम्	अत्रायन्त
वि. लिङ्—	त्रायेत	त्रायेयाताम्	त्रायेरन्
लुङ्—	अत्रास्त	अत्रासाताम्	अत्रासत
	अत्रास्थाः	अत्रासाथाम्	अत्राध्वम्
	अत्रासि	अत्रास्वहि	अत्रास्महि
लृङ्—	अत्रास्यत	अत्रास्येताम्	अत्रास्यन्त

अभ्यास

१. राजा प्रजा की सब चोरों से रक्षा करता है ।
राजा प्रजाः सर्वविधेभ्यः चोरेभ्यः त्रायते ।

२. राम और लक्ष्मण ने यज्ञ की राक्षसों से रक्षा की ।
रामलक्ष्मणौ यज्ञं राक्षसेभ्यः तत्राते ।

३. यदि तू झूठ बोला तो कल मैं तेरी रक्षा नहीं करूँगा ।
यदि त्वम् असत्यं गदितासि तर्हि श्वः अहं त्वां न त्राताहे ।

४. आज तो ये सिपाही मेरी रक्षा करेंगे=अद्य तु एते आरक्षिणः मां त्रास्यन्ते ।

५. बलवान् बनो और अपनी रक्षा आप करो ।
बलवन्तः भवत स्वयं च आत्मानं त्रायध्वम् ।

६. जिनकी कल मैंने रक्षा की थी, वे ही आज वस्त्र पायेंगे ।
यान् ह्यः अहम् अत्राये, ते एव अद्य वस्त्राणि लप्स्यन्ते ।

७. हमको निर्बलों की बलवानों से सदा रक्षा करनी चाहिये ।
वयं निर्बलान् बलवद्भ्यः सदा त्रायेमहि ।

८. आज कुत्तों ने घर की चोरों से रक्षा की ।
अद्य सारमेयाः गृहं चौरेभ्यः अत्रासत ।

९. यदि आप उसे न बचाते, तो उसका प्राणान्त हो जाता ।
यदि भवान् तं न अत्रास्यत, तर्हि तस्य प्राणान्तः अभविष्यत् ।

१०. पापी को दण्ड से मत बचा और पाप करेगा ।
पापिनं दण्डात् मा त्रास्थाः (मा स्म त्रायथाः) अधिकं पापं करिष्यति ।

उभयपदी धातुएं

अब हम उभयपदी धातुओं का प्रयोगाभ्यास करायेंगे। जिन धातुओं से आत्मनेपद प्रत्यय और परस्मैपद प्रत्यय दोनों होते हैं वे धातुएं उभयपदी कहलाती हैं। एक धातु के रूप सब लकारों में देंगे, आगे केवल निर्देश मात्र करेंगे।

(४१) भज् (सेवायाम्)=सेवा करना, भजन करना, ध्यान करना, [उभयपदी]

परस्मैपद

लट्—	भजति	भजतः	भजन्ति
	भजसि	भजथः	भजथ
	भजामि	भजावः	भजामः
लिट्—	बभाज	भेजतुः	भेजुः
लुट्—	भक्ता	भक्तारौ	भक्तारः
	भक्तासि	भक्तास्थः	भक्तास्थ
	भक्तास्मि	भक्तास्वः	भक्तास्मः
लृट्—	भक्ष्यति	भक्ष्यतः	भक्ष्यन्ति
	भक्ष्यसि	भक्ष्यथः	भक्ष्यथ
	भक्ष्यामि	भक्ष्यावः	भक्ष्यामः
लोट्—	भजतु (भजतात्)	भजताम्	भजन्तु
	भज (भजतात्)	भजतम्	भजत
	भजानि	भजाव	भजाम
लङ्—	अभजत्	अभजताम्	अभजन्
	अभजः	अभजतम्	अभजत
	अभजम	अभजाव	अभजाम
वि० लिङ्—	भजेत्	भजेताम्	भजेयुः
	भजेः	भजेतम्	भजेत
	भजेयम्	भजेव	भजेम
लुङ्—	अभाक्षीत्	अभाक्ताम्	अभाक्षुः
	अभाक्षीः	अभाक्तम्	अभाक्त
	अभाक्षम्	अभाक्ष्व	अभाक्ष्म

आत्मनेपद

लट्—	भजते	भजेते	भजन्ते
	भजसे	भजेथे	भजध्वे
	भजे	भजावहे	भजामहे
लिट्—	भेजे	भेजाते	भेजिरे
लुट्—	भक्ता	भक्तारौ	भक्तारः
	भक्तासे	भक्तासाथे	भक्ताध्वे
	भक्ताहे	भक्तास्वहे	भक्तास्महे
लृट्—	भक्ष्यते	भक्ष्येते	भक्ष्यन्ते
	भक्ष्यसे	भक्ष्येथे	भक्ष्यध्वे
	भक्ष्ये	भक्ष्यावहे	भक्ष्यामहे
लोट्—	भजताम्	भजेताम्	भजन्ताम्
	भजस्व	भजेथाम्	भजध्वम्
	भजै	भजावहै	भजामहै
लङ्—	अभजत	अभजेताम्	अभजन्त
	अभजथाः	अभजेथाम्	अभजध्वम्
	अभजे	अभजावहि	अभजामहि
वि० लिङ्—	भजेत	भजेयाताम्	भजेरन्
	भजेथाः	भजेयाथाम्	भजेध्वम्
	भजेय	भजेवहि	भजेमहि
लुङ्—	अभक्त	अभक्षाताम्	अभक्षत
	अभक्थाः	अभक्षाथाम्	अभग्ध्वम्
	अभक्षि	अभक्ष्वहि	अभक्ष्महि

लृङ्—अभक्ष्यत्	अभक्ष्यताम्	अभक्ष्यन्	लृङ्—अभक्ष्यत	अभक्ष्येताम्	अभक्ष्यन्त
अभक्ष्यः	अभक्ष्यतम्	अभक्ष्यत	अभक्ष्यथाः	अभक्ष्येथाम्	अभक्ष्यध्वम्
अभक्ष्यम्	अभक्ष्याव	अभक्ष्याम	अभक्ष्ये	अभक्ष्यावहि	अभक्ष्यामहि

अभ्यास

१. भक्त ईश्वर का भजन करते हैं=भक्ताः ईश्वरं भजन्ते (भजन्ति)

२. ध्रुव ने ईश्वर का भजन किया=ध्रुवः परमेश्वरं बभाज (भेजे)

३. कल मैं सब गुरुओं की सेवा करूँगा=श्वः अहं सर्वान् गुरून् भक्तास्मि (भक्ताहे)

४. जो मेरी सेवा करेगा वही मेरी सम्पत्ति पायेगा।
यः मां भक्ष्यति (भक्ष्यते) सः एव मम सम्पत्तिं लप्स्यते।

५. यह संसार असार है, भगवान् का भजन कर।
असारोऽयं संसारः, भगवन्तं भज (भजस्व)

६. महापुरुषों ने भगवान् का भजन किया, इसीलिये उन्होंने विशेष शक्ति पाई।
महापुरुषाः भगवन्तम् अभजन् (अभजन्त), अत एव ते विशिष्टां शक्तिम् अलभन्त

७. गृहस्थ को अतिथियों की सेवा करनी चाहिये।
गृहस्थः अतिथीन् भजेत् (भजेत; भजतु; भजताम्)

८. आज मैं रोगी था, इसलिये माता पिता की सेवा नहीं की।
अद्य अहं रुग्णः अभूवम्, अतः पितरौ न अभाक्षम् (अभक्षि)

९. पाखण्डियों की कभी सेवा मत कर।
पाखण्डिनः कदापि मा भाक्षीः (भक्थाः) [मा स्म भजः, मा स्म भजथाः]

१०. यदि मैं गुरुओं की सेवा करता, तो विद्वान् क्यों नहीं बनता ?
यदि अहं गुरून् अभक्ष्यं (अभक्ष्ये), तर्हि विद्वान् कथं न अभविष्यम्।

(४२) धाव् (धावु) गतिशुद्ध्योः=दौड़ना, धोना [उभयपदी]

परस्मैपद

लट्—धावति	धावतः	धावन्ति
लिट्—दधाव	दधावतुः	दधावुः
लुट्—धाविता	धावितारौ	धावितारः
लृट्—धाविष्यति	धाविष्यतः	धाविष्यन्ति
लोट्—धावतु (धावतात्)	धावताम्	धावन्तु
लङ्—अधावत्	अधावताम्	अधावन्
वि० लिङ्—धावेत्	धावेताम्	धावेयुः
लुङ्—अधावीत्	अधाविष्टाम्	अधाविषुः
अधावीः	अधाविष्टम्	अधाविष्ट
अधाविषम्	अधाविष्व	अधाविष्म
लृङ्—अधाविष्यत्	अधाविष्यताम्	अधाविष्यन्

आत्मनेपद

लट्—धावते	धावेते	धावन्ते
लिट्—दधावे	दधावाते	दधाविरे
लुट्—धाविता	धावितारौ	धावितारः
लृट्—धाविष्यते	धाविष्येते	धाविष्यन्ते
लोट्—धावताम्	धावेताम्	धावन्ताम्
लङ्—अधावत	अधावेताम्	अधावन्त
वि० लिङ्—धावेत	धावेयाताम्	धावेरन्

लुङ्—

अधाविष्ट	अधाविषाताम्	अधाविषत
अधाविष्ठाः	अधाविषाथाम्	अधाविढ्वम्
अधाविषि	अधाविष्वहि	अधाविष्महि

लृङ्—

अधाविष्यत अधाविष्येताम् अधाविष्यन्त

अभ्यास

१. ब्रह्मचारी मैदान में तेजी से दौड़ते हैं।
ब्रह्मचारिणः क्रीडाङ्गने वेगेन धावन्ति (धावन्ते)

२. लङ्का में राक्षस हनुमान् के पीछे दौड़े।
लङ्कायां राक्षसाः अनु हनूमन्तं दधावुः (दधाविरे)

३. लड़को ! दौड़ो वहां लड्डू बंट रहे हैं।
बालकाः ! धावत (धावध्वं) तत्र मोदकानि वितीर्यन्ते।

४. मैच में हम तो आज ही दौड़ेंगे, बाकी लड़के कल दौड़ेंगे।
स्पर्धाक्रीडासु वयं तु अद्यैव धाविष्यामः (धाविष्यामहे), अवशिष्टाः बालकाः तु श्वः धावितारः।

५. तुम्हें मुख बन्द करके दौड़ना चाहिये=यूयं मुखं पिधाय धावेत (धावेध्वम्)।

६. श्यामा की बहिन आज मैदान में दौड़ी थी।
श्यामायाः स्वसा अद्य क्रीडाङ्गने अधावीत् (अधाविष्ट) :

७. खाना खाकर मत दौड़ना, आयु कम होती है।
भुक्त्वा मा धावीः (मा धाविष्ठाः) मा स्म धावः (मा स्म धावथाः), आयुः क्षीयते।

८. यदि तुम लोग न दौड़ते तो, भेड़िये भेड़ों को खा जाते।
यदि यूयं न अधाविष्यत (अधाविष्यध्वम्) तर्हि वृकाः मेषान् अखादिष्यन्।

९. परसों पहरेदार चोरों के पीछे दौड़े थे।
परह्यः प्रहरिणः अनु दस्यून् अधावन् (अधावन्त)।

(४३) यज् (देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) सत्कार करना, यज्ञ करना, सङ्गति करना, दान करना [उभय०]

परं०			आत्म०		
लट्—यजति	यजतः	यजन्ति	लट्—यजते	यजेते	यजन्ते
लिट्—इयाज	ईजतुः	ईजुः	लिट्—ईजे	ईजाते	ईजिरे
लुट्—यष्टा	यष्टारौ	यष्टारः	लुट्—यष्टा	यष्टारौ	यष्टारः
यष्टासि	यष्टास्थः	यष्टास्थ	यष्टासे	यष्टासाथे	यष्टाध्वे
यष्टास्मि	यष्टास्वः	यष्टास्मः	यष्टाहे	यष्टास्वहे	यष्टास्महे
लृट्—यक्ष्यति	यक्ष्यतः	यक्ष्यन्ति	लृट्—यक्ष्यते	यक्ष्येते	यक्ष्यन्ते
लोट्—यजतु (यजतात्)	यजताम्	यजन्तु	लोट्—यजताम्	यजेताम्	यजन्ताम्
लङ्—अयजत्	अयजताम्	अयजन्	लङ्—अयजत	अयजेताम्	अयजन्त
वि० लिङ्—यजेत्	यजेताम्	यजेयुः	वि० लिङ्—यजेत	यजेयाताम्	यजेरन्
लुङ्—अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्षुः	लुङ्—अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत
अयाक्षीः	अयाष्टम्	अयाष्ट	अयष्ठाः	अयक्षाथाम्	अयड्ढ्वम्
अयाक्षम्	अयाक्ष्व	अयाक्ष्म	अयक्षि	अयक्ष्वहि	अयक्ष्महि
लृङ्—अयक्ष्यत्	अयक्ष्यताम्	अयक्ष्यन्	लृङ्—अयक्ष्यत	अयक्ष्येताम्	अयक्ष्यन्त

अभ्यास

१. गुरुकुल में ब्रह्मचारी प्रतिदिन यज्ञ करते हैं।
गुरुकुले ब्रह्मचारिणः प्रतिदिनं यजन्ति (यजन्ते)।

२. पुत्रों की प्राप्ति के लिये दशरथ ने यज्ञ किया।
सुतानां प्राप्तये दशरथः इयाज (ईजे)।

३. हम दम्पती कल यज्ञ करेंगे, आप लोग अवश्य आवें।
आवां दम्पती श्वः यष्टास्वः (यष्टास्वहे), भवन्तः अवश्यम् आगच्छन्तु।

४, क्या तुम्हारे चाचा के लड़के आज ही यज्ञ करेंगे?
किं तव पितृव्यस्य सुताः अद्यैव यक्ष्यन्ति (यक्ष्यन्ते)?

५. सुख चाहते हो तो नित्य यज्ञ करो।
सुखम् इच्छथ चेत् नित्यं यजत (यजध्वम्)।

६. हे ग्रामवासियो! वर्षा की कामना हो तो तुमको भरपूर यज्ञ करना चाहिये।
हे ग्रामवासिनः! वर्षम् अभिलषथ चेत् यूयं पुष्कलं (भृशं) यजेत (यजेध्वम्)।

७. जिन्होंने आज यज्ञ नहीं किया, वे प्रायश्चित्त करेंगे।
ये अद्य न अयाक्षुः (अयक्षत, ते प्रायश्चित्तं करिष्यन्ति)

८. बिना झाड़ू लगाए यज्ञ मत कर।
मार्जनम् अकृत्वा मा याक्षीः (मा यष्ठाः) मा स्म यजः (मा स्म यजथाः)।

९. यदि देशवासी नित्य यज्ञ करते तो स्वस्थ रहते।
यदि देशवासिनः प्रत्यहम् अयक्ष्यन् (अयक्ष्यन्त) तर्हि स्वस्थाः अवर्त्तिष्यन्त (अवर्त्स्यन्)।

१०. इन पड़ोसियों ने कल खेत में यज्ञ किया था।
एते प्रतिवेशिनः ह्यः क्षेत्रे अयजन् (अयजन्त)।

११. पूजनीय परमेश्वर का यज्ञ के द्वारा देवों ने यजन किया।
'यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः'।[1]

(४४) वह (प्रापणे)=ढोना, ले जाना [उभय०]

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्—वहति	वहतः	वहन्ति	लट्—वहते	वहेते	वहन्ते
लिट्—उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	लिट्—ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
लुट्—वोढा	वोढारौ	वोढारः	लुट्—वोढा	वोढारौ	वोढारः
लृट्—वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्—वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
लोट्—वहतु(वहतात्)	वहताम्	वहन्तु	लोट्—वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
लङ्—अवहत्	अवहताम्	अवहन्	लङ्—अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
वि० लिङ्—वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	वि० लिङ्—वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
लुङ्—अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	लुङ्—अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	अवक्षि	अवक्ष्वहि	अवक्ष्महि
लृङ्—अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्—अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

अभ्यास

१. मूर्ख अर्थज्ञान के बिना शास्त्रों का भार ढोते हैं।
मूर्खाः अर्थज्ञानं बिना शास्त्राणां भारं वहन्ति (वहन्ते)

२. चेतक ने आजीवन महाराणा प्रताप का भार ढोया।
चेतकाख्यः अश्वः आजीवनं महाराजं प्रतापम् ऊहे (उवाह)।

३. ग्राम निर्माण में कल हम भार ढोयेंगे।
ग्राम-निर्माणे श्वः वयं भारं वोढास्मः (वोढास्महे)।

---

१. यजु० ३१.१६

४. ये दोनों थके हुए हैं, ये आज भार नहीं ढोयेंगे ।
एतौ श्रान्तौ स्तः, एतौ अद्य भारं न वक्ष्यतः (वक्ष्येते) ।

५. कल हमने इतने पत्थर उठाये, कि हाथ दुःख रहे हैं ।
ह्यः वयम् एतावतः पाषाणान् अवहाम (अवहामहि), यत् हस्ताः दूयन्ते ।

६. समाज का जलसा होगा, द्रव्यसंग्रह का भार तुमको उठाना चाहिये ।
समाजस्य उत्सवः भविता (भविष्यति), द्रव्यसङ्ग्रह-भारं त्वं वहेः (वहेथाः)

७. यज्ञवेदि के लिये आज तूने बहुत ईंट ढोई हैं, अब वह ढोयेगा ।
यज्ञवेद्यै अद्य त्वं भूयसीः इष्टकाः अवाक्षीः (अवोढाः), अधुना सः वक्ष्यति(वक्ष्यते)

८. इतना बोझ मत ढो, शरीर बिगड़ेगा ।
एतावन्तं भारं मा वाक्षीः (मा वोढाः;) मा स्म वहः, (मा स्म वहथाः) शरीरं दोक्ष्यति

९. यदि हम इतने गन्ने न ढोते, तो कन्धे न दुःखते ।
यदि वयम् इयन्ति इक्षुकाण्डानि न अवक्ष्याम (अवक्ष्यामहि) तर्हि स्कन्धौ न अदविष्येताम् ।

१०. तुम को गुरुओं की आज्ञा सिर से पालन करनी चाहिये ।
यूयं गुरूणाम् आज्ञां शिरसा वहेत (वहेध्वम्)

११. मैंने सदा माता पिता की आज्ञा पाली ।
अहं सदा पित्रोः आज्ञाम् अवाक्षम् (अवक्षि)

(४५) पच् (डुपचष्) पाके=पकाना [उभय०]

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्—पचति	पचतः	पचन्ति	लट्—पचते	पचेते	पचन्ते
लिट्—पपाच	पेचतुः	पेचुः	लिट्—पेचे	पेचाते	पेचिरे
लुट्—पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः	लुट्—पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः
लृट्—पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति	लृट्—पक्ष्यते	पक्ष्येते	पक्ष्यन्ते
लोट्—पचतु (पचतात्)	पचताम्	पचन्तु	लोट्—पचताम्	पचेताम्	पचन्ताम्
लङ्—अपचत्	अपचताम्	अपचन्	लङ्—अपचत	अपचेताम्	अपचन्त
वि० लिङ्—पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	वि० लिङ्—पचेत	पचेयाताम्	पचेरन्
लुङ् अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः	लुङ्—अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत
अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त	अपक्थाः	अपक्षाथाम्	अपग्ध्वम्
अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि
लृङ्—अपक्ष्यत्	अपक्ष्यताम्	अपक्ष्यन्	लृङ् अपक्ष्यत	अपक्ष्येताम्	अपक्ष्यन्त

अभ्यास

१. रसोइये रसोई में भोजन पकाते हैं=सूदाः महानसे भोजनं पचन्ति (पचन्ते)

२. युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में रसोइयों ने एक लाख जनों का भोजन पकाया।
युधिष्ठिरस्य राजसूययज्ञे सूपकाराः लक्षस्य जनानां कृते भोजनम् पेचुः (पेचिरे)

३. कल उषा मीठे चावल पकायेगी=श्वः उषा मिष्टम् ओदनं पक्ता।

४. आज सुमित्रा मूंग की दाल का हलवा बनायेगी।
अद्य सुमित्रा मुद्गद्विदलान्नस्य संयावं पक्ष्यति (पक्ष्यते)

५. कल स्वप्ना ने जो कढी पकायी थी, वह बहुत स्वादिष्ठ थी।
ह्यः स्वप्ना यां क्वाथिकाम् अपचत् (अपचत), सा अति स्वादिष्ठा आसीत्।

६. तुम दोनों मिलकर भोजन बनाओ, जल्दी जाना है।
युवां सम्भूय भोजनं पचतम् (पचेतम्), सपदि गमिष्यामि।

७. मुझे आपके लिये बढ़िया खीर पकानी चाहिये।
अहं भवते उत्तमं पायसं पचेयम् (पचेय)

८. आज तुम लोगों ने हमारे लिये जमीकन्द का शाक क्यों नहीं पकाया।
अद्य यूयम् अस्माकं कृते सूरणस्य शाकं कथं न अपाक्त (अपग्ध्वम्)

९. यदि तू उड़द की दाल पकाता, तो विष्णुदत्त जीमता (=भोजन करता)
यदि त्वं माषसूपम् अपक्ष्यः (अपक्ष्यथाः) तर्हि विष्णुदत्तः अजमिष्यत्।

१०. बिना हींग के दाल मत पका=ऋते रामठात् सूपं मा पाक्षीः (मा पक्थाः)
[मा स्म पचः, मा स्म पचथाः]

(४६) शप् (आक्रोशे)=शाप देना, शपथ लेना [उभय०]

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्—शपति	शपतः	शपन्ति	लट्—शपते	शपेते	शपन्ते
लिट्—शशाप	शेपतुः	शेपुः	लिट्—शेपे	शेपाते	शेपिरे
लुट्—शप्ता	शप्तारौ	शप्तारः	लुट्—शप्ता	शप्तारौ	शप्तारः
लृट्—शप्स्यति	शप्स्यतः	शप्स्यन्ति	लृट्—शप्स्यते	शप्स्येते	शप्स्यन्ते
लोट्—शपतु (शपतात्)	शपताम्	शपन्तु	लोट्—शपताम्	शपेताम्	शपन्ताम्
लङ्—अशपत्	अशपताम्	अशपन्	लङ्—अशपत	अशपेताम्	अशपन्त
वि० लिङ्—शपेत्	शपेताम्	शपेयुः	वि० लिङ्—शपेत	शपेयाताम्	शपेरन्
लुङ्—अशाप्सीत्	अशाप्ताम्	अशाप्सुः	लुङ्—अशप्त	अशप्साताम्	अशप्सत
अशाप्सीः	अशाप्तम्	अशाप्त	अशप्थाः	अशप्साथाम्	अशब्ध्वम्
अशाप्सम्	अशाप्स्व	अशाप्स्म	अशप्सि	अशप्स्वहि	अशप्स्महि
लृङ्—अशप्स्यत्	अशप्स्यताम्	अशप्स्यन्	लृङ्—अशप्स्यत	अशप्स्येताम्	अशप्स्यन्त

अभ्यास

१. दण्ड से बचने के लिये छात्र झूठी शपथ खाते हैं।
दण्डात् आत्मानं त्रातुं छात्राः मिथ्या शपन्ति (शपन्ते) ।

२. कर्ण के मिथ्याभाषण को जानकर, परशुराम ने उसे शाप दिया।
कर्णस्य मिथ्याभाषणं विज्ञाय परशुरामः तस्मै शशाप (शेपे)

३. हम दोनों जज के सामने कल कसम खायेंगे।
आवां न्यायाधीशस्य पुरस्तात् श्वः शप्तास्वः (शप्तास्वहे)

४. वे कसम क्यों खायेंगे, उनकी कोई गलती नहीं है।
ते किमर्थं शप्स्यन्ति (शप्स्यन्ते), तेषां कोऽपि दोषो नास्ति।

५. तू कसम खा कि मैंने रुपये नहीं चुराये।
त्वं शप (शपस्व) यद् अहं रूप्यकाणि न अमूषम् (अमूषिषम्; अमुष्णाम्, अमोषिषम्)

६. उसने कल शपथ ली थी, कि मैं आजीवन वेद पढूंगा।
सः ह्यः अशपत् (अशपत) यदहं जीवनपर्यन्तं (आजीवनं) वेदं पठिष्यामि।

७. हम सबको देश को अखण्ड बनाने के लिये शपथ लेनी चाहिये।
वयं राष्ट्रम् अखण्डं कर्तुं शपेम (शपेमहि)।

८. जिसने आज कसम खाई थी, वह ही कुआ खोदेगा।
यः अद्य अशाप्सीत् (अशप्त) सः एव कूपं खनिष्यति।

९. भीष्म जैसी कसम मत खा, माता पिता रोयेंगे।
भीष्मसदृशं मा शाप्सीः (मा शप्थाः; मा स्म शपः, मा स्म शपथाः) पितरौ रोदिष्यतः।

१०. यदि तुम लोग कसम खा लेते तो दोषमुक्त हो जाते।
यदि यूयम् अशप्स्यत (अशप्स्यध्वम्) तर्हि दोषमुक्ताः अभविष्यत।

(४७) वप् (डुवप्) बीजसन्ताने छेदने च = बीज बोना, काटना [उभय०]

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्—वपति	वपतः	वपन्ति	लट्—वपते	वपेते	वपन्ते
लिट्—उवाप	ऊपतुः	ऊपुः	लिट्—ऊपे	ऊपाते	ऊपिरे
लुट्—वप्ता	वप्तारौ	वप्तारः	लुट्—वप्ता	वप्तारौ	वप्तारः
लृट्—वप्स्यति	वप्स्यतः	वप्स्यन्ति	लृट्—वप्स्यते	वप्स्येते	वप्स्यन्ते
लोट्—वपतु (वपतात्)	वपताम्	वपन्तु	लोट्—वपताम्	वपेताम्	वपन्ताम्
लङ्—अवपत्	अवपताम्	अवपन्	लङ्—अवपत	अवपेताम्	अवपन्त
वि० लिङ्—वपेत्	वपेताम्	वपेयुः	वि० लिङ्—वपेत	वपेयाताम्	वपेरन्

लुङ्—अवाप्सीत्	अवाप्ताम्	अवाप्सुः	लुङ्—अवप्त	अवप्साताम्	अवप्सत
अवाप्सीः	अवाप्तम्	अवाप्त		अवप्थाः	अवप्साथाम्	अवब्ध्वम्
अवाप्सम्	अवाप्स्व	अवाप्स्म		अवप्सि	अवप्स्वहि	अवप्स्महि
लृङ्—अवप्स्यत	अवप्स्यताम्	अवप्स्यन्		अवप्स्यत	अवप्स्येताम्	अवप्स्यन्त

अभ्यास

१. किसान वर्षा ऋतु में बीज बोते हैं=कृषकाः वर्षासु बीजानि वपन्ति (वपन्ते)

२. त्रेता में रावण ने बुराई का बीज बोया।
त्रेतायां रावणः पापबीजम् उवाप (ऊपे)

३. कल मैं दो खेतों में गेहूं बोऊँगा।
श्वः अहं द्वयोः क्षेत्रयोः गोधूमान् वप्तास्मि (वप्ताहे)

४. आज ये लोग चनों के साथ जौ बोयेंगे।
अद्य एते चणकैः सह यवान् वप्स्यन्ति (वप्स्यन्ते)।

५. तुम लोग अपने अपने खेतों में तिल और उड़द बोओ।
यूयं स्वेषु स्वेषु क्षेत्रेषु तिलान् माषान् च वपत (वपध्वम्)।

६. हम दोनों ने तो कल धान बोये, तुमने क्या बोया था।
आवां तु ह्यः व्रीहीन् अवपाव (अवपावहि) यूयं किम् अवपत (अवपध्वम्)

७. तू आज या कल गन्ने बो दे=त्वम् अद्य श्वः वा इक्षूणि वपेः (वपेथाः)

८. आज उन्होंने बाग़ में बढ़िया बीज बोये।
अद्य ते उद्याने उत्तमानि बीजानि अवाप्सुः (अवप्सत)।

९. यदि आम खाने हैं तो बबूल मत बो।
यदि आम्राशनम् अभिलषसि तर्हि बर्बूरबीजानि मा वाप्सीः (वा वप्थाः; मा स्म वपः, मा स्म वपथाः)।

१०. यदि हमारे पिता फलों के बीज न बोते तो हम फल कहाँ से खाते।
यदि अस्माकं पिता फलबीजानि न अवप्स्यत् (अवप्स्यत) तर्हि वयं कुतः फलानि अखादिष्याम।

(४८) नी (णीञ्) प्रापणे=ले जाना [उभय०] (द्विकर्मक)

यह धातु द्विकर्मक है। इस धातु के पूर्व में आ उपसर्ग लग जाने पर इसका अर्थ 'लाना' हो जाता है।

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट् नयति	नयतः	नयन्ति	लट्—नयते	नयेते	नयन्ते
लिट्—निनाय	निन्यतुः	निन्युः	लिट्—निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
लुट्—नेता	नेतारौ	नेतारः	लुट्—नेता	नेतारौ	नेतारः

लृट्—नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति		लृट्—नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
लोट्—{नयतु / नयतात्	नयताम्	नयन्तु		लोट्—नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
लङ्—अनयत्	अनयताम्	अनयन्		लङ्—अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
वि० लिङ्—नयेत्	नयेताम्	नयेयुः		वि० लिङ्—नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
लुङ्—अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः		लुङ्—अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट		अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म		अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि
लृङ्—अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्		लृङ्—अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त

अभ्यास

१. मैं उसे अपने घर ले जाता हूं=अहं तं स्वं गृहं नयामि (नये)।

२. वह अतिथियों को खिलाने के लिए घर ले जाता है।
सः अतिथीन्, भोजयितुं गृहं नयति (नयते)।

३. रावण अपने साथ मारीच को ले गया=रावणः आत्मना सह मारीचं निनाय(निन्ये)

४. मैं कल विद्वानों को यज्ञशाला में ले जाऊँगा।
अहं श्वः विदुषः यज्ञशालां नेतास्मि (नेताहे)।

५. हम उसे यात्रा में ले जायेंगे=वयं तं यात्रायै नेष्यामः (नेष्यामहे)।

६. यह बीमार है इसे अस्पताल ले जा=अयं रुग्णः अस्ति इमं चिकित्सालयं नय (नयेः)

७. वे इसे कल दिल्ली ले गये थे, हम इसे अपने साथ अलवर लाये।
ते एतं ह्यः दिल्लीम् अनयन् (अनयन्त), वयम् इमं आत्मना सह अलवरम् आनयाम (आनयामहि)।

८. तुमको अपने पिता को इलाज के लिये वैद्यराज त्र्यम्बकशास्त्री के पास ले जाना चाहिये।=त्वं स्वपितरं चिकित्सायै वैद्यराजस्य त्र्यम्बकशास्त्रिणः समीपं नयेः (नयेथाः)।

९. हमारी साइकिल आज ही तो तू स्कूल ले गया था।
अस्माकं द्विचक्रयानम् अद्यैव तु त्वं विद्यालयम् अनैषीः (अनेष्ठाः)।

१०. इस असभ्य को सभा में मत ले जा।
इमम् असभ्यं सभां मा नैषीः (मा नेष्ठाः; मा स्म नयः; मा स्म नयथाः)।

११. यदि तू मुझे पिंजोर के बाग में ले जाता, तो मैं तुझे आम खिलाता।
यदि त्वं मां पिंजोरस्य उपवनम् अनेष्यः (अनेष्यथाः) तर्हि अहं त्वाम् आम्राणि अभोजयिष्यम्।

(४६) हृ (हृञ्) हरणे = हरण करना, ले जाना [उभय०] द्विकर्मक

हृ धातु हरण करने अर्थात् जबरदस्ती छीनकर ले जाने के अर्थ में आती है, जबकि चुर् धातु पीछे से चुराने के अर्थ में प्रयुक्त होती है।

लट्—हरति	हरतः	हरन्ति	लट्—हरते	हरेते	हरन्ते
लिट्—जहार	जह्रतुः	जह्रुः	लिट्—जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
लुट्—हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः	लुट्—हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
लृट्—हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	लृट्—हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते
लोट्—हरतु (हरतात्)	हरताम्	हरन्तु	लोट्—हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
लङ्—अहरत्	अहरताम्	अहरन्	लङ्—अहरत	अहरेताम्	अहरन्त
वि. लिङ्—हरेत्	हरेताम्	हरेयुः	वि. लिङ्—हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
लुङ्—अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः	लुङ्—अहृत	अहृषाताम्	अहृषत
अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट	अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृड्ढ्वम्
अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म	अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि
लृङ्—अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्यन्	लृङ्—अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त

अभ्यास

१. तेरी बातें मेरा मन चुराती हैं = तव वार्ताः मम मनः हरन्ति (हरन्ते)।

२. रावण सीता को कुटिया से हर ले गया = रावणः सीतां कुटीरात् जहार (जह्रे)

३. कल उस काले बाजारिये का सब धन सरकार छीन लेगी।
श्वः तस्य कूटवणिजः सर्वं धनं राजपुरुषाः हर्तारः।

४. आज दोपहर तक मेरा धन दे दे, नहीं तो मैं तेरी चीजें उठा ले जाऊँगा।
आमध्याह्नम् अद्य मदीयं धनं प्रतियच्छ, नोचेत् अहं तव वस्तूनि हरिष्यामि (हरिष्ये

५. उस अत्याचारी का सब धन छीन लो = तस्य अत्याचारिणः सर्वं धनं हरत (हरध्वम्

६. कल डाकू उसका सब माल असबाब उठा ले गये।
ह्यः दस्यवः तस्य सर्वं गृहोपकरणम् अहरन् (अहरन्त)।

७. तुमको किसी की चीज नहीं छीननी चाहिये।
त्वं कस्यापि वस्तु न हरेः (हरेथाः)।

८. अभी दो उचक्के सेठ की तिजोरी छीन ले गये।
अधुनैव द्वौ तस्करौ श्रेष्ठिनः कोषमञ्जूषाम् अहार्ष्टाम् (अहृषाताम्)।

९. गरीब का धन मत छीनो, वह दया का पात्र है।
निर्धनस्य धनं मा हार्ष्ट (मा हृड्ढ्वम्; मा स्म हरत, मा स्म हरध्वम्) दयापात्रं सः।

१०. यदि तू उसकी चीजें न छीनता तो जेल न जाता।
यदि त्वं तस्य वस्तूनि न अहरिष्यः (अहरिष्यथाः) तर्हि कारां न अगमिष्यः।

(५०) याच् (टुयाचृ) याच्ञायाम्=मांगना [उभय०] द्विकर्मक

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्—याचति	याचतः	याचन्ति	लट्—याचते	याचेते	याचन्ते
लिट्—ययाच	ययाचतुः	ययाचुः	लिट्—ययाचे	ययाचाते	ययाचिरे
लुट्—याचिता	याचितारौ	याचितारः	लुट्—याचिता	याचितारौ	याचितारः
लृट्—याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	लृट्—याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
लोट्—याचतु (याचतात्)	याचताम्	याचन्तु	लोट्—याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
लङ्—अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	लङ्—अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त
वि. लिङ्—याचेत्	याचेताम्	याचेयुः	वि. लिङ्—याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
लुङ्—अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः	लुङ्—अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत
अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	अयाचिड्ढ्वम्
अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि
लृङ्—अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्	अयाचिष्यन्	लृङ्—अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्	अयाचिष्यन्त

अभ्यास

१. वह मुझसे तीन पुस्तकें मांगता है=सः मां त्रीणि पुस्तकानि याचति (याचते)।

२. ब्राह्मण ने कर्ण से सुवर्ण कुण्डल मांगे=विप्रः कर्णं कनककुण्डले ययाच (ययाचे)।

३. मैं कल उससे एक हजार रुपये मांगूगा।
अहं श्वः तं सहस्रं रूप्यकाणि याचितास्मि (याचिताहे)।

४. तू उससे पुस्तक कब मांगेगा?=त्वं तं पुस्तकं कदा याचिष्यसि (याचिष्यसे)?

५. ईश्वर से ही सब कुछ मांगो=परमेश्वरम् एव सर्वं याचत (याचध्वम्)।

६. मैंने कल धर्मशाला के लिये दुष्यन्त से रुपये मांगे।
अहं ह्यः धर्मशालायै (धर्मशालाय[1]) दुष्यन्तं रूप्यकाणि अयाचम् (अयाचे)।

७. दर्शनसम्मेलन के लिये हमें पण्डित ईश्वरचन्द्र जी से समय मांगना चाहिये।
दर्शनसम्मेलनाय वयं पण्डितराजम् ईश्वरचन्द्रं समयं याचेम (याचेमहि)।

---

१ विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्। अष्टा.२.४.२५ इससे एक पक्ष में नपुंसकलिङ्गता।

८. आज प्रातः मैंने उससे दस पात्र मांगे थे।
अद्य प्रातः अहं तं दश पात्राणि अयाचिषम् (अयाचिषि)।

९. इस घमण्डी से कुछ मत मांगना।
इमम् अभिमानिनं किमपि मा याचीः (याचिष्ठाः) मा स्म याचः (मा स्म याचथाः)

१०. यदि वह कुछ न मांगता तो मैं उसे बहुत कुछ देता।
यदि सः किमपि न अयाचिष्यत् (अयाचिष्यत) तर्हि अहं तस्मै बहु अदास्यम्।

(५१) बुध् (बुधिर्[1]) बोधने=जानना [उभय०]

लट्—	बोधति	बोधतः	बोधन्ति
लिट्—	बुबोध	बुबुधतुः	बुबुधुः
लुट्—	बोधिता	बोधितारौ	बोधितारः
लृट्—	बोधिष्यति	बोधिष्यतः	बोधिष्यन्ति
लोट्—	बोधतु (बोधतात्)	बोधताम्	बोधन्तु
लङ्—	अबोधत्	अबोधताम्	अबोधन्
वि. लिङ्—	बोधेत्	बोधेताम्	बोधेयुः
लुङ् (१)	अबोधीत्	अबोधिष्टाम्	अबोधिषुः
	अबोधीः	अबोधिष्टम्	अबोधिष्ट
	अबोधिषम्	अबोधिष्व	अबोधिष्म
(२)[2]	अबुधत्	अबुधताम्	अबुधन्
	अबुधः	अबुधतम्	अबुधत
	अबुधम्	अबुधाव	अबुधाम
लृङ्—	अबोधिष्यत्	अबोधिष्यताम्	अबोधिष्यन्

लट्—	बोधते	बोधेते	बोधन्ते
लिट्—	बुबुधे	बुबुधाते	बुबुधिरे
लुट्—	बोधिता	बोधितारौ	बोधितारः
लृट्—	बोधिष्यते	बोधिष्येते	बोधिष्यन्ते
लोट्—	बोधताम्	बोधेताम्	बोधन्ताम्
लङ्—	अबोधत	अबोधेताम्	अबोधन्त
वि. लिङ्—	बोधेत	बोधेयाताम्	बोधेरन्
लुङ्—	अबोधिष्ट	अबोधिषाताम्	अबोधिषत
	अबोधिष्ठाः	अबोधिषाथाम्	अबोधिढ्वम्
	अबोधिषि	अबोधिष्वहि	अबोधिष्महि
लृङ्—	अबोधिष्यत	अबोधिष्येताम्	अबोधिष्यन्त

अभ्यास

१. मैं तेरी धूर्त्तता को अच्छी तरह जानता हूँ।
अहं तव धौर्त्यं सम्यक् बोधामि (बोधे)।

२. विक्रमसिंह ने दयानन्द की शक्ति जान ली थी।
विक्रमसिंहः दयानन्दस्य शक्तिं बुबोध (बुबुधे)।

३. मैं कल तुम्हारी सब पंतरेबाजियाँ जान लूंगा।
अहं श्वः तव सर्वाः कूटगतीः बोधितास्मि (बोधिताहे)।

---

१ भ्वादिगण की यह बुधिर् (बोधने) धातु उभयपदी सेट् है; भ्वादिगण की ही बुध (अवगमने) धातु परस्मैपदी सेट् है। दिवादिगण की बुध (अवगमने) धातु आत्मनेपदी अनिट् है। २ इरितोवा (अष्टा. ३.१.५७) से विकल्प से अङ्।

४. समय बहुत थोड़ा सा है, आज क्या क्या समझेंगे ।
ह्रसीयान् खलु कालः, अद्य किं किं बोधिष्यामः (बोधिष्यामहे) ।

५. स्वरप्रकरण कठिन है, मन लगाकर समझ ।
स्वरप्रकरणं (सौवरं) दुर्बोधम् अस्ति, मनोयोगेन बोध (बोधस्व) ।

६. कल तुम दोनों ने मेरा तात्पर्य नहीं समझा, इसलिये नाराज हो ।
ह्यः युवां मदीयम् अभिसन्धि न अबोधतम् (अबोधेथाम्), अतएव रुष्टौ स्थः ।

७. उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि लातों के देव बातों से नहीं मानते ।
ते इदं बोधेयुः (बोधेरन्) यद् दण्ड्याः दानवाः न तृपन्ति[1] वार्ताभिः ।

८. आज तुमने उसे जाना, हमने तो पहले ही जान लिया था ।
अद्य यूयं तम् अबोधिष्ट (अबुधत, अबोधिढ्वम्), वयं तु पूर्वमेव अबोधाम (अबोधामहि) ।

९. किसी के रहस्य को मत जान, मन की एकाग्रता नष्ट होगी ।
कस्यचित् रहस्यं मा बोधीः (मा बुधः, मा बोधिष्ठाः; मा स्म बोधः, मा स्म बोधथाः), मनसः ऐकाग्र्यं नशिष्यति (नंक्ष्यति) ।

१०. यदि हम वेदार्थ को भलीभांति समझ लेते, तो पाखण्ड में न फँसते ।
यदि वयं वेदार्थं सुतराम् अबोधिष्याम (अबोधिष्यामहि), तर्हि पाखण्डे न न्यमङ्क्ष्याम ।

(५२) लष् (कान्तौ) = चमकना, चाहना [उभय०]

लट्, लोट्, लङ् और वि. लिङ् में एक पक्ष में शप् और एक पक्ष में श्यन् होगा[2] । फलतः इन लकारों में दो दो रूप बनेंगे ।

लट्—(१)	लषति	लषतः	लषन्ति	लट्—(१)	लषते	लषेते	लषन्ते
	लषसि	लषथः	लषथ		लषसे	लषेथे	लषध्वे
	लषामि	लषावः	लषामः		लषे	लषावहे	लषामहे
(२)	लष्यति	लष्यतः	लष्यन्ति	(२)	लष्यते	लष्येते	लष्यन्ते
	लष्यसि	लष्यथः	लष्यथ		लष्यसे	लष्येथे	लष्यध्वे
	लष्यामि	लष्यावः	लष्यामः		लष्ये	लष्यावहे	लष्यामहे
लिट्—	ललाष	लेषतुः	लेषुः	लिट्—	लेषे	लेषाते	लेषिरे

१. तुदादिगणीय 'तृप' का प्रयोग है ।
२. 'वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः' । अष्टा.३.१.७०॥

परस्मैपद

लुट्—लषिता लषितारौ लषितार:
लृट्—लषिष्यति लषिष्यत: लषिष्यन्ति
लोट्—(१) लषतु (लषतात्) लषताम् लषन्तु
(२) लष्यतु (लष्यतात्) लष्यताम् लष्यन्तु
लङ्—(१) अलषत् अलषताम् अलषन्
(२) अलष्यत् अलष्यताम् अलष्यन्
वि० लिङ्—(१) लषेत् लषेताम् लषेयु:
(२) लष्येत् लष्येताम् लष्येयु:
लुङ्[१]—(१) अलाषीत् अलाषिष्टाम् अलाषिषु:
(२) अलषीत् अलषिष्टाम् अलषिषु:
लृङ्—अलषिष्यत् अलषिष्यताम् अलषिष्यन्

आत्मनेपद

लुट्—लषिता लषितारौ लषितार:
लृट्—लषिष्यते लषिष्येते लषिष्यन्ते
लोट्—(१) लषताम् लषेताम् लषन्ताम्
(२) लष्यताम् लष्येताम् लष्यन्ताम्
लङ्—(१) अलषत अलषेताम् अलषन्त
(२) अलष्यत अलष्येताम् अलष्यन्त
वि० लिङ्—(१) लषेत लषेयाताम् लषेरन्
(२) लष्येत लष्येयाताम् लष्येरन्
लुङ्—अलषिष्ट अलषिषाताम् अलषिषत
लृङ्—अलषिष्यत अलषिष्येताम् अलषिष्यन्त

इस धातु का वाक्यों में अभ्यास, सोपसर्ग धातुओं के प्रसङ्ग में सिखायेंगे।

(५३) ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च=स्पर्धा करना, बुलाना [उभय०]

लट्—ह्वयति ह्वयत: ह्वयन्ति
लिट्—जुहाव जुहुवतु: जुहुवु:
लुट्—ह्वाता ह्वातारौ ह्वातार:
लृट्—ह्वास्यति ह्वास्यत: ह्वास्यन्ति
लोट्—ह्वयतु (ह्वयतात्) ह्वयताम् ह्वयन्तु
लङ्—अह्वयत् अह्वयताम् अह्वयन्
वि० लिङ्—ह्वयेत् ह्वयेताम् ह्वयेयु:
लुङ्[२]—अह्वत् अह्वताम् अह्वन्
अह्व: अह्वतम् अह्वत
अह्वम् अह्वाव अह्वाम
लृङ्—अह्वास्यत् अह्वास्यताम् अह्वास्यन्

आत्मनेपद

लट्—ह्वयते ह्वयेते ह्वयन्ते
लिट्—जुहुवे जुहुवाते जुहुविरे
लुट्—ह्वाता ह्वातारौ ह्वातार:
लृट्—ह्वास्यते ह्वास्येते ह्वास्यन्ते
लोट्—ह्वयताम् ह्वयेताम् ह्वयन्ताम्
लङ्—अह्वयत अह्वयेताम् अह्वयन्त
वि० लिङ्—ह्वयेत ह्वयेयाताम् ह्वयेरन्
लुङ्[३]—(१) अह्वत अह्वेताम् अह्वत
अह्वथा: अह्वेथाम् अह्वध्वम्
अह्वे अह्वावहि अह्वामहि
(२) अह्वास्त अह्वासाताम् अह्वासत
अह्वास्था: अह्वासाथाम् अह्वाद्ध्वम्
अह्वासि अह्वास्वहि अह्वास्महि
लृङ्—अह्वास्यत अह्वास्येताम् अह्वास्यन्त

---

१. अतो हलादेर्लघो:। अष्टा०. ७.२,७ के कारण पाक्षिक वृद्धि होगी।

२. लिपिसिचिह्वश्च। अष्टा० ३.१.५३। से च्लि के स्थान पर अङ्।

३. आत्मनेपद में 'आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्' अष्टा० ३.१.५४ से विकल्प से च्लि के स्थान पर अङ्। अत: दो दो रूप बनेंगे।

इस धातु का प्रयोग प्रायः आङ्पूर्वक होता है, अतः इसका अभ्यास सोपसर्ग धातुओं के प्रकरण में करवायेंगे।

(५४) गुह् (गुहू) संवरणे=ढकना [उभय०]

गुह् धातु के उपधा के ह्रस्व उकार को दीर्घ ऊकार हो जाता है यदि गुह् से अ, इ आदि स्वर परे हों।[१] गुह् धातु ऊदित है, इसलिये लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् में विकल्प से इट् होगा।[२] फलतः इन लकारों में दो दो रूप बनेंगे।

परस्मैपद

लट्—गूहति गूहतः गूहन्ति
गूहसि गूहथः गूहथ
गूहामि गूहावः गूहामः

लिट्—जुगूह जुगुहतुः जुगुहुः

लुट्—(१) गूहिता गूहितारौ गूहितारः
गूहितासि गूहितास्थः गूहितास्थ
गूहितास्मि गूहितास्वः गूहितास्मः
(२) गोढा गोढारौ गोढारः
गोढासि गोढास्थः गोढास्थ
गोढास्मि गोढास्वः गोढास्मः

लृट्—(१) गूहिष्यति गूहिष्यतः गूहिष्यन्ति
(२) घोक्ष्यति घोक्ष्यतः घोक्ष्यन्ति

लोट्—गूहतु (गूहतात्) गूहताम् गूहन्तु

लङ्—अगूहत् अगूहताम् अगूहन्

वि० लिङ्—गूहेत् गूहेताम् गूहेयुः

लुङ्—(१) अगूहीत् अगूहिष्टाम् अगूहिषुः
अगूहीः अगूहिष्टम् अगूहिष्ट
अगूहिषम् अगूहिष्व अगूहिष्म
(२) अघुक्षत् अघुक्षताम् अघुक्षन्
अघुक्षः अघुक्षतम् अघुक्षत
अघुक्षम् अघुक्षाव अघुक्षाम

लृङ्—(१) अगूहिष्यत् अगूहिष्यताम् अगूहिष्यन्
(२) अघोक्ष्यत् अघोक्ष्यताम् अघोक्ष्यन्

आत्मनेपद

लट्—गूहते गूहेते गूहन्ते
गूहसे गूहेथे गूहध्वे
गूहे गूहावहे गूहामहे

लिट्—जुगुहे जुगुहाते जुगुहिरे

लुट्—(१) गूहिता गूहितारौ गूहितारः
गूहितासे गूहितासाथे गूहिताध्वे
गूहिताहे गूहितास्वहे गूहितास्महे
(२) गोढा गोढारौ गोढारः
गोढासे गोढासाथे गोढाध्वे
गोढाहे गोढास्वहे गोढास्महे

लृट्—(१) गूहिष्यते गूहिष्येते गूहिष्यन्ते
(२) घोक्ष्यते घोक्ष्येते घोक्ष्यन्ते

लोट्—गूहताम् गूहेताम् गूहन्ताम्

लङ्—अगूहत अगूहेताम् अगूहन्त

वि० लिङ्—गूहेत गूहेयाताम् गूहेरन्

लुङ्—(१) अगूहिष्ट अगूहिषाताम् अगूहिषत
अगूहिष्ठाः अगूहिषाथाम् अगूहिध्वम्
अगूहिषि अगूहिष्वहि अगूहिष्महि

---

१. ऊदुपधाया गोहः। अष्टा० ६.४.८९।
२. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा। अष्टा० ७.२.४४।

(२)[1] {अगूढ:[1] / अघुक्षत} अघुक्षाताम् अघुक्षन्त

{अगूढा:[1] / अघुक्षथा:} अघुक्षाथाम् अघूढ्वम्[2]

अघुक्षि {अगुह्वहि[1] / अघुक्षावहि} अघुक्षामहि

लृङ्— (१) अगूहिष्यत अगूहिष्येताम् अगूहिष्यन्त

(२) अघोक्ष्यत अघोक्ष्येताम् अघोक्ष्यन्त

गुह् धातु के अभ्यास वाक्य भी उपसर्गों वाले प्रकरण में समझायेंगे। जहाँ उपधा को गुण (=गोह्) सम्भव है वहीं दीर्घ ऊकार आदेश होगा। लिट् के जुगुहतुः तथा जुगुहे आदि प्रयोगों में नहीं।

अदादिगण

अब अदादिगण की धातुओं का अभ्यास करायेंगे। अदादिगण की धातुओं के रूप सरल हैं। जैसे भ्वादिगण की धातुओं और तिङ् प्रत्ययों के बीच शप् विकरण (=अ अक्षर) रहता था वैसे इस गण की धातुओं के बीच नहीं रहता। अतः लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् के रूप अत्यन्त सरल हैं। शेष लकारों में भ्वादि के समान ही कार्य होगा। इस गण के आरम्भ में 'अद्' (भक्षणे) धातु है इसलिये इसको अदादिगण कहते हैं। हम इस गण की उन धातुओं के रूप ही दर्शायेंगे जो अधिक प्रयोग में आती हैं।

(१) हन् (हिंसागत्योः)=मारना और गति करना, पाना [परस्मै०]

लट्

हन्ति	हतः	घ्नन्ति
हंसि	हथः	हथ
हन्मि	हन्वः	हन्मः

लिट्

जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः

लुट्

हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः
हन्तासि	हन्तास्थः	हन्तास्थ
हन्तास्मि	हन्तास्वः	हन्तास्मः

लृट्

हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

लोट्

हन्तु (हतात्)	हताम्	घ्नन्तु
जहि (हतात्)	हतम्	हत
हनानि	हनाव	हनाम

लङ्

अहन्	अहताम्	अघ्नन्
अहन्	अहतम्	अहत
अहनम्	अहन्व	अहन्म

१. प्र० पु० एकवचन, म० पु० एकवचन और उ० पु० के द्विवचन में 'लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये' अष्टा० ७.३.७३ से एकपक्ष में क्स का लुक् हो जाता है।

२. ढ्रलोपेपूर्वस्य दीर्घोऽणः (अष्टा० ६.३.१०९ से दीर्घत्व।

वि० लिङ्			अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म
हन्याः	हन्यातम्	हन्यात		लृङ्	
हन्याम्	हन्याव	हन्याम	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
	लुङ्[1]		अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

अभ्यास

१. बलवान् सैनिक अत्याचारी शत्रुओं को मारते हैं
बलवन्तः भटाः अत्याचारिणः सपत्नान् घ्नन्ति ।

२. तू उसे जान से क्यों मारता है=त्वं तं कथं जीवनाशं हंसि ?

३. पाण्डवसेना ने कौरवसेना को मार दिया=पाण्डवसेना कौरवसेनां जघान ।

४. वह कल अपने सब शत्रुओं को मार देगा ।
सः श्वः स्वान् सकलान् सपत्नान् हन्ता ।

५. आज ईराक देश के सैनिक ईरान देश के सैनिकों को मारेंगे ।
अद्य ईराक-देश-भटाः ईरान-देश-भटान् हनिष्यन्ति ।

६. तू काम और क्रोध को मार=त्वं कामक्रोधौ जहि ।

७. कल के युद्ध में उसने पांच शत्रु मारे और तूने अठारह मारे ।
ह्यस्तने संग्रामे सः पञ्च रिपून् अहन् त्वं च अष्टादश शत्रून् अहन् ।

८. हमें अपने आक्रामक शत्रुओं को अवश्य मारना चाहिये ।
वयं स्वान् आक्रामकान् अरीन् अवश्यं हन्याम ।

९. हे प्रभो ! हमारे पिता और माता को मत मारो ।
हे प्रभो ! मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ।[2]

१०. दुर्जनो ! निरपराध को कभी मत मारो ।
दुर्जनाः ! निरपराधं कदापि मा वधिष्ट (मा स्म हत) ।

११. उन्होंने आज अपने विरोधी मार दिये ।
ते अद्य स्वान् प्रत्यर्थिनः अवधिषुः ।

१२. यदि हम अपने दुर्गुणों को मारते, तो हमारा जीवन पवित्र होता ।
यदि वयं स्वान् दुर्गुणान् अहनिष्याम तर्हि अस्माकं जीवनं पूतम् अभविष्यत् ।

१३. श्लोक—धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतो वधीत् ॥

---

१. लुङ् में 'लुङि च' अष्टा० २.४.४३ से हन् के स्थान पर 'वध' आदेश होता है ।
२. यजु० १६.१५.

मारा हुआ (=त्यागा हुआ) धर्म, धर्म को मारने वाले (=त्यागने वाले) को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म, उस रक्षक की रक्षा करता है; हमें धर्म का घात नहीं करना चाहिये, जिससे कि पीड़ित धर्म हमें नष्ट न कर दे।

(२) विद (ज्ञाने)=जानना [परस्मै०]

अदादिगण की विद धातु के लट् लकार में तिप् आदि प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः णल् (=अ), अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल् (=अ), व, म ये आदेश विकल्प से होते हैं अतः दो प्रकार के रूप बनेंगे।[1] लिट् लकार में भी विकल्प से आम् प्रत्यय मध्य में रहता है और कृञ् अर्थात् कृ (चकार), भू (बभूव) तथा अस् (आस) का अनुप्रयोग क्रमशः होता है।[2] अतः लिट् में चार प्रकार के रूप बनेंगे। लोट् लकार में भी एक पक्ष में आम् प्रत्यय और कृञ् का अनुप्रयोग होगा, फलतः दो प्रकार के रूप बनेंगे।[3]

लट्

(१) वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
वेत्सि	वित्थः	वित्थ
वेद्मि	विद्वः	विद्मः
(२) वेद	विदतुः	विदुः
वेत्थ	विदथुः	विद
वेद	विद्व	विद्म

लिट्

(१) विवेद	विविदतुः	विविदुः
(२) विदाञ्चकार	विदाञ्चक्रतुः	विदाञ्चक्रुः
(३) विदाम्बभूव	विदाम्बभूवतुः	विदाम्बभूवुः
(४) विदामास	विदामासतुः	विदामासुः

लुट्

वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः

लृट्

वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति

लोट्

(१) वेत्तु (वित्तात्)	वित्ताम्	विदन्तु
विद्धि (वित्तात्)	वित्तम्	वित्त
वेदानि	वेदाव	वेदाम
(२) विदाङ्करोतु, विदाङ्कुरुतात्	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुर्वन्तु
विदाङ्कुरु, विदाङ्कुरुतात्	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुत
विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

लङ्

अवेत् (अवेद्)	अवित्ताम्	अविदुः
अवेः (अवेत्, अवेद्)	अवित्तम्	अवित्त
अवेदम्	अविद्व	अविद्म

वि० लिङ्

विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
विद्याम्	विद्याव	विद्याम

---

१. 'विदो लटो वा' अष्टा० ३.४.८४

२. 'उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्', 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' अष्टा० ३.१.३८;४०

३. विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् (अष्टा.३.१.४१)

	लुङ्	
अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट
अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म

	लृङ्	
अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्	अवेदिष्यन्

अभ्यास

१. क्या आप लोग पुलिस इंस्पेक्टर का घर जानते हैं ?
किं भवन्तः आरक्षिनिरीक्षकस्य गृहं विदन्ति (विदुः) ?

२. उसका घर तो न मैं जानता हूँ और न ही यह जानता है।
तस्य गृहं तु न अहं वेद (वेद्मि) नापि अयं वेद (वेत्ति)।

३. जितने सूत्रों को हम जानते हैं उतने तुम नहीं जानते।
यावन्ति सूत्राणि वयं विद्म (विद्मः) तावन्ति यूयं न विद (वित्थ)।

४. त्र्यम्बक शास्त्री जी जितना आयुर्वेद जानते थे उसका शतांश मैं जानता हूँ।
त्र्यम्बकशास्त्रिणः यावन्तम् आयुर्वेदं विविदुः (विदाञ्चक्रुः, विदाम्बभूवुः, विदामासुः) तस्य शतांशम् अहं वेद्मि (वेद)।

५. कल हम दोनों उनके सब प्रश्न जान लेंगे।
श्वः आवां तेषां सर्वान् प्रश्नान् वेदितास्वः।

६. आज तुम लोग इस जादू के रहस्यों को जान लोगे।
अद्य यूयम् अस्य इन्द्रजालस्य रहस्यानि वेदिष्यथ।

७. तू उसको भोला ही जान, उसमें कुछ बुद्धि नहीं है।
त्वं तं मुग्धमेव विद्धि (विदाङ्कुरु) मतिविहीनः सः।

८. ओम्प्रकाश तो उन्हें पहिले ही जानता था, मैंने उसे कल समझा।
ओम्प्रकाशः तु तान् पूर्वमेव अवेत्, अहं तं ह्यः अवेदम्।

९. भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिये हमें व्याकरण जरूर जानना चाहिये।
भाषायाः शुद्धप्रयोगाय वयं व्याकरणम् अवश्यं विद्याम।

१०. न्याय के सिद्धान्तों को तूने तो आज समझ लिया, पर मैंने नहीं जाना।
न्यायसिद्धान्तान् त्वं तु अद्य अवेदीः, परम् अहं न अवेदिषम्।

११. बिना परीक्षा के किसी को सुनने मात्र से बुरा मत समझो।
अपरीक्ष्य कमपि श्रवणमात्रेण दुष्टं मा वेदीः [मा स्म वेः, मा स्म वेत् (वेद्)]।

१२. यदि मैं उसे अच्छी प्रकार जान लेता तो उस पर विश्वास न करता।
यदि अहं तं सम्यक् अवेदिष्यं तर्हि तस्य विश्वासं न अकरिष्यम्।

३) अस् (भुवि) = होना, अस्तित्व [परस्मै०]

लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् इन छः लकारों में अस् के स्थान पर भू आदेश हो जाता है[1] अतः इनमें भू धातु के समान ही रूप चलेंगे। अस् धातु के लङ् लकार में प्रथम पुरुष तथा मध्यम पुरुष के एकवचन में ईट् आगम भी होगा।[2]

लट्—अस्ति	स्तः	सन्ति
असि	स्थः	स्थ
अस्मि	स्वः	स्मः
लिट्—बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
लुट्—भविता	भवितारौ	भवितारः
लृट्—भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
लोट्—अस्तु (स्तात्)	स्ताम्	सन्तु
एधि (स्तात्)	स्तम्	स्त
असानि	असाव	असाम

लङ्—आसीत्	आस्ताम्	आसन्
आसीः	आस्तम्	आस्त
आसम्	आस्व	आस्म
वि. लिङ्—स्यात्	स्याताम्	स्युः
स्याः	स्यातम्	स्यात
स्याम्	स्याव	स्याम
लुङ्—अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
लृङ्—अभविष्यत	अभविष्यताम्	अभविष्यन्

अभ्यास

१. क्या तू आज भतीजे के साथ ही है ? = किं त्वमद्य भ्रातृव्येण सह एव असि ?

२. कल जहाँ तू था वहीं हम थे = ह्यः यत्र त्वम् आसीः तत्रैव वयम् आस्म।

३. आकाश बादलों से घिरा हुआ है, शायद आज वर्षा हो।
मेघाच्छन्नं नभः, मन्ये अद्य वर्षः स्यात्।

४. हे प्रभो ! आप मेरे हृदय मन्दिर में सदा वर्त्तमान रहो।
हे प्रभो ! त्वं मदीये हृदयमन्दिरे सदा विराजमानः एधि।

५. यद्यपि हम निर्धन हैं, तथापि हमें ईमानदार रहना चाहिये।
यद्यपि वयम् अधनाः स्मः तथापि वयं प्रामाणिकाः स्याम।

६. क्या वे क्रूर हैं तो हम भी वैसे ही हो जावें।
यदि ते क्रूराः सन्ति तर्हि किं वयमपि तादृशाः असाम।

७. क्या इस खेल में, मैं नायक बनूं ? = किम् अस्यां क्रीडायाम् अहं नायकः असानि ?

(४) रुद् (रुदिर्) अश्रुविमोचने = रोना [परस्मै०]

रुद् धातु के लट्, लोट्, लङ्, इन तीन लकारों में भी वलादि[3] तिङ् प्रत्ययों

---

१ अस्तेर्भूः। अष्टा.२.४.५२.

२ अस्तिसिचोऽपृक्ते (अष्टा.७.३.९६)

३ वलादि अर्थात् यकारवर्जितव्यञ्जनादि।

के आरम्भ में इकार लग जाता है।[1] लङ् लकार के प्र० पु० और म० पु० के एक-वचन में ई लगेगा[2]। तथा एक पक्ष में 'अ' भी रहेगा[3]। शेष लकारों में सामान्य कार्य होते हैं।

लट्—	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः
लिट्—	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
लुट्—	रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः
लृट्—	रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति
लोट्—	रोदितु (रुदितात्)	रुदिताम्	रुदन्तु
	रुदिहि (रुदितात्)	रुदितम्	रुदित
	रोदानि	रोदाव	रोदाम
लङ्—	अरोदीत् (अरोदत्)	अरुदिताम्	अरुदन्
	अरोदीः (अरोदः)	अरुदितम्	अरुदित
	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम
वि. लिङ्—	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
लुङ्[4]—(१)	अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्
	अरुदः	अरुदतम्	अरुदत
	अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम
(२)	अरोदीत्[5]	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः
	अरोदीः[5]	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट
	अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्म
लृङ्—	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्

अभ्यास

१. ग्रामत्याग के समय मैं रोता हूँ और तुम दोनों रोते हो यह तो उचित है, पर यहाँ वाले क्यों रोते हैं ?
ग्रामत्यागकाले अहं रोदिमि युवां च रुदिथः एतत्तु उचितं, परम् अत्रत्याः किमर्थं रुदन्ति ?

२. राक्षस बहुत रोये, जब हनुमान् ने बाग उजाड़ दिया।
यदा हनूमान् उद्यानम् अनाशयत् तदा राक्षसाः भृशं रुरुदुः।

३. कल गुरुजी जायेंगे और हम रोयेंगे।
श्वः गुरुचरणाः गन्तारः वयं च रोदितास्मः।

४. तू विद्या पढ़, नहीं तो सदा रोयेगा = त्वं विद्यां पठ, नो चेत् सदा रोदिष्यसि।

५. मैं क्यों रोऊँ ? मैं सुखी हूँ = अहं सर्वथा सुखी अस्मि, कथं रोदानि।

---

१ रुदादिभ्यः सार्वधातुके। अष्टा.७.२.७६.

२ रुदश्च पञ्चभ्यः। अष्टा.७.३.९८.

३ अड्गार्ग्यगालवयोः। अष्टा.७.३.९९.

४ लुङ् में च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ् 'इरितो वा' अष्टा. ३.१.५७. से होगा। अतः दो रूप होंगे।

५ अस्तिसिचोऽपृक्ते अष्टा. ७.३.९६ से ईट्।

६. कल जब बिटिया गई, तो मैं भी रोया और तू भी रोई।
ह्यः यदा पुत्री अगच्छत्, तदा अहम् अपि अरोदं त्वम् अपि अरोदः (अरोदीः)।

७. हमको शोक में इतना क्यों रोना चाहिये=वयं शोके एतावत् किमर्थं रुद्याम।

८. आज कान्ता, भाई के चले जाने पर बहुत रोई।
भ्रातरि गतवति अद्य कान्ता भृशम् अरुदत् (अरोदीत्)।

९. शोक समवेदना में वे कल भी रोये और आज भी, पर तू कल नहीं रोया था आज क्यों रोया?
शोकसमवेदनायां ते ह्यः अपि अरुदन् अद्यापि च अरुदन् (अरोदिषुः), परं त्वं ह्यः न अरोदीः (अरोदः) अद्य कथं अरोदीः (अरुदः)?

१०. हे बालक! मत रो, लड्डू दूंगा।
हे बालक मा रोदीः (मा रुदः; मा स्म रोदीः, मा स्म रोदः) मोदकानि ते दास्यामि।

११. यदि उषा न रोती तो मैं न आता।
यदि उषा न अरोदिष्यत् तर्हि अहं न आगमिष्यम्।

१२. श्लोक—'तात वाग्भट! मा रोदीः कर्मणां गतिरीदृशी।
दुषधातोरिवास्माकं गुणो दोषाय कल्पते'॥

—[वाग्भट की पुत्री पिता से कहती है]—हे पिताजी! आप रोओ मत, हमारे कर्म ही ऐसे हैं। जैसे दुष् धातु में गुण होने पर 'दोष' बनता है वैसे हमारे रूप आदि गुण भी 'दोष' के अर्थात् हमारे अकल्याण के कारण बने।

(५) स्वप् (ञिष्वप्) शये=सोना [परस्मै०]

स्वप् धातु के भी लट्, लोट् और लङ् इन तीन लकारों में वलादि तिङ् प्रत्ययों को इट् का आगम 'रुद्' के समान होता है। लङ् में भी रुद् के समान ही ईट् होगा और पक्ष में अट् भी।

लट्—	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः
लिट्—	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
लुट्—	स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
लृट्—	स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति
लोट्—	स्वपितु (स्वपितात्)	स्वपिताम्	स्वपन्तु
	स्वपिहि (स्वपितात्)	स्वपितम्	स्वपित
	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम
लङ्—	अस्वपीत् (अस्वपत्)	अस्वपिताम्	अस्वपन्
	अस्वपीः (अस्वपः)	अस्वपितम्	अस्वपित
	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम
वि. लिङ्—	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
लुङ्—	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म
लृङ्—	अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्	अस्वप्स्यन्

अभ्यास

१. तू महल में सोता है और मैं कुटिया में, हम दोनों में क्या बराबरी ?
त्वं प्रासादे स्वपिषि अहं च कुट्यां स्वपिमि, आवयोः कीदृशं सादृश्यम् ?
२. तप करती हुई पार्वती, जङ्गल में ही सो गई।
तपः कुर्वती पार्वती अरण्ये एव सुष्वाप।
३. आज मैंने रात में भी कार्य किया, कल खूब सोऊंगा।
अद्य अहं रात्रौ अपि कार्यम् अकार्षम्, श्वः भृशं स्वप्तास्मि।
४. आज सब, खेतों के बीच में सोयेंगे=अद्य सर्वे, क्षेत्राणां मध्ये स्वप्स्यन्ति।
५. बहुत रात हो गई, अब यहीं सो जा=भूयसी रात्रिः गता, अधुना अत्रैव स्वपिहि।
६. कल ये अतिथि किसके घर सोये थे ?=ह्यः एते अतिथयः कस्य गृहे अस्वपन् ?
७. जहाँ कल तू सोया था वहीं सर्वमित्र भी सोया था।
यत्र ह्यः त्वम् अस्वपीः (अस्वपः) तत्रैव सर्वमित्रः अपि अस्वपीत् (अस्वपत्)।
८. सबको स्वच्छ वायु में सोना चाहिये=सर्वे स्वच्छे समीरे स्वप्युः।
९. आज जैसे मैं सुख से सोया, वैसे तुम भी सोये कि नहीं ?
अद्य यथा अहं सुखम् अस्वाप्सं, तथा यूयम् अपि अस्वाप्त न वा ?
१०. दिन में मत सो, ढीला पड़ जायेगा।
दिवा मा स्वाप्सीः (मा स्म स्वपीः, मा स्म स्वपः), शिथिलः भविष्यसि।
११. यदि तू तेज हवा में न सोता, तो रोगी न होता।
यदि त्वं प्रवाते न अस्वप्स्यः, तर्हि रुग्णः न अभविष्यः।

(६) जागृ निद्राक्षये=(जागना) [परस्मै०]

जागृ धातु के लिट् लकार में विकल्प से आम् प्रत्यय (कृञ् अनुप्रयोगसहित) होगा[1] अतः चार प्रकार के रूप बनेंगे।

लट्—जागर्ति	जागृतः	जाग्रति[2]
जागर्षि	जागृथः	जागृथ
जागर्मि	जागृवः	जागृमः

लिट्

(१) जजागार जजागरतुः जजागरुः
(२) जागराञ्चकार जागराञ्चक्रतुः जागराञ्चक्रुः
(३) जागराम्बभूव जागराम्बभूवतुः जागराम्बभूवुः
(४) जागरामास जागरामासतुः जागरामासुः

---

१. उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्। अष्टा. ३.१.३८.
२. जक्षित्यादयः षट् (अष्टा. ६.१.६) से जागृ की अभ्यस्तसञ्ज्ञा और अदभ्यस्तात् (अष्टा. ७.१.४) से झ् को अत्।

लुट्—जागरिता जागरितारौ जागरितारः
लृट्—जागरिष्यति जागरिष्यतः
जागरिष्यन्ति

लोट्— { जागर्तु जागृताम् जाग्रतु[1]
(जागृतात्)
{ जागृहि जागृतम् जागृत
(जागृतात्)
जागराणि जागराव जागराम

लङ्—अजागः अजागृताम् अजागरुः
अजागः अजागृतम् अजागृत
अजागरम् अजागृव अजागृम

वि॰लिङ्—जागृयात् जागृयाताम् जागृयुः
जागृयाः जागृयातम् जागृयात
जागृयाम् जागृयाव जागृयाम

लुङ्[2]
अजागरीत् अजागरिष्टाम् अजागरिषुः
अजागरीः अजगरिष्टम् अजागरिष्ट
अजागरिषम् अजागरिष्व अजागरिष्म

लृङ्—अजागरिष्यत् अजागरिष्यताम्
अजागरिष्यन्

अभ्यास

१. आश्रम में ब्रह्मचारी ब्रह्ममूहूर्त में जागते हैं।
आश्रमे ब्रह्मचारिणः ब्राह्मे मुहूर्त्ते जाग्रति।

२. सतयुग में सभी प्रातः चार बजे जागते थे।
कृतयुगे सर्वे प्रातः चतुर्वादनकाले जजागरुः (जागराञ्चक्रुः, जागराम्बभूवुः, जागरामासुः)।

३. कल वे लोग जल्दी जागेंगे और सूर्योदय से पूर्व यहाँ आ जायेंगे।
श्वः ते द्राक् जागरितारः सूर्योदयात् प्राक् चैतत् स्थलम् आगन्तारः।

४. जो देर से जागेंगे वे दण्ड पायेंगे।
ये चिरेण जागरिष्यन्ति ते दण्डं लप्स्यन्ते।

५. हे शिष्य जागो, चिड़िया चहचहा रही हैं।
भो शिष्य ! जागृहि, चटकाः कलरवं कुर्वन्ति।

६. कल जब मैं तेरे घर गया था, तो न तू जगा था न तेरा भाई जगा था।
ह्यः यदा अहं तव गृहम् अगच्छम्, तदा न त्वम् अजागः नापि तव भ्राता अजागः।

७. अब वेदप्रचार हो गया है, अब तो देशवासियों को जाग जाना चाहिये।
अधुना वेदप्रसारः अभूत्, इदानीं देशवासिनः जागृयुः।

---

१. जक्षित्यादयः षट् (अष्टा. ६.१.६.) से जागृ की अभ्यस्तसञ्ज्ञा और अदभ्यस्तात् (अष्टा. ७.१.४.) से झ् को अत्।

२. 'सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु' (अष्टा. ७.२.१) से प्राप्त वृद्धि का 'ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्' अष्टा॰ ७-२-५ से निषेध।

८. आज जब मैं बगीचे में गया, हंस जाग चुके थे।
 अद्य यदा अहम् उद्यानम् अगमं, हंसाः अजागरिषुः।
९. तुम पापी हो, तुम्हारा भाग्य कभी न जागे।
 यूयं पापिनः स्थ, युष्मदीयं भाग्यं कदापि मा जागरीत् (मा स्म जागः)।
१०. यदि तुम जाग जाते तो चोर गौएं न ले जाते।
 यदि यूयम् अजागरिष्यत तर्हि चोराः गाः न अचोरयिष्यन्।

(७) शास् (शासु) अनुशिष्टौ [शासन करना] परस्मै०

लुङ् लकार और वि० लिङ् लकार में सर्वत्र तथा लट्, लोट् और लङ् के समस्त द्विवचनों और बहुवचनों में 'शास्' के अकार के स्थान पर इकार आदेश होगा[1] जहाँ इकार होगा वहीं स् को ष् भी हो जायेगा[2] अर्थात् शास् के स्थान पर शिष् हो जायेगा। लुङ् लकार में च्लि के स्थान पर अङ् होगा[3]।

लट्—	शास्ति	शिष्टः	शासति
	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ
	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः
लिट्—	शशास	शशासतुः	शशासुः
लुट्—	शासिता	शासितारौ	शासितारः
लृट्—	शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति
लोट्—	शास्तु (शिष्टात्)	शिष्टाम्	शासतु
	शाधि (शिष्टात्)	शिष्टम्	शिष्ट
	शासानि	शासाव	शासाम
लङ्—	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
	अशाः (अशात्)	अशिष्टम्	अशिष्ट
	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म
वि. लिङ्—	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम
लुङ्—	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
	अशिषः	अशिषतम्	अशिषत
	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम
लृङ्—	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्

अभ्यास

१. जो शासक प्रजा पर ठीक शासन नहीं करते वे अयोग्य हैं।
 ये शासकाः प्रजाः सम्यक् न शासति ते अयोग्याः सन्ति।

---

१. शास इदङ्हलोः अष्टा ६.४.३४॥
२. शासिवसिघसीनां च (अष्टा. ३.१.५६.)
३. सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च। अष्टा० ३.१.५६.
४. शास् की 'अभ्यस्त' सञ्ज्ञा (जक्षित्यादयःषट्, अष्टा.६.१.६) होने से लङ् में भी 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' अष्टा.३.४.१०९ से झि के स्थान पर जुस् आदेश।

२. कोसल देश पर इक्ष्वाकु वंश के राजा शासन करते थ।
कोसलदेशम् इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः नृपाः शशासुः।
३. कल से योगेन्द्र इस गांव पर शासन करेगा।
श्वःप्रभृति योगेन्द्रः इमं ग्रामं शासिता।
४. अब से इन्दिरा गांधी भारत पर भली प्रकार शासन करेगी।
अद्यप्रभृति इन्दिरा गान्धी भारतं सुतरां शासिष्यति।
५. मैं आपकी शरण हूँ, मुझे आप ठीक चलाइये।
'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'।[1]
६. उन्होंने अवसर पाकर भी दो वर्षों में जनता पर शासन ठीक नहीं किया।
ते अवसरम् उपलभ्य अपि द्वयोः वर्षयोः जनताः सम्यक् न अशासुः (अशिषन्)।
७. विद्वान् बनाने के लिये अध्यापक शिष्यों पर उत्तम शासन करें।
विदुषः भावयितुं शिक्षकाः शिष्यान् सुष्ठु शिष्युः।
८. चोर और पाप-प्रशंसक लोग कभी हमारे पर शासन न करें।
स्तेनाः अघशंसाः च कदापि नः मा शिषन् (मा स्म शासुः)।
९. आज तूने उन बन्दियों पर बड़ा कठोर शासन किया।
अद्य त्वं तान् कारानिबद्धान् जनान् अतिकठोरम् अशिषः।
१०. यदि तुम्हारी पार्टी देश पर अच्छा शासन करती तो देश में शान्ति होती।
यदि युष्माकं पक्ष्याः देशम् उत्तमम् अशासिष्यन् तर्हि देशे शान्तिः अभविष्यत्।

(८) मा माने=समाना, मापना [परस्मै०]

लट्—माति	मातः	मान्ति	
लिट्—ममौ	ममतुः	ममुः	
लुट्—माता	मातारौ	मातारः	
लृट्—मास्यति	मास्यतः	मास्यन्ति	
लोट्—मातु (मातात्)	माताम्	मान्तु	
माहि (मातात्)	मातम्	मात	
मानि	माव	माम	

लङ्—अमात्	अमाताम्	अमान् (अमुः[2])	
अमाः	अमातम्	अमात	
अमाम्	अमाव	अमाम	
वि. लिङ्—मायात्	मायाताम्	मायुः	
लुङ्—अमासीत्	अमासिष्टाम्	अमासिषुः	
अमासीः	अमासिष्टम्	अमासिष्ट	
अमासिषम्	अमासिष्व	अमासिष्म	
लृङ्—अमास्यत्	अमास्यताम्	अमास्यन्	

अभ्यास

१. दुष्ट बनिये कम तोलते हैं=खलाः वणिजः ऊनं मान्ति।
२. पहिले कोई कम नहीं तोलता था=पुरा कोऽपि न्यूनं न ममौ।

---

१. गीता. २.७.
२. लङः शाकटायनस्यैव (अष्टा.३.४.१११) से एक पक्ष में झि को जुस् (=उस्)।

३. कल से दूकान पर तू तोलेगा=श्वस्तनात् दिवसात् आपणे त्वं मातासि।

४. आज हमें छुट्टी है, हम सब बारी से तोलेंगे।
अद्य वयं सावकाशाः, वयं पर्यायेण मास्यामः।

५. हे धनपाल ! पूरा तोल, मैं सब देख रहा हूँ।
हे धनपाल ! पूर्णं माहि, सर्वम् ईक्षे अहम्।

६. वे सच्चे वैश्य हैं, उन्होंने कभी कम नहीं तोला।
ते सन्तः वैश्याः सन्ति, ते कदापि न्यूनं न अमान् (अमुः, अमासिषुः, ममुः)।

७. जब वे पूरे पैसे लेते हैं, तो उन्हें ठीक ही तोलना चाहिये।
यदा ते पूर्णं द्रविणं प्रतिगृह्णन्ति, तर्हि ते सम्यक् मायुः।

८. कम मत तोल, यह पाप है=ऊनं मा मासीः (मा स्म माः), पापमिदम्।

९. यदि ये बजाज कम न मापते तो जेल क्यों जाते।
यदि एते वास्त्रिकाः[1] न्यूनं न अमास्यन् तर्हि कारां किमर्थम् अयास्यन्।

(९) पा रक्षणे=रक्षा करना [परस्मै०]

लट्—पाति	पातः	पान्ति	लङ्—अपात्	अपाताम्	अपान् (अपुः)
लिट्—पपौ	पपतुः	पपुः	वि. लिङ्—पायात्	पायाताम्	पायुः
लुट् पाता	पातारौ	पातारः	लुङ्[2]—अपासीत्	अपासिष्टाम्	अपासिषुः
लृट्—पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति			
लोट्—पातु (पातात्)	पाताम्	पान्तु	लृङ्—अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्

अभ्यास

१. गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की गुरु रक्षा करते हैं=गुरुकुले ब्रह्मचारिणः गुरवः पान्ति।
२. सुषेण वैद्य ने लक्ष्मण की मृत्यु से रक्षा की=वैद्यः सुषेणः लक्ष्मणं मृत्योः पपौ।
३. कल तुम दोनों इस पेड़ के नीबुओं की रक्षा करोगे।
श्वः युवाम् अस्य पादपस्य जम्बीराणि पातास्थ।
४. मेरी बुढ़ापे में कौन रक्षा करेगा ?=वार्धक्ये कः मां पास्यति ?
५. हे राजकुमारो ! तुम दोनों मेरे यज्ञ की, राक्षसों से रक्षा करो।
हे नृपपुत्रौ ! युवां मदीयं मखं राक्षसेभ्यः पातम्।

---

१. वस्त्रं पण्यम् एषां ते वास्त्रिकाः 'तदस्य पण्यम्' (अष्टा.४.४.५१) से ठक्।
२. 'गातिस्थाघुपा०' (अष्टा.२.४.७७) से केवल पीने अर्थ वाली पा (=पिब) धातु के ही सिच् का लुक् होता है 'पा' रक्षणे के सिच् का नहीं।

६. 'पाहि नो अग्ने रक्षसः'[1]—हे अग्नि ! हमें राक्षस से बचाओ।

७. उस बुढ़िया की किसी ने रक्षा नहीं की।
तां वृद्धां कोऽपि न अपात् (अपासीत्)

८. जिसकी डाक्टर ने कल रक्षा की थी, उसने आज पानी पिया है।
यं चिकित्सकः ह्यः अपात्, सः अद्य सलिलम् अपात्[2]।

९. सांपों को मत पाल=सर्पान् मा पासीः (मा स्म पाः)

१०. यदि तू धर्म की रक्षा करता, तो धर्म तेरी रक्षा करता।
यदि त्वं धर्मम् अपास्यः तर्हि धर्मः त्वाम् अपास्यत्।

मा धातु तथा पा धातु के समान ही 'या प्रापणे', 'भा दीप्तौ' आदि के रूप चलेंगे।

(१०) स्ना (ष्णा) शौचे [स्नान करना] परस्मैपद

लट्—	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति
लिट्—	सस्नौ	सस्नतुः	सस्नुः
लुट्—	स्नाता	स्नातारौ	स्नातारः
लृट्	स्नास्यति	स्नास्यतः	स्नास्यन्ति
लोट्—	स्नातु (स्नातात्)	स्नाताम्	स्नान्तु

लङ्—	अस्नात्	अस्नाताम्	अस्नान् (अस्नुः)
वि० लिङ्—	स्नायात्	स्नायाताम्	स्नायुः
लुङ्—	अस्नासीत्	अस्नासिष्टाम्	अस्नासिषुः
लृङ्—	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्

अभ्यास

१. क्या सब ब्रह्मचारी ठण्डे पानी से नहाते हैं ?
किं सर्वे ब्रह्मचारिणः शीतलेन सलिलेन स्नान्ति ?

२. भीमसेन दुर्योधन के साथ गङ्गा में नहाया।
भीमसेनः दुर्योधनेन सह गङ्गायां सस्नौ।

३. क्या तू तलाब में नहायेगा ?—किं त्वं तडागे स्नातासि (स्नास्यसि) ?

४. इसी घाट पर स्नान कर ले, वे भले ही धार में नहावें।
अस्मिन्नेव अवतारे स्नाहि, ते कामं धारायां स्नान्तु।

५. उन्होंने सरस्वती में स्नान किया=ते सरस्वत्याम् अस्नान् (अस्नुः, सस्नुः, अस्नासिषुः)

६. तुझे प्रातः कुए के ताजा खींचे हुए पानी से नहाना चाहिये।
त्वं प्रातः कूपस्य रज्जुशारदेन जलेन स्नायाः।

---

१. ऋग्वेद १.३६.१५क

२. पा पाने (भ्वादि.) के लुङ् का रूप।

७. जैसे तू आज इस सोते में नहाया है, वैसे कल भी नहाया था ?
यथा त्वम् अद्य अस्मिन् स्रोतसि अस्नासीः तथा ह्यः अपि अस्नाः ।

८. इस गन्दे तीर्थ में मत नहा, जुएँ हो जायेंगी ।
अस्मिन् मलिने तीर्थे मा स्नासीः (मा स्म स्नाः) यूकाः सम्पत्स्यन्ते ।

९. यदि तू विद्या तीर्थ में स्नान करता तो स्नातक बन जाता ।
यदि त्वं विद्यातीर्थे अस्नास्यः तर्हि स्नातकः अभविष्यः ।

(११) इ (इण्) गतौ = जाना [परस्मै०]

इण् धातु के स्थान पर लुङ् लकार में गा आदेश होता है ।[1]

लट्—एति	इतः	यन्ति	
एषि	इथः	इथ	
एमि	इवः	इमः	
लिट्—इयाय	ईयतुः	ईयुः	
लुट्—एता	एतारौ	एतारः	
लृट्—एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति	
लोट्—एतु (इतात्)	इताम्	यन्तु	
इहि (इतात्)	इतम्	इत	
अयानि	अयाव	अयाम	
लङ्—ऐत्	ऐताम्	आयन्	
ऐः	ऐतम्	ऐत	
आयम्	ऐव	ऐम	
वि० लिङ्—इयात्	इयाताम्	इयुः	
इयाः	इयातम्	इयात	
इयाम्	इयाव	इयाम	
लुङ्—अगात्	अगाताम्	अगुः	
अगाः	अगातम्	अगात	
अगाम्	अगाव	अगाम	
लृङ्—ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्	
ऐष्यः	ऐष्यतम्	ऐष्यत	
ऐष्यम्	ऐष्याव	ऐष्याम	

इसके वाक्यों का अभ्यास उपसर्गों के प्रकरण में करवायेंगे ।

(१२) इ (इङ्) अध्ययने = पढ़ना [आत्मने०]

इङ् धातु सदा अधि उपसर्ग पूर्वक ही प्रयुक्त होती है । लिट् लकार में इङ् के स्थान पर गा (गाङ्) आदेश होता है ।[2] लुङ् और लृङ् में विकल्प से इङ् को गाङ् आदेश होता है,[3] अतः इन दोनों लकारों में दो प्रकार के रूप बनेंगे । गाङ् आदेश वाले रूपों में सिच् (लुङ् में) और स्य (लृङ् में) को ङिद्वद्भाव होगा ।[4] फलतः 'गा' के आ को ईकार आदेश हो जायेगा ।[5]

---

१. इणो गा लुङि । अष्टा० २.४.४५ ।

२. गाङ् लिटि । अष्टा० २.४.४९ ।

३. विभाषा लुङ्लृङोः । अष्टा० २.४.५० ।

४. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् । अष्टा० १.२.१ ।

५. घुमास्थागापाजहातिसां हलि । अष्टा० ६.४.६६ ।

लट्

अधीते	अधीयाते	अधीयते
अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लिट्

अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे

लुट्

अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
अध्येतासे	अध्येतासाथे	अध्येताध्वे
अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

लृट्

अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

लोट्

अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ्

अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

वि० लिङ्

अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लुङ्

(१) अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि
(२) अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

लृङ्

(१) अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
अध्यगीष्यथाः	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि
(२) अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि

अभ्यास

१. आप सब कहां पढ़ते हैं ?=भवन्तः कुत्र अधीयते ?

२. पहिले सब गुरुकुल में पढ़ते थे=पुरा सर्वे गुरुकुले अधिजगिरे।

३. आज हम वैशेषिक पढ़ेंगे और कल न्याय पढ़ेंगे।
अद्य वयं वैशेषिकम् अध्येष्यामहे श्वः च न्यायमध्येतास्महे।

४. वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना हो, तो आर्ष ग्रन्थों को पढ़ो।
सत्यज्ञानस्य लिप्सा अस्ति चेत् आर्षग्रन्थान् अधीध्वम्।

५. कल उसने गुरु से योगदर्शन का साधन-पाद पढ़ा।
ह्यः सः गुरोः योगदर्शनस्य साधनपादम् अध्यैत।

६. तुम सबको उदयन की न्याय कुसुमाञ्जलि अवश्य पढ़नी चाहिए।
यूयम् उदयनस्य न्यायकुसुमाञ्जलिम् अवश्यम् अधीयीध्वम्।

७. आज तूने आचार्य जी से क्या-क्या पढ़ा।
अद्य त्वम् आचार्यपादेभ्यः किं किम् अध्यैष्ठाः (अध्यगीष्ठाः)।

८- अनार्ष ग्रन्थ मत पढ़, मन में कुसंस्कार जम जायेंगे।
अनार्षग्रन्थान् मा अधिगीष्ठाः (मा अध्येष्ठाः, मा स्म अधीथाः) मनसि कुसंस्काराः पदं करिष्यन्ति (बद्धमूलाः भविष्यन्ति)।

९. यदि तू अष्टाध्यायी पढ़ता तो व्याकरण का विद्वान् हो जाता।
यदि त्वम् अष्टाध्यायीम् अध्यगीष्यथाः (अध्यैष्यथाः) तर्हि व्याकरणं[1] विद्वान् अभविष्यः।

(१३) आस् (आस) उपवेशने=बैठना [आत्मने०]

लट्—आस्ते आसाते आसते
आस्से आसाथे आद्ध्वे
आसे आस्वहे आस्महे

लिट्[2]—आसाञ्चक्रे आसाञ्चक्राते आसाञ्चक्रिरे
(२) आसाम्बभूव आसाम्बभूवतुः आसाम्बभूवुः
(३) आसामास आसामासतुः आसामासुः

लुट्—आसिता आसितारौ आसितारः

लृट्—आसिष्यते आसिष्येते आसिष्यन्ते

लोट्—आस्ताम् आसाताम् आसताम्
आस्स्व आसाथाम् {आद्ध्वम् / आध्वम्}
आसै आसावहै आसामहै

लङ्
आस्त आसाताम् आसत
आस्थाः आसाथाम् {आद्ध्वम् / आध्वम्}

वि०लि०—आसीत आसीयाताम् आसीरन्
आसीथाः आसीयाथाम् आसीध्वम्
आसीय आसीवहि आसीमहि

लुङ्—आसिष्ट आसिषाताम् आसिषत
आसिष्ठाः आसिषाथाम् आसिढ्वम् / आसिड्ढ्वम्
आसिषि आसिष्वहि आसिष्महि

लृङ्—आसिष्यत आसिष्येताम् आसिष्यन्त

---

१. यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' (अष्टा० २.३.६५.) से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी; उसका 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' (अष्टा० २.३.६९) से निषेध हो गया। विद्वान् शब्द शतृ प्रत्ययान्त है अतः 'ल्' से उसका भी ग्रहण होगा। (विद+लट्→विद्+ल्→विद्+शतृ→विद्+वस्=विद्वान्) विदेःशतुर्वसुः। अष्टा० ७.१.३६

२. 'दयायासश्च' (अष्टा० ३.१.३६) से आम् प्रत्यय।

अभ्यास

१. तुम सब यहां क्यों नहीं बैठते ?=यूयम् अत्र कथं न आध्वे ।

२. राम के साथ सीता भी रथ पर बैठी ।
रामेण सत्रा सीता अपि रथे आसाञ्चक्रे (आसाम्बभूव, आसामास)

३. कल वे दोनों मेरी कुर्सी के पास बैठेंगे ।
श्वः तौ मम आसन्द्याः समीपम् आसितारौ

४. मैं आज प्रवचन में सबसे आगे बैठूंगा ।
अहम् अद्य प्रवचनसमये सर्वेभ्यः अग्रे आसिष्ये ।

५. तू वहीं बैठ जहां योगेन्द्र बैठता है ।=त्वं तत्रैव आस्स्व यत्र योगेन्द्रः आस्ते ।

६. कल ट्रेन में शास्त्री जी के पास ही मैं बैठा था ।
ह्यः वाष्पयाने शास्त्रिमहोदयस्य समीपे एव अहम् आसि ।

७. भोजन के समय वे दोनों कल जहां बैठे थे वहीं आज भी बैठें ।
भोजनवेलायां यत्र तौ ह्यः आसातां तत्रैव अद्यापि आसाताम् ।

८. हमें दुष्टों की संगति में नहीं बैठना चाहिये ।
वयं खलानां सङ्गतौ न आसीमहि ।

९. आज ये हलवाई कड़ाह के पास बैठे थे ।
अद्य एते कान्दविकाः कटाहस्य समीपम् आसिषत ।

१०. तेरी आँखें खराब हैं, धूल, धूप और धुएँ में मत बैठ ।
रुग्णे तव चक्षुषी, धूमातपधूलिषु मा आसिष्ठाः (मा स्म आस्थाः) ।

११. यदि तुम विद्वानों के बीच बैठते तो गुणी बनते ।
यदि त्वं विदुषां मध्ये आसिष्यथाः तर्हि गुणवान् अभविष्यः ।

१२. कल तुम लोग वहाँ बैठे थे, आज यहाँ बैठो ।
ह्यः यूयं तत्र आध्वम् (आद्ध्वम्), अद्य अत्र आध्वम् (आद्ध्वम्) ।

(१४) शी (शीङ्) स्वप्ने=सोना [आत्मने०]

लट्—शेते	शयाते	शेरते[1]	लृट्—शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
शेषे	शयाथे	शेध्वे	लोट्—शेताम्	शयाताम्	शेरताम्[1]
शये	शेवहे	शेमहे	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
लिट्—शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे	शयै	शयावहै	शयामहै
लुट्—शयिता	शयितारौ	शयितारः			

---

१. शीङो रुट् (अष्टा.७.१.६) से र् (=रुट्) आगम हुआ ।

लङ्—अशेत अशयाताम् अशेरत
अशेथाः अशयाथाम् अशेध्वम्
अशयि अशेवहि अशेमहि

वि. लिङ्—शयीत शयीयाताम् शयीरन्
शयीथाः शयीयाथाम् शयीध्वम्
शयीय शयीवहि शयीमहि

लुङ्—अशयिष्ट अशयिषाताम् अशयिषत
अशयिष्ठाः अशयिषाथाम् अशयिढ्वम् (-ढ्वम्)
अशयिषि अशयिष्वहि अशयिष्महि

लृङ्-अशयिष्यत अशयिष्येताम् अशयिष्यन्त

अभ्यास

१. परीक्षा के दिनों में आप लोग कब सोते हैं ?
परीक्षादिवसेषु भवन्तः कदा शेरते ?

२. राम, लक्ष्मण और सीता पहिले दिन एक पेड़ के नीचे सोये।
सीतारामलक्ष्मणाः प्रथमे दिने एकस्य वृक्षस्य अधस्तात् शिश्यिरे।

३. ये संन्यासी कल उस साधु की कुटिया में सोयेंगे।
एते संन्यासिनः श्वः तस्य साधोः उटजे शयितारः।

४. छत से जल टपक रहा है, आज कहाँ सोयेंगे ?
छदिषः जलं स्रवति, अद्य क्व शयिष्यामहे ?

५. आज तू दादा जी के कमरे में सो जा।
अद्य त्वं पितामहस्य प्रकोष्ठे शेष्व।

६. कल जब हम सोये थे, कुत्ते भौंक रहे थे।
ह्यः यदा वयम् अशेमहि, कुक्कुराः बुक्कन्ति स्म।

७. सबको रात्रि में द्वितीय प्रहर के आरम्भ में सो जाना चाहिये।
सर्वे रात्रौ द्वितीयप्रहरस्य प्रारम्भे शयीरन्।

८. ये दोनों छात्र तो आठ बजे ही सो गये, ये कैसे व्याकरण याद करेंगे।
एतौ छात्रौ तु अष्टवादनवेलायाम् एव अशयिषातां कथमेतौ व्याकरणं स्मर्तारौ (स्मरिष्यतः)।

९. दसवीं के छात्र मध्यरात्रि से पहिले न सोयें।
दशम्याः छात्राः निशीथात् पूर्वं मा शयिषत (मा स्म शेरत)।

१०. यदि तू जल्दी सो जाता तो जल्दी उठ जाता।
यदि त्वं शीघ्रम् अशयिष्यथाः तर्हि शीघ्रम् उदस्थास्यः।

(१५) सू (षूङ्) प्राणिगर्भविमोचने (उत्पन्न करना) [आत्मने०]

सू धातु के लुट्, लृट्, लुङ् तथा लृङ् इन चार लकारों में विकल्प से इट् आगम होता है[1], फलतः इन लकारों में दो-दो रूप बनेंगे।

---

१. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा। अष्टा.७.२.४४.

लट्—सूते	सुवाते	सुवते
सूषे	सुवाथे	सूध्वे
सुवे	सूवहे	सूमहे
लिट्—सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
लुट् (१) सोता	सोतारौ	सोतारः
(२) सविता	सवितारौ	सवितारः
लृट् (१) सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
(२) सविष्यते	सविष्येते	सविष्यन्ते
लोट्— सूताम्	सुवाताम्	सुवताम्
सूष्व	सुवाथाम्	सूध्वम्
सुवै	सुवावहै	सुवामहै
लङ्—असूत	असुवाताम्	असुवत
असूथाः	असुवाथाम्	असूध्वम्
असुवि	असूवहि	असूमहि

वि॰ लिङ्—सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्
सुवीथाः	सुवीयाथाम्	सुवीध्वम्
सुवीय	सुवीवहि	सुवीमहि
लुङ् (१) असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम् / असोड्ढ्वम्
असोषि	असोष्वहि	असोष्महि
(२) असविष्ट	असविषाताम्	असविषत
असविष्ठाः	असविषाथाम्	असविड्ढ्वम् / असविध्वम्
असविषि	असविष्वहि	असविष्महि
लृङ् (१) असोष्यत	असोष्येताम्	असोष्यन्त
(२) असविष्यत	असविष्येताम्	असविष्यन्त

अभ्यास

१. वास्तव में वही माता है, जो वीर बालकों को जन्म देती है।
वस्तुगत्या सा एव माताऽस्ति या वीरबालकान् सूते।

२. दशरथ की तीन रानियों ने चार पुत्रों को जन्म दिया।
दशरथस्य तिस्रः राज्ञ्यः चतुरः सुतान् सुषुविरे।

३. हमारी बकरियाँ परसों ब्यायेंगी।
अस्माकम् अजाः परश्वः सोतारः (सवितारः)।

४. कल जब सूर्य उगेगा, यह गाय ब्यायेगी।
श्वः यदा सविता उदेता, इयं गौः सविता (सोता)।

५. इस ग्याबिन गाय की चाल बहुत धीमी है, आज शाम को यह ब्या जायेगी।
अस्याः अन्तर्वत्न्याः गोः गतिः अतिमन्थरा अस्ति, अद्य सायम् इयं सोष्यते (सविष्यते)

६. हे देश की माताओ ! वीर और विद्वान् पुत्रों को ही जन्म दो।
भो राष्ट्रमातरः ! वीरान् विदुषः च सुतान् एव सूध्वम्।

७. इस कुतिया ने कल जो बच्चे दिये हैं, उन्हें मैं ले जाऊंगा।
इयं शुनी ह्यः यानि अपत्यानि असूत, तान्यहं नेष्यामि (नेता)।

८. बहुत पुत्रों वाले इस कुटुम्ब की महिलाओं को अब कन्याओं को जन्म देना चाहिये।

बहुपुत्रकस्य अस्य कुटुम्बस्य ललनाः अतोऽग्रे कन्याः सुवीरन् ।

९. आज इस घुड़साल में दो घोड़ियों ने बच्चे दिये ।

अद्य अस्यां मन्दुरायां द्वे वडवे असोषाताम् (असविषाताम्) ।

१०. हे देवि ! तू कायर और नास्तिक सन्तान को जन्म मत देना ।

हे देवि ! त्वं क्लीबां नास्तिकां च सन्तति मा सोष्ठाः (सविष्ठाः, मा स्म सूथाः) ।

११. यदि हमारी भैंसें न ब्यातीं, तो हम घी कहाँ से खाते ।

यदि अस्मदीयाः महिष्यः न असोष्यन्त (असविष्यन्त) तर्हि वयं सर्पिः कुतः (अखादिष्याम)

(१६) ब्रू (ब्रूञ्) व्यक्तायां वाचि=(बोलना, कहना) [उभयपदी]

अब अदादि गण की एक उभयपदी धातु के रूप दे रहे हैं। ब्रू धातु के लट् लकार में परस्मैपदी प्रत्ययों में आरम्भ के पांच प्रत्ययों (तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्,) के स्थान पर क्रमशः णल् (अ), अतुस्, उस्, थल् (थ), अथुस् ये पांच आदेश विकल्प से होते हैं और उस अवस्था में ब्रू के स्थान पर आह् आदेश हो जाता है।[1] इन पांचों प्रत्ययों में दो प्रकार के रूप बनेंगे। लिट्, लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् इन लकारों में ब्रू के स्थान पर वच् आदेश हो जाता है।[2] लुङ् लकार में ब्रू (वच्) धातु से परे वर्तमान च्लि के स्थान पर अङ् (=अ) आदेश होता है।[3] साथ ही लुङ् में 'वच्' के अ के बाद उ (उम्) अक्षर भी आ जाता है।[4] अ और उ को गुण एकादेश[5] होकर ओ हो जाता है, फलतः 'वोच्' का प्रयोग होता है। लट्, लोट्, लङ् इन तीन लकारों में परस्मैपद में लट् के तीनों एकवचनों में, लोट् के प्र० पु० एकवचन में और लङ् के प्र० पु० तथा म० पु० के एकवचन में ईट् (ई) आगम हो जाता है।[6]

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्			लट्		
(१) ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

१. ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । अष्टा० ३.४.८४.

२. ब्रुवो वचिः । अष्टा० २.४.५३ ।

३. अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । अष्टा० ३.१.५२ ।

४. वच उम् । अष्टा० ७.४.२० ।

५. आद्गुणः । अष्टा० ६.१.८७ ।

६. ब्रुव ईट् अष्टा० ७.३.९३ ।

(२) आह	आहतुः	आहुः
आत्थ	आहथुः	ब्रूथ
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः
	लिट्	
उवाच	ऊचतुः	ऊचुः
	लुट्	
वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
	लृट्	
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति
	लोट्	
ब्रवीतु (ब्रूतात्)	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
ब्रूहि (ब्रूतात्)	ब्रूतम्	ब्रूत
ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम
	लङ्	
अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम
	विधिलिङ्	
ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
	लुङ्	
अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्
अवोचः	अवोचतम्	अवोचत
अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम
	लृङ्	
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्

	लिट्	
ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
	लुट्	
वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे
	लृट्	
वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
	लोट्	
ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै
	लङ्	
अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि
	वि० लिङ्	
ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि
	लुङ्	
अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि
	लृङ्	
अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

अभ्यास

१. तू धीरे धीरे क्या कहता है ?=त्वं शनैः किं ब्रवीषि (आत्थ, ब्रूषे) ?

२. श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से दो बातें कहीं=श्रीकृष्णः दुर्योधनं द्वे वार्ते उवाच (ऊचे)।

३. मैं यह बात तुझे कल बताऊँगा=अहम् इमां वार्तां त्वां श्वः वक्तास्मि (वक्ताहे)।

४. ये गवाह आज सारी बातें कहेंगे।
एते साक्षिणः अद्य सर्वाः वार्ताः वक्ष्यन्ति वक्ष्यन्ते।

५. जल्दी बताओ, उसने कल तुझे क्या कहा था।
सपदि ब्रूहि ((ब्रूष्व) सः ह्यः त्वां किम् अब्रवीत् (अब्रूत)।

६. तुम्हारा नाम सत्येन्द्र है, तुम्हें कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए।
तव नाम सत्येन्द्रः अस्ति, त्वं जातुचित् मिथ्या न ब्रूयाः (ब्रुवीथाः)।

७. आज उन्होंने जो कुछ कहा, उसे हमने टेपरेकार्ड कर लिया है।
अद्य ते यदपि अवोचन् (अवोचन्त), तद् वयं वाक्संरक्षणयन्त्रे समरक्षिष्म।

८. अंग्रेजी मत बोल, हम सब हिन्दी समझते हैं।
आंग्लभाषां मा वोचः (मा वोचथाः, मा स्म ब्रवीः, मा स्म ब्रूथाः) वयं समे हिन्दीं बोधामः।

९. यदि वह सत्य कह देता, तो उस पर कोई क्रोध नहीं करता।
यदि सः सत्यम् अवक्ष्यत् (अवक्ष्यत), तर्हि कोऽपि तस्मै न अद्रोहिष्यत् (अध्रोक्ष्यत्)।

जुहोत्यादि गण

अब जुहोत्यादि गण की कुछ धातुएँ समझाते हैं। इस गण में कुल २४ धातुएँ हैं। इस गण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में जो शप् (अ) प्रत्यय आता है उसका श्लु (=लोप) हो जाता है[1]। उसअवस्था में धातु का स्वरूप दुगुना (=द्वित्वयुक्त) हो जाता है[2] और पूर्व अंश में यथावसर परिवर्तन भी हो जाता है[3]। जैसे—हु तिप्। हु शप् ति। हु ति। हु हु ति। जुहुति। जुहोति। हु (जुहोति) धातु इस गण के आरम्भ में है, इसलिये इसे जुहोत्यादिगण कहते हैं।

(१) भी (ञिभी) भये=डरना [परस्मैपदी]

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में व्यञ्जनादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहने पर 'भी' के ई को विकल्प से इ आदेश हो जाता है[4]। इसलिये विधिलिङ् में सभी रूप दो प्रकार के और शेष तीन लकारों में कुछ रूप दो प्रकार के बनेंगे। लिट् लकार में विकल्प से आम् प्रत्यय (कृञ् अनुप्रयोग सहित) होगा और उसको श्लुवद् भाव भी होगा[5]; इसलिये लिट् में चार प्रकार के रूप बनेंगे।

---

१. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः। अष्टा.२.४.७५.

२. श्लौ। अष्टा.६.१.१०.

३. कुहोश्चुः (अष्टा.७.४.६२), अभ्यासे चर्च (अष्टा.८.४.५४)

४. भियोऽन्यतरस्याम्। अष्टा.६.४.११५.

५. भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च (अष्टा.३.१.३९)

लट्

बिभेति — बिभीतः (बिभितः) — बिभ्यति

बिभेषि — बिभीथः (बिभिथः) — बिभीथ (बिभिथ:)

बिभेमि — बिभीवः (बिभिवः) — बिभीमः (बिभिमः)

लिट्

(१) बिभाय — बिभ्यतुः — बिभ्युः

(२) बिभयाञ्चकार — बिभयाञ्चक्रतुः — बिभयाञ्चक्रुः

(३) बिभयाम्बभूव — बिभयाम्बभूवतुः — बिभयाम्बभूवुः

(४) बिभयामास — बिभयामासतुः — बिभयामासुः

लुट्

भेता — भेतारौ — भेतारः

लृट्

भेष्यति — भेष्यतः — भेष्यन्ति

लोट्

प्र०—बिभेतु — {बिभीतात्, बिभितात्} — {बिभीताम्, बिभिताम्} — बिभ्यतु

म०—{बिभीहि (बिभीतात्), बिभिहि (बिभितात्)} — {बिभीतम्, बिभितम्} — {बिभीत, बिभित}

उ०—बिभयानि — बिभयाव — बिभयाम

लङ्

अबिभेत् (—द्) — {अबिभीताम्, अबिभिताम्} — अबिभयुः

अबिभेः — {अबिभीतम्, अबिभितम्} — {अबिभीत, अबिभित}

अबिभयम् — {अबिभीव, अबिभिव} — {अबिभीम, अबिभिम}

विधिलिङ्

(१) बिभीयात् — बिभीयाताम् — बिभीयुः

बिभीयाः — बिभीयातम् — बिभीयात

बिभीयाम् — बिभीयाव — बिभीयाम

(२) बिभियात् — बिभियाताम् — बिभियुः

बिभियाः — बिभियातम् — बिभियात

बिभियाम् — बिभियाव — बिभियाम

लुङ्

अभैषीत् — अभैष्टाम् — अभैषुः

अभैषीः — अभैष्टम् — अभैष्ट

अभैषम् — अभैष्व — अभैष्म

लृङ्

अभेष्यत् — अभेष्यताम् — अभेष्यन्

अभ्यास

१. गुरुकुल के ब्रह्मचारी शेर से भी नहीं डरते हैं।
गुरुकुलस्य ब्रह्मचारिणः सिंहाद् अपि न बिभ्यति।

२. पहिले भी ब्रह्मचारी जङ्गल में रहते थे और किसी से नहीं डरते थे।
पुराऽपि ब्रह्मचारिणः अरण्ये ऊषुः कस्मादपि च न बिभ्युः (न बिभयाञ्चक्रुः, न बिभयाम्बभूवुः, न बिभयामासुः)।

३. तीन साल के बच्चे सर्वमित्र ने राम शास्त्री से कहा—'मैं तेरे पास खड़ा हूं, कभी तू डर जाये।'

त्रिवर्षदेशीयः बालकः सर्वमित्रः रामशास्त्रिणम् अवादीत् (अवदत्)—'अहं तव पार्श्वे स्थितः अस्मि, कदाचित् त्वं बिभीयाः (बिभियाः)।

४. हम शत्रुओं से कभी नहीं डरेंगे ।
वयं रिपुभ्यः कदापि न भेतास्मः (भेष्यामः) ।
५. पाप से सदा डरो=पापात् सर्वदा बिभीहि (बिभिहि) ।
६. जब मैंने कङ्कन चुराया ही नहीं है तो मैं क्यों डरूँ ?
यदा अहं कङ्कणं नैव अमूषिषम् (अमूषम्) तर्हि कथं बिभयानि ?
७. परसों बहुत से हमलावर आ गये, किन्तु वे लोग जरा भी नहीं डरे ।
परह्यः बहवः आक्रान्तारः आगच्छन्, परं ते मनाग् अपि न अविभयुः ।
८. ईश्वर बड़ा जबरदस्त है, उससे हमें डरना चाहिये ।
महाशक्तिमान् खलु परमेश्वरः, तस्मात् वयं बिभीयाम (बिभियाम) ।
९. उस काले रीछ को देखकर, ये दोनों बच्चे आज डर गये ।
तं कृष्णम् ऋक्षं दृष्ट्वा, एतौ बालकौ अद्य अभैष्टाम् ।
१०. मोटा देखकर मत डरो=स्थूलं दृष्ट्वा मा भैषीः (मा स्म बिभेः) ।
११. यदि वे न डरते, तो सेना में भरती हो जाते ।
यदि ते न अभेष्यन्, तर्हि सेनां प्राविक्ष्यन् ।

(२) हा (ओहाक्) त्यागे (=छोड़ना) [परस्मै०]

लट्, लोट्, और लङ् में कित् अथवा ङित् व्यञ्जनादि प्रत्यय परे रहने पर विकल्प से हा के आ को इकार आदेश होगा[१] । पक्ष में ईकार रहेगा[२] । लोट् लकार में म० पु० एकवचन में 'हि' परे रहने पर एक पक्ष में आ भी रहेगा[३] अतः वहाँ तीन रूप बनेंगे । विधिलिङ् में 'या' परे रहने पर 'हा' के आ का लोप हो जायेगा[४] ।

लट्		
जहाति	जहितः / जहीतः	जहति
जहासि	जहिथः / जहीथः	जहिथ / जहीथ
जहामि	जहिवः / जहीवः	जहिमः / जहीमः

लिट्		
जहौ	जहतुः	जहुः

लुट्		
हाता	हातारौ	हातारः

लृट्		
हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति

लोट्		
जहातु / जहितात् / जहीतात्	जहिताम् / जहीताम्	जहतु

१. जहातेश्च (अष्टा.६.४.११६) ।
२. ई हल्यघोः (अष्टा.६.४.११३) ।
३. आ च हौ (अष्टा.६.४.११७) ।
४. लोपो यि (अष्टा.६.४.११८) ।

जहाहि, जहिहि, जहीहि (जहितात्, जहीतात्)	जहितम्, जहीतम्	जहित, जहीत
जहानि	जहाव	जहाम

लङ्

अजहात्	अजहिताम्, अजहीताम्	अजहुः
अजहाः	अजहितम्, अजहीतम्	अजहित, अजहीत
अजहाम्	अजहिव, अजहीव	अजहिम, अजहीम

विधिलिङ्

जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः
जह्याः	जह्यातम्	जह्यात
जह्याम्	जह्याव	जह्याम

लुङ्

अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः
अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट
अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म

लृङ्

अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्

अभ्यास

१. उद्धवानन्द बोला—मैं चित्तौड़गढ़ कन्या गुरुकुल के लिये दस हजार रुपये त्यागता हूं।

उद्धवानन्दः प्रोवाच—अहं चित्तौड़गढ़स्थाय कन्यागुरुकुलाय दश सहस्राणि रूप्यकाणि जहामि।

२. राम ने भरत के लिये राजगद्दी छोड़ दी=रामः भरताय राज्यसिंहासनं जहौ।

३. कल ये धूमपान छोड़ देंगे=श्वः एते धूमपानं हातारः।

४. आज से हम कड़वा बोलना छोड़ देंगे=अद्यप्रभृति वयं कटुभाषणं हास्यामः।

५. काम, क्रोध और लोभ का त्याग कर दे।

कामक्रोधलोभान् जहाहि (जहिहि, जहीहि)।

६. कल मैंने महाराज के सामने भांग पीना त्याग दिया।

ह्यः अहं महाराजस्य समक्षं विजयापानम् अजहाम्।

७. तुमको दुष्टों से गप्पें लड़ाना छोड़ देना चाहिये।

यूयं खलैः गोष्ठीं जह्यात।

८. आज जिस दुर्गुण को सुरेन्द्र ने त्यागा है उसे हमने भी त्याग दिया है।

अद्य यं दुर्गुणं सुरेन्द्रः अहासीत् तं वयमपि अहासिष्म।

९. मौत के डर से भी धर्म को मत छोड़ो।

मृत्युभयेऽपि समुपस्थिते धर्मं मा हासीः (मा स्म जहाः)।

१०. यदि तू पढ़ना न छोड़ता, तो अध्यापक बन जाता।

यदि त्वम् अध्ययनं न अहास्यः, तर्हि अध्यापकः अभविष्यः।

(३) भृ (डुभृञ्) धारणपोषणयोः (=पालन पोषण करना) [उभयपदी]

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्, इन चार लकारों में शप् का श्लु (=लोप) हो जाने पर जो धातु को द्वित्व होता है उस द्वित्व में से प्रथम भाग (=अभ्यास) के स्वर को इकार आदेश होगा।[1] लिट् लकार में विकल्प से आम् प्रत्यय (कृञ् अनु-प्रयोग सहित) होगा और श्लुवद् भाव होने से धातु को द्वित्व तथा अभ्यास को इत्व[2] भी होगा। फलतः लिट् में चार प्रकार के रूप बनेंगे।

परस्मैपद

लट्

बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति
बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ
बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः

लिट्

(१) बभार	बभ्रतुः	बभ्रुः
(२) बिभराञ्चकार	बिभराञ्चक्रतुः	बिभराञ्चक्रुः
(३) बिभराम्बभूव	बिभराम्बभूवतुः	बिभराम्बभूवुः
(४) बिभरामास	बिभरामासतुः	बिभरामासुः

लुट्

भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः

लृट्

भरिष्यति	भरिष्यतः	भरिष्यन्ति

लोट्

बिभर्तु (बिभृतात्)	बिभृताम्	बिभ्रतु
बिभृहि (")	बिभृतम्	बिभृत
बिभराणि	बिभराव	बिभराम

लङ्

अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः
अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत
अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम

विधिलिङ्

बिभ्रियात्	बिभ्रियाताम्	बिभ्रियुः

आत्मनेपद

लट्

बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लिट्

(१) बभ्रे	बभ्राते	बभ्रिरे
(२) बिभराञ्चक्रे	बिभराञ्चक्राते	बिभराञ्चक्रिरे

लुट्

भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः

लृट्

भरिष्यते	भरिष्येते	भरिष्यन्ते

लोट्

बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लङ्

अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
अबिभृथाः	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्
अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

विधिलिङ्

बिभ्रीत	बिभ्रीयाताम्	बिभ्रीरन्
बिभ्रीथाः	बिभ्रीयाथाम्	बिभ्रीध्वम्
बिभ्रीय	बिभ्रीवहि	बिभ्रीमहि

---

१. भृञामित्। अष्टा.७.४.७६॥

२. भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च। अष्टा.३.१.३९॥

बिभ्रियाः	बिभ्रियातम्	बिभ्रियात
बिभ्रियाम्	बिभ्रियाव	बिभ्रियाम
	लुङ्	
अभार्षीत्	अभार्ष्टाम्	अभार्षुः
अभार्षीः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट
अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म
	लृङ्	
अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्

	लुङ्	
अभृत	अभृषाताम्	अभृषत
अभृथाः	अभृषाथाम्	अभृढ्वम् (अभृड्ढ्वम्)
अभृषि	अभृष्वहि	अभृष्महि
	लृङ्	
अभरिष्यत	अभरिष्येताम्	अभरिष्यन्त

अभ्यास

१. ये सबका पालन करते हैं=एते सर्वान् बिभ्रति (बिभ्रते)।

२. सतयुग में जो दस हजार ब्रह्मचारियों का पालन करता था उसे कुलपति कहते थे।

कृतयुगे यः दश सहस्राणि ब्रह्मचारिणः बभार (बिभराञ्चकार; बभ्रे, बिभराञ्चक्रे; बिभराम्बभूव, बिभरामास) तं कुलपतिम् ऊचिरे।

३. क्या तू सारे गुरुकुल का पालन करेगा?

किं त्वं सकलं गुरुकुलं भर्तासि (भर्तासे; भरिष्यसि, भरिष्यसे)।

४. मैं इन सबका पालन करूँगा=अहम् एतान् सर्वान् भरिष्यामि (भरिष्ये)।

५. वे परिवार इन अनाथों का पालन करें।

ते परिवाराः एतान् अनाथान् बिभ्रतु (बिभ्रताम्)।

६. उस वृद्ध का पालन न तूने किया न तेरे पिता ने।

तं वृद्धं न त्वम् अबिभः (अबिभृथाः) न च तव पिता अबिभः (अबिभृत)।

७. हमको अपने पुत्रों का भरणपोषण स्वयं करना चाहिये, गुरुकुल क्यों करे?

वयं स्वपुत्रान् स्वयं बिभ्रियाम (बिभ्रीमहि), गुरुकुलं कथं बिभ्रीत (बिभ्रियात्)?

८. मैंने इस भानजे का पालन नहीं किया।

अहम् एतं भागिनेयं न अभार्षम् (अभृषि; अबिभरम्, अबिभ्रि)।

९. इन अध्ययनशून्य और पेटू छात्रों का पालन मत कर।

एतान् अध्ययनशून्यान् औदरिकान् च छात्रान् मा भार्षीः (मा भृथाः; मा स्म बिभः, मा स्म बिभृथाः)।

१०. यदि तू इन अन्धों का पालन करता तो पुण्य का भागी होता।

यदि त्वम् इमान् नेत्रहीनान् अभरिष्यः (अभरिष्यथाः) तर्हि पुण्यस्य भागी अभविष्यः।

(४) दा (डुदाञ्) दाने =देना [उभयपदी]

दा धातु के लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में कित् अथवा ङित् प्रत्यय (चाहे व्यञ्जनादि हो चाहे स्वरादि) परे रहने पर 'दा' के आ का लोप हो जाता है।[1] लोट् लकार म० पु० एक वचन (सि=हि) परे रहने पर 'दा' के आ को एकार आदेश होगा और अभ्यास (=धातुद्वित्व का पूर्वभाग) का लोप हो जायेगा।[2] लुङ् लकार में परस्मैपद में सिच् का लुक् हो जायेगा।[3] आत्मनेपद में 'दा' के आ को इकार आदेश होगा।[4]

परस्मैपद				आत्मनेपद			
लट्—	ददाति	दत्तः	ददति	लट्—	दत्ते	ददाते	ददते
	ददासि	दत्थः	दत्थ		दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
	ददामि	दद्वः	दद्मः		ददे	दद्वहे	दद्महे
लिट्—	ददौ	ददतुः	ददुः	लिट्—	ददे	ददाते	ददिरे
लुट्—	दाता	दातारौ	दातारः	लुट्—	दाता	दातारौ	दातारः
लृट्—	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	लृट्—	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
लोट्—	ददातु (दत्तात्)	दत्ताम्	ददतु	लोट्—	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
	देहि (दत्तात्)	दत्तम्	दत्त		दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
	ददानि	ददाव	ददाम		ददै	ददावहै	ददामहै
लङ्—	अददात्	अदत्ताम्	अददुः	लङ्—	अदत्त	अददाताम्	अददत
	अददाः	अदत्तम्	अदत्त		अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
	अददाम्	अदद्व	अदद्म		अददि	अदद्वहि	अदद्महि
वि. लिङ्—	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	वि. लिङ्—	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात		ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
	दद्याम्	दद्याव	दद्याम		ददीय	ददीवहि	ददीमहि
लुङ्—	अदात्	अदाताम्	अदुः	लुङ्—	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
	अदाः	अदातम्	अदात		अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
	अदाम्	अदाव	अदाम		अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि
लृङ्—	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्	लृङ्—	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त

१. श्नाभ्यस्तयोरातः (अष्टा.६.४.११२)
२. घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च (अष्टा० ६.४.११९)
३. गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु (अष्टा० २.४.७७)
४. स्थाघ्वोरिच्च (अष्टा० १.२.१७)

अभ्यास

१. वे अपनी चीजें किसी को नहीं देते=ते स्ववस्तूनि कस्मैचित् अपि न ददति (ददते)

२. पाण्डवों ने वेदपाठियों को गौएँ दीं=पाण्डवाः वेदपाठिभ्यः गाः ददुः (ददिरे)।

३. जैसे राम ने ब्राह्मण को गौएँ दीं, वैसे ही मैं भी तुम्हें गौएँ देता हूं।
यथा रामः ब्राह्मणाय गाः ददे (ददौ), तथा अहमपि तुभ्यं गाः ददे (ददामि)।

४. मित्र लोग इस पुस्तक के छपवाने के लिए धन जरूर देंगे।
मित्राणि अस्य पुस्तकस्य मुद्रापणाय धनम् अवश्यं दातारः (दास्यन्ति, दास्यन्ते)

५. तू कुछ कन्या गुरुकुल के लिये देदे=त्वं किञ्चित् कन्या-गुरुकुलाय देहि (दत्स्व)

६. जिसने कभी किसी को कुछ नहीं दिया, वह आज वेद-प्रचार के लिये हमें क्या देगा ?=यः कदापि कस्मैचिदपि किमपि न अददात् (अदत्त; अदात्, अदित; ददौ, ददे) सः अद्य वेदप्रचाराय अस्मभ्यं किं दास्यति ?

७. सब गृहस्थों को प्रतिदिन ब्रह्मचारियों को अन्न देना चाहिए।
सर्वे गृहाश्रमिणः प्रतिदिनं ब्रह्मचारिभ्यः अन्नं दद्युः (ददीरन्)

८. उन्होंने आज अपना सर्वस्व चित्तौड़गढ़ गुरुकुल को दे दिया।
ते अद्य निजं सर्वस्वं चित्तौड़गढ़गुरुकुलाय अदुः (अदिषत)

९. इस नशेबाज को कुछ मत दे, नशे में उड़ा देगा।
अस्मै मादकिने किमपि मा दाः (मा दिथाः; मा स्म ददाः, मा स्म दत्थाः), मदे नाशयिष्यति।

१०. यदि तू दान करता तो भगवान् भी तुझे देता।
यदि त्वं किञ्चिद् अदास्यः (अदास्यथाः) तर्हि परमेश्वरः अपि तुभ्यम् अदास्यत्/अदास्यत।

(५) धा (डुधाञ्) धारणपोषणयोः=धारण करना या पालन करना [उभय०]

धा धातु के भी आकार का लोप, एत्व तथा इकार आदि आदेश कार्य दा धातु के समान ही होंगे।

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्—दधाति	धत्तः	दधति		लट्—धत्ते	दधाते	दधते
दधासि	धत्थः	धत्थ		धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
दधामि	दध्वः	दध्मः		दधे	दध्वहे	दध्महे
लिट्—दधौ	दधतुः	दधुः		लिट्—दधे	दधाते	दधिरे
लुट्—धाता	धातारौ	धातारः		लुट्—धाता	धातारौ	धातारः
लृट्—धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति		लृट्—धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
लोट्—दधातु (धत्तात्)	धत्ताम्	दधतु		लोट्—धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्

	धेहि (धत्तात्)	धत्तम्	धत्त	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
	दधानि	दधाव	दधाम	दधै	दधावहै	दधामहै
लङ्—	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	लङ्—अधत्त	अदधाताम्	अदधत
	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
	अदधाम्	अदध्व	अदध्म	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि
वि. लिङ्—	दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः	वि. लिङ्—दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
	दध्याः	दध्यातम्	दध्यात	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
	दध्याम्	दध्याव	दध्याम	दधीय	दधीवहि	दधीमहि
लुङ्—	अधात्	अधाताम्	अधुः	लुङ्—अधित	अधिषाताम्	अधिषत
	अधाः	अधातम्	अधात	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिढ्वम्
	अधाम्	अधाव	अधाम	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि
लृङ्—	अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्	लृङ्—अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त

धा धातु के अभ्यास वाक्य, सोपसर्ग धातुओं के प्रकरण में समझायेंगे ।

दिवादिगण

अब दिवादिगण की धातुओं का अभ्यास करायेंगे । दिवादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और वि० लिङ् में श्यन् (=य) विकरण आयेगा ।[1] य (=श्यन्) शित् होने से सार्वधातुक[2] और पित् न होने से ङिद्वत् माना जायेगा ।[3] शेष लकारों में पूर्ववत् सामान्य कार्य होंगे ।

(१) सिव् (षिवु) तन्तुसन्ताने=सीना [परस्मैपदी]

सिव् के उपधा के इकार को लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में दीर्घ ईकार हो जायेगा क्योंकि वहां ङित् हलादि प्रत्यय य (=श्यन्) परे है ।[4]

	लट्			लुट्	
सीव्यति	सीव्यतः	सीव्यन्ति	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सीव्यसि	सीव्यथः	सीव्यथ	सेवितासि	सेवितास्थः	सेवितास्थ
सीव्यामि	सीव्यावः	सीव्यामः	सेवितास्मि	सेवितास्वः	सेवितास्मः
	लिट्			लृट्	
सिषेव	सिषिवतुः	सिषिवुः	सेविष्यति	सेविष्यतः	सेविष्यन्ति

१. दिवादिभ्यः श्यन् (अष्टा० ३.१.६९)
२. तिङ्शित् सार्वधातुकम् (अष्टा० ३.४.११३)
३. सार्वधातुकमपित् (अष्टा० १.२.४)
४. हलि च (अष्टा० ८.२.७७)

सेविष्यसि	सेविष्यथः	सेविष्यथ
सेविष्यामि	सेविष्यावः	सेविष्यामः

लोट्

सीव्यतु (सीव्यतात्)	सीव्यताम्	सीव्यन्तु
सीव्य (सीव्यतात्)	सीव्यतम्	सीव्यत
सीव्यानि	सीव्याव	सीव्याम

लङ्

असीव्यत्	असीव्यताम्	असीव्यन्
असीव्यः	असीव्यतम्	असीव्यत
असीव्यम्	असीव्याव	असीव्याम

वि० लिङ्

सीव्येत्	सीव्येताम्	सीव्येयुः
सीव्येः	सीव्येतम्	सीव्येत
सीव्येयम्	सीव्येव	सीव्येम

लुङ्

असेवीत्	असेविष्टाम्	असेविषुः
असेवीः	असेविष्टम्	असेविष्ट
असेविषम्	असेविष्व	असेविष्म

लृङ्

असेविष्यत्	असेविष्यताम्	असेविष्यन्
असेविष्यः	असेविष्यतम्	असेविष्यत
असेविष्यम्	असेविष्याव	असेविष्याम

अभ्यास

१. साधु मनुष्य अपनी चिन्ता नहीं करते, सुई स्वयं नंगी रहती है तथा औरों के कपड़े सीती है।
   साधवः निजार्थं न चिन्तयन्ति, सूचिका नग्निका सती अन्येषां वस्त्राणि सीव्यति
२. पहिले लोग पेड़ों की छाल के कपड़े सीते थे।
   पुरा जनाः वल्कलानां वस्त्राणि असीव्यन् (सिषिवुः, असेविषुः)।
३. यह दर्जी कल मेरे कपड़े सिलेगा=अयं सूचिकारः श्वः मे वस्त्राणि सेविता।
४. आज ये तो कपड़े सिलेंगे और वे गुरु की सेवा करेंगे।
   अद्य एते तु वस्त्राणि सेविष्यन्ति ते च गुरुं सेविष्यन्ते।
५. 'इसके घाव जल्दी सिल दे' डाक्टर ने कम्पाउण्डर से कहा।
   'अस्य व्रणान् सपदि सीव्य (सीव्याः)' इति चिकित्सकः उपचिकित्सकम् अब्रवीत् (अवोचत्)।
६. आज तूने जो जूते सिले हैं, वे तो मोहन के हैं।
   अद्य त्वं ये उपानहौ असेवीः ते तु मोहनस्य स्तः।
७. इसका कुर्ता मत सी, यह पैसे नहीं देगा।
   अस्य कञ्चुकं मा सेवीः (मा स्म सीव्यः), अयं मूल्यं न दास्यति।
८. यदि राजेश मेरे कपड़े सिल देता तो मैं भी बरात में जाता।
   यदि राजेशः मम वस्त्राणि असेविष्यत् तर्हि अहमपि वरयात्रायाम् अगमिष्यम्।
९. रात्रि में तुम्हें कपड़े नहीं सीने चाहियें, आंखें कमजोर होंगी।
   रात्रौ त्वं वस्त्राणि न सीव्येः नेत्रे निर्बले भविष्यतः।

(२) नृत् ('नृती) गात्र विक्षेपे'=नाचना [परस्मै०]

नृत् धातु के लृट् और लृङ् लकार में 'स्य' को विकल्प से इ (इट्) आगम होगा अतः दो दो रूप बनेंगे।[1]

लट्—नृत्यति नृत्यतः नृत्यन्ति
लिट्—ननर्त ननृततुः ननृतुः
लुट्—नर्तिता नर्तितारौ नर्तितारः
लृट्—(१) नर्त्स्यति नर्त्स्यतः नर्त्स्यन्ति
नर्त्स्यसि नर्त्स्यथः नर्त्स्यथ
नर्त्स्यामि नर्त्स्यावः नर्त्स्यामः
(२) नर्तिष्यति नर्तिष्यतः नर्तिष्यन्ति
नर्तिष्यसि नर्तिष्यथः नर्तिष्यथ
नर्तिष्यामि नर्तिष्यावः नर्तिष्यामः
लोट् नृत्यतु(नृत्यतात्) नृत्यताम् नृत्यन्तु
लङ्—अनृत्यत् अनृत्यताम् अनृत्यन्

वि० लिङ्—नृत्येत् नृत्येताम् नृत्येयुः
लुङ्—अनर्तीत् अनर्तिष्टाम् अनर्तिषुः
अनर्तीः अनर्तिष्टम् अनर्तिष्ट
अनर्तिषम् अनर्तिष्व अनर्तिष्म
लृङ् (१) अनर्त्स्यत् अनर्त्स्यताम् अनर्त्स्यन्
अनर्त्स्यः अनर्त्स्यतम् अनर्त्स्यत
अनर्त्स्यम् अनर्त्स्याव अनर्त्स्याम
(२)अनर्तिष्यत् अनर्तिष्यताम् अनर्तिष्यन्
अनर्तिष्यः अनर्तिष्यतम् अनर्तिष्यत
अनर्तिष्यम् अनर्तिष्याव अनर्तिष्याम

अभ्यास

१. दस हजार के दान की बात सुन कर, ये सब नाचते हैं।
दशानां सहस्राणां दानस्य वार्तां निशम्य, एते नृत्यन्ति।

२. शूर्पणखा राम को देखकर नाचने लगी=शूर्पणखा रामं दृष्ट्वा ननर्त।

३. कल वसन्त पंचमी है, वे सब पीले कपड़े पहनकर नाचेंगी।
श्वः वसन्तपञ्चमी वर्तिता, ताः पीतानि वासांसि परिधाय नर्तितारः।

४. आज दशहरा है, ये वनवासी मस्त होकर नाचेंगे।
अद्य विजयादशमी वर्त्तते, एते वनवासिनः प्रहृष्टाः भूत्वा नर्त्स्यन्ति/नर्तिष्यन्ति।

५. आज मेरी ननंद का विवाह है, हे सहेलियो! तुम सब नाचो।
अद्य मम ननान्दुः विवाहः अस्ति, भो सख्यः! यूयं नृत्यत।

६. ये नर्तकियाँ जैसा कल नाचीं वैसा ही आज भी नाचीं।
इमाः नर्तक्यः यथा ह्यः अनृत्यन् तथैव अद्यापि अनर्तिषुः।

७. किसी को भी असभ्यता से नाचना चाहिये क्या?
कोऽपि असभ्यतापूर्वकं नृत्येत् किमु?

८. आज शोक का दिन है, आज मत नाचो।
अद्य शोकदिवसः अस्ति, अद्य मा नर्तीः (मा स्म नृत्यः)

९. यदि ये उत्तीर्ण हो गये होते तो अवश्य नाचते।
यदि एते उत्तीर्णाः अभविष्यन, तर्हि अवश्यम् अनर्त्स्यन् (अनर्तिष्यन्)।

---

१. से ऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः। (अष्टा० ७.२.५७)

(३) पुष् (पुष्टौ)=पुष्ट होना [परस्मै०] अकर्मक

पुष् धातु के लुङ् लकार में च्लि के स्थान पर अङ् (=अ) आदेश होगा।[1] इसी प्रकार दिवादिगण की प्रायः ६४ धातुओं के लुङ् में परस्मैपद में च्लि के स्थान पर अङ् होगा, उनमें से—तुष्, श्लिष्, क्रुध्, सिध्, नश्, द्रुह्, तृप्, मुह्, स्निह्, शम्, हृष्, कुप् ये धातुएँ यहाँ दी जा रही हैं।

लट्—पुष्यति	पुष्यतः	पुष्यन्ति
लिट्—पुपोष	पुपुषतुः	पुपुषुः
लुट्—पोष्टा	पोष्टारौ	पोष्टारः
पोष्टासि	पोष्टास्थः	पोष्टास्थ
पोष्टास्मि	पोष्टास्वः	पोष्टास्मः
लृट्—पोक्ष्यति	पोक्ष्यतः	पोक्ष्यन्ति
पोक्ष्यसि	पोक्ष्यथः	पोक्ष्यथ
पोक्ष्यामि	पोक्ष्यावः	पोक्ष्यामः

लोट्—पुष्यतु (पुष्यतात्)	पुष्यताम्	पुष्यन्तु
पुष्य (पुष्यतात्)	पुष्यतम्	पुष्यत
पुष्याणि	पुष्याव	पुष्याम
लङ्—अपुष्यत्	अपुष्यताम्	अपुष्यन्
वि. लिङ्—पुष्येत्	पुष्येताम्	पुष्येयुः
लुङ्—अपुषत्	अपुषताम्	अपुषन्
अपुषः	अपुषतम्	अपुषत
अपुषम्	अपुषाव	अपुषाम
लृङ्—अपोक्ष्यत्	अपोक्ष्यताम्	अपोक्ष्यन्

अभ्यास

१. इस मेरी दवाई से सब पुष्ट हो जाते हैं=अनेन मम अगदेन सर्वे पुष्यन्ति।

२. अयोध्या में रहते हुए हनुमान् हृष्ट पुष्ट हो गया था।
अयोध्यायां वसन् हनुमान् पुपोष।

३. तुम जल्दी पुष्ट हो जाओगे=त्वं शीघ्रं पोष्टासि (पोक्ष्यसि)

४. काञ्चन भस्म खाओ और शीघ्र पुष्ट हो जाओ।
काञ्चनभस्म सेवध्वं सपदि च पुष्यत (पुष्येत)।

५. जितने हम गुरुकुल में पुष्ट हुए उतने कहीं नहीं हुए।
यादृशाः वयं गुरुकुले अपुष्याम (अपुषाम) तादृशाः न क्वापि अन्यत्र।

६. हे पहलवान! इतना पुष्ट मत हो कि चलना फिरना कठिन हो जाय।
भो मल्ल! एतादृशः मा पुषः (मा स्म पुष्यः) यद् विहरणं ते कठिनं स्यात्।

७. यदि वे दवाई खाते तो पुष्ट हो जाते।
यदि ते औषधम् अभक्षयिष्यन् तर्हि अपोक्ष्यन्।

(४) तुष् (प्रीतौ)=प्रसन्न होना, सन्तुष्ट होना [परस्मैपदी]

लट्—तुष्यति	तुष्यतः	तुष्यन्ति
लिट्—तुतोष	तुतुषतुः	तुतुषुः
लुट्—तोष्टा	तोष्टारौ	तोष्टारः

लृट्—तोक्ष्यति	तोक्ष्यतः	तोक्ष्यन्ति
लोट्—तुष्यतु (तुष्यतात्)	तुष्यताम्	तुष्यन्तु

---

१. पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु (अष्टा० ३.१.५५)

लङ्—अतुष्यत्	अतुष्यताम्	अतुष्यन्		लुङ्—अतुषत्	अतुषताम्	अतुषन्
वि०लिङ्—तुष्येत्	तुष्येताम्	तुष्येयुः		लृङ् अतोक्ष्यत्	अतोक्ष्यताम्	अतोक्ष्यन्

अभ्यास

१. ये कभी सन्तुष्ट नहीं होते=एते कदापि न तुष्यन्ति ।

२. पहिले शिष्यों की सेवा से गुरु सन्तुष्ट हो जाते थे ।
पुरा शिष्याणां सेवया गुरवः तुतुषुः (अतुषन्, अतुष्यन्) ।

३. आप कुछ दीजिये, वे प्रसन्न हो जायेंगे ।
भवान् किमपि ददातु ते तोष्टारः (तोक्ष्यन्ति) ।

४. अरे ! थोड़े से पैसों से सन्तुष्ट मत हो जाना ।
अयि ! स्तोकेन धनेन मा तुषः (मा स्म तुष्यः) ।

५. अब तुम्हें सन्तुष्ट हो जाना चाहिये=अधुना यूयं तुष्यत (तुष्येत)

६. ये बड़े लोभी हैं, न ये आज सन्तुष्ट होंगे न कल ।
एते अतीव लोभिनः सन्ति, इमे नाद्य तोक्ष्यन्ति न च श्वः तोष्टारः ।

७. यदि तू मेरी सेवा न करता तो मैं सन्तुष्ट कैसे होता ।
यदि त्वं मां न असेविष्यथाः तर्हि कथम् अहम् अतोक्ष्यम् ।

८. कल तुम इतनी भेंटों से भी सन्तुष्ट नहीं हुए थे, आज तो वचन से ही सन्तुष्ट हो गये=ह्यः त्वम् एतावद्भिः उपायनैः अपि न अतुष्यः, अद्य तु वचनमात्रेण अपि अतुषः ।

(५) श्लिष् (आलिङ्गने)=आलिङ्गन करना [परस्मै०]

यह धातु अधिकतर आलिङ्गन अर्थ में ही आती है किन्तु कभी-कभी सटने अथवा चिपकने आदि अर्थों में भी इसका प्रयोग होता है । इस अर्थभेद के कारण लुङ् लकार में रूप में भी भेद होगा । जब आलिङ्गन अर्थ ही होगा तब तो च्लि के स्थान पर क्स (स) आदेश होगा[1] और 'अश्लिक्षत्' आदि रूप बनेंगे; किन्तु जब चिपकना आदि अर्थ होगा तब च्लि के स्थान पर पूर्ववत् 'अङ्' (अ) आदेश ही होगा । जैसे 'अश्लिषत् जतु काष्ठम्'=लाख लकड़ी पर चिपक गई ।

लट्—श्लिष्यति	श्लिष्यतः	श्लिष्यन्ति
लिट्—शिश्लेष	शिश्लिषतुः	शिश्लिषुः
लुट्—श्लेष्टा	श्लेष्टारौ	श्लेष्टारः
लृट्—श्लेक्ष्यति	श्लेक्ष्यतः	श्लेक्ष्यन्ति
लोट्—श्लिष्यतु, श्लिष्यतात्	शिष्यताम्	श्लिष्यन्तु
लङ्—अश्लिष्यत्	अश्लिष्यताम्	अश्लिष्यन्

वि०लिङ्—श्लिष्येत्	श्लिष्येताम्	श्लिष्येयुः
लुङ्-(१)अश्लिक्षत्	अश्लिक्षताम्	अश्लिक्षन्
अश्लिक्षः	अश्लिक्षतम्	अश्लिक्षत
अश्लिक्षम्	अश्लिक्षाव	अश्लिक्षाम
(२)अश्लिषत्	अश्लिषताम्	अश्लिषन्
अश्लिषः	अश्लिषतम्	अश्लिषत
अश्लिषम्	अश्लिषाव	अश्लिषाम
लृङ्—अश्लेक्ष्यत्	अश्लेक्ष्यताम्	अश्लेक्ष्यन्

१. श्लिष आलिङ्गने (अष्टा० ३.१.४६)

अभ्यास

१. विजय की खुशी में मित्र आपस में आलिङ्गन करते हैं।
विजयोल्लासे मित्राणि परस्परम् आश्लिष्यन्ति।

२. राम ने सुग्रीव का आलिङ्गन किया = रामः सुग्रीवं शिश्लेष (अश्लिष्यत्, अश्लिक्षत्)

३. कल इसका पुत्र विदेश से लौटेगा, यह उसका आलिङ्गन करेगी और बहुत सन्तुष्ट होगी।

श्वः अस्याः सुतः विदेशात् निर्वर्तिता, इयं तम् आश्लेष्टा सुतरां तोष्टा च।

४. आज ये दोनों बहिनें अपनी छोटी बहिनों का आलिङ्गन करेंगी।
अद्य एते भगिन्यौ स्वाः कनिष्ठाः भगिनीः श्लेक्ष्यन्ति।

५. मैं अपने शूरवीर पुत्र का आलिङ्गन क्यों न करूँ?
अहं निजं शूरं पुत्रं कथं न आश्लिष्याणि?

६. इस धोखेबाज का आलिङ्गन मत कर।
इमं विश्वासघातकं मा श्लिक्षः (मा स्म श्लिष्यः)।

७. कल जीतने पर इसने अपने पुत्र को सीने से लगा लिया, पर आज हारने पर नहीं लगाया।

ह्यः विजये सति अयं निजं सुतम् अश्लिष्यत्, किन्तु अद्य पराजये सति तं न अश्लिक्षत्।

८. यदि तू मेरा आलिङ्गन न करता, तो मैं तुझे नहीं पहिचानने पाता।

यदि त्वं मां न अश्लेक्ष्यः, तर्हि अहं त्वां न पर्यचेष्यम्।

(६) क्रुध् (क्रोधे) = क्रोध करना [परस्मै०]

लट् —	क्रुध्यति	क्रुध्यतः	क्रुध्यन्ति
लिट् —	चुक्रोध	चुक्रुधतुः	चुक्रुधुः
लुट् —	क्रोद्धा	क्रोद्धारौ	क्रोद्धारः
लृट् —	क्रोत्स्यति	क्रोत्स्यतः	क्रोत्स्यन्ति
लोट्	क्रुध्यतु, क्रुध्यतात्	क्रुध्यताम्	क्रुध्यन्तु
लङ् —	अक्रुध्यत्	अक्रुध्यताम्	अक्रुध्यन्
वि. लिङ् —	क्रुध्येत्	क्रुध्येताम्	क्रुध्येयुः
लुङ् —	अक्रुधत्	अक्रुधताम्	अक्रुधन्
लृङ्	अक्रोत्स्यत्	अक्रोत्स्यताम्	अक्रोत्स्यन्

अभ्यास

१. आप सब पर क्रोध करते हैं = भवान् सर्वेभ्यः[1] क्रुध्यति।

---

१. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (अष्टा.१.४.३७) चतुर्थी सम्प्रदाने (अष्टा. २.३.१३)॥ क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या और असूया अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जिस पर क्रोध, द्रोह आदि किया जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है और अतएव उसमें चतुर्थी विभक्ति लगती है॥ यदि क्रोधार्थक और द्रोहार्थक धातु से पूर्व उपसर्ग होगा तो वहां कर्म संज्ञा होगी और द्वितीया विभक्ति होगी। क्रुधद्रुहोरुप-सृष्टयोः कर्म। अष्टा १.४.३८.

२. परशुराम ने कर्ण पर क्रोध किया=परशुरामः कर्णाय चुक्रोध (अक्रुध्यत्, अक्रुधत्)

३. तू किस पर क्रोध करेगा, वे तो घर चले गये।
त्वं कस्मै क्रोद्धासि (क्रोत्स्यसि) ते तु गृहम् अगमन्।

४. मैं उस पर क्रोध क्यों करूँ?=अहं तस्मै कथं क्रुध्यानि (क्रुध्येयम्)।

५. किसी पर क्रोध मत कर=कस्मैचिद् अपि मा क्रुधः (मा स्म क्रुध्यः)।

६. यदि तू दुर्बलों पर क्रोध करता तो लोग तेरी निन्दा करते।
यदि त्वं दुर्बलेभ्यः अक्रोत्स्यः तर्हि जनाः त्वाम् अनिन्दिष्यन्।

(७) सिध् (षिधु) संराद्धौ [=सिद्ध होना] परस्मै०

लट्	सिध्यति	सिध्यतः	सिध्यन्ति
लिट्—	सिषेध	सिषिधतुः	सिषिधुः
लुट्—	सेद्धा	सेद्धारौ	सेद्धारः
लृट्—	सेत्स्यति	सेत्स्यतः	सेत्स्यन्ति
लोट्—	सिध्यतु / सिध्यतात्	सिध्यताम्	सिध्यन्तु
लङ्—	असिध्यत्	असिध्यताम्	असिध्यन्
वि. लिङ्—	सिध्येत्	सिध्येताम्	सिध्येयुः
लुङ्	असिधत्	असिधताम्	असिधन्
लृङ्—	असेत्स्यत्	असेत्स्यताम्	असेत्स्यन्

अभ्यास

१. मूर्खों के काम सिद्ध नहीं होते=मूर्खाणां कार्याणि न सिध्यन्ति।

२. हनुमान् की सहायता से राम के सब कार्य सिद्ध हुए।
हनूमतः साहाय्येन रामस्य सर्वाणि कार्याणि सिषिधुः।

३. परशुराम ने कर्ण से कहा—तेरा कोई कार्य सिद्ध मत हो।
परशुरामः कर्णम् अवादीत् (उवाद, अवदत्)—तव किमपि कार्यं मा सिधत् (मा स्म सिध्यत्)।

४. तेरे सब कार्य कल सिद्ध हो जायेंगे—तव सर्वाणि कार्याणि श्वः सेद्धारः।

५. मेरा कार्य आज ही सिद्ध होगा=मम कार्यम् अद्यैव सेत्स्यति।

६. ईश्वर करे तेरे सब कार्य सिद्ध हों।
ईश्वरकृपया तव सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्तु।

७. तेरे क्रोध के कारण न तो कल कार्य सिद्ध हुआ न आज।
तव क्रोधस्य हेतोः[1] न ह्यः कार्यम् असिध्यत् नापि अद्य असिधत्।

८. यदि तू यहाँ आता तो तेरे सारे कार्य सिद्ध हो जाते।
यदि त्वम् अत्र आगमिष्यः तर्हि तव सर्वाणि कार्याणि असेत्स्यन्।

(८) नश् (णश) अदर्शने=नष्ट होना, खोना [परस्मैपदी]

नश् धातु के लुट्, लृट्, और लृङ् में विकल्प से इ (इट् आगम) होगा।[2]

---

१. षष्ठी हेतुप्रयोगे (अष्टा.२.३.२६) २. रधादिभ्यश्च (अष्टा.७.२.४५)

अतः इन लकारों में दो-दो रूप बनेंगे। यही बात तृप्, द्रुह्, मुह्, स्निह् आदि धातुओं के रूपों में भी समझनी चाहिये।

लट्—नश्यति नश्यतः नश्यन्ति
लिट्—ननाश नेशतुः नेशुः
लुट्-(१) नशिता नशितारौ नशितारः
नशितासि नशितास्थः नशितास्थ
नशितास्मि नशितास्वः नशितास्मः
(२)[1] नंष्टा नंष्टारौ नंष्टारः
नंष्टासि नंष्टास्थः नंष्टास्थ
नंष्टास्मि नंष्टास्वः नंष्टास्मः
लृट्-(१) नशिष्यति नशिष्यतः नशिष्यन्ति
नशिष्यसि नशिष्यथः नशिष्यथ
नशिष्यामि नशिष्यावः नशिष्यामः
(२) नंक्ष्यति नंक्ष्यतः नंक्ष्यन्ति
नंक्ष्यसि नंक्ष्यथः नंक्ष्यथ
नंक्ष्यामि नंक्ष्यावः नंक्ष्यामः
लोट्-नश्यतु (नश्यतात्) नश्यताम् नश्यन्तु
लङ्—अनश्यत् अनश्यताम् अनश्यन्
वि. लिङ्—नश्येत् नश्येताम् नश्येयुः
लुङ्—अनशत् अनशताम् अनशन्
लृङ् (१) अनशिष्यत् अनशिष्यताम् अनशिष्यन्
(२) अनङ्क्ष्यत् अनङ्क्ष्यताम् अनङ्क्ष्यन्

अभ्यास

१. जो न देता है और न भोगता है, उसका धन नष्ट हो जाता है।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य धनं नश्यति।

२. अति अभिमान से रावण नष्ट हो गया=अतिदर्पात् रावणः ननाश।

३. तेरे आदमी कहाँ खो गये=तव मनुष्याः क्व अनश्यन् (अनशन्)?

४. तेरा धन नष्ट हो जायेगा=तव धनं नंष्टा (नशिता; नशिष्यति, नङ्क्ष्यति)।

५. किसी का धन नष्ट क्यों हो=कस्यचिद् अपि धनं कथं नश्यतु (नश्येत्)।

६. यदि तू आज मेरा कहना नहीं मानता तो तेरा धन नष्ट हो जाता।
यदि त्वम् अद्य मम वचनं न अमंस्यथाः तर्हि त्वदीयं धनम् अनङ्क्ष्यत् (अनशिष्यत्)

७. तेरा प्रभाव कभी नष्ट मत हो।
त्वदीयः प्रभावः कदापि न नश्यतु।

८. मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा रोग नष्ट न हो।
नाहं कामये यत् तव रोगः मा नशत् (मा स्म नश्यत्)।

---

१. लुट्, लृट् और लृङ् में जिस पक्ष में इट् नहीं होगा वहाँ 'मस्जिनशोर्झलि' (अष्टा. ७.१.६०) से 'नश्' के मध्य में न् (नुम्) होगा और न् को अनुस्वार (नश्चापदा० अष्टा. ८.३.२४)।

(९) द्रुह (जिघांसायाम्)=द्रोह करना [परस्मै०]

लट्—द्रुह्यति द्रुह्यतः द्रुह्यन्ति

लिट्—दुद्रोह दुद्रुहतुः दुद्रुहुः

लुट्—[1] (१) द्रोग्धा द्रोग्धारौ द्रोग्धारः

(२) द्रोढा द्रोढारौ द्रोढारः

(३) द्रोहिता द्रोहितारौ द्रोहितारः

लृट् (१)[2] ध्रोक्ष्यति ध्रोक्ष्यतः ध्रोक्ष्यन्ति

(२) द्रोहिष्यति द्रोहिष्यतः द्रोहिष्यन्ति

लोट्—द्रुह्यतु, द्रुह्यतात् द्रुह्यताम् द्रुह्यन्तु

लङ्—अद्रुह्यत् अद्रुह्यताम् अद्रुह्यन्

वि. लिङ्—द्रुह्येत् द्रुह्येताम् द्रुह्येयुः

लुङ्—अद्रुहत् अद्रुहताम् अद्रुहन्

लृङ्—(१)[2] अध्रोक्ष्यत् अध्रोक्ष्यताम् अध्रोक्ष्यन्

(२) अद्रोहिष्यत् अद्रोहिष्यताम् अद्रोहिष्यन्

अभ्यास

१. सज्जन किसी से द्रोह नहीं करते=सज्जनाः न कस्मैचिदपि द्रुह्यन्ति ।

२. राक्षसों ने देवताओं से द्रोह किया=राक्षसाः देवेभ्यः दुद्रुहुः ।

३. बच के रहना, ये तुम से द्रोह करेंगे ।

सावहितो भव, एते तुभ्यं द्रोढारः (द्रोग्धारः, द्रोहितारः) द्रोहिष्यन्ति, ध्रोक्ष्यन्ति ।

४. विद्यार्थी को किसी से द्रोह नहीं करना चाहिए ।

विद्यार्थी कस्मैचिद् अपि न द्रुह्येत् (द्रुह्यतु) ।

५. गुरुजनों से कभी द्रोह मत कर=गुरुजनेभ्यः कदापि मा द्रुहः (मा स्म द्रुह्यः) ।

६. यदि ये आचार्य से द्रोह न करते तो विद्या पाते ।

यदि एते आचार्याय न अद्रोहिष्यन् (अध्रोक्ष्यन्) तर्हि विद्याम् अलप्स्यन्त ।

(१०) तृप् (प्रीणने)=तृप्त होना तथा तृप्त करना [परस्मै०]

तृप् धातु अकर्मक भी है और सकर्मक भी। 'स्वयं तृप्त होना' तथा 'दूसरों को तृप्त करना' इन दोनों ही अर्थों में तृप् का प्रयोग होता है[3]। लुट्, लृट्, और लृङ् तीनों लकारों में पूर्ववत् विकल्प से इट् आगम होगा। अनिट् (=इट् रहित) पक्ष में

---

१. लुट् में जब इट् नहीं होगा उस पक्ष में ('वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्' अष्टा.८.२.३३ से) द्रुह के ह् को विकल्प से घ् होगा और 'द्रोग्धा' आदि रूप बनेंगे। एक पक्ष में ह् को ढ् होगा और 'द्रोढा' आदि रूप बनेंगे। इट् के पक्ष में 'द्रोहिता' आदि।

२. लृट् और लृङ् में अनिट् पक्ष में स्य परे रहने पर द्रुह के द् को ध् होगा। (एकाचो बशो० अष्टा. ८.२.३७)

३. "तृप प्रीणने ॥ इह प्रीणनं तृप्तिस्तर्पणं च । दृश्यते चोभयथा । 'तृप्यन्तु भवन्तः,' 'पितृनतार्प्सीत् सममंस्त बन्धून्' इति" माधवीय-धातुवृत्तिः (दिवादि०)

विकल्प से धातु के स्वर से बाद 'अ' (=अम्) आगम होगा।[1] और ऋ को र् हो जायेगा अर्थात् 'त्रप्' बन जायेगा, अतः तीन प्रकार के रूप बनेंगे। लुङ् में च्लि के स्थान पर यथापूर्व अङ् (=अ) तो होगा ही, पक्ष में सिच् भी होगा।[2] जब सिच् (=स्) होगा तब एक पक्ष में इट् (=इ) आगम होगा।[3] सिच् रहने पर जब इडागम नहीं होगा, तब लुट् आदि लकारों के समान विकल्प से धातु को अम् (=अ) आगम होगा; इस प्रकार लुङ् लकार में कुल चार प्रकार के रूप बनेंगे।

लट्—तृप्यति तृप्यतः तृप्यन्ति

लिट्—ततर्प ततृपतुः ततृपुः

लुट् (१) तर्पिता तर्पितारौ तर्पितारः
तर्पितासि तर्पितास्थः तर्पितास्थ
तर्पितास्मि तर्पितास्वः तर्पितास्मः

(२) त्रप्ता त्रप्तारौ त्रप्तारः
त्रप्तासि त्रप्तास्थः त्रप्तास्थ
त्रप्तास्मि त्रप्तास्वः त्रप्तास्मः

(३) तर्प्ता तर्प्तारौ तर्प्तारः
तर्प्तासि तर्प्तास्थः तर्प्तास्थ
तर्प्तास्मि तर्प्तास्वः तर्प्तास्मः

लृट्—(१) तर्पिष्यति तर्पिष्यतः तर्पिष्यन्ति
तर्पिष्यसि तर्पिष्यथः तर्पिष्यथ
तर्पिष्यामि तर्पिष्यावः तर्पिष्यामः

(२) त्रप्स्यति त्रप्स्यतः त्रप्स्यन्ति
त्रप्स्यसि त्रप्स्यथः त्रप्स्यथ
त्रप्स्यामि त्रप्स्यावः त्रप्स्यामः

(३) तर्प्स्यति तर्प्स्यतः तर्प्स्यन्ति
तर्प्स्यसि तर्प्स्यथः तर्प्स्यथ
तर्प्स्यामि तर्प्स्यावः तर्प्स्यामः

लोट्—तृप्यतु / तृप्यतात् तृप्यताम् तृप्यन्तु

लङ्—अतृप्यत् अतृप्यताम् अतृप्यन्

वि० लिङ्—तृप्येत् तृप्येताम् तृप्येयुः

लुङ्—(१) अतृपत् अतृपताम् अतृपन्
अतृपः अतृपतम् अतृपत
अतृपम् अतृपाव अतृपाम

(२) अतर्पीत् अतर्पिष्टाम् अतर्पिषुः
अतर्पीः अतर्पिष्टम् अतर्पिष्ट
अतर्पिषम् अतर्पिष्व अतर्पिष्म

(३) अत्राप्सीत् अत्राप्ताम् अत्राप्सुः
अत्राप्सीः अत्राप्तम् अत्राप्त
अत्राप्सम् अत्राप्स्व अत्राप्स्म

(४) अतार्प्सीत् अतार्प्ताम् अतार्प्सुः
अतार्प्सीः अतार्प्तम् अतार्प्त
अतार्प्सम् अतार्प्स्व अतार्प्स्म

लृङ्—(१) अतर्पिष्यत् अतर्पिष्यताम् अतर्पिष्यन्
अतर्पिष्यः अतर्पिष्यतम् अतर्पिष्यत
अतर्पिष्यम् अतर्पिष्याव अतर्पिष्याम

(२) अत्रप्स्यत् अत्रप्स्यताम् अत्रप्स्यन्
अत्रप्स्यः अत्रप्स्यतम् अत्रप्स्यत
अत्रप्स्यम् अत्रप्स्याव अत्रप्स्याम

(३) अतर्प्स्यत् अतर्प्स्यताम् अतर्प्स्यन्
अतर्प्स्यः अतर्प्स्यतम् अतर्प्स्यत
अतर्प्स्यम् अतर्प्स्याव अतर्प्स्याम

---

१. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् (अष्टा० ६.१.५९)।

२. स्पृशमृशकृषतृपदृपां सिज् वा वक्तव्यः (वार्त्तिक) [अष्टा० ३.१.४४]

३. रधादिभ्यश्च (अष्टा० ७.२.४५)

अभ्यास

१. ब्राह्मण खीर से तृप्त होते हैं=ब्राह्मणाः पायसान्नेन तृप्यन्ति ।

२. यह गृहस्थ प्रतिदिन अपने वृद्ध माता पिता को अन्नादि से तृप्त करता है ।
अयं गृहस्थः प्रत्यहं स्वौ वृद्धौ पितरौ अन्नादिना तृप्यति ।

३. ऋषियों के प्रवचन सुनकर जनक तृप्त हुए और और फिर उन्होंने धनादि से विद्वानों को तृप्त किया ।
ऋषीणां प्रवचनानि श्रुत्वा जनकः ततर्प, तदनन्तरं च सः धनादिभिः विदुषः ततर्प ।

४. कल यह यजमान ऋत्विजों को मोदक खिलाकर तृप्त करेगा ।
श्वः अयं यजमानः ऋत्विजः मोदकभोजनेन तर्पिता (त्रप्ता, तर्प्ता)

५. परसों गुरुजी का व्याख्यान है, क्या हम एक दिन के व्याख्यान से तृप्त हो जायेंगे ।
परश्वः गुरोः व्याख्यानं भविता, किं वयम् एकाहस्य प्रवचनेन तर्पितास्मः (त्रप्तास्मः, तर्प्तास्मः) ?

६. आज हम इन छात्रों को पुए खिलाकर तृप्त करेंगे, किन्तु क्या ये केवल मीठे से तृप्त हो जायेंगे ?
अद्य वयम् एतान् छात्रान् अपूपभोजनेन तर्पिष्यामः (त्रप्स्यामः, तर्प्स्यामः) किन्तु किमेते मिष्टान्नमात्रेण तर्पिष्यन्ति (त्रप्स्यन्ति, तर्प्स्यन्ति)

७. हे वृद्ध पितरजनो ! आप लोग खूब खीर खाओ और तृप्त होओ ।
हे वृद्धाः पितृजनाः ! भवन्तः पायसान्नं सुतरां खादन्तु तृप्यन्तु च ।

८. हे पुत्र ! इन दादा-दादी को नित्य सेवा से तृप्त किया कर ।
हे पुत्र ! इमं पितामहम् इमां पितामहीं च नित्यसेवया तृप्य ।

९. बढ़िया भोजन से हमें स्वयं ही तृप्त नहीं होना चाहिये अपितु सबको तृप्त करना चाहिये ।
उत्तमाशनेन वयं स्वयमेव न तृप्येम, अपितु सर्वान् तृप्येम ।

१०. ये लोग कल स्वादिष्ठ व्यञ्जन से भी तृप्त नहीं हुए थे, तो आज के शाक से कैसे तृप्त हो गये ?
एते ह्यः स्वादिष्ठेन व्यञ्जनेन अपि न अतृप्यन्, तर्हि अद्यतनेन शाकेन कथम् अतृपन् (अतर्पिषुः, अत्राप्सुः, अतार्प्सुः) ?

११. कल हमने इन विद्वानों को तृप्त किया था, आज इनके बच्चों को तृप्त किया ।

ह्यः वयम् एतान् विदुषः अतृप्याम, अद्य एतेषाम् अपत्यानि अतृपाम (अतर्पिष्म, अत्राप्स्म, अताप्स्म)।

१२. यदि मैं तुम्हें रसगुल्ले खिलाता तो तुम लोग तृप्त हो जाते।
यद्यहं युष्मान् रसगोलान् अभोजयिष्यं तर्हि यूयम् अतर्पिष्यत (अत्रप्स्यत, अतप्स्यत)।

१३. यदि मेरे पास खूब धन होता, तो मैं सब विद्वानों को तृप्त कर देता।
यदि अहं पुष्कलं धनम् अधारयिष्यं तर्हि सर्वान् विपश्चितः अतर्पिष्यम् (अत्रप्स्यम्, अतप्स्यम्)।

१४. कामो के उपभोग से अपनी इन्द्रियों को तृप्त न करो।
कामानाम् उपभोगेन निजेन्द्रियाणि मा तृपत [मा तर्पिष्ट, मा त्राप्त, मा ताप्त, मा स्म तृप्यत]।

(११) मुह् (वैचित्ये) बेहोश होना, मोहित होना [परस्मै०]

मुह् धातु के लुट् लकार में द्रुह् के समान तीन प्रकार के रूप बनेंगे तथा लृट् और लृङ् में दो प्रकार के।

लट्—	मुह्यति	मुह्यतः	मुह्यन्ति
लिट्—	मुमोह	मुमुहतुः	मुमुहुः
लुट्—	[१] मोहिता	मोहितारौ	मोहितारः
	[२] मोग्धा	मोग्धारौ	मोग्धारः
	[३] मोढा	मोढारौ	मोढारः
लृट्—	(१) मोहिष्यति	मोहिष्यतः	मोहिष्यन्ति
	[२] मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति
लोट्—	मुह्यतु / मुह्यतात्	मुह्यताम्	मुह्यन्तु
लङ्—	अमुह्यत्	अमुह्यताम्	अमुह्यन्
वि० लिङ्—	मुह्येत्	मुह्येताम्	मुह्येयुः
लुङ्—	अमुहत्	अमुहताम्	अमुहन्
	अमुहः	अमुहतम्	अमुहत
	अमुहम्	अमुहाव	अमुहाम
लृङ्—	[१] अमोहिष्यत्	अमोहिष्यताम्	अमोहिष्यन्
	[२] अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्

अभ्यास

१. धन से सब मोहित हो जाते हैं=धनेन सर्वे मुह्यन्ति।

२. ब्राह्मण धूर्तों की चिकनी चुपड़ी बातों से मोहित हुआ और पशु को छोड़कर चला गया।

ब्राह्मणः धूर्तानाम् उपात्तरम्यैः वचोभिः मुमोह [अमुह्यत्, अमुहत्] पशुं परित्यज्य च जगाम [अगच्छत्, अगमत्]।

३. मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण युद्ध के मैदान में बेहोश हो गया।
मेघनादस्य शक्त्या लक्ष्मणः समराङ्गणे मुमोह।

४. तेरी बात सुनकर वह मोहित हो जायेगा।
तव वार्तां निशम्य स मोहिता [मोढा, मोग्धा; मोहिष्यति, मोक्ष्यति]

५. मैं मोहित क्यों होऊँ=अहं कथं मुह्यानि [मुह्येयम्] ?

६. यदि तू उदयपुर का दृश्य देखता, तो मोहित हो जाता।
यदि त्वम् उदयपुरस्य दृश्यम् अद्रक्ष्यः, तर्हि अमोहिष्यः [अमोक्ष्यः]।

७. अरे ! तू स्त्रियों के कटाक्षों से मोहित मत हो।
अयि ! त्वं रमणीकटाक्षैः मा मुहः [मा स्म मुह्यः]।

(१२) स्निह् (ष्णिह) प्रीतौ=प्रीति करना [परस्मै०]

स्निह् धातु के रूपों में भी द्रुह् धातु के समान ही कार्य होंगे।

लट्—स्निह्यति स्निह्यतः स्निह्यन्ति
लिट्—सिष्णेह सिष्णिहतुः सिष्णिहुः
लुट्—[१] स्नेहिता स्नेहितारौ स्नेहितारः
[२] स्नेग्धा स्नेग्धारौ स्नेग्धारः
[३] स्नेढा स्नेढारौ स्नेढारः
लृट्—स्नेहिष्यति स्नेहिष्यतः स्नेहिष्यन्ति
[२] स्नेक्ष्यति स्नेक्ष्यतः स्नेक्ष्यन्ति

लोट्—{स्निह्यतु / स्निह्यतात्} स्निह्यताम् स्निह्यन्तु
लङ्—अस्निह्यत् अस्निह्यताम् अस्निह्यन्
वि. लिङ्—स्निह्येत् स्निह्येताम् स्निह्येयुः
लुङ्—अस्निहत् अस्निहताम् अस्निहन्
लृङ् [१] अस्नेहिष्यत् अस्नेहिष्यताम् अस्नेहिष्यन्
[२] अस्नेक्ष्यत् अस्नेक्ष्यताम् अस्नेक्ष्यन्

अभ्यास

१. अच्छे गुरु सदा शिष्यों से स्नेह करते हैं=सद्गुरवः सदा शिष्येभ्यः स्निह्यन्ति

२. श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से स्नेह किया।
श्रीकृष्णः प्रद्युम्नाय सिष्णेह [अस्निह्यत्, अस्निहत्]

३. अगस्त्य और लोपामुद्रा ने राम, लक्ष्मण और सीता से स्नेह किया।
अगस्त्यलोपामुद्रे सीतारामलक्ष्मणेभ्यः सिष्णिहतुः [अस्निह्यताम्, अस्निहताम्]

४. कौन मनुष्य तेरे जैसे भोले बच्चे पर स्नेह नहीं करेगा।
कः पुरुषः त्वादृशाय मुग्धाय बालाय न स्नेहिता [स्नेग्धा, स्नेढा; स्नेहिष्यति, स्नेक्ष्यति]।

५. आपको अपने शिष्यों से स्नेह करना चाहिये।
भवन्तः स्वशिष्येभ्यः स्निह्यन्तु [स्निह्येयुः]

६. मैं इस दुष्ट से कैसे स्नेह करूँ=अहम् अस्मै दुष्टाय कथं स्निह्यानि [स्निह्येयम्]

७. यदि हम सबसे स्नेह करते तो सब हमसे भी स्नेह करते।
यदि वयं सर्वेभ्यः अस्नेहिष्याम [अस्नेक्ष्याम] तर्हि सर्वे अस्मभ्यम् अपि अस्नेहिष्यन् [अस्नेक्ष्यन्]।

८. दुष्टों से स्नेह मत कर=दुष्टेभ्यः मा स्निहः [मा स्म स्निह्यः]।

(१३) शम् (शमु) उपशमे [=शान्त होना] परस्मै०

शम् आदि आठ धातुओं के अच् [अ] को लट्, लोट्, लङ् और वि० लिङ् में दीर्घ हो जाता है।[1]

लट्—शाम्यति शाम्यतः शाम्यन्ति
लिट्—शशाम शेमतुः शेमुः
लुट्—शमिता शमितारौ शमितारः
लृट्—शमिष्यति शमिष्यतः शमिष्यन्ति
लोट्—{शाम्यतु / शाम्यतात्} शाम्यताम् शाम्यन्तु
लङ्—अशाम्यत् अशाम्यताम् अशाम्यन्
वि० लिङ्—शाम्येत् शाम्येताम् शाम्येयुः
लुङ्—अशमत् अशमताम् अशमन्
लृङ्—अशमिष्यत् अशमिष्यताम् अशमिष्यन्

अभ्यास

१. यदि चिकित्सा जल्दी की जाय तो आयुर्वेदिक औषधों से बड़ी से बड़ी बिमारियां भी शांत हो जाती हैं।
यदि शीघ्रं चिकित्स्येत तर्हि आयुर्वेदीयैः औषधैः महान्तोऽपि व्याधयः शाम्यन्ति [शीघ्रचिकित्सया नास्ति कश्चिद् गदः यः आयुर्वेदीयैः अगदैः न शाम्यति]।

२. राम को देखकर परशुराम का क्रोध शांत हो गया।
रामं विलोक्य परशुरामस्य कोपाटोपः शशाम [अशाम्यत्, अशमत्]।

३. आपके जाने से वे शांत हो जायेंगे।
भवतः गमनेन [गमनात्] ते शमितारः [शमिष्यन्ति]।

४. यदि पित्त मिश्री से शांत हो जाये तो कड़वी कुटकी क्यों खाई जाय।
यदि पित्तं सितया शाम्येत् [शाम्यतु] तर्हि किं तिक्तेन कटुकेन।

५. तेरी क्रोधाग्नि शांत हो=तव कोपाग्निः शाम्यतु।

६. शायद उस योगी के दर्शन से इसकी क्रोधाग्नि शांत हो जाये।
मन्ये तस्य योगिनः दर्शनेन अस्य क्रोधाग्निः शाम्येत्।

७. तुम्हारी क्रोधाग्नि शांत मत हो, उस अग्नि में इन पापियों को जला दो।
युष्माकं क्रोधदावानलः मा शमत् [मा स्म शाम्यत्], तस्मिन् वह्नौ दहत इमान् पापिनः।

---

१. शमामष्टानां दीर्घः श्यनि [अष्टा० ८.३.७४] [शमु, तमु, दमु, श्रमु, भ्रमु, क्षमूष्, क्लमु, मदी, इत्यष्टौ शमादयः]

८. यदि वह थोड़ी देर शांत न होता तो मैं उसे बहुत पीटता।
यदि सः मुहूर्तं न अशमिष्यत् तर्हि अहं तं भृशम् अताडयिष्यम्।

९. आपके प्रवचन से वे लोग तो कल ही शांत हो गये थे, यह आज शांत हुआ है।
भवतः प्रवचनेन ते तु ह्यः एव अशाम्यन्, अयम् अद्य अशमत्।

(१४) हृष् (तुष्टौ) = प्रसन्न होना [परस्मै०]

लट्—	हृष्यति	हृष्यतः	हृष्यन्ति
लिट्—	जहर्ष	जहृषतुः	जहृषुः
लुट्—	हर्षिता	हर्षितारौ	हर्षितारः
लृट्—	हर्षिष्यति	हर्षिष्यतः	हर्षिष्यन्ति
लोट्—	हृष्यतु / हृष्यतात्	हृष्यताम्	हृष्यन्तु
लङ्—	अहृष्यत्	अहृष्यताम्	अहृष्यन्
वि० लिङ्—	हृष्येत्	हृष्येताम्	हृष्येयुः
लुङ्—	अहृषत्	अहृषताम्	अहृषन्
लृङ्—	अहर्षिष्यत्	अहर्षिष्यताम्	अहर्षिष्यन्

अभ्यास

१. धन के लोभी बनिये ग्राहकों को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं।
धनलोलुपाः वणिजः ग्राहकान् दृष्ट्वा अत्यन्तं हृष्यन्ति।

२. हनुमान् से सीता का समाचार सुनकर सब ऋष्यमूक वासी बहुत हर्षित हुए।
हनूमतः सीतायाः वृत्तान्तं निशम्य सर्वे ऋष्यमूकवासिनः नितराम् जहृषुः (अहृष्यन्, अहृषन्)।

३. तेरी उन्नति होगी इसलिए, तू जल्दी खुश होगा।
तव पदोन्नतिः भविता (भविष्यति), अतः त्वं सत्वरं हर्षितासि (हर्षिष्यसि)

४. वे अब तो प्रसन्न हो जावें, उनका मनीआर्डर आयेगा।
ते अधुना तु हृष्यन्तु (हृष्येयुः), इदानीं तेषां धनादेशः आगन्ता (आगमिष्यति)।

५. गावस्कर के आउट हो जाने से कल आस्ट्रेलिया वाले खुश हुए थे।
गावस्करस्य विसीमगमनात् ह्यः आस्ट्रेलियादेशवासिनः अहृष्यन्।

६. आज तिरासी रनों पर ही चैपल के दल के आउट हो जाने से भारतीय बहुत प्रसन्न हुए।
अद्य त्र्यशीतौ धावनेषु एव चैपलदलस्य विसीमगमनात् भारतीयाः अतितराम् अहृषन्।

७. यदि कपिलदेव पांच विकिट नहीं गिराता, तो हम प्रसन्न कैसे होते।
यदि कपिलदेवः पञ्च विकिटानि न अपातयिष्यत् तर्हि वयं कथम् अहर्षिष्याम।

(१५) कुप् (क्रोधे)=क्रोध करना (परस्मै०)

लट्—	कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति
लिट्—	चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः
लुट्—	कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः
लृट्—	कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति
लोट्—	कुप्यतु / कुप्यतात्	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
लङ्—	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
वि० लिङ्—	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः
लुङ्—	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
लृङ्—	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

अभ्यास

१. यमनियमों का पालन करने वाले क्रोध नहीं करते ।
यमनियमसेविनः न कुप्यन्ति ।

२. भीमसेन ने दुर्योधन और दुःशासन पर बहुत क्रोध किया ।
भीमसेनः दुर्योधनदुःशासनाभ्याम् अतितरां चुकोप ।

३. क्या तू इस दीन पर क्रोध करेगा ?
किं त्वम् अस्मै दीनाय कोपितासि (कोपिष्यसि) ?

४. मैं इस बेचारे पर क्यों क्रोध करूं ?
अहम् अस्मै वराकाय कथं कुप्यानि (कुप्येयम्) ?

५. दीन पर गुस्सा मत कर, दया कर ।
दीनाय मा कुपः (मा स्म कुप्यः) दयस्व (दयेथाः) ।

६. यदि तू उस बेचारे पर क्रोध करता, तो भगवान् तुझे क्षमा नहीं करता ।
यदि त्वं तस्मै वराकाय अकोपिष्यः तर्हि ईश्वरः त्वां न अक्षंस्यत (अक्षमिष्यत)

७. तूने बिना सोचे उस पर क्रोध क्यों किया ।
त्वम् अविचार्य तस्मै कथम् अकुपः (अकुप्यः)

(१६) जन् (जनी) प्रादुर्भावे [=उत्पन्न होना] आत्मनेपदी

लट्, लोट्, लङ् और वि० लिङ् में जन् के स्थान पर 'जा' आदेश होता है ।[1]

लट्—	जायते	जायेते	जायन्ते
	जायसे	जायेथे	जायध्वे
	जाये	जायावहे	जायामहे
लिट्—	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
लुट्—	जनिता	जनितारौ	जनितारः
लृट्—	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
लोट्—	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
	जायै	जायावहै	जायामहै
लङ्—	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

---

१. ज्ञाजनोर्जा (अष्टा० ७.३.७९)

वि० लिङ्—जायेत जायेयाताम् जायेरन्
जायेथाः जायेयाथाम् जायेध्वम्
जायेय जायेवहि जायेमहि

लुङ्— {अजनि[1] / अजनिष्ट} अजनिषाताम् अजनिषत
अजनिष्ठाः अजनिषाथाम् अजनिड्ढ्वम्
अजनिषि अजनिष्वहि अजनिष्महि

लृङ्—
अजनिष्यत अजनिष्येताम् अजनिष्यन्त
अजनिष्यथाः अजनिष्येथाम् अजनिष्यध्वम्
अजनिष्ये अजनिष्यावहि अजनिष्यामहि

अभ्यास

१. प्रतिदिन सैकड़ों आदमी जन्मते और मरते हैं।
प्रत्यहं शतानि जनाः जायन्ते म्रियन्ते च।

२. इक्ष्वाकु वंश में कई प्रतापी राजा उत्पन्न हुए।
इक्ष्वाकुवंशे नैके प्रतापिनः नरपतयः जज्ञिरे।

३. जो जन्म लेगा वह अवश्य मरेगा।
यः जनिता स अवश्यं मर्ता (यः जनिष्यते स अवश्यं मरिष्यति)।

४. 'आ ब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्'[2]।
हे परमेश्वर ! (हमारे राष्ट्र में) ब्रह्मतेजधारी ब्राह्मण उत्पन्न होवे।

५. 'जन्मो, मरो, फिर जन्मो फिर मरो' यह एक ऐसा चक्कर है जिससे छूटना अति कठिन है।
'जायस्व, म्रियस्व, पुनर्जायस्व पुनर्म्रियस्व' अयमेकः ईदृशः चक्रः अस्ति यस्मात् मोक्षः दुर्लभः।

६. 'यजुस्तस्मादजायत'[3]=यजुर्वेद भी उसी परमेश्वर से प्रादुर्भूत हुआ।

७. शायद अगले जन्म में हम भारत में ही जन्म लें।
मन्ये, पुनर्जन्मनि वयं भारतवर्षे एव जायेमहि।

८. यह बछड़ा आज ही जन्मा है=अयं वत्सः अद्यैव अजनि (अजनिष्ट)।

९. यदि दयानन्द जन्म न लेता तो भारत में अन्धकार ही रहता।
यदि दयानन्दः न अजनिष्यत तर्हि भारते अन्धकारः हि अवर्त्स्यत् (अवर्तिष्यत)।

१०. हे दुर्वासना ! तू मेरे मन में फिर उत्पन्न मत हो।
हे दुर्वासने ! त्वं मम मनसि पुनः मा जनिष्ठाः (मा स्म जायथाः)।

---

१. लुङ् में प्रथम पुरुष एकवचन (त) परे रहने पर च्लि के स्थान पर विकल्प से इ (=चिण्) होता है और त का लुक् हो जाता है। (दीपजनबुधपूरीतायीप्यायिभ्यो ऽन्यतरस्याम् (अष्टा० ३.१.६१); चिणो लुक् (अष्टा० ६.४.१०४)।

२. यजुर्वेद २२.२२.

३. यजुर्वेद ३१.७.

(१७) पद् (गतौ)=जाना [आत्मने०]

लट्—	पद्यते	पद्येते	पद्यन्ते
लिट्—	पेदे	पेदाते	पेदिरे
लुट्—	पत्ता	पत्तारौ	पत्तारः
लृट्—	पत्स्यते	पत्स्येते	पत्स्यन्ते
लोट्—	पद्यताम्	पद्येताम्	पद्यन्ताम्
लङ्—	अपद्यत	अपद्येताम्	अपद्यन्त
वि० लिङ्—	पद्येत	पद्येयाताम्	पद्येरन्
लुङ्—	अपादि[1]	अपत्साताम्	अपत्सत
	अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि
लृङ्—	अपत्स्यत	अपत्स्येताम्	अपत्स्यन्त

इस धातु के अभ्यास-वाक्य सोपसर्ग धातुओं के प्रकरण में समझायेंगे।

(१८) मन् (ज्ञाने)=जानना [आत्मने०]

लट्—	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
लिट्—	मेने	मेनाते	मेनिरे
लुट्—	मन्ता	मन्तारौ	मन्तारः
लृट्—	मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते
लोट्—	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
लङ्—	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
वि० लिङ्—	मन्येत	मन्येयाताम्	मन्येरन्
लुङ्—	अमंस्त	अमंसाताम्	अमंसत
	अमंस्थाः	अमंसाथाम्	अमन्ध्वम्
	अमंसि	अमंस्वहि	अमंस्महि
लृङ्—	अमंस्यत	अमंस्येताम्	अमंस्यन्त

अभ्यास

जहाँ परिहास (=हँसी मजाक) का विषय हो तो वहाँ मन् धातु के प्रयोग में उपपद क्रिया के धातु के उत्तम पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष और मन्य (मन्) धातु के मध्यम पुरुष के स्थान पर उत्तम पुरुष होता है और एकवद्भाव हो जाता है[2]। जहाँ परिहास नहीं होगा वहाँ सामान्य प्रयोग होंगे।

१. (परिहास में—) तू ऐसा मानता है कि लड्डू खाऊँगा, वे तो देवेन्द्र खा गया।
त्वं मन्ये मोदकान् भोक्ष्यसे इति तानि तु देवेन्द्रः अखादीत्।
(परिहास के अभाव में)—त्वं मन्यसे मोदकान् भोक्ष्ये इति तानि तु देवेन्द्रः अखादीत्।

२. सीता ने लक्ष्मण की बात नहीं मानी इसलिए दुःख प्राप्त हुआ।
सीता लक्ष्मणस्य वार्तां न मेने (न अमंस्त, न अमन्यत) अतएव दुःखम् आप (आप्नोत्, आपत्)।

३. मैं तेरी सब बातें मान लूंगा=अहं तव सर्वाः वार्ताः मन्ताहे (मंस्ये)।

---

१. चिण् ते पदः (अष्टा. ३.१.६०) से च्लि के स्थान पर चिण् (=इ) तथा त का पूर्ववत् (चिणो लुक्) से लुक्।

१ प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च ॥ अष्टा० १.४.१०६ ॥

४. इस महात्मा की बात मान ले सुख पायेगा।
अस्य महात्मनः वार्तां मन्यस्व (मन्येथाः) सुखम् लप्स्यसे।

५. आज मैंने तुम लोगों की सलाह नहीं मानी, इसीलिए कष्ट उठाया।
अद्य अहं युष्माकं सम्मतिं न अमंसि, अतएव कष्टम् असहिषि।

६. इस मूर्ख की बात मत मानना=अस्य मूढस्य वार्तां मा मंस्थाः (मा स्म मन्यथाः)

७. यदि भारतवासी स्वामी दयानन्द की बात मान लेते तो सुखी होते।

७. यदि भारतवासिनः स्वामिदयानन्दचरणानां वार्ताम् अमंस्यन्त तर्हि सुखिनः अभविष्यन्।

स्वादिगण

स्वादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन चार लकारों में नु (=श्नु) विकरण होता है[1]। नु के ङिद्वत् होने से धातु को प्राप्त गुण आदि का निषेध हो जायेगा।

(१) आप् (आप्लृ) व्याप्तौ=प्राप्त करना [परस्मैपदी]

लकार			
लट्—	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः
लिट्—	आप	आपतुः	आपुः
लुट्—	आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः
लृट्—	आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति
लोट्—	आप्नोतु, आप्नुतात्	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
	आप्नुहि (आप्नुतात्)	आप्नुतम्	आप्नुत
	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम
लङ्—	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत
	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम
वि.लि.—	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
	आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात
	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम
लुङ्—	आपत्	आपताम्	आपन्
	आपः	आपतम्	आपत
	आपम्	आपाव	आपाम
लृङ्—	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्

अभ्यास

१. जो वृद्धों की बात मानते हैं, वे सुख प्राप्त करते हैं।
ये वृद्धानां वार्तां मन्यन्ते ते सुखम् आप्नुवन्ति।

२. रावण ने विभीषण की सलाह नहीं मानी इसलिये दुःख प्राप्त किया।
रावणः विभीषणस्य सम्मतिं न मेने (अमंस्त, अमन्यत) अतएव दुःखम् अवाप (आप्नोत्, आपत्)।

---

१. स्वादिभ्यः श्नुः (अष्टा० ३.१.७३)

३. परिश्रम से ही तू सुख पायेगा=परिश्रमेण एव त्वं सुखम् आप्तासि (आप्स्यसि)।
४. विद्या प्राप्त कर=विद्याम् आप्नुयाः (आप्नुहि)।
५. काला धन्धा करके अपकीर्ति मत प्राप्त कर।
तस्करव्यापारेण अपकीर्तिम् मा आपः [मा स्म आप्नोः]।
६. यदि तू मेरे पास पहिले आ जाता तो विद्या प्राप्त करता।
यदि त्वं मम समीपम् पूर्वम् आगमिष्यः तर्हि विद्याम् आप्स्यः।

(२) शक् (शक्लृ) शक्तौ=समर्थ होना, सकना [परस्मै०]

लट्—शक्नोति शक्नुतः शक्नुवन्ति
लिट्—शशाक शेकतुः शेकुः
लुट्—शक्ता शक्तारौ शक्तारः
लृट्—शक्ष्यति शक्ष्यतः शक्ष्यन्ति
लोट्—{शक्नोतु / शक्नुतात्} शक्नुताम् शक्नुवन्तु
{शक्नुहि / शक्नुतात्} शक्नुतम् शक्नुत
शक्नवानि शक्नवाव शक्नवाम

लङ्—अशक्नोत् अशक्नुताम् अशक्नुवन्
अशक्नोः अशक्नुतम् अशक्नुत
अशक्नवम् अशक्नुव अशक्नुम
वि० लिङ्—शक्नुयात् शक्नुयाताम् शक्नुयुः
लुङ्—अशकत् अशकताम् अशकन्
लृङ्—अशक्ष्यत् अशक्ष्यताम् अशक्ष्यन्

अभ्यास

१. क्या वे वहां जा सकते हैं?=किं ते तत्र गन्तुं शक्नुवन्ति?
२. हनुमान् के बिना कोई भी समुद्र पार न कर सका।
विना हनूमता न कश्चित् समुद्रं तर्तुं शशाक (अशकत्, अशक्नोत्)।
३. मैं तुम्हारे कार्य अवश्य कर सकूंगा।
अहं तव कार्याणि अवश्यं कर्त्तुं शक्ष्यामि (शक्तास्मि)।
४. शायद वह यह कठिन काम न कर सके।
मन्ये सः एतत् कठिनं कार्यं कर्त्तुं न शक्नुयात्।
५. ईश्वर करे तू विद्या पढ़ सके=ईश्वरकृपया त्वं विद्यां पठितुं शक्नुहि।
६. आज मैं तुझे यह बात न कह सका=अद्य अहं त्वाम् एतां वार्तां वक्तुं न अशकम्।
७. तू कभी झूठ न बोल सके=त्वं कदापि असत्यं वक्तुं मा शकः (मा स्म शक्नोः)।
८. यदि तू वहां जा सकता तो अच्छा होता।
यदि त्वं तत्र गन्तुम् अशक्ष्यः तर्हि शुभम् अभविष्यत्।
९. क्या मैं यह कार्य कर सकूंगा?=किम् अहम् एतत् कार्यं कर्त्तुं शक्नवानि।
१०. शायद मैं यह कार्य न कर सकूं=मन्ये अहम् एतत् कार्यं कर्त्तुं न शक्नुयाम्।

(३) चि (चिञ्) चयने=चुनना [उभयपदी]

परस्मैपद

लट्[1]—	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
	चिनोमि	चिनुवः / चिन्वः	चिनुमः / चिन्मः
लिट्[2]-(१)	चिकाय	चिक्यतुः	चिक्युः
(२)	चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः
लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्—	चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति
लोट्-	चिनोतु(चिनुतात्)	चिनुताम्	चिन्वन्तु
	चिनु (चिनुतात्)	चिनुतम्	चिनुत
	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम
लङ्—	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
	अचिनवम्	अचिनुव / अचिन्व	अचिनुम / अचिन्म
वि. लिङ्—	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः
	चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात
	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम
लुङ्—	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः
	अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट
	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म
लृङ्—	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्
	अचेष्यः	अचेष्यतम्	अचेष्यत
	अचेष्यम्	अचेष्याव	अचेष्याम

आत्मनेपद

लट्—	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
	चिन्वे	चिनुवहे	चिनुमहे
लिट् (१)-	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
(२)	चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे
लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्—	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
लोट्—	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
	चिनवै	चिनवावहै	चिनवामहै
लङ्-	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
	अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
	अचिन्वि	अचिनुवहि / अचिन्वहि	अचिनुमहि / अचिन्महि
वि. लिङ्-	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि
लुङ्—	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
	अचेष्ठाः	अचेषाथाम्	अचेढ्वम्
	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि
लृङ्	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त
	अचेष्यथाः	अचेष्येथाम्	अचेष्यध्वम्
	अचेष्ये	अचेष्यावहि	अचेष्यामहि

चिञ् धातु के अभ्यासवाक्य उपसर्ग वाले प्रकरण में समझायेंगे।

---

१. 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः' अष्टा० ६.४.१०७ से वस् और मस् में विकल्प से नु के उ का लोप।

२. लिट् में 'विभाषा चेः (अष्टा० ७.३.५८) से विकल्प से च् को क् होता है।

तुदादिगण

तुदादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श (=अ) विकरण आता है[१]। यह अ (=श) विकरण ङित् माना जाता है[२], अतः धातु में होने वाले गुण वृद्धि आदि कार्यों का निषेध हो जाता है[३]।

(१) इष् (इषु) इच्छायाम्=इच्छा करना [परस्मै०]

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में इष् के ष् को छ् हो जाता है[४]। उस छ् से पहिले त् (=तुक्) होता है[५] और त् के स्थान पर च् हो जाता है[६]। अर्थात् 'इच्छ्' रूप का प्रयोग होता है। लुट् लकार में विकल्प से इट् आगम होता है[७], अतः 'एषिता' आदि और 'एष्टा' आदि दो प्रकार के रूप बनेंगे।

लट्—	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः
लिट्—	इयेष	ईषतुः	ईषुः
लुट्-(१)	एषिता	एषितारौ	एषितारः
	एषितासि	एषितास्थः	एषितास्थ
	एषितास्मि	एषितास्वः	एषितास्मः
(२)	एष्टा	एष्टारौ	एष्टारः
	एष्टासि	एष्टास्थः	एष्टास्थ
	एष्टास्मि	एष्टास्वः	एष्टास्मः
लृट्—	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति

लोट्-	इच्छतु (इच्छतात्)	इच्छताम्	इच्छन्तु
	इच्छ (इच्छतात्)	इच्छतम्	इच्छत
	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम
लङ्—	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम
वि. लिङ्-	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम
लुङ्—	ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः
	ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट
	ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म
लृङ्—	ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्

अभ्यास

१. क्या तुम वहाँ जाना चाहते हो=किं यूयं तत्र गन्तुम् इच्छथ ?
२. मैं इस समय किसी को नहीं चाहता=अहम् इदानीं कम् अपि न इच्छामि।
३. सीता ने सोने के मृग को चाहा=सीता स्वर्णमृगम् इयेष (ऐच्छत्, ऐषीत्)।
४. मैं आगे किसी वस्तु की इच्छा नहीं करूँगा।

---

१. तुदादिभ्यः शः (अष्टा. ३.१.७७)।
२. सार्वधातुकमपित् (अष्टा. १.२.४)।
३. क्ङिति च (अष्टा. १.१.५)।
४. इषुगमियमां छः (अष्टा. ७.३.७७)
५. छे च (अष्टा. ६.१.७३)।
६. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा. ८.४.४०)।
७. तीषसहलुभरुषरिषः अष्टा. ७.२.४८)।

अहम् अग्रे किमपि वस्तु न एषितास्मि (एष्टास्मि, एषिष्यामि)।

५. तुम उन्हीं वस्तुओं को चाहो, जिनको तुम प्राप्त कर सको।
यूयं तानि एव वस्तूनि इच्छत (इच्छेत) यानि प्राप्तुं शक्नुथ।

६. झूठी प्रतिष्ठा को मत चाह—मिथ्या प्रतिष्ठां मा एषीः (मा स्म इच्छः)

७. जो तू चाहता तो मिल जाता—यदि त्वम् ऐषिष्यः तर्हि प्राप्स्यः।

(२) लिख् (अक्षरविन्यासे)—लिखना [परस्मै०]

लट्—लिखति	लिखतः	लिखन्ति		लङ्—अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्
लिट्—लिलेख	लिलिखतुः	लिलिखुः		वि० लिङ्—लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः
लुट्—लेखिता	लेखितारौ	लेखितारः		लुङ्—अलेखीत्	अलेखिष्टाम्	अलेखिषुः
लृट्—लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति		लृङ्—अलेखिष्यत्	अलेखिष्यताम्	अलेखिष्यन्
लोट्—{लिखतु / लिखतात्	लिखताम्	लिखन्तु				

अभ्यास

१. मैं रात्रि में समय निकाल कर पत्र लिखता हूं।
अहं रात्रौ समयं निस्सार्य पत्रं लिखामि।

२. कालिदास ने बहुत सी पुस्तकें लिखीं—कालिदासः बहूनि पुस्तकानि लिलेख।

३. आज मैंने कोई भी पत्र नहीं लिखा—अद्य अहं किमपि पत्रं न अलेखिषम्।

४. क्या तू मेरी पुस्तक लिखेगा—किं त्वं मम पुस्तकं लेखितासि (लेखिष्यसि)।

५. बच्चो! अपने अपने नाम लिखो।
बालकाः! स्वानि स्वानि नामानि लिखत (लिखेत)।

६. आपको मेरे पास पत्र लिखना चाहिए।—भवान् मह्यं पत्रं लिखेत्

७. किसी को पत्र में कटुवाक्य मत लिखना।
कस्मैचित् अपि पत्रे कटुवचनानि मा लेखीः (मा स्म लिखः)।

८. जितने पन्ने तूने कल लिखे थे, उसके दुगुने आज मैंने लिख दिये।
यावन्ति पत्राणि त्वं ह्यः अलिखः, तावतां द्विगुणानि अद्य अहम् अलेखिषम्।

९. यदि तू निबन्ध लिखता तो, उसे अधिवेशन में पढ़ता।
यदि त्वं निबन्धम् अलेखिष्यः, तर्हि अधिवेशने तम् अवाचयिष्यः।

(३) प्रच्छ्[1] (ज्ञीप्सायाम्)—पूछना [परस्मै०] द्विकर्मक

लट्—पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति		लुट्—प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
लिट्—पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः		लृट्—प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति

---

१. लट्, लोट्, लङ् और वि० लिङ् में प्रच्छ् के र् के स्थान पर ऋ आदेश होगा। पूर्ववत् छ् से पहिले च् (तुक्→त्→च्) आ जायेगा और 'पृच्छ' स्वरूप बनेगा [ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च। अष्टा० ६.१.१६]

लोट्— पृच्छतु (पृच्छतात्) पृच्छताम् पृच्छन्तु

लङ्—अपृच्छत् अपृच्छताम् अपृच्छन्

वि० लिङ्—पृच्छेत् पृच्छेताम् पृच्छेयुः

लुङ्—अप्राक्षीत् अप्राष्टाम् अप्राक्षुः
अप्राक्षीः अप्राष्टम् अप्राष्ट
अप्राक्षम् अप्राक्ष्व अप्राक्ष्म

लृङ्—अप्रक्ष्यत् अप्रक्ष्यताम् अप्रक्ष्यन्

अभ्यास

१. बच्चा माता पिता को बहुत प्रश्न पूछता है।
बालकः पितरौ बहून् प्रश्नान् पृच्छति।

२. राम ने विश्वामित्र से पूछा—'इस नदी का क्या इतिहास है?'
रामः विश्वामित्रं पप्रच्छ (अपृच्छत्, अप्राक्षीत्) 'अस्याः नद्याः किम् ऐतिह्यम् अस्ति'?

३. मैं यह पाठ तुम्हें कल पूछूंगा, याद करना।
अहं पाठमिमं युष्मान् श्वः प्रष्टास्मि, स्मरत।

४. सायङ्काल जब वह मुझे तुम्हारे जाने का कारण पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा।
सायं यदा सः मां तव गमनकारणं प्रक्ष्यति तदा अहं किं प्रतिवक्ष्यामि।

५. ऐसी बातें किसी से मत पूछना।
एतादृशीः वार्ताः कमपि मा प्राक्षीः (मा स्म पृच्छः)।

६. यदि वह मुझे 'समर्थः पदविधिः' सूत्र का भाष्य पूछता तो मैं समझा देता।
यदि सः मां 'समर्थः पदविधिः' इति सूत्रस्य भाष्यम् अप्रक्ष्यत् तर्हि अहं तम् अबोधयिष्यम्।

७. वे ही जाकर पिताजी से इस समस्या का हल पूछें।
ते एव गत्वा पितरम् अस्याः समस्यायाः समाधानं पृच्छन्तु (पृच्छेयुः)।

८. कल जो बात मैंने उससे पूछी थी वही बात आज मैंने आप से पूछी है।
ह्यः यां वार्ताम् अहं तम् अपृच्छम् तामेव वार्ताम् अद्य भवन्तम् अप्राक्षम्।

(४) मस्ज् (टुमस्जो) शुद्धौ=शुद्ध होना [परस्मै०]

यह धातु हाथी आदि के नहाने में अथवा नि उपसर्ग साथ लग जाने पर डूबने के अर्थ में आती है। मनुष्य के स्नान करने के अर्थ में भी कभी कभी प्रयुक्त होती है। लट्, लिट्, लोट्, लङ् और वि० लिङ् में (जहां झलादि अक्षर परे न हो) मस्ज् के स् के स्थान पर द् आदेश होगा[1]। उस द् को ज् आदेश होगा[2]।

---

१. झलां जश् झशि (अष्टा० ८.४.५३)

२. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा० ८.४.४०)

फलतः 'मज्ज्' रूप प्रयुक्त होगा। लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् में न् (=नुम्) आगम होगा।[1] वह न् सकार और जकार के बीच होगा।[2] स् का लोप हो जाएगा।[3] ज् को ग्[4] और फिर क् होगा।[5] न् का अनुस्वार[6] और फिर परसवर्ण ङ् होगा।[7] [मस्ज् ता → मस्न्ज् ता → मन्ज् ता। मन्ग् ता। → मन् क् ता → मंक्ता → मङ्क्ता (लुट् में)।

लट्—मज्जति	मज्जतः	मज्जन्ति
लिट्—ममज्ज	ममज्जतुः	ममज्जुः
लुट्—मङ्क्ता	मङ्क्तारौ	मङ्क्तारः
लृट्—मङ्क्ष्यति	मङ्क्ष्यतः	मङ्क्ष्यन्ति
लोट्— {मज्जतु / मज्जतात्}	मज्जताम्	मज्जन्तु

लङ्—अमज्जत्	अमज्जताम्	अमज्जन्
वि०लिङ्—मज्जेत्	मज्जेताम्	मज्जेयुः
लुङ्-अमाङ्क्षीत्	अमाङ्क्ताम्	अमाङ्क्षुः
अमाङ्क्षीः	अमाङ्क्तम्	अमाङ्क्त
अमाङ्क्षम्	अमाङ्क्ष्व	अमाङ्क्ष्म
लृङ्-अमङ्क्ष्यत्	अमङ्क्ष्यताम्	अमङ्क्ष्यन्

अभ्यास

१. सागर के जल में हाथी नहाते हैं = समुद्रस्य जले हस्तिनः मज्जन्ति।

२. वह तालाब में डूब गया था = सः तडागे निममज्ज [न्यमाङ्क्षीत्, न्यमज्जत्]।

३. इस तालाब में मत घुसना डूब जायेगा।
इदं सरः मा प्रविक्षः [मा स्म प्रविशः] निमङ्क्ष्यसि [निमङ्क्तासि]।

४. आज बावड़ी में कौन डूब गया = अद्य वाप्यां कः न्यमाङ्क्षीत्?

५. यदि वह डूब जाता तो बड़ा दुःख होता।
यदि सः न्यमङ्क्ष्यत् तर्हि महद् दुःखम् अभविष्यत्।

६. राजा के हाथी जयसमुद्र के जल में नहावें।
राज्ञः गजाः जयसमुद्रस्य जले मज्जन्तु [मज्जेयुः]।

७. भगवान् करे जल में कोई न डूबे।
ईश्वरकृपया, तोये कश्चिदपि मा निमाङ्क्षीत् [मा स्म निमज्जत्]।

---

१. मस्जिनशोर्झलि (अष्टा० ७.१.६०)
२. मस्जेरन्त्यात्पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम् (वा०) अष्टा० १.१.४७
३. स्कोः संयोगाद्योरन्ते च (अष्टा० ८.२.२९)
४. चोः कुः (अष्टा० ८.२.३०)
५. खरि च (अष्टा० ८.४.५५)
६. नश्चापदान्तस्य झलि (अष्टा० ८.३.२४)
७. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (अष्टा० ७.४.५८)

(५) स्पृश् (संस्पर्शने)=छूना [परस्मै०]

लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् में विकल्प से अम् आगम होगा[1]। तब ऋ को र् होगा[2]। [स्पृश् स्पृअश् स्प्र् अश्=स्प्रश्] अतः इन लकारों में दो रूप बनेंगे। लुङ् में च्लि के स्थान पर विकल्प से सिच् [स्] होगा[3]। एक पक्ष में क्स [स] होगा[4]। सिच्-पक्ष में विकल्प से पूर्ववत् अम् [अ] आगम होगा। अतः तीन प्रकार के रूप बनेंगे।

लट्—स्पृशति स्पृशतः स्पृशन्ति

लिट्—पस्पर्श पस्पृशतुः पस्पृशुः

लुट्-(१) स्प्रष्टा स्प्रष्टारौ स्प्रष्टारः
(२) स्पर्ष्टा स्पर्ष्टारौ स्पर्ष्टारः

लृट्—(१) स्प्रक्ष्यति स्प्रक्ष्यतः स्प्रक्ष्यन्ति
(२) स्पर्क्ष्यति स्पर्क्ष्यतः स्पर्क्ष्यन्ति

लोट्— {स्पृशतु स्पृशताम् स्पृशन्तु
{स्पृशतात्

लङ्—अस्पृशत् अस्पृशताम् अस्पृशन्

वि० लिङ्—स्पृशेत् स्पृशेताम् स्पृशेयुः

लुङ्-(१) अस्प्राक्षीत् अस्प्राष्टाम् अस्प्राक्षुः
अस्प्राक्षीः अस्प्राष्टम् अस्प्राष्ट
अस्प्राक्षम् अस्प्राक्ष्व अस्प्राक्ष्म
(२) अस्पार्क्षीत् अस्पार्ष्टाम् अस्पार्क्षुः
अस्पार्क्षीः अस्पार्ष्टम् अस्पार्ष्ट
अस्पार्क्षम् अस्पार्क्ष्व अस्पार्क्ष्म
(३) अस्पृक्षत् अस्पृक्षताम् अस्पृक्षन्
अस्पृक्षः अस्पृक्षतम् अस्पृक्षत
अस्पृक्षम् अस्पृक्षाव अस्पृक्षाम

लृङ्-(१)अस्प्रक्ष्यत् अस्प्रक्ष्यताम् अस्प्रक्ष्यन्
(२) अस्पर्क्ष्यत् अस्पर्क्ष्यताम् अस्पर्क्ष्यन्

अभ्यास

१. क्षमाप्रार्थी लोग पहिले जमीन छूते हैं और फिर कान छूते हैं।
क्षमाप्रार्थिनः पूर्वं भूमिं स्पृशन्ति तदनन्तरं च कर्णौ स्पृशन्ति।

२. मल्लाह ने पहिले राम के पांव छुए।
कैवर्तः पूर्वं रामचन्द्रस्य चरणौ पस्पर्श (अस्पृशत्; अस्पार्क्षीत्, अस्प्राक्षीत् अस्पृक्षत्)।

३. सबको प्रातःकाल उठकर माता पिता के चरण छूने चाहिये।
सर्वे प्रातः उत्थाय पित्रोः चरणान् स्पृशेयुः (स्पृशन्तु)।

४. पराये धन को मत छूना।
परवित्तं मा स्पार्क्षीः (मा स्प्राक्षीः, मा स्पृक्षः; मा स्म स्पृशः)।

५. यदि तू वृद्धों के पैर छूता तो आशीर्वाद पाता।

---

१. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् (अष्टा ६. १. ५९)
२. इको यणचि (अष्टा. ६. १. ७७)
३. स्पृशमृशकृषतृपदृपां सिज्वा वक्तव्यः (वा० अष्टा. ३. १. ४४.
४. शल इगुपधादनिटः क्सः (अष्टा. ३. १. ४५)

यदि त्वं वृद्धानां चरणान् अस्पर्क्ष्यः (अस्प्रक्ष्यः) तर्हि आशीर्वादम् आप्स्यः ।

६. मैं आज से बड़ों के पैर छूऊँगा ।
अहम् अद्यप्रभृति ज्येष्ठानां पादान् स्पर्क्ष्यामि (स्प्रक्ष्यामि) ।

७. क्या तूने कभी किसी के चरण छुए ?
किं त्वं कदाचित् कस्यचित् चरणौ अस्पार्क्षीः [अस्प्राक्षीः, अस्पृक्षः; अस्पृशः] ।

८. कल विमान से उतरने पर मैं श्री ईश्वरचन्द्र जी के चरण छूऊँगा ।
श्वः वायुयानाद् अवतरति श्रीमति ईश्वरचन्द्रमहाभागे अहं तच्चरणौ स्पर्ष्टास्मि (स्प्रष्टास्मि) ।

(६) विश् (प्रवेशने)=प्रवेश करना [परस्मै०]

लट्—विशति	विशतः	विशन्ति	लङ्—अविशत्	अविशताम्	अविशन्
लिट्—विवेश	विविशतुः	विविशुः	वि. लिङ्—विशेत्	विशेताम्	विशेयुः
लुट्—वेष्टा	वेष्टारौ	वेष्टारः	लुङ्—अविक्षत्	अविक्षताम्	अविक्षन्
लृट्—वेक्ष्यति	वेक्ष्यतः	वेक्ष्यन्ति	लृङ्—अवेक्ष्यत्	अवेक्ष्यताम्	अवेक्ष्यन्
लोट्-विशतु (विशतात्)	विशताम्	विशन्तु			

इस धातु के रूपों का वाक्यप्रयोग उपसर्ग वाले प्रकरण में किया जायेगा ।

(७) जुष् (जुषो) प्रीतिसेवनयोः=प्रयोग करना, प्रीति करना [आत्मने०]

लट्—जुषते	जुषेते	जुषन्ते	लङ्—अजुषत	अजुषेताम्	अजुषन्त
लिट्—जुजुषे	जुजुषाते	जुजुषिरे	वि० लिङ्—जुषेत	जुषेयाताम्	जुषेरन्
लुट्—जोषिता	जोषितारौ	जोषितारः	लुङ्—अजोषिष्ट	अजोषिषाताम्	अजोषिषत
लृट्—जोषिष्यते	जोषिष्येते	जोषिष्यन्ते	लृङ्—अजोषिष्यत	अजोषिष्येताम्	अजोषिष्यन्त
लोट्—जुषताम्	जुषेताम्	जुषन्ताम्			

अभ्यास

१. अच्छे शिष्य सदा गुरुओं की सेवा करते हैं ।
सुशिष्याः सर्वदा गुरुचरणान् जुषन्ते ।

२. भिलनी ने बेरों से रामचन्द्र जी की सेवा की ।
शबरी बदरीफलैः रामचन्द्रं जुजुषे ।

३. हम अपने आने वाले अतिथियों की सेवा करेंगे ।
वयं स्वान् आगमिष्यतः अतिथीन् जोषितास्महे (जोषिष्यामहे) ।

४. जिस संन्यासी की तूने सेवा की वह आर्यसमाज में उपदेश देगा ।
यं संन्यासिनं त्वम् अजुषथाः (अजोषिष्ठाः) असौ आर्यसमाजे उपदेक्ष्यति ।

५. रात दिन उत्तम आचरण का सेवन कर।
अहर्निशं सदाचरणं जुषस्व (जुषेथाः)।

६. सबको माता पिता की सेवा करनी चाहिए।
सर्वे पितरौ जुषेरन्।

७. दुष्टों से प्रीति न रख=खलान् मा जोषिष्ठाः (मा स्म जुषथाः)।

८. यदि वह उस वृद्ध की सेवा करता तो उसकी सम्पत्ति का स्वामी बनता।
यदि सः तं वृद्धम् अजोषिष्यत तर्हि तस्य सम्पदः स्वामी अभविष्यत्।

(८) विज् (ओविजी) भयचलनयोः=डरना, कांपना, उद्विग्न होना [आत्मने०]

विज् धातु का प्रयोग प्रायः उत् उपसर्ग पूर्वक ही होता है। विज् से परे जो इडादि प्रत्यय (ञित् णित् को छोड़कर) आते हैं वे ङिद्वत् समझे जाते हैं।[1] इस लिए लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् में भी लघूपधगुण का निषेध रहेगा।[2]

लट्—	उद्विजते	उद्विजेते	उद्विजन्ते
लिट्—	उद्विविजे	उद्विविजाते	उद्विविजिरे
लुट्—	उद्विजिता	उद्विजितारौ	उद्विजितारः
लृट्—	उद्विजिष्यते	उद्विजिष्येते	उद्विजिष्यन्ते
लोट्—	उद्विजताम्	उद्विजेताम्	उद्विजन्ताम्
लङ्—	उदविजत	उदविजेताम्	उदविजन्त
वि० लिङ्—	उद्विजेत	उद्विजेयाताम्	उद्विजेरन्
लुङ्—	उदविजिष्ट	उदविजिषाताम्	उदविजिषत
लृङ्—	उदविजिष्यत	उदविजिष्येताम्	उदविजिष्यन्त

इसके अभ्यास-वाक्य सोपसर्ग धातुओं के प्रकरण में समझायेंगे।

(९) मृ (मृङ्) प्राणत्यागे=मरना [आत्मनेपदी]

यद्यपि, मृ (मृङ्) धातु ङित् है, अतः सामान्य नियमानुसार[3] इससे सब लकारों में आत्मनेपद प्रत्यय ही होने चाहियें, किन्तु विशेष व्यवस्था[4] के कारण लट्, लोट्, लङ्, लिङ्, (वि० लिङ् और आशीर्लिङ् दोनों) और लुङ् इन छः लकारों में ही आत्मनेपद प्रत्यय होंगे, शेष लिट्, लुट्, लृट्, और लृङ् इन चार लकारों में परस्मैपद प्रत्यय ही होंगे।[5]

---

१. विज इट् (अष्टा० १.२.२)।
२. क्ङिति च (अष्टा १.१.५)।
३. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (अष्टा० १.३.१२)
४. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च (अष्टा० १.३.६१)
५. शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम् (अष्टा १.३.७८)

लट्—	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे
लिट्—	ममार	मम्रतुः	मम्रुः
लुट्—	मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
	मर्तासि	मर्तास्थः	मर्तास्थ
	मर्तास्मि	मर्तास्वः	मर्तास्मः
लृट्—	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
लोट्—	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै
लङ्—	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि
वि॰लिङ्—	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि
लुङ्—	अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
	अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृड्ढ्वम्
	अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि
लृङ्—	अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	अमरिष्यन्

अभ्यास

१. सैकड़ों आदमी दुःख सुख की परवाह न करके धन के लिए मरते हैं।
शतानि मनुष्याः सुखदुःखे अनपेक्ष्य अहर्निशं धनाय म्रियन्ते।

२. किन्तु उनका नाम कोई नहीं जानता, परन्तु जो देश के लिए या दूसरों के लिए मरते हैं, वे मरने के बाद भी पूजे जाते हैं।
किन्तु न कोऽपि तान् जानीते, परन्तु ये देशार्थं परेषां वा कृते म्रियन्ते, ते मरणानन्तरमपि पूज्यन्ते।

३. दधीचि आदि बहुत से महापुरुष देश के लिए मरे और आज भी पूजे जा रहे हैं।
दधीचिप्रभृतयः बहवः महापुरुषाः देशाय मम्रुः (अम्रियन्त, अमृषत) ते अद्यापि पूज्यन्ते च।

४. कौन कहता है तू अभी मरेगा, तू सौ वर्षों से पहिले नहीं मरेगा।
भोः! कः एवमाह 'त्वं मरिष्यसि' इति न खलु त्वं शतात् वर्षेभ्यः प्राक् मर्तासि (मरिष्यसि)।

५. भूखा मत मर, काम कर=बुभुक्षया मा मृथाः (मा स्म म्रियथाः), परिश्रमं कुरु।

६. बहुत से आदमी परिश्रम से जी चुराते हैं इसलिये भूखे मरते हैं।
भूयिष्ठाः जनाः श्रमात् जुगुप्समानाः क्षुधया म्रियन्ते।

७. यदि उसकी चिकित्सा समय पर हो जाती तो वह नहीं मरता।
यदि समये सः अचिकित्सिष्यत, तर्हि नामरिष्यत्।

(१०) दृ (दृङ्) आदरे=आदर करना [आत्मने॰]

दृ धातु का प्रयोग प्रायः आङ् उपसर्ग पूर्वक ही होता है। लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में (श विकरण परे रहने के कारण) दृ के ऋ के स्थान पर रिङ्

(=रि) आदेश होगा[1] और द्रि बनेगा तब द्रि के इ के स्थान पर इयङ्[2] आदेश होगा।

लट्—आद्रियते आद्रियेते आद्रियन्ते
आद्रियसे आद्रियेथे आद्रियध्वे
आद्रिये आद्रियावहे आद्रियामहे
लिट्—आदद्रे आदद्राते आदद्रिरे
लुट्—आदर्ता आदर्तारौ आदर्तारः
लृट्—आदरिष्यते आदरिष्येते आदरिष्यन्ते
लोट्—आद्रियताम् आद्रियेताम् आद्रियन्ताम्
लङ्—आद्रियत आद्रियेताम् आद्रियन्त

वि. लिङ्—आद्रियेत आद्रियेयाताम् आद्रियेरन्
लुङ्—आदृत आदृषाताम् आदृषत
आदृथाः आदृषाथाम् आदृढ्वम्
आदृषि आदृष्वहि आदृष्महि
लृङ्—आदरिष्यत आदरिष्येताम् आदरिष्यन्त

अभ्यास

१. विद्वानों का सब सदा आदर करते हैं=विदुषः सर्वे सदा आद्रियन्ते।

२. सबको बड़ों का आदर करना चाहिए=सर्वे ज्येष्ठान् आद्रियेरन् (आद्रियन्ताम्)

३. ये सज्जन हैं, इसलिये सबका आदर ही करेंगे।
एते सज्जनाः सन्ति, अतः सर्वान् आदर्तारः (आदरिष्यन्ते)।

४. तूने किसी का आदर नहीं किया=त्वं कमपि न आदृथाः (आद्रियथाः)।

५. पहिले राजा ऋषियों का सबसे अधिक आदर करते थे।
पुरा नृपाः ऋषीन् सर्वेभ्यः अधिकम् आदद्रिरे।

६. इस दुष्ट का आदर मत करना, नहीं तो रोज भोजन के समय उपस्थित हो जायेगा।
इमं दुष्टं मा आदृथाः (मा स्म आद्रियथाः) अन्यथा
प्रत्यहम् एष भोजनवेलायाम् उपस्थास्यते[3]।

७. इन मूर्खों में से मैं किसका आदर करूं?
एषु मूर्खेषु कम् आद्रियै (आद्रियेय)।

८. मैंने उनका आदर किया=अहं तान भृशम् आदृषि (आद्रिये)।

९. यदि तू सबका आदर करता तो तेरा सब आदर करते।
यदि त्वं सर्वान् आदरिष्यथाः तर्हि सर्वे त्वाम् आदरिष्यन्त।

---

१. रिङ् शयग्लिङ्क्षु (अष्टा.७.४.२८)
२. अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ (अष्टा.६.४.७७)।
३. उप उपसर्ग पूर्वक स्था धातु से 'वा लिप्सायामिति वक्तव्यम् वा०, (अष्टा.१.३.२५) आत्मनेपद।

(११) मिल् (सङ्गमे)=मिलना [उभयपदी]

परस्मैपद

लट्—	मिलति	मिलतः	मिलन्ति
लिट्—	मिमेल	मिमिलतुः	मिमिलुः
लुट्—	मेलिता	मेलितारौ	मेलितारः
लृट्—	मेलिष्यति	मेलिष्यतः	मेलिष्यन्ति
लोट्—	मिलतु / मिलतात्	मिलताम्	मिलन्तु
लङ्—	अमिलत्	अमिलताम्	अमिलन्
वि. लिङ्—	मिलेत्	मिलेताम्	मिलेयुः
लुङ्—	अमेलीत्	अमेलिष्टाम्	अमेलिषुः
	अमेलीः	अमेलिष्टम्	अमेलिष्ट
	अमेलिषम्	अमेलिष्व	अमेलिष्म
लृङ्—	अमेलिष्यत्	अमेलिष्यताम्	अमेलिष्यन्

आत्मनेपद

लट्—	मिलते	मिलेते	मिलन्ते
लिट्—	मिमिले	मिमिलाते	मिमिलिरे
लुट्—	मेलिता	मेलितारौ	मेलितारः
लृट्—	मेलिष्यते	मेलिष्येते	मेलिष्यन्ते
लोट्—	मिलताम्	मिलेताम्	मिलन्ताम्
लङ्—	अमिलत	अमिलेताम्	अमिलन्त
वि. लिङ्—	मिलेत	मिलेयाताम्	मिलेरन्
लुङ्—	अमेलिष्ट	अमेलिषाताम्	अमेलिषत
	अमेलिष्ठाः	अमेलिषाथाम्	अमेलिढ्वम्
	अमेलिषि	अमेलिष्वहि	अमेलिष्महि
लृङ्—	अमेलिष्यत	अमेलिष्येताम्	अमेलिष्यन्त

अभ्यास

१. दुर्जन जब मिलते हैं तो परस्पर दारुण दुःख देते हैं।
दुर्जनाः यदा मिलन्ति (मिलन्ते) तदा मिथः दारुणं दुःखाकुर्वन्ति।

२. दयानन्द चौदह वर्षों में सैकड़ों योगियों से मिला।
दयानन्दः चतुर्दशसु वर्षेषु शतैः योगिभिः मिमेल (मिमिले; अमिलत्, अमिलत; अमेलीत्, अमेलिष्ट)।

३. कल हम दोनों उस बाग में मिलेंगे।
श्वः आवां तस्मिन् उद्याने मेलितास्वः (मेलितास्वहे)।

४. आज वेदपरिषद् में वे अपने मित्रों से मिलेंगे और हम विद्वानों से मिलेंगे।
अद्य वेदपरिषदि ते स्वमित्रैः मेलिष्यन्ति (मेलिष्यन्ते) वयं च सुधीभिः मेलिष्यामः (मेलिष्यामहे)।

५. क्या मैं आज वित्तमन्त्री से मिलूं ?
किम् अहम् अद्य वित्तमन्त्रिणा मिलानि (मिलै) ?

६. शायद मेरी पुस्तकें इस कमरे में मिल जायें।
मन्ये, मदीयानि पुस्तकानि अस्मिन् प्रकोष्ठे मिलेयुः (मिलेरन्)।

७. दुष्ट से मत मिल—खलेन मा मेलीः (मा मेलिष्ठाः, मा स्म मिलः, मा स्म मिलथाः)

८. यदि तू उससे पहिले मिल लेता तो वह असलीयत जान लेता ।

यदि त्वं तेन पूर्वम् अमेलिष्यः [अमेलिष्यथाः] तर्हि सः वास्तविकताम् अज्ञास्यत् ।

(१२) मुच् (मुच्लृ) मोचने=छोड़ना, देना [उभयपदी]

मुच् धातु को शित् लकारों [=लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ्] में मुम् आगम होगा[1]। उ और म् की इत्सञ्ज्ञा[2] और उनका लोप[3] होने पर न् रहेगा। न् को अनुस्वार[4] और अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण[5] होने पर ञ् हो जायेगा—मुच्→ मुनुम्च्→मुन्च्→मुंच्→मुञ्च् ।

परस्मैपद

लट्—	मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति
लिट्—	मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः
लुट्—	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
लृट्—	मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति
लोट्—	मुञ्चतु / मुञ्चतात्	मुञ्चताम्	मुञ्चन्तु
लङ्—	अमुञ्चत्	अमुञ्चताम्	अमुञ्चन्
वि० लिङ्—	मुञ्चेत्	मुञ्चेताम्	मुञ्चेयुः
लुङ्—	अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्
	अमुचः	अमुचतम्	अमुचत
	अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम
लृङ्—	अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्

आत्मनेपद

लट्—	मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते
लिट्—	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
लुट्—	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
लृट्—	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
लोट्—	मुञ्चताम्	मुञ्चेताम्	मुञ्चन्ताम्
लङ्—	अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त
वि० लिङ्—	मुञ्चेत	मुञ्चेयाताम्	मुञ्चेरन्
लुङ्—	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि
लृङ्—	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त

अभ्यास

१. ये अपना धन सत्पात्रों को देते हैं।

एते स्वं धनं सत्पात्रेभ्यः मुञ्चन्ति [मुञ्चन्ते] ।

२. राम ने वन में किसी राक्षस को जिन्दा नहीं छोड़ा ।

रामः वने कमपि राक्षसं जीवन्तं न मुमोच [मुमुचे] ।

३. उस अपराधी को मैंने इसलिये नहीं छोड़ा, यदि मैं उसे छोड़ देता तो लोगों को दुःख देता ।

---

१. शे मुचादीनाम् [अष्टा. ७. १. ५९] ।

२. उपदेशेऽजनुनासिक इत्; हलन्त्यम् [अष्टा. १. ३. २, ३] ।

३. तस्य लोपः [अष्टा. १. ३. ९] ।

४. नश्चापदान्तस्य झलि [अष्टा. ८. ३. २४] ।

५. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः [अष्टा. ८. ४. ५८] ।

अहं तम् अपराधिनम् अतः न अमुक्षि [अमुचम्] यदि अहं तम् अमोक्ष्यम् [अमोक्ष्ये] तर्हि सः लोकेभ्यः अधोक्ष्यत् ।

४. यदि तू सत्य बोलेगा तो मैं तुझे छोड़ दूंगा, नहीं तो दण्ड दूंगा ।
यदि त्वं सत्यं वक्ष्यसि [वक्तासि] तर्हि त्वाम् मोक्तास्मि (मोक्ताहे; मोक्ष्यामि, मोक्ष्ये) अन्यथा दण्डयिष्यामि त्वाम् ।

५. यह बार बार अपराध करता है, मैं इसे कैसे छोड़ूं ?
अयं मुहुः मुहुः अपराध्यति कथमिमम् अहं मुञ्चानि [मुञ्चै, मुञ्चेयम्, मुञ्चेय] ?

६. इस अपराधी को कभी मत छोड़ना ।
इमम् अपराधिनं कदापि मा मुचः [मा मुक्थाः, मा स्म मुञ्चः, मा स्म मुञ्चथाः] ।

७. जज ने कल जिसे छोड़ा था, आज उसने पुनः चोरी कर ली ।
न्यायाधीशः ह्यः यम् अमुञ्चत् [अमुञ्चत] अद्य सः पुनः चौर्यम् अकार्षीत् ।

(१३) षिच (सिच्) क्षरणे=सींचना [उभयपदी]

शित् लकारों में मुच् के समान सिच् को भी नुम् आगम होगा ।

लट्—सिञ्चति सिञ्चतः सिञ्चन्ति
लिट्—सिषेच सिषिचतुः सिषिचुः
लुट्—सेक्ता सेक्तारौ सेक्तारः
लृट्—सेक्ष्यति सेक्ष्यतः सेक्ष्यन्ति
लोट्— {सिञ्चतु सिञ्चताम् सिञ्चन्तु (सिञ्चतात्)
लङ्—असिञ्चत् असिञ्चताम् असिञ्चन्
वि. लिङ्—सिञ्चेत् सिञ्चेताम् सिञ्चेयुः
लुङ्[1]—असिचत् असिचताम् असिचन्
असिचः असिचतम् असिचत
असिचम् असिचाव असिचाम
लृङ्—असेक्ष्यत् असेक्ष्यताम् असेक्ष्यन्

आत्मनेपद

लट्—सिञ्चते सिञ्चेते सिञ्चन्ते
लिट्—सिषिचे सिषिचाते सिषिचिरे
लुट्—सेक्ता सेक्तारौ सेक्तारः
लृट्—सेक्ष्यते सेक्ष्येते सेक्ष्यन्ते
लोट्—सिञ्चताम् सिञ्चेताम् सिञ्चन्ताम्
लङ्—असिञ्चत असिञ्चेताम् असिञ्चन्त
वि.लिङ्-सिञ्चेत सिञ्चेयाताम् सिञ्चेरन्
लुङ्[2]-[१]असिचत असिचेताम् असिचन्त
असिचथाः असिचेथाम् असिचध्वम्
असिचे असिचावहि असिचामहि
[२] असिक्त असिक्षाताम् असिक्षत
असिक्थाः असिक्षाथाम् असिग्ड्ढ्वम्
असिक्षि असिक्ष्वहि असिक्ष्महि
लृङ्—असेक्ष्यत असेक्ष्येताम् असेक्ष्यन्त

---

१. सिच् धातु के परस्मैपद के लुङ् में 'लिपिसिचिह्वश्च' [अष्टा. ३.१.५३] से नित्य च्लि के स्थान पर अ [=अङ्] आदेश होता है ।

२. सिच् धातु के आत्मनेपद के लुङ् में 'आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्' [अष्टा ३.१.५४] से विकल्प से च्लि के स्थान पर अङ् होता है अतः दो प्रकार के रूप बनेंगे ।

अभ्यास

१. किसान खेतों को सींचते हैं = कृषकाः क्षेत्राणि सिञ्चन्ति [सिञ्चन्ते]।

२. देशभक्तों ने स्वतन्त्रता के पेड़ को अपने खून से सींचा था।
देशभक्ताः स्वातन्त्र्यपादपं निजरक्तेन सिषिचुः [सिषिचिरे; असिञ्चन्, असिञ्चन्त; असिचन्, असिचन्त, असिक्षत]।

३. प्राचीन आर्य लोग यदि अपने बलिदानों से आर्यसमाज रूपी पौधे को न सींचते तो इसका विकास न होता।
प्राचीनाः आर्यजनाः यदि निजबलिदानैः [स्वप्राणार्पणैः] आर्यसमाजक्षुपं न असेक्ष्यन् [असेक्ष्यन्त] तर्हि अस्य विकासः न अभविष्यत्।

४. बालको! रोज इन पेड़ों को सींचो = बालकाः! प्रत्यहम् इमान् तरून् सिञ्चत [सिञ्चध्वम्]।

५. हम तो इन फलदार वृक्षों को ही सींचेंगे = वयं तु इमान् फलिनः वृक्षान् एव सेक्ष्यामः [सेक्ष्यामहे; सेक्तास्मः, सेक्तास्महे]।

६. अब बगिया को मत सींच = इदानीं निष्कुटं मा सिचः [मा सिचथाः; मा सिक्थाः; मा स्म सिञ्चः, मा स्म सिञ्चथाः]।

७. हमें वृक्षारोपण के बाद, समय समय पर उन्हें सींचना भी चाहिये।
वयं वृक्षारोपणानन्तरं यथाकालं तान् सिञ्चेम [सिञ्चेमहि]।

रुधादिगण

रुधादिगण की धातुओं में, चार लकारों में (लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ् में) श्नम् विकरण होगा[1]। श् और म् की इत्सञ्ज्ञा[2] तथा लोप होने पर केवल 'न' रहेगा। पित् प्रत्ययों (तिप्, सिप्, मिप् आदि) को छोड़कर अन्य प्रत्यय (तस्, झि आदि तथा त, आताम् आदि) परे रहने पर उस 'न' के अकार का लोप हो जायगा[3]।

(१) रुध् (रुधिर्) आवरणे = रोकना [उभयपदी] द्विकर्मक

रुध् धातु इरित् है, इसलिये परस्मैपद में लुङ् में च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ् आदेश होगा[4]। पक्ष में सिच् रहेगा। अतः दो प्रकार के रूप बनेंगे।

---

१. रुधादिभ्यः श्नम् (अष्टा० ३.१.७८)।
२. लशक्वतद्धिते; हलन्त्यम् (अष्टा० १.३.८;३)।
३. श्नसोरल्लोपः (अष्टा० ६.४.१११)।
४. इरितो वा (अष्टा० ३.१.५७)।

परस्मैपद

लट्—	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति
	रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध
	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः
लिट्—	रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः
लुट्—	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
लृट्—	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति
लोट्—	रुणद्धु (रुन्द्धात्)	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु
	रुन्द्धि (रुन्द्धात्)	रुन्द्धम्	रुन्द्ध
	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम
लङ्—	अरुणत्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्
	अरुणः (अरुणत्)	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध
	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म
वि० लिङ्–	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
लुङ्–(१)	अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्
	अरुधः	अरुधतम्	अरुधत
	अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम
(२)	अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः
	अरौत्सीः	अरौद्धम्	अरौद्ध
	अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म
लृङ्—	अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्

आत्मनेपद

लट्—	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते
	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्द्ध्वे
	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे
लिट्—	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
लुट्—	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे
लृट्—	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
लोट्—	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्द्ध्वम्
	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै
लङ्—	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
	अरुन्द्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्द्ध्वम्
	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि
वि० लिङ्—	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि
लुङ्—	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि
लृङ्—	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त

रुध् धातु के अभ्यास-वाक्य द्विकर्मक धातुओं के प्रसङ्ग में तथा सोपसर्ग धातुओं के प्रकरण में समझायेंगे।

(२) भिद् (भिदिर्) विदारणे=फाड़ना [उभयपदी]

परस्मैपद

लट्—	भिनत्ति	भिन्तः	भिन्दन्ति
	भिनत्सि	भिन्त्थः	भिन्त्थ
	भिनद्मि	भिन्द्वः	भिन्द्मः
लिट्—	बिभेद	बिभिदतुः	बिभिदुः
लुट्—	भेत्ता	भेत्तारौ	भेत्तारः
लृट्—	भेत्स्यति	भेत्स्यतः	भेत्स्यन्ति

आत्मनेपद

लट्—	भिन्ते	भिन्दाते	भिन्दते
	भिन्त्से	भिन्दाथे	भिन्द्ध्वे
	भिन्दे	भिन्द्वहे	भिन्द्महे
लिट्—	बिभिदे	बिभिदाते	बिभिदिरे
लुट्—	भेत्ता	भेत्तारौ	भेत्तारः
लृट्—	भेत्स्यते	भेत्स्येते	भेत्स्यन्ते

लोट्—भिनत्त (भिन्तात्) भिन्ताम् भिन्दन्तु
भिन्द्धि (भिन्तात्) भिन्तम् भिन्त
भिनदानि भिनदाव भिनदाम

लङ्—अभिनत् अभिन्ताम् अभिन्दन्
अभिनः (अभिनत्) अभिन्तम् अभिन्त
अभिनदम् अभिन्द्व अभिन्द्म

वि० लिङ्—भिन्द्यात् भिन्द्याताम् भिन्द्युः
भिन्द्याः भिन्द्यातम् भिन्द्यात
भिन्द्याम् भिन्द्याव भिन्द्याम

लुङ्[1]—(१) अभिदत् अभिदताम् अभिदन्
अभिदः अभिदतम् अभिदत
अभिदम् अभिदाव अभिदाम
(२) अभैत्सीत् अभैत्ताम् अभैत्सुः
अभैत्सीः अभैत्तम् अभैत्त
अभैत्सम् अभैत्स्व अभैत्स्म

लृङ्—अभेत्स्यत् अभेत्स्यताम् अभेत्स्यन्

लोट्—भिन्ताम् भिन्दाताम् भिन्दताम्
भिन्त्स्व भिन्दाथाम् भिन्द्ध्वम्
भिनदै भिनदावहै भिनदामहै

लङ्—अभिन्त अभिन्दाताम् अभिन्दत
अभिन्त्थाः अभिन्दाथाम् अभिन्द्ध्वम्
अभिन्दि अभिन्द्वहि अभिन्द्महि

वि० लिङ्—भिन्दीत भिन्दीयाताम् भिन्दीरन्
भिन्दीथाः भिन्दीयाथाम् भिन्दीध्वम्
भिन्दीय भिन्दीवहि भिन्दीमहि

लुङ्[2]—अभित्त अभित्साताम् अभित्सत
अभित्थाः अभित्साथाम् अभिद्ध्वम्
अभित्सि अभित्स्वहि अभित्स्महि

लृङ्—अभेत्स्यत अभेत्स्येताम् अभेत्स्यन्त

अभ्यास

१. स्वार्थी मनुष्य आपस के स्नेह को फाड़ देते हैं।
स्वार्थिनः जनाः पारस्परिकं स्नेहं भिन्दन्ति (भिन्दते)।

२. भीम ने दुःशासन के सीने को फाड़ दिया।
भीमः दुःशासनस्य वक्षः बिभेद (बिभिदे)।

३. जिन लकड़ियों को तूने कल फाड़ा था, वे अभी तक नहीं सूखी हैं।
यानि काष्ठानि त्वं ह्यः अभिनः (अभिनत्, अभिन्त्थाः) तानि अधुनावधि न अशुषन्।

४. 'मैं संजीवक को पिङ्गलक से फाड़ दूंगा', यह दमनक ने करटक को कहा।
'अहं सञ्जीवकं पिङ्गलकात् भेत्तास्मि (भेत्ताहे; भेत्स्यामि, भेत्स्ये) इति दमनकः करटकम् आह।

---

१. भिद् धातु भी इरित् है अतः रुधिर् धातु के समान इसके भी लुङ् में (परस्मैपद में) दो प्रकार के रूप बनेंगे। यही बात छिदिर् और युजिर् में भी समझनी चाहिये।

२. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु (अष्टा० १.२.११) से सिच् के कित् हो जाने के कारण लघूपध गुण का निषेध।

५. यदि क्रीप्स हिटलर को रूस के शासक से न फोड़ता तो युद्ध का परिणाम और ही होता।

यदि क्रीप्समहोदयः हिटलरं रूसदेशाध्यक्षात् न अभेत्स्यत् (अभेत्स्यत) तर्हि युद्धस्य फलम् अन्यदेव अभविष्यत्।

६. इस जूठे घड़ों को फोड़ दे=एतान् उच्छिष्टान् घटान् भिन्धि (भिन्त्स्व)

७. जैसे विनोद ने आज कपड़े फाड़ दिये वैसे किसी को नहीं फाड़ने चाहियें।

यथा विनोदः अद्य वासांसि अभिदत् (अभैत्सीत्, अभित्त) तथा कश्चिद् अपि न भिन्द्यात् (भिन्दीत)।

८. इन वस्त्रों को न तूने फाड़ा न उसने फाड़ा तो किसने फाड़ा।

इमानि वासांसि न त्वम् अभिनत् न सोऽभिनत् तर्हि कोऽभिनत्।

(३) छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे=काटना, अलग करना [उभयपदी]

लट्—	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
	छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ
	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः
लिट्—	चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
लृट्—	छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति
लोट्—	छिनत्तु, छिन्तात्	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
	छिन्द्धि, छिन्तात्	छिन्तम्	छिन्त
	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम
लङ्—	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
	अच्छिनः, अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म
वि० लिङ्—	छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
लुङ्—(१)	अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
	अच्छिदः	अच्छिदतम्	अच्छिदत
	अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम

लट्—	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे
	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे
लिट्—	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
लृट्—	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
लोट्—	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै
लङ्—	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
	अच्छिन्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्
	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि
वि. लिङ्—	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि
लुङ्—	अच्छित्त[1]	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत

१. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु (अष्टा० १.२.११) सिच् को किद्वद्भाव।

(२) अच्छैत्सीत् अच्छैत्ताम् अच्छैत्सुः	अच्छित्थाः अच्छित्साथाम् अच्छिद्ध्वम्
अच्छैत्सीः अच्छैत्तम् अच्छैत्त	अच्छित्सि अच्छित्स्वहि अच्छित्स्महि
अच्छैत्सम् अच्छैत्स्व अच्छैत्स्म	
लृङ्—अच्छेत्स्यत् अच्छेत्स्यताम् अच्छेत्स्यन्	लृङ्—अच्छेत्स्यत अच्छेत्स्येताम् अच्छेत्स्यन्त

अभ्यास

१. वह कुल्हाड़े से वृक्षों को काटता है=सः कुठारेण वृक्षान् छिनत्ति ।

२. परशुराम ने फरसे से हजारों क्षत्रियों के सिर काट डाले ।
परशुरामः परशुना सहस्राणां क्षत्रियाणां शिरांसि चिच्छेद (चिच्छिदे)

३. अन्दर की डालियाँ मैंने कल ही काट दी थीं, बाहर की डालियाँ आज बालकों ने काटी हैं ।
आन्तरिकीः शाखाः अहं ह्यः एव अच्छिनदम् (अच्छिन्दि), बाह्याः शाखाः अद्य बालकाः अच्छिदन् (अच्छैत्सुः, अच्छित्सत) ।

४. इन शत्रु सेनाओं को काट दो, फाड़ दो ।
इमाः शत्रुसेनाः छिन्धि भिन्धि (छिन्त्स्व, भिन्त्स्व) ।

५. इन बेलों को तुमने काटा या उसने ?
इमाः वल्लरीः त्वम् अच्छिनत् (अच्छिनः) उत सः अच्छिनत् ।

६. इस दुष्ट का सिर मत काट, जीवित मेरे पास ले आ ।
अस्य दुष्टस्य शिरः मा च्छिदः (मा च्छैत्सीः, मा च्छित्थाः; मा स्म च्छिनः, मा स्म च्छिनत्, मा स्म च्छिन्त्थाः) जीवन्तं माम् उपनय ।

७. मैं इनको जड़ से काट दूंगा ।
अहम् एतान् समूलं छेत्तास्मि (छेत्ताहे; छेत्स्यामि, छेत्स्ये) ।

८. इस पौधे को न उसने काटा न तूने काटा तो आखिर किस ने काटा ?
इमं क्षुपं न सः अच्छिनत् न त्वम् अच्छिनत् तर्हि अन्ततः कोऽच्छिनत् ?

९. हरे वृक्षों को नहीं काटना चाहिये=सरसान् पादपान् न छिन्द्यात् (छिन्दीत)

१०. यदि इस प्रकार वनों को न काटते तो समय पर खूब वर्षा होती ।
यदि एवं वनानि न अच्छेत्स्यन् (अच्छेत्स्यन्त) तर्हि काले पुष्कलः वर्षः अभविष्यत्

(४) युज् (युजिर्) योगे=जोड़ना [उभयपदी]

लट्—युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	लट्—युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थः	युङ्क्थ	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
लिट्—युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	लिट्—युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे

लुट्—	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
लृट्—	योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति
लोट्—	युनक्तु / युङ्क्तात्	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु
	युङ्ग्धि / युङ्क्तात्	युङ्क्तम्	युङ्क्त
	युनजानि	युनजाव	युनजाम
लङ्—	अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्
	अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त
	अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म
वि० लिङ्—	युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः
	युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात
	युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम
लुङ्—	(१) अयुजत्	अयुजताम्	अयुजन्
	अयुजः	अयुजतम्	अयुजत
	अयुजम्	अयुजाव	अयुजाम
	(२) अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः
	अयौक्षीः	अयौक्तम्	अयौक्त
	अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म
लृङ्—	अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्	अयोक्ष्यन्

लुट्—	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
लृट्	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
लोट्—	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
लङ्—	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
वि. लिङ्—	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि
लुङ्—	अयुक्त[1]	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
	अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्
	अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि
लृङ्—	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्	अयोक्ष्यन्त

युज् धातु का वाक्यों में अभ्यास उपसर्ग वाले उपकरण में कराया जायेगा।

पिष् (पिष्लृ) सञ्चूर्णने =पीसना [परस्मै०]

पिष् धातु लृदित् है अतः लुङ् में च्लि के स्थान पर अ (=अङ्) होगा।[2]

लट्—	पिनष्टि	पिंष्टः	पिंषन्ति
	पिनक्षि	पिंष्ठः	पिंष्ठ
	पिनष्मि	पिंष्वः	पिंष्मः
लिट्—	पिपेष	पिपिषतुः	पिपिषुः
लुट्—	पेष्टा	पेष्टारौ	पेष्टारः
लृट्—	पेक्ष्यति	पेक्ष्यतः	पेक्ष्यन्ति

लोट्—	पिनष्टु / पिंष्टात्	पिंष्टाम्	पिंषन्तु
	पिण्ड्ढि / पिंष्टात्	पिंष्टम्	पिंष्ट
	पिनषाणि	पिनषाव	पिनषाम
लङ्—	अपिनट्	अपिंष्टाम्	अपिंषन्
	अपिनट्	अपिंष्टम्	अपिंष्ट

१. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु (अष्टा. १.२.११) से सिच् को किद्वद्भाव हुआ अतः धातु में लघूपध गुण न हुआ।

२. पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु (अष्टा. ३.१.५५)

	अपिनषम्	अपिष्व	अपिष्म	लुङ्—अपिषत्	अपिषताम्	अपिषन्
वि० लिङ्—	पिंष्यात्	पिंष्याताम्	पिंष्युः	अपिषः	अपिषतम्	अपिषत
	पिंष्याः	पिंष्यातम्	पिंष्यात	अपिषम्	अपिषाव	अपिषाम
	पिंष्याम्	पिंष्याव	पिंष्याम	लृङ्—अपेक्ष्यत्	अपेक्ष्यताम्	अपेक्ष्यन्

अभ्यास

१. वह तो गेहूं पीस रही है तुम दोनों क्या पीस रही हो ?
सा तु गोधूमान् पिनष्टि युवां किं पिंष्ठः ?

२. चन्दन के साथ केसर पीस=चन्दनेन सह केशरं पिण्ढि ।

३. तू यह दवाई कब पीसेगा=त्वम् इदम् औषधं कदा पेष्टासि (पेक्ष्यसि) ?

४. पहिले सब महिलाएँ हाथ चक्की से आटा पीसती थीं ।
पुरा सर्वाः वनिताः हस्तपेषणिकया चूर्णं पिपिषुः (पिंषन्ति स्म, अपिंषन्, अपिषन्)

५. न उषा ने गेहूं का आटा पीसा और न तूने जौ का आटा पीसा इसलिये सुपोषा ने भी कुछ नहीं पीसा ।
न उषा शमिताम् अपिनट् न च त्वं चिक्कसम् अपिनट् अतः सुपोषाऽपि किमपि नापिनट् ।

६. मसाले को अधिक मत पीस=उपस्करम् अधिकं मा पिषः (मा स्म पिनट्)

७. तुम्हें दवाइयों को अच्छी प्रकार पीसना चाहिए ।
त्वम् औषधानि सम्यक् पिंष्याः ।

८. यदि तू बंसलोचन और मिश्री अलग-अलग पीस देता तो पाँच रुपए पाता ।
यदि त्वं वंशरोचनां सितां च पृथक्-पृथक् अपेक्ष्यः तर्हि पञ्च रूप्यकाणि प्राप्स्यः ।

(६) भुज् (पालनाभ्यवहारयोः)=पालन करना और खाना [उभयपदी]

भुज् धातु उभयपदी है किन्तु आत्मनेपद और परस्मैपद की विशेष व्यवस्था है । खाने के अर्थ में आत्मनेपद होता है ।[1] और पालन करने के अर्थ में परस्मैपद होता है ।

परस्मैपद (पालन करने में)			आत्मनेपद (खाने के अर्थ में)		
लट्—भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	लट्—भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे
लिट्—बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः	लिट्—बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे

---

१. भुजोऽनवने (अष्टा० १.३.६६)

लुट्—भोक्ता भोक्तारौ भोक्तारः
लृट्—भोक्ष्यति भोक्ष्यतः भोक्ष्यन्ति
लोट्— {भुनक्तु / भुङ्क्तात्} भुङ्क्ताम् भुञ्जन्तु
{भुङ्ग्धि / भुङ्क्तात्} भुङ्क्तम् भुङ्क्त
भुनजानि भुनजाव भुनजाम
लङ्—अभुनक् अभुङ्क्ताम् अभुञ्जन्
अभुनक् अभुङ्क्तम् अभुङ्क्त
अभुनजम् अभुञ्ज्व अभुञ्ज्म
वि० लिङ्—भुञ्ज्यात् भुञ्ज्याताम् भुञ्ज्युः
भुञ्ज्याः भुञ्ज्यातम् भुञ्ज्यात
भुञ्ज्याम् भुञ्ज्याव भुञ्ज्याम
लुङ्—अभौक्षीत् अभौक्ताम् अभौक्षुः
अभौक्षीः अभौक्तम् अभौक्त
अभौक्षम् अभौक्ष्व अभौक्ष्म
लृङ्—अभोक्ष्यत् अभोक्ष्यताम् अभोक्ष्यन्

लुट्—भोक्ता भोक्तारौ भोक्तारः
लृट् भोक्ष्यते भोक्ष्येते भोक्ष्यन्ते
लोट्—भुङ्क्ताम् भुञ्जाताम् भुञ्जताम्
भुङ्क्ष्व भुञ्जाथाम् भुङ्ग्ध्वम्
भुनजै भुनजावहै भुनजामहै
लङ्—अभुङ्क्त अभुञ्जाताम् अभुञ्जत
अभुङ्क्थाः अभुञ्जाथाम् अभुङ्ग्ध्वम्
अभुञ्जि अभुञ्ज्वहि अभुञ्ज्महि
वि. लिङ्—भुञ्जीत भुञ्जीयाताम् भुञ्जीरन्
भुञ्जीथाः भुञ्जीयाथाम् भुञ्जीध्वम्
भुञ्जीय भुञ्जीवहि भुञ्जीमहि
लुङ् अभुक्त अभुक्षाताम् अभुक्षत
अभुक्थाः अभुक्षाथाम् अभुग्ध्वम्
अभुक्षि अभुक्ष्वहि अभुक्ष्महि
लृङ्—अभोक्ष्यत अभोक्ष्येताम् अभोक्ष्यन्त

अभ्यास (क)

१. तू प्रतिदिन प्रातः क्या खाता है।=त्वं प्रत्यहं प्रत्यूषे किं भुङ्क्षे ?

२. जो किसी को बिना दिए खाते हैं वे पाप खाते हैं।
ये अदत्वा कस्मैचित् भुञ्जते ते अघं भुञ्जते।

३. राम ने शबरी के बेर आनन्द से खाये।
रामः शबर्याः बदरीफलानि स्वादुङ्कारं बुभुजे।

४. अतिथियों ने न कल मक्खन खाया और न आज खाया।
अतिथयः नैव ह्यः नवनीतम् अभुञ्जत न च अद्य अभुक्षत।

५. कल हम जी भरकर मिठाई खायेंगे=श्वः वयं मनोहत्य मिष्टान्नं भोक्तास्महे।

६. आज जो जलेबियाँ खायेंगे वे कल नहीं पा सकेंगे।
अद्य ये कुण्डलिनीः भोक्ष्यन्ते ते श्वः नैव लब्धारः।

७. हरा शाक अवश्य खा, स्वस्थ रहेगा।
हरितशाकम् अवश्यं भुङ्क्ष्व स्वस्थः स्थास्यसि।

८. खून बढ़ाने के लिये तुझे प्रतिदिन अंगूर खाने चाहिएं।
रक्तवृद्धये त्वं प्रत्यहं द्राक्षाफलानि भुञ्जीथाः।

९. उस पापी के घर कुछ मत खाना।
तस्य पापिनः गृहे किमपि मा भुक्थाः (मा स्म भुङ्क्थाः)

१०. जैसे आज तूने दही के सिवाय कुछ नहीं खाया वैसे कल भी कुछ नहीं खाता तो तेरी पेचिश बन्द हो जाती।
यथा अद्य त्वम् ऋते दध्नः किमपि न अभुक्थाः तथा ह्यः अपि किमपि न अभोक्ष्यथाः तर्हि आमातिसाररोगः अशमिष्यत्।

अभ्यास (ख)

१. माता पिता पुत्रों को बुढ़ापे के सुख के लिए पालते हैं।
पितरौ सुतान् वार्द्धक्यसुखाय भुङ्क्तः।

२. राजा राम ने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया।
नृपः रामः प्रजां पुत्रवत् बुभोज (अभुनक्, अभौक्षीत्)

३. दुष्टों का पालन मत कर=दुष्टान् मा भौक्षीः (मा स्म भुनक्)

४. क्या तू मेरे मरने पर मेरे पुत्रों का पालन करेगा?
अपि त्वं परलोकं गतवति मयि मम सुतान् भोक्तासि (भोक्ष्यसि)?

५. गुरुकुल में गुरुओं को शिष्यों का पुत्रवत् पालन करना चाहिये।
गुरुकुले गुरवः शिष्यान् पुत्रवत् भुञ्ज्युः (भुञ्जन्तु)।

६. यदि अध्यापक लोग शिष्यों को पढ़ाने के साथ उनका अच्छी तरह पालन भी करते तो मैं अपना सर्वस्व गुरुकुल को दे देता।
गुरवः शिष्यान् अध्यापनेन सह तान् अभोक्ष्यन् चेत् तर्हि निजसर्वस्वम् अहं गुरुकुलाय अत्यदेक्ष्यम् (अस्रक्ष्यम्)।

७. आजकल के नेता प्रजा का पालन नहीं करते अपितु उसका भोग करते हैं।
इदानीन्तनाः नेतारः न प्रजाः भुञ्जन्ति अपितु भुञ्जते।

तनादिगण

तनादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, वि. लिङ्, लङ् में 'उ' विकरण लगता है[1]। तिप्, सिप्, मिप् आदि पित् (=अङित्) प्रत्यय परे होने पर 'उ' को ओ गुण हो जायेगा।[2] लट् और लङ् के वस्, मस् तथा वहि, महि परे रहने पर 'उ' का विकल्प से लोप होगा।[3]

---

१. तनादिकृञ्भ्य उः (अष्टा.३.१.७९).
२. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (अष्टा. ७.३.८४).
३. लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः (अष्टा.६.४.१०७).

(१) तनु (=तन्) विस्तारे=फैलाना, विस्तार करना [उभयपदी]

लट्—	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
	तनोषि	तनुथः	तनुथ
	तनोमि	तन्वः / तनुवः	तन्मः / तनुमः
लिट्—	ततान	तेनतुः	तेनुः
लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लृट्—	तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति
लोट्—	तनोतु (तनुतात्)	तनुताम्	तन्वन्तु
	तनु (तनुतात्)	तनुतम्	तनुत
	तनवानि	तनवाव	तनवाम
लङ्—	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
	अतनवम्	अतन्व / अतनुव	अतन्म / अतनुम
वि. लिङ्—	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः
	तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात
	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम
लुङ्[१]—	(१) अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषुः
	अतानीः	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म
	(२) अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः
	अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट
	अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म
लृङ्—	अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	अतनिष्यन्

लट्—	तनुते	तन्वाते	तन्वते
	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
	तन्वे	तन्वहे / तनुवहे	तन्महे / तनुमहे
लिट्—	तेने	तेनाते	तेनिरे
लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लृट्—	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
लोट्—	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
	तनवै	तनवावहै	तनवामहै
लङ्—	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
	अतन्वि	अतन्वहि / अतनुवहि	अतन्महि / अतनुमहि
वि. लिङ्—	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि
लुङ्[२]—	अतत / अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
	अतथाः / अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिड्ढ्वम्
	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि
लृङ्—	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त

तन् धातु का अधिक प्रयोग वि उपसर्ग पूर्वक होता है।

---

१. परस्मैपद में लुङ् में 'अतो हलादेर्लघोः' (अष्टा.७.२.७) से एक पक्ष में वृद्धि का निषेध होगा। अतः दो प्रकार के रूप बनेंगे।

२. आत्मनेपद में, त और थास् परे रहने पर तनादिगणीय (कृञ् वर्जित) धातुओं से परे वर्त्तमान सिच् का 'तनादिभ्यस्तथासोः' (अष्टा.२.४.७९) से पक्ष में लुक् होगा।

अभ्यास

१. धन का लोभ पाप फैलाता है=धनस्य लोभः पापं वितनोति ।

२. सतयुग में राजाओं ने धर्म का विस्तार किया ।
कृतयुगे राजानः धर्मं तेनुः (तेनिरे; अतन्वन्, अतन्वत, अतानिषुः, अतनिषुः, अतनिषत) ।

३. हम संसार में विद्या फैलायेंगे ।
वयं संसारे विद्यां तनितास्मः (तनितास्महे; तनिष्यामः, तनिष्यामहे) ।

४. क्या मैं कृपालु गुरुओं का यश न फैलाऊँ ?
किम् अहं कृपालूनां गुरूणां यशः न वितनवानि (वितनवै; वितनुयाम्, वितन्वीय) ।

५. भ्रमजाल की बातें मत फैला ।
भ्रान्तिपूर्णाः वार्ताः मा तानीः (मा तनीः, मा तथाः; मा स्म तनोः, मा स्म तनुथाः)

६. धर्म का विस्तार कर पाप का नहीं=धर्मं वितनु (वितनुष्व) न पापम् ।

७. यदि दयानन्द वैदिक धर्म का विस्तार न करता तो यहाँ अवैदिक लोग अपने धर्म का विस्तार करते ।
यदि दयानन्दः वैदिकधर्मं न अतनिष्यत् (अतनिष्यत) तर्हि अवैदिकाः स्वमतम् अत्र अतनिष्यन् (अतनिष्यन्त) ।

(२) डुकृञ् (=कृ) करणे=करना [उभयपदी]

कृ धातु से भी 'उ' विकरण (लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में) लगता है । 'उ' परे रहने पर 'कृ' के ऋ को गुण और रपरत्व[1] होकर→'कर् उ' स्थिति होगी । तस्, झि आदि और त, आतां, झ आदि अपित् (=ङित्) सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो उस 'कर्' के अकार को उकार आदेश हो जाता है[2] । लट् और लङ् में वस्, मस् तथा वहि, महि परे रहने पर 'उ' विकरण का नित्य लोप होता है ।[3]

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्—करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	लट्—कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
लिट्—चकार	चक्रतुः	चक्रुः	लिट्—चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
लुट्—कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्—कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
लृट्—करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्—करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते

---

१. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (अष्टा.७.३.८४) उरण्रपरः (अष्टा.१.१.५१) ।

२. अत उत् सार्वधातुके (अष्टा.६.४.११०) ।

३. नित्यं करोतेः (अष्टा.६.४.१०८) ।

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लोट्—करोतु (कुरुतात्)	कुरुताम्	कुर्वन्तु		लोट्—कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु (कुरुतात्)	कुरुतम्	कुरुत		कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम		करवै	करवावहै	करवामहै
लङ्—अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्		लङ्—अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत		अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म		अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि
वि. लिङ्—कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः		वि. लिङ्—कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात		कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम		कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि
लुङ्—अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः		लुङ्—अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट		अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृड्ढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म		अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि
लृङ्—अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्		लृङ्—अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

अभ्यास

१. वे रातदिन कन्या गुरुकुल का कार्य करते हैं।
ते अहर्निशं कन्यागुरुकुलस्य कार्यं कुर्वन्ति (कुर्वते)।

२. सतयुग में सबने धर्म के कार्य किये = कृतयुगे सर्वे धर्मस्य कार्याणि चक्रुः (चक्रिरे)

३. मैं तुम्हारे ये सब कार्य कल कर दूंगा।
अहं तव इमानि सर्वाणि कार्याणि श्वः कर्तास्मि (कर्ताहे)।

४. क्या आज वह मेरी चटाई बना देगा ?
किम् अद्य सः मदीयं कटं करिष्यति (करिष्यते) ?

५. मैं आपका कार्य करूँ या गुरुकुल का ?
अहं भवतः कार्यं करवाणि (करवै; कुर्याम्, कुर्वीय) अथवा गुरुकुलस्य ?

६. आप सबको पहले समाज का काम करना चाहिये फिर अन्य कार्य।
भवन्तः पूर्वं समाजस्य कार्यं कुर्युः (कुर्वीरन्) तदनन्तरम् अन्यत् कार्यम्।

७. मैंने कल उसके साथ आकाशगङ्गा के तारों के विषय में बहुत विवाद किया।
अहं ह्यः तेन सह आकाशगङ्गायाः ताराणां विषये भृशं विवादम् अकरवम् (अकुर्वि)

८. आज तुमने किसके साथ झगड़ा किया ?
अद्य त्वं केन सह कलहम् अकार्षीः (अकृथाः)।

९. पाप में रति मत कर=पापे रतिं मा कृथाः (मा कार्षीः; मा स्म करोः, मा स्म कुरुथाः)

१०. जितना कार्य तूने उन अमीरों का किया यदि उतना गरीबों का करता तो सीधा स्वर्ग को जाता।

यावत् कार्यं त्वं तेषां धनाढ्यानाम् अकरोः (अकुरुथाः; अकार्षीः, अकृथाः) तावत् यदि त्वं निर्धनानाम् अकरिष्यः (अकरिष्यथाः) तर्हि निर्बाधं स्वर्गं प्राप्स्यः।

क्र्यादिगण

क्र्यादिगणीय धातुओं से लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ् इन चार लकारों में श्ना विकरण लगेगा[1]। श् की इत्सञ्ज्ञा तथा लोप होने पर 'ना' रहेगा। 'ना' विकरण शित् होने से सार्वधातुक[2] और अपित् होने से ङित्त्व धर्म से युक्त माना जाता है[3]। फलतः ना परे रहने पर धातु को गुणवृद्धि आदि कार्य नहीं होंगे[4]। तस्, थस् आदि तथा त, वहि, महि आदि हलादि ङित् प्रत्यय परे रहने पर 'ना' के आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है[5]। अन्ति (=झि), आताम्, आथाम् आदि अजादि ङित् प्रत्यय परे होने पर उस 'ना' विकरण के आकार का लोप हो जाता है[6]।

(१) डुक्रीञ् (क्री) द्रव्यविनिमये=खरीदना [उभयपदी]

परस्मैपद

लट्—	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः
लिट्—	चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः
लुट्—	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
लृट्—	क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति
लोट्—	क्रीणातु (क्रीणीतात्)	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
	क्रीणीहि (क्रीणीतात्)	क्रीणीतम्	क्रीणीत

आत्मनेपद

लट्—	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
लिट्—	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
लुट्—	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
लृट्—	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
लोट्—	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

---

१. क्र्यादिभ्यः श्ना (अष्टा. ३.१.८१)
२. तिङ्शित् सार्वधातुकम् (अष्टा. ३.४.११३)
३. सार्वधातुकमपित् (अष्टा. १.२.४)
४. क्ङिति च (अष्टा. १.१.५)
५. ई हल्यघोः (अष्टा. ६.४.११३)
६. श्नाभ्यस्तयोरातः (अष्टा. ६.४.११२)

क्रीणानि क्रीणाव क्रीणाम

लङ्—अक्रीणात् अक्रीणीताम् अक्रीणन्
अक्रीणाः अक्रीणीतम् अक्रीणीत
अक्रीणाम् अक्रीणीव अक्रीणीम

वि. लिङ्—क्रीणीयात् क्रीणीयाताम् क्रीणीयुः
क्रीणीयाः क्रीणीयातम् क्रीणीयात
क्रीणीयाम् क्रीणीयाव क्रीणीयाम

लुङ्—अक्रैषीत् अक्रैष्टाम् अक्रैषुः
अक्रैषीः अक्रैष्टम् अक्रैष्ट
अक्रैषम् अक्रैष्व अक्रैष्म

लृङ्—अक्रेष्यत् अक्रेष्यताम् अक्रेष्यन्

लङ्—अक्रीणीत अक्रीणाताम् अक्रीणत
अक्रीणीथाः अक्रीणाथाम् अक्रीणीध्वम्
अक्रीणि अक्रीणीवहि अक्रीणीमहि

वि. लिङ्—क्रीणीत क्रीणीयाताम् क्रीणीरन्
क्रीणीथाः क्रीणीयाथाम् क्रीणीध्वम्
क्रीणीय क्रीणीवहि क्रीणीमहि

लुङ्—अक्रेष्ट अक्रेषाताम् अक्रेषत
अक्रेष्ठाः अक्रेषाथाम् अक्रेड्ढ्वम्
अक्रेषि अक्रेष्वहि अक्रेष्महि

लृङ्—अक्रेष्यत अक्रेष्येताम् अक्रेष्यन्त

अभ्यास

१. वे वैदिक ग्रन्थ खरीदते हैं=ते वैदिकग्रन्थान् क्रीणन्ति (क्रीणते)।

२. महाराणा प्रताप ने भामाशाह के द्वारा दिये हुए धन से, बहुत से घोड़े खरीदे। महाराणा प्रतापः भामाशाहप्रदत्तेन धनेन बहून् अश्वान् चिक्राय (चिक्रिये)।

३. महाराजा रणजीतसिंह ने लैला घोड़ी खरीदी नहीं बल्कि युद्ध में जीती थी। महाराजः रणजित्सिंहः लैलाख्यां वडवां न अक्रीणात् (अक्रीणीत, अक्रैषीत्, अक्रेष्ट) अपितु तां युद्धे विजिग्ये।

४. जैसे कपड़े तुम लोग आज खरीदोगे, उससे बढ़िया हम कल खरीदेंगे। यादृशानि वस्त्राणि यूयम् अद्य क्रेष्यथ (क्रेष्यध्वे) ततः श्रेयांसि वयं श्वः क्रेतास्मः (क्रेतास्महे)।

५. तू वैदिक यन्त्रालय से चारों वेदों की मूलसंहिताएँ खरीद ले। त्वं वैदिकयन्त्रालयात् चतुर्णां वेदानां मूलसंहिताः क्रीणीहि (क्रीणीष्व)।

६. हमें पुस्तकालय के लिये यात्रासाहित्य और जीवनीसाहित्य अवश्य खरीदना चाहिये।=वयं पुस्तकालयार्थं यात्रासाहित्यं जीवनचरितसाहित्यं च अवश्यं क्रीणीयाम (क्रीणीमहि)।

७. कल वे शास्त्री के लिये रेशमी कपड़े खरीद लाये और तूने आज मेरे लिये कुछ नहीं खरीदा।=ह्यः ते शास्त्रिणे क्षौमानि वासांसि अक्रीणन् (अक्रीणत) त्वं च अद्य मह्यं किमपि न अक्रैषीः (अक्रेष्ठाः)?

८. ये आम खट्टे हैं इन्हें मत खरीदिये।=अम्लानि इमानि आम्राणि सन्ति, भवान् इमानि मा क्रैषीत् (मा क्रेष्ट; मा स्म क्रीणात्, मा स्म क्रीणीत)।

९. यदि सर्वमित्र ये अंग्रेजी दवाइयां न खरीदता तो उतने रुपयों में हम स्वर्ण भस्म खरीद लेते।=यदि सर्वमित्रः इमानि आंग्लानि औषधानि न अक्रेष्यत् (अक्रेष्यत) तर्हि तावद्भिः रूप्यकैः वयं स्वर्णभस्म अक्रेष्याम (अक्रेष्यामहि)।

१०. जैसे जूते हम अपने लिये खरीदते हैं वैसे ही सुरेन्द्र के लिये खरीदें क्या?
यादृश्यौ उपानहौ वयम् अस्मभ्यं क्रीणीमः (क्रीणीमहे) तादृश्यौ एव किं सुरेन्द्राय क्रीणाम (क्रीणामहै)?

(२) ग्रह उपादाने=लेना [उभयपदी]

लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ् में, ना (=श्ना) विकरण के ङित् होने से ग्रह के रेफ को सम्प्रसारण (=ऋ) हो जाएगा[1] और अकार को पूर्वरूप एकादेश होगा[2] आर्धधातुक प्रत्ययों में होने वाले[3] इट् को, ग्रह धातु के लुट्, लृट्, लुङ् और लृङ् में दीर्घ होता है।[4]

परस्मैपद

लट्—	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः
लिट्—	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
लुट्—	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
लृट्—	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति
लोट्—	गृह्णातु / गृह्णीतात्	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
	गृहाण / गृह्णीतात्	गृह्णीतम्	गृह्णीत
	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम
लङ्—	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

आत्मनेपद

लट्—	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे
लिट्—	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
लुट्—	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
लृट्—	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
लोट्—	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै
लङ्—	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

---

१. ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च (अष्टा० ६.१.१३)
२. सम्प्रसारणाच्च (अष्टा० ६.१.१०८)
३. आर्धधातुकस्येड् वलादेः (अष्टा० ७.२.३५)
४. ग्रहोऽलिटि दीर्घः (अष्टा० ७.२.३७)

वि. लिङ्—गृह्णीयात् गृह्णीयाताम् गृह्णीयुः
गृह्णीयाः गृह्णीयातम् गृह्णीयात
गृह्णीयाम् गृह्णीयाव गृह्णीयाम
लुङ्[1]—अग्रहीत् अग्रहीष्टाम् अग्रहीषुः
अग्रहीः अग्रहीष्टम् अग्रहीष्ट
अग्रहीषम् अग्रहीष्व अग्रहीष्म
लृङ्—अग्रहीष्यत् अग्रहीष्यताम् अग्रहीष्यन्

वि. लिङ्—गृह्णीत गृह्णीयाताम् गृह्णीरन्
गृह्णीथाः गृह्णीयाथाम् गृह्णीध्वम्
गृह्णीय गृह्णीवहि गृह्णीमहि
लुङ्—अग्रहीष्ट अग्रहीषाताम् अग्रहीषत
अग्रहीष्ठाः अग्रहीषाथाम् अग्रहीड्ढ्वम्
अग्रहीषि अग्रहीष्वहि अग्रहीष्महि
लृङ्—अग्रहीष्यत अग्रहीष्येताम् अग्रहीष्यन्त

अभ्यास

१. सज्जन लोग घर में आये अतिथियों को स्नेह से ग्रहण करते हैं।
सज्जनाः गृहम् आगतान् अतिथीन् सस्नेहं गृह्णन्ति (गृह्णते)।

२. पहिले ऋषि लोग शिष्यों से कोई फीस नहीं लेते थे।
पुरा ऋषयः शिष्येभ्यः किमपि शुल्कं न जगृहुः (जगृहिरे)।

३. मैं ये पुस्तकें तुमसे कल ले लूंगा।
अहम इमानि पुस्तकानि त्वत्तः श्वः ग्रहीतास्मि (ग्रहीताहे)।

४. अभी तू भोजन में दही लेगा या दूध ?
अधुना त्वं भोजने दधि ग्रहीष्यसि (ग्रहीष्यसे) दुग्धं वा।

५. मैं इससे क्या लूं और इसे क्या दूं, समझ में नहीं आता।
अहम् अस्मात् किं गृह्णानि (गृह्णै; गृह्णीयाम्, गृह्णीय) किं च अस्मै यच्छानि (यच्छेयम्) इति ज्ञातुं न पारयामि।

६. तूने कल उससे कितने रुपए लिए थे ?
त्वं ह्यः तस्मात् कियन्ति रूप्यकाणि अगृह्णाः (अगृह्णीथाः)।

७ मैया ! क्या हम दोनों आज भी उतने ही लड्डू लें जितने रोज लेते हैं ?
मातः ! किम् आवाम् अद्यापि तावन्ति एव मोदकानि गृह्णाव (गृह्णावहै) यावन्ति प्रत्यहं गृह्णीवः (गृह्णीवहे)।

८. अन्धे व्यक्तियों से तुम्हें यात्रा किराया नहीं लेना चाहिए।
अन्धव्यक्तिभ्यः त्वं यात्राशुल्कं न गृह्णीयाः (गृह्णीथाः)।

९. आज मैंने न दूध लिया न पानी।
अद्य अहं न दुग्धम् अग्रहीषम् (अग्रहीषि) न च जलम्।

१०. इससे पैसे मत लेना, मैं दूंगा।

---

१. ग्रह के लुङ् में ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् (अष्टा० ७.२.७) से वृद्धि का निषेध।

अस्मात् पणान् मा ग्रहीः (मा ग्रहीष्ठाः, मा स्म गृह्णाः, मा स्म गृह्णीथाः) अहं दास्यामि ।

११, यदि तू इतना ब्याज न लेता तो अब दुःख न पाता ।
यदि त्वम् एतावत् कुसीदं न अग्रहीष्यः (अग्रहीष्यथाः) तर्हि सम्प्रति दुःखं न अवाप्स्यः ।

(३) लूञ् (=लू) छेदने [काटना] उभयपदी

लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ्, में लू के ऊकार के स्थान पर ह्रस्व उकार हो जाएगा ।[1]

लट्—लुनाति लुनीतः लुनन्ति
लुनासि लुनीथः लुनीथ
लुनामि लुनीवः लुनीमः

लिट्—लुलाव लुलुवतुः लुलुवुः

लुट्—लविता लवितारौ लवितारः

लृट्—लविष्यति लविष्यतः लविष्यन्ति

लोट्—{लुनातु / लुनीतात्} लुनीताम् लुनन्तु
{लुनीहि / लुनीतात्} लुनीतम् लुनीत
लुनानि लुनाव लुनाम

लङ्—अलुनात् अलुनीताम् अलुनन्
अलुनाः अलुनीतम् अलुनीत
अलुनाम् अलुनीव अलुनीम

वि. लिङ्—लुनीयात् लुनीयाताम् लुनीयुः
लुनीयाः लुनीयातम् लुनीयात
लुनीयाम् लुनीयाव लुनीयाम

लुङ्—अलावीत् अलाविष्टाम् अलाविषुः
अलावीः अलाविष्टम् अलाविष्ट
अलाविषम् अलाविष्व अलाविष्म

लृङ्—अलविष्यत् अलविष्यताम् अलविष्यन्

लट्—लुनीते लुनाते लुनते
लुनीषे लुनाथे लुनीध्वे
लुने लुनीवहे लुनीमहे

लिट्—लुलुवे लुलुवाते लुलुविरे

लुट्—लविता लवितारौ लवितारः

लृट्—लविष्यते लविष्येते लविष्यन्ते

लोट्—लुनीताम् लुनाताम् लुनताम्
लुनीष्व लुनाथाम् लुनीध्वम्
लुनै लुनावहै लुनामहै

लङ्—अलुनीत अलुनाताम् अलुनत
अलुनीथाः अलुनाथाम् अलुनीध्वम्
अलुनि अलुनीवहि अलुनीमहि

वि. लिङ्—लुनीत लुनीयाताम् लुनीरन्
लुनीथाः लुनीयाथाम् लुनीध्वम्
लुनीय लुनीवहि लुनीमहि

लुङ्—अलविष्ट अलविषाताम् अलविषत
अलविष्ठाः अलविषाथाम् अलविढ्वम्
अलविषि अलविष्वहि अलविष्महि

लृङ्—अलविष्यत अलविष्येताम् अलविष्यन्त

अभ्यास

१. हम जब गेहूं काटते हैं, तब वे लोग जौ काटते हैं ।
वयं यदा गोधूमान् लुनीमः (लुनीमहे), तदा ते यवान् लुनन्ति (लुनते) ।

---

१. प्वादीनां ह्रस्वः (अष्टा० ७.२.८०)

२. राम ने एक ही बाण से सात ताड़ के वृक्षों को काट दिया ।
राम: एकेनैव शरेण सप्त तालतरून् लुलाव (लुलुवे) ।
३. इस चने की फसल को कल काटेंगे ।
इदं चणकसस्यं श्व: लवितास्म: (लवितास्महे) ।
४. आज हम इस खेत का जीरा काटेंगे ।
अद्य वयम् अस्य केदारस्य जीरकं लविष्याम: (लविष्यामहे) ।
५. कल क्या इस पेड़ की डाली तूने काटी थी ?
अपि त्वं ह्य: एतस्य पादपस्य शाखाम् अलुना: (अलुनीथा:) ?
६. आज मजदूरों ने इस खेत को क्यों नहीं काटा ?
अद्य श्रमिका: एतत् क्षेत्रं कथं न अलाविषु: (अलविषत) ?
७. अरहर के कच्चे पौधों को मत काट ।
आढक्या: अपक्वान् क्षुपान् मा लावी: (मा लविष्ठा:; मा स्म लुना:, मा स्म लुनीथा:) ।
८. पहिले तुम लोगों को ये पके हुए खेत काटने चाहियें ।
पूर्वं यूयम् एतानि पक्वानि क्षेत्राणि लुनीयात (लुनीध्वम्) ।
९. क्या मैं पहिले पके धान के इस खेत को काटूं ?
किम् अहं पूर्वं परिणतधान्यम् इमं क्षेत्रं लुनानि (लुनै) ।
१०. यदि तू इन गन्ने की क्यारियों को काट देता तो मैं तुझे दस रुपये देता ।
यदि त्वम् इमा: इक्षुकेदारिका: अलविष्य: (अलविष्यथा:) तर्हि अहं तुभ्यं दश रूप्यकाणि अदास्यम् (अदास्ये) ।

(४) ज्ञा अवबोधने=जानना [परस्मै०, (आत्मने०)]

यह ज्ञा धातु (उपसर्ग रहित अवस्था में) आत्मनेपद में भी प्रयुक्त होती है[1] यदि क्रियाफल कर्ता को प्राप्त होता हो तो । लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में 'ज्ञा' के स्थान पर 'जा' आदेश होता है ।[2]

लट्—जानाति	जानीत:	जानन्ति	लट्—जानीते	जानाते	जानते
जानासि	जानीथ:	जानीथ	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
जानामि	जानीव:	जानीम:	जाने	जानीवहे	जानीमहे
लिट्—जज्ञौ	जज्ञतु:	जज्ञु:	लिट्—जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
लुट्—ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातार:	लुट्—ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातार:
लृट्—ज्ञास्यति	ज्ञास्यत:	ज्ञास्यन्ति	लृट्—ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते

१. अनुपसर्गाज्ज्ञ: (अष्टा. १.३.७६) ।
२. ज्ञाजनोर्जा (अष्टा. ७.३.७९) ।

लोट्—{जानातु / जानीतात्} जानीताम् जानन्तु
{जानीहि / जानीतात्} जानीतम् जानीत
जानानि जानाव जानाम

लङ्—अजानात् अजानीताम् अजानन्
अजानाः अजानीतम् अजानीत
अजानाम् अजानीव अजानीम

वि. लिङ्—जानीयात् जानीयाताम् जानीयुः
जानीयाः जानीयातम् जानीयात
जानीयाम् जानीयाव जानीयाम

लुङ्—अज्ञासीत् अज्ञासिष्टाम् अज्ञासिषुः
अज्ञासीः अज्ञासिष्टम् अज्ञासिष्ट
अज्ञासिषम् अज्ञासिष्व अज्ञासिष्म

लृङ्—अज्ञास्यत् अज्ञास्यताम् अज्ञास्यन्

लोट्—जानीताम् जानाताम् जानताम्
जानीष्व जानाथाम् जानीध्वम्
जानै जानावहै जानामहै

लङ्—अजानीत अजानाताम् आजानत
अजानीथाः अजानाथाम् अजानीध्वम्
अजानि अजानीवहि अजानीमहि

वि. लिङ्—जानीत जानीयाताम् जानीरन्
जानीथाः जानीयाथाम् जानीध्वम्
जानीय जानीवहि जानीमहि

लुङ्—अज्ञास्त अज्ञासाताम् अज्ञासत
अज्ञास्थाः अज्ञासाथाम् अज्ञाध्वम्
अज्ञासि अज्ञास्वहि अज्ञास्महि

लृङ्—अज्ञास्यत अज्ञास्येताम् अज्ञास्यन्त

अभ्यास

१. दुर्योधन बोला—मैं धर्म को जानता हूं किन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है और मैं अधर्म को भी पहिचानता हूं पर उससे हटता नहीं हूं।
दुर्योधन उवाद—'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

२. जब राम लक्ष्मण ने शूर्पणखा की धूर्तता जान ली तब लक्ष्मण ने उसका नाक काट दिया।
यदा रामलक्ष्मणौ शूर्पणखायाः भौजङ्गीं वृत्तिं जज्ञतुः (जज्ञाते) तदा लक्ष्मणः तस्याः नासिकां चिच्छेद (चिच्छिदे; अच्छिनत्, अच्छिन्त)।

३. कुछ दिनों में, मैं उसके सब रहस्यों को जान लूंगा।
कतिपयैः अहोभिः अहं तस्य सर्वाणि रहस्यानि ज्ञातास्मि (ज्ञाताहे; ज्ञास्यामि, ज्ञास्ये)।

४. न जाने वह इस ऊंट को बेचेगा या नहीं।
नाहं जाने (जानामि) सः इमं क्रमेलकं विक्रेष्यते न वा।

५. 'तू हम दोनों को दशरथ के पुत्र जान' ऐसा लक्ष्मण ने हनुमान् से कहा।
त्वम् आवां दशरथसुतौ जानीहि (जानीष्व) इति लक्ष्मणः हनूमन्तं प्रोवाच (प्रोचे, अब्रवीत्, अवोचत्)।

६. 'तू विश्वसनीय है' यह तो हम जानते हैं किन्तु यह नया है इसको हम कैसे जानें?

'त्वं विश्वसनीयः असि' इति तु वय जानीमः (जानीमहे) किन्तु अयं नवीनः अस्ति इमं वयं कीदृशं जानाम (जानामहै) ?

७. सबको वेदशास्त्र पढ़कर कर्त्तव्याकर्त्तव्य जान लेना चाहिए ?
सर्वे वेदशास्त्राण्यधीत्य कर्त्तव्याकर्त्तव्ये जानीयुः (जानीरन्) ?

८. आज हम दोनों ने उसकी दर्शनों की विद्वत्ता को जान लिया।
अद्य आवां तस्य दर्शनेषु वैदुष्यम् अज्ञासिष्व (अज्ञास्वहि)।

९. गुरुजी ने उसकी चालाकी परसों ही जान ली थी।
गुरुचरणाः तस्य धौर्त्यं परह्यः एव अजानन् (अजानत)

१०. तू उसकी सब बातों को सत्य मत समझ लेना।
त्वं तस्य सर्वाः वार्ताः सत्याः मा ज्ञासीः (मा ज्ञास्थाः; मा स्म जानाः, मा स्म जानीथाः)।

११. यदि दयानन्द पाचक की दुष्टता को पहिले जान लेते तो विषपान से बच जाते
यदि दयानन्दमहाभागाः पाचकस्य दुरभिसन्धि पूर्वम् अज्ञास्यन् (अज्ञास्यन्त) तर्हि गरलपानात् आत्मानम् अत्रास्यन्त।

(५) मन्थ (मन्थ्) विलोडने=बिलाना, मथना [परस्मैपदी]

लट्, लोट्, लङ्, वि० लिङ् में ना (श्ना) विकरण रहता है और वह ङित्त्वधर्म से युक्त है, अतः इन लकारों में मन्थ् के 'न्' का लोप होगा।[1]

लट्—मथ्नाति मथ्नीतः मथ्नन्ति
मथ्नासि मथ्नीथः मथ्नीथ
मथ्नामि मथ्नीवः मथ्नीमः

लिट्—ममन्थ ममन्थतुः ममन्थुः

लुट्—मन्थिता मन्थितारौ मन्थितारः

लृट्—मन्थिष्यति मन्थिष्यतः मन्थिष्यन्ति

लोट्—{मथ्नातु / मथ्नीतात्} मथ्नीताम् मथ्नन्तु
{[2]मथान / मथ्नीतात्} मथ्नीतम् मथ्नीत
मथ्नानि मथ्नाव मथ्नाम

लङ्—अमथ्नात् अमथ्नीताम् अमथ्नन्
अमथ्नाः अमथ्नीतम् अमथ्नीत
अमथ्नाम् अमथ्नीव अमथ्नीम

वि. लिङ्—मथ्नीयात् मथ्नीयाताम् मथ्नीयुः
मथ्नीयाः मथ्नीयातम् मथ्नीयात
मथ्नीयाम् मथ्नीयाव मथ्नीयाम

लुङ्—अमन्थीत् अमन्थिष्टाम् अमन्थिषुः
अमन्थीः अमन्थिष्टम् अमन्थिष्ट
अमन्थिषम् अमन्थिष्व अमन्थिष्म

लृङ्—अमन्थिष्यत् अमन्थिष्यताम् अमन्थिष्यन्

---

१. अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति (अष्टा० ६.४.२४)

२. हलः श्नः शानज्झौ (अष्टा० ३.१.८३) से श्ना के स्थान पर शानच् (=आन) और तब 'अतो हेः' (अष्टा० ६.४.१०५) से हि का लुक्।

यह धातु द्विकर्मक है, अतः द्विकर्मक धातुओं के प्रकरण में इसका अभ्यास करवायेंगे ।

(६) अश (अश्) भोजने = भोजन करना [परस्मैपदी]

लट्—अश्नाति अश्नीतः अश्नन्ति
अश्नासि अश्नीथः अश्नीथ
अश्नामि अश्नीवः अश्नीमः

लिट्—आश आशतुः आशुः

लुट्—अशिता अशितारौ अशितारः

लृट्—अशिष्यति अशिष्यतः अशिष्यन्ति

लोट्—{अश्नातु / अश्नीतात्} अश्नीताम् अश्नन्तु
{अशान / अश्नीतात्} अश्नीतम् अश्नीत
अश्नानि अश्नाव अश्नाम

लङ्—आश्नात् आश्नीताम् आश्नन्
आश्नाः आश्नीतम् आश्नीत
आश्नाम् आश्नीव आश्नीम

वि. लिङ्—अश्नीयात अश्नीयाताम् अश्नीयुः
अश्नीयाः अश्नीयातम् अश्नीयात
अश्नीयाम् अश्नीयाव अश्नीयाम

लुङ्—आशीत् आशिष्टाम् आशिषुः
आशीः आशिष्टम् आशिष्ट
आशिषम् आशिष्व आशिष्म

लृङ्—आशिष्यत् आशिष्यताम् आशिष्यन्

अभ्यास

१. ब्रह्मचारी प्रेम से लड्डू खाते हैं = ब्रह्मचारिणः प्रेम्णा मोदकानि अश्नन्ति ।

२. इस आश्रम में मुनियों ने बिल्व खाये थे ।
एतस्मिन् आश्रमे मुनयः बिल्वफलानि आशुः (आशिषुः, आश्नन्) ।

३. हम आज तो खीर मालपुए खायेंगे और कल दही भात खायेंगे ।
वयम् अद्य तु पायसापूपान् अशिष्यामः श्वश्च दध्योदनं अशितास्मः ।

४. तू जल्दी कलेवा कर ले = त्वं शीघ्रं प्रातराशम् अशान ।

५. हम रोज तो खूब मिठाई खाते हैं आज क्या केले भी न खावें ?
वयं प्रत्यहं तु पुष्कलं मिष्टान्नम् अश्नीमः अद्य किं कदलीफलानि अपि न अश्नाम ?

६. क्या मैं पहिले खीर खाऊँ ? स्नान न करूं ?
किम् अहं पूर्वं पायसम् अश्नानि ? न स्नानि ?

७. तुमको यह औषध सुबह ही खा लेनी चाहिए ।
त्वम् इदम् औषध प्रातरेव अश्नीयाः ।

८. सबेरे से ही तुम लोगों ने कुछ नहीं खाया ।
प्रातःकालतः एव यूयं किमपि न आशिष्ट ।

९. कल पूनम थी, हमने उड़द के बड़े खाये ।
ह्यः पौर्णमासी आसीत्, वयं माषवटकान् आश्नीम ।

१०. इतनी पकौड़ियाँ मत खा, पेट फूलेगा ।
एतावतीः वडाः मा अशीः (मा स्म अश्नाः), उदरं स्फायिष्यते ।

११. यदि आज तू मेरे घर खाता, तो मुझे बड़ा आनन्द आता ।
यदि अद्य त्वं मम गृहे आशिष्यः, तर्हि अहं भृशम् आनन्दम् आप्स्यम् ।

(७) मुष (मुष्) स्तेये=चोरी करना [परस्मैपदी]

लट्—	मुष्णाति	मुष्णीतः	मुष्णन्ति
	मुष्णासि	मुष्णीथः	मुष्णीथ
	मुष्णामि	मुष्णीवः	मुष्णीमः
लिट्—	मुमोष	मुमुषतुः	मुमुषुः
लुट्—	मोषिता	मोषितारौ	मोषितारः
लृट्—	मोषिष्यति	मोषिष्यतः	मोषिष्यन्ति
लोट्—	मुष्णातु / मुष्णीतात्	मुष्णीताम्	मुष्णन्तु
	मुषाण / मृष्णीतात्	मुष्णीतम्	मुष्णीत
	मुष्णानि	मृष्णाव	मुष्णाम

लङ्—	अमुष्णात्	अमुष्णीताम्	अमुष्णन्
	अमुष्णाः	अमुष्णीतम्	अमुष्णीत
	अमुष्णाम्	अमुष्णीव	अमुष्णीम
वि. लिङ्—	मुष्णीयात्	मुष्णीयाताम्	मुष्णीयुः
	मुष्णीयाः	मुष्णीयातम्	मुष्णीयात
	मुष्णीयाम्	मुष्णीयाव	मुष्णीयाम
लुङ्—	अमोषीत्	अमोषिष्टाम्	अमोषिषुः
	अमोषीः	अमोषिष्टम्	अमोषिष्ट
	अमोषिषम्	अमोषिष्व	अमोषिष्म
लृङ्—	अमोषिष्यत्	अमोषिष्यताम्	अमोषिष्यन्

अभ्यास

१. यह धूर्त्त सदा दूसरों का धन चुराता है ।
एषः धूर्त्तः सदा अन्येषां द्रविणं मुष्णाति ।

२. चन्द्रगुप्त के राज्य में कोई किसी की वस्तुएं नहीं चुराता था ।
चन्द्रगुप्तस्य राज्ये कश्चित् कस्यचिद् वस्तूनि न मुमोष ।

३. ये बालक किसी की पुस्तकें नहीं चुरायेंगे ।
इमे बालकाः कस्यचिद् अपि पुस्तकानि नैव मोषितारः (मोषिष्यन्ति) ।

४. हे पुत्र ! किसी का पदार्थ मत चुरा ।
भोः पुत्र ! कस्यचिद् अपि पदार्थं मा मोषीः (मा स्म मुष्णाः) ।

५. हमें किसी की एक बाली (छिमी) भी नहीं चुरानी चाहिये ।
वयं कस्यचिद् एकां शिम्बाम् अपि न मुष्णीयाम (मुष्णाम) ।

६. ये बच्चे अब अच्छे बन गये हैं, इन्होंने कल कुछ भी नहीं चुराया ।
एते बालकाः सम्प्रति साधवः समवर्तिषत (समवृतन्), एते ह्यः किमपि न अमुष्णन् ।

७. जब आज चोरों ने रत्न चुराये, उसी समय पहरेदारों ने उन्हें पकड़ लिया।

यदा अद्य चोराः रत्नानि अमोषिषुः, तदानीम् एव प्रहरिणः तान् न्यग्रहीषुः।

८. यदि ये भूख से पीड़ित होते तो अन्न चुराते।

यदि एते क्षुत्पीडिताः अभविष्यन्, तर्हि अन्नम् अमोषिष्यन्।

(८) पुष (पुष्) पुष्टौ[1] = पुष्ट करना [परस्मैपदी]

लट्—पुष्णाति पुष्णीतः पुष्णन्ति
पुष्णासि पुष्णीथः पुष्णीथ
पुष्णामि पुष्णीवः पुष्णीमः

लिट्—पुपोष पुपुषतुः पुपुषुः

लुट्—पोषिता पोषितारौ पोषितारः

लृट्—पोषिष्यति पोषिष्यतः पोषिष्यन्ति

लोट्—{पुष्णातु, पुष्णीतात्} पुष्णीताम् पुष्णन्तु
{पुषाण, पुष्णीतात्} पुष्णीतम् पुष्णीत
पुष्णानि पुष्णाव पुष्णाम

लङ्—अपुष्णात् अपुष्णीताम् अपुष्णन्
अपुष्णाः अपुष्णीतम् अपुष्णीत
अपुष्णाम् अपुष्णीव अपुष्णीम

वि. लिङ्-पुष्णीयात् पुष्णीयाताम् पुष्णीयुः
पुष्णीयाः पुष्णीयातम् पुष्णीयात
पुष्णीयाम् पुष्णीयाव पुष्णीयाम

लुङ्—अपोषीत् अपोषिष्टाम् अपोषिषुः
अपोषीः अपोषिष्टम् अपोषिष्ट
अपोषिषम् अपोषिष्व अपोषिष्म

लृङ्—अपोषिष्यत् अपोषिष्यताम् अपोषिष्यन्

अभ्यास

१. यह चिकनी चुपड़ी बातों से अपना पक्ष पुष्ट करता है।

अयम् उपात्तरम्यैः वचोभिः स्वपक्षं पुष्णाति।

२. गाय के दूध, घी आदि पदार्थ मनुष्यों के शरीर और बुद्धि दोनों को पुष्ट करते हैं।

गोः दुग्धघृतादयः पदार्थाः मनुष्यस्य शरीरं शेमुषीं चोभे अपि पुष्णन्ति।

---

१. पुष धातु धातुपाठ में चार गणों में पढ़ी गई है। चुरादिगण में 'पुष धारणे' है जहाँ यह स्पष्ट सकर्मक है। किन्तु भ्वादि०, दिवादि० तथा क्र्यादि० में यह धातु 'पुष पुष्टौ' के रूप में पढ़ी हुई है। वहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि पुष 'पुष्ट होने' के अर्थ में है अथवा 'पुष्ट करने' के अर्थ में? तथापि प्रयोग-बाहुल्य से क्र्यादिगणस्थ पुष धातु 'पुष्ट करने' के अर्थ में और शेष 'पुष्ट होने' के अर्थ में जाननी चाहियें।

३. अगस्त्याश्रम के फलों ने अनेक मुनियों को पुष्ट किया।
अगस्त्याश्रमस्य फलानि नैकान् मुनीन् पुपुषुः (अपुष्णन्, अपोषिषुः)।

४. दही और केले तेरे शरीर को पुष्ट करेंगे।
दधिकदलीफले तव तनूं पोषितारौ (पोषिष्यतः)।

५. तू अपने भाई को वैद्य रामशास्त्री की औषधियों से पुष्ट कर।
त्वं स्वं सहोदरं वैद्यरामशास्त्रिणः भेषजैः पुषाण (पुष्णीथाः)।

६. ये हत्यारे हैं, इनके पक्ष को पुष्ट मत कर।
एते घातुकाः सन्ति एतेषां पक्षं मा पोषीः (मा स्म पुष्णाः)।

७. देख, मेरी भस्म ने तेरा अङ्ग प्रत्यङ्ग पुष्ट कर दिया।
पश्य, मदीयं भस्म तव अङ्गप्रत्यङ्गम् अपोषीत् (अपुष्णात्)।

८. यदि मेरा कथन तेरा पक्ष पुष्ट करता, तो मैं अवश्य कहता।
यदि मम वचनं तव पक्षम् अपोषिष्यत्, तर्हि अहम् अवश्यम् अवक्ष्यम्।

चुरादिगण

चुरादिगण की धातुओं से स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है।[1] ण् की इत्सञ्ज्ञा तथा च् की इत्सञ्ज्ञा[2] होकर उनका लोप होने पर 'इ' शेष रहता है। धातु के अन्त में इक् (इ, उ, ऋ आदि) हो तो उनको वृद्धि होती है[4] और ऐ के स्थान पर आय्, औ के स्थान पर आव् आदेश हो जाते हैं[5]। उपधा में अकार हो तो उसको भी वृद्धि होती है।[6] यदि उपधा में ह्रस्व इ, उ, ऋ हो तो उनको गुण (=ए, ओ, अर्) होता है।[7] जैसे क्रमशः—ली+णिच्→लै+इ→लाय् इ=लायि। यु+णिच्→यु+इ→यौ+इ=याव्+इ=यावि। वृञ्+णिच्→वृ+इ→वार्+इ, वारि। नट्+णिच्→नट्+इ→नाट्+इ=नाटि। चित्+णिच्→चित्+इ→चेत् इ=चेति। तुल्+णिच्→तुल्+इ=तोल्+इ=तोलि। शृध्+णिच् शृध्+इ→शर्ध्+इ=शर्धि। इस प्रकार चुरादिगणीय धातुओं से णिच् प्रत्यय लगता है, किन्तु उसके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। णिच् लगने पर जो चोरि, लायि, यावि, वारि, नाटि, चेति, तोलि, शर्धि आदि स्वरूप बनता है उसकी पुनः धातु संज्ञा होती है।[8]

---

१. सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् (अष्टा. ३.१.२५)
२. चुटू (अष्टा. १.३.६)
३. हलन्त्यम् (अष्टा. १.३.३)
४. अचो ञ्णिति (अष्टा. ७.२.११५)
५. एचोऽयवायावः (अष्टा. ६.१.७८)
६. अत उपधायाः (अष्टा. ७.२.११६)
७. पुगन्तलघूपधस्य च (अष्टा. ७.३.८६)
८. सनाद्यन्ता धातवः (अष्टा. ३.१.३२)

तदनन्तर लट् आदि लकार लगते हैं। चुरादिगणीय धातुओं से लट्, लोट्, लङ् तथा विधिलिङ् में शप् (=अ) विकरण लगता है।[1] लुङ् में च्लि के स्थान पर चङ् आदेश होता है।[2] चङ् में से अ शेष रहता है। यहां धातु को द्वित्व होगा।[3]

(१) चुर (चुर्) स्तेये—चोरी करना [परस्मैपदी]

लट्—चोरयति चोरयतः चोरयन्ति
चोरयसि चोरयथः चोरयथ
चोरयामि चोरयावः चोरयामः

लिट्[4]

(१) चोरयाञ्चकार चोरयाञ्चक्रतुः चोरयाञ्चक्रुः
(२) चोरयाम्बभूव चोरयाम्बभूवतुः चोरयाम्बभूवुः
(३) चोरयामास चोरयामासतुः चोरयामासुः

लुट्

चोरयिता चोरयितारौ चोरयितारः
चोरयितासि चोरयितास्थः चोरयितास्थ
चोरयितास्मि चोरयितास्वः चोरयितास्मः

लृट्

चोरयिष्यति चोरयिष्यतः चोरयिष्यन्ति
चोरयिष्यसि चोरयिष्यथः चोरयिष्यथ
चोरयिष्यामि चोरयिष्यावः चोरयिष्यामः

लोट्

चोरयतु (चोरयतात्) चोरयताम् चोरयन्तु
चोरय (चोरयतात्) चोरयतम् चोरयत
चोरयाणि चोरयाव चोरयाम

लङ्

अचोरयत् अचोरयताम् अचोरयन्
अचोरयः अचोरयतम् अचोरयत
अचोरयम् अचोरयाव अचोरयाम

विधिलिङ्

चोरयेत् चोरयेताम् चोरयेयुः
चोरयेः चोरयेतम् चोरयेत
चोरयेयम् चोरयेव चोरयेम

लुङ्— अचूचुरत् अचूचुरताम् अचूचुरन्
अचूचुरः अचूचुरतम् अचूचुरत
अचूचुरम् अचूचुराव अचूचुराम

लृङ्—अचोरयिष्यत् अचोरयिष्यताम् अचोरयिष्यन्
अचोरयिष्यः अचोरयिष्यतम् अचोरयिष्यत
अचोरयिष्यम् अचोरयिष्याव अचोरयिष्याम

---

१. कर्तरि शप् (अष्टा.३.१.६८)

२ णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् (अष्टा.३.१.४८)

३. चङि (अष्टा.६.१.११)

४. कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि (३.१.३५) से आम् प्रत्यय।

अभ्यास

१. दुर्जन लोग दूसरों का धन चुराते हैं।
दुर्जनाः परान् धनं चोरयन्ति।

२. पहिले कोई किसी का धन नहीं चुराता था।
पुरा न कोऽपि कमपि द्रविणं चोरयामास (चोरयाञ्चकार, चोरयाम्बभूव; अचोरयत्; अचूचुरत्)।

३. किवाड़ बन्द कर दो, ये दुष्ट हमारी पुस्तकें चुरा लेंगे।
द्वारं पिधेहि, एते दुष्टाः अस्मान् पुस्तकानि चोरयितारः (चोरयिष्यन्ति)।

४. हम किसी की चीजें क्यों चुरायें=वयं कमपि वस्तूनि कथं चोरयाम (चोरयेम)?

५. मेरी गौएं मत चुरा लेना=मां गाः मा चूचुरः (मा स्म चोरयः)।

६. यदि तुम वस्त्र चुरा लेते तो तुम्हारा अपयश होता।
यदि यूयं वासांसि अचोरयिष्यत तर्हि युष्माकम् अपयशः अभविष्यत्।

(२) चिति स्मृत्याम्=(चिन्तन करना) [परस्मैपदी]

लट्—चिन्तयति चिन्तयतः चिन्तयन्ति

लिट् (१) चिन्तयाञ्चकार चिन्तयाञ्चक्रतुः चिन्तयाञ्चक्रुः

(२) चिन्तयाम्बभूव चिन्तयाम्बभूवतुः चिन्तयाम्बभूवुः

(३) चिन्तयामास चिन्तयामासतुः चिन्तयामासुः

लुट्—चिन्तयिता चिन्तयितारौ चिन्तयितारः

लृट्—चिन्तयिष्यति चिन्तयिष्यतः चिन्तयिष्यन्ति

लोट्—चिन्तयतु चिन्तयताम् चिन्तयन्तु चिन्तयतात्

लङ्—अचिन्तयत् अचिन्तयताम् अचिन्तयन्

वि. लिङ्-चिन्तयेत् चिन्तयेताम् चिन्तयेयुः

लुङ्—अचिचिन्तत् अचिचिन्तताम् अचिचिन्तन्
अचिचिन्तः अचिचिन्ततम् अचिचिन्तत
अचिचिन्तम् अचिचिन्ताव अचिचिन्ताम

लृङ्—अचिन्तयिष्यत् अचिन्तयिष्ताम् अचिन्तयिष्यन्

अभ्यास

१. सज्जन लोग रात दिन धर्म का ही चिन्तन करते हैं।
सज्जनाः अहर्निशं धर्मम् एव चिन्तयन्ति।

२. ऋषियों ने कभी धन की चिन्ता नहीं की, सदा स्वाध्याय में लगे रहे।
ऋषयः कदापि धनं न चिन्तयाञ्चक्रुः (चिन्तयाम्बभूवुः, चिन्तयामासुः, अचिन्तयन्, अचिचिन्तन्) सदा स्वाध्यायं शीलयाञ्चक्रुः (शीलयाम्बभूवुः, शीलयामासुः, अशीलयन्, अशिशीलन्)।

३. मैं धन की चिन्ता कभी नहीं करूंगा क्योंकि मेरे बुढ़ापे की चिन्ता देवेन्द्र कपूर जी को है, इसलिए मैं क्यों चिन्ता करूं?

अहं धनं कदापि न चिन्तयिष्यामि (चिन्तयितास्मि) यतः श्री देवेन्द्रकपूरमहोदयः मे वृद्धत्वं चिन्तयति, अतः अहं कथं चिन्तयानि (चिन्तयेयम्) ?

४. भविष्य की चिन्ता मत कर=भविष्यन्तम् कालं मा चिचिन्तः (मा स्म चिन्तयः)

५. वर्त्तमान की चिन्ता कर=वर्त्तमानं कालं चिन्तय ।

६. यदि मैं शुरु से ही ईश्वर का चिन्तन करता तो सुख पाता ।
यदि अहं प्रारम्भतः एव परमेश्वरम् अचिन्तयिष्यं तर्हि सुखम् आप्स्यम् ।

(३) भक्ष अदने=खाना [परस्मैपदी]

लट्—भक्षयति भक्षयतः भक्षयन्ति
लिट् (१) भक्षयाञ्चकार भक्षयाञ्चक्रतुः भक्षयाञ्चक्रुः
(२) भक्षयाम्बभूव भक्षयाम्बभूवतुः भक्षयाम्बभूवुः
(३) भक्षयामास भक्षयामासतुः भक्षयामासुः
लुट्—भक्षयिता भक्षयितारौ भक्षयितारः
लृट्—भक्षयिष्यति भक्षयिष्यतः भक्षयिष्यन्ति

लोट्—भक्षयतु (भक्षयतात्) भक्षयताम् भक्षयन्तु
लङ्—अभक्षयत् अभक्षयताम् अभक्षयन्
वि. लिङ्—भक्षयेत् भक्षयेताम् भक्षयेयुः
लुङ्—अबभक्षत् अबभक्षताम् अबभक्षन्
अबभक्षः अबभक्षतम् अबभक्षत
अबभक्षम् अबभक्षाव अबभक्षाम
लृङ्—अभक्षयिष्यत् अभक्षयिष्यताम् अभक्षयिष्यन्

अभ्यास

१. मैं सायङ्काल भोजन नहीं खाता हूं, केवल फल ही खाता हूं ।
अहं सायं भोजनं न भक्षयामि, केवलानि फलानि एव भक्षयामि ।

२. ऋषि लोग वन में फल ही खाते थे ।
ऋषयः विपिने फलानि एव भक्षयाञ्चक्रुः (भक्षयाम्बभूवुः, भक्षयामासुः, अभक्षयन्; अबभक्षन्) ।

३. आज हम खाना भीमसेन के घर खायेंगे ।
अद्य वयं भोजनं भीमसेनस्य गृहे भक्षयिष्यामः ।

४. कल गुरुकुल के भोजनालय में शाकपुड़ी खायेंगे ।
श्वः गुरुकुलभोजनालये शाकशष्कुलि भक्षयिष्यामः ।

५. जो रोज घेवर खाता है, वह रोटियाँ क्यों खावे ?
यः प्रतिदिन घृतवरं भक्षयति, सः रोटिकाः किमर्थं भक्षयेत् (भक्षयतु) ।

६. ये बासी कचौड़ियाँ मत खा ।
इमाः पर्युषिताः घृतचौरीः मा बभक्षः (मा स्म भक्षयः) ।

७. यदि तू सर्दियों में बादाम खाता तो पुष्ट हो जाता ।
यदि त्वं शीततौ वातादान् अभक्षयिष्यः तर्हि पुष्टः अभविष्यः ।

(४) तड आघाते=पीटना [परस्मैपदी]

लट्—ताडयति	ताडयतः	ताडयन्ति
लिट् (१)—ताडयाञ्चकार	ताडयाञ्चक्रतुः	ताडयाञ्चक्रुः
(२)—ताडयाम्बभूव	ताडयाम्बभूवतुः	ताडयाम्बभूवुः
(३)—ताडयामास	ताडयामासतुः	ताडयामासुः
लुट्—ताडयिता	ताडयितारौ	ताडयितारः
लृट्—ताडयिष्यति	ताडयिष्यतः	ताडयिष्यन्ति
लोट्—ताडयतु (ताडयतात्)	ताडयताम्	ताडयन्तु
लङ्—अताडयत्	अताडयताम्	अताडयन्
वि. लिङ्—ताडयेत्	ताडयेताम्	ताडयेयुः
लुङ्—अतीतडत्	अतीतडताम्	अतीतडन्
अतीतडः	अतीतडतम्	अतीतडत
अतीतडम्	अतीतडाव	अतीतडाम
लृङ्—अताडयिष्यत्	अताडयिष्यताम्	अताडयिष्यन्

अभ्यास

१. कुछ मूर्ख अध्यापक पढ़ाना तो जानते नहीं और छात्रों को बिना अपराध पीटते हैं।=केचन मूढाः अध्यापकाः पाठनशैलीम् अविदित्वा एव अपराधम् अन्तरेण छात्रान् ताडयन्ति।

२. द्रोणाचार्य कभी भी अपने विद्यार्थियों को नहीं पीटता था।
द्रोणाचार्यः जातुचित् निजान् अन्तेवासिनः न ताडयाञ्चकार (ताडयाम्बभूव, ताडयामास; अताडयत्; अतीतडत्)।

३. गुरुजन शिष्यों की अमृतभरे हाथों से ताडना करते हैं, जहरीले हाथों से नहीं।
गुरवः शिष्यान् सामृतैः पाणिभिः ताडयन्ति न तु विषोक्षितैः।

४. यदि पाठ याद नहीं करोगे तो गुरुजी पीटेंगे।
यदि पाठं न स्मरिष्यथ (स्मर्तास्थ) तर्हि गुरवः ताडयिष्यन्ति (ताडयितारः)।

५. मैं बिना दोष के बच्चों को क्यों पीटूं ?
अहम् अन्तरेण स्खलितं बालकं किमर्थं ताडयानि (ताडयेयम्) ?

६. उस बेचारे को मत पीटना=तं वराकं मा तीतडः (मा स्म ताडयः)।

७. यदि ये उद्दण्डता करते, तो मैं इन्हें पीटता।
यदि इमे औद्धत्यम् आचरिष्यन्, तर्हि अहम् इमान् अताडयिष्यम्।

(५) छर्द वमने=वमन करना [परस्मैपदी]

लट्—छर्दयति छर्दयतः छर्दयन्ति

लिट् (१) छर्दयाञ्चकार छर्दयाञ्चक्रतुः छर्दयाञ्चक्रुः

(२) छर्दयाम्बभूव छर्दयाम्बभूवतुः छर्दयाम्बभूवुः

(३) छर्दयामास छर्दयामासतुः छर्दयामासुः

लुट्—छर्दयिता छर्दयितारौ छर्दयितारः

लृट्—छर्दयिष्यति छर्दयिष्यतः छर्दयिष्यन्ति

लोट्—छर्दयतु छर्दयताम् छर्दयन्तु
छर्दयतात्

लङ्—अच्छर्दयत् अच्छर्दयताम् अच्छर्दयन्

वि. लिङ्—छर्दयेत् छर्दयेताम् छर्दयेयुः

लुङ्—अचच्छर्दत् अचच्छर्दताम् अचच्छर्दन्
अचच्छर्दः अचच्छर्दतम् अचच्छर्दत
अचच्छर्दम् अचच्छर्दाव अचच्छर्दाम

लृङ्—अच्छर्दयिष्यत् अच्छर्दयिष्यताम् अच्छर्दयिष्यन्

अभ्यास

१. यह बालक खाये पिये को वमन कर देता है।

अयम् अर्भकः अशितपीतं छर्दयति।

२. याज्ञवल्क्य ने उन सूक्तों का वमन कर दिया।

याज्ञवल्क्यः तानि सूक्तानि छर्दयाञ्चकार (छर्दयाम्बभूव, छर्दयामास)

३. चिन्ता मत करो, इस औषध से अब यह वमन नहीं करेगा।

मा चिचिन्तः (मा स्म चिन्तयः), अनेन औषधेन इदानीम् अयं न छर्दयिष्यति (छर्दयिता)।

४. मुझे पता नहीं था कि यह तेरा भाग है, मैंने खा लिया, अब क्या उसे वमन करूँ?

मम ज्ञानं न अभूत् यद् अयं तव अंशः, अहम् अबभक्षम्, अधुना किं तं छर्दयानि (छर्दयेयम्)?

५. इस रोगी की हालत में सुधार है, कल इसने पांच बार उलटी की थी किन्तु आज तीन बार।=अस्य रोगिणः रोगः अपचीयते, ह्यः अयं पञ्चकृत्वः अच्छर्दयत् किन्तु अद्य त्रिः अचच्छर्दत्।

६. इच्छाशक्ति को प्रबल बना, इस दवाई को मत उगल देना।

इच्छाशक्तिं प्रबलां कुरु, इदम् औषधं मा चच्छर्दः (मा स्म छर्दयः)।

७. यह स्त्री यदि इस आसव का वमन नहीं करती, तो अब तक यह स्वस्थ हो जाती।

इयं योषित् यदि इमम् आसवं न अच्छर्दयिष्यत् तर्हि अधुनावधि इयं नीरोगा अभविष्यत्।

(६) क्षल शौचकर्मणि=पवित्र करना, धोना [परस्मैपदी]

लट्—क्षालयति क्षालयतः क्षालयन्ति
लिट् (१) क्षालयाञ्चकार क्षालयाञ्चक्रतुः क्षालयाञ्चक्रुः
(२) क्षालयाम्बभूव क्षालयाम्बभूवतुः क्षालयाम्बभूवुः
(३) क्षालयामास क्षालयामासतुः क्षालयामासुः
लुट्—क्षालयिता क्षालयितारौ क्षालयितारः
लृट्—क्षालयिष्यति क्षालयिष्यतः क्षालयिष्यन्ति

लोट्—क्षालयतु क्षालयताम् क्षालयन्तु
क्षालयतात्
लङ्—अक्षालयत् अक्षालयताम् अक्षालयन्
वि. लिङ्—क्षालयेत् क्षालयेताम् क्षालयेयुः
लुङ्—अचिक्षलत् अचिक्षलताम् अचिक्षलन्
अचिक्षलः अचिक्षलतम् अचिक्षलत
अचिक्षलम् अचिक्षलाव अचिक्षलाम
लृङ्—अक्षालयिष्यत् अक्षालयिष्यताम् अक्षालयिष्यन्

अभ्यास

१. जो भोजन से पूर्व हाथ पांव धोते हैं, वे दीर्घायु होते हैं।
ये भोजनात् पूर्वं पाणिपादं क्षालयन्ति ते दीर्घायुषो भवन्ति।

२. श्रीकृष्ण ने आंसुओं से सुदामा के पांव धोये।
श्रीकृष्णः अश्रुभिः सुदाम्नः चरणौ क्षालयाञ्चकार (क्षालयाम्बभूव, क्षालयामास)

३. इन कमरों को क्या तुम लोग कल धोओगे ?
इमान् प्रकोष्ठान् किं यूयं श्वः क्षालयितास्थ ?

४. भोजन तैयार है, पर पहले मैं कपड़े धोऊँगा, फिर खाना खाऊँगा।
भोजनं सम्पन्नम् अस्ति, परं पूर्वम् अहं पटान् क्षालयिष्यामि, तदनन्तरं भोजनं भक्षयिष्यामि।

५. आज छुट्टी है, सारे मैले कपड़े हमें आज ही धो लेने चाहियें।
अद्य अवकाशः अस्ति, सर्वाणि मलिनानि वसनानि वयम् अद्यैव क्षालयेम।

६. हे पुत्र ! इन महात्माजी के दोनों वस्त्र जल्दी धो दे।
भोः पुत्र ! अस्य महात्मनः उभे अम्बरे झटिति क्षालय।

७. हे सेविका ! तूने कल बरतन अच्छी तरह नहीं धोये।
हे सेविके ! त्वं ह्यः पात्राणि सम्यक् न अक्षालयः।

८. हमने आज ही इस आंगन के फर्श को धोया है।
वयम् अद्यैव अस्य अङ्गनस्य भूमिम् अचिक्षलाम।

९. बिना गर्म पानी के रोगी के कपड़े मत धो।
उष्णोदकम् अन्तरेण रुग्णस्य वासांसि मा चिक्षलः (मा स्म क्षालयः)।

१०. यदि तू कपड़े नदी पर धोता तो समय कम लगता।
यदि त्वं वस्त्राणि नद्याम् अक्षालयिष्यः तर्हि अल्पः कालः व्ययः अभविष्यत्।

(७) तुल उन्माने=मापना, तोलना [परस्मैपदी]

लट्—तोलयति तोलयतः तोलयन्ति
लिट् (१) तोलयाञ्चकार तोलयाञ्चक्रतुः तोलयाञ्चक्रुः
(२) तोलयाम्बभूव तोलयाम्बभूवतुः तोलयाम्बभूवुः
(३) तोलयामास तोलयामासतुः तोलयामासुः
लुट्—तोलयिता तोलयितारौ तोलयितारः
लृट्—तोलयिष्यति तोलयिष्यतः तोलयिष्यन्ति

लोट्—तोलयतु / तोलयतात् तोलयताम् तोलयन्तु
लङ्—अतोलयत् अतोलयताम् अतोलयन्
वि. लिङ्—तोलयेत् तोलयेताम् तोलयेयुः
लुङ्—अतूतुलत् अतूतुलताम् अतूतुलन्
अतूतुलः अतूतुलतम् अतूतुलत
अतूतुलम् अतूतुलाव अतूतुलाम
लृङ्—अतोलयिष्यत् अतोलयिष्यताम् अतोलयिष्यन्

अभ्यास

१. दुष्ट बनिये सदा कम तोलते हैं=दुष्टाः वणिजः सदा ऊनं तोलयन्ति ।

२. राजा शिवि ने कबूतर के बराबर अपने शरीर का मांस तोला ।
नृपः शिविः कपोतेन समं (=कपोत-विनिमये) निजदेहमांसं तोलयाञ्चकार (तोलयाम्बभूव, तोलयामास) ।

३. सतयुग में सब पूरा तोलते थे=कृतयुगे सर्वे पूर्णं तोलयाञ्चक्रुः (तोलयाम्बभूवुः, तोलयामासुः, अतोलयन्, अतूतुलन्) ।

४. तू मेरा अनाज कब तोलेगा ?=त्वं मम धान्यं कदा तोलयितासि (तोलयिष्यसि) ?

५. सदा पूरा तोलो, सत्य बोलो, कम मत तोलो ।
सर्वदा पूर्णं तोलयत (तोलयेत), सत्यं ब्रूत (ब्रूयात), न्यूनं मा तूतुलत (मा स्म तोलयत) ।

६. यदि तू कम तोलता तो मैं तेरी पिटाई करता ।
यदि त्वं न्यूनम् अतोलयिष्यः तर्हि अहं त्वाम् अताडयिष्यम् ।

(८) पाल रक्षणे=पालन करना, रक्षा करना [परस्मैपदी]

लट्—पालयति पालयतः पालयन्ति
लिट् (१) पालयाञ्चकार पालयाञ्चक्रतुः पालयाञ्चक्रुः
(२) पालयाम्बभूव पालयाम्बभूवतुः पालयाम्बभूवुः
(३) पालयामास पालयामासतुः पालयामासुः
लुट्—पालयिता पालयितारौ पालयितारः
लृट्—पालयिष्यति पालयिष्यतः पालयिष्यन्ति

लोट्—पालयतु / पालयतात् पालयताम् पालयन्तु
लङ्—अपालयत् अपालयताम् अपालयन्
वि. लिङ्—पालयेत् पालयेताम् पालयेयुः
लुङ्—अपीपलत् अपीपलताम् अपीपलन्
अपीपलः अपीपलतम् अपीपलत
अपीपलम् अपीपलाव अपीपलाम
लृङ्—अपालयिष्यत् अपालयिष्यताम् अपालयिष्यन्

अभ्यास

१. जितने स्नेह से माता पुत्रों को पालती है उतने स्नेह से पिता नहीं।
यथा माता पुत्रान् सस्नेहं पालयति न तथा पिता।

२. पहिले लोग चारों आश्रमों का धर्म पालते थे।
पुरा जनाः चतुर्णाम् आश्रमाणां धर्मं पालयाञ्चक्रुः (पालयाम्बभूवुः, पालयामासुः, अपालयन्, अपीपलन्)।

३. महर्षि कण्व ने शकुन्तला को बड़े स्नेह से पाला।
महर्षिः कण्वः शकुन्तलां महता स्नेहेन अपीपलत्।

४. पापियों को मत पाल = मा पीपलः पापिनः (मा स्म पालयः पापिनः)।

५. इन तीनों लड़कियों को मैं पालूंगा = इमाः तिस्रः कन्याः अहं पालयिष्यामि (पालयितास्मि)।

६. मैं इन मुष्टण्डों को क्यों पालूं ?
अहम् एतान् परपिण्डपुष्टान् कथं पालयानि (पालयेयम्) ?

७. यदि तू कुत्ता पालता, तो तेरे यहाँ चोरी न होती।
यदि त्वं सारमेयम् अपालयिष्यः तर्हि त्वद्गृहे चौर्यं न अभविष्यत्।

(६) पूज पूजायाम् = पूजा करना [परस्मैपदी]

लट्—पूजयति पूजयतः पूजयन्ति
लिट् (१) पूजयाञ्चकार पूजयाञ्चक्रतुः पूजयाञ्चक्रुः
(२) पूजयाम्बभूव पूजयाम्बभूवतुः पूजयाम्बभूवुः
(३) पूजयामास पूजयामासतुः पूजयामासुः
लुट्—पूजयिता पूजयितारौ पूजयितारः
लृट्—पूजयिष्यति पूजयिष्यतः पूजयिष्यन्ति
लोट्—{पूजयतु पूजयताम् पूजयन्तु
{पूजयतात्

लङ्—अपूजयत् अपूजयताम् अपूजयन्
वि. लिङ्—पूजयेत् पूजयेताम् पूजयेयुः
लुङ्—अपूपुजत् अपूपुजताम् अपूपुजन्
अपूपुजः अपूपुजतम् अपूपुजत
अपूपुजम् अपूपुजाव अपूपुजाम
लृङ्—अपूजयिष्यत् अपूजयिष्यताम् अपूजयिष्यन्

अभ्यास

१. आर्यसमाज के होने पर भी लोग आज भी पत्थर पूजते हैं।
आर्यसमाजे सत्यपि जनाः अद्यापि पाषाणान् पूजयन्ति।

२. राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ अगस्त्य और लोपामुद्रा की पूजा की।
रामः सीतालक्ष्मणाभ्यां सह अगस्त्यलोपामुद्रे पूजयाञ्चकार (पूजयाम्बभूव, पूजयामास; अपूजयत्; अपूपुजत्)।

३. मैं कल पण्डित ईश्वरचन्द्र जी की बम्बई में धन और वस्त्रों से पूजा करूँगा।
अहं श्वः मुम्बापुर्यां पण्डितम् ईश्वरचन्द्रमहाभागं वसुभिः वासोभिः च पूजयितास्मि।

४. तू आज किन विद्वानों की पूजा करेगा।=त्वम् अद्य कान् विदुषः पूजयिष्यसि ?

५. मैं इन मूर्खों की पूजा क्यों करूँ=अहम् एतान् मूर्खान् कथं पूजयानि (पूजयेयम्)?

६. तुमने कल उस ढोंगी संन्यासी की पूजा की, हमने तो आज उसकी जरा भी पूजा नहीं की।=यूयं ह्यः तं पाखण्डिनं संन्यासिनम् अपूजयत, वयं तु अद्य तं मनाक् अपि न अपूपुजाम।

७. घमण्डियों की पूजा मत करो=अभिमानिनः मा पूपुजत (मा स्म पूजयत)।

८. यदि तू मातपिता की पूजा करता तो उनका आशीर्वाद पाता।
यदि त्वं पितरौ अपूजयिष्यः तर्हि तयोः आशीर्वादम् अलप्स्यथाः।

(१०) मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे—सलाह करना [आत्मनेपदी]

लट्—मन्त्रयते मन्त्रयेते मन्त्रयन्ते
मन्त्रयसे मन्त्रयेथे मन्त्रयध्वे
मन्त्रये मन्त्रयावहे मन्त्रयामहे

लिट् (१) मन्त्रयाञ्चक्रे मन्त्रयाञ्चक्राते मन्त्रयाञ्चक्रिरे
(२) मन्त्रयाम्बभूव मन्त्रयाम्बभूवतुः मन्त्रयाम्बभूवुः
(३) मन्त्रयामास मन्त्रयामासतुः मन्त्रयामासुः

लुट्—मन्त्रयिता मन्त्रयितारौ मन्त्रयितारः
मन्त्रयितासे मन्त्रयितासाथे मन्त्रयिताध्वे
मन्त्रयिताहे मन्त्रयितास्वहे मन्त्रयितास्महे

लृट्—मन्त्रयिष्यते मन्त्रयिष्येते मन्त्रयिष्यन्ते
मन्त्रयिष्यसे मन्त्रयिष्येथे मन्त्रयिष्यध्वे
मन्त्रयिष्ये मन्त्रयिष्यावहे मन्त्रयिष्यामहे

लोट्—मन्त्रयताम् मन्त्रयेताम् मन्त्रयन्ताम्
मन्त्रयस्व मन्त्रयेथाम् मन्त्रयध्वम्
मन्त्रयै मन्त्रयावहै मन्त्रयामहै

लङ्—अमन्त्रयत अमन्त्रयेताम् अमन्त्रयन्त
अमन्त्रयथाः अमन्त्रयेथाम् अमन्त्रयध्वम्
अमन्त्रये अमन्त्रयावहि अमन्त्रयामहि

वि. लिङ्—
मन्त्रयेत मन्त्रयेयाताम् मन्त्रयेरन्
मन्त्रयेथाः मन्त्रयेयाथाम् मन्त्रयेध्वम्
मन्त्रयेय मन्त्रयेवहि मन्त्रयेमहि

लुङ्—अममन्त्रत अममन्त्रेताम् अममन्त्रन्त
अममन्त्रथाः अममन्त्रेथाम् अममन्त्रध्वम्
अममन्त्रे अममन्त्रावहि अममन्त्रामहि

लृङ्—
अमन्त्रयिष्यत अमन्त्रयिष्येताम् अमन्त्रयिष्यन्त
अमन्त्रयिष्यथाः अमन्त्रयिष्येथाम् अमन्त्रयिष्यध्वम्
अमन्त्रयिष्ये अमन्त्रयिष्यावहि अमन्त्रयिष्यामहि

अभ्यास

१. तुम दोनों नदी के किनारे जाने की सलाह करते हो।
युवां नदीतटगमनाय मन्त्रयेथे।

२. राम ने लङ्का पर चढ़ाई करने से पहले सब मित्रों से सलाह की।
रामः लङ्काक्रमणात् प्राक् सर्वैः मित्रैः सह मन्त्रयाञ्चक्रे (मन्त्रयाम्बभूव, मन्त्रयामास; अमन्त्रयत; अममन्त्रत)।

३. तू उस धोखेबाज मित्र के साथ सलाह मत कर।
त्वं तेन वञ्चकेन मित्रेण सह मा ममन्त्रथाः (मा स्म मन्त्रयथाः)।

४. इस कठिन समय में, मैं किससे मन्त्रणा करूँ?
अस्मिन् कठिने काले अहं केन सह मन्त्रयै (मन्त्रयेय)?

५. तू आज जिससे सलाह करेगा, उसी से मैं कल सलाह लूंगा।
त्वम् अद्य येन सह मन्त्रयिष्यसे तेनैव सह अहं श्वः मन्त्रयिताहे।

६. यदि तू बैरिस्टर शास्त्री से सलाह करता तो मुकदमा जीत जाता।
यदि त्वं प्राड्विवाकेन शास्त्रिणा सह अमन्त्रयिष्यथाः तर्हि वादम् व्यजेष्यथाः।

७. 'द्वौ संनिषद्य यन् मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः'[1]।
दो जने मिलकर एकान्त में बैठकर भी जो कुछ सलाह करते हैं, उसे वह वरुण परमेश्वर तीसरा होकर सदा जानता रहता है।

(११) ष्वद (स्वद्) आस्वादने = स्वाद लेना

'आस्वदः सकर्मकात्' इस धातु-सूत्र के द्वारा 'ग्रस' धातु से लेकर 'ष्वद (स्वद्)' धातु तक की धातुओं से सकर्मकावस्था में ही णिच् प्रत्यय होता है, अकर्मकावस्था में णिच् नहीं होता। उस अवस्था में इन धातुओं के रूप भ्वादिगणीय धातुओं के रूपों के समान चलेंगे। स्वद् धातु का प्रयोग आङ् उपसर्ग पूर्वक ही अधिक होता है।

लट्—आस्वादयति	आस्वादयतः	आस्वादयन्ति
लिट्—(१) आस्वादयाञ्चकार	आस्वादयाञ्चक्रतुः	आस्वादयाञ्चक्रुः
(२) आस्वादयाम्बभूव	आस्वादयाम्बभूवतुः	आस्वादयाम्बभूवुः
(३) आस्वादयामास	आस्वादयामासतुः	आस्वादयामासुः
लुट्—आस्वादयिता	आस्वादयितारौ	आस्वादयितारः
लृट्—आस्वादयिष्यति	आस्वादयिष्यतः	आस्वादयिष्यन्ति
लोट्—आस्वादयतु (आस्वादयतात्)	आस्वादयताम्	आस्वादयन्तु
लङ्—आस्वादयत्	आस्वादयताम्	आस्वादयन्
वि. लिङ्—आस्वादयेत्	आस्वादयेताम्	आस्वादयेयुः
लुङ्—आसिष्वदत्	आसिष्वदताम्	आसिष्वदन्
आसिष्वदः	आसिष्वदतम्	आसिष्वदत
आसिष्वदम्	आसिष्वदाव	आसिष्वदाम
लृङ्—आस्वादयिष्यत्	आस्वादयिष्यताम्	आस्वादयिष्यन्

१. अथर्ववेद ४.१६.२

अभ्यास

१. जैसे बढ़िया दूध का हम स्वाद लेते हैं, वैसा तो कोई भाग्यशाली ही चखता होगा।
यादृशम् उत्तमं पयः वयम् आस्वादयामः, तादृशं तु कश्चित् सौभाग्यवान् एव आस्वादयति (मन्ये, तादृशं तु कश्चित् सौभाग्यवान् एव आस्वादयेत्)।

२. ऋषि लोग समाधि में जिस ब्रह्मानन्द का स्वाद लेते थे, वह हमारे लिये दुर्लभ है।
ऋषयः समाधौ यं ब्रह्मानन्दम् आस्वादयाञ्चक्रुः (आस्वादयाम्बभूवुः, आस्वादयामासुः), सः अस्माकं कृते दुर्लभः एव।

३. कल मैं पके कटहल का स्वाद लूंगा = श्वः अहं पक्वं पनसम् आस्वादयितास्मि।

४. आज वे सब हमारे बाग में डाल पके आमों का स्वाद लेंगे।
अद्य ते अस्मदीये उद्याने शाखापक्वानि आम्रफलानि आस्वादयिष्यन्ति।

५. कल दर्शकों ने नाटकघर में भवभूति के करुण रस का आस्वादन किया।
ह्यः दर्शकाः (सामाजिकाः) नाट्यशालायां भवभूतेः करुणरसम् आस्वादयन्।

६. इस बेरों के जङ्गल में तुम खूब पके बेरों का स्वाद ले लो।
अस्मिन् बदरीवने यूयं भृशं पक्वानि बदरीफलानि आस्वादयत।

७. तूने आज तक बातों का ही स्वाद लिया है, काम नहीं किया।
त्वम् अद्यपर्यन्तं वार्ताः एव आसिष्वदः न कार्याणि अकार्षीः।

८. पराये अन्न का अधिक स्वाद मत ले।
अधिकं परान्नं मा आसिष्वदः (मा स्म आस्वादयः)।

९. हमें सायंकाल वीररस प्रधान काव्यों का स्वाद लेना चाहिये।
वयं सायंकाले वीररसप्रधानानि काव्यानि आस्वादयेम।

१०. यदि तू स्वाध्याय रस का स्वाद ले लेता, तो उसे कभी नहीं छोड़ता।
यदि त्वं स्वाध्यायरसम् आस्वादयिष्यः तर्हि तं कदापि न अत्यक्ष्यः।

(१२) मार्ग अन्वेषणे=ढूंढना [परस्मैपदी]

'युज, पृच संयमने' से लेकर 'धृष प्रसहने' इस धातुसूत्र तक जो (४७) धातुएँ हैं, उनसे विकल्प से णिच् प्रत्यय होता है[1]। सो एक पक्ष में 'योजयति' आदि रूप बनेंगे और दूसरे पक्ष में भ्वादिगणीय धातुवत् 'योजति' आदि रूप बनेंगे। इन धातुओं को आधृषीय धातु कहते हैं। 'मार्ग' धातु भी इन्हीं में पठित है।

णिच्सहित पक्ष में			णिच्रहित पक्ष में		
लट्—मार्गयति	मार्गयतः	मार्गयन्ति	लट्—मार्गति	मार्गतः	मार्गन्ति
लिट् (१) मार्गयाञ्चकार	मार्गयाञ्चक्रतुः	मार्गयाञ्चक्रुः	लिट्—ममार्ग	ममार्गतुः	ममार्गुः

१. आधृषाद्वा [धातुसूत्र] (धातुपाठ, चुरादि.)

(२) मार्गयाम्बभूव मार्गयाम्बभूवतुः मार्गयाम्बभूवुः
(३) मार्गयामास मार्गयामासतुः मार्गयामासुः
लुट्—मार्गयिता मार्गयितारौ मार्गयितारः
लृट्—मार्गयिष्यति मार्गयिष्यतः मार्गयिष्यन्ति
लोट्—{मार्गयतु / मार्गयतात्} मार्गयताम् मार्गयन्तु
लङ्—अमार्गयत् अमार्गयताम् अमार्गयन्
वि. लिङ्—मार्गयेत् मार्गयेताम् मार्गयेयुः
लुङ्—अममार्गत् अममार्गताम् अममार्गन्
लृङ्—अमार्गयिष्यत् अमार्गयिष्यताम् अमार्गयिष्यन्

लुट्—मार्गिता मार्गितारौ मार्गितारः
लृट्—मार्गिष्यति मार्गिष्यतः मार्गिष्यन्ति
लोट्—{मार्गतु / मार्गतात्} मार्गताम् मार्गन्तु
लङ्—अमार्गत् अमार्गताम् अमार्गन्
वि. लिङ्—मार्गेत् मार्गेताम् मार्गेयुः
लुङ्—अमार्गीत् अमार्गिष्टाम् अमार्गिषुः
लृङ्—अमार्गिष्यत् अमार्गिष्यताम् अमार्गिष्यन्

अभ्यास

१. वह अपने मित्र को नदी के किनारे ढूंढता है।
स: निजमित्रं निम्नगातीरे मार्गयति (मार्गति)।

२. योगियों ने निरन्तर समाधि में ईश्वर को ढूंढा।
योगिनः अनवरतं समाधौ परमेश्वरं मार्गयाञ्चक्रुः (मार्गयाम्बभूवुः, मार्गयामासुः, ममार्गुः)।

३. उस खोये हुए घोड़े को आज ये अलवर नगर में ढूंढेंगे और कल बाहर ढूंढेंगे।
तं विलुप्तम् अश्वम् अद्य एते अलवरनगरे मार्गयिष्यन्ति (मार्गिष्यन्ति) श्वः च बहिः मार्गयितारः (मार्गितारः)।

४. अरे उसे नदी के किनारे मत ढूंढ, यहीं मिल जायेगा।
अयि, तं तटिनीतटे मा ममार्गः (मा मार्गीः; मा स्म मार्गयः, मा स्म मार्गः), अत्रैव मेलिष्यति।

५. मैं अब उन महमानों को कहाँ ढूंढूं ?
अहं तान् प्राघुणकान् अधुना क्व मार्गयाणि (मार्गाणि) ?

६. उस दिन कुसुमलता ने दलिये की थाली खूब ढूंढी पर नहीं मिली।
तस्मिन् अहनि कुसुमलता यवागूस्थालीं भृशम् अमार्गयत् (अमार्गत्) परं नैव अलप्स्यत।

७. आज हमने अजमेर में असली केसर ढूंढी।
अद्य वयम् अजमेरनगरे वास्तविकं केसरम् अममार्गाम (अमार्गिष्म)

८. देश की उन्नति के लिये हमें कोई मार्ग ढूंढ़ना चाहिए।
राष्ट्रस्य उन्नतये वयं कमपि मार्गं मार्गयेम (मार्गेम)।

९. यदि दयानन्द विरजानन्द सरीखे गुरु को न ढूंढ़ते तो आर्षज्ञान का पुनरुद्धार न होता।

यदि दयानन्दः विरजानन्दसदृशं गुरुं न अमार्गयिष्यत् (अमार्गिष्यत्) तर्हि आर्षज्ञानस्य पुनरुद्धारः न अभविष्यत् ।

(१३) कथ वाक्यप्रबन्धे=कहना [परस्मपदी]

'कथ वाक्यप्रबन्धे' से लेकर चुरादिगण के अन्त-पर्यन्त जो धातुएँ हैं वे अकारान्त (=अदन्त) मानी जाती हैं[1] । अर्थात् पूर्व की 'चुर' 'क्षल' आदि धातुओं में जो अन्त में अकार आदि पठित है, वह तो अनुबन्ध मात्र है, धातु का अङ्ग नहीं है । वह अनुनासिक माना जाता है और उसकी इत्सञ्ज्ञा[2] होकर लोप होता है । किन्तु इन 'कथ' 'वर' आदि धातुओं के अन्त में जो अकार पठित है वह अनुबन्ध नहीं है, अपितु धातु का अङ्ग है । वह अनुनासिक नहीं है । अतः उसकी इत्सञ्ज्ञा नहीं होती । णिच् (इ=) प्रत्यय परे रहने पर उसका विशेष प्रयत्न से[3] लोप होता है । इस प्रकार अकार का लोप करने से 'कथ (=कथ्)' आदि के 'क' आदि में स्थित अकार को वृद्धि नहीं होती, क्योंकि अकार-लोप के स्थानिवद्भाव[4] होने से उपधा में 'थ्' आदि पड़ते हैं अकार नहीं । फलतः 'कथयति' आदि रूप ही बनते हैं । इसी प्रकार 'गृह ग्रहणे', 'मृग अन्वेषणे', 'कुह विस्मापने' आदि धातुओं में भी पूर्ववत् अकारलोप के स्थानिवद्भाव के कारण लघूपध गुण[5] नहीं होता और 'गृहयते', 'मृगयते', 'कुहयते' आदि रूप बनते हैं । इन धातुओं के लुङ् में भी विशेषता है । अलोप (=अकारलोप) अग्लोप के ही अन्तर्गत है । अतः लुङ् में चङ्-परक णि के परे रहने पर 'अभ्यास'[6] को जो सन्वत् कार्य (=इत्व आदि) होते हैं, वे इन धातुओं में नहीं होंगे । क्योंकि 'अनग्लोपे' कथन से सन्वत् कार्य का निषेध हो गया[7] । इसलिये 'अचकथत्' आदि रूप बनेंगे । अभ्यास के लघु स्वर को जो दीर्घत्व (=अचूचुरत्) होता है[8] वह भी यहाँ नही होता क्योंकि दीर्घत्व-विधायक सूत्र में भी 'अनग्लोपे' की अनुवृत्ति है । एक विशेषता और है—जैसे 'पाल रक्षणे' के लुङ् में चङ्परक णिच् परे रहने पर उपधा को ह्रस्व हो जाता है[9] और 'अपीपलत्' आदि

---

१. अथागणान्ता अदन्ताः (धा० सू०—धातुपाठ, चुरादि०) ।
२. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (अष्टा० १.३.२)
३. अतो लोपः (अष्टा० ६.४.४८)
४. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (अष्टा० १.१.५७)
५. पुगन्तलघूपधस्य च (अष्टा० ७.३.८६)
६. पूर्वोऽभ्यासः (अष्टा० ६.१.४)
७. सन्वल्लघुनि चङ्परे ऽनग्लोपे (अष्टा० ७.४.९३)
८. दीर्घो लघोः (अष्टा० ७.४.९४)
९. णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः (अष्टा० ७.४.१)

रूप बनते हैं वैसे इन धातुओं में नहीं होता[1]। इसलिये 'भाम क्रोधे', 'साम सान्त्व-प्रयोगे' आदि धातुओं के लुङ् में उपधा (=अग्लोप होने पर जो उपधा बचती है) को ह्रस्व नहीं होगा और 'अबभामत्', 'अससामत्', आदि रूप बनेंगे।

लट्—कथयति कथयतः कथयन्ति
लिट्—(१) कथयाञ्चकार कथयाञ्चक्रतुः कथयाञ्चक्रुः
(२) कथयाम्बभूव कथयाम्बभूवतुः कथयाम्बभूवुः
(३) कथयामास कथयामासतुः कथयामासुः
लुट्—कथयिता कथयितारौ कथयितारः
लृट्—कथयिष्यति कथयिष्यतः कथयिष्यन्ति

लोट्—{कथयतु / कथयतात्} कथयताम् कथयन्तु
लङ्—अकथयत् अकथयताम् अकथयन्
वि. लिङ्—कथयेत् कथयेताम् कथयेयुः
लुङ्—अचकथत् अचकथताम् अचकथन्
अचकथः अचकथतम् अचकथत
अचकथम् अचकथाव अचकथाम
लृङ्—अकथयिष्यत् अकथयिष्यताम् अकथयिष्यन्

अभ्यास

१. गुणी लोग जो कुछ कहते हैं उसमें सार होता है।
गुणिजनाः यत् किमपि कथयन्ति तत् सारवत् भवति।

२. राक्षसों ने रावण को कहा—'हनुमान् ने सारा बाग उजाड़ दिया'।
राक्षसाः रावणं कथयाञ्चक्रुः (कथयाम्बभूवुः, कथयामासुः; अकथयन्; अचकथन्) —'हनूमान् निखिलम् उपवनम् अनीनशत् (अनाशयत्)'

३. मैंने पेड़ों में पानी तो डाला नहीं, अब गुरुजी क्या कहेंगे।
अहम् पादपेषु पयः तु न अपीपतम् (अपातयम्), अधुना गुरुचरणाः किं कथयिष्यन्ति (कथयितारः)।

४. मुझ को देखते ही उन्होंने क्षमा मांग ली, अब उनसे क्या कहूं?
मां दृष्ट्वा एव ते क्षमाम् अयाचन् (अयाचिषत), अधुना तान् किं कथयानि?

५. हमें कभी किसी को भी अपशब्द नहीं कहने चाहियें।
वयं कदापि कञ्चित् अपि अपशब्दान् न कथयेम।

६. उषा ने जानकर घड़ा नहीं फोड़ा, उसे कुछ मत कहना?
उषा ज्ञात्वा घटं न अभैत्सीत् (अभित्त, अभिदत्; अभिनत्, अभिन्त) तां किमपि मा चकथः (मा स्म कथयः)?

७. यदि मेरा मित्र मुझे नदी के किनारे घूमने के लिये कहता तो मैं जाता, पर उसने सुरेन्द्र से कहा मुझे नहीं।
यदि मम सखा मां स्रोतस्विनीतीरे भ्रमणाय अकथयिष्यत् तर्हि अहम् अगमिष्यम् परन्तु सः तु सुरेन्द्रम् अचकथत् न च माम्।

---

१. नाग्लोपिशास्वृदिताम् (अष्टा० ७.४.२)

(१४) गण संख्याने = गिनना [परस्मैपदी]

गण् धातु के लुङ् में अभ्यास के आकार को एक पक्ष में ईकार आदेश होगा[1], इसलिये दो प्रकार के रूप बनेंगे।

लट्—	गणयति	गणयतः	गणयन्ति
लिट्—	(१) गणयाञ्चकार	गणयाञ्चक्रतुः	गणयाञ्चक्रुः
	(२) गणयाम्बभूव	गणयाम्बभूवतुः	गणयाम्बभूवुः
	(३) गणयामास	गणयामासतुः	गणयामासुः

लुट्—गणयिता गणयितारौ गणयितारः
लृट्—गणयिष्यति गणयिष्यतः गणयिष्यन्ति
लोट्— {गणयतु / गणयतात्} गणयताम् गणयन्तु
लङ्—अगणयत् अगणयताम् अगणयन्
वि. लिङ्—गणयेत् गणयेताम् गणयेयुः
लुङ्—(१) अजीगणत् अजीगणताम् अजीगणन्
अजीगणः अजीगणतम् अजीगणत
अजीगणम् अजीगणाव अजीगणाम
(२) अजगणत् अजगणताम् अजगणन्
अजगणः अजगणतम् अजगणत
अजगणम् अजगणाव अजगणाम
लृङ्—
अगणयिष्यत् अगणयिष्यताम् अगणयिष्यन्

अभ्यास

१. बनिये सोने से पहिले रुपए गिनते हैं।
वणिजः शयनात् प्राक् रूप्यकाणि गणयन्ति।

२. कौत्स ने राजा रघु से गुरुदक्षिणा के लिये रुपये लिये और उन्हें गिना।
कौत्सः रघोः महाराजात् गुरुदक्षिणार्थं रूप्यकाणि जग्राह तानि च गणयाञ्चकार (गणयाम्बभूव, गणयामास)।

३. तू इन कटोरियों को गिन लेना।
त्वम् इमाः कंसिकाः गणयिष्यसि (गणयितासि)।

४. वे इस ढेरी के रुपये गिनें और तुम इस थैले की अठनियाँ गिनो।
ते अस्य राशेः रूप्यकाणि गणयन्तु यूयं च अस्य प्रसेवस्य अर्धरूप्यकाणि गणयत।

५. खिड़की छोड़ने से पहिले सबको अपने रुपये और टिकट गिन लेने चाहियें।
वातायनत्यागात् पूर्वं सर्वे स्वीयानि रूप्यकाणि शुल्कपत्राणि च गणयेयुः।

६. तुमने कल धोबी से लेते समय कपड़े गिने क्यों नहीं?
त्वं ह्यः रजकात् ग्रहणकाले वस्त्राणि कथं न अगणयः?

७. मैंने अभी अभी अपनी कक्षा के छात्रों को गिन लिया है।
अहं साम्प्रतमेव स्वकक्षायाः छात्रान् अजीगणम् (अजगणम्)।

---

१. ई च गणः (अष्टा० ७.४.९७)

८. खाते समय रोटियां मत गिन।
भक्षणवेलायां रोटिकाः मा जीगणः (मा जगणः); मा स्म गणयः)।

९. यदि देने से पहिले तू गहनों को गिन लेता तो अब नहीं पछताता।
यदि प्रदानात् पूर्वं त्वम् आभूषणानि अगणयिष्यः तर्हि पश्चात् न अतप्स्यः।

(१५) रच प्रतियत्ने=बनाना [परस्मैपदी]

लट्—रचयति रचयतः रचयन्ति
लिट्—
(१) रचयाञ्चकार रचयाञ्चक्रतुः रचयाञ्चक्रुः
(२) रचयाम्बभूव रचयाम्बभूवतुः रचयाम्बभूवुः
(३) रचयामास रचयामासतुः रचयामासुः
लुट्—रचयिता रचयितारौ रचयितारः
लृट्—रचयिष्यति रचयिष्यतः रचयिष्यन्ति

लोट्—{रचयतु / रचयतात्} रचयताम् रचयन्तु
लङ्—अरचयत् अरचयताम् अरचयन्
वि. लिङ्—रचयेत् रचयेताम् रचयेयुः
लुङ्—अररचत् अररचताम् अररचन्
अररचः अररचतम् अररचत
अररचम् अररचाव अररचाम
लृङ्—अरचयिष्यत् अरचयिष्यताम् अरचयिष्यन्

अभ्यास

१. तुम अपने काव्य कौन सी रीति में रचते हो?
त्वं स्वकाव्यानि कतमया रीत्या रचयसि?

२. वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण की रचना की।
वाल्मीकिः आदिकाव्यं रामायणं रचयाञ्चकार (रचयामास, रचयाम्बभूव)।

३. चित्रकार कल इस दीवार पर चित्र बनायेगा।
चित्रकारः श्वः अस्यां भित्तौ चित्राणि रचयिता।

४. हम सब आज विवाहमण्डप बनायेंगे।
वयम् अद्य विवाहमण्डपं रचयिष्यामः।

५. दशमी के छात्रों ने कल अनुष्टुप् छन्द में पच्चीस श्लोक बनाये थे।
दशम्याः छात्राः ह्यः अनुष्टुप्नामके वृत्ते पञ्चविंशतिं श्लोकान् अरचयन्।

६. तुम दोनों आज सुन्दर गद्यसन्दर्भ बनाओ।
युवाम् अद्य मनोहरान् गद्यखण्डान् रचयतम्।

७. मनीषा ने आज उमा के हाथों पर मेंहदी से पत्तियां बनाई थीं।
मनीषा अद्य उमायाः हस्तयोः महारजनेन पत्रभङ्गान् अररचत्।

८. इस ठठेरे को तांबे के यज्ञपात्र, पीतल की थालियां और जस्ते के गुलदस्ते बनाने चाहियें।

अयं धातुकारः ताम्रस्य यज्ञपात्राणि, पित्तलस्य स्थालीः पिच्चटस्य च पुष्पाधानीः रचयेत् ।

९. यदि यह सुनार सोने चाँदी के सुन्दर आभूषण बनाता तो इसे सब पूछते ।
यदि अयं स्वर्णकारः सौवर्णानि रौप्याणि च मनोरमाणि आभूषणानि अरचयिष्यत् तर्हि सर्वे एनम् अप्रक्ष्यन् (अमार्गयिष्यन्) ।

(१६) अर्थ उपयाच्ञायाम् (=चाहना, प्रार्थना करना) [आत्मनेपदी]

लट्—अर्थयते अर्थयेते अर्थयन्ते
लिट् (१) अर्थयाञ्चक्रे अर्थयाञ्चक्राते अर्थयाञ्चक्रिरे
(२) अर्थयाम्बभूव अर्थयाम्बभूवतुः अर्थयाम्बभूवुः
(३) अर्थयामास अर्थयामासतुः अर्थयामासुः
लुट्—अर्थयिता अर्थयितारौ अर्थयितारः
लृट्—अर्थयिष्यते अर्थयिष्येते अर्थयिष्यन्ते
लोट्—अर्थयताम् अर्थयेताम् अर्थयन्ताम्
अर्थयस्व अर्थयेथाम् अर्थयध्वम्
अर्थयै अर्थयावहै अर्थयामहै

लङ्—आर्थयत आर्थयेताम् आर्थयन्त
आर्थयथाः आर्थयेथाम् आर्थयध्वम्
आर्थये आर्थयावहि आर्थयामहि
वि. लिङ्—अर्थयेत अर्थयेयाताम् अर्थयेरन्
अर्थयेथाः अर्थयेयाथाम् अर्थयेध्वम्
अर्थयेय अर्थयेवहि अर्थयेमहि
लुङ्—आर्तिथत आर्तिथेताम् आर्तिथन्त
आर्तिथथाः आर्तिथेथाम् आर्तिथध्वम्
आर्तिथे आर्तिथावहि आर्तिथामहि
लृङ्—आर्थयिष्यत आर्थयिष्येताम् आर्थयिष्यन्त

अभ्यास

१. उपासक लोग परमेश्वर से उत्तम बुद्धि मांगते हैं ।
उपासकाः परमेश्वरम् उत्तमां धियम् अर्थयन्ते ।

२. विश्वामित्र ने यज्ञ की रक्षा के लिये दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांगा ।
विश्वामित्रः यज्ञरक्षणाय दशरथं रामलक्ष्मणौ अर्थयाञ्चक्रे (अर्थयाम्बभूव, अर्थयामास) ।

३. मेरे पास सब कुछ है, मैं किससे क्या मांगूं ?
अहं सम्पन्नोऽस्मि कं किम् अर्थयै (अर्थयेय) अहम् ?

४. हे शिष्यो ! तुम लोग सदा भगवान् से धारणावती बुद्धि मांगो ।
भोः शिष्याः ! यूयं नित्यं परमात्मानं मेधाम् अर्थयध्वम् (अर्थयेध्वम्) ।

५. मैंने वैद्य ओम्प्रकाश से आज जितने रुपये मांगे, उतने ही उसने खुशी से मुझे दे दिये ।
अहं भिषजम् ओम्प्रकाशम् अद्य यावन्ति रूप्यकाणि आर्तिथे तावन्ति सः सहर्षं मह्यम् अदित ।

६. उसने कल तो सत्यार्थप्रकाश ही मांगा था आज तो संस्कारविधि भी मांग ली।
सः ह्यः तु सत्यार्थप्रकाशम् एव आर्थयत, अद्य तु संस्कारविधिम् अपि आर्तिथत।

७. नीचवृत्ति वाले मनुष्य से काणी कौड़ी भी मत मांग।
अधमवृत्तिकं जनं काणवराटिकाम् अपि मा अर्तिथथाः (मा स्म अर्थयथाः)।

८. यदि वे मुझसे अधिक मांगते तो मैं उन्हें अधिक दे देता।
यदि ते माम् अधिकम् आर्थयिष्यन्त तर्हि अहं तेभ्यः अधिकम् अदास्ये।

(१७) स्पृह ईप्सायाम्=चाहना [परस्मैपदी]

लट्—स्पृहयति स्पृहयतः स्पृहयन्ति
लिट् (१) स्पृहयाञ्चकार स्पृहयाञ्चक्रतुः स्पृहयाञ्चक्रुः
(२) स्पृहयाम्बभूव स्पृहयाम्बभूवतुः स्पृहयाम्बभूवुः
(३) स्पृहयामास स्पृहयामासतुः स्पृहयामासुः
लुट्—स्पृहयिता स्पृहयितारौ स्पृहयितारः

लृट्—स्पृहयिष्यति स्पृहयिष्यतः स्पृहयिष्यन्ति
लोट्—{स्पृहयतु स्पृहयताम् स्पृहयन्तु / स्पृहयतात्
लङ्—अस्पृहयत् अस्पृहयताम् अस्पृहयन्
वि. लिङ्—स्पृहयेत् स्पृहयेताम् स्पृहयेयुः
लुङ्—अपस्पृहत् अपस्पृहताम् अपस्पृहन्
लृङ्—अस्पृहयिष्यत् अस्पृहयिष्यताम् अस्पृहयिष्यन्

अभ्यास

१. आजकल लोग केवल धन का ही लालच करते हैं।
इदानीन्तनाः जनाः केवलं धनाय[1] स्पृहयन्ति।

२. पहिले विद्यार्थियों को पढ़ने का लालच था, अब पढ़ने की बजाय फैशन का लालच है।
पुरा विद्यार्थिनः पठनाय स्पृहयाञ्चक्रुः (स्पृहयाम्बभूवुः, स्पृहयामासुः; अस्पृहयन्, अपस्पृहन्)।

३. मैंने कभी धन का लालच नहीं किया।
अहं कदापि धनाय न अस्पृहयम् (अपस्पृहम्)।

४. यदि तुम विद्यार्थी अवस्था में सुखभोग का लालच करोगे तो विद्या प्राप्त नहीं कर सकोगे।

---

१. स्पृहा (=चाहना) अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में जिसकी चाहना की जाती है उसकी सम्प्रदान संज्ञा 'स्पृहेरीप्सितः (अष्टा.१.४.३६)' से होती है। और 'चतुर्थी सम्प्रदाने' (अष्टा.२.३ १३) से सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है।

यदि यूयं विद्यार्थिनः सन्तः सुखभोगाय स्पृहयिष्यथ (स्पृहयितास्थ) तर्हि विद्याः अधिगन्तुं न शक्ष्यथ (शक्तास्थ)।

५. पाणिनि की अष्टाध्यायी शब्दशास्त्र की चाबी है, उसके सूत्रों को याद करने का लालच क्यों न करूँ ?।

पाणिनेः अष्टाध्यायी शब्दशास्त्रस्य कुञ्चिका वर्त्तते, तस्याः सूत्राणां स्मरणाय कथं न स्पृहयानि (स्पृहयेयम्)

६. छात्रों को पढ़ने का ही लालच करना चाहिये।

छात्राः पठनाय एव स्पृहयेयुः।

७. यदि कर्मचारी लोग धन का लालच करते, तो देश की अवनति होती।

यदि कर्मचारिणः जनाः धनाय अस्पृहयिष्यन् तर्हि देशस्य अवनतिः अभविष्यत्।

८. किसी दूसरे के धन का लालच मत करो, अपने कमाये धन पर सन्तोष करो।

कस्यचिद् अन्यस्य धनाय मा पस्पृहः (मा स्म स्पृहयः), स्वोपार्जितेन वित्तेन सन्तुष्यत।

सुबन्त-प्रकरण

शब्द-रूप

यद्यपि आरम्भ में हमने सुबन्त शब्द-रूपों का विषय समझाया था और कुछ शब्दरूप भी स्मरण करवाये थे, तथापि जब तक तिङन्त शब्दरूपों (क्रियावाचक धातुरूपों) का अभ्यास न हो, तब तक वाक्य बनाने में महती कठिनाई होती है; इसलिये हमने सभी गणों की प्रसिद्ध और अधिक उपयोग में आने वाली धातुओं के रूप दे दिये हैं और उनका वाक्यों में भी अभ्यास करवाया है। अब सुबन्त शब्दरूप स्मरण करवाते हैं और वाक्यों में उनका अभ्यास भी यथासम्भव करवाते जाते हैं।

पुंल्लिङ्ग शब्द

(१) अकारान्त पुंल्लिङ्ग राम शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बो. प्र	हे[1] राम	हे रामौ	हे रामाः

इसी प्रकार – यज्ञ, देव, कृष्ण, ग्राम, पट, घट, देश, अङ्क, भाग, कर, आदि शब्दों के रूप चलेंगे।

---

१. सम्बोधन के साथ 'हे' शब्द के अतिरिक्त, भोः, भगोः, अयि आदि शब्द भी लगाये जा सकते हैं और इनमें से कोई भी अव्यय न लगायें तो भी सम्बोधन का प्रयोग होता है।

(२) इकारान्त पुँल्लिङ्ग हरि शब्द

प्र०—	हरिः	हरी	हरयः
द्वि०—	हरिम्	हरी	हरीन्
तृ०—	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च०—	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
प०—	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
ष०—	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
स०—	हरौ	हर्योः	हरिषु
सं० प्र०—	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

इसी प्रकार — भूपति, प्रजापति, अञ्जलि, राशि, रवि, ध्वनि, यति, कवि, अतिसखि आदि०। जितने भी कि-प्रत्ययान्त[2] शब्द हैं उनके भी रूप हरि शब्द के समान होंगे; यथा—आधि, व्याधि, विधि, निधि, सन्धि, जलधि, प्रधि आदि०।

(३) इन् प्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग करिन् शब्द

प्र०—	करी	करिणौ	करिणः
द्वि०—	करिणम्	करिणौ	करिणः
तृ०—	करिणा	करिभ्याम्	करिभिः
च०—	करिणे	करिभ्याम्	करिभ्यः
प०—	करिणः	करिभ्याम्	करिभ्यः
ष०—	करिणः	करिणोः	करिणाम्
स०—	करिणि	करिणोः	करिषु
सं० प्र०—	हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः

इसी प्रकार—शास्त्रिन्, हस्तिन्, दण्डिन्, ब्रह्मचारिन्, शृङ्गिन्, मन्त्रिन्, योगिन्, धनिन् आदि०।

(४) तकारान्त पुँल्लिङ्ग भूभृत् शब्द

प्र०—	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
द्वि०—	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृ०—	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
च०—	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
प०—	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
ष०—	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
स०—	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
सं. प्र.-	हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः

इसी प्रकार—सुकृत्, मरुत्, श्रीयुत् आदि०।

(५) उकारान्त पुँल्लिङ्ग भानु शब्द

प्र०—	भानुः	भानू	भानवः
द्वि०—	भानुम्	भानू	भानून्
तृ०—	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
च०—	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
प०—	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
ष०—	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
स०—	भानौ	भान्वोः	भानुषु
सं० प्र०-	हे भानो	हे भानू	हे भानवः

इसी प्रकार—वायु, साधु, गुरु, सेतु, सूनु, सेतु, कारु आदि०।

(६) ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग कर्तृ शब्द

प्र०—	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
द्वि०—	कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्
तृ०—	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च०—	कर्त्रे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
प०—	कर्तुः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
ष०—	कर्तुः	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
स०—	कर्तरि	कर्त्रोः	कर्तृषु
सं० प्र०-	हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः

इसी प्रकार—हर्तृ, धातृ, नेतृ, नप्तृ, शास्तृ, होतृ, सवितृ, भोक्तृ आदि०।

---

२. उपसर्गे घोः किः (अष्टा.३.३.९२)

(७) सकारान्त पुंल्लिङ्ग चन्द्रमस् शब्द

प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
प०	चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
ष०	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमस्सु
सं० प्र०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

इसी प्रकार—वेधस्, सुमनस्, दुर्मनस् आदि० ।

(८) वस् (क्वसु) प्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग तस्थिवस् शब्द

प्र०	तस्थिवान्	तस्थिवांसौ	तस्थिवांसः
द्वि०	तस्थिवांसम्	तस्थिवांसौ	तस्थुषः
तृ०	तस्थुषा	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भिः
च०	तस्थुषे	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्यः
प०	तस्थुषः	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्यः
ष०	तस्थुषः	तस्थुषोः	तस्थुषाम्
स०	तस्थुषि	तस्थुषोः	तस्थिवत्सु
सं० प्र०	हे तस्थिवन्	हे तस्थिवांसौ	हे तस्थिवांसः

इसी प्रकार—उपसेदिवस्, अनूषिवस्, उपशुश्रुवस् आदि० ।

(९) वत् (मतुप्) प्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग भगवत् शब्द

प्र०	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
द्वि०	भगवन्तम्	भगवन्तौ	भगवतः
तृ०	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
च०	भगवते	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
प०	भगवतः	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
ष०	भगवतः	भगवतोः	भगवताम्
स०	भगवति	भगवतोः	भगवत्सु
सं० प्र०	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

इसी प्रकार—पुंल्लिङ्ग बलवत्, धनवत्, प्रज्ञावत्, विद्युत्वत् आदि० ।

(१०) नकारान्त पुंल्लिङ्ग आत्मन् शब्द

प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वि०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
च०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
प०	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
ष०	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सं० प्र०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

इसी प्रकार—वर्मन् (पु०), यज्वन्, सुशर्मन्, कृष्णवर्त्मन् आदि० ।

(११) इकारान्त पुंल्लिङ्ग पति शब्द

प्र०	पतिः	पती	पतयः
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
प०	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
ष०	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सं० प्र०	हे पते	हे पती	हे पतयः

जब पति शब्द किसी समास का अन्त्य भाग होगा तब उस समस्त शब्द के रूप हरि के समान चलेंगे। यथा भूपति, प्रजापति, पृथ्वीपति आदि।

(१२) इकारान्त पुंल्लिङ्ग सखि शब्द

प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः

प०—सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
ष०—सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
स०—सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सं० प्र०—हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

सखि शब्द जब तत्पुरुष समास का अन्त्य भाग होगा तो उसके 'इकार' को अकार (=टच्) हो जायेगा[1] और तब देवसखः, मत्सखः आदि अकारान्त शब्द हो जायेगा तथा उसके 'राम' शब्द के समान रूप बनेंगे।

(१३) नकारान्त पुंलिङ्ग राजन् शब्द

प्र०—राजा	राजानौ	राजानः
द्वि०—राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृ०—राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०—राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
प०—राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
ष०—राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०—राज्ञि(राजनि)	राज्ञोः	राजसु
सं० प्र०—हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

इसी प्रकार—सुनामन्, महिमन्, गरिमन्, लघिमन् आदि०। जब राजन् शब्द किसी तत्पुरुष समास वाले शब्द का अन्तिम भाग होगा तो उससे भी अ(टच्) प्रत्यय होगा[1]। शब्द के 'अन्' भाग का लोप हो जायेगा[2] और अकारान्त—'महाराजः, देवराजः, मद्रराजः आदि शब्द बनेंगे और उनके रूप, 'राम' के समान चलेंगे।

(१४) ऋकारान्त पुंलिङ्ग पितृ शब्द

प्र०—पिता	पितरौ	पितरः
द्वि०—पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०—पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०—पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
प०—पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
ष०—पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
स०—पितरि	पित्रोः	पितृषु
सं० प्र०—हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

इसी प्रकार—भ्रातृ, जामातृ, देवृ, शंस्तृ, नृ आदि०।

(१५) ईकारान्त (धात्वन्त) पुंलिङ्ग प्रधी शब्द

प्र०—प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
द्वि०—प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृ०—प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
च०—प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
प०—प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
ष०—प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
स०—प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु
सं०प्र०-हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः

इसी प्रकार 'वेवीः', 'जलपीः' आदि०। सेनानीः, ग्रामणीः शब्दों में इतना विशेष है कि सप्तमी के एकवचन में 'सेनान्याम्' और 'ग्रामण्याम्' बनेगा[3] शेष प्रधीः के समान।

(१६) ऊकारान्त (धात्वन्त) पुंलिङ्ग सुलू शब्द

प्र०—सुलूः	सुल्वौ	सुल्वः
द्वि०—सुल्वम्	सुल्वौ	सुल्वः
तृ०—सुल्वा	सुलूभ्याम्	सुलूभिः
च०—सुल्वे	सुलूभ्याम्	सुलूभ्यः
प०—सुल्वः	सुलूभ्याम्	सुलूभ्यः
ष०—सुल्वः	सुल्वोः	सुल्वाम्

१. राजाहसखिभ्यष्टच् (अष्टा. ५.४.९१)
२. नस्तद्धिते (अष्टा० ६.४.१४४)
३. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः (अष्टा. ७.३.११६)

स०—सुल्वि	सुल्वोः	सुलूषु
सं०प्र०—हे सुलूः	हे सुल्वौ	हे सुल्वः

इसी प्रकार—खलपू, दृन्भू, करभू आदि०।

(१७) ईप्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग पपी शब्द

प्र०—पपीः	पप्यौ	पप्यः
द्वि०—पपीम्	पप्यौ	पपीन्
तृ०—पप्या	पपीभ्याम्	पपीभिः
च०—पप्ये	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
प०—पप्यः	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
ष०—पप्यः	पप्योः	पप्याम्
स०—पप्यि	पप्योः	पपीषु
सं० प्र०—हे पपीः	हे पप्यौ	हे पप्यः

इसी प्रकार—यमी, वातप्रमी आदि०।

(१८) हकारान्त पुंल्लिङ्ग अनडुह् शब्द

प्र०—अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वि०—अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृ०—अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०—अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
प०—अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
ष०—अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०—अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
सं० प्र०—हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

(१९) सकारान्त पुंल्लिङ्ग ज्यायस् शब्द

प्र०—ज्यायान्	ज्यायांसौ	ज्यायांसः
द्वि०—ज्यायांसम्	ज्यायांसौ	ज्यायसः
तृ०—ज्यायसा	ज्यायोभ्याम्	ज्यायोभिः
च०—ज्यायसे	ज्यायोभ्याम्	ज्यायोभ्यः
प०—ज्यायसः	ज्यायोभ्याम्	ज्यायोभ्यः
ष०—ज्यायसः	ज्यायसोः	ज्यायसाम्
स०—ज्यायसि	ज्यायसोः	ज्यायस्सु
सं० प्र०—हे ज्यायः	हे ज्यायांसौ	हे ज्यायांसः

इसी प्रकार—पुंल्लिङ्ग श्रेयस्, भूयस्, साधीयस्, वरीयस्, प्रेयस् आदि०।

(२०) तकारान्त पुंल्लिङ्ग महत् शब्द

प्र०—महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वि०—महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृ०—महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०—महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
प०—महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
ष०—महतः	महतोः	महताम्
स०—महति	महतोः	महत्सु
सं० प्र०—हे महान्	हे महान्तौ	हे महान्तः

(२१) इन् (प्रत्ययान्त) पुंल्लिङ्ग पथिन् शब्द

प्र०—पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वि०—पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृ०—पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०—पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
प०—पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०—पथः	पथोः	पथाम्
स०—पथि	पथोः	पथिषु

पथिन् शब्द जब किसी समास का अन्तिम अवयव होगा तो वह अकारान्त हो जायेगा—जैसे घण्टापथ, राजपथ आदि और उसके रूप 'राम' के समान चलेंगे।

अभ्यास

१. हरि के भाई के लड़के ने रास्ते में एक बैल देखा।

हरेः भ्रातुः पुत्रः पथि एकम् अनड्वाहम् अपश्यत्।

२. सीता के पति का नाम रामचन्द्र था।
सीतायाः पत्युः नाम रामचन्द्रः आसीत् (समासे→) सीतापतेः नाम रामचन्द्रः आसीत्।

३. देवेन्द्र के मित्र पर मेरा विश्वास है।
देवेन्द्रस्य सख्यौ मम विश्वासः अस्ति। (समासे) देवेन्द्रसखे मम विश्वासः अस्ति।

४. अयोध्या के राजा के चार लड़के थे।
अयोध्यायाः राज्ञः चत्वारः सूनवः बभूवुः। (समासे→) अयोध्याराजस्य चत्वारः सूनवः बभूवुः।

५. मथुरा के रास्ते में चोर रहते हैं।
मथुरायाः पथि (=मथुरापथे) चौराः वसन्ति।

६. आत्मा और परमात्मा में भेद यही है कि आत्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सर्वज्ञ है।
आत्मनि परमात्मनि च (आत्मपरमात्मनोः) अयमेव भेदः यद् आत्मा अल्पज्ञः अस्ति परमात्मा च सर्वज्ञः।

७. गुरु की सेवा करने वाले के मन में यदि भक्ति भी हो तो विद्या जल्दी आती है।
गुरोः सेवायाः कर्तुः मनसि यदि भक्तेः उदयः स्यात् तदा झटिति सः विद्यां लभते।

८. सृष्टि के बनाने वाले भगवान् की लीला को देखकर किसको आश्चर्य नहीं होता।
संसारस्य कर्त्तुः भगवतः लीलां दृष्ट्वा कस्य आश्चर्यं न जायते ?

९. कल मैं अपने पिता के साथ पढ़ने के लिए गुरु के पास जाऊँगा।
श्वः अहं स्वपित्रा सह पठनाय गुरोः समीपं गन्तास्मि।

१०. लोग द्वितीया के दिन चन्द्रमा चाव से देखते हैं।
जनाः द्वितीयायां (द्वितीयस्यां) तिथौ चन्द्रमसं सोत्कण्ठम् अवलोकयन्ति।

११. उस मन्त्री के भवन में शास्त्री के साथ तीन ब्रह्मचारी भी रहते हैं।
तस्य मन्त्रिणः भवने शास्त्रिणा सह त्रयः ब्रह्मचारिणः अपि निवसन्ति।

१२. ये राजा लोग विद्वानों का आदर करते हैं।
एते भूभृतः विदुषः आद्रियन्ते।

स्त्रीलिङ्ग शब्द

(१) आबन्त स्त्रीलिङ्ग रमा शब्द

प्र०—रमा	रमे	रमाः	
द्वि०—रमाम्	रमे	रमाः	
तृ०—रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः	
च०—रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः	
प०—रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः	

ष०—रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
स०—रमायाम्	रमयोः	रमासु
सं० प्र०—हे रमे	हे रमे	हे रमाः

इसी प्रकार—भार्या, गङ्गा, लज्जा, विद्या, कृपा, त्रपा, कक्षा, लता आदि आबन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप चलेंगे।

(२) ईकारान्त नदी-सञ्ज्ञक[1] स्त्रीलिङ्ग

गौरी शब्द

प्र०—गौरी	गौर्यौ	गौर्यः
द्वि०—गौरीम्	गौर्यौ	गौरीः
तृ०—गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
च०—गौर्यै	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
प०—गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
ष०—गौर्याः	गौर्योः	गौरीणाम्
स०—गौर्याम्	गौर्योः	गौरीषु
सं० प्र०—हे गौरि	हे गौर्यौ	हे गौर्यः

इसी प्रकार—पृथ्वी, नदी, कुमारी, पञ्चमी, दशमी, सरस्वती आदि। अवी, तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, इन शब्दों की प्रथमा के एकवचन में विसर्ग रहते हैं, यथा—अवीः, तन्त्रीः, लक्ष्मीः, तरीः आदि। शेष सब वचनों और विभक्तियों 'गौरी' के समान०।

(३) ईकारान्त नदीसञ्ज्ञक स्त्रीलिङ्ग

स्त्री शब्द

प्र०—स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वि०—स्त्रीम् / स्त्रियम्	स्त्रियौ	स्त्रीः / स्त्रियः
तृ०—स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०—स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
प०—स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०—स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०—स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सं० प्र०—हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

(४) ऊकारान्त नदीसञ्ज्ञक स्त्रीलिङ्ग

चमू शब्द

प्र०—चमूः	चम्वौ	चम्वः
द्वि०—चमूम्	चम्वौ	चमूः
तृ०—चम्वा	चमूभ्याम्	चमूभिः
च०—चम्वै	चमूभ्याम्	चमूभ्यः
प०—चम्वाः	चमूभ्याम्	चमूभ्यः
ष०—चम्वाः	चम्वोः	चमूनाम्
स० चम्वाम्	चम्वोः	चमूषु
सं० प्र०—हे चमु	हे चम्वौ	हे चम्वः

इसी प्रकार—वधू, श्वश्रू, कर्कन्धू, तनू आदि०।

---

१. यूस्त्र्याख्यौ नदी (अष्टा० १.४.३) इससे ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की 'नदी' संज्ञा होती है। यहां नदी=तटिनी से कोई अभिप्राय नहीं है। नदीवाची शब्द भी यदि ईकारान्त अथवा ऊकारान्त नहीं होगा तो उसकी 'नदी' सञ्ज्ञा नहीं होगी। इस लिये किसी ने कहा है—

प्रभुः स्वातन्त्र्ययुक्तो हि यदिच्छति करोति तत्।
नदीत्वं पाणिनेः स्थल्यां गङ्गायमुनयोस्तु न॥

स्वतन्त्रतायुक्त स्वामी जो चाहता सो कर लेता है, 'देखो' पाणिनि ने 'स्थली' शब्द (जहां सूखापन है) की 'नदी' सञ्ज्ञा की और गङ्गा, यमुना की नहीं की।

(५) इकारान्त स्त्रीलिङ्ग रुचि[1] शब्द

प्र०—	रुचिः	रुची	रुचयः
द्वि०—	रुचिम्	रुची	रुचीः
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
च०—	रुच्यै (रुचये)	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
प०—	रुच्याः (रुचेः)	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
ष०—	रुच्याः (रुचेः)	रुच्योः	रुचीणाम्
स०—	रुच्याम् (रुचौ)	रुच्योः	रुचिषु
सं० प्र०—	हे रुचे	हे रुची	हे रुचयः

एवम्-वेदि, कृषि, ओषधि, अङ्गुलि। ति (=क्तिन्)[2] प्रत्ययान्त सभी शब्दों के रूप इसी प्रकार चलेंगे। यथा-शक्ति, भक्ति, राति, रीति, नीति, गति आदि।

(६) उकारान्त स्त्रीलिङ्ग धेनु शब्द

प्र०—	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि०—	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृ०—	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०—	धेन्वै (धेनवे)	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
प०—	धेन्वाः (धेनोः)	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
ष०—	धेन्वाः (धेनोः)	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०—	धेन्वाम् (धेनौ)	धेन्वोः	धेनुषु
सं० प्र०—	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

इसी प्रकार—तनु (शरीर), रेणु, आदि।

(७) ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग धी शब्द

प्र०—	धीः	धियौ	धियः
द्वि०—	धियम्	धियौ	धियः
तृ०—	धिया	धीभ्याम्	धीभिः
च०—	धियै (धिये)	धीभ्याम्	धीभ्यः
प०—	धियाः (धियः)	धीभ्याम्	धीभ्यः
ष०—	धियाः (धियः)	धियोः	धीनाम् / धियाम्
स०—	धियाम् (धियि)	धियोः	धीषु
सं० प्र०—	हे धीः	हे धियौ	हे धियः

इसी प्रकार श्री, ह्री, भी आदि०।

(८) ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग भू शब्द

प्र०—	भूः	भुवौ	भुवः
द्वि०—	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृ०—	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
च०—	भुवै (भुवे)	भूभ्याम्	भूभ्यः
प०—	भुवाः (भुवः)	भूभ्याम्	भूभ्यः
ष०—	भुवाः (भुवः)	भुवोः	भूनाम् / भुवाम्
स०—	भुवाम् (भुवि)	भुवोः	भूषु
सं० प्र०—	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः

एवम्—सू, जू, भ्रू, सुभ्रू आदि०।

(९) ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग स्वसृ शब्द

प्र०—	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वि०—	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसृः
तृ०—	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
च०—	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
प०—	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
ष०—	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसृणाम्
स०—	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु
सं० प्र०—	हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः

---

१. ह्रस्व इकारान्त तथा ह्रस्व उकारान्त और इयङ् उवङ् स्थान वाले स्त्रीलिङ्ग शब्दों की विकल्प से नदीसञ्ज्ञा (ङिति ह्रस्वश्च, अष्टा० १.४.६) होती है, पक्ष में घि सञ्ज्ञा होगी (शेषो घ्यसखि, अष्टा० १.४.७)। फलतः चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एकवचनों में दो दो रूप बनेंगे।

२. स्त्रियां क्तिन् (अष्टा० ३.३.९४)

(१०) ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग मातृ शब्द

प्र०—माता	मातरौ	मातरः
द्वि०—मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृ०—मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०—मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
प०—मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
ष०—मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
स०—मातरि	मात्रोः	मातृषु
सं० प्र०—हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

इसी प्रकार—दुहितृ, ननान्दृ, यातृ (=जेठानी या देवरानी) आदि०।

(११) तकारान्त स्त्रीलिङ्ग सरित् शब्द

प्र०—सरित् (द्)	सरितौ	सरितः
द्वि०—सरितम्	सरितौ	सरितः
तृ०—सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
च०—सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
प०—सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
ष०—सरितः	सरितोः	सरिताम्
स०—सरिति	सरितोः	सरित्सु

इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग हरित्, तडित्, विद्युत् आदि०।

(१२) दकारान्त स्त्रीलिङ्ग शरद् शब्द

प्र०—शरद्	शरदौ	शरदः
द्वि०—शरदम्	शरदौ	शरदः
तृ०—शरदा	शरद्भ्याम्	शरद्भिः
च०—शरदे	शरद्भ्याम्	शरद्भ्यः
प०—शरदः	शरद्भ्याम्	शरद्भ्यः
ष०—शरदः	शरदोः	शरदाम्
स०—शरदि	शरदोः	शरत्सु

इसी प्रकार—दृषद्, दरद् आदि०।

(१३) धकारान्त स्त्रीलिङ्ग क्षुध् शब्द

प्र०—क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः
द्वि०—क्षुधम्	क्षुधौ	क्षुधः
तृ०—क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भिः
च०—क्षुधे	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
प०—क्षुधः	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
ष०—क्षुधः	क्षुधोः	क्षुधाम्
स०—क्षुधि	क्षुधोः	क्षुत्सु

इसी प्रकार—समिध्, युध् आदि०।

(१४) चकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाच् शब्द

प्र०—वाक्	वाचौ	वाचः
द्वि०—वाचम्	वाचौ	वाचः
तृ०—वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०—वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
प०—वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०—वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०—वाचि	वाचोः	वाक्षु

इसी प्रकार—शुच्, स्फिच् आदि०।

(१५) जकारान्त स्त्रीलिङ्ग स्रज् शब्द

प्र०—स्रक्	स्रजौ	स्रजः
द्वि०—स्रजम्	स्रजौ	स्रजः
तृ०—स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः
च०—स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
प०—स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
ष०—स्रजः	स्रजोः	स्रजाम्
स०—स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु

इसी प्रकार—ऋत्विज्, सुयुज्, ऊर्ज् आदि०।

(१६) शकारान्त स्त्रीलिङ्ग दिश् शब्द

प्र०—दिक्	दिशौ	दिशः
द्वि०—दिशम्	दिशौ	दिशः
तृ०—दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०—दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
प०—दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः

ष०—दिशः	दिशोः	दिशाम्
स०—दिशि	दिशोः	दिक्षु

इसी प्रकार—दृश् (स्त्री०) तथा घृतस्पृश्, तादृश्, यादृश्, ईदृश्, एतादृश्, मादृश्, त्वादृश्, भवादृश् आदि पु० स्त्री०।

(१७) षकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रावृष् शब्द

प्र०—प्रावृट्	प्रावृषौ	प्रावृषः
द्वि०—प्रावृषम्	प्रावृषौ	प्रावृषः
तृ०—प्रावृषा	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भिः
च०—प्रावृषे	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
प०—प्रावृषः	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
ष०—प्रावृषः	प्रावृषोः	प्रावृषाम्
स०—प्रावृषि	प्रावृषोः	प्रावृट्सु

इसी प्रकार—त्विष् (स्त्री०), द्विष् (पु०, स्त्री०), रत्नमुष् (पु०, स्त्री०), शेमुषीजुष् (पु०, स्त्री०) आदि०।

(१८) औकारान्त स्त्रीलिङ्ग नौ शब्द

प्र०—नौः	नावौ	नावः
द्वि०—नावम्	नावौ	नावः
तृ०—नावा	नौभ्याम्	नौभिः
च०—नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
प०—नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
ष०—नावः	नावोः	नावाम्
स०—नावि	नावोः	नौषु

(१९) हकारान्त स्त्रीलिङ्ग उपानह् शब्द

प्र०—उपानत्	उपानहौ	उपानहः
द्वि—उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृ०—उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०—उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
प०—उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
ष०—उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
स०—उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु

(२०) रेफान्त स्त्रीलिङ्ग गिर् शब्द

प्र०—गीः	गिरौ	गिरः
द्वि०—गिरम्	गिरौ	गिरः
तृ०—गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०—गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
प०—गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
ष०—गिरः	गिरोः	गिराम्
स०—गिरि	गिरोः	गीर्षु

(२१) रेफान्त स्त्रीलिङ्ग पुर् शब्द

प्र०—पूः	पुरौ	पुरः
द्वि०—पुरम्	पुरौ	पुरः
तृ०—पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
च०—पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
प०—पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
ष०—पुरः	पुरोः	पुराम्
स०—पुरि	पुरोः	पूर्षु

इसी प्रकार—धुर् (धूः), मुर् (मूः) आदि०।

अभ्यास

१. उस गौ का क्या किया जाय, जो न बच्चे देती है और न दूध।
'किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा'।

२. भारत की स्त्रियाँ, यूरोप की स्त्रियों से, अधिक लज्जाशील हैं।
भारतीयाः स्त्रियः हरिवर्षीयाभ्यः नारीभ्यः अधिकं लज्जन्ते।

३. हे ऋत्विजो! आप दोनों माला धारण करो और मन्त्र बोलो।

हे ऋत्विजौ ! युवां स्रजौ धारयतम् मन्त्रान् च उच्चारयतम् ।

४. इन दोनों सेनाओं में राजपूत सेना बलवती है ।
एतयोः चम्वोः राजपुत्रचमूः बलीयसी (बलवत्तरा) खलु ।

५. सत्य का पक्ष लेना बुद्धियों का स्वभाव है ।
सत्यपक्षपातो हि धियां स्वभावः ।

६. बुद्धिमानों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ।
न किमपि असाध्यं कृतधियाम् ।

७. सुबह रक्षाबन्धन है, सब बहिनें भाइयों के हाथों पर राखी बाँधेंगी ।
प्रातः (=कल्ये) रक्षाबन्धनपर्व वर्त्तिता, सर्वाः स्वसारः भ्रातृणां हस्तेषु रक्षासूत्राणि बद्धारः ।

८. भानजे भी मामों से रुपये मांगेंगे ।
स्वस्रीयाः (भागिनेयाः) अपि मातुलान् रूप्यकाणि याचितारः (याचिष्यन्ते, याचिष्यन्ति) ।

९. जो मनुष्य का जन्म पाकर भी अच्छे कार्य नहीं करते वे पृथ्वी पर भार हैं ।
ये मानुषं जन्म प्राप्यापि शुभानि कार्याणि न अनुतिष्ठन्ति ते भुवि भारभूताः सन्ति ।

१०. इस पवित्र भारत भूमि पर धूर्त्तों का क्या काम ?
अस्यां पूतायां भारतभुवि किं प्रयोजनं धूर्त्तैः ?

११. इस तेरी मीठी वाणी से मैं बहुत प्रसन्न हूं ।
अनया ते मधुरया वाचा (गिरा) अतिप्रीतः अस्मि (नितरां प्रसीदामि) ।

१२. आज तो भूखा मर रहा हूं = अद्य तु क्षुधा म्रिये ।

१३. शरद् ऋतु में मुझे खीर बहुत अच्छी लगती है ।
शरदि मह्यं पायसान्नं बहु रोचते ।

१४. शरद् पूर्णिमा पर खीर खाने से बहुत रोग नष्ट होते हैं ।
शारद्यां पौर्णमास्यां पायसान्नभक्षणेन बहवः रोगाः विनिवर्त्तन्ते ।

१५. इस दिशा में जाने से तेरी कार्यसिद्धि होगी ।
अस्यां दिशि गमनेन ते कार्यसिद्धिः भविष्यति (भविता) ।

१६. कभी नाव गाड़ी पर और कभी गाड़ी नाव पर ।
कदाचित् शकटः नावं वहति, कदाचित् च नौः शकटं वहति ।

१७. यह वर्षा ऋतु धन्य है, जिसमें गरम-गरम पक्वान्न सबको अच्छे लगते हैं ।
धन्या इयं प्रावृट् यस्यां प्रावृषि उष्णोष्णानि पक्वान्नानि सर्वेभ्यः रोचन्ते ।

१८. इस नगरी में जूतों की पच्चीस दूकानें हैं ।
अस्यां पुरि उपानहां पञ्चविंशतिः आपणाः सन्ति ।

१९. ब्रह्मचारियों को नगर से दूर रहना चाहिये और जूते नहीं पहनने चाहियें।
ब्रह्मचारिणः पुरः दूरं वसेयुः उपानहौ च न धारयेयुः।

२०. मेरी रुचि के लिये माता का भोजन मत बिगाड़।
मम रुच्याः (रुचेः) कृते मातुः भोजनं मा विकार्षीः (मा स्म विकरोः)।

२१. इस नदी में उस परिवार की लड़कियां, बहुएँ, ननदें, और जेठानियां तथा देरानियाँ सब नहायेंगी।
अस्यां सरिति तस्य परिवारस्य दुहितरः, वध्वः, ननान्दरः, यातरः च स्नास्यन्ति (स्नातारः)।

नपुंसकलिङ्ग शब्द

(१) अकारान्त नपुंसकलिङ्ग ज्ञान शब्द

प्र०—ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वि०—ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि

शेष सब विभक्तियों में 'राम' शब्द के समान।

सम्बो० प्र०—हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

इसी प्रकार—मित्र (सखा), फल, घृत, नगर, जल, दुग्ध आदि०!

(२) इकारान्त नपुंसकलिङ्ग वारि शब्द

प्र०—वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०—वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०—वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०—वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
प०—वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
ष०—वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
स०—वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सं. प्र.—हे वारे, वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

(३) इकारान्त नपुंसकलिङ्ग दधि शब्द

प्र०—दधि	दधिनी	दधीनि
द्वि—दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०—दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०—दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
प०—दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
ष०—दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
स०—दध्नि	दध्नोः	दधिषु
सं. प्र.—हे दधे (दधि)	हे दधिनी	हे दधीनि

इसी प्रकार—अस्थि, सक्थि, अक्षि।

(४) उकारान्त नपुंसकलिङ्ग मधु शब्द

प्र०—मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि०—मधु	मधुनी	मधूनि
तृ०—मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०—मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
प०—मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
ष०—मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
स०—मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सं प्र.—हे मधो (मधु)	हे मधुनी	हे मधूनि

इसी प्रकार—जतु, वस्तु, जानु, अश्रु।

(५) तकारान्त नपुंसकलिङ्ग जगत् शब्द

प्र०—जगत्	जगती	जगन्ति
द्वि०—जगत्	जगती	जगन्ति
तृ०—जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०—जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
प०—जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
ष०—जगतः	जगतोः	जगताम्

स०—जगति	जगतोः	जगत्सु
सं. प्र.—हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

(६) नकारान्त नपुंसकलिङ्ग वर्मन्[1] शब्द

प्र०—वर्म	वर्मणी	वर्माणि
द्वि०—वर्म	वर्मणी	वर्माणि
तृ०—वर्मणा	वर्मभ्याम्	वर्मभिः
च०—वर्मणे	वर्मभ्याम्	वर्मभ्यः
प०—वर्मणः	वर्मभ्याम्	वर्मभ्यः
ष०—वर्मणः	वर्मणोः	वर्मणाम्
स०—वर्मणि	वर्मणोः	वर्मसु
सं० प्र०—हे वर्मन्[2] / हे वर्म	हे वर्मणी	हे वर्माणि

इसी प्रकार—कर्मन्, चर्मन्, जन्मन् आदि०।

(७) नकारान्त नपुंसकलिङ्ग नामन् शब्द

प्र०—नाम	नामनी (नाम्नी)	नामानि
द्वि०—नाम	नामनी (नाम्नी)	नामानि
तृ०—नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०—नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्यः
प०—नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः
ष०—नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
स०—नामनि (नाम्नि)	नाम्नोः	नामसु
सं. प्र.—हे नामन् / हे नाम	हे नामनी / हे नाम्नी	हे नामानि

इसी प्रकार—लोमन्, व्योमन्, प्रेमन् आदि०।

नामन्, कर्मन्, वर्मन्, आदि नकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द जब किसी पुँल्लिङ्ग बहुव्रीहि के अन्त्य अवयव होते हैं तो उस शब्द के रूप 'आत्मन्' के समान चलते हैं, जैसे—दृढवर्मा (=दृढं वर्म यस्य सः), कुकर्मा (=कुत्सितानि कर्माणि यस्य सः), द्विकर्मा (=द्वे कर्मणी यस्य धातोः, सः), अग्रजन्मा (अग्रे जन्म यस्य सः), देवेन्द्रनामा (देवेन्द्रः नाम यस्य सः)

(८) इन् (प्रत्यय–) अन्त नपुंसकलिङ्ग मनोहारिन् शब्द

प्र०—मनोहारि	मनोहारिणी	मनोहारीणि
द्वि०—मनोहारि	मनोहारिणी	मनोहारीणि

तृतीयादि विभक्तियों में सब रूप 'करिन् के समान चलेंगे।

(९) सकारान्त नपुंसकलिङ्ग पयस् शब्द

प्र०—पयः	पयसी	पयांसि
द्वि०—पयः	पयसी	पयांसि

तृतीयादि विभक्तियों में 'पयसा पयोभ्याम् पयोभिः' आदि रूप चन्द्रमस् शब्द के समान होंगे।

इसी प्रकार—यशस्, वचस्, मनस्, वयस्, तेजस् आदि०।

पयस्, तेजस् आदि सान्त नपुंसक० शब्द जब किसी पुँल्लिङ्ग बहुव्रीहि के अन्त्य अवयव होंगे तब उस शब्द के रूप सब विभक्तियों में 'चन्द्रमस्' के समान

---

१. कवचवाची 'वर्मन्' शब्द नपुंसक० है। क्षत्रियवाची 'वर्मन्' शब्द पुंल्लिङ्ग है उसके रूप 'आत्मन्' के समान चलेंगे।

२. यद्यपि 'न ङिसम्बुद्धयोः' (अष्टा. ८.२.८) से सम्बोधन की प्रथमा के एकवचन में न् के लोप का प्रतिषेध है तथापि 'वा नपुंसकानामिति वक्तव्यम्' वार्तिक से न् लोप में विकल्प हो जाता है।

चलेंगे। यथा—महत् मनः यस्य सः 'महामनाः', उदाराणि चेतांसि येषां ते 'उदारचेतसः', महत् तमः यस्मिन् सः 'महातमाः' पन्थाः, निर्गतं तेजः यस्मात् सः 'निस्तेजाः' आदि।

(१०) सकारान्त नपुंसकलिङ्ग धनुस् शब्द

प्र०—धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वि०—धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृ०—धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०—धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
प०—धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
ष०—धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
स०—धनुषि	धनुषोः	धनुष्षु
सं० प्र०—हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

इसी प्रकार—आयुस्, चक्षुस्, हविस्, अर्चिस् आदि०।

ओकारान्त उभयलिङ्ग (पुं०, स्त्री०)

गौ शब्द

प्र०—गौः	गावौ	गावः
द्वि०—गाम्	गावौ	गाः
तृ०—गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०—गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
प०—गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
ष०—गोः	गवोः	गवाम्
स०—गवि	गवोः	गोषु
सं० प्र०—हे गौः	हे गावौ	हे गावः

इसी प्रकार—ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्यो शब्द के रूप बनेंगे।

तीनों लिङ्गों में समान युष्मद् शब्द

प्र०—त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०—त्वाम्(त्वा)	युवाम्(वाम्)	युष्मान्(वः)
तृ०—त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०—तुभ्यम्(ते)	युवाभ्याम्(वाम्)	युष्मभ्यम् (वः)
प०—त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०—तव(ते)	युवयोः (वाम्)	युष्माकम्(वः)
स०—त्वयि	युवयोः	युष्मासु

तीनों लिङ्गों में समान अस्मद् शब्द

प्र०—अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०—माम्(मा)	आवाम्(नौ)	अस्मान्(नः)
तृ०—मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०—मह्यम्(मे)	आवाभ्याम् (नौ)	अस्मभ्यम् (नः)
प०—मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०—मम(मे)	आवयोः(नौ)	अस्माकम्(नः)
स०—मयि	आवयोः	अस्मासु

तीनों लिङ्गों में समान कति शब्द

कति शब्द केवल बहुवचनान्त ही प्रयुक्त होता है, यथा—कति पुरुषाः, कति कन्याः, कति फलानि।

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्र०	कति	कति	कति
द्वि०	कति	कति	कति
तृ०	कतिभिः	कतिभिः	कतिभिः
च०	कतिभ्यः	कतिभ्यः	कतिभ्यः
प०	कतिभ्यः	कतिभ्यः	कतिभ्यः
ष०	कतीनाम्	कतीनाम्	कतीनाम्
स०	कतिषु	कतिषु	कतिषु
प्र० सं०	हे कति	हे कति	हे कति

नित्यबहुवचनान्त स्त्रीलिङ्ग अप् शब्द

प्र०—	आपः
द्वि०—	अपः

तृ०—	अद्भिः
च०—	अद्भ्यः
प०—	अद्भ्यः
ष०—	अपाम्
स०—	अप्सु

संख्यावाची एकवचनान्त सर्वनाम एक शब्द

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्र०	एकः	एका	एकम्
द्वि०	एकम्	एकाम्	एकम्
तृ०	एकेन	एकया	एकेन
च०	एकस्मै	एकस्यै	एकस्मै
प०	एकस्मात्	एकस्याः	एकस्मात्
ष०	एकस्य	एकस्याः	एकस्य
स०	एकस्मिन्	एकस्याम्	एकस्मिन्

'एक' शब्द का प्रयोग जहाँ बहुवचनान्त दृष्टिगोचर होता है वहाँ इसका अर्थ 'कुछ' (=कतिपय) होता है—यथा 'एकेषां वैयाकरणानाम् इदं मतम्'—कुछ वैयाकरणों का यह मत है।

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्र०	एके	एकाः	एकानि
द्वि०	एकान्	एकाः	एकानि
तृ०	एकैः	एकाभिः	एकैः
च०	एकेभ्यः	एकाभ्यः	एकेभ्यः
प०	एकेभ्यः	एकाभ्यः	एकेभ्यः
ष०	एकेषाम्	एकासाम्	एकेषाम्
स०	एकेषु	एकासु	एकेषु

जब 'एक' से पहिले अन् (नञ्+नुट्) लगाते हैं और उसका बहुवचनान्त प्रयोग होता है। तब 'अनेके' का अर्थ 'बहुत से' होता है—यथा→'अनेके नैरुक्ताः एवं वदन्ति'—बहुत से निरुक्तकार ऐसा कहते हैं। 'अनेकेषाम् इदं मतम्'—बहुतों का यह मत है। 'अनेकैः धनिकैः अनेकेभ्यः निर्धनेभ्यः अनेकाः शाटिकाः अनेकानि पात्राणि च ददिरे'—बहुत से धनवानों ने बहुत से गरीबों को बहुत सी धोतियाँ और बहुत से बरतन दिये।

असहायवाची 'एक' शब्द के तीनों वचनों में रूप चलेंगे।

इकारान्त नित्यद्विवचनान्त सर्वनाम द्वि शब्द

	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्र०	द्वौ	द्वे	द्वे
द्वि०	द्वौ	द्वे	द्वे
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
प०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
ष०	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः
स०	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः

इकारान्त नित्यबहुवचनान्त त्रि शब्द

	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्र०	त्रयः	तिस्रः	त्रीणि
द्वि०	त्रीन्	तिस्रः	त्रीणि
तृ०	त्रिभिः	तिसृभिः	त्रिभिः
च०	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
प०	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
ष०	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	त्रयाणाम्
स०	त्रिषु	तिसृषु	त्रिषु

रेफान्त नित्यबहुवचनान्त चतुर् शब्द

	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्र०	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
द्वि०	चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
तृ०	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुं०		पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुं०
च०	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः	ष०	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
प०	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः	स०	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु

पञ्चन्, षष्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् तथा एकादशन् से लेकर नवदशन् तक के संख्यावाची शब्दों के रूप नित्य बहुबचनान्त ही होते हैं और तीनों लिङ्गों में एक से ही रहते हैं।

	पञ्चन्	षष्	सप्तन्	अष्टन्	नवन्	दशन्	एकादशन्
प्र०	पञ्च	षट्	सप्त	अष्टौ (अष्ट)	नव	दश	एकादश
द्वि०	पञ्च	षट्	सप्त	अष्टौ (")	नव	दश	एकादश
तृ०	पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः	अष्टाभिः / अष्टभिः	नवभिः	दशभिः	एकादशभिः
च०	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टाभ्यः / अष्टभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः	एकादशभ्यः
प०	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टाभ्यः / अष्टभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः	एकादशभ्यः
ष०	पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	अष्टानाम्	नवानाम्	दशानाम्	एकादशानाम्
स०	पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु	अष्टासु (अष्टसु)	नवसु	दशसु	एकादशसु

इसी प्रकार—द्वादशन् आदि के रूप चलेंगे। एकोनविंशति, विंशति आदि संख्यावाची शब्दों का विषय आगे समझायेंगे।

अभ्यास

१. आज दही के साथ चावल खाने की इच्छा है।
अद्य दध्ना सह ओदनान् भोक्तुम् इच्छामि।

२. भोजन के बाद पानी पीना जहर के समान है=भोजनान्ते विषं वारि।

३. मनुष्य जठराग्नि को बढ़ाने के लिए बार-बार थोड़ी मात्रा में पानी पीवे।
'तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि।'

४. तेरे लिये मैं बढ़िया शहद लाया हूं।
तुभ्यम् अहम् उत्तमं मधु आनैषम् (आनैषि)।

५. इन वस्तुओं को जोड़ने के लिए लाख के टुकड़े ला।
एतेषां वस्तूनां योजनाय जतुनः शकलानि आहर।

६. दिलीप धनुष से गाय की रक्षा न कर सका।
दिलीपः धनुषा गां रक्षितुं न शशाक।

७. बड़े-बड़े काम करने वालों के नाम जगत् में प्रसिद्ध हो जाते हैं।
महतां कर्मणां कर्तृणां नामानि जगति प्रथितानि (विख्यातानि) भवन्ति।

८. क्षत्रिय लोग युद्ध में कवच धारण करते हैं।
वर्माणः युधि वर्माणि प्रतिमुञ्चन्ति ।

९. गाय के दूध में पीलापन होता है=गोः पयसि पीतिमा भवति ।

१०. उषा के लिये पांच फल, चार साड़ियां, तीन लड्डू और दो कपड़े ले आ।
उषायै पञ्च फलानि, चतस्रः शाटिकाः, त्रीन् मोदकान्, द्वौ पटौ च आनय ।

११. हमसे बिछुड़ कर आप कहाँ गये थे ?=अस्मद् वियुज्य भवान् क्व अयासीत् ?

प्रत्यय-प्रकरण

धातुओं से होने वाले प्रत्यय

अब हम प्रत्ययों के विषय में थोड़ा सा समझाते हैं। प्रत्यय मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं। १-धातु से लगने वाले तथा २—शब्द (=प्रातिपदिक, ङ्यन्त और आबन्त) से लगने वाले। धातु से होने वाले प्रत्ययों में से कुछ प्रत्यय ऐसे होते हैं, जिनके लगने पर तदन्त की पुनः धातुसञ्ज्ञा होती है, जैसे—सन्, यङ्, णिच्, णिङ्, यक्, ईयङ् आदि। कुछ इस प्रकार के प्रत्यय हैं, जो धातु से अन्य प्रत्ययों के लगने पर, उन प्रत्ययों से पूर्व लगते हैं, जैसे—शप्, श्यन्, श्नु, श, श्नम्, उ, श्ना, अङ्, स्य, तास्, सिप्, आम्, च्लि, चिण् आदि; इन प्रत्ययों को विकरण कहते हैं। धातु से होने वाले लकार प्रत्ययों (=लट्, लिट् आदि) के स्थान पर जो तिप्, तस्, झि आदि प्रत्यय होते हैं, उन्हें तिङ् प्रत्यय कहते हैं। इन तीनों प्रकार के प्रत्ययों के अतिरिक्त जो प्रत्यय धातु से होते हैं, उन्हें 'कृत्-प्रत्यय' कहा जाता है। कृदतिङ् (अष्टा० ३.१.९३)। उन कृत्-प्रत्ययों में से कुछ मुख्य-मुख्य प्रत्ययों का बोध कराते हैं।

कृत्-प्रत्यय

क्विन्, कञ्, क्स

त्यदादि (=त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्) और समान तथा अन्य इन शब्दों के उपपद में रहने पर अर्थात् पूर्व में साथ लगे रहने पर दृश् (=दृशिर्) धातु से क्विन्, कञ्, तथा क्स ये तीन प्रत्यय, तुल्य अर्थ में होते हैं।[1] क्विन् के क् की इत्सञ्ज्ञा[2] इ की इत्सञ्ज्ञा[3] और न् की इत्सञ्ज्ञा[4] तथा लोप होने पर केवल व् बचा रहता है। उस व् का भी लोप[5] हो जाने पर अर्थात् सर्वापहार लोप हो जाने पर प्रत्यय का कोई अंश शेष नहीं रहता तब अन्त में दृश् रहता है; श् को क् होगा[6]। प्रत्यय के लोप हो जाने पर भी उसके कित्त्व, नित्त्व आदि धर्म पूर्व धातु को प्रभावित करते हैं और गुणवृद्धिनिषेध[7] तथा आद्युदात्तत्व[8] आदि

---

१. त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च (अष्टा.३.२.६०)। 'समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्' (वार्तिक)। 'दृशेः क्सश्च वक्तव्यः' (वार्तिक)। २. लशक्वतद्धिते (अष्टा.१.३.८)
३. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (अष्टा.१.३.२) ४. हलन्त्यम् (अष्टा.१.३.३)
५. वेरपृक्तस्य (अष्टा.६.१.६७) ६. क्विन्प्रत्ययस्य कुः (अष्टा.८.२.६२)
७. क्ङिति च (अष्टा.१.१.५) ८. ञ्नित्यादिर्नित्यम् (अष्टा. ६.१.१९७)

कार्यों में कारण बनते हैं। कञ् प्रत्यय के क् की और ञ् की इत्सञ्ज्ञा तथा लोप हो जाने पर 'अ' शेष रहता है, जो कि दृश् के श् से मिल जाता है और 'दृश' ऐसा रूप रहता है। 'क्स' प्रत्यय के क् की इत्सञ्ज्ञा और लोप होने पर 'स' शेष रहता है। तब 'दृश्' के श् को क्रमशः[1] क् हो जाता है और प्रत्यय के स को ष[2]; फलतः दृक्ष='दृक्ष' स्वरूप बचता है। उपर्युक्त तीनों प्रत्ययों सहित दृश् (दृश्, दृश, दृक्ष) परे रहने पर पूर्व के त्यद् आदि (इदम् और किम् को छोड़कर) शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन द्, त् के स्थान पर 'आ' आदेश होता है।[3] इदम् पूरे के स्थान पर ई और किम् पूरे के स्थान पर की आदेश हो जाता है।[4] 'समान' पूरे के स्थान पर 'स' आदेश होता है।[5] एकत्व में युष्मद् के युष्म के स्थान पर त्व तथा अस्मद् के अस्म के स्थान पर म आदेश होता है।[6]

उपपद+धातु	+क्विन्	+कञ्	+क्स	हिन्दी में अर्थ
त्यद्+दृश्	त्यादृक्	त्यादृशः	त्यादृक्षः	वैसा
तद्+दृश्	तादृक्	तादृशः	तादृक्षः	वैसा
यद्+दृश्	यादृक्	यादृशः	यादृक्षः	जैसा
एतद्+दृश्	एतादृक्	एतादृशः	एतादृक्षः	ऐसा
इदम्+दृश्	ईदृक्	ईदृशः	ईदृक्षः	ऐसा
युष्मद्+दृश्	त्वादृक् युष्मादृक्	त्वादृशः युष्मादृशः	त्वादृक्षः युष्मादृक्षः	तेरे जैसा तुम्हारे जैसा
अस्मद्+दृश्	मादृक् अस्मादृक्	मादृशः अस्मादृशः	मादृक्षः अस्मादृक्षः	मेरे जैसा हमारे जैसा
भवत्+दृश्	भवादृक्	भवादृशः	भवादृक्षः	आप जैसा
किम्+दृश्	कीदृक्	कीदृशः	कीदृक्षः	कैसा
समान+दृश्	सदृक्	सदृशः	सदृक्षः	समान (तुल्य)
अन्य+दृश्	अन्यादृक्	अन्यादृशः	अन्यादृक्षः	दूसरे जैसा

---

१. 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजछशां षः' (अष्टा.८.२.३६) से श् को ष् तथा 'षढोः कः सि' (अष्टा.८.२.४१) से ष् को क्।

२. आदेशप्रत्यययोः (अष्टा.८.३.५९)

३. आ सर्वनाम्नः (अष्टा.६.३.९१)। 'दृक्षे चेति वक्तव्यम्' (वार्त्तिक)।

४. इदंकिमोरीश्की (अष्टा.६.३.९०)

५. दृग्दृशवतुषु (अष्टा.६.३.८९)। 'दृक्षे चेति वक्तव्यम्' (वार्त्तिक)।

६. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (अष्टा.७.२.९८).

ये विशेषण शब्द हैं और तीनों लिङ्गों में इनके रूप चलते हैं। ऊपर के ये सब रूप पुंल्लिङ्ग के हैं। इनमें से त्यादृक्, तादृक् आदि के भूभृत् के समान और त्यादृशः, तादृशः तथा त्यादृक्षः, तादृक्षः आदि के राम के समान, अन्य विभक्तियों तथा वचनों में भी रूप चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में त्यादृक् आदि के 'त्यादृक् त्यादृशी त्यादृंशि' आदि शब्दरूप 'जगत्' शब्द के समान और त्यादृश, त्यादृक्ष आदि के 'त्यादृशं त्यादृशे त्यादृशानि', 'त्यादृक्षं त्यादृक्षे त्यादृक्षाणि' आदि 'ज्ञान' शब्द के समान चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में त्यादृक् आदि के 'शरद्' के समान और त्यादृश (=त्यादृशी) आदि के 'त्यादृशी त्यादृश्यौ त्यादृश्यः' आदि रूप 'गौरी' शब्द के समान तथा त्यादृक्ष (=त्यादृक्षा) आदि के 'त्यादृक्षा त्यादृक्षे त्यादृक्षाः' आदि 'रमा' शब्द के समान चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में भी इनके अर्थ पूर्ववत् होंगे; जैसे स्त्रीलिङ्ग में त्यादृशी=वैसी, कीदृशी=कैसी; यादृक्षा=जैसी, ईदृक्षा=ऐसी आदि।

अभ्यास

१. आप जैसे पण्डित तो कहीं कहीं मिलते हैं।
भवादृशः (भवादृशाः, भवादृक्षाः) पण्डितास्तु क्वचिद् एव लभ्यन्ते।

२. जैसी सत्यवान् की स्त्री सावित्री थी, वैसी स्त्री मिलना कठिन है।
यादृक् (यादृशी, यादृक्षा) सत्यवतः स्त्री सावित्री बभूव, तादृक् (तादृशी, तादृक्षा) स्त्री दुर्लभा खलु।

३. जैसे कार्य तू कर सकता है, वैसे कोई दूसरा नहीं कर सकता।
यादृंशि (यादृशानि, यादृक्षाणि) कर्माणि त्वं कर्त्तुं शक्नोषि, न तादृंशि (तादृशानि, तादृक्षाणि) कश्चिद् अन्यः कर्त्तुं शक्नोति।

४. जैसी तेरी पण्डिताई है, वैसी मेरे गुरु जी की दसगुनी है।
यादृक् (यादृशं, यादृक्षं) तव पाण्डित्यम् अस्ति, तादृक् (तादृशं, तादृक्षं) मम गुरोः दशगुणं खलु।

५. इतना क्यों रो रहा है? और कैसे आम लाऊँ तेरे लिये?
कथम् इत्थं रोदिषि? अन्यानि कीदृंशि (कीदृशानि, कीदृक्षाणि) आम्रफलानि आनयानि (आनयेयम्) तुभ्यम्।

६. इन दो लड़कियों में उषा पढ़ने में कैसी है?
एतयोः बालयोः उषा कीदृक् (कीदृशी, कीदृक्षा) पठने?

७. मेरे जैसों के लिये कोई रहस्य छिपा नहीं है।
मादृशां (मादृशानां, मादृक्षाणां) कृते नास्ति तिरोहितं किमपि रहस्यम्।

८. ऐसे सज्जन पुरुष किसी को नहीं ठगते।
एतादृशः (एतादृशाः, एतादृक्षाः) साधिष्ठाः जनाः न कमपि वञ्चयन्ति।

९. मेरे पास ऐसे आवश्यक कार्य बहुत हैं।
ईदृंशि (ईदृशानि, ईदृक्षाणि) भूयांसि अनतिक्रमणीयानि कार्याणि मां प्रत्यासीदन्ति ।

१०. वैसे मार्ग से जाइये, जिसमें किसी प्रकार का भय न हो।
त्यादृशा (त्यादृशेन, त्यादृक्षेण; तादृशा, तादृशेन, तादृक्षेण) पथा गच्छत यादृशि (यादृशे, यादृक्षे) कीदृक् (कीदृशं, कीदृक्षं) अपि भयं न स्यात् ।

११. जैसी शीतला देवी वैसी ही गधा सवारी (जैसे मुंह वैसे थप्पड़) ।
'यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः' ।

१२. तेरा जैसा भतीजा और मेरा जैसा चाचा दूसरा नहीं है।
त्वादृक् (त्वादृशः, त्वादृक्षः) भ्रातृजः मादृक् (मादृशः, मादृक्षः) च पितृव्यः अन्यः नास्ति ।

१३. हमारे जैसे छात्रों के लिये सस्ती पुस्तकें छापी जानी चाहियें।
अस्मादृशां (अस्मादृशानां, अस्मादृक्षाणां) छात्राणां कृते अल्पमूल्यानि पुस्तकानि मुद्राप्यन्ताम् ।

१४. आप जैसे विद्वान् ही भारत की शोभा हैं।
भवादृशः (भवादृशाः, भवादृक्षाः) विपश्चितः एव भारतस्य शोभाः सन्ति ।

१५. तुम जैसे लोगों ने ही सोने के गहनों में जड़ने योग्य मणियों को कतीर में फिट किया है।
युष्मादृशः (युष्मादृशाः, युष्मादृक्षाः) जनाः एव कनकभूषणसङ्ग्रहणोचितान् मणीन् त्रपुषि प्रत्यबध्नन् ।

१६. गावस्कर जैसे बल्लेबाज संसार में बहुत कम हैं।
गावस्करस्य (गावस्करेण) सदृशः (सदृशाः, सदृक्षाः) दण्डपट्टक्रीडकाः भुवि विरलाः सन्ति ।

१७. धोने पर तो ये कपड़े दूसरे से ही हो गये।
प्रक्षालितानि तु एतानि वस्त्राणि अन्यादृंशि (अन्यादृशानि, अन्यादृक्षाणि) एव समवर्त्तिषत ।

क्त्वा प्रत्यय

एक ही कर्त्ता के द्वारा अनवरत की जा रही दो क्रियाओं में से पूर्वकाल की क्रियावाली धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।[1] यथा—'देवेन्द्र नहा कर खाता है'

---

१. समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले (अष्टा० ३.४.२१)

यहाँ देवेन्द्र-कर्त्ता द्वारा दो क्रियाएँ—'नहाना और खाना' की जा रही हैं। इनमें से 'नहाना' पूर्वकाल की और 'खाना' उत्तरकाल की क्रिया है। पूर्वकाल की नहाना (=स्नान) क्रिया की स्ना धातु से क्त्वा प्रत्यय होगा—देवेन्द्रः स्नात्वा भक्षयति। यह क्त्वा प्रत्यय धातुमात्र से होता है। क्त्वा में से क् की इत्संज्ञा-लोप होने पर त्वा शेष रहता है। सेट् धातुओं से जब क्त्वा होता है तो त्वा (=क्त्वा) से पहिले इ (=इट्) हो जाता है[1] जैसे 'पठित्वा'। अनिट् धातुओं से त्वा (=क्त्वा) होने पर त्वा वैसा ही रहेगा जैसे 'स्नात्वा'।

निषेधवाची 'अलम्' और 'खलु' अव्यय यदि उपपद में होते हैं तो धातुमात्र से सामान्य रूप से (अर्थात् बिना पूर्वकाल या उत्तरकाल का विचार किये) क्त्वा (=त्वा) प्रत्यय होता है।[2] यथा—'अलं स्नात्वा=मत स्नान कर, 'अलं पठित्वा= मत पढ़', 'खलु पीत्वा=मत पी', 'खलु भुक्त्वा=मत खा' आदि। अथवा—'पीत्वा खलु, स्नात्वा अलम्' आदि के रूप में प्रयोग होगा तब भी वही निषेध अर्थ होगा। यदि सुशोभित करने के अर्थ में 'अलम्' अव्यय होगा, तब तो पूर्ववत् पूर्वकालवर्ती क्रिया के वाचक धातु से ही क्त्वा (=त्वा) प्रत्यय होगा और 'अलम्' की 'गति' सञ्ज्ञा होगी[3]। फलस्वरूप गतिसमास (तत्पुरुष का भेद) होगा।[4] समास होने के कारण त्वा (=क्त्वा) के स्थान पर ल्यप् (=य) हो जायेगा[5]। ल्यप् (=य) से पूर्व वाली धातु यदि ह्रस्व होगी तो उसके अन्त में त् (=तुक्) लग जायेगा[6]। 'अलङ्कृत्य मे गेहम् अनुगृह्णातु भवान् माम्'=मेरे घर को सुशोभित करके आप मुझे अनुगृहीत करें। उपसर्ग-पूर्वक धातु से क्त्वा होने पर भी पूर्ववत् समास होने पर क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होगा[5]। धातु सेट् हो या अनिट्, त्वा के स्थान पर ल्यप् (=य) हो जाने पर इट् आगम नहीं होगा क्योंकि वल् प्रत्याहार में 'य' नहीं आता। पठित्वा, सम्पठ्य। स्नात्वा, प्रस्नाय। जित्वा, विजित्य। नञ् अव्यय यदि क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द के पूर्व में आयेगा तो त्वा के स्थान पर ल्यप् नहीं होगा[5]। पठित्वा=पढ़कर, अपठित्वा =बिना पढ़े। 'इदम् औषधं माम् अनुक्त्वा खलु भुक्त्वा'=यह दवाई मुझे बिना बताये मत खाना। क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द अव्यय हो जाते हैं[7]। अतः उनके रूप नहीं चलते। अब हम कुछ धातुओं के साथ क्त्वा प्रत्यय लगाकर उनका स्वरूप बताते हैं।

---

१. आर्धधातुकस्येड् वलादेः (अष्टा० ७.२.३५)
२. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा (अष्टा. ३.४.१८)
३ भूषणेऽलम् (अष्टा. १.४.६४)
४. कुगतिप्रादयः (अष्टा. २.२.१८)
५. समासे ऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् (अष्टा. ७.१.३७)
६. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (अष्टा. ६.१.७१)
७. क्त्वातोसुन्कसुनः (अष्टा. १.४.४०)

गम् + क्त्वा	= गत्वा	जाकर
नम् ,,	= नत्वा	प्रणाम करके
भृ ,,	= भृत्वा	भरकर (धारण पोषण करके)
भू ,,	= भूत्वा	होकर
यज् ,,	= इष्ट्वा	यज्ञ करके
पच् ,,	= पक्त्वा	पकाकर
पिष् ,,	= पिष्ट्वा	पीसकर
दृश् ,,	दृष्ट्वा	देखकर
घृष् ,,	घृष्ट्वा	घिसकर
दा ,,	दत्त्वा	देकर
हा ,,	हित्वा	छोड़कर
ज्ञा ,,	ज्ञात्वा	जानकर
स्ना ,,	स्नात्वा	नहाकर
स्था ,,	स्थित्वा	ठहरकर
श्रु ,,	श्रुत्वा	सुनकर
कृ ,,	कृत्वा	करके
बध् ,,	बद्ध्वा	बांधकर
बुध् ,,	बुद्ध्वा	जानकर
मुच् ,,	मुक्त्वा	छोड़कर
छिद् ,,	छित्त्वा	काटकर
भिद् ,,	भित्त्वा	फोड़कर
रुध् ,,	रुद्ध्वा	रोककर
स्वप् ,,	सुप्त्वा	सोकर
दह् + ,,	दग्ध्वा	जलाकर
लिह् ,,	लीढ्वा	चाटकर
वह् ,,	ऊढ्वा	ढोकर
वप् ,,	उप्त्वा	बोकर / काटकर
वच् ,,	उक्त्वा	कहकर
प्रच्छ् ,,	पृष्ट्वा	पूछकर
युध् ,,	युद्ध्वा	युद्ध करके
वस् ,,	उषित्वा	रहकर
खाद् ,,	खादित्वा	खाकर
लिख् ,,	लिखित्वा[1] / लेखित्वा	लिखकर
चल् ,,	चलित्वा	चलकर
भ्रम् ,,	भ्रमित्वा / भ्रान्त्वा	घूमकर
अट् ,,	अटित्वा	घूमकर
विद् ,,	विदित्वा	जानकर
रुद् ,,	रुदित्वा	रोकर
शी ,,	शयित्वा	सोकर
याच् ,,	याचित्वा	मांगकर
ग्रह् ,,	गृहीत्वा	लेकर
पठ् ,,	पठित्वा	पढ़कर
हस् ,,	हसित्वा	हसकर
चुर् ,,	चोरयित्वा	चुराकर
भक्ष् ,,	भक्षयित्वा	खाकर

अभ्यास

१. कार्य करके जल्दी आ = कार्य कृत्वा सत्वरम् आगच्छ ।

२. बिना कार्य किये कैसे आ गया = कथम् अकृत्वा कार्यम् आगमः (आगच्छः) ?

३. गुरुओं को प्रणाम करके पढ़ = गुरून् नत्वा पठ ।

४. गुरु को बिना प्रणाम किये क्यों पढ़ता है ? = कथम् अनत्वा गुरुं पठसि ?

---

१. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च (अष्टा. १.२.२६) से क्त्वा को विकल्प से किद्वद्भाव ।

५. आगे होकर पीछे हटना विजय का चिह्न नहीं है।
अग्रे भूत्वा पृष्ठतः गमनं न विजयलक्षणम्।

६. बिना पढ़े कोई विद्वान् नहीं बनता—अपठित्वा न कश्चिद् विपश्चित् जायते।

७. बदबू भरे स्थान पर मत जा—अलं गत्वा (खलु गत्वा) दुर्गन्धि-स्थलम्)।

८. देवेन्द्र कपूर बिना यज्ञ किये नहीं खाता।
देवेन्द्रकपूर-महोदयः अनिष्ट्वा न भुङ्क्ते।

९. हम बिना लड़े नहीं जीतेंगे।—न वयम् अयुद्ध्वा विजेष्यामहे।

१०. अधिक रोटी मत बना—अलं बहुरोटिकाः पक्त्वा।

११. पाठ सुनकर और उसका अर्थ जानकर फिर आगे बढ़ो।
पाठं श्रुत्वा तस्य अर्थं च विदित्वा पुनः अग्रे वर्धध्वम्।

१२. नारियल को फोड़कर, गिरी को काटकर इस पाक में डाल।
नारिकेलं भित्त्वा तद्गर्भं छित्त्वा अस्मिन् पाके पातय।

१३. यह भिक्षुक राहगीर को रोककर और उससे कुछ मांगकर ही संतुष्ट होता है।
अयं भिक्षुकः पथिकं रुद्ध्वा तं च किञ्चिद् याचित्वा एव सन्तुष्यति।

१४. महेन्द्र महीना भर मेरे घर में रहकर गया
महेन्द्रः मासं मे गेहे उषित्वा अगमत् (अगच्छत्)।

१५. सन्ध्या समय में मत सो—अलं सन्ध्यावेलायां सुप्त्वा।

१६. जागकर रात मत बिता—असुप्त्वा यामिनीं मा यीयपः (मा स्म यापयः)।

१७. वैराग्नि बिना कुलों को जलाये शांत नहीं होती।
वैराग्निः अदग्ध्वा कुलानि न शाम्यति।

१८. मुझसे बिना पूछे इस पेड़ को मत जलाना।
अपृष्ट्वा माम् अलम् इमम् अनोकहं दग्ध्वा।

१९. इस चटनी को बिना चाटे और बिना सूंघे इसके गुण कैसे बताऊँ?
अलीढ्वा अनाघ्राय च इमम् अवलेहं कथम् अस्य गुणान् वर्णयानि?

२०. भार वहन करके तू थक गया है, इन दुष्टों का भार मत उठा।
भारम् ऊढ्वा त्वं श्रान्तः असि, अलम् ऊढ्वा एषां खलानां भारम्।

२१. बिना बीज बोये फल कौन खाता है—अनुप्त्वा बीजानि कः फलम् अश्नाति।

२२. अधिष्ठाता जी से पूछकर बाहिर जाना, बिना पूछे जाने वाला दण्ड पाता है।
अधिष्ठातृमहोदयं पृष्ट्वा बहिर् गच्छ, अपृष्ट्वा गन्ता दण्डभाक् भवति।

२३. गन्दे सिनेमे देखकर मत बिगड़, इनको बिना देखे मर नहीं जायेगा।
दूषितानि चलचित्राणि दृष्ट्वा विकृतो मा भूः (मा स्म भवः), अदृष्ट्वा एतानि न मरिष्यसि (न मर्तासि)।

२४. मसाला पीसकर उसे घी में भूनकर शाक छौंक।
उपस्करं पिष्ट्वा तं सर्पिषि भृष्ट्वा शाकं भावय।

२५. नहाकर, चन्दन घिसकर, माथे पर लगा।
स्नात्वा, मलयजं घृष्ट्वा अलिके कलय तत्।

२६. कुछ लोग दान दिये बिना नहीं खाते।
केचन अदत्त्वा दानं न अश्नन्ति।

२७. नशेबाजों को दान मत दे=मादकिभ्यः अलं (खलु) दानं दत्त्वा।

२८ इस बालक को बहनोई के घर शीघ्र छोड़कर आ।
इमं बालकम् आवुत्तस्य गेहे हित्वा सत्वरम् आयाहि।

२९. काले घोड़ों को घुड़साल में बांधकर, दूब का गट्ठर ला ?
कृष्णान् तुरगान् मन्दुरायां बद्ध्वा, हरिताभारम् आनय ?

३०. चन्द्रिका अपने जूड़े में लाल फूल बिना बाँधे कैसे जायेगी ?
चन्द्रिका स्वचूडापाशे कुरवकम् अबद्ध्वा कथं यास्यति ?

३१. बोलने वाले के अभिप्राय को समझकर उत्तर दो ?
वक्तुः अभिप्रायं बुद्ध्वा उत्तरं देहि।

३२. बिना जाने जल में प्रवेश मत कर=खलु प्रविश्य जलम् अज्ञात्वा (मा प्रविक्षः)

३३. हम पांच दिन जयपुर ठहरकर भी बिना आमेर देखे लौट आये।
वयं पञ्च दिवसान् यावत् जयपुरे स्थित्वा अपि अदृष्ट्वैव आमेरं प्रत्यावर्त्तिष्महि।

३४. तरबूजे खाकर पानी पीने से हैजा हो जाता है।
सेटुफलानि भुक्त्वा जलपानेन विषूचिका जायते।

३५. तीन पत्र लिखकर, बकरी को छोड़कर बाजार जाऊँगा ?
त्रीणि पत्राणि लिखित्वा (लेखित्वा) अजां मुक्त्वा विपणिं यास्यामि।

३६. बिना चले, कोई एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकता।
अचलित्वा कश्चिदपि स्थानात् स्थानान्तरं गन्तुं न शक्नोति।

३७. भोजन के बाद भ्रमण करके धातुपाठ याद कर।
भोजनानन्तरं भ्रमित्वा (भ्रान्त्वा) धातुपाठं स्मर।

३८. पृथ्वी का भ्रमण करके ही मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है।
अवनीम् अटित्वा एव मानवः ज्ञानम् आप्नोति।

३९. यदि हरे वृक्ष काटकर कोई स्वर्ग जाता है तो नरक कौन जायेगा।
यदि सरसान् पादपान् छित्त्वा कश्चित् स्वर्गं यास्यति तर्हि नरकं कः यास्यति ?

४०. बिना रोये मां से भी कोई दूध नहीं पाता।
अरुदित्वा कश्चित् मातुः सकाशात् अपि क्षीरं न विन्दते।

४१. गुरुकुल के लिये धन मांगकर कब तक काम चलाओगे ?
गुरुकुलाय धनं याचित्वा कियत्कालावधि कार्यं साधयिष्यथ ?

४१. पराया धन मत ले—अलं (खलु) परवित्तं गृहीत्वा ।

४३. मन को रोककर संयम का अभ्यास कर—मनः रुद्ध्वा संयमं शीलय ।

४४. पंखे के नीचे सोकर देख, मच्छर बिल्कुल नहीं खायेंगे ?
विद्युद्व्यजनस्य नीचैः शयित्वा अनुभव, मशकाः न दङ्क्ष्यन्ति ।

४५. फोक को छोड़कर सार भाग को ग्रहण करना चाहिये ?
'सारं ततो ग्राह्यम् अपास्य फल्गु' ?

४६. इन बरतनों को मांजकर जल से भर ।
इमानि पात्राणि मृष्ट्वा वारिणा पूरय ।

४७. वह चोर सब गहने चुराकर भाग गया ।
सः स्तेनः सर्वाणि आभूषणानि चोरयित्वा पलायत (पलायिष्ट)

४८. इतने सारे ग्रन्थ रचकर के भी वह लेखक भूखों मरा ?
एतावतः भूयसः ग्रन्थान् रचयित्वा अपि सः लेखकः क्षुधा अपीडचत ?

४९. गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन मत कर—अलम् लङ्घयित्वा गुरोः आदेशम् ।

५०. तू युद्ध में प्राण त्याग करके स्वर्ग को प्राप्त होगा या जीतकर पृथ्वी को भोगेगा ।
त्वं युद्धे प्राणान् त्यक्त्वा स्वर्गम् आप्स्यसि जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

५१ बिना खाये मेरे घर से मत जाना—खलु गत्वा मम गृहाद् अभुक्त्वा ।

ल्युट् प्रत्यय

ल्युट् प्रत्यय मुख्य रूप से भाव में होता है[1] । कहीं कहीं करण, अधिकरण आदि कारकों में भी होता है[2] । धातुमात्र से यह प्रत्यय होता है । 'ल्युट्' में से ल् और ट् की इत्सञ्ज्ञा[3] और लोप हो जाने पर 'यु' शेष रहता है । उस 'यु' के स्थान पर 'अन' आदेश हो जाता है[4] । यदि धातु के अन्त में इ, उ, ऋ आदि हों, तो उनके स्थान पर गुण[5] (ए, ओ, अर्) होकर उन गुणों के स्थान पर (=ए के स्थान पर) अय् और

---

१. ल्युट् च (अष्टा. ३. ३. ११५)
२. करणाधिकरणयोश्च (अष्टा. ३. ३. ११७)
कृत्यल्युटो बहुलम् (अष्टा. ३. ३. ११३)
३. लशक्वतद्धिते (अष्टा. १. ३. ८); हलन्त्यम् (१. ३. ३)
४. युवोरनाकौ (अष्टा. ७. १. १)
५. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (अष्टा. ७. ३. ८४)

(=ओ के स्थान पर) अव् आदेश हो जाता है[1]। यदि धातु की उपधा में ह्रस्व इ, उ, ऋ होगा तो केवल गुण[2] (=ए, ओ, अर्) होगा। भाव में ल्युट्-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिङ्ग वाला होगा[3] और उसके रूप ज्ञान के समान चलेंगे। अब कुछ धातुओं का ल्युट् (=अन) प्रत्ययान्त स्वरूप बताते हैं

गम्+ल्युट्	(अन)=	गमनम्	जाना	स्तु+ल्युट्	(अन)=	स्तवनम्	स्तुति करना
पठ्+ल्युट्	(अन)=	पठनम्	पढ़ना	श्रु	,,	श्रवणम्	सुनना
हस्	,,	हसनम्	हँसना	लू	,,	लवनम्	काटना
याच्	,,	याचनम्	मांगना	स्मृ	,,	स्मरणम्	याद करना
चि	,,	चयनम्	चुनना	कृ	,,	करणम्	करना
नी	,,	नयनम्	लेजाना	हृ	,,	हरणम्	हरण करना
आङ्+नी	,,	आनयनम्	लाना	नि+गॄ	,,	निगरणम्	निगलना
शी	,,	शयनम्	सोना	लिख्	,,	लेखनम्	लिखना
स्था	,,	स्थानम्	ठहरना	छिद्	,,	छेदनम्	काटना
दा	,,	दानम्	देना	भिद्	,,	भेदनम्	फोड़ना
गा	,,	गानम्	गाना	दृश्	,,	दर्शनम्	देखना

इसी प्रकार अन्य धातुओं से भी ल्युट् प्रत्यय होगा।

प्र०—गमनम्	गमने	गमनानि	प०—गमनात्	गमनाभ्याम्	गमनेभ्यः
द्वि०—गमनम्	गमने	गमनानि	ष०—गमनस्य	गमनयोः	गमनानाम्
तृ०—गमनेन	गमनाभ्याम्	गमनैः	स०—गमने	गमनयोः	गमनेषु
च०—गमनाय	गमनाभ्याम्	गमनेभ्यः	सं० प्र०—हे गमन	हे गमने	हे गमनानि

ल्युट्-प्रत्ययान्त शब्दों के कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है[4]। यथा—मम गृहस्य गमनं गुरवे न रोचते=मेरा घर जाना गुरु जी को अच्छा नहीं लगता।

अभ्यास

१. उसके आने में कितनी देर है?=तस्य आगमने कियान् विलम्बः?

२. गुरु के आने से पहिले पाठ याद करो=गुरोः आगमनात् प्राक् पाठं स्मरत।

३. संस्कृत पढ़ने से यही बड़ा लाभ है कि अपनी संस्कृति का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि हमारे सब शास्त्र संस्कृत में हैं।

---

१. एचोऽयवायावः (अष्टा. ६. १. ७८)

२. पुगन्तलघूपधस्य च (अष्टा. ७. ३. ८६)

३. भावे ल्युडन्तः (लिङ्गानुशासन, नपुं० २.)

४. कर्तृकर्मणोः कृति (अष्टा. २. ३. ६५)

संस्कृतस्य पठनेन अयम् एव महान् लाभः, यत् स्वसंस्कृतेः ज्ञानं भवति, यतः अस्माकं सर्वाणि शास्त्राणि संस्कृतभाषायां रचितानि सन्ति॥

४. वह मेरे याद करते ही आ गया—सः मम स्मरणमात्रेण एव आगमत्।

५. वन में रोने से कोई लाभ नहीं—अलम् अरण्यरोदनेन[1]।

६. भैंस के आगे बीन बजाना फिजूल है—कृतं[2] महिष्याः अग्रे वीणावादनेन।

७. अन्धे के आगे रोने से आंखों के बिगाड़ के सिवाय कुछ नहीं मिलता।
अन्धस्याग्रे रोदनेन ऋते नयनहानेः न किञ्चिद् उपलभ्यते।

८. बाल की खाल मत निकाल—अलं केशत्वमुत्पाटनैः।

९. मेरा सिनेमा जाना मातापिता को अच्छा नहीं लगता।
मम चलचित्रगृहस्य गमनं पितृभ्यां न रोचते।

१०. आपका संस्कृत बोलना सबको अच्छा लगता है।
भवतः संस्कृतस्य सम्भाषणं सर्वेभ्यः रोचते।

११. पिसे हुए को पीसने से भी रस मिलता है, क्यों मुझे रोकता है?
पिष्टपेषणेन अपि रसनिष्पत्तिः भवति, कथं मां वारयसि?

१२. वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सबका परम धर्म है।
वेदस्य पठनं, पाठनं, श्रवणं श्रावणं च सर्वेषां परमधर्मः अस्ति।

१३. ईश्वर की स्तुति करने से और अच्छे आचरण से मुक्ति होती है।
ईश्वरस्य स्तवनेन सदाचरणेन च मुक्तिः जायते।

१४. लेना अप्रीति का और देना प्रीति का कारण है।
'आदानम् अप्रियकरं दानं च प्रियकारकम्'[3]।

१५. पराये माल का हरण करना और मांगना दोनों ही अपमानजनक हैं।
परवित्तस्य हरणं याचनं च उभे अपि अवमानकरे स्तः।

१६. इसके सोना, उठना, बैठना, खाना, पीना और घूमना आदि सब काम अनियमित हैं।
अस्य शयनं जागरणम् उपवेशनम् अशनं पानं भ्रमणादीनि च सर्वाणि कर्माणि अनियमितानि सन्ति।

१७. काटने, तपाने और गलाने आदि से सोने की चमक बढ़ती ही है।
छेदनेन प्रतापनेन गालनेन च हेम्नः कान्तिः वर्धते एव।

---

१. ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द के साथ 'अलम्' अव्यय हो तो वहाँ निषेध अर्थ लक्षित होता है।
२. यहाँ जो 'कृतम्' शब्द है वह अव्यय है, क्त-प्रत्ययान्त नहीं।
३. मनुस्मृति ७. २०४.

शतृ और शानच् प्रत्यय

वर्तमान काल में धातु से जो लट् प्रत्यय होता है, उसके स्थान पर शतृ और शानच् ये दो प्रत्यय आदेश रूप में होते हैं[1]। शतृ और शानच् इन दोनों को 'सत्' सञ्ज्ञा से भी पुकारते हैं[2]। भविष्यत् काल में धातु से होने वाले लृट् प्रत्यय के स्थान पर भी शतृ और शानच् विकल्प से होते हैं[3]। 'शतृ' प्रत्यय की परस्मैपद सञ्ज्ञा है[4] और 'शानच्' प्रत्यय की आत्मनेपद सञ्ज्ञा है[5]। जिन धातुओं से अन्य (तिप् तस झि आदि) परस्मैपद प्रत्यय होते हैं उन्हीं से 'शतृ' प्रत्यय होता है[6] तथा जिनसे अन्य (त आताम् झ आदि) आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं उन्हीं धातुओं से 'शानच्' प्रत्यय होता[7] है। सीधी भाषा में यों कहना चाहिए कि परस्मैपदी धातुओं से शतृ प्रत्यय और आत्मनेपदी धातुओं से शानच् प्रत्यय होता है। तथा उभयपदी धातुओं से शतृ और शानच् दोनों होते हैं। जैसे तिप्, तस् आदि अथवा त, आताम् आदि प्रत्यय परे रहने पर धातु से विभिन्न विकरण (शप् आदि) होते हैं वैसे ही लट्-स्थानीय शतृ तथा शानच् परे हों तब भी धातुओं से उसी प्रकार विकरण लगते हैं। तिप्, तस् आदि में जिस गण की धातु से जो विकरण लगता है वही विकरण शतृ तथा शानच् प्रत्यय परे रहने पर भी लगेगा। जैसे भ्वादिगणीय धातु से शप्, दिवादि० से श्यन्, स्वादि० से श्नु आदि०। लट् आदि के स्थान पर जब तिप् आदि प्रत्यय होते हैं तो तदन्त (=भवति, भवतः, भवन्ति आदि) शब्द क्रियाशब्द (=आख्यात) कहलाते हैं किन्तु जब लट् या लृट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं तो शतृप्रत्ययान्त और शानच्-प्रत्ययान्त शब्द, विशेषण शब्द कहलाते हैं। इनके विशेष्य के अनुसार लिङ्ग आदि होते हैं तथा इनसे सुप् (सु औ जस् आदि) प्रत्यय होते हैं, अतः सातों विभक्तियों में उनके रूप चलते हैं।

शतृ के श् तथा ऋ की इत्सञ्ज्ञा और लोप[8] होने पर 'अत्' भाग शेष रहता है। 'शानच्' के श् और च्[9] की इत्सञ्ज्ञा-लोप होने पर 'आन' शेष रहता है।

---

१. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे (अष्टा० ३.२.१२४); सम्बोधने च (अष्टा० ३.२.१२५)
२. तौ सत् (अष्टा० ३.२.१२७)
३. लृटः सद्वा (अष्टा० ३.३.१४)
४. ल परस्मैपदम् (अष्टा० १.४.९९)
५. तङानावात्मनेपदम् (अष्टा. १.४.१००)
६. शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम् (अष्टा. १.३.७८)
७. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (अष्टा. १.३.१२)
८. लशक्वतद्धिते (अष्टा. १.३.८); उपदेशेऽजनुनासिक इत् (अष्टा. १.३.२); तस्य लोपः (अष्टा. १.३.९)
९. हलन्त्यम् (अष्टा. १.३.३)

शतृप्रत्ययान्त शब्द के रूप पुँल्लिङ्ग में प्रायः 'भवत्' (=आप-वाचक) के समान चलते हैं किन्तु प्रथमा-एकवचन में दीर्घ नहीं होता। स्त्रीलिङ्ग में नदी के तुल्य[1] तथा नपुंसकलिङ्ग में 'जगत्' के तुल्य रूप बनते हैं। किन्तु जगत् की प्रथमा-द्वितीया के द्विवचनों में नुम् (=न्) नहीं होता, जबकि शतृप्रत्ययान्त शब्दों में कुछ में नुम् होता है और कुछ में नहीं। शतृ में स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग में नुम् करने वाले दो सूत्र हैं—'शप्श्यनोर्नित्यम्', 'आच्छीनद्योर्नुम्' (अष्टा. ७.१.८१; ८०)। शप् विकरण, भ्वादि तथा चुरादि गण की धातुओं से और ण्यन्त, सन्नन्त आदि धातुओं से होता है। श्यन् विकरण दिवादिगणीय धातुओं से होता है। अतः भ्वादि., दिवादि., चुरादि., ण्यन्त और सन्नन्त आदि धातुओं से जो शतृ प्रत्यय होता है, तदन्त शब्दों को (अर्थात् तब शतृ=अत् को) स्त्रीलिङ्ग में सर्वत्र और नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया के द्विवचन में नुम् (=न्) अवश्य होगा[2] तथा नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन में भी नुम् होगा[3]। और अदादिगणीय आकारान्त धातुओं और तुदादिगणीय धातुओं के प्रसङ्ग में शतृ को विकल्प से नुम् होगा[4]। पुल्लिङ्ग में जुहोत्यादिगणीय धातुओं को और अदादिगण की जक्ष इत्यादि सात धातुओं को छोड़कर शेष सब धातुओं के शतृ को प्रथमा के तीनों वचनों में और द्वितीया के एकवचन-द्विवचन में नित्य नुम् होगा[5]। अभ्यस्त-सञ्ज्ञक (जुहोत्यादिगणीय तथा जक्ष इत्यादि सात) धातुओं के शतृ को पुँल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में कहीं नुम् नहीं होगा[6] किन्तु नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में विकल्प से नुम् आगम होगा[7]।

किसी धातु से शतृप्रत्ययान्त शब्द बनाने का सीधा सा उपाय यह है कि जिस धातु का, लट् लकार के प्रथम० के एकवचन में जो रूप बनता है उसका 'ति' भाग हटाकर उसके स्थान पर 'त्' लगा दो और नुम् की ऊपर लिखे अनुसार योजना कर दो। यथा—भू धातु का लट् (प्र. ए.) में—'भवति' बनता है, तो भू का शतृप्रत्यान्त शब्द 'भवत्' बना यह नपुंसकलिङ्ग में बना, पुँल्लिङ्ग में 'भवन्'[8] तथा स्त्रीलिङ्ग में 'भवन्ती'[9] बनेगा।

---

१. शतृप्रत्ययान्त शब्द उगित् होता है अतः 'उगितश्च' (अष्टा. ४.१.६) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् (=ई) प्रत्यय होता है और तब वह ईकारान्त शब्द बन जाता है।

२. शप्श्यनोर्नित्यम् (अष्टा. ७.१.८१) ३ नपुंसकस्य झलचः (अष्टा. ७.१.७२)

४. आच्छीनद्योर्नुम् (अष्टा. ७.१.८०) ५. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (७.१.७०)

६. नाभ्यस्ताच्छतुः (अष्टा. ७.१.७८) ७. वा नपुंसकस्य (अष्टा. ७.१.७९)

८. यहां 'भवन्' का अर्थ 'होता हुआ' यह है। आपवाचक 'भवत्' शब्द का 'भवान्' बनेगा वहां 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (अष्टा. ६.४.१४) से दीर्घ होगा।

९. 'भवन्ती' का अर्थ 'होती हुई' है। आपवाचक भवत् के स्त्रीलिङ्ग में 'भवती' बनेगा।

शतृप्रत्ययान्त और शानच् प्रत्ययान्त (वर्तमानकालिक) शब्दों का अर्थ होता है– जाता हुआ, खाता हुआ, सोता हुआ आदि।

भविष्यत्कालिक शतृ-शानच्-प्रत्ययान्त का अर्थ—जानेवाला, खानेवाला, सोनेवाला आदि होता है।

अब हम कुछ धातुओं के शतृप्रत्ययान्त स्वरूप तीनों लिङ्गों में दर्शाते हैं—

			पुंल्लिङ्ग		स्त्रीलिङ्ग		नपुंसकलिङ्ग	
धातु	+	शतृ	लट्स्थानीय,	लृट्स्थानीय	लट्स्थानीय,	लृट्स्थानीय	लट्स्थानीय,	लृट्स्थानीय
क्रीड्	+	शतृ	क्रीडन्,	क्रीडिष्यन्	क्रीडन्ती,	क्रीडिष्यन्ती क्रीडिष्यती	क्रीडत्,	क्रीडिष्यत्
पत्		"	पतन्	पतिष्यन्	पतन्ती,	पतिष्यन्ती पतिष्यती	पतत्,	पतिष्यत्
पठ्		"	पठन्,	पठिष्यन्	पठन्ती,	पठिष्यन्ती पठिष्यती	पठत्,	पठिष्यत्
गम्		"	गच्छन्,	गमिष्यन्	गच्छन्ती,	गमिष्यन्ती गमिष्यती	गच्छत्,	गमिष्यत्
हस्		"	हसन्,	हसिष्यन्	हसन्ती,	हसिष्यन्ती हसिष्यती	हसत्,	हसिष्यत्
		"	भवन्,	भविष्यन्	भवन्ती,	भविष्यन्ती भविष्यती	भवत्,	भविष्यत्
दा (दाण्)		"	यच्छन्,	दास्यन्	यच्छन्ती,	दास्यन्ती दास्यती	यच्छत्,	दास्यत्
खाद्		"	खादन्	खादिष्यन्	खादन्ती,	खादिष्यन्ती खादिष्यती	खादत्,	खादिष्यत्
जीव्		"	जीवन्,	जीविष्यन्	जीवन्ती,	जीविष्यन्ती जीविष्यती	जीवत्,	जीविष्यत्

धातु	शतृ	पुँल्लिङ्ग लट्स्थानीय	पुँल्लिङ्ग लृट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लृट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लृट्स्थानीय
खेल्	,,	खेलन्,	खेलिष्यन्	खेलन्ती,	खेलिष्यन्ती खेलिष्यती	खेलत्,	खेलिष्यत्
दृश्	,,	पश्यन्,	द्रक्ष्यन्	पश्यन्ती,	द्रक्ष्यन्ती द्रक्ष्यती	पश्यत्,	द्रक्ष्यत्
इष् (इच्छायाम्)	,,	इच्छन्,	एषिष्यन्	इच्छन्ती इच्छती	एषिष्यन्ती एषिष्यती	इच्छत्,	एषिष्यत्
वि + कस्	,,	विकसन्	विकसिष्यन्	विकसन्ती,	विकसिष्यन्ती विकसिष्यती	विकसत्,	विकसिष्यत्
भ्रम (चलने)	,,	भ्रमन्, भ्रम्यन्,	भ्रमिष्यन्	भ्रमन्ती भ्रम्यन्ती	भ्रमिष्यन्ती भ्रमिष्यती	भ्रमत् भ्रम्यत्	भ्रमिष्यत्
भ्रम् (अनवस्थाने)	,,	भ्रमन्, भ्राम्यन्,	भ्रमिष्यन्	भ्रमन्ती भ्राम्यन्ती	भ्रमिष्यन्ती भ्रमिष्यती	भ्रमत् भ्राम्यत्	भ्रमिष्यत्
अट्	,,	अटन्,	अटिष्यन्	अटन्ती,	अटिष्यन्ती अटिष्यती	अटत्,	अटिष्यत्
प्र + फुल्ल्	,,	प्रफुल्लन्,	प्रफुल्लिष्यन्	प्रफुल्लन्ती,	प्रफुल्लिष्यन्ती प्रफुल्लिष्यती	प्रफुल्लत्,	प्रफुल्लिष्यत्
श्रु	,,	शृण्वन्,	श्रोष्यन्	शृण्वती,	श्रोष्यन्ती श्रोष्यती	शृण्वत्,	श्रोष्यत्
रुद्	,,	रुदन्,	रोदिष्यन्	रुदती,	रोदिष्यन्ती रोदिष्यती	रुदत्,	रोदिष्यत्
जागृ	,,	जाग्रत्,	जागरिष्यन्	जाग्रती,	जागरिष्यन्ती जागरिष्यती	जाग्रत्,	जागरिष्यत्

धातु	शतृ	पुंल्लिङ्ग लट्स्थानीय	पुंल्लिङ्ग लृट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लृट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लृट्स्थानीय
या	"	यान्,	यास्यन्	यान्ती / याती	यास्यन्ती / यास्यती	यात्,	यास्यत्
पा (रक्षणे)	"	पान्,	पास्यन्	पान्ती / पाती	पास्यन्ती / पास्यती	पात्,	पास्यत्
पा (पाने)	"	पिबन्,	पास्यन्	पिबन्ती,	पास्यन्ती / पास्यती	पिबत्,	पास्यत्
जि	"	जयन्;	जेष्यन्	जयन्ती,	जेष्यन्ती / जेष्यती	जयत्,	जेष्यत्
भी	"	बिभ्यत्,	भेष्यन्	बिभ्यती,	भेष्यन्ती / भेष्यती	बिभ्यत्,	भेष्यत्
भक्षि (भक्ष् णिच्)	"	भक्षयन्,	भक्षयिष्यन्	भक्षयन्ती,	भक्षयिष्यन्ती / भक्षयिष्यती	भक्षयत्,	भक्षयिष्यत्
तर्जि (तर्ज् णिच्)	"	तर्जयन्,	तर्जयिष्यन्	तर्जयन्ती,	तर्जयिष्यन्ती / तर्जयिष्यती	तर्जयत्,	तर्जयिष्यत्
उत्थापि (उत्+स्थाणिच्)		उत्थापयन्,	उत्थापयिष्यन्	उत्थापयन्ती,	उत्थापयिष्यन्ती / उत्थापयिष्यती	उत्थापयत्,	उत्थापयिष्यत्
पिपठिष +	शतृ	पिपठिषन्,	पिपठिषिष्यन्	पिपठिषन्ती,	पिपठिषिष्यन्ती / पिपठियिष्यती	पिपठिषत्,	पिपठिषिष्यत्
पुत्रीय	"	पुत्रीयन्,	पुत्रीयिष्यन्	पुत्रीयन्ती,	पुत्रीयिष्यन्ती, / पुत्रीयिष्यती	पुत्रीयत्,	पुत्रीयिष्यत्
पुत्रकाम्य	"	पुत्रकाम्यन्,	पुत्रकामिष्यन्	पुत्रकाम्यन्ती,	पुत्रकामिष्यन्ती / पुत्रकामिष्यती	पुत्रकाम्यत्,	पुत्रकामिष्यत्

अब हम शतृप्रत्ययान्त शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में सब विभक्तियों में उदाहरणार्थ देते हैं—

शतृप्रत्ययान्त भवत् शब्द (पुंल्लिङ्ग)		
प्र०—भवन्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वि०—भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृ०—भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०—भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
प०—भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
ष०—भवतः	भवतोः	भवताम्
स०—भवति	भवतोः	भवत्सु
सं०प्र०—हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

शतृप्र० (ङीबन्त) भवन्ती शब्द स्त्रीलिङ्ग		
प्र०—भवन्ती	भवन्त्यौ	भवन्त्यः
द्वि०—भवन्तीम्	भवन्त्यौ	भवन्तीः
तृ०—भवन्त्या	भवन्तीभ्याम्	भवन्तीभिः
च०—भवन्त्यै	भवन्तीभ्याम्	भवन्तीभ्यः
प०—भवन्त्याः	भवन्तीभ्याम्	भवन्तीभ्यः
ष०—भवन्त्याः	भवन्त्योः	भवन्तीनाम्
स०—भवन्त्याम्	भवन्त्योः	भवन्तीषु
सं०प्र०—हे भवन्ति	हे भवन्त्यौ	हे भवन्त्यः

शतृप्रत्ययान्त भवत् शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

प्रथमा—भवत्	भवन्ती	भवन्ति
द्वितीया—भवत्	भवन्ती	भवन्ति

शेष रूप पुल्लिङ्ग भवत् के समान चलेंगे।

जब शतृप्रत्यय, लृट् के स्थान पर होगा तब शप् आदि विकरण नहीं होंगे किन्तु 'स्य' विकरण, सब धातुओं से आयेगा और सब प्रकार की धातुओं के प्रसङ्ग में पूर्वोक्त 'भवत्' के समान ही नुम् आगम होगा। स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके नुम् (=न्) आगम होगा, अतः स्त्रीलिंग में दो प्रकार के रूप बनेंगे[1]। लृट्स्थानीय शतृ-प्रत्ययान्त शब्द के तीनों लिङ्गों में रूप इस प्रकार हैं—

पुंल्लिङ्ग गमिष्यत शब्द		
प्र०—गमिष्यन्	गतिष्यन्तौ	गमिष्यन्तः
द्वि०—गमिष्यन्तम्	गमिष्यन्तौ	गमिष्यतः
तृ०—गमिष्यता	गमिष्यद्भ्याम्	गमिष्यद्भिः
च०—गमिष्यते	गमिष्यद्भ्याम्	गमिष्यद्भ्यः
प०—गमिष्यतः	गमिष्यद्भ्याम्	गमिष्यद्भ्यः
ष०—गमिष्यतः	गमिष्यतोः	गमिष्यताम्
स०—गमिष्यति	गमिष्यतोः	गमिष्यत्सु
सं०प्र० हे गमिष्यन्	हे गमिष्यन्तौ	हे गमिष्यन्तः

स्त्रीलिङ्ग गमिष्यत् (१) (गमिष्यन्ती) शब्द		
प्र०—गमिष्यन्ती	गमिष्यन्त्यौ	गमिष्यन्त्यः
द्वि०—गमिष्यन्तीम्	गमिष्यन्त्यौ	गमिष्यन्तीः
तृ०—गमिष्यन्त्या	गमिष्यन्तीभ्याम्	गमिष्यन्तीभिः
च०—गमिष्यन्त्यै	गमिष्यन्तीभ्याम्	गमिष्यन्तीभ्यः
प०—गमिष्यन्त्याः	गमिष्यन्तीभ्याम्	गमिष्यन्तीभ्यः
ष० गमिष्यन्त्याः	गमिष्यन्त्योः	गमिष्यन्तीनाम्

---

१. आच्छीनद्योर्नुम् (अष्टा. ७.१.८०)

स०—गमिष्यन्त्याम् गमिष्यन्त्योः गमिष्यन्तीषु | सं०प्र०—हे गमिष्यन्ति हे गमिष्यन्त्यौ हे गमिष्यन्त्यः

स्त्रीलिङ्ग गमिष्यत् (२) [गमिष्यती] शब्द

प्र०—गमिष्यती गमिष्यत्यौ गमिष्यत्यः
द्वि०—गमिष्यतीम् गमिष्यत्यौ गमिष्यतीः
तृ०—गमिष्यत्या गमिष्यतीभ्याम् गमिष्यतीभिः
च०—गमिष्यत्यै गमिष्यतीभ्याम् गमिष्यतीभ्यः
प०—गमिष्यत्याः गमिष्यतीभ्याम् गमिष्यतीभ्यः
ष०—गमिष्यत्याः गमिष्यत्योः गमिष्यतीनाम्
स०—गमिष्यत्याम् गमिष्यत्योः गमिष्यतीषु
सं०प्र०—हे गमिष्यति हे गमिष्यत्यौ हे गमिष्यत्यः

नपुंसकलिङ्ग गमिष्यत् शब्द

प्रथमा—गमिष्यत्	गमिष्यन्ती	गमिष्यन्ति
द्वितीया—गमिष्यत्	गमिष्यन्ती	गमिष्यन्ति

शेष विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग गमिष्यत् शब्द के समान रूप चलेंगे।

अन्य धातुओं से भी, लट्स्थानीय और लृट्स्थानीय शतृ प्रत्यय होने पर तदन्त शब्द के रूप उपर्युक्त प्रकारेण बना लेने चाहियें।

अभ्यास

१. घर जाते हुए मेरे दोनों मित्रों ने खेलती हुई विमला से कहा, यह पुस्तक, पढ़ते हुए मोहन को देना।

इस वाक्य में→घर कर्म, जाते हुए—विशेषण, मित्र (न. लि.)—कर्त्ता (विशेष्य), खेलती हुई—विशेषण, विमला—कर्म (विशेष्य), यह—सर्वनाम, पुस्तक—कर्म, पढ़ते हुए—विशेषण, मोहन सम्प्रदान (विशेष्य), दे देना—क्रिया

संस्कृत—गृहं गच्छन्ती मम मित्रे क्रीडन्तीं विमलाम् अवादिष्टाम् (अवदताम्) एतत् पुस्तकं पठते मोहनाय देहि (दद्याः)।

२. वृक्ष से गिरते हुए दो फलों को उठाती हुई विमला ने खेलते हुए मोहन से कहा—एक फल तुझे दूंगी और एक फल मैं खाऊँगी। (यहाँ→वृक्ष से—अपादान, गिरते हुए—विशेषण, दो—संख्या विशेषण, फल—कर्म (विशेष्य), उठाती हुई—विशेषण, विमला—कर्त्ता (विशेष्य), खेलते हुए—विशेषण, मोहन—कर्म (विशेष्य), कहा—क्रिया, एक—सं० विशेषण, फल कर्म (विशेष्य) तुझे—सम्प्रदान, दूंगी—क्रिया, और—अव्यय, एक—सं० विशेषण, फल—कर्म (विशेष्य), मैं—सर्वनाम कर्त्ता, खाऊँगी—क्रिया।

संस्कृत—वृक्षात् पतन्ती फले उत्थापयन्ती विमला क्रीडन्तं मोहनम् अचकथत् (अकथयत्) एकं फलं तुभ्यं दास्यामि, एकं च अहं भोक्ष्ये।

३. जाती हुई बुढ़िया के पात्र से गिरता हुआ दही खाते हुए कौए को देखकर, हंसते हुए लड़कों ने, खेलते हुए मेरे मित्रों से कहा।

संस्कृत—गच्छन्त्याः वृद्धायाः पात्रात् पतत् दधि भक्षयन्तं काकं दृष्ट्वा हसन्तः बालकाः क्रीडन्ति मम मित्राणि अवोचन् (अब्रुवन्)।

४. सड़क पर जाते हुए राहगीरों से हाथ फैला कर मांगते हुए और खाते हुए मनुष्यों के हाथों से गिरते हुए पत्तों को चाटने के लिये कुत्तों के साथ दौड़ते हुए बालकों को देखकर भी गवर्नमेंट के हृदय में दुःख नहीं होता।

संस्कृत—राजपथे गच्छतः पथिकान् हस्तौ प्रसार्य याचतः (याचमानान्), भक्षयतां मनुष्याणां करेभ्यः पतन्ति पत्राणि लेढुं श्वभिः सह धावतः च बालकान् दृष्ट्वा अपि शासकानां हृदयेषु दुःखं न उत्पद्यते।

५. जब आप होते हैं, तब यह काम होता है।
भवति भवति भवति इदं कार्यम्।[1]

६. किसका व्याख्यान होगा आज, होने वाले अधिवेशन में ?
अद्य कस्य व्याख्यानं भविष्यति, भविष्यति (७.१) अधिवेशने ?

७. कलकत्ते से आने वाले तेरे मित्रों के साथ मेरा लड़का भी आने वाला है, दोनों स्टेशन पर चलेंगे ?
कलिकातानगरात् आगमिष्यद्भिः तव सखिभिः सह मम सुतः अपि आगमिष्यन्, आवां वाष्पयानागारं गमिष्यावः।

८. जब तू इसके रुपये दे देगा, तब वह तेरे आभूषण दे देगा ?
त्वयि रूप्यकाणि दास्यति, दास्यति स तव आभूषणानि[2] ?

९. जब तेरा पिता आयेगा, तब मैं जाऊँगा।
आगमिष्यति तव पितरि गमिष्यामि अहम्।

१०. जब तू खायेगा तब वह खायेगा = त्वयि खादिष्यति (७.१) खादिष्यति सः ?

११. जब मोहन खाता है तब सत्यपाल खाता है ?
मोहने खादति (७.१) खादति सत्यपालः ?

१२. मैं आपके जीने पर जीता हूं और आपके मरने पर मर जाऊँगा।
भवति जीवति जीवामि मरिष्यति च भवति मरिष्यामि।

---

१. इस वाक्य में पहिला 'भवति' पद आपवाचक 'भवत्' की सप्तमी का एकवचन है, दूसरा 'भवति' पद शतृप्रत्ययान्त 'भवत्' की सप्तमी का एकवचन है और तीसरा 'भवति' पद क्रिया पद है और भू धातु के लट् का प्रथम० एकवचन है।

२. पहिला 'दास्यति' पद लृट्स्थानीय 'दास्यत्' का (७.१) है और द्वितीय 'दास्यति' शब्द क्रियापद है।

१३. खेलते हुए बुद्धिमान् लड़कों के साथ तू भी खेलाकर।
खेलद्भिः धीमद्भिः बालकैः सह त्वम् अपि क्रीड (क्रीडेः)।

१४. सबके देखते देखते इस धूर्त्त सुनार ने सोना चुरा लिया।
सर्वेषां पश्यताम् अयं धूर्त्तः पश्यतोहरः कनकम् अचूचुरत् (अचोरयत्)

१५. दौड़ते लड़के के पीछे मत दौड़ = अलं धावन्तं बालकम् अनुधाव्य।

१६. न चाहते हुए भी मुझे दूध पीना पड़ा = अनिच्छन् अपि अहम् अपाम् पयः।

१७. दान देते हुए मनुष्य को देखकर, कंजूस के मन में बड़ा दुःख हुआ?
दानं यच्छन्तं (ददतं) मनुष्यं दृष्ट्वा कृपणस्य मनसि महद् दुःखम् अभवत्।

१८. घर जाती हुई लड़कियों से प्रतिभा ने कहा—वृक्ष से गिरते हुए पके आमों को लाओ?
गृहाणि गच्छन्तीः बालिकाः प्रतिभा अचकथत्—वृक्षात् पतन्ति पक्वानि सहकार-फलानि आनयत?

१९. क्या तूने उसके सिर से बहता हुआ खून देखा?
किं त्वं तस्य शिरसः वहत् शोणितम् अद्राक्षीः?

२०. खिलते हुए फूलों को देखकर घूमते हुए मेरे मित्रों ने बाग में टहलते हुए लोगों से कहा – क्या तुम खिलते हुए फूलों को देखते हो?
विकसन्ति पुष्पाणि दृष्ट्वा भ्रमन्ति मम मित्राणि उद्यानम् (उद्याने) अटतः पुरुषान् अवोचन्—किं यूयं प्रफुल्लन्ति प्रसूनानि पश्यथ?

२१. पुत्र को भोजन देती हुई माता ने कहा कि खाते हुए बोलते नहीं?
पुत्राय भोजनं ददती जननी अगदत्—भक्षयन् मा वादीः (मा स्म वदः)।

२२. पड़ोसन के साथ बात करती हुई बुढ़िया से मैंने कहा—माई! आज रोटी नहीं पकेगी क्या?
प्रतिवेशिन्या सह वार्तां कुर्वतीं वृद्धाम् अहम् अवोचं—वृद्धे! किमद्य भोजनं न पक्ष्यसि?

२३. मेरी बातें सुनते हुए मेरे दोनों मित्रों ने मुझसे कहा—आपके पास तो बातों का खजाना है।
मम वार्ताः शृण्वती मम मित्रे माम् अवादिष्टाम्—भवतां पार्श्वे तु वार्तानां कोषः अस्ति।

२४. सुशीला ने धमकाते हुए, कौशल्या से कहा—मूर्ख! तूने मुझे वृक्ष से फल तोड़ते कब देखा है?
सुशीला तर्जयन्ती (भर्त्सयमाना) कौशल्याम् अवोचत्—मूर्खे! त्वं मां वृक्षं फलानि अवचिन्वतीं कदा अद्राक्षीः?

२५. नदी के किनारे रोते हुए बालक के पास जाकर किसी वृद्धा ने कहा—बेटा! बहते हुए जल में मत घुस जाना।
उपनदीतटं रुदन्तं बालकम् उपसृत्य काचित् वृद्धा अचकथत्—वत्स! वहत् जलं मा प्रविक्षः (अलं वहत् जलं प्रविश्य)।

२६. वन में जाने से डरते हुए सर्वमित्र ने कहा—मैं नहीं जाऊंगा, मेरे सिर में दर्द है बनगमनात् बिभ्यत् सर्वमित्रः अकथयत्—अहं नैव यास्यामि, मम शिरोवेदना अस्ति ?

२७. काम करती हुई माता ने बेटी से पूछा—बेटी ! तेरे सिरदर्द में कुछ आराम है ? कार्यं कुर्वती माता पुत्रीम् अप्राक्षीत् (अपृच्छत्)—अपि सह्या शिरोवेदना ?

२८. जागती हुई भी पुत्री ने सोने का बहाना करके कोई उत्तर नहीं दिया ? जाग्रती अपि पुत्री शयनव्याजम् आकलय्य न किमपि प्रत्यवोचत् ?

२९. शाम के समय डरते हुए पांच वर्ष के सर्वमित्र ने पास में बैठे हुए रामशास्त्री से कहा—मैं तेरे पास खड़ा हूं, कभी तू डर जाये।

सन्ध्यावेलायां बिभ्यत् पञ्चवर्षदेशीयः सर्वमित्रः पार्श्वे स्थितं रामशास्त्रिणम् अवादीत्—अहं तव अन्तिके तिष्ठामि मा भैषीः।

३०. घर से स्कूल जाती हुई शशिकला को देखकर उमा ने कहा—ठहर मैं भी तेरे साथ चलती हूं।
गृहात् विद्यालयं यातीं (यान्तीं) शशिकलां दृष्ट्वा उमा अब्रवीत्—तिष्ठ अहम् अपि त्वया सह यामि।

शानच्

पूर्व में बता आये हैं कि लट्स्थानीय अथवा लृट्स्थानीय शानच् प्रत्यय आत्मनेपदी धातुओं से होता है। जो धातु उभयपदी हैं उनसे विकल्प से शतृ और शानच् दोनों होंगे। 'शानच्' के श् और च् की इत्सञ्ज्ञा तथा लोप हो जाने पर 'आन' शेष रहता है। भ्वादि०, दिवादि०, तुदादि०, चुरादि० आदि तथा ण्यन्त—सन्नन्त धातुओं से जब 'आन' (=शानच्) परे होगा तो 'आन' से पहिले म् (=मुक्) आगम होगा[1]। यथा—मोदमानः, पचमानः, बुध्यमानः, लज्जमानः, प्रार्थयमानः, कारयमाणः, जिज्ञासमानः आदि। अदादि०, जुहोत्यादि० आदि धातुओं से सीधा आन लगा देत हैं—यथा सन्दिहानः, व्याचक्षाणः, सञ्जिहानः, व्याददानः आदि। लृट्स्थानीय शानच् का 'आन' परे होगा तब तो प्रत्येक प्रकार की धातु के अन्त में म् (मुक्) आगम होगा। आस् धातु से परे 'आन' के आ को ई होगा[2]—आसीनः। शानच् (=आन) प्रत्ययान्त के रूप पुंल्लिङ्ग में 'यतमानः यतमानौ यतमानाः' आदि 'राम' शब्द के समान, स्त्रीलिङ्ग में 'यतमाना यतमाने यतमानाः' आदि 'रमा' के समान और नपुंसकलिङ्ग में 'यतमानम् यतमाने यतमानानि' आदि ज्ञान शब्द के समान चलेंगे। लृट्स्थानीय शानच् प्रत्ययान्त के रूपों में भी यही बात है—

पु०—यतिष्यमाणः, स्त्री०—यतिष्यमाणा, नपुं०—यतिष्यमाणम्।

अब कुछ धातुओं के शानच् प्रत्ययान्त स्वरूप तीनों लिङ्गों में बताते हैं। उभयपदी धातुओं के शानच्-प्रत्ययान्त के साथ शतृ-प्रत्ययान्त स्वरूप भी देंगे—

---

१. आने मुक् (अष्टा.७.२.८२)   २. ईदासः (अष्टा. ७.२.८३)

धातु + प्रत्यय	पुंलिङ्ग लट्स्थानीय,	पुंलिङ्ग लृट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लट्स्थानीय,	स्त्रीलिङ्ग लृट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लट्स्थानीय,	नपुंसकलिङ्ग लृट्स्थानीय
यत् + शानच्	यतमानः	यतिष्यमाणः	यतमाना,	यतिष्यमाणा	यतमानम्	यतिष्यमाणम्
मुद् + ,,	मोदमानः,	मोदिष्यमाणः	मोदमाना,	मोदिष्यमाणा	मोदमानम्,	मोदिष्यमाणम्
सेव् ,,	सेवमानः	सेविष्यमाणः	सेवमाना,	सेविष्यमाणा	सेवमानम्,	सेविष्यमाणम्
लभ् ,,	लभमानः,	लप्स्यमान	लभमाना,	लप्स्यमाना	लभमानम्,	लप्स्यमानम्
रम् ,,	रममाणः,	रंस्यमानः	रममाणा,	रंस्यमाना	रममाणम्,	रंस्यमानम्
शी ,,	शयानः,	शयिष्यमाणः	शयाना,	शयिष्यमाणा	शयानम्,	शयिष्यमाणम्
[1]ली ,,	लीयमानः,	लास्यमानः लेष्यमाणः	लीयमाना,	लास्यमाना लेष्यमाणा	लीयमानम्,	लास्यमानम् लेष्यमाणम्
अश् (व्याप्तौ) ,,	अश्नुवानः,	अक्ष्यमाणः अशिष्यमाणः	अश्नुवाना,	अक्ष्यमाणा अशिष्यमाणा	अश्नुवानम्,	अक्ष्यमाणम् अशिष्यमाणम्
[2]मृ ,,	म्रियमाणः,	मरिष्यन्	म्रियमाणा,	मरिष्यन्ती मरिष्यती	म्रियमाणम्,	मरिष्यत्
मन् (अवबोधने) ,,	मन्वानः,	मनिष्यमाणः	मन्वाना,	मनिष्यमाणा	मन्वानम्,	मनिष्यमाणम्
वृङ् (सम्भक्तौ) ,,	वृणानः,	वरिष्यमाणः वरीष्यमाणः	वृणाना,	वरिष्यमाणा वरीष्यमाणा	वृणानम्	वरिष्यमाणम् वरीष्यमाणम्
मन् (ज्ञाने) ,,	मन्यमानः,	मंस्यमानः	मन्यमाना,	मंस्यमाना	मन्यमानम्,	मंस्यमानम्
यज् + शानच्	यजमानः,	यक्ष्यमाणः	यजमाना,	यक्ष्यमाणा	यजमानम्,	यक्ष्यमाणम्
,, + शतृ	(यजन्,	यक्ष्यन्	यजन्ती,	यक्ष्यन्ती यक्ष्यती	यजत्,	यक्ष्यत्)
भज् + शानच्	भजमानः,	भक्ष्यमाणः	भजमाना,	भक्ष्यमाणा	भजमानम्,	भक्ष्यमाणम्

१. विभाषा लीयतेः (अष्टा. ६. १. ५०) से अशित् प्रत्ययों में विकल्प से धातु को एत्व ।

२. मृ (मृङ्) धातु यद्यपि आत्मनेपदी है तथापि 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' (अष्टा. १. ३. ६१) के नियम के कारण शित् लकारों में और लुङ्, आशीर्लिङ् में ही आत्मनेपद होगा । लिट्, लुट्, लृट् और लृङ् में परस्मैपद होगा । अतः यहां लृट् में शतृ ही होगा शानच् नहीं ।

धातु		प्रत्यय	पुंल्लिङ्ग लट्स्थानीय	पुंल्लिङ्ग लृट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लृट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग लृट्स्थानीय
भज्	+	शतृ	(भजन्,	भक्ष्यन्	भजन्ती,	भक्ष्यन्ती / भक्ष्यती	भजत्,	भक्ष्यत्)
याच्	+	शानच्	याचमानः,	याचिष्यमाणः	याचमाना,	याचिष्यमाणा	याचमानम्,	याचिष्यमाणम्
”	+	शतृ	(याचन्,	याचिष्यन्	याचन्ती,	याचिष्यन्ती / याचिष्यती	याचत्,	याचिष्यत्)
पच्	+	शानच्	पचमानः,	पक्ष्यमाणः	पचमाना,	पक्ष्यमाणा	पचमानम्,	पक्ष्यमाणम्
”	+	शतृ	(पचन्,	पक्ष्यन्	पचन्ती,	पक्ष्यन्ती / पक्ष्यती	पचत्,	पक्ष्यत्)
ब्रू	+	शानच्	ब्रुवाणः,	वक्ष्यमाणः	ब्रुवाणा,	वक्ष्यमाणा	ब्रुवाणम्,	वक्ष्यमाणम्
”	+	शतृ	(ब्रुवन्,	वक्ष्यन्	ब्रुवती,	वक्ष्यन्ती / वक्ष्यती	ब्रुवत्,	वक्ष्यत्)
चि	+	शानच्	चिन्वानः,	चेष्यमाणः	चिन्वाना,	चेष्यमाणा	चिन्वानम्,	चेष्यमाणम्
”	+	शतृ	(चिन्वन्,	चेष्यन्	चिन्वती,	चेष्यन्ती / चेष्यती	चिन्वत्,	चेष्यत्)
धा	+	शानच्	दधानः,	धास्यमानः	दधाना,	धास्यमाना	दधानम्	धास्यमानम्
”	+	शतृ	(दधत्,	धास्यन्	दधती,	धास्यन्ती / धास्यती	दधत्,	धास्यत्)
दा	+	शानच्	ददानः,	दास्यमानः	ददाना,	दास्यमाना	ददानम्,	दास्यमानम्
”	+	शतृ	(ददत्,	दास्यन्	ददती,	दास्यन्ती / दास्यती	ददत्,	दास्यत्)
भृ	+	शानच्	बिभ्राणः,	भरिष्यमाणः	बिभ्राणा,	भरिष्यमाणा	बिभ्राणम्,	भरिष्यमाणम्
”	+	शतृ	(बिभ्रत्	भरिष्यन्	बिभ्रती,	भरिष्यन्ती / भरिष्यती	बिभ्रत्,	भरिष्यत्

धातु	+	प्रत्यय	पुंल्लिङ्ग लट्स्थानीय	पुंल्लिङ्ग लृट्स्थानीय	स्त्रीलिङ्ग लट्स्थानीय,	स्त्रीलिङ्ग लृट्स्थानीय	नपुंसकलिङ्ग (लट्स्थानीय)	नपुंसकलिङ्ग (लृट्स्थानीय)
वृ (वरणे)	+	शानच्	वृण्वानः,	वरिष्यमाणः वरीष्यमाणः	वृण्वाना,	वरिष्यमाणा वरीष्यमाणा	वृण्वानम्,	वरिष्यमाणम् वरीष्यमाणम्
,,	+	शतृ	वृण्वन्,	वरिष्यन् वरीष्यन्	वृण्वती,	वरिष्यती-न्ती वरीष्यती-न्ती	वृण्वत्,	वरिष्यत् वरीष्यत्
कृ	+	शानच्	कुर्वाणः,	करिष्यमाणः	कुर्वाणा,	करिष्यमाणा	कुर्वाणम्,	करिष्यमाणम्
,,	+	शतृ	(कुर्वन्,	करिष्यन्	कुर्वती,	करिष्यन्ती करिष्यती	कुर्वत्,	करिष्यत्
अधि-इङ्	—	शानच्	अधीयानः,	अध्येष्यमाणः	अधीयाना,	अध्येष्यमाणा	अधीयानम्,	अध्येष्यमाणम्
भिद्	—	शानच्	भिन्दानः,	भेत्स्यमानः	भिन्दाना,	भेत्स्यमाना	भिन्दानम्,	भेत्स्यमानम्
,,	—	शतृ	भिन्दन्,	भेत्स्यन्	भिन्दती,	भेत्स्यन्ती भेत्स्यती	भिन्दत्	भेत्स्यत्
क्री	—	शानच्	क्रीणानः,	क्रेष्यमाणः	क्रीणाना,	क्रेष्यमाणा	क्रीणानम्,	क्रेष्यमाणम्
,,	—	शतृ	क्रीणन्,	क्रेष्यन्	क्रीणती,	क्रेष्यन्ती क्रेष्यती	क्रीणत्,	क्रेष्यत्
पू	—	शानच्	पुनानः	पविष्यमाणः	पुनाना,	पविष्यमाणा	पुनानम्,	पविष्यमाणम्
,,	—	शतृ	पुनन्,	पविष्यन्	पुनती,	पविष्यन्ती पविष्यती	पुनत्,	पविष्यत्
प्रार्थि = प्र + अर्थ + णिच्	+	,,	प्रार्थयमानः,	प्रार्थयिष्यमाणः	प्रार्थयमाना,	प्रार्थयिष्यमाणा	प्रार्थयमानम्,	प्रार्थयिष्यमाणम्
जिज्ञास (= ज्ञा + सन्)	+	,,	जिज्ञासमानः,	जिज्ञासिष्यमाणः	जिज्ञासमाना,	जिज्ञासिष्यमाणा	जिज्ञासमानम्,	जिज्ञासिष्यमाणम्
पापठ्य (पठ् + यङ्)	+	,,	पापठ्यमानः,	पापठिष्यमाणः	पापठ्यमाना,	पापठिष्यमाणा	पापठ्यमानम्,	पापठिष्यमाणम्
श्येनाय (श्येन + क्यङ्)	+	,,	श्येनायमानः,	श्येनायिष्यमाणः	श्येनायमाना,	श्येनायिष्यमाणा	श्येनायमानम्,	श्येनायिष्यमाणम्

अभ्यास

१. यत्न करते हुओं का भी यदि कार्य सिद्ध नहीं होता, तो भाग्य का दोष समझना चाहिये ।
   यतमानानाम् अपि यदि कार्यं न सिध्यति, तदा विधिः बलवान् इति मन्तव्यम् ।

२. खीर खाते हुए और खुश होते हुए ब्रह्मचारियों को देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है ।
   पायसान्नं भुञ्जानान् मोदमानान् च ब्रह्मचारिणः वीक्ष्य नितरां मोदे ।

३. यज्ञ करते हुए ब्रह्मचारियों को देखकर एक माता ने मन में सोचा कि मैं भी अपने पुत्र को गुरुकुल में प्रविष्ट कराऊंगी ।
   यजमानान् (यजतः) ब्रह्मचारिणः अवलोक्य एका माता मनसि व्यचीचरत्—अहमपि मत्सुतं गुरुकुले प्रवेशयिष्यामि ।

४. ईश्वर का भजन करते हुए तपस्वियों के आश्रम में भोजन रख आ ।
   ईश्वरं भजमानानां (भजतां) तपस्विनाम् आश्रमे भोजनं स्थापय ।

५. मांगते हुए पुरुषों का कोई आदर नहीं करता ।
   याचमानान् (याचतः) पुरुषान् न कश्चित् आद्रियते ।

६. कल उसके मित्र उससे कुछ रुपये मांगने वाले हैं, इसलिए वह पहिले ही घर छोड़कर कुछ दिन के लिए और जगह चला गया है ।
   श्वः तस्य मित्राणि तं कानिचिद् रूप्यकाणि याचिष्यमाणानि (याचिष्यन्ति) सन्ति, अतः सः पूर्वमेव गृहं त्यक्त्वा कतिपयेभ्यः दिनेभ्यः अन्यत्र अव्राजीत् ।

७. जब तू उससे अपने रुपये मांगेगा तब मैं भी मांगूंगा ।
   त्वयि तं रूप्यकाणि याचिष्यमाणे (याचिष्यति) अहम् अपि याचिष्यामि (याचिष्ये; याचितास्मि, याचिताहे) ।

८. जब तुम भोजन पका लोगे तब खायेंगे ।
   त्वयि भोजनं पक्ष्यमाणे (पक्ष्यति) भक्षयिष्यामः ।

अथवा

   यदा त्वं भोजनं पक्ष्यसि (पक्ष्यसे) तदा वयं भक्षयिष्यामः ।

९. बिना पूछ बोलते हुए मनुष्य बुद्धिमानों के तिरस्कार के पात्र होते हैं ।
   अपृष्टाः ब्रुवाणाः (ब्रुवन्तः) पुरुषाः न्यक्कारभाजनानि भवन्ति प्रेक्षावताम् ।

१०. वृक्षों से फल तोड़ती हुई लड़की को मैंने कहा—बेटी ! पके पके फल तोड़ ले, कच्चे मत तोड़ना ।
   वृक्षान् फलानि अवचिन्वानां (अवचिन्वतीम्) बालाम् अवादिषम्-पुत्रिके ! पक्वानि फलानि अवचिनु, मा अवचैषीः (मा अवचेष्ठाः) अपक्वानि ।

११. सफेद कपड़े धारण करते हुए पुरुष को देखकर मेरे मन में भी सफेद कपड़े पहनने की इच्छा हुई।
श्वेतानि वासांसि दधानं (दधतं) पुरुषम् अवलोक्य मम अपि मनसि श्वेतानि वसनानि धातुं कामना अभूत्।

१२. दान देने आने वाले पुरुषों के सत्कार के लिये अधिष्ठाता ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी।
दानं दास्यमानानां (दास्यतां) आगमिष्यतां पुरुषाणां सत्काराय अधिष्ठाता स्वयात्राम् अस्थगयत् (अतस्थगत्)।

१३. अनाथों का पोषण करते हुए मनुष्य सबके आदर के पात्र होते हैं।
दीनान् बिभ्राणाः (बिभ्रतः) पुरुषाः सर्वेषां मानभाजनानि भवन्ति।

१४. अनाथ कन्याओं को पालते हुए चौधरी देशराज जी ने अपने घर के आवश्यक कार्य भी छोड़ दिये।
पितृभ्यां हीनाः कन्याः बिभ्राणः (बिभ्रत्) चौधरी देशराजमहोदयः अनतिक्रमणीयानि गृहकृत्यानि अपि अत्याक्षीत्।

१५. जब आप प्रधानमन्त्री इन्दिराजी से बात करेंगे तब मैं भी आपके साथ जाऊँगा।
प्रधानमन्त्रिभिः भगवतीभिः इन्दिराभिः सह वार्तालापं करिष्यमाणैः (करिष्यद्भिः) भवद्भिः सह अहम् अपि यास्यामि।

अथवा

यदा भवन्तः 'प्रधानमन्त्रि' पदम् अलङ्कुर्वतीभिः भगवतीभिः इन्दिराभिः सह वार्तालापं करिष्यन्ति तदा अहम् अपि भवद्भिः सह यास्यामि।

१६. मैं व्याख्यान तो दूंगा पर समझने वाले छात्रों को ही बुलाओ।
अहं व्याख्यानं तु करिष्यामि किन्तु मनिष्यमाणान् एव छात्रान् आमन्त्रय।

१७. इस घोल में, कण-कण में व्याप्त होने वाली एसिड डालो।
अस्मिन् द्रवे प्रतिकणं अशिष्यमाणं (अक्ष्यमाणं) अम्लं पातय।

१८. विश्वामित्र राम लक्ष्मण को, महाबलवान् का वरण करने वाली सीता के पिता के घर ले गये।
विश्वामित्रः रामलक्ष्मणौ महाबलिष्ठं वरिष्यमाणायाः (वरीष्यमाणायाः, वरिष्यन्त्याः, वरीष्यन्त्याः, वरिष्यत्याः, वरीष्यत्याः) सीतायाः पितुः प्रासादं निन्ये (निनाय)।

१९. ये प्रार्थना कर रहे बालक उन प्रार्थना करने वालों से पहिले आये हैं, अतः इन्हीं को दो।

एते प्रार्थयमानाः बालकाः तेभ्यः प्रार्थयिष्यमाणेभ्यः पूर्वम् आगमन्, अतः एभ्यः देहि ।

२०. इन गणित जानना चाहती हुई कन्याओं को कुसुमलताजी के पास भेज दो ।
एताः गणितं जिज्ञासमानाः कन्याः कुसुमलतामहाभागायाः सकाशं प्रेषय ।

२१. बार-बार सत्यार्थप्रकाश पढ़ते हुए मनुष्यों को सत्य का बोध हो जाता है ।
सत्यार्थप्रकाशं पापठ्यमानानां जनानां सत्यस्य बोधः जायते ।

क्त, क्तवतु प्रत्यय

क्त और क्तवतु प्रत्ययों का नाम 'निष्ठा' है ।[1] भूतकाल में धातुमात्र से क्त और क्तवतु प्रत्यय होते हैं ।[2] इनमें से पहिले क्तवतु प्रत्यय के विषय में बताते हैं—

क्तवतु

क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में धातुमात्र से होता है । क्तवतु प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है ।[3] क्तवतु में से क् और उ की इत्सञ्ज्ञा[4] और लोप होने पर 'तवत्' शेष रहता है । तवत् (=क्तवतु) के कित् होने के कारण, धातु में प्राप्त होने वाले गुण-वृद्धि आदि का निषेध हो जायेगा ।[5] वच्, स्वप्, यजादि तथा ग्रह, ज्या आदि धातुओं में सम्प्रसारण होगा ।[6] क्त्वा, शतृ आदि के समान तवत् (=क्तवतु) भी 'कृत्' सञ्ज्ञक प्रत्यय है[7], अतः क्तवतु (=तवत्) प्रत्ययान्त शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होगी[8] और फलस्वरूप उससे सुप् (सातों विभक्तियाँ) प्रत्यय लगेंगे ।[9] अर्थात् क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द सुबन्त विशेषण बनेंगे । इनका प्रयोग क्रिया के रूप में भी होता है । सेट् धातुओं से परे 'तवत्' से पहिले इट् (=इ) आगम होगा[10] पुंल्लिङ्ग में मुट्

---

१. क्तक्तवतू निष्ठा (अष्टा.१.१.२६)
२. निष्ठा (अष्टा.३.२.१०२)
३. कर्त्तरि कृत् (अष्टा.३.४.६७)
४. 'लशक्वतद्धिते', 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' (अष्टा.१.३.८;२)
५. क्ङिति च (अष्टा.१.१.५)
६. 'वचिस्वपियजादीनां किति', 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च' (अष्टा.६.१.१५;१६)
७. कृदतिङ् (अष्टा.३.१.९३)
८. कृत्तद्धितसमासाश्च (अष्टा.१.२.४६)
९. स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् (अष्टा.४.१.२)
१०. आर्धधातुकस्येड् वलादेः (अष्टा.७.२.३५)

(=प्रथमा के तीनों वचन तथा द्वितीया के एकवचन—द्विवचन) में नुम् आगम (=न्) होगा।[1] प्रथमा के एकवचन में 'न्' की उपधा को दीर्घ होगा।[2] इस प्रकार पुँल्लिङ्ग में 'भवत्' शब्द के समान रूप चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में केवल, प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन में नुम् आगम (=न्) होगा[3] और 'जगत्' के समान रूप चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में ई (=ङीप्) लगेगा[4] और 'नदी' के समान रूप चलेंगे। अब हम कुछ धातुओं के तवत् (=क्तवतु) प्रत्ययान्त स्वरूप तीनों लिङ्गों में दर्शाते हैं।

धातु+क्तवतु	पुँल्लिङ्ग	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
श्रु+क्तवतु	श्रुतवान्	(सुन चुका)	श्रुतवती	श्रुतवत्
कृ+ ,,	कृतवान्	(कर चुका)	कृतवती	कृतवत्
हृ ,,	हृतवान्	(हर चुका)	हृतवती	हृतवत्
मृ ,,	मृतवान्	(मर चुका)	मृतवती	मृतवत्
ज्ञा ,,	ज्ञातवान्	(जान चुका)	ज्ञातवती	ज्ञातवत्
भी ,,	भीतवान्	(डर चुका)	भीतवती	भीतवत्
पा (पाने) ,,	पीतवान्	(पी चुका)	पीतवती	पीतवत्
पा (रक्षणे) ,,	पातवान्	(रक्षा कर चुका)	पातवती	पातवत्
दृश् ,,	दृष्टवान्	(देख चुका)	दृष्टवती	दृष्टवत्
प्रछ् ,,	पृष्टवान्	(पूछ चुका)	पृष्टवती	पृष्टवत्
वच् ,,	उक्तवान्	(कह चुका)	उक्तवती	उक्तवत्
वह् ,,	ऊढवान्	(ढो चुका)	ऊढवती	ऊढवत्
वप् ,,	उप्तवान्	(बो चुका, काट चुका)	उप्तवती	उप्तवत्
यज् ,,	इष्टवान्	(यज्ञ कर चुका)	इष्टवती	इष्टवत्
भिद् ,,	[5]भिन्नवान्	(फोड़ चुका)	भिन्नवती	भिन्नवत्
छिद् ,,	[5]छिन्नवान्	(काट चुका)	छिन्नवती	छिन्नवत्
नि+गॄ(निगरणे) ,,	[5]निगीर्णवान्	(निगल चुका)	निगीर्णवती	निगीर्णवत्
लू ,,	[6]लूनवान्	(काट चुका)	लूनवती	लूनवत्
हा (त्यागे) ,,	[7]हीनवान्	(छोड़ चुका)	हीनवती	हीनवत्
पच् ,,	[8]पक्ववान्	(पका चुका)	पक्ववती	पक्ववत्

१. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (अष्टा.७.१.७०)

२. अत्वसन्तस्य चाधातोः (अष्टा.६.४.१४)

३. नपुंसकस्य झलचः (अष्टा.७.१.७२)

४. उगितश्च (अष्टा.४.१.६)

५. 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' (अष्टा. ८.२.४२) से, रेफ और दकार से परे वर्त्तमान निष्ठा के तकार को नकार।

६. 'ल्वादिभ्यः' (अष्टा. ८.२.४४) से निष्ठा के त को न।

७. 'ओदितश्च' (अष्टा. ८.२.४५) से ,, ,, ,, ,, ,,।

८. 'पचो वः' (अष्टा. ८.२.५२) से निष्ठा के त को व।

धातु+क्तवतु	पुंल्लिङ्ग	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
शुष् ,,	[1]शुष्कवान्	(सूख चुका)	शुष्कवती	शुष्कवत्
दह् ,,	दग्धवान्	(जला चुका)	दग्धवती	दग्धवत्
पिष् ,,	पिष्टवान्	(पीस चुका)	पिष्टवती	पिष्टवत्
गम् ,,	गतवान्	(जा चुका)	गतवती	गतवत्
रुध् ,,	रुद्धवान्	(रोक चुका)	रुद्धवती	रुद्धवत्
क्रुध् ,,	क्रुद्धवान्	(क्रोध कर चुका)	क्रुद्धवती	क्रुद्धवत्
घृष् ,,	घृष्टवान्	(घिस चुका)	घृष्टवती	घृष्टवत्
स्मृ ,,	स्मृतवान्	(याद कर चुका)	स्मृतवती	स्मृतवत्
बध् ,,	बद्धवान्	(बांध चुका)	बद्धवती	बद्धवत्
यत् ,,	[2]यत्तवान्	(प्रयत्न कर चुका)	यत्तवती	यत्तवत्
धा ,,	[3]हितवान्	(धारण कर चुका)	हितवती	हितवत्
हन् ,,	हतवान्	(मार चुका)	हतवती	हतवत्
अद् ,,	[4]जग्धवान्	(खा चुका)	जग्धवती	जग्धवत्
आप् ,,	आप्तवान्	(पा चुका)	आप्तवती	आप्तवत्
दा ,,	दत्तवान्	(दे चुका)	दत्तवती	दत्तवत्
स्था ,,	[5]स्थितवान्	(ठहर चुका)	स्थितवती	स्थितवत्
विश् ,,	विष्टवान्	(घुस चुका)	विष्टवती	विष्टवत्
हृष् ,,	हृष्टवान्	(प्रसन्न हो चुका)	हृष्टवती	हृष्टवत्
वृत् ,,	वृत्तवान्	(बरत चुका)	वृत्तवती	वृत्तवत्
युज् ,,	युक्तवान्	(मिला चुका)	युक्तवती	युक्तवत्
तुष् ,,	तुष्टवान्	(सन्तुष्ट हो चुका)	तुष्टवती	तुष्टवत्
नश् ,,	नष्टवान्	(नष्ट हो चुका)	नष्टवती	नष्टवत्
वस् (निवासे) ,,	उषितवान्	(रह चुका)	उषितवती	उषितवत
वद् ,,	उदितवान्	(कह चुका)	उदितवती	उदितवत्
ग्रह् ,,	गृहीतवान्	(ले चुका)	गृहीतवती	गृहीतवत्
रुद् ,,	रुदितवान्	(रो चुका)	रुदितवती	रुदितवत्
विद् ,,	विदितवान्	(जान चुका)	विदितवती	विदितवत्
क्रीड ,,	क्रीडितवान्	(खेल चुका)	क्रीडितवती	क्रीडितवत्
चोरि(चुर्+णिच्) ,,	चोरितवान्	(चुरा चुका)	चोरितवती	चोरितवत्
भक्षि(भक्ष्+णिच्) ,,	भक्षितवान्	(खा चुका)	भक्षितवती	भक्षितवत्
क्षालि(क्षल्+णिच्) ,,	क्षालितवान्	(धो चुका)	क्षालितवती	क्षालितवत्
कारि (कृ+णिच्) ,,	कारितवान्	(करवा चुका)	कारितवती	कारितवत्
जिज्ञास (ज्ञा+सन्) ,,	जिज्ञासितवान्	(जानना चाह चुका)	जिज्ञासितवती	जिज्ञासितवत्
पापठ्य (पठ्+यङ्) ,,	पापठितवान्	(बार बार पढ चुका)	पापठितवती	पापठितवत्

१. 'शुषः कः' (अष्टा. ८.२.५१) से निष्ठा के त को क।
२. 'श्वीदितो निष्ठायाम्' (अष्टा. ७.२.१४) से इ (=इट्) का निषेध।
३. 'दधातेर्हिः' (अष्टा. ७.४.४२) से 'धा' के स्थान पर 'हि' आदेश।
४. अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति (अष्टा. २.४.३६) से अद् के स्थान पर जग्ध् आदेश।
५. द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति (अष्टा. ७.४.४०) से स्था के आ को इकार आदेश।

अब क्तवतु-प्रत्ययान्त 'कृतवत्' शब्द के तीनों लिङ्गों में सम्पूर्ण रूप उदाहरणार्थ दर्शाते हैं।

पुँल्लिङ्ग कृतवत् शब्द (कृ+क्तवतु)

प्र०—	कृतवान्	कृतवन्तौ	कृतवन्तः
द्वि०—	कृतवन्तम्	कृतवन्तौ	कृतवतः
तृ०—	कृतवता	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भिः
च०—	कृतवते	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भ्यः
प०—	कृतवतः	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भ्यः
ष०—	कृतवतः	कृतवतोः	कृतवताम्
स०—	कृतवति	कृतवतोः	कृतवत्सु
सं०प्र०—	हे कृतवन्	हे कृतवन्तौ	हे कृतवन्तः

स्त्रीलिङ्ग कृतवती शब्द (कृतवत्+ङीप्)

प्र०—	कृतवती	कृतवत्यौ	कृतवत्यः
द्वि०—	कृतवतीम्	कृतवत्यौ	कृतवतीः
तृ०—	कृतवत्या	कृतवतीभ्याम्	कृतवतीभिः
च०—	कृतवत्यै	कृतवतीभ्याम्	कृतवतीभ्यः
प०—	कृतवत्याः	कृतवतीभ्याम्	कृतवतीभ्यः
ष०—	कृतवत्याः	कृतवत्योः	कृतवतीनाम्
स०—	कृतवत्याम्	कृतवत्योः	कृतवतीषु
सं०प्र०—	हे कृतवति	हे कृतवत्यौ	हे कृतवत्यः

नपुंसकलिङ्ग कृतवत् शब्द (कृ+क्तवतु)

प्र०—	कृतवत्	कृतवती	कृतवन्ति
द्वि०—	कृतवत्	कृतवती	कृतवन्ति

शेष विभक्तियों में पुँल्लिङ्ग 'कृतवत्' शब्द के समान रूप चलेंगे।

अभ्यास

१. हम सब चित्तौड़ का किला देख चुके, सब लड़कियाँ भी देख चुकीं किन्तु मेरे मित्रों ने अभी नहीं देखा।
वयं चित्तौड़दुर्गं दृष्टवन्तः, सर्वाः बालिकाः अपि दृष्टवत्यः किन्तु मम मित्राणि अधुनावधि न दृष्टवन्ति।

२. तुम्हारी माता ने तुमसे क्या पूछा था=यौष्माकी माता युष्मान् किं पृष्टवती?

३. जब वे अपनी सब बातें कह चुके, तब मैंने उनसे कहा?
यदा ते स्वीयाः सर्वाः वार्ताः उक्तवन्तः तदा अहं तान् उक्तवान्।

अथवा

स्वीयाः सर्वाः वार्ताः उक्तवतः तान् अहम् उक्तवान्।

४. मेरे दोनों मित्र मेरे घर में एक महीना रहे।
मम मित्रे मम गेहे मासं यावत् उषितवती।

५. जो मनुष्य भार ढो चुके उनको भोजन दे दो, जो ढो रहे हैं उनको जल्दी ढोने के लिये कहो।
ये मनुष्याः भारम् ऊढवन्तः तेभ्यः भोजनं दत्त, ये वहन्तः सन्ति, तान् शीघ्रं वोढुं कथयत। अथवा
भारम् ऊढवद्भ्यः भोजनं दत्त, भारं वहतः शीघ्रं वोढुं कथयत।

६. जो तुम्हें कुछ कह चुके उनका बुरा मत मानो, जो कुछ कह रहे हैं उनकी सुनो।
ये युष्मान् किञ्चित् उदितवन्तः तेभ्यः मा क्रुधत, ये किमपि वदन्तः सन्ति तान् शृणुत। अथवा
युष्मान् उदितवद्भ्यः मा क्रुधत, वदतः शृणुत।

अथवा

अलं युष्मान् किञ्चिद् उदितवद्भ्यः क्रुद्ध्वा, वदतः शृणुत।

७. किसान बीज बो चुके—कृषकाः बीजानि उप्तवन्तः।

८. जब वे बीज बो चुके तब मैंने गेहूं बोये।
बीजानि उप्तवत्सु तेषु अहं गोधूमान् उप्तवान्।

९. ये दोनों नाई सबके बाल काट चुके।
एतौ नापितौ सर्वेषां केशान् उप्तवन्तौ।

१०. जो ब्रह्मचारी यज्ञ कर चुके उनको भोजन दो, जो यज्ञ करेंगे उनको पीछे देना।
इष्टवद्भ्यः ब्रह्मचारिभ्यः भोजनं यच्छ, यक्ष्यमाणेभ्यः (यक्ष्यद्भ्यः) पश्चात् यच्छेः

११. दाल पका चुकी विमला ने, रोटी पकाती हुई अपनी बहन के हाथ से आटा छीनकर कहा—हट तुझे रोटी पकानी नहीं आती, मैं पकाऊँगी।
सूपं पक्ववती विमला, रोटिकाः पचमानायाः (पचन्त्याः) स्वभगिन्याः हस्तात् पिष्टपिण्डम् आच्छिद्य अवादीत्—अपसर, अनभिज्ञा असि रोटिकापाकस्य, अहं पक्ष्ये (पक्ष्यामि)।

१२. जब विमला सब रोटियां पका चुकी तब कमला ने कहा—तूने अच्छी रोटी बनाई है! सारी जला दी।
सर्वाः रोटिकाः पक्ववतीं विमलां कमला अवादीत्—अहो, अतिशोभनाः रोटिकाः पक्ववती असि, सर्वाः दग्धवती।

१३. जब सब ब्रह्मचारी प्रातराश ले चुके तब मैं पहुंचा।
प्रातराशं गृहीतवत्सु सर्वेषु ब्रह्मचारिषु अहम् आगमम्।

१४. सब लड़कियां अपना अपना आटा पीस चुकीं।
सर्वाः बालिकाः निजं निजं चूर्णं पिष्टवत्यः।

१५. जो लोग वृक्षों को काट चुके उनकी चिंता छोड़ो, जो काट रहे हैं उनको सजा दो।
वृक्षान् छिन्नवतां चिन्ताम् अपहाय छिन्दतः पुरुषान् दण्डयत।

१६. इस चोर ने तो घड़े ही फोड़े हैं उन्होंने तो दीवार फोड़ दी।
अयं चोरः तु घटान् एव भिन्नवान् ते तु भित्तिं भिन्नवन्तः।

१७. जब जेलर सब चोरों को बन्द कर चुका तब मैं दो चोरों को लेकर गया।

सर्वान् चोरान् कारां रुद्धवति काराध्यक्षे अहं द्वौ चोरौ गृहीत्वा तदन्तिकम् अगमम् ।

१८. रो चुके बालक के पास जाकर माता ने कहा—तू विद्यालय जाने से पहिले प्रतिदिन रोता है ।
रुदितवन्तं बालकम् उपसृत्य माता अवादीत्—त्वं विद्यालयगमनात् प्राक् नित्यं रोदिषि ।

१९. जब पुत्रों पर पिता क्रोध कर चुका, तब मैंने उनको खाने के लिये कहा ।
पुत्रेभ्यः क्रुद्धवन्तं पितरम् अहं भोक्तुम् अवादिषम् ।

२०. जब योगेन्द्र सारा दूध पी चुका, तब माता ने उसके पास जाकर कहा—देवेन्द्र के लिये कुछ नहीं छोड़ा ! सब पी गया ।
सकलं पयः पीतवन्तं योगेन्द्रम् उपसृत्य माता अब्रवीत्—देवेन्द्राय किञ्चिद् अपि न समतिष्ठिपः (समस्थापयः) ? सर्वं पीतवान् असि ।

२१. चन्दन घिस चुके साधुओं के पास जाकर मैंने कहा—थोड़ा चन्दन मुझे भी दो ।
मलयजं घृष्टवतां साधूनां समीपं गत्वा अहम् अचकथम्—मह्यम् अपि किञ्चित् चन्दनं यच्छत । अथवा
मलयजं घृष्टवतः साधून् उपगम्य अवादिषम्—किञ्चित् चन्दनं यच्छत ।

२२. जब तू यहाँ से चला गया तब मैंने तुझे रात-दिन याद किया ।
इतः गतवन्तं त्वाम् अहं नक्तन्दिवं स्मृतवान् ।

२३. मरे हुओं की चिन्ता छोड़कर जीते हुओं की रक्षा कर ।
मृतवतां चिन्ताम् अपहाय जीवतः रक्ष (बिभृहि, बिभृष्व, त्रायस्व) ।

२४. जब रावण सीता को हर ले गया तब राम लक्ष्मण कुटिया पर पहुंचे ।
सीतां हृतवति रावणे रामलक्ष्मणौ कुटीरम् आपतुः ।

२५. मेरे मित्रों ने मेरे शत्रुओं को बाँध लिया ।
मम मित्राणि मम शत्रून् बद्धवन्ति ।

२६. जब धन के लिये सब यत्न कर चुके तब मैंने उनको व्यापार के लिये प्रेरणा की ।
धनाय सर्वथा यत्तवतः तान् अहं वाणिज्याय प्राचूचुदम् (प्रैरिरम्) ।

२७. नेत्रहीनों के लिये आप लोगों ने क्या प्रबन्ध किया है ?
नेत्रहीनेभ्यः भवन्तः कं प्रबन्धं कृतवन्तः ?

२८. जब हारीत के शिष्यों ने काम क्रोधादि सब शत्रुओं को मार दिया तब दिल में शांति आई ।
सर्वान् कामक्रोधादीन् शत्रून् हतवतां हारीतशिष्याणां हृदि सौख्यम् अजायत ।

२९. भोजन खा चुके मनुष्यों के आगे से पात्र ले आओ ।
भोजन जग्धवतां पुरुषाणाम् अग्रतः पात्राणि आहरत ?

३०. मेरे मित्रों ने बादामपाक खाकर दूध पिया।
मम मित्राणि वातादपाकं भुक्त्वा क्षीरं पीतवन्ति।

३१. शराब पिये हुए इन सिपाहियों ने एक की भी रक्षा नहीं की।
सुरां पीतवन्तः एते आरक्षिणः एकम् अपि न पातवन्तः।

३२. जब राजा रघु ब्राह्मणों को सारा धन दे चुका तब कौत्स वहाँ पहुंचा।
ब्राह्मणेभ्यः अशेषं द्रविणं दत्तवति राजनि रघौ कौत्सः तम् आपेदे।

३३. जब मैं उनकी सब बातें सुन चुका तब उन्होंने मुझसे पांच प्रश्न पूछे।
तेषां सर्वाः वार्ताः श्रुतवन्तं मां ते पञ्च प्रश्नान् अप्राक्षुः।

३४. सुख से मेरे घर में ठहरे मेरे मित्रों ने मुझसे कहा—अब हमें जाने की अनुमति दीजिये।
मद्गेहं सुखम् अधिष्ठितवन्ति मे मित्राणि माम् अवादिषुः—भगवन्! अस्मान् गन्तुम् अनुजानीहि।

३५. जो साँप बिल में घुस चुके उनकी प्रतीक्षा मत कर, इधर उधर दौड़ते हुओं को मार?
बिले प्रविष्टवतः सर्पान् मा प्रतीक्षिष्ठाः इतस्ततः धावमानान् (धावतः) जहि।

३६. धन पाकर प्रसन्न हुए लोगों से गोशाला के लिये दान ला।
धनं प्राप्य हृष्टवद्भ्यः जनेभ्यः गोशालायै (गोशालाय) दानम् आनय।

३७. जो नहाये थे वे तो खाकर निवृत्त हो चुके?
ये स्नातवन्तः ते तु अशित्वा निवृत्तवन्तः?

३८. चोरों से डरी हुई लड़कियों से मैंने कहा यहाँ चोर का कोई डर नहीं सुख से सो जाओ।
चोरेभ्यः भीतवतीः बालाः अहम् अचकथं नास्ति काचिद् अत्र चौरभीः सुखं स्वपत।

३९. जब अध्यक्ष सब अध्यापकों को नियुक्त कर चुका तब मैंने पूछा—इनकी योग्यता देख ली आपने?
अखिलान् अध्यापकान् नियुक्तवन्तम् अध्यक्षम् अहं पृष्टवान्—किं त्वम् एषां योग्यतां दृष्टवान् असि?

४०. जब वे खूब खीर खाकर अच्छी तरह संतुष्ट हो गये तब मैंने हरेक के लिये पाँच पाँच रुपये दक्षिणा में दिये।
कणेहत्य पायसान्नं सम्भुज्य तुष्टवद्भ्यः तेभ्यः प्रत्येकस्मै पञ्च रूप्यकाणि अहं दक्षिणायां दत्तवान्।

४१. मेरी माता ने मेरी चालाकी जान ली? = मम माता मे सर्वं चातुर्यं विदितवती?

४२. नष्ट हुई वस्तुओं की चिन्ता मत कर = अलं नष्टवतां वस्तूनां चिन्तया।

४३. नष्ट हुए धनों की पण्डित चिन्ता नहीं करते।
नष्टवन्ति धनानि न शोचन्ति पण्डिताः।

४४. कपड़े धो चुके धोबियों को पुए बाँटो।
वस्त्राणि क्षालितवद्भ्यः रजकेभ्यः अपूपान् वितर।

४५. मकानों पर सफेदी करा चुके मकान मालिकों में से प्रत्येक से एक कूची ले आ।
भवनेषु सुधालेपं कारितवतां गृहस्वामिनां प्रत्येकस्मात् एकां कूचीम् आनय।

४६. न्याय के प्रमेयों की जिज्ञासा करने वालों की कक्षा में व्याख्यान दूंगा।
न्यायप्रमेयान् जिज्ञासिष्यमाणानाम् अधिकक्षं व्याख्यास्यामि।

४७. इस घण्टाघर के अङ्कों को बार-बार पढ़ चुके मनुष्यों से उनका स्वरूप पूछो।
अस्य कुद्रङ्गस्य अङ्कान् पापठितवतः मनुष्यान् तत्स्वरूपं पृच्छत।

४८. बहुत पका चुकी गृहिणी को अब मेरे भोजन के लिये मत सताओ।
पापचितवतीं गृहिणीम् अधुना मम भोजनाय मा पीपिडः (मा पिपीडः)

क्त प्रत्यय

भूतकाल में धातुमात्र से क्त प्रत्यय होता है। पूर्व में बता चुके हैं कि क्त और क्तवतु प्रत्ययों का नाम 'निष्ठा' है। 'क्त' में से 'क्' की इत्सञ्ज्ञा और लोप हो जाने पर 'त' शेष रहता है। कित्त्व के कारण गुणवृद्धिनिषेध और सम्प्रसारण आदि कार्य तथा इट् आगम आदि कार्य क्तवतु प्रत्यय के समान ही यहां पर भी होंगे। क्तवतु-प्रत्ययान्त शब्दों के अन्तिम भाग 'वान्' (वत्) को हटा देने पर जो स्वरूप बचता है बस वैसा ही क्त-प्रत्ययान्त का स्वरूप होगा। यथा क्तवतु→श्रुतवान्। क्त—श्रुतः। हृतवान्—हृतः। भुक्तवान्—भुक्तः आदि। 'श्रुत' 'भुक्त' आदि के रूप पुँल्लिङ्ग में 'राम' शब्द के समान, स्त्रीलिङ्ग में 'श्रुता, श्रुते, श्रुताः' आदि 'रमा' शब्द के समान और नपुंसकलिङ्ग में 'श्रुतं श्रुते श्रुतानि' आदि 'ज्ञान' शब्द के समान रूप चलेंगे। क्त प्रत्यय प्रायः करके कर्म अर्थ में अथवा भाव अर्थ में आता है।[1] सकर्मक धातुओं से कर्म में और अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव में। क्तप्रत्ययान्त शब्द सुबन्त होते हैं और विशेषणों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। भूतकालिक क्रिया के रूप में भी इनका प्रयोग होता है।

उदाहरणार्थ कुछ धातुओं के क्त-प्रत्ययान्त स्वरूप तीनों लिङ्गों में दर्शाते हैं—

---

१. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (अष्टा. ३.४.७०)

धातु + क्त	पुंलिङ्ग	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
कृ + क्त	कृतः	(किया हुआ)	कृता	कृतम्
ज्ञा ,,	ज्ञातः	(जाना हुआ)	ज्ञाता	ज्ञातम्
पा (पाने) ,,	पीतः	(पिया हुआ)	पीता	पीतम्
पा (रक्षणे) ,,	पातः	(रक्षा किया हुआ)	पाता	पातम्
दृश् ,,	दृष्टः	(देखा हुआ)	दृष्टा	दृष्टम्
वच् ,,	उक्तः	(कहा हुआ)	उक्ता	उक्तम्
भिद् ,,	भिन्नः	(फाड़ा हुआ)	भिन्ना	भिन्नम्
पच् ,,	पक्वः	(पकाया हुआ)	पक्वा	पक्वम्
शुष् ,,	शुष्कः	(सूखा हुआ)	शुष्का	शुष्कम्
हन् ,,	हतः	(मारा हुआ)	हता	हतम्
अद् ,,	जग्धः	(खाया हुआ)	जग्धा	जग्धम्
लिख् ,,	लिखितः	(लिखा हुआ)	लिखिता	लिखितम्
ग्रह् ,,	गृहीतः	(लिया हुआ)	गृहीता	गृहीतम्
चोरि ,,	चोरितः	(चोरा हुआ)	चोरिता	चोरितम्
कारि ,,	कारितः	(कराया हुआ)	कारिता	कारितम्
पापठ्य ,,	पापठितः	(बार-बार पढ़ा हुआ)	पापठिता	पापठितम्
पिपठिष ,,	पिपठिषितः	(पढ़ने को चाहा हुआ)	पिपठिषिता	पिपठिषितम्

अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता दोनों में क्त प्रत्यय होता है।[1] गति अर्थवाली (=ज्ञान, गमन और प्राप्ति अर्थ वाली) धातु से तथा श्लिष्, शीङ्, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, और जूष् इन धातुओं से कर्ता, कर्म और भाव तीनों में क्त प्रत्यय होगा।[2] श्लिष्, शीङ् आदि धातुएं यद्यपि अकर्मक हैं तथापि उपसर्ग साथ लगने पर ये सकर्मक हो जाती हैं, अतः इनका पृथक् से ग्रहण किया गया है।

कर्तृवाच्य—जब हम यह कहते हैं कि 'कर्ता में प्रत्यय होगा' अथवा 'कर्तृवाच्य' में प्रत्यय होगा' इसका अभिप्राय यह है कि—कर्ता में प्रथमा विभक्ति होगी, कर्म में द्वितीया होगी और क्रिया, कर्त्ता के अनुसार आयेगी।

कर्मवाच्य—जब हम यह कहते हैं कि 'कर्म में प्रत्यय होगा' अथवा 'कर्मवाच्य में प्रत्यय होगा' उसका अभिप्राय यह है कि – कर्त्ता में तृतीया होगी, कर्म में प्रथमा होगी और कर्म के अनुसार क्रिया बदलेगी। इसके लिये यह श्लोक रट लो—

यदा कर्ता प्रथमान्तः कर्मणि द्वितीया तदा।
यदा कर्ता तृतीयान्तः कर्मणि प्रथमा तदा॥

भाववाच्य—भाव क्रिया को कहते हैं। भाववाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। कर्म कोई होता ही नहीं है, अतः क्तप्रत्यान्त भाववाचक शब्द एकवचन और

---

१. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः (अष्टा. ३.४.६९)

२. गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च (अष्टा. ३.४.७२)

नपुंसकलिङ्ग में आयेगा। जब लकारों का वाच्यपरिवर्त्तन सिखायेंगे तब बतायेंगे कि जिस लकार को बदला जाता है उसी लकार के (आत्मनेपद) प्रथमपुरुष के एकवचन की क्रिया भाववाच्य में आयेगी अर्थात् कर्त्ता चाहे एक हो, दो हों अथवा बहुत हों, (=एकवचन हो, द्विवचन हो अथवा बहुवचन हो); क्रिया सदा प्रथमपुरुष के एकवचन में ही प्रयुक्त होगी।

अब गत्यर्थक आदि धातुओं के क्तप्रत्ययान्त स्वरूप दर्शाते हैं—

गत्यर्थक→ गम् + क्त	गतः	गया हुआ स्थान आदि / जा चुका मनुष्य	गता	गतम्
अकर्मक→ जागृ + क्त	जागरितः	(जागा हुआ)	जागरिता	जागरितम् (जागा गया)
श्लिष् + क्त	उपश्लिष्टः	आलिङ्गन किया हुआ / आलिङ्गन कर चुका	उपश्लिष्टा	उपश्लिष्टम्
शीङ् ,,	उपशयितः	समीप सोया गया / समीप सो चुका	उपशयिता	उपशयितम्
स्था ,,	अधिष्ठितः	समीप स्थित हुआ गया / समीप स्थित हो चुका	अधिष्ठिता	अधिष्ठितम्
आस् ,,	उपासितः	उपासना किया गया / उपासना कर चुका	उपासिता	उपासितम्
वस् ,,	उपोषितः	समीप बसा गया / समीप बस चुका	उपोषिता	उपोषितम्
जन् ,,	अनुजातः	जिसके पीछे पैदा हुआ / जो पीछे पैदा हुआ	अनुजाता	अनुजातम्
रुह् ,,	आरूढः	चढ़ा गया वृक्ष / चढ़ चुका मनुष्य	आरूढा	आरूढम्
जृष् ,,	अनुजीर्णः	जिसके पीछे जीर्ण हुआ / जो जीर्ण हो चुका	अनुजीर्णा	अनुजीर्णम्

इन गम् आदि १० धातुओं के उदाहरण दर्शाते हैं—

धातु (+क्तप्रत्यय)	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य	भाववाच्य
गत्यर्थक गम् + क्त→	रामः ग्रामं गतः।	रामेण ग्रामः गतः।	रामेण गतम्
अकर्मक-जागृ + क्त→	रामः जागरितः।	————————	रामेण जागरितम्
श्लिष् ,,→	अहं स्वमित्राणि आश्लिष्टः।	मया स्वमित्राणि आश्लिष्टानि।	मया आश्लिष्टम्
शीङ् ,,→	ते शय्याम् अधिशयिता।	तैः शय्या अधिशयिता।	तैः अधिशयितम्
स्था ,,→	ते मम ग्रामम् अधिष्ठिताः।	तैः मम ग्रामः अधिष्ठितः।	तैः अधिष्ठितम्

आस् + क्त → तौ कटम् अध्यासितौ ।

ताभ्यां कटः अध्यासितः । तैः अध्यासितम्

वस् ,, → मित्राणि देशम् अध्युषितानि ।

मित्रैः देशः अध्युषितः । मित्रैः अध्युषितम्

जन् ,, → ओम्प्रभा सुशीलाम् अनुजाता ।

ओम्प्रभया सुशीला अनुजाता । ओम्प्रभया अनुजातम्

रुह् ,, → विमला वृक्षम् अधिरूढा ।

विमलया वृक्षः अधिरूढः । विमलया अधिरूढम्

जॄष् ,, → कटिवस्त्रं कञ्चुकम् अनुजीर्णम् ।

कटिवस्त्रेण कञ्चुकः अनुजीर्णः कटिवस्त्रेण जीर्णम्

अभ्यास

१. हमने रणथम्भौर का किला देख लिया, इन महिलाओं ने भी देख लिया, पर मेरे मित्रों ने नहीं देखा ।

अस्माभिः रणथम्भौर-दुर्गं दृष्टं, आभिः महिलाभिः अपि दृष्टं, किन्तु मम मित्रैः न दृष्टम् ।

२. मैंने उससे सब बातें पूछी = मया सः सर्वाः वार्ताः पृष्टः ।

३. तुम्हारी माता ने तुम से क्या पूछा था ? = युष्माकं मात्रा यूयं किं पृष्टाः ?

४. मेरे दो मित्र महीने भर मेरे घर रहे ।

मम मित्राभ्यां मासं यावत् मम गृहे उषितम् ।

५. मैंने उसको पुस्तकें दीं = कर्तृवाच्य—अहं तस्मै पुस्तकानि दत्तवान् ।

कर्म०—मया तस्मै पुस्तकानि दत्तानि ।

६. मैंने उसको कम्बल दिया ।

कर्तृ०—अहं तस्मै कम्बलं दत्तवान् । कर्म०—मया तस्मै कम्बलः दत्तः ।

७. मैंने उसको दो रोटियां दी ।

कर्तृ०—अहं तस्मै द्वे रोटिके दत्तवान् । कर्म०—मया तस्मै द्वे रोटिके दत्ते ।

८. मेरे मित्र ने वन में दो शेर देखे ।

कर्तृ०—मम मित्रं वने सिंहौ दृष्टवत् । कर्म०—मम मित्रेण वने सिंहौ दृष्टौ ।

९. मैंने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़ी ।

कर्तृ०—अहम् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकां पठितवान् ।

कर्म०—मया ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पठिता ।

१०. दयानन्द ने सारे शास्त्र पढ़े ।

कर्तृ०—दयानन्दः सर्वाणि शास्त्राणि पठितवान् ।

कर्म०—दयानन्देन सर्वाणि शास्त्राणि पठितानि ।

११. बनारस में रहते हुए मैंने आयुर्वेद पढ़ा।

कर्तृ०—वाराणस्यां वसन् अहम् आयुर्वेदं पठितवान्।
कर्म०—वाराणस्यां वसता मया आयुर्वेदः पठितः।

१२. कल घर जाते हुए हमने मोहन के बाग में आम खाये।
कर्तृ०—ह्यः गृहं गच्छन्तः वयं मोहनस्य उद्यानम् अधिष्ठाय आम्राणि (२-३) आस्वादितवन्तः। कर्म०—ह्यः गृहं गच्छद्भिः अस्माभिः मोहनस्य उद्यानम् अधिष्ठाय आम्राणि (१-३) आस्वादितानि।

१३. लखनऊ में रहते हुए आप सबने महीने में कितने कार्य किये।

कर्तृ०—लक्ष्मणपुरम् अधिवसन्तः भवन्तः मासेन[1] कियन्ति कार्याणि (२-३) कृतवन्तः? कर्म०—लक्ष्मणपुरम् अधिवसद्भिः भवद्भिः मासेन[1] कियन्ति कार्याणि (१-३) कृतानि?

१४. शङ्कर ने चार वर्ष में चारों वेद पढ़ लिये।

कर्तृ० — शङ्करः चतुर्भिः वर्षैः[1] चतुरः वेदान् अधीतवान्।
कर्म०— शङ्करेण चतुर्भिः वर्षैः[1] चत्वारः वेदाः अधीताः।

१५. कुडामल ने पांच वर्ष संस्कृत पढ़ी (पर आई नहीं)।
कर्तृ० — कुडामलः पञ्चवर्षाणि[2] संस्कृतम् (२.१) अधीतवान्।
कर्म०—कुडामलेन पञ्च वर्षाणि[2] संस्कृतम् (१.१) अधीतम्।

१६. योरोप में घूमते हुए आप कितने देशों में रहे?

कर्तृ०—हरिवर्षे भ्रमन्तः भवन्तः कियतः देशान् अध्युषितवन्तः (अध्युषिताः)
कर्म०—हरिवर्षे भ्रमद्भिः भवद्भिः कियन्तः देशाः अध्युषिताः।

१७. बम्बई से आते हुए आप रास्ते में कितने स्थानों पर ठहरे।

कर्तृ०—मुम्बापुर्याः आगच्छन्तः भवन्तः मार्गे कियन्ति स्थानानि (२-३) अधिष्ठिताः (अधिष्ठितवन्तः)।
कर्म०—मुम्बापुर्याः आगच्छद्भिः भवद्भिः मार्गे कियन्ति स्थानानि (१-३) अधिष्ठितानि।

१८. भोजन पकाती हुई माता ने दो पुत्रों को कहा।

---

१. जहाँ फल-प्राप्ति हो जाने पर (काम में सफलता मिल जाने पर) क्रिया की परिसमाप्ति हो जाती है वहाँ कालवाची शब्द में तृतीया विभक्ति (अपवर्गे तृतीया अष्टा. २.३.६) होती है। २. अन्यथा द्वितीया विभक्ति (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे, अष्टा. २.३.५) होती है।

कर्तृ०—भोजनं पचन्ती (पचमाना) माता पुत्रौ (२.२) उदितवती।
कर्म०—भोजनं पचन्त्या (पचमानया) मात्रा पुत्रौ (१.२) उदितौ।

१६. विद्यालय जाते हुए मेरे दो मित्रों ने खेलते हुए मोहन को पुस्तकें दी।
कर्तृ०—विद्यालयं गच्छन्ती मम मित्रे क्रीडते मोहनाय द्वे पुस्तके (२-२) दत्तवती।
कर्म०—विद्यालयं गच्छद्भ्यां मम मित्राभ्यां क्रीडते मोहनाय द्वे पुस्तके (१-२) दत्ते।

२०. खेलती हुई लड़कियों ने फल खाती हुई शारदा को मारा।
कर्तृ०—क्रीडन्त्यः बालाः फलानि भक्षयन्तीं शारदां ताडितवत्यः।
कर्म०—क्रीडन्तीभिः बालाभिः फलानि भक्षयन्ती शारदा ताडिता।

२१. अतिथियों को भोजन देते हुए देवेन्द्र ने लड़कों को और भोजन लाने को कहा।
कर्तृ०—अतिथिभ्यः भोजनं ददत् देवेन्द्रः बालकान् अन्यत् भोजनम् आनेतुं कथितवान्।
कर्म०—अतिथिभ्यः भोजनं ददता देवेन्द्रेण बालकाः अन्यत् भोजनम् आनेतुं कथिताः।

२२. वृक्ष से गिरते हुए पके हुए आम देखकर दौड़ते हुए सुरेन्द्र ने खेलती हुई दीपिका से कहा—दौड़ दौड़ आम खा।
कर्तृ०—वृक्षात् पतन्ति पक्वानि आम्राणि दृष्ट्वा धावन् (धावमानः) सुरेन्द्रः क्रीडन्तीं दीपिकाम् उक्तवान्—धाव (धावस्व) आम्राणि खाद।
कर्म०—वृक्षात् पतन्ति पक्वानि आम्राणि दृष्ट्वा धावता (धावमानेन) सुरेन्द्रेण क्रीडन्ती दीपिका उक्ता—धाव (धावस्व) आम्राणि खाद।

२३. वनमार्ग से जाते हुए दो पुरुषों ने वन में घूमते हुए दो शेरों को देखते हुए, लकड़ियों का भार ले जाते हुए कुछ मनुष्यों से कहा—लकड़ियों का भार फेंक दो, वन में दो शेर घूम रहे हैं।
कर्तृ०—वनमार्गेण गच्छन्तौ पुरुषौ अरण्ये अटन्तौ सिंहौ पश्यन्तौ, काष्ठभारान् उद्वहतः जनान् कथितवन्तौ—अरे! भारान् क्षिपत वने सिंहौ भ्रमतः।
कर्म०—वनमार्गेण गच्छद्भ्यां पुरुषाभ्याम् अरण्ये अटन्तौ सिंहौ पश्यद्भ्यां, काष्ठभारान् उद्वहन्तः जनाः कथिताः—अरे! भारान् क्षिपत वने सिंहौ भ्रमतः।

२४. घर का काम करती हुई दो लड़कियों ने पास में खेलते हुए अपने भाई से कहा—मां को बुला ला।

कर्तृ०—गृहकार्याणि कुर्वंत्यौ बाले समीपे क्रीडन्तं स्वभ्रातरम् उदितवत्यौ—मातरम् आकारय।

कर्म०—गृहकार्याणि कुर्वतीभ्यां बालाभ्यां समीपे क्रीडन् स्वभ्राता उदित :—मातरम् आकारय।

२५. अपनी बगिया के बढ़ते हुए वृक्षों को देखकर खुश होते हुए बच्चों ने पास में खाट पर बैठे हुए अपने पिता से कहा—हमारे वृक्ष बढ़ रहे हैं।

कर्तृ०—निजनिष्कुटस्य वर्द्धमानान् वृक्षान् विलोक्य मोदमानाः बालाः निकटे खट्वाम् अध्यासितं पितरम् उक्तवन्तः—अस्माभिः आरोपिताः वृक्षाः वर्धमानाः सन्ति।

कर्म०—निजनिष्कुटस्य वर्द्धमानान् वृक्षान् विलोक्य मोदमानैः बालैः निकटे खट्वाम् अध्यासितः पिता उक्तः—अस्माभिः आरोपिताः वृक्षा, वर्धमानाः सन्ति।

२६. आप सबने क्या लिखा।

कर्तृ०—भवन्तः किं लिखितवन्तः। कर्म०—भवद्भिः किं लिखितम्।

२७. वे कहाँ सोये थे ?

कर्तृ०—ते कुत्र सुप्तवन्तः (सुप्ताः) ?
भाववाच्य—तैः कुत्र सुप्तम् ?

२८. तुम्हारी माताजी हरिद्वार में कहाँ ठहरी थीं ?

कर्तृ०—यौष्माकीना माता हरिद्वारे कुत्र स्थितवती (स्थिता) ?

भाव०—यौष्माकीनया मात्रा हरिद्वारे कुत्र स्थितम् ?

२९. मैंने सुना है, मध्यप्रदेश में बहुत से आदमी हैजे से मर गए।

कर्तृ०—अहं श्रुतवान् मध्यप्रदेशे बहवः जनाः विषूचिकारोगेण मृताः।
भाव०— मया श्रुतं मध्यप्रदेशे बहुभिः जनैः विषूचिकारोगेण मृतम्।

३०. उसका सारा धन नष्ट हो गया।

कर्तृ०—तस्य सर्वं धनं नष्टवत् (नष्टम्)
भाव०—तस्य सर्वेण धनेन नष्टम्।

३१. उसको मेरी बातें अच्छी लगी।

कर्तृ०—तस्मै मम वार्ताः रुचिताः (रुचितवत्यः)।
भाव०—तस्मै मम वार्ताभिः रुचितम्।

३२. राजपाल के सब काम हो गये।

कर्तृ०—राजपालस्य सर्वाणि कार्याणि भूतवन्ति (भूतानि)।
भाव०—राजपालस्य सर्वैः कार्यैः भूतम्।

३३. तालाब पर बहुत सी लड़कियाँ खेलीं थीं।

कर्तृ०—तडागे बह्व्यः बालाः क्रीडितवत्यः (क्रीडिताः)।
भाव०—तडागे बह्वीभिः बालाभिः क्रीडितम्।

३४. आज बिजली चमकी।

कर्तृ०—अद्य चपला दीप्तवती (दीप्ता)।
भाव०—अद्य चपलया दीप्तम्।

णिनि प्रत्यय

जातिवाची शब्द को छोड़कर अन्य कोई कर्म कारक आदि सुबन्त शब्द पहिले लगा हो (=उपपद में हो) तो धातुमात्र से स्वभाव अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।[1] यथा—उष्णभोजी=गर्म भोजन खाने के स्वभाव वाला। उपमानवाची कर्तृ कारक सुबन्त उपपद में रहने पर भी धातु-मात्र से णिनि होता है।[2] यथा—उष्ट्रक्रोशी=ऊंट के समान चिल्लाने वाला। व्रत (=शास्त्रीय नियम) का प्रसङ्ग हो तब भी सुबन्त उपपद में रहने पर धातु मात्र से णिनि प्रत्यय होता है[3], यथा—स्थण्डिलशायी=चबूतरे पर ही सोने वाला। किसी क्रिया को पुनः पुनः करने के विषय में भी णिनि प्रत्यय होता है[4], यथा—क्षीरपायिणः उशीनराः=बार बार दूध पीने वाले उशीनर देशवासी। सुबन्त उपपद में रहने पर मन् धातु से मानने अर्थ में[5] अथवा अपने को मानने अर्थ में[6] भी णिनि प्रत्यय होता है, यथा—दर्शनीयमानी=दर्शनीय मानने वाला अथवा स्वयं को दर्शनीय मानने वाला। णिनि में से 'ण्' की इत्सञ्ज्ञा[7] और अन्तिम इ की इत्सञ्ज्ञा[8] तथा लोप होने पर 'इन्' भाग शेष रहता है। इन् (=णिनि) प्रत्यय के णित् होने से इगन्त (=इ, उ, ऋ जिसके अन्त में हो) धातु के अन्तिम स्वर को वृद्धि[9] होकर ऐ, औ, आर् हो जायेंगे और ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् हो जायेगा[10]। यथा—स्थण्डिल शी+इन्=स्थण्डिलशायी, ध्वाङ्क्ष रु+इन्=ध्वाङ्क्षरावी, शुष्कहृ+इन्=शुष्कहारी आदि। धातु की उपधा

---

१. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये (अष्टा. ३.२.७८)
२. कर्तर्युपमाने (अष्टा. ३.२.७९)
३. व्रते (अष्टा. ३.२.८०)
४. बहुलमाभीक्ष्ण्ये (अष्टा. ३.२.८१)
५. मनः (अष्टा. ३.२.८३)
६. आत्ममाने खश्च (अष्टा. ३.२.८२)
७. चुटू (अष्टा. १.३.७)
८. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (अष्टा. १.३.२)
९. अचो ञ्णिति (अष्टा. ७.२.११५)
१०. एचोऽयवायावः (अष्टा. ६.१.७८)

में ह्रस्व अकार होगा तो उसको वृद्धि (=आ) हो जायेगी।[1] यथा—दर्शनीय मन्+इन्=दर्शनीयमानी। धातु की उपधा में इक् (=इ, उ, ऋ) होगा तो उसको गुण (=ए, ओ, अर्) हो जायेगा।[2] यथा—शुद्ध लिख्+इन्—शुद्धलेखी, उष्ण भुज्+इन्=उष्णभोजी,मयूर नृत्+इन्=मयूरनर्ती आदि। यदि धातु के अन्त में आ होगा तो य् (=युक्) का आगम होगा।[3] यथा—क्षीर पा+इन्=क्षीरपा य् इन्=क्षीरपायी आदि।

ये सब णिनि (=इन्) प्रत्ययान्त शब्द विशेषण होते हैं। पुंल्लिङ्ग में 'उष्णभोजी उष्णभोजिनौ उष्णभोजिनः' आदि रूप 'करिन्' शब्द के रूपों के समान चलेंगे। प्रथमा के एकवचन में 'इन्' के इ को दीर्घ होगा।[4] स्त्रीलिङ्ग में ई (ङीप्) अन्त में लगने[5] पर उष्णभोजिनी, स्थण्डिलशायिनी आदि स्वरूप हो जायेगा और 'उष्णभोजिनी उष्णभोजिन्यौ उष्णभोजिन्यः' आदि रूप, 'गौरी' के समान चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में उष्णभोजि उष्णभोजिनी, उष्णभोजीनि' आदि रूप 'वारि' शब्द के समान चलेंगे।

णिनि प्रत्ययान्त शब्दों का विग्रह इस प्रकार होगा—उष्णभोजी→उष्णं भोक्तुं तच्छीलः (=तत्स्वभावः) इति उष्णभोजी अथवा उष्णं भोक्तुं शीलं यस्य सः उष्णभोजी। उष्ट्रक्रोशी→उष्ट्र इव क्रोशति इति उष्ट्रक्रोशी। आदि॥ 'उष्णम्', 'उष्ट्रः' आदि सुबन्तों का 'भोजिन्', 'क्रोशिन्' आदि शब्दों के साथ उपपदतत्पुरुष समास होता है।[6] परिणाम-स्वरूप दोनों शब्द मिलकर एक शब्द (=प्रातिपदिक-सञ्ज्ञक) हो जायेगा[7] और मध्यवर्ती विभक्ति ('अम्', 'सु' आदि) का लोप हो जायेगा[8]।

अब हम णिनि-प्रत्ययान्त कुछ शब्दों के स्वरूपों को तीनों लिङ्गों में दर्शाते हैं—

---

१. अत उपधायाः (अष्टा. ७.२.११६)
२. पुगन्तलघूपधस्य च (अष्टा.७.३.८६)
३. आतो युक् चिण्कृतोः (अष्टा.७.३.३३)
४. सौ च (अष्टा. ६.४.१३)
५. ऋन्नेभ्यो ङीप् (अष्टा. ४.१.५)
६. उपपदमतिङ् (अष्टा. २.२.१९)
७. कृत्तद्धितसमासाश्च (अष्टा. १.२.४६)
८. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (अष्टा. २.४.७१)

उपपद + धातु + णिनि = प्रातिपदिक	पुंल्लिङ्ग शब्द	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग०
ब्रह्मन् + चर् + इन् = ब्रह्मचारिन्	ब्रह्मचारी	(ब्रह्म में विचरण के स्वभाव वाला)	ब्रह्मचारिणी	ब्रह्मवारि
अकारण + द्विष् + इन् = अकारणद्वेषिन्	अकारणद्वेषी	(अकारण द्वेष करने के स्वभाव वाला)	अकारणद्वेषिणी	अकारणद्वेषि
सुख + दा + इन् = सुखदायिन्	सुखदायी	(सुख देने के स्वभाव वाला)	सुखदायिनी	सुखदायि
क्षिप्र + कृ + इन् = क्षिप्रकारिन्	क्षिप्रकारी	(जल्दी करने के स्वभाव वाला)	क्षिप्रकारिणी	क्षिप्रकारि
सर्व + भक्ष् + इन् = सर्वभक्षिन्	सर्वभक्षी	(सब कुछ खाने के स्वभाव वाला)	सर्वभक्षिणी	सर्वभक्षि
मांस + अश् + इन् = मांसाशिन्	मांसाशी	(बार-बार मांस खाने वाला)	मांसाशिनी	मांसाशि
चिर + स्था + इन् = चिरस्थायिन्	चिरस्थायी	(बहुत समय तक टिकने के स्वभाव वाला)	चिरस्थायिनी	चिरस्थायि
परद्रव्य + अपहृ + इन् = परद्रव्यापहारिन्	परद्रव्यापहारी	(परायी वस्तु बार-बार चुराने वाला)	परद्रव्यापहारिणी	परद्रव्यापहारि
अग्रे + भू + इन् = अग्रेभाविन्[1]	अग्रेभावी	(आगे होने के स्वभाव वाला)	अग्रेभाविनी	अग्रेभावि
अनु + जीव् + इन् = अनुजीविन्	अनुजीवी	(आश्रय से जीने के स्वभाव वाला)	अनुजीविनी	अनुजीवि
चिर + जीव् + इन् = चिरजीविन्	चिरजीवी	(दीर्घकाल तक जीने के स्वभाव वाला)	चिरजीविनी	चिरजीवि
वन + विहृ + इन् = वनविहारिन्	वनविहारी	(वन में बार-बार विचरने वाला)	वनविहारिणी	वनविहारि
परपिण्ड + भुज् + इन् = परपिण्डभोजिन्	परिपिण्डभोजी	(पराया अन्न बार-बार खाने वाला)	परपिण्डभोजिनी	परपिण्डभोजि
अनु + या + इन् = अनुयायिन्	अनुयायी	(पीछे चलने के स्वभाव वाला)	अनुयायिनी	अनुयायि
युद्ध + अभिलष् + इन् = युद्धाभिलाषिन्	युद्धाभिलाषी	(लड़ने की लालसा के स्वभाव वाला)	युद्धाभिलाषी	युद्धाभिलाषि
[2]साधु + कृ + इन् = साधुकारिन्	साधुकारी	(उत्तम प्रकार से करने वाला)	साधुकारिणी	साधुकारि
[3]ब्रह्मन् + वद् + इन् = ब्रह्मवादिन्	ब्रह्मवादी	(वेद या ईश्वर का प्रवचन करने वाला)	ब्रह्मवादिनी	ब्रह्मवादि
पण्डित + मन् + इन् = पण्डितमानिन्	पण्डितमानी	(अपने आपको पण्डित मानने वाला)	पण्डितमानिनी	पण्डितमानि

१. तत्पुरुषे कृति बहुलम् (अष्टा. ६.३.१४) से सप्तमी के लुक् (लोप) का निषेध। २. साधुकारिणि च [वा०] (अष्टा. ३.२.७८)
३. ब्रह्मणि वदः [वा०] (अष्टा. ३.२.७८)

कुछ धातुओं से ताच्छील्य (= तत्स्वभावता), व्रत अथवा पुनः पुनः करना आदि अर्थ न हो तब भी णिनि प्रत्यय केवल सामान्य कर्त्ता अर्थ में होता है।[1]

उपपद + धातु + णिनि, प्रातिपदिक	पुंलिङ्ग शब्द	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
ग्रह् + णिनि + इन् = ग्राहिन्	ग्राही	(ग्रहण करने वाला)	ग्राहिणी	ग्राहि
उत् + सह् + इन् = उत्साहिन्	उत्साही	(उत्साह करने वाला)	उत्साहिनी	उत्साहि
स्था + इन् = स्थायिन्	स्थायी	(टिकाऊ)	स्थायिनी	स्थायि
मत्रि + इन् = मन्त्रिन्	मन्त्री	(सलाह देने वाला)	मन्त्रिणी	मन्त्रि
निवस् + इन् = निवासिन्	निवासी	(रहने वाला)	निवासिनी	निवासि

घिनुण् प्रत्यय

णिनि के समान ही घिनुण् प्रत्यय भी है। कुछ धातुओं से तत्स्वभावता, उस धर्म वाला (=गुण वाला) होना अथवा क्रिया को उत्तम रीति से करना इन अर्थों में घिनुण् प्रत्यय होता है[2]। घिनुण् के घ् की इत्सञ्ज्ञा,[3] उ की इत्सञ्ज्ञा[4] और ण् की इत्सञ्ज्ञा[5] तथा लोप होने पर 'इन्' भाग शेष रहता है। घिनुण् (=इन्) भी णित् है अतः णिनि के समान ही यहाँ पर भी धातु को वृद्धि और युक् आगम आदि कार्य होंगे। उपधा को गुण भी पूर्ववत् होगा। विशेषता यह है कि यह प्रत्यय घित् है, अतः धातु के अन्त में यदि च् या ज् होगा तो उसके स्थान पर क्रमशः क् या ग् हो जायेगा[6]।

---

१. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः (अष्टा. ३.१.१३८)

२. 'शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्', 'सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च', 'वौ कषलसकत्थस्रम्भः', 'अपे च लषः', 'प्रे लपसृद्रुमथवदवसः' (अष्टा. ३.२.१४१, १४२, १४३, १४४, १४५)।

३. लशक्वतद्धिते (अष्टा. १.३.८)।

४. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (अष्टा. १.३.२)

५. हलन्त्यम् (अष्टा. १.३.३.)।

६. चजोः कु घिण्ण्यतोः (अष्टा. ७.३.५२)।

धातु + घिनुण् = प्रातिपदिक	पुंलिङ्ग शब्द	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
प्र मद् + घिनुण् (इन्) = प्रमादिन्	प्रमादी	(लापरवाही के स्वभाव वाला)	प्रमादिनी	प्रमादि
उत् मद् + इन् = उन्मादिन्	उन्मादी	(पागलपन के गुण से युक्त)	उन्मादिनी	उन्मादि
शम् + इन् = [1]शमिन्	शमी	(शान्ति गुण वाला)	शमिनी	शमि
श्रम् + इन् = [1]श्रमिन्	श्रमी	(श्रम करने के स्वभाव वाला)	श्रमिणी	श्रमि
सम्पृच् + इन् = सम्पर्किन्	सम्पर्की	(सम्पर्क में रहने के स्वभाव वाला)	सम्पर्किणी	सम्पर्कि
सम्सृज् + इन् = संसर्गिन्	संसर्गी	(संगति में रहने के स्वभाव वाला)	संसर्गिणी	संसर्गि
परिदह् + इन् = परिदाहिन्	परिदाही	(दाह करने के गुण से युक्त)	परिदाहिनी	परिदाहि
दुष् + इन् = दोषिन्	दोषी	(विकार गुण वाला)	दोषिणी	दोषि
द्विष् + इन् = द्वेषिन्	द्वेषी	(अप्रीति रखने के स्वभाव वाला)	द्वेषिणी	द्वेषि
द्रुह् + इन् = द्रोहिन्	द्रोही	(अनिष्ट चाहने के स्वभाव वाला)	द्रोहिणी	द्रोहि
युज् + इन् = योगिन्	योगी	(समाधि लगाने के, जोड़ने के स्वभाव वाला)	योगिनी	योगि
विविच् + इन् = विवेकिन्	विवेकी	(निर्णय = विचार करने के स्वभाव वाला)	विवेकिनी	विवेकि
त्यज् + इन् = त्यागिन्	त्यागी	(त्याग करने के स्वभाव वाला)	त्यागिनी	त्यागि
रञ्ज् + इन् = [2]रागिन्	रागी	(आसक्ति धर्म वाला)	रागिणी	रागि
भज् + इन् = भागिन्	भागी	(सेवन करने के स्वभाव वाला)	भागिनी	भागि
विलस् + इन् = विलासिन्	विलासी	(आमोद प्रमोद के गुण वाला)	विलासिनी	विलासि
विलष् + इन् = विलाषिन्	विलाषी	(विशेष रूप से चाहने वाला)	विलाषिणी	विलाषि
प्रलप् + इन् = प्रलापिन्	प्रलापी	(बकवास करने के स्वभाव वाला)	प्रलापिनी	प्रलापि
प्रमथ् + इन् = प्रमाथिन्	प्रमाथी	(मथने के गुण वाला)	प्रमाथिनी	प्रमाथि
प्रवस् + इन् = प्रवासिन्	प्रवासी	(परदेश में रहने वाला)	प्रवासिनी	प्रवासि

१. नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः (अष्टा. ७.३.३४) से वृद्धि का निषेध।

२. घिनुण्-विधायक सूत्र ('सम्पृचानु०······,) में ही 'रज' पढा है, इस निर्देश से 'रञ्ज्' के ञ् का लोप अथवा 'घिनुणि च रञ्जेरुपसङ्ख्यानम्' (अष्टा. ६.४.२४) इस वार्तिक से न् का लोप।

अभ्यास

१. ब्रह्मचारी वेदपाठी होते हैं—ब्रह्मचारिणः वेदपाठिनः भवन्ति ।

२. बिना कारण जो द्वेष करता हो उसे मनुष्य कैसे प्रसन्न करे ।
'अकारणद्वेषि तु यस्य मानसं कथं नरस्तं परितोषयिष्यति' ।

३. अधिक गरम खाने वालों के पेट में अलसर होते हैं, ऐसा चिकित्सकों का कहना है ।
अत्युष्णभोजिनां मानवानाम् उदरे व्रणाः भवन्ति इति चिकित्सकानां राद्धान्तः ।

४. दूध पीने वाले कभी रोगी नहीं होते—न खलु क्षीरपायिणः रोगिणः भवन्ति ।

५. विद्वान् पुत्र सुख देते हैं—विद्वांसः पुत्राः सुखदायिनः भवन्ति ।

६. जल्दी करने वालों के काम सफल नहीं होते ।
क्षिप्रकारिणां कार्याणि न फलवन्ति भवन्ति ।

७. सब कुछ खा जाने वाले ब्राह्मण किसी को अच्छे नहीं लगते ।
सर्वभक्षिणः ब्राह्मणाः न कस्मैचिद् अपि रोचन्ते ।

८. मुसलमान यों कहते हैं कि ये मूंग की दाल पीने वाले हम मांसाहारियों के साथ क्या लड़ेंगे ।
इत्थं किल मुहम्मदमतानुयायिनः व्याहरन्ति—किं कृत्वा मुद्गसूपपायिनः एते मांसाशिभिः अस्माभिः सह योत्स्यन्ते ?

९. झांसी की रानी लक्ष्मी बाई दूर दृष्टि वाली, विचार करके काम करने वाली, सब का हित चाहने वाली और अपने देश को मानने वाली थी ।
झांसीराज्यस्य राज्ञी लक्ष्मीदेवी दूरदर्शिनी, विचारकारिणी, सर्वहिताभिलाषिणी स्वदेशमानिनी चासीत् ।

१०. ये टेरिकॉट के कपड़े सूती वस्त्रों से अधिक टिकाऊ होते हैं ।
एतानि टेरिकॉटाख्यानि वासांसि कार्पासवासोभ्यः सुतरां चिरस्थायीनि भवन्ति ।

११. दूसरों का धन चुराने वालों के मनोरथ यदि सिद्ध हो जायें, तो संसार नष्ट हो जाये ।
परद्रव्यापहारिणां चेत् मनोरथाः सिध्येयुः, सर्वं जगत् विनश्येत् ।

१२. 'सर्पाणां खलानां च परद्रव्यापहारिणाम् ।
अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्त्तते जगत्' ॥ [श्लोक]
—सांपों, दुष्टों और पराया धन चुराने वालों के सब मंसूबे पूरे नहीं होते, इसलिये यह संसार टिका हुआ है ।

१३. आगे होने वाली घटना को कौन जानता है।
को जानाति अग्रे भाविनीं घटनाम् ?

१४. जो सेवकों को बिना मिष्टान्न दिये स्वयं अकेले खाते हैं, वे पाप ही खाते हैं ऐसा वेदों ने हमें बताया है।
ये अनुजीविभ्यः मिष्टान्नम् अदत्त्वा एकाकिनः भुञ्जते, ते पापम् एव भुञ्जते इति वेदाः अस्मान् प्रत्यपीपदन्।

१५. वन में विचरण करने वाले तपस्वी तप किया करते थे।
वनविहारिणः तपस्विनः तपः तेपुः।

१६. पराया अन्न खाने वाले आदर का पात्र नहीं होते।
अभाजनानि किल परपिण्डभोजिनः भवन्ति समादरस्य।

१७. लड़ाई चाहने वाले राजा अपने देश को खतरे में डाल देते हैं।
युद्धाभिलाषिणः पार्थिवाः स्वदेशं सन्देहदोलाम् अधिरोपयन्ति।

१८. बदनाम गाँव के रहने वालों का नगर निवासी आदर नहीं करते।
कुग्रामवासिनः जनान् नगरवासिनः न अभिनन्दन्ति।

१९. पर्वतीय लोग बिन्ध्य क्षेत्र में रहने वाली लड़कियों से विवाह नहीं करते हैं।
पर्वतीयाः जनाः विन्ध्यवासिनीः कन्याः न समुद्वहन्ति।

२०. मेरे मित्र सदा मेरे पीछे चलने वाले हैं।
सदा माम् अनुयायीनि सन्ति मे मित्राणि।

२१. प्रिय बोलने वाले लोग सब को वश में कर लेते हैं।
प्रियवादिनः जनाः सर्वान् वशंवदान् विदधति।

२२. कौन ऐसा मनुष्य है जो मधुरभाषिणी स्त्री को पसंद न करे।
को नाम जनः मधुरभाषिणीं वनितां न अभिनन्देत्।

२३. अपने आप को पण्डित मानने वाले ब्राह्मण अपने मत को वेद से सिद्ध न कर सके।
पण्डितमानिनः ते ब्राह्मणाः स्वमतं वेदप्रतिपादितं दर्शयितुं न अशक्नुवन्।

२४. परब्रह्म ने प्रकृति से यह सृष्टि रची है, ऐसा ब्रह्मवादी कहते हैं।
परब्रह्मणा प्रकृत्या इयं सृष्टिः विरचिता इति ब्रह्मवादिनः वदन्ति।

२५. उत्साह सम्पन्न लोग स्थिर सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं।
उत्साहिनः जनाः स्थायिनीं सम्पदं प्राप्नुवन्ति।

२६. मन्त्रिमण्डल के तीन मन्त्री राजस्थान के रहने वाले हैं।
मन्त्रिमण्डलस्य त्रयः मन्त्रिणः राजस्थान-निवासिनः सन्ति।

२७. ये लापरवाह लोग कभी विद्या के ग्रहण करने वाले नहीं हो सकते।
एते प्रमादिनः जनाः जातुचिदपि विद्याग्राहिणः न भवितुम् अर्हन्ति।

२८. पागल लोग ही गालियाँ दिया करते हैं।
उन्मादिनः एव गालिप्रदानं कुर्वन्ति।

२९. दोषी लोग ही निरर्थक द्वेष करने वाले होते हैं।
दोषिणः एव निरर्थकं द्वेषिणः भवन्ति।

३०. परदेश में रहने वाले भारतीयों ने कभी विद्रोह का आचरण नहीं किया।
प्रवासिनः भारतीयाः कदापि द्रोहिणः न अभूवन्।

३१. त्यागशील और विचारवान् नेताओं ने ही स्वतन्त्रता की प्राप्ति की थी।
त्यागिनः विवेकिनः च नेतारः एव स्वातन्त्र्यम् लेभिरे।

३२. हे कृष्ण महाराज ! यह मन बड़ा ही चञ्चल, मथ देने वाला, बलवान् और दृढ़ है।
'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्'[1]।

३३. ये आमोद प्रमोदशील और आसक्त लोग कैसे योग के अभ्यासी बनेंगे।
एते विलासिनः रागिणः च जनाः कथमिव योगिनः संवर्तिष्यन्ते।

३४. इन बकवास करने वाले पण्डितों से ईर्ष्या मत कर, यह ईर्ष्या स्वयं जला देने वाली है।
एभ्यः प्रलापिभ्यः पण्डितेभ्यः मा ईर्ष्यीः (मा स्म ईर्ष्यः), इयम् ईर्ष्या स्वयं परिदाहिनी वर्त्तते।

३५. ये शान्त रहने वाले श्रमशील विद्वान् कभी पाप के भागी नहीं बनेंगे।
एते शमिनः श्रमिणः च विद्वांसः कदाचिदपि पापस्य भागिनः न भविष्यन्ति।

णमुल् प्रत्यय

समान कर्त्ता वाली दो क्रियाओं में से पूर्व काल वाली क्रिया यदि पुनः पुनः (=बार बार) की जाती है तो उस क्रिया के वाचक धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[2] जैसे—'राम सुन-सुनकर याद करता है' इस वाक्य में राम दो क्रियाओं का कर्त्ता है। 'सुनना' और 'याद करना' इन दो क्रियाओं में 'सुनना', पूर्वकाल की है और वह बार बार की जा रही है। अतः उसके धातु 'श्रु' से णमुल् प्रत्यय होगा→'रामः श्राव

१. गीता (६.३४)
२. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च (अष्टा. ३.४.२२)

श्रावं स्मरति'। 'णमुल्' में से ण्, उ और ल् की इत्सञ्ज्ञा तथा लोप हो जाने पर 'अम्' भाग शेष रहता है। अम् (=णमुल्) के णित् होने के कारण इससे पूर्व लगने वाली धातु के अन्तिम इक् को अथवा उपधा के ह्रस्व अकार को वृद्धि आदि तथा आकारान्त धातु को य् (=युक्) आगम आदि सब कार्य 'णिनि' प्रत्यय की स्थिति के समान ही होंगे। यह प्रत्यय भी कृत्-सञ्ज्ञक है अतः णमुल् प्रत्ययान्त से (उसके प्रातिपादिक होने के कारण) सुप् की उत्पत्ति होगी। किन्तु अम् (=णमुल्) प्रत्ययान्त की 'अव्यय' सञ्ज्ञा हो जायेगी[1] और उससे उत्पन्न सुप् मात्र का लुक् (=लोप) हो जायेगा।[2] इस पुनः पुनः (=आभीक्ष्ण्य) अर्थ में उत्पन्न णमुल्-प्रत्ययान्त शब्द को द्वित्व (=एक के स्थान पर दो का प्रयोग) भी होगा।[3] पुनः पुनः क्रिया करने के उपर्युक्त अर्थ में धातु से क्त्वा प्रत्यय भी होता है।[4] और तदन्त शब्द को भी द्वित्व होता है।[5] णमुल् प्रत्यय अन्य अर्थों में भी होता है जिसकी चर्चा आगे करेंगे।

अभ्यास

१. तेरी बातें सुन सुनकर मेरे कान पक गये।
तव वार्ताः श्रावं श्रावं कर्णौ मे विरक्तिम् अभाक्ताम्।

२. मोहन मार्ग में ठहर ठहर कर गया = मोहनः मार्गे स्थायं स्थायं गतः।

३. यह सेठ दान दे देकर, बरसात में बरसने से बादल के समान खाली हो गया है।
अयं श्रेष्ठी दायं दायं प्रावृषि वर्षणात् मेघ इव रिक्तीभूतः।

४. यह पहलवान् दूध पी पीकर अत्यन्त पुष्ट हो रहा है।
अयं मल्लः क्षीरं पायं पायं अतितरां पुष्यति।

५. ये बच्चियाँ माता पिता को याद कर करके रो रही हैं।
एताः बालाः पितरौ स्मारं स्मारं रुदन्ति।

६. तेरा पुत्र अवश्य लौट आयेगा रो रो कर अन्धी मत हो।
त्वत्सुतः अवश्यं निवर्त्तिष्यते (निवर्त्स्यति) रोदं रोदं मा अन्धा भूः (मा स्म अन्धा भवः)।

७. मैं तो गाँव जा जाकर थक गया अब तू जा।
अहं तु ग्रामं गामं गामं श्रान्तः अस्मि सम्प्रति त्वं गच्छ?

इन सब वाक्यों में णमुलन्त के स्थान पर क्त्वान्त शब्दों का भी प्रयोग होता

---

१. कृन्मेजन्तः (अष्टा. १.१.३९)
२. अव्ययादाप्सुपः (अष्टा. २.४.८२)
३. आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् [वार्तिक] (अष्टा. ८.१.१२)
४. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च (अष्टा ३.४.२२)

है। यथा – 'तव वार्ता: श्रुत्वा श्रुत्वा···'। 'मोहनः मार्गे स्थित्वा स्थित्वा···'। 'एताः बालाः पितरौ स्मृत्वा स्मृत्वा ···'।

(ii) अत्यधिक शीघ्रता (=परीप्सा) का प्रसङ्ग हो तो अपादानवाची अथवा द्वितीयान्त शब्द के उपपद में रहने पर धातुमात्र से णमुल् प्रत्यय होता है।[1] अन्य सब कार्य तो यहाँ भी पुनः पुनः अर्थ वाले णमुल् के समान होंगे किन्तु द्वित्व नहीं होगा। द्वित्व केवल आभीक्ष्ण्य (=क्रिया को पुनः पुनः करना) अर्थ वाले णमुल् में ही होता है अन्य किसी णमुल् में नहीं।

१. वह चारपाई से उठकर सीधा कुत्ते को मारने दौड़ा।
   सः शय्योत्थायं[2] श्वानं ताडयितुम् अधावत्।
२. उसको इतनी भूख लगी कि तवे से ही खींचकर रोटी खाने लगा।
   एतावान् सः क्षुधा अपीड्यत यत् ऋजीषापकर्षं[2] रोटिकाः प्राभक्षयत्।
३. वह दूध का इतना शौकीन है कि स्तन की धार से ही सीधा दूध पीने दौड़ता है।
   एतावान् स क्षीरास्वादी वर्त्तते यत् स्तनरन्ध्रापकर्षं[2] पयः पातुं धावति।
४. भोजन में दोष के बहाने दम्पती बेलन और लोटा लेकर लड़ने लगे।
   भोजनदोषमिषेण दम्पती बेल्लनग्राहं जलपात्रग्राहं च अयुध्येताम्।

(iii) सप्तम्यन्त अथवा तृतीयान्त शब्द उपपद में हो तो समासत्ति अर्थात् अति समीपता के विषय में णमुल् प्रत्यय होता है।[3]

१. मोहन ने डाकू को केश पकड़ कर मारा।
   मोहनः दस्युं केशग्राहं[4] (केशेषु ग्राहं, केशैः ग्राहं) हतवान्।
२. बात ही बात में उसने श्याम को हाथ पकड़ कर धक्का दे दिया।
   वार्तासु एव सः श्यामं हस्तग्राहम्[4] (हस्तयोः ग्राहं, हस्ताभ्यां ग्राहं) अधक्कयत् अदधक्कत्।
३. इसको सिर पकड़ कर घुमा दे।
   एनं शिरोग्राहं[4] (शिरसि ग्राहं, शिरसा ग्राहं) भ्रमय।

(iv) जबरदस्ती किसी पर इल्जाम लगाने के लिए चिल्लाने के विषय में कर्म

---

१. अपादाने परीप्सायाम् (अष्टा. ३.४.५२); द्वितीयायां च (अष्टा. ३.४.५३)
२. यहाँ 'अमैवाव्ययेन' (अष्टा. २.२.२०) से उपपदतत्पुरुष समास हुआ है।
३. समासत्तौ (अष्टा. ३.४.५०)
४. यहाँ 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (अष्टा.२.२.२१) से विकल्प से उपपद-तत्पुरुष समास होता है।

कारक उपपद में रहने पर कृ धातु से खमुञ् प्रत्यय होता है।[1] ख्, उ और ञ् की इत्सञ्ज्ञा हो जाने पर 'अम्' भाग शेष रहता है। अन्य सब कार्य 'णमुल्' के समान ही होंगे। अम् (=खमुञ्) के खित् होने से उपपद के बाद म् (=मुम्) आगम होगा।[2]

१. सोहन चन्द्रगुप्त को चोर कहकर चिढ़ाता है।
 सोहनः चन्द्रगुप्तं चोरङ्कारम् आक्रोशति।

२. रामदेव प्रताप से ईर्ष्या करता हुआ तस्कर कहकर उसकी निन्दा करता है।
 रामदेवः प्रतापाय ईर्ष्यन् तस्करङ्कारं तं गर्हयति।

३. नरेन्द्र उस साधु की, शराबी कहकर बदनामी करता है।
 नरेन्द्रः तं साधुं सुरापङ्कारम् अपकीर्त्तयति।

(v) अस्वादु वस्तु को भी स्वादु वस्तु के समान अर्थात् स्वाद लेकर खाने के विषय में 'स्वादु' शब्द उपपद में रहने पर कृ धातु से णमुल् प्रत्यय होगा।[3] 'स्वादु' शब्द के बाद 'म्' आयेगा।

१. मोहन सूखी रोटी को भी बड़े स्वाद से खाता है।
 मोहनः शुष्काम् अपि रोटिकां स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते।

२. काशी में छात्रावास में रहते हुए बासी भोजन को भी स्वाद लेकर खाते हुए मैंने बहुत समय बिताया।
 काश्यां छात्रावासम् अधिवसन् पर्युषितम् अपि भोजनं स्वादुङ्कारं भुञ्जानः अहं पुष्कलं कालम् अजीगमम्।

३. यदि तुझे भूख होती तो सूखे चनों को भी बादाम के समान स्वाद लेकर खाता।
 यदि त्वं बुभुक्षुः अभविष्यः तर्हि शुष्कान् अपि चणकान् वातादान् इव स्वादुङ्कारम् अभोक्ष्यथाः।

(vi) किसी क्रिया को दूसरों की बिना परवाह किये स्वयं सबसे पहले कर लेने के विषय में 'अग्रे, प्रथम अथवा पूर्व' शब्दों के उपपद में रहने पर धातु-मात्र से णमुल् प्रत्यय होता है।[4] इस विषय में क्त्वा प्रत्यय भी होता है।[5]

१. दूसरों का बिना ध्यान रक्खे पहले स्वयं खाकर वह चला जाता है।
 अन्यान् अचिन्तयन् अग्रेभोजं (प्रथमं भोजं, पूर्वं भोजं) व्रजति सः।

---

१. कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् (अष्टा. ३.४.२५)
२. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् (अष्टा. ६.३.६७)
३. स्वादुमि णमुल् (अष्टा. ३.४.२६)
४. विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु (अष्टा. ३.४.२४)

२. भले ही दूसरे बिना नहाये रह जायें, वह तो पहले ही नहाकर भग जाता है।
कामम् अन्ये अस्नाताः तिष्ठेयुः, सः तु प्रथमं स्नायं (पूर्वं स्नायं, अग्रे स्नायं) पलायते।

३. तुम पहिले सब्जी खाकर दूसरों को सूखी रोटी खाने पर मजबूर करते हो।
त्वं शाकं प्रथमं भोजं (पूर्वं भोजं, अग्रे भोजं) अन्यान् व्यञ्जन-रहिताः रोटिकाः भोक्तुं प्रवर्त्तयसि।

(vii) किसी के काम में कोई दोष निकाले तो उसके उत्तर (=प्रतिवचन) देने में 'यथा' और 'तथा' उपपद में रहने पर कृ धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[1]

१. जैसे चलता हूं वैसे चलता हूं तेरा इसमें क्या ?
यथाकारम् अहं चलामि तथाकारम् अहं किं तव अनेन ?

२. जैसे हम खा रहे थे वैसे खा रहे थे, तुम्हारा हमने क्या बिगाड़ा ?
यथाकारं वयम् अभुञ्जमहि तथाकारं वयं किम् अपराद्धं युष्माकम् अस्माभिः ?

(viii) कोई किसी का खर्च यदि स्वयं ओढ़ ले कि मैं सारे जीवन तेरा पालन करूंगा तब, 'जीव' शब्द उपपद में रहने पर ग्रह् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[2]

१. देवेन्द्र कपूर साहब ने मेरा जीवन तक का भार ले लिया।
अहं देवेन्द्रकपूरमहोदयेन जीवग्राहं गृहीतः।]

२. मैं आपके जीवन भर का भार लेता हूं।=अहं भवन्तं जीवग्राहं गृह्णामि।

(ix) अधिकरण कारक उपपद में रहने पर 'बन्ध्' धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[3]

१. इस चोर को खम्भे से बाँध दे ?=इमं चोरं स्तम्भबन्धं बधान।

२. यशोदा ने बच्चे को ऊखल में बाँध दिया ?
यशोदा बालकम् उलूखलबन्धं बबन्ध ?

(x) कर्म कारक उपपद में रहने पर दृश् धातु और विद् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है यदि सबको (अर्थात् जिस किसी को) देखने अथवा जानने या प्राप्त करने का विषय हो।[4]

१. जगदीश जिस आदमी को देखता है उसी को अपना रहस्य बता देता है।
जगदीशः पुरुषदर्शं निजरहस्यं व्याहरति।

---

१. यथातथयोरसूयाप्रतिवचने (अष्टा. ३.४.२८)
२. समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः (अष्टा. ३.४.३६)
३. अधिकरणे बन्धः (अष्टा. ३.४.४१)
४. कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये (३.४.२९)

३. यह छात्र जिस लड़के को पा जाता है उसे ही अपना मित्र बना लेता है।
एषः छात्रः माणवकवेदं निजमित्रं करोति।

४. राम शास्त्री जिस शास्त्र को जान लेता है उसी को कण्ठाग्र कर लेता है।
रामशास्त्री शास्त्रवेदं कण्ठाग्रं करोति।

(xi) 'यावत्' शब्द उपपद में हो तो विन्द् और जीव् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[1]

१. यह रोगी, जो चीज मिल जाती है वही खा जाता है, पथ्य अपथ्य का विचार नहीं करता?
एषः रुग्णः यावद्वेदं भुङ्क्ते, पथ्यापथ्यं न विचारयति।

२. मैं जबतक जीऊँगा अपने गुरुजी की सेवा करूँगा।
अहं यावज्जीवं निजगुरुचरणान् भक्ष्ये (भक्ष्यामि; सेविष्ये)

३. पथ्यापथ्य को बिना विचारे जो मिले उसे खाने वाले मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रहते।
पथ्यापथ्यम् अविचार्य यावद्वेदं भुञ्जानाः जनाः न जातुचित् स्वास्थ्यम् अधिगच्छन्ति।

(xii) हस्त (=हाथ) वाची करण कारक उपपद में हो तो, अपने हाथ से बनाने अथवा ग्रहण करने के अर्थ में वृत् और ग्रह् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[2]

१. सुरेन्द्र हाथ से गोलियाँ बनाता है=सुरेन्द्रः हस्तवर्तं गुटिकाः वर्त्तयति।
२. यह शिशु हाथ से चींटियां पकड़ता है=अयं शिशुः हस्तग्राहं पिपीलिकाः गृह्णाति।
३. ये दो लड़कियाँ हाथों से कपड़ा पकड़ती हैं=इमे बालिके पाणिग्राहं पटं गृह्णीतः।

(xiii) करण कारक उपपद में रहने पर हन् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[3]

१. धृष्टद्युम्न ने तलवार से द्रोण को मारा=धृष्टद्युम्नः असिघातं द्रोणं जघान।
२. यह बालक पांव से भूमि को पीट रहा है=एषः बालकः पादघातं भूमिं हन्ति।[4]

(xiv) तृतीयान्त शब्द उपपद में रहने पर समान कर्म वाली हिंसार्थक धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है।[5]

---

१. यावति विन्दजीवोः (अष्टा. ३.४.३०)
२. हस्ते वर्तिग्रहोः (अष्टा. ३.४.३९)
३. करणे हनः (अष्टा. ३.४.५)
४. पूर्वविप्रतिषेधेन हन्तेर्हिंसार्थस्यापि प्रत्ययोऽनेनैवेष्यते [वा०] (अष्टा. ३.४.३७)
५. हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् (अष्टा-३.४.४८)

१. ग्वाला डण्डे से पीटकर गौओं को खदेड़ता है।
गोपालः दण्डताडं गाः कालयति ।

२. पुलिस वाले बेंत से पीटकर अपराधी से अपराध मनवाते हैं ।
आरक्षिणः वेत्रमारम् अपराधिनम् अपराधं मानयन्ति ।

(xv) 'तूष्णीम्' शब्द उपपद में रहने पर, भू-धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[1] इसमें क्त्वा प्रत्यय भी प्रयुक्त होता है।[2]

१. तुम लोग चुप बैठो=यूयं तूष्णीं भावं (तूष्णीं भूत्वा) आध्वम् ।

२. मूलशङ्कर ने मन्दिर के शिखर पर चुप रहकर सारा दिन बिताया ।
मूलशङ्करः मन्दिरशिखरे तूष्णींभावं (तूष्णीं भूत्वा) अखिलं दिनं यापयामास ।

(xvi) कर्मकारक चर्म और उदर शब्द उपपद में हो तो पूर् (=पूरी) धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[2]

(xvii) वर्षा के प्रमाण (=इयत्ता=नापने) के विषय में नाप वाची कर्म-कारक उपपद में रहने पर भी पूर् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है और तब विकल्प से 'पूर्' के ऊ का लोप हो जाता है।[3]

१ आज खेत पर सब मित्रों ने पेट भरकर होले खाये ।
अद्य क्षेत्रे सर्वाणि मित्राणि उदरपूरं होलकान् अबभक्षन् ।

२. हमारे गांव में तो गौ का खुर भरने लायक वर्षा हुई ।
अस्मद्ग्रामे तु गोष्पदपूरं (गोष्पदप्रं) वृष्टो देवः ।

३. मालवा में हल की लकीर भरने जैसे वर्षा हुई है ।
मालवक्षेत्रे सीतापूरं (सीताप्रं) वर्षः अवर्षीत् ।

(xviii) वर्षा का नाप बताने के प्रसंग में चेल (कपड़ा) वाची कर्मकारक उपपद में रहने पर क्नोपि (=क्नूय्+णिच्) धातु से णमुल् प्रत्यय होता है।[4]

१. जब कपड़ा भीगने जैसी वर्षा हो जायेगी तब आम खायेंगे ।
यदा चेलक्नोपं (वस्त्रक्नोपं) वर्षो भविष्यति तदा आम्राणि खादिष्यामः ।

२. कपड़ा भीगने जैसी वर्षा होने पर वे कमरे में घुसे ।
चेलक्नोपं (वसनक्नोपं, दासःक्नोपं) वृष्टवति मेघे ते प्रकोष्ठं प्राविक्षन् ।

---

१. तूष्णीमि भुवः (अष्टा. ३.४.६३)
२. चर्मोदरयोः पूरेः (अष्टा. ३.४.३१)
३. वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् (अष्टा. ३.४.३२)
४. चेले क्नोपेः (अष्टा. ३.४.३३)

(xix) उपमानवाची कर्म कारक अथवा कर्ता कारक उपपद में हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।[१]

१. रेगिस्तान में लोग जल को घी के समान संभालकर रखते हैं ।
मरुस्थले जनाः जलं घृतनिधायं निदधति ।

२. वह सोने के समान छिपाकर पुस्तकें रखता है ।
सः स्वर्णनिधायं पुस्तकानि निदधाति ।

३. वह बकवास करने वाला अन्त में कुत्ते की मौत मरा ।
सः प्रलापी अन्ते भषकनाशं नष्टः (अनश्यत्) ।

(xx) स्नेहनवाची (=चिकने) करण कारक उपपद में रहने पर पिष् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।[२]

१. तैल के साथ पीसने को कहा था और पीसा तूने पानी के साथ, गोलियां बनेंगी कैसे ?
तैलपेषं पेष्टुं निर्दिष्टः आसीः उदपेषं च त्वं पिष्टवान्, कथङ्कारं गुटिकाः वर्त्तिष्यन्ते ?

२. बादाम को दूध के साथ पीस, फिर उन्हें घी में भून और उसमें शक्कर मिला ।
वातादान् क्षीरपेषं पिण्ढि ततः तान् सर्पिषि भृज्जस्व तत्र च सितां सम्मिश्रय ।

(xxi) कर्मकारक शुष्क, चूर्ण और रूक्ष शब्द उपपद में रहने पर भी पिष् से णमुल् प्रत्यय होता है ।[३]

१. जोखार को सूखा पीस ले और हींग को चूरा करके उसमें रूखे पिसे हुए नीम के पत्ते मिला ।
यवक्षारं शुष्कपेषं पिण्ढि, रामठं च चूर्णपेषं पिष्ट्वा तस्मिन् रूक्षपेषं पिष्टानि निम्बपत्राणि मिश्रय ।

(xxii) अव्यय उपपद में रहने पर कृ धातु से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं, यदि अभीष्ट से विपरीत कथन हो रहा हो अर्थात् अप्रिय वस्तु को जोर से कहा जाय और प्रिय घटना को धीमे कहा जाय तो ।[४]

१. कोई जोर से बोला—'हे रघुवीर ! तुम्हारा पुत्र चोरी में पकड़ा गया है ।' तब रघुवीर ने कहा—रे दुष्ट ! यह अप्रिय बात जोर से क्यों कह रहा है ? धीमे से बोल ।

---

१. उपमाने कर्मणि च (अष्टा. ३.४.४५)
२. स्नेहने पिषः (अष्टा. ३.४.३८)
३. शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः (अष्टा. ३.४.३५)
४. अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ (अष्टा. ३.४.५९)

कश्चिद् उच्चैः जगाद—'हे रघुवीर ! ते पुत्रः चौर्ये निगृहीतः अस्ति ।' तदा रघुवीरः प्राह—'रे दुष्ट ! कथम् एतम् अप्रियम् उदन्तम् उच्चैःकारं (उच्चैः कृत्वा) वदसि ? नीचैःकारं (नीचैःकृत्वा) ब्रूहि ।

२. कोई धीरे से बोला—'हे रघुवीर ! तुम्हारे वेतन में वृद्धि हुई है ।' तब रघुवीर ने कहा—हे मूर्ख ! इस प्रिय समाचार को धीरे से क्यों फुस-फुसा रहा है। जोर से बोल ।

कश्चित् शनैः प्रोवाच—'हे रघुवीर ! वेतनवृद्धिः ते जाता ।' तदा रघुवीरः अकथयत् —हे मूर्ख ! इमां प्रियां वार्ता नीचैःकारं (नीचैःकृत्वा) कथं जल्पसि उच्चैःकारं (उच्चैः कृत्वा) निगद ।

तृन् तथा तृच् प्रत्यय

धातुमात्र से, तच्छील (=वैसा स्वभाव होना), तद्धर्म (वैसा गुण वाला होना) और तत्साधुकारी (=क्रिया को उत्तमता से करना) इन अर्थों में तृन् प्रत्यय होता है।[1] धातुमात्र से कर्ता अर्थ में तृच् प्रत्यय भी होता है।[2] तृन् और तृच् में से न् और च् के इत्सञ्ज्ञा—लोप हो जाने पर 'तृ' शेष रहता है। तृ (तृन्, तृच्) प्रत्ययान्त शब्द सुबन्त होते हैं और विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। पुँल्लिङ्ग में सर्वनामस्थान[3] (=सु औ, जस्, अम्, औट्) परे रहने परे 'तृ' के ऋ को गुण (अर्) हो जाता है।[4] 'अर्' के अ को दीर्घ भी होगा।[5] इस प्रकार पुँल्लिङ्ग में 'रक्षिता रक्षितारौ रक्षितारः' आदि 'कर्तृ' शब्द के समान रूप चलेंगे। 'कर्तृ' शब्द भी तृ (तृन् या तृच्) प्रत्ययान्त ही है। स्त्रीलिङ्ग में तृ प्रत्ययान्त शब्द से ई (=ङीप्) लगेगा[6] और 'रक्षित्री रक्षित्र्यौ रक्षित्र्यः' 'कर्त्री कर्त्र्यौ कर्त्र्यः' आदि 'गौरी' शब्द के समान रूप बनेंगे। नपुंसकलिङ्ग 'कर्तृ कर्तृणी कर्तॄणि' आदि रूप प्रथमा-द्वितीया में चलेंगे और तृतीया से पुँल्लिङ्ग (रक्षितृ, कर्तृ) शब्द के समान ही चलेंगे। तृन्-प्रत्ययान्त और तृच्-प्रत्ययान्त शब्दों में वैसे कोई स्वरूपभेद दृष्टिगोचर नहीं होता, तो भी दो भेद हैं—

---

१. तृन् (अष्टा. ३.२.१३५)
२. ण्वुल्तृचौ (अष्टा. ३.१.१३३)
३. सुडनपुंसकस्य (अष्टा. १.१.४३)
४. ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः (अष्टा. ७.३.११०)
५. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् (अष्टा. ६.४.११)
६. ऋन्नेभ्यो ङीप् (अष्टा. ४.१.५)

१. स्वर में भेद :–तृन्-प्रत्ययान्त शब्द आद्युदात्त होंगे[1] यथा—रक्षिता, कर्ता आदि। जबकि तृच्-प्रत्ययान्त शब्द अन्तोदात्त होंगे[2], यथा... रक्षिता, कर्ता आदि।

२. कर्म में विभक्ति का भेद :—तृच्-प्रत्ययान्त शब्दों के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है।[3] यथा—कर्ता कटस्य (=चटाई को बनाने वाला), रक्षिता गृहस्य (=घर का रखवाला) आदि। किन्तु तृन्-प्रत्ययान्त शब्द के कर्म में षष्ठी का निषेध हो जायेगा[4] और सामान्यतया द्वितीया ही होगी[5] यथा—कर्ता कटम् (चटाई को बनाने वाला), रक्षिता गृहम् (=घर का रखवाला)। यदि स्वरों का प्रयोग न हो (जैसा कि लौकिक प्रयोगों में अब नहीं होता) तो तृप्रत्ययान्त (तृन्, तृच्) शब्दों के कर्म में षष्ठी या द्वितीया दोनों प्रयुक्त होती समझनी चाहिये, क्योंकि स्वर-रहित तृप्रत्ययान्त शब्द में तृन् या तृच् का भेद करना असम्भव है। हाँ, स्वभाव आदि अर्थों के कारण भेद करना क्वचित् सम्भव है। धातु से इन तृप्रत्ययान्त शब्दों को बनाने की विधि बड़ी सरल है। जिस धातु का लुट् लकार में प्रथम पुरुष में जो रूप बनता है, वही उस धातु का तृप्रत्ययान्त शब्द का प्रथमा विभक्ति का रूप होगा। भू+लुट्=भविता, भवितारौ भवितारः, इसी प्रकार भू+तृच् (या तृन्)=भविता, भवितारौ भवितारः' आदि। आगे द्वितीया आदि विभक्तियों में 'कर्तृ' शब्द के समान रूप चलेंगे।

तृ (तृन्, तृच्) प्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग भवितृ शब्द

प्र०—	भविता	भवितारौ	भवितारः
द्वि०—	भवितारं	भवितारौ	भवितॄन्
तृ०—	भवित्रा	भवितृभ्याम्	भवितृभिः
च०—	भवित्रे	भवितृभ्याम्	भवितृभ्यः
प०—	भवितुः	भवितृभ्याम्	भवितृभ्यः
ष०—	भवितुः	भवित्रोः	भवितॄणाम्
स०—	भवितरि	भवित्रोः	भवितृषु
सं०प्र०—	हे भवितः !	हे भवितारौ	हे भवितारः

तृ प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग भवितृ (भवित्री) शब्द

प्र०—	भवित्री	भवित्र्यौ	भवित्र्यः
द्वि०—	भवित्रीं	भवित्र्यौ	भवित्रीः
तृ०—	भवित्र्या	भवित्रीभ्याम्	भवित्रीभिः
च०—	भवित्र्यै	भवित्रीभ्याम्	भवित्रीभ्यः
प०—	भवित्र्याः	भवित्रीभ्याम्	भवित्रीभ्यः
ष०—	भवित्र्याः	भवित्र्योः	भवित्रीणाम्
स०—	भवित्र्यां	भवित्र्योः	भवित्रीषु
सं०प्र०—	हे भवित्रि !	हे भवित्र्यौ	हे भवित्र्यः

१. ञ्नित्यादिर्नित्यम् (अष्टा. ६.१.१९७)
२. चितः (अष्टा. ६.१.१६३)
३. कर्तृकर्मणोः कृति (अष्टा २.३.६५)
४. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (अष्टा. २.३.६९)
५. कर्मणि द्वितीया (अष्टा. २.३.२)

तृप्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्ग भवितृ शब्द

प्र०—भवितृ भवितृणी भवितृणि

द्वि०—भवितृ भवितृणी भवितृणि आगे 'पुंल्लिङ्ग भवितृ के समान।

कुछ धातुओं से तृप्रत्ययान्त शब्द बनने के उदाहरण देखो—

पिष् तृ (तृन् या तृच्)=पेष्टा (पीसने वाला), पेष्ट्री (स्त्रीलिङ्ग), पेष्टृ (नपुंसकलिङ्ग)

हन् तृ (,,)=हन्ता (मारने वाला), हन्त्री (,,), हन्तृ (,,)

रच् तृ (,,)=रचयिता (बनाने वाला), रचयित्री (,,), रचयितृ (,,)

विज् तृ (,,)=विजिता (कांपने वाला); विजित्री (,,), विजितृ (,,)

जि तृ (,,)=जेता (जीतने वाला), जेत्री (,,), जेतृ (,,)

अभ्यास

१. मारने वाले से रक्षा करने वाला बड़ा होता है।
हन्तुः रक्षिता बलीयान् भवति।

२. परमात्मा की शक्ति सारे संसार की रक्षा करने वाली है।
तृच्—परमात्मनः शक्तिः सकलसंसारस्य रक्षित्री वर्त्तते।
तृन्— ,, ,, सकलसंसारं रक्षित्री वर्त्तते।

३. इस घर के बनाने वाले को मैं जानता हूँ।
तृच्—अस्य गृहस्य रचयितारम् अहं वेद।
तृन्—इदं गृहं रचयितारम् अहं वेद।

४. इस पुस्तक को बनाने वाले मेरे दो मित्र है।
तृच्—अस्य पुस्तकस्य रचयितृणी मम मित्रे स्तः।
तृन्—इदं पुस्तक ,, ,, ,, ,,।

५. आप किन ग्रन्थों के पढ़ने वाले हैं?
तृच्– भवन्तः केषां ग्रन्थानां पठितारः सन्ति?
तृन्— ,, कान् ग्रन्थान् ,, ,, ?

६. देश की होने वाली दशा को सोच-सोच कर दुःख होता है।
देशस्य भवित्रीं दशां विचारं विचारं खिद्यते मे चेतः।

७. यहां कितने पढ़ाने वाले हैं और कितने पढ़ने वाले हैं?
अत्र कियन्तः अध्यापयितारः सन्ति कियन्तः च अध्येतारः?

८. बोलने वाले की मूर्खता है, यदि सुनने वाला नहीं समझता।
वक्तुः एव तज्जाड्यं, यदि श्रोता न अवबुध्यते।

९. उपदेश देने वाले बहुत हैं, अमल में लाने वाले बहुत कम।
उपदेष्टारः बहवः सन्ति, निजोपदेशानुशारं कार्यं कर्तारः विरलाः खलु।

१०. कार्य करने वाली महिलाओं के लिए भोजन रख दो।
कार्यकर्त्रीणां महिलानां कृते भोजनं स्थापय (रक्ष)।

११. भाग्यविधाता भगवान् में कोई दोष नहीं है, दोष तो मुझ कर्मकर्ता में है।
भाग्यविधातरि भगवति न कश्चिद्दोषः, दोषः तु मयि कर्मकर्तरि वर्त्तते।

१२. मेरी जीवन निर्मात्री माता का ही यह पुण्य प्रताप है।
मम जीवननिर्मात्र्याः जनन्याः एव अयं पुण्यप्रतापः।

१३. आज इन ग्रन्थों के बनाने वालों का मेरे घर निमन्त्रण है।
अद्य एषां ग्रन्थानां निर्मातॄन् (एतान् ग्रन्थान् निर्मातॄन्) स्वगृहे निमन्त्रयिष्ये।

१४. भारत का शासन करने वाली एक देवी है।
भारतस्य शासित्री (भारतं शासित्री) एका देवी वर्त्तते।

१५. श्लोक—हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता
जनः स्पर्द्धालुश्चेदहह ! कविना वश्यवचसा।
भवेदद्य श्वो वा प्रकृतिकपटे पापिनि कलौ
घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः॥

—जबरदस्ती इधर उधर से बटोर बटार कर, कुछ पदों की रचना करने वाला मनुष्य यदि वाणी के अभ्यासी अधिकारी किसी कवि से स्पर्धा करने लगे तो मानो अब कलियुग में घटनिर्माता कुम्हार में और जगनिर्माता भगवान् में बड़प्पन की होड़ होगी।

ण्वुल् प्रत्यय

धातुमात्र से कर्ता कारक अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय होता है।[1] ण्वुल् में से ण् और ल् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाने पर 'वु' शेष रहता है। 'वु' के स्थान पर सदा 'अक' आदेश होगा।[2] अक (=वु=ण्वुल्) प्रत्यय के णित् होने के कारण धातु के अन्तिम इक् को अथवा उपधा के ह्रस्व अ को वृद्धि तथा आकारान्त धातुओं को य् (=युक्) आगम आदि सब कार्य 'णिनि' प्रत्यय के समान होंगे। अक (=ण्वुल्) प्रत्ययान्त शब्द सुबन्त विशेषण होते हैं। पुँल्लिङ्ग में 'कारकः कारकौ कारकाः' आदि राम के समान रूप चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में 'आ' (=टाप्) प्रत्यय लगेगा[3] और 'अक' के आरम्भिक 'अ' के स्थान पर 'इ' आदेश होगा।[4] 'कारिका कारिके कारिकाः, आदि रूप 'रमा' के समान चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'कारकं कारके कारकाणि' आदि 'ज्ञान' शब्द के समान रूप होंगे। अब कुछ धातुओं के ण्वुलप्रत्ययान्त स्वरूप तीनों लिङ्गों में दर्शाते हैं—

---

१. ण्वुल्तृचौ (अष्टा. ३.१.१३३) २. युवोरनाकौ (अष्टा. ७.१.१)
३. अजाद्यतष्टाप् (अष्टा. ४.१.४)
४. प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः (अष्टा. ७.३.४४)

धातु+ण्वुल्,	प्रातिपदिक	पुँल्लिङ्ग-शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्री. शब्द	नपुं. शब्द
पच्+ण्वुल्,	पाचक	पाचकः (पकाने वाला)	पाचिका	पाचकम्
भिद् ,, ,	भेदक	भेदकः (फाड़ने वाला)	भेदिका	भेदकम्
भुज् ,, ,	भोजक	भोजकः {खाने वाला पालन करने वाला	भोजिका	भोजकम्
वृध् ,, ,	वर्धक	वर्धकः (बढ़ाने वाला)	वर्धिका	वर्धकम्
सेव् ,, ,	सेवक	सेवकः (सेवा करने वाला)	सेविका	सेवकम्
चि ,, ,	चायक	चायकः (चुनने वाला)	नायिका	चायकम्
नी ,, ,	नायक	नायकः (ले जाने वाला)	नायिका	नायकम्
स्तु ,, ,	स्तावक	स्तावकः (स्तुति करनेवला)	स्ताविका	स्तावकम्
लू ,, ,	लावक	लावकः (काटने वाला)	लाविका	लावकम्
कृ ,, ,	कारक	कारकः (करने वाला)	कारिका	कारकम्
जृ ,, ,	जारक	जारकः (जीर्ण करनेवाला)	जारिका	जारकम्
स्था ,, ,	स्थायक	स्थायकः (ठहरने वाला)	स्थायिका	स्थायकम्
पा ,, ,	पायक	पायकः (पीने वाला)	पायिका	पायकम्
गा ,, ,	गायक	गायकः (गाने वाला)	गायिका	गायकम्
स्थापि(स्था+णिच्) ,,	स्थापक	स्थापकः (स्थापित करने ,,	स्थापिका	स्थापकम्
दापि (दा+णिच्) ,,	दापक	दापकः (दिलाने वाला)	दापिका	दापकम्
पायि(पा+णिच्) ,,	पायक	पायकः (पिलाने वाला)	पायिका	पायकम्

अभ्यास

१. गाने वालों को गरम भोजन दे=गायकेभ्यः उष्णं भोजनं देहि ।

२. गुरुकुल स्थापित करने वालों में स्वामी श्रद्धानन्द के बाद स्वामी व्रतानन्द का नाम मुख्य है ।
गुरुकुलस्थापकेषु स्वामिश्रद्धानन्दस्य पश्चात् स्वामिव्रतानन्दः मुख्यः अस्ति ।

३. देवदत्त से मेरे रुपये दिलाने वाला जामिन न जाने कहां चला गया ?
देवदत्ते न मम रूप्यकाणि दापकः प्रतिभूः न जाने कुत्र गतः ?

४. इस बरात में बाजा बजाने वाले नहीं हैं ।
अस्यां वरयात्रायां वाद्यवादकाः न सन्ति ।

५. मुझे जिससे सौ रुपये लेने थे वह भी उसके साथ भाग गया ।
मह्यं शतस्य रूप्यकाणां धारकः अपि तेन सहैव पलायत ।

६. धिक्कार है इन कर्जा लेकर मुकरने वालों को ।=धिक् एतान् ऋणापलापकान् ।

७. पता नहीं दूसरों से कर्जा लेने वाले सुख से कैसे सो जाते हैं ।
न जाने, अन्येभ्यः द्रविणधारकाः कथं सुखं स्वपन्ति ।

८. राजा के नहलाने वाले कहाँ हैं=राज्ञः स्नापकाः कुत्र सन्ति ?

९. पौर्णमासी के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराने वाले बहुत मिल जाते हैं।
पौर्णमास्यां ब्राह्मणानां भोजकाः बहवः भवन्ति।
१०. दूसरों की चीजें चुराने वाले घर-घर घूमते हैं।
परद्रव्यापहारकाः गृहात् गृहम् अटन्ति।
११. इस पाचक की बनाई कढ़ी भूख बढ़ाने वाली और तृप्त करने वाली होती है।
अनेन पाचकेन निर्मिता क्वथिका क्षुधः वर्धिका सन्तर्पिका च भवति।
१२. उस खेत में फसल के पांच काटने वाले और तीन काटने वाली पर्याप्त हैं।
तस्मिन् क्षेत्रे सस्यस्य पञ्च लावकाः तिस्रः च लाविकाः पर्याप्ताः सन्ति।
१३. यह नौकरानी ईश्वर की स्तुति करने वालों की खूब सेवा करती है।
इयं सेविका ईश्वरस्य स्तावकान् भृशं सेवते।
१४. यह लकड़ी फाड़ने वाला, फूल चुनने वाली स्त्रियों के लिये लकड़ी फाड़ेगा।
अयं काष्ठभेदकः, पुष्पाणां चायिकाभ्यः स्त्रीभ्यः काष्ठानि भेत्स्यति।
१५. शराब मनुष्य के शरीर को जीर्ण करने वाली है=सुरा मानव-देहस्य जारिका अस्ति।

कृत्य-प्रत्यय

तव्य, अनीयर्, यत्, क्यप्, ण्यत् प्रत्यय

तव्य, अनीयर्, यत्, क्यप् और ण्यत् इन प्रत्ययों का नाम (=सञ्ज्ञा) 'कृत्य' है।[1] इनमें से तव्य और अनीयर् प्रत्यय धातु मात्र से होते है।[2] अनीयर् के र् की इत्सञ्ज्ञा-लोप होने पर 'अनीय' शेष रहेगा। धातु के अन्त के इक् को गुण हो जायेगा; जैसे चि+तव्य=चेतव्यः, चि+अनीय=चयनीयः, कृ+तव्य=कर्त्तव्यः, कृ+अनीय=करणीयः आदि। 'यत्' प्रत्यय ऋकारान्तों को छोड़कर अजन्त (=स्वरान्त) धातुओं से,[3] ह्रस्व अकार जिनकी उपधा में हो ऐसी पवर्गान्त शप्, लभ् आदि धातुओं से,[4] शक् तथा सह् धातु से[5] और उपसर्ग-रहित गद, मद, चर तथा यम इन धातुओं से[6] होता है। कुछ अन्य शब्दों में भी यत् प्रत्यय माना जाता है[7],

---

१. कृत्याः प्राङ्ण्वुलः [अष्टा. ३.१ ९५]
२. तव्यत्तव्यानीयरः [अष्टा. ३.१.९६]
३. अचो यत् [अष्टा. ३.१ ९७]
४. पोरदुपधात् [अष्टा. ३.१.९८]
५. शकिसहोश्च [अष्टा. ३.१.९९]
६. गदमदचरयमश्चानुपसर्गे [अष्टा. ३.१.१००]
७. वह्यं करणम्; अर्यः स्वामिवैश्ययोः,
उपसर्या काल्या प्रजने, अजर्यं सङ्गतम्। [अष्टा. ३.१.१०२–१०५]

जैसे—वह्यं [=गाड़ी आदि सवारी], अर्यः [मालिक या व्यापारी], उपसर्या [=गर्भ धारण करने योग्य मादा, अजर्यम् [=कभी न टूटने वाली मैत्री]। 'यत्' के त् की इत्सञ्ज्ञा हो जाने पर 'य' शेष रहेगा। धातु के अन्त्य इक् को पूर्ववत् गुण आदि होंगे, जैसे—चि+यत्=चेयः, नी+यत्=नेयः। क्यप् प्रत्यय ह्रस्व ऋकार जिसकी उपधा में हो ऐसी दृश्, कृष् आदि धातुओं [क्लृप्, चृत् को छोड़कर] से,[1] इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, और जुष् धातुओं से;[2] सञ्ज्ञा से भिन्न विषय में भृ धातु से[3] तथा उपसर्ग-भिन्न सुबन्त शब्द यदि उपपद में हो तो वद[4] और भू[5] धातु से होता है। इसी स्थिति में हन् धातु से भी क्यप् होगा[6] पर हन् के न् को त् हो जायेगा, यथा—ब्रह्महत्या। खन् से भी क्यप् होगा[7] पर न् को ई हो जायेगा। मृज्, कृ और वृष् से विकल्प से क्यप् होता है।[8] राजसूय, सूर्य, रुच्य, कुप्य, युग्य आदि शब्दों में भी क्यप् प्रत्यय हुआ है।[9]

क्यप् के क् और प् की इत्सञ्ज्ञा होने पर 'य' शेष रहेगा। य [=क्यप्] के कित् होने से धातु में प्राप्त गुण वृद्धि का निषेध होगा।[10] ण्यत् प्रत्यय ऋकारान्त धातुओं से और हलन्त [=व्यञ्जनान्त] धातुओं से होता है।[11] पर जिनसे यत् या क्यप् नित्य होता है उनसे ण्यत् नहीं होता। उवर्णान्त धातुओं से भी आवश्यक अर्थ में ण्यत् होता है।[12] आङ्+सु, यु, वप् रप्, लप् त्रप्, और चम् धातुओं से भी ण्यत् होता है।[13] प्रणाय्यः [=चोर], निकाय्यः [=निवास] आदि में भी ण्यत् प्रत्यय समझना चाहिये।[14] ण्यत् के ण् और त् की इत्सञ्ज्ञा होने पर य शेष रहता है। य [=ण्यत्] के णित् होने से धातु के अन्त्य इक् अथवा उपधा के ह्रस्व अकार को वृद्धि 'णिनि' प्रत्यय के समान होगी।

---

१. ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः [अष्टा ३.१.११०]
२. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् [अष्टा. ३.१.१०९]
३. भृञोऽसञ्ज्ञायाम् [अष्टा. ३.१.११२]
४. वदः सुपि क्यप् च [अष्टा. ३.१.१०६] ५. भुवो भावे [अष्टा. ३.१.१०७]
६. हनस्त च [अष्टा ३.१.१०८] ७. ई च खनः [अष्टा. ३.१.१११]
८. मृजेर्विभाषा; विभाषा कृवृषोः [अष्टा. ३.१.११३.१२०]
९. राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः; युग्यं च पत्रे। [अष्टा. ३.१.११४;१२१] १०. क्ङिति च [अष्टा. १.१.५]
११. ऋहलोर्ण्यत् [अष्टा. ३.१.१२४] १२. ओरावश्यके [अष्टा ३.१.१२५]
१३. आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च [३.१.१२६]
१४. प्रणाय्योऽनित्ये; पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु। [अष्टा. ३.१.१२८;१२९]

ये तव्य आदि 'कृत्य' सञ्ज्ञक प्रत्यय मुख्य रूप से अर्ह [=योग्यता], शक्यता]=सकना] और लिङ् वाले अर्थो में होते हैं।[1] ये कर्म या भाव में होते हैं[2] सकर्मक धातुओं से कर्म में और अकर्मक धातुओं से भाव में। जब कर्म में ये कृत्य प्रत्यय होंगे तो कर्त्ता में तृतीया विभक्ति अथवा षष्ठी[3] होगी और कर्म में प्रथमा विभक्ति। कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों में भी कर्म के अनुसार ही विभक्ति, वचन और लिङ्ग रहेगा। जैसे—रामेण पाठः पठितव्यः, रामेण कारिका पठितव्या और रामेण गद्यं पठितव्यम्। रामेण मन्त्रौ पठितव्यौ आदि। भाव में जब कृत्य प्रत्यय होंगे तब भी कर्ता में तृतीया होगी, कर्म इसमें होता ही नहीं। अतः कृत्यप्रत्ययान्त शब्द में सदा प्रथमा विभक्ति का एकवचन और नपुंसक-लिङ्ग रहेगा। यथा—रामेण स्थातव्यम्, बालाभ्यां स्थातव्यम्, छात्रैः स्थातव्यम् आदि।

ये कृत्य प्रत्यय कुछ अन्य कारकों में भी होते हैं। यथा—वस् [निवासे] धातु से तव्य प्रत्यय (=तव्यत् प्रत्यय) कर्त्ता कारक में होता है और वह णित्त्व धर्म वाला माना जाता है।[4] —वस्+तव्य=वास्तव्यः (=रहने वाला)। कुछ धातुओं से भाव या कर्म के साथ कर्ता में भी कृत्य (=यत्, अनीयर्, ण्यत्) प्रत्यय होते हैं,[5] यथा भू+यत्=भव्यः (=होने वाला अथवा भव्यम्=होना चाहिये) गा+यत्=गेयः (=गाने वाला गवैया अथवा गाने योग्य श्लोक आदि) इत्यादि।

स्ना धातु से अनीयर् प्रत्यय करण कारक में होता है[6]—स्नानीयम् चूर्णम् (=जिससे स्नान करें ऐसा चूरा या मसाला)। दा धातु से सम्प्रदान कारक में अनीयर् प्रत्यय होता है[6]—दानीयः ब्राह्मणः (=जिसके लिए दान दिया जाय ऐसा ब्राह्मण)।

कृत्यप्रत्ययान्तों के पुँल्लिङ्ग में 'पेयः पेयौ पेयाः', 'पातव्यः 'पातव्यौ पातव्याः' आदि राम के समान रूप चलेंगे। नपुंसक में 'पेयं पेये पेयानि' आदि 'ज्ञान' के समान और स्त्रीलिङ्ग में 'पेया पेये पेयाः' आदि 'रमा' के समान रूप चलेंगे।

अब कुछ धातुओं के कृत्यप्रत्ययान्त स्वरूप उदाहरणार्थ दर्शाते हैं।

---

१. अर्हे कृत्यतृचश्च; शकि लिङ् च [अष्टा. ३.३.१६९; १७२]
२. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः [अष्टा. ३.४.७०]
३. कृत्यानां कर्तरि वा [अष्टा. २.३.७१]
४. वसेस्तव्यत्कर्त्तरि णिच्च [वार्त्तिका अष्टा. ३.१.९६]
५. भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा। [अष्टा. ३.४.६८]
६. कृत्यल्युटो बहुलम् (अष्टा० ३.३.११३)।

धातु+कृत्यप्रत्ययं	पुंलिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
पा +यत्	पेयः (पीने योग्य रस आदि)	पेया	पेयम्
,, +तव्य	पातव्यः (,, ,,)	पातव्या	पातव्यम्
,, +अनीयर्	पानीयः (,, ,,)	पानीया	पानीयम्
स्था+यत्	—	—	स्थेयम् (भावे)
,, +तव्य	—	—	स्थातव्यम् (भावे)
,, +अनीयर्	उपस्थानीयः {पास में ठहरने वाला छात्र जिसके पास ठहरा जाय वह गुरु}	उपस्थानीया	स्थानीयम् (भावे)
चि +यत्	चेयः (चुनने योग्य पुष्प आदि)	चेया	चेयम्
,, +तव्य	चेतव्यः (,, ,,)	चेतव्या	चेतव्यम्
,, +अनीयर्	चयनीयः (,, ,,)	चयनीया	चयनीयम्
नी +यत्	नेयः (ले जाने योग्य पशु आदि)	नेया	नेयम्
,, +तव्य	नेतव्यः (,, ,,)	नेतव्या	नेतव्यम्
,, +अनीयर्	नयनीयः (,, ,,)	नयनीया	नयनीयम्
नु +यत्	नव्यः (प्रशंसा करने योग्य)	नव्या	नव्यम्
,, +तव्य	नवितव्यः (,, ,,)	नवितव्या	नवितव्यम्
,, +अनीयर्	नवनीयः (,, ,,)	नवनीया	नवनीयम्
लू +यत्	लव्यः (काटने योग्य वृक्ष आदि)	लव्या	लव्यम्
,, +तव्य	लवितव्यः (,, ,,)	लवितव्या	लवितव्यम्
,, +अनीयर्	लवनीयः (,, ,,)	लवनीया	लवनीयम्
गै +यत्	गेयः {गाने वाला गवैया आदि गाने योग्य मन्त्र आदि}	गेया	गेयम्
,, +तव्य	गातव्यः (गाने योग्य मन्त्र आदि)	गातव्या	गातव्यम्
,, +अनीयर्	गानीयः (,, ,,)	गानीया	गानीयम्
भू +यत्	भव्यः (होने वाला पुरुष आदि)	भव्या	भव्यम् (भावे)
,, +तव्य	—	—	भवितव्यम् (भावे)

धातु+कृत्यप्रत्यय	पुंल्लिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग (शब्द)
भू+अनीयर्	—	—	भवनीयम् (भावे)
शप्+यत्	शप्य: (जिस पर चिल्लाया जाय वह पुरुष आदि)	शप्या	शप्यम्
,, +तव्य	शप्तव्य: (,, ,,)	शप्तव्या	शप्तव्यम्
,, +अनीयर्	शपनीय: (,, ,,)	शपनीया	शपनीयम्
लभ्+यत्	लभ्य: (प्राप्त करने योग्य पदार्थ)	लभ्या	लभ्यम्
,, +तव्य	लब्धव्य: (,, ,,)	लब्धव्या	लब्धव्यम्
,, +अनीयर्	लम्भनीय:[1] (,, ,,)	लम्भनीया[1]	लम्भनीयम्[1]
गम्+यत्	गम्य: (जाने योग्य पर्वत आदि)	गम्या	गम्यम्
,, +तव्य	गन्तव्य: (,, ,,)	गन्तव्या	गन्तव्यम्
,, +अनीयर्	गमनीय: (,, ,,)	गमनीया	गमनीयम्
शक्+यत्	शक्य: (सकने योग्य=शक्य)	शक्या	शक्यम्
,, +तव्य	शक्तव्य: (,, ,,)	शक्तव्या	शक्तव्यम्
,, +अनीयर्	शकनीय: (,, ,,)	शकनीया	शकनीयम्
सह्+यत्	सह्य: (सहन करने योग्य शत्रु आदि)	सह्या	सह्यम्
,, +तव्य	सहितव्य (सोढव्य:) (,, ,,)	सहितव्या (सोढव्या)	सहितव्यम्, सोढव्यम्
,, +अनीयर्	सहनीय: (,, ,,)	सहनीया	सहनीयम्
गद्+यत्	गद्य: (पढ़ने योग्य या बोलने योग्य प्रबन्ध आदि)	गद्या	गद्यम्
,, +तव्य	गदितव्य: (,, ,,)	गदितव्या	गदितव्यम्
,, +अनीयर्	गदनीय: (,, ,,)	गदनीया	गदनीयम्
मद्+यत्	मद्य: (जिससे अतिहर्ष हो वह रस आदि)	मद्या	मद्यम्
,, +तव्य	मदितव्य: (,, ,,)	मदितव्या	मदितव्यम्
,, +अनीयर्	मदनीय: (,, ,,)	मदनीया	मदनीयम्
चर्+यत्	चर्य: {गमन करने योग्य देश आदि अथवा आचरण करने योग्य नियम}	चर्या	चर्यम्

१. लभेश्च (अष्टा० ७.१.६४) से नुम् (=न्) होगा। क्रमश: अनुस्वार और परसवर्णता पूर्ववत्।

धातु+कृत्यप्रत्यय	पुंल्लिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
चर्+तव्य	चरितव्यः {गमन करने योग्य देश आदि अथवा आचरण करने योग्य नियम	चरितव्या	चरितव्यम्
,, +अनीयर्	चरणीयः (,, ,,)	चरणीया	चरणीयम्
सम्यम्+यत्	संयम्यः (अच्छी प्रकार रोकने योग्य)	संयम्या	संयम्यम्
,, +तव्य	संयन्तव्यः (,, ,,)	संयन्तव्या	संयन्तव्यम्
,, +अनीयर्	संयमनीयः (,, ,,)	संयमनीया	संयमनीयम्
चोरि (चुर्+णिच्)+यत्	चोर्यः (चुराने योग्य गुण आदि)	चोर्या	चोर्यम्
,, ,, +तव्य	चोरयितव्यः (,, ,,)	चोरयितव्या	चोरयितव्यम्
,, ,, +अनीयर्	चोरणीयः (,, ,,)	चोरणीया	चोरणीयम्
चिन्ति (चिन्त्+णिच्)+यत्	चिन्त्यः (चिन्तन करने योग्य ईश्वर आदि)	चिन्त्या	चिन्त्यम्
,, ,, +तव्य	चिन्तयितव्यः (,, ,,)	चिन्तयितव्या	चिन्तयितव्यम्
,, ,, +अनीयर्	चिन्तनीयः (,, ,,)	चिन्तनीया	चिन्तनीयम्
कारि (कृ+णिच्)+यत्	कार्यः (करवाने योग्य पदार्थ)	कार्या	कार्यम्
,, ,, +तव्य	कारयितव्यः (,, ,,)	कारयितव्या	कारयितव्यम्
,, ,, +अनीयर्	कारणीयः (,, ,,)	कारणीया	कारणीयम्
पाठि (पठ्+णिच्)+यत्	पाठ्यः (पढ़ाने योग्य ग्रन्थ आदि)	पाठ्या	पाठ्यम्
,, ,, +तव्य	पाठयितव्यः ,, ,,)	पाठयितव्या	पाठयितव्यम्
,, ,, +अनीयर्	पाठनीयः (,, ,,)	पाठनीया	पाठनीयम्
जिज्ञास (ज्ञा+सन्)+यत्	जिज्ञास्यः (जानना चाहने योग्य पदार्थ)	जिज्ञास्या	जिज्ञास्यम्
,, ,, +तव्य	जिज्ञासितव्यः (,, ,,)	जिज्ञासितव्या	जिज्ञासितव्यम्
,, ,, +अनीयर्	जिज्ञासनीयः (,, ,,)	जिज्ञासनीया	जिज्ञासनीयम्
मीमांस (मन्+सन्)+यत्	मीमांस्यः (गम्भीरता से विचारने योग्य)	मीमांस्या	मीमांस्यम्
,, ,, +तव्य	मीमांसितव्यः (,, ,,)	मीमांसितव्या	मीमांसितव्यम्
,, ,, +अनीयर्	मीमांसनीयः (,, ,,)	मीमांसनीया	मीमांसनीयम्

धातु + कृत्यप्रत्यय	पुंल्लिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
पापठ्य (पठ् + यङ्) + यत्	पापठ्यः (बार बार पढ़ने योग्य)	पापठ्या	पापठ्यम्
,, ,, + तव्य	पापठितव्यः (,, ,,)	पापठितव्या	पापठितव्यम्
,, ,, + अनीयर्	पापठनीयः (,, ,,)	पापठनीया	पापठनीयम्
इण् + क्यप्	इत्यः (जाने योग्य ग्राम आदि)	इत्या	इत्यम्
,, + तव्य	एतव्यः (,, ,,)	एतव्या	एतव्यम्
,, + अनीयर्	अयनीयः (,, ,,)	अयनीया	अयनीयम्
स्तु + क्यप्	स्तुत्यः (स्तुति करने योग्य)	स्तुत्या	स्तुत्यम्
,, + तव्य	स्तोतव्यः (,, ,,)	स्तोतव्या	स्तोतव्यम्
,, + अनीयर्	स्तवनीयः (,, ,,)	स्तवनीया	स्तवनीयम्
शास् + क्यप्	शिष्यः (अनुशासन करने योग्य छात्र आदि)	शिष्या	शिष्यम्
,, + तव्य	शासितव्यः (,, ,,)	शासितव्या	शासितव्यम
,, + अनीयर्	शासनीयः (,, ,,)	शासनीया	शासनीयम्
वृ + क्यप्	वृत्यः (वरण करने योग्य गुण)	वृत्या	वृत्यम्
,, + तव्य	वरितव्यः [वरीतव्यः] (वरण करने योग्य गुण)	वरितव्या (वरीतव्या)	वरितव्यम्, वरीतव्यम्
,, + अनीयर्	वरणीयः (वरण करने योग्य गुण)	वरणीया	वरणीयम्
आङ् दृ + क्यप्	आदृत्यः (आदर करने योग्य गुरु आदि)	आदृत्या	आदृत्यम्
,, + तव्य	आदरितव्यः (,, ,,)	आदरितव्या	आदरितव्यम्
,, + अनीयर्	आदरणीयः (,, ,,)	आदरणीया	आदरणीयम्
जुष् + क्यप्	जुष्यः (सेवन करने योग्य देश आदि)	जुष्या	जुष्यम्
,, + तव्य	जोषितव्यः (,, ,,)	जोषितव्या	जोषितव्यम्
,, + अनीयर्	जोषणीयः (,, ,,)	जोषणीया	जोषणीयम्
दृश् + क्यप्	दृश्यः (देखने योग्य घट आदि)	दृश्या	दृश्यम्
,, + तव्य	द्रष्टव्यः (,, ,,)	द्रष्टव्या	द्रष्टव्यम्
,, + अनीयर्	दर्शनीयः (,, ,,)	दर्शनीया	दर्शनीयम्
कृष् + क्यप्	कृष्यः (जोतने योग्य देश आदि)	कृष्या	कृष्यम्

धातु+कृत्यप्रत्यय	पुँल्लिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
कृष्+तव्य	क्रष्टव्यः [कर्ष्टव्यः] (जोतने योग्य देश आदि)	क्रष्टव्या कर्ष्टव्या	क्रष्टव्यम् कर्ष्टव्यम्
,, +अनीयर्	कर्षणीयः (,, ,,)	कर्षणीया	कर्षणीयम्
भृ+क्यप्	भृत्यः (भरण पोषण करने योग्य)	भृत्या	भृत्यम्
,, +तव्य	भर्तव्यः (,, ,,)	भर्तव्या	भर्तव्यम्
,, +अनीयर्	भरणीयः (,, ,,)	भरणीया	भरणीयम्
खन्+क्यप्	खेयः (खोदने योग्य देश आदि)	खेया	खेयम्
,, +तव्य	खनितव्यः (,, ,,)	खनितव्या	खनितव्यम्
,, +अनीयर्	खननीयः (,, ,,)	खननीया	खननीयम्
परिमृज्+क्यप्	परिमृज्यः (शोधने योग्य देश आदि)	परिमृज्या	परिमृज्यम्
,, +तव्य	परिमार्ष्टव्यः [परिमार्जितव्यः] (शोधने योग्य देश आदि)	परिमार्ष्टव्या परिमार्जितव्या	परिमार्ष्टव्यम् परिमार्जितव्यम्
,, +अनीयर्	परिमार्जनीयः (,, ,,)	परिमार्जनीया	परिमार्जनीयम्
कृ+क्यप्	कृत्यः (करने योग्य घट आदि)	कृत्या	कृत्यम्
,, +तव्य	कर्तव्यः (,, ,,)	कर्तव्या	कर्तव्यम्
,, +अनीयर्	करणीयः (,, ,,)	करणीया	करणीयम्
वृष्+क्यप्	वृष्यः सींचने योग्य देश आदि शक्ति बढ़ाने वाला सूप आदि	वृष्या	वृष्यम्
,, +तव्य	वर्षितव्यः (सींचने योग्य देश आदि)	वर्षितव्या	वर्षितव्यम्
,, +अनीयर्	वर्षणीयः (,, ,,)	वर्षणीया	वर्षणीयम्
हृ+ण्यत्	हार्यः (हरण करने योग्य घट आदि)	हार्या	हार्यम्
,, +तव्य	हर्तव्यः (,, ,,)	हर्तव्या	हर्तव्यम्
,, +अनीयर्	हरणीयः (,, ,,)	हरणीया	हरणीयम्
कृ+ण्यत्	कार्यः (करने योग्य कट आदि)	कार्या	कार्यम्
,, +तव्य	कर्तव्यः (,, ,,)	कर्तव्या	कर्तव्यम्

धातु + कृत्यप्रत्यय	पुँल्लिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
कृ + अनीयर्	करणीयः (करने योग्य घट आदि)	करणीया	करणीयम्
पठ् + ण्यत्	पाठ्यः (पढ़ने योग्य ग्रन्थ आदि)	पाठ्या	पाठ्यम्
,, + तव्य	पठितव्यः (,, ,,)	पठितव्या	पठितव्यम्
,, + अनीयर्	पठनीयः (,, ,,)	पठनीया	पठनीयम्
पच् + ण्यत्	[1]पाक्यः (पकाने योग्य सूप आदि)	पाक्या[1]	[1]पाक्यम्
अवश्यपच् + ण्यत्	अवश्यपाच्यः[2] (अवश्य पकाने योग्य सूप आदि)	अवश्यपाच्या[2]	अवश्यपाच्यम्[2]
पच् + तव्य	पक्तव्यः (पकाने योग्य सूप आदि)	पक्तव्या	पक्तव्यम्
,, + अनीयर्	पचनीयः (,, ,,)	पचनीया	पचनीयम्
भुज् + ण्यत्	भोज्यः[3] (खाने योग्य ओदन आदि)	भोज्या[3]	भोज्यम्[3]
,, + ,,	भोग्यः[1] (भोगने योग्य पट आदि)	भोग्या[1]	भोग्यम्[1]
,, + तव्य	भोक्तव्यः (खाने या भोगने योग्य)	भोक्तव्या	भोक्तव्यम्
,, + अनीयर्	भोजनीयः (,, ,,)	भोजनीया	भोजनीयम्
त्यज् + ण्यत्	त्याज्यः[4] (त्यागने योग्य दुर्गुण आदि)	त्याज्या[4]	त्याज्यम्[4]
,, + तव्य	त्यक्तव्यः (,, ,,)	त्यक्तव्या	त्यक्तव्यम्
,, + अनीयर्	त्यजनीयः (,, ,,)	त्यजनीया	त्यजनीयम्
[5]परिमृज् + ण्यत्	परिमार्ग्यः (शोधने योग्य पट आदि)	परिमार्ग्या	परिमार्ग्यम्
[5]वृष् + ण्यत्	वर्ष्यः (सींचने योग्य देश आदि)	वर्ष्या	वर्ष्यम्
आङ् + सु + ण्यत्	आसाव्यः (निचोड़ने या चुआने योग्य)	आसाव्या	आसाव्यम्
,, ,, + तव्य	आसोतव्यः (,, ,,)	आसोतव्या	आसोतव्यम्
,, ,, + अनीयर्	आसवनीयः (,, ,,)	आसवनीया	आसवनीयम्
यु + ण्यत्	याव्यः (मिलाने या अलग करने योग्य)	याव्या	याव्यम्

१. चजोः कु घिण्ण्यतोः (अष्टा. ७.३.५२) से कुत्व २. ण्य आवश्यके (अष्टा. ७.३.६५) से कुत्व का निषेध
३. भोज्यं भक्ष्ये (अष्टा. ७.३.६९) से कुत्व का अभाव ४. ण्यति प्रतिषेधे त्यजेरुपसङ्ख्यानम् [वा.] अष्टा. ७.३.६६ से कुत्व का निषेध
५. मृज् और वृष् के तव्यप्रत्ययान्त और अनीयर्प्रत्ययान्त स्वरूप क्यप् के प्रसङ्ग में दिये जा चुके हैं।

धातु + कृत्यप्रत्यय	पुंलिङ्ग शब्द (हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
यु + तव्य	योतव्यः (मिलाने या अलग करने योग्य)	योतव्या	योतव्यम्
,, + अनीयर्	यवनीयः (,, ,,)	यवनीया	यवनीयम्
वप् + ण्यत्	वाप्यः (बोने योग्य बीज आदि)	वाप्या	वाप्यम्
,, + तव्य	वप्तव्यः (,, ,,)	वप्तव्या	वप्तव्यम्
,, + अनीयर्	वपनीयः (,, ,,)	वपनीया	वपनीयम्
रप् + ण्यत्	राप्यः (कहने योग्य शब्द आदि)	राप्या	राप्यम्
,, + तव्य	रपितव्यः (,, ,,)	रपितव्या	रपितव्यम्
,, + अनीयर्	रपणीयः (,, ,,)	रपणीया	रपणीयम्
लप् + ण्यत्	लाप्यः (बोलने योग्य शब्द आदि)	लाप्या	लाप्यम्
,, + तव्य	लपितव्यः (,, ,,)	लपितव्या	लपितव्यम्
,, + अनीयर्	लपनीयः (,, ,,)	लपनीया	लपनीयम्
त्रप् + ण्यत्	—	—	त्राप्यम् (भावे)
,, + तव्य	—	—	त्रपितव्यम् (,,)
,, + अनीयर्	—	—	त्रपणीयम् (,,)
आङ् चम् + ण्यत्	आचाम्यः (पीने योग्य रस आदि)	आचाम्या	आचाम्यम्
,, ,, + तव्य	आचमितव्यः (,, ,,)	आचमितव्या	आचमितव्यम्
,, ,, + अनीयर्	आचमनीयः (,, ,,)	आचमनीया	आचमनीयम्
अवश्य लू + ण्यत्	अवश्यलाव्यः (जरूर काटने योग्य)	अवश्यलाव्या	अवश्यलाव्यम्
,, ,, + तव्य	अवश्यलवितव्यः (,, ,,)	अवश्यलवितव्या	अवश्यलवितव्यम्
,, ,, + अनीयर्	अवश्यलवनीयः (,, ,,)	अवश्यलवनीया	अवश्यलवनीयम्
हन् + ण्यत्	घात्यः (मारने योग्य शत्रु आदि)	घात्या	घात्यम्
,, + तव्य	हन्तव्यः (,, ,,)	हन्तव्या	हन्तव्यम्
,, + अनीयर्	हननीयः (,, ,,)	हननीया	हननीयम्

अभ्यास

१. तुम सब गाँव जाओ।
कर्तृ०—यूयं ग्रामं गच्छत (गच्छेत)
कर्म०—युष्माभिः (युष्माकं) ग्रामः गन्तव्यः (गम्यः, गमनीयः)।

२. सदा सज्जनों की सङ्गति करनी चाहिये।
कर्तृ०—सदा सज्जनैः सङ्गच्छध्वम् (सङ्गच्छेध्वम्)
भाव०—सदा युष्माभिः सज्जनैः सङ्गन्तव्यम् (सङ्गम्यम्, सङ्गमनीयम्)

३. तू इन ग्रन्थों को पढ़। कर्तृवाच्य०—त्वम् इमान् ग्रन्थान् पठ (पठेः)
कर्म०—त्वया (तव) इमे ग्रन्थाः पठितव्याः (पठनीयाः, पाठ्याः)

४. आप सब अष्टाध्यायी याद करें। कर्तृ०—भवन्तः अष्टाध्यायीं स्मरेयुः (स्मरन्तु)
कर्म०—भवद्भिः (भवताम्) अष्टाध्यायी स्मर्तव्या (स्मरणीया, स्मार्या)

५. आप पत्र लिखिये। कर्तृ०—भवान् पत्रं लिखतु (लिखेत्)
कर्म०—भवता (भवतः) पत्रं लेखितव्यम् (लेखनीयं, लेख्यम्)

६. आप सब यहीं ठहरें। कर्तृ०—भवन्तः अत्रैव तिष्ठन्तु (तिष्ठेयुः)।
कर्म०—भवद्भिः अत्रैव स्थातव्यम् (स्थानीयम्, स्थेयम्)

७. तू इन दोनों बातों को जान ले। कर्तृ०—त्वम् इमे वार्ते जानीहि (जानीयाः)
कर्म०—त्वया इमे वार्ते ज्ञातव्ये (ज्ञानीये, ज्ञेये)।

८. तू इन दोनों लड़कों को पूछ। कर्तृ०—त्वम् एतौ बालौ पृच्छ (पृच्छेः)।
कर्म०—त्वया इमौ बालकौ प्रष्टव्यौ (प्रच्छनीयौ, प्रच्छ्यौ)।

९. इस लड़के की चञ्चलता देख।
कर्तृ०—त्वम् अस्य बालस्य चाञ्चल्यं (चञ्चलतां) पश्य।
कर्म०—त्वया अस्य बालस्य चाञ्चल्यं द्रष्टव्यं (दर्शनीयं, दृश्यम्) [चञ्चलता द्रष्टव्या] (दर्शनीया, दृश्या)।

१०. क्या मैं ये कार्य करूँ? कर्तृ०—किम् अहम् इमानि कार्याणि करवाणि (करवै, कुर्याम्, कुर्वीय)?
कर्म०—किं मया इमानि कार्याणि कर्तव्यानि (करणीयानि, कार्याणि)।

११. करने योग्य कार्य कर, न करने योग्य न कर।
कर्तृ०—कार्याणि कार्याणि कुरु, अकार्याणि कार्याणि न कुरु (मा कार्षीः)
कर्म०—कार्याणि कार्याणि कार्याणि (कृत्यानि, कर्तव्यानि, करणीयानि) अकार्याणि कार्याणि न कार्याणि (कृत्यानि, कर्तव्यानि, करणीयानि)।

१२. शत्रुओं को जीत। कर्तृ०— शत्रून् विजयस्व (विजयेथाः)
कर्म०—शत्रवः विजेतव्याः (विजयनीयाः, विजेयाः)।

१३. दूसरों का धन मत चुरा। कर्तृ०—परद्रव्यं न हर (न हरेः, मा हार्षीः)
कर्म०—त्वया परद्रव्यम् न हर्तव्यं (न हरणीयं, न हार्यम्)।

१४. मेरी बातें सुन। कर्तृ०—मम वार्ताः शृणु (शृणुयाः)।
कर्म०—मम वार्ताः श्रोतव्याः (श्रवणीयाः, श्रव्याः)।

१५. बच्चो! गाओ। कर्तृ०—बालाः! गायत (गायेत)।
कर्म०—बालाः! गातव्यं (गानीयं, गेयम्)।

१६. अपनी पुस्तकें लो। कर्तृ०—स्वानि पुस्तकानि गृहाण (गृह्णीयाः)।
कर्म०—स्वपुस्तकानि ग्रहीतव्यानि (ग्रहणीयानि, ग्राह्याणि)।

१७. मैं ये पुस्तकें किसे दूं?
कर्तृ०—अहम् एतानि पुस्तकानि कस्मै ददानि (ददै, ददीय, दद्याम्)?
कर्म०—मया एतानि पुस्तकानि कस्मै दातव्यानि (दानीयानि, देयानि)?

१८. आपको यह बात सह लेनी चाहिये। कर्तृ०—भवान् एतां वार्तां सहताम् (सहेत)
कर्म०—भवता एषा वार्ता सहितव्या (सोढव्या, सहनीया, सह्या)।

१९. मत डर। कर्तृ०—मा भैषीः (मा स्म बिभेः)।
कर्म०—न भेतव्यम् (न भयनीयं, न भेयम्)।

२०. आप सब सो जाओ। कर्तृ०—भवन्तः शेरताम् (शयीरन्)।
कर्म०—भवद्भिः शयितव्यम् (शयनीयं, शेयम्)।

२१. आप लोग मेरे लिये न ठहरें।
भवद्भिः मम कृते न स्थातव्यम् (स्थानीयम्, स्थेयम्)।

२२. यह पण्डित सामवेद का गायक है।
अयं पण्डितः सामवेदस्य गेयः (गायनः, गायकः) अस्ति।

२३. हमें उत्तम गाने ही गाने चाहियें।
अस्माभिः (अस्माकं) श्रेष्ठानि गानानि एव गेयानि (गातव्यानि, गानीयानि)

२४. तुम सभा में जोर से श्लोक गाना।
त्वया सभायाम् उच्चैः श्लोकाः गेयाः (गातव्याः, गानीयाः)

२५. तुम्हें इस विषय में विद्वान् होना चाहिये।
त्वया अस्मिन् विषये मतिमता भाव्यम् (भवितव्यं, भवनीयम्)।

२६. इस स्वयंवर में तो यह युवक ही वरने योग्य है।
अस्मिन् स्वयंवरे तु अयं युवा एव वृत्यः (वरणीयः, वरितव्यः, वरीतव्यः)
अस्ति।

२७. ये फूल तो हिमालय की तराई में ही मिल सकते हैं।
इमानि पुष्पाणि तु हिमाद्रेः उपत्यकायाम् एव लभ्यानि (लब्धव्यानि, लम्भनीयानि) सन्ति।

२८. यह भारी जङ्गल आपके जाने लायक नहीं है।
इयम् अरण्यानी भवद्गम्या (भवद्गन्तव्या, भवद्गमनीया) नास्ति।

२९. प्रातः सायं हमें ईश्वर की स्तुति करनी चाहिये।
प्रातः सायम् अस्माभिः ईश्वरः स्तुत्यः (स्तोतव्यः, स्तवनीयः)।

३०. ये छात्र आपके द्वारा अनुशासन करने योग्य हैं।
एते छात्राः भवता शिष्याः (शासितव्याः, शासनीयाः) सन्ति।

३१. टी० बी० रोग की निवृत्ति के लिये उत्तम दवाइयाँ खाइये।
यक्ष्मरोगनिवृत्तये उत्तमानि भेषजानि जुष्याणि (जोषितव्यानि, जोषणीयानि)

३२. इस नौकर के गरीब मित्रों का भी पालन करना चाहिये।
अस्य भृत्यस्य (सेवकस्य) निर्धनानि मित्राणि अपि भृत्यानि (भर्तव्यानि, भरणीयानि)

३३. वेदि के लिये पवित्र भूमि खोदनी चाहिये।
वेद्यै (वेदये) शुचिः भूमिः खेया (खनितव्या, खननीया)।

३४. ये सारे पात्र अभी नहीं मांजे जा सकते।
इमानि सर्वाणि पात्राणि सम्प्रति न परिमृज्यानि (परिमार्ग्याणि, परिमार्जितव्यानि, परिमार्ष्टव्यानि, परिमार्जनीयानि)।

३५. आज पर्व है, मइया! खीर पकानी चाहिये और मालपुए भी जरूर पकाने चाहियें।
अद्य पर्व वर्त्तते, मातः! पायसान्नं पाक्यम् (पक्तव्यं, पचनीयम्) अपूपाः अपि च अवश्यम्पाच्याः (अवश्यम्पक्तव्याः, अवश्यम्पचनीयाः)

३६. ये मेवे खराब नहीं हुए, खाने योग्य हैं।
एते मोणाः न दूषिताः, भोज्याः (भोक्तव्याः, भोजनीयाः) सन्ति।

३७. ये भवन आप जैसों के द्वारा ही भोगने योग्य हैं।
एतानि भवनानि भवादृशैः एव भोग्यानि सन्ति।

३८. गिलोय की बेल को कूटकर तुम्हें रस निकालना चाहिये।
गुडूचीवल्लरीं निष्पीड्य (संकुट्य) त्वया रसः आसाव्यः (आसोतव्यः आसवनीयः)

३९. इस खेत में गेहूं बोये जा सकते हैं।
अस्मिन् क्षेत्रे गोधूमाः वाप्याः (वप्तव्याः, वपनीयाः)।

४०, नाई के पास जा, तेरे बाल कटने लायक हो गये।
नापितस्य समीपं गच्छ, तव केशाः वाप्याः (वप्तव्याः, वपनीयाः) सञ्जाताः।

४१ इस व्यवहार के लिये उसे लज्जित होना चाहिये।
अस्य व्यवहारस्य कृते तेन त्राप्यम् (त्रपितव्यम्, त्रपणीयम्)।

४२. इस पात्र के जल से आचमन कर।
एतत्पात्रस्थितं जलम् आचाम्यं (आचमितव्यं, आचमनीयम्)।

४३. ऐसे दुष्ट पापियों को मारना ही चाहिये।
एतादृशाः दुष्टाः पापिनः घात्याः (हन्तव्याः, हननीयाः) एव।

४४. हमें किसी की वस्तुएँ नहीं चुरानी चाहियें।
अस्माभिः कस्यापि वस्तूनि न चोर्याणि (चोरयितव्यानि, चोरणीयानि)।

४५. उस ग्रन्थ के पच्चीस स्थल चिन्तन की अपेक्षा रखते हैं।
तस्य ग्रन्थस्य पञ्चविंशतिः स्थलानि चिन्त्यानि (चिन्तयितव्यानि, चिन्तनीयानि) सन्ति।

४६. ये सारे कार्य आज ही कराने हैं।
इमानि सर्वाणि कार्याणि अद्यैव कार्याणि (कारयितव्यानि, कारणीयानि) सन्ति

४७. अश्लील ग्रन्थ नहीं पढ़ाने चाहियें।
अश्लीलाः ग्रन्थाः न पाठ्याः (पाठयितव्याः, पाठनीयाः)

४८. सभी आवश्यक शिष्टाचारों के जानने की इच्छा होनी ही चाहिये।
सर्वे आवश्यकाः शिष्टाचाराः जिज्ञास्याः (जिज्ञासितव्याः, जिज्ञासनीयाः) एव।

४९. गुरुओं के वचनों पर व्यर्थ की टीका टिप्पणी नहीं करनी चाहिये।
गुरुवचनानि व्यर्थं न मीमांस्यानि (मीमांसितव्यानि, मीमांसनीयानि)।

५०. न्यायकुसुमाञ्जलि की कारिकाएं बार बार पढ़नी चाहियें।
न्यायकुसुमाञ्जलिग्रन्थस्य कारिकाः पापठ्याः (पापठितव्याः, पापठनीयाः)।

तुमुन् प्रत्यय

क्रियार्था क्रिया उपपद में हो तो धातुमात्र से भविष्यत् काल अर्थ में 'तुमुन्' प्रत्यय होता है।[1] क्रियार्था क्रिया की बात को ध्यान से समझो। एक वाक्य है— 'रामः भोक्तुं गच्छति'—राम खाने को जाता है। इस वाक्य में दो क्रिया हैं 'खाना' और 'जाना'। 'खाना' क्रिया, साध्य क्रिया है और 'जाना' क्रिया साधन क्रिया। अर्थात् 'जाना' क्रिया की जा रही है 'खाना' क्रिया को सफल करने के लिये। अतः किसी अन्य क्रिया के लिये (=अन्य क्रिया को पूरा करने के लिये) की जाने वाली क्रिया को (=साधन क्रिया को) 'क्रियार्था क्रिया' कहते हैं। इस उपर्युक्त वाक्य में 'जाना (गमन)' यह क्रियार्था क्रिया है। उसके उपपद में (=समीप में=साथ में) उपस्थित रहने से खाना (=भोजन) क्रिया की धातु 'भुज्' से तुमुन् प्रत्यय हुआ। 'तुमुन्' के द्वितीय 'उ' और न् की इत्सञ्ज्ञा हो जाने पर 'तुम्' भाग शेष रहता है। सेट् धातुओं से तुम् (=तुमुन्) होने की स्थिति में 'तुम्' को इ (=इट्) आगम होगा[2]। यथा—भवितुम्, पठितुम् आदि। तुम्-प्रत्ययान्त शब्दों से सुप् की उत्पत्ति होगी किन्तु तुम्-प्रत्ययान्त शब्दों की अव्ययसञ्ज्ञा होने के कारण[3] इन शब्दों से सुब्मात्र का लोप हो जायेगा[4] अर्थात् ये अव्यय बन जायेंगे और सदा एक सा रूप रहेगा।

तुम् (=तुमुन्) प्रत्ययान्त शब्द बनाने का सरल उपाय यह है कि जिस धातु का लुट् लकार के प्र० पु० के एकवचन में जो रूप बनता है, वह ले लो, और उसके 'ता' अंश के स्थान पर 'तुम्' लगा दो, बस तुम्-प्रत्ययान्त स्वरूप बन गया। यथा-पठ्+लुट् (प्र० पु० ए०)→पठिता, पठ्+तुम्-(तुमुन्)→पठितुम्। गन्ता-गन्तुम्। सोढा, सहिता-सोढुम्, सहितुम् आदि।

अब कुछ धातुओं के तुम्-प्रत्ययान्त स्वरूप उदाहरणार्थ दर्शाते हैं→

---

१. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् (अष्टा० ३.३.१०)

२. आर्धधातुकस्येड् वलादेः (अष्टा० ७.२.३५)

३. कृन्मेजन्तः (अष्टा० १.१.३९)

४. अव्ययादाप्सुपः (अष्टा० २.४.८२)

धातु+तुमुन्	तुमुन्प्रत्ययान्त शब्द (हिन्दी अर्थ)
भू+तुमुन्	भवितुम् (होने के लिए)
यत्+ ,,	यतितुम् (प्रयत्न करने के लिए)
पच्+ ,,	पक्तुम् (पकाने के लिए)
पठ्+ ,,	पठितुम् (पढ़ने के लिए)
गा+ ,,	गातुम् (गाने के लिए)
लभ्+ ,,	लब्धुम् (प्राप्त करने के लिए)
आप्+ ,,	आप्तुम् (,, ,,)
पा+ ,,	पातुम् (पीने के लिए)
यज्+ ,,	यष्टुम् (यज्ञ करने के लिए)
वह्+ ,,	वोढुम् (ढोने के लिए)
वच्+ ,,	वक्तुम् (कहने के लिए)
ग्रह्+ ,,	ग्रहीतुम् (लेने के लिए)
कृ+ ,,	कर्तुम् (करने के लिए)
श्रु+ ,,	श्रोतुम् (सुनने के लिए)
भिद्+ ,,	भेत्तुम् (फाड़ने के लिए)
दा+ ,,	दातुम् (देने के लिए)
धा+ ,,	धातुम् (धारण करने के लिए)
स्तु+ ,,	स्तोतुम् (स्तुति करने के लिए)
ऊर्णु+ ,,	ऊर्णवितुम् (ढकने के लिए)
	ऊर्णुवितुम् (,, ,,)
सह्+ ,,	सहितुम् [सोढुम्] (सहने के लिए)
वृ+ ,,	वरितुम् [वरीतुम्] (वरने के लिए)
मृज्+ ,,	मार्ष्टुम् [मार्जितुम्] (शोधने के लिए)
इष् (इच्छायाम्)+तुमुन्	एषितुम् [एष्टुम्] (चाहने के लिए)
सू (प्राणिप्रसवे)+ ,,	सोतुम् [सवितुम्] (पैदा करने के ,,)

धातु+तुमुन्	तुमुन्प्रत्ययान्त शब्द (हिन्दी अर्थ)
अश् (व्याप्तौ)+तुमुन्	अशितुम् [अष्टुम्] (व्याप्त होने के लिए
अश् (भोजने)+ ,,	अशितुम् (खाने के लिए)
भुज्+तुमुन्	भोक्तुम् (,, ,,)
तुद्+ ,,	तोत्तुम् (पीड़ित करने के लिए)
क्षिप्+ ,,	क्षेप्तुम् (फेंकने के लिए)
लुठ्+ ,,	लुठितुम् (लुढ़कने के लिए)
तुड्+ ,,	तुडितुम् (तोड़ने के लिए)
शी+ ,,	शयितुम् (सोने के लिए)
श्रि+ ,,	श्रयितुम् (आश्रय लेने के लिए)
दृश्+ ,,	द्रष्टुम् (देखने के लिए)
सृज्+ ,,	स्रष्टुम् (बनाने के लिए)
लिह्+ ,,	लेढुम् (चाटने के लिए)
दुह्+ ,,	दोग्धुम् (दुहने के लिए)
तन्+ ,,	तनितुम् (फैलाने के लिए)
कृत्+ ,,	कर्तितुम् (काटने के लिए)
लस्ज् (लज्ज्)+तुमुन्	लज्जितुम् (लज्जित होने के लिए)
क्री+ तुमुन्	क्रेतुम् (खरीदने के लिए)
विक्री+ ,,	विक्रेतुम् (बेचने के लिए)
उत्डी+ ,,	उड्डयितुम् (उड़ने के लिए)
नृत्+ ,,	नर्तितुम् (नाचने के लिए)
नह्+ ,,	नद्धुम् (बांधने के लिए)
बन्ध्+ ,,	बन्द्धुम् (,, ,,)
अव सा+ ,,	अवसातुम् (समाप्त करने के लिए)
अधिइङ्+ ,,	अध्येतुम् (पढ़ने के लिए)
मन् (अवबोधने) ,,	मनितुम् (समझने, मानने के लिए)

धातु+तुमुन्	तुमुन्प्रत्ययान्त शब्द (हिन्दी अर्थ)
सु (अभिषवे)+तुमुन्	सोतुम् (निचोड़ने के लिए)
	(चुआने के ,,)
नश्+तुमुन्	नशितुम् (नष्ट होने के लिए)
	नष्टुम् (,, ,,)
विगाह्+तुमुन्	विगाहितुम् (विलोड़ने के लिए)
	विगाढुम् (,, ,,)
विकॄ+ ,,	विकरितुम् (बिखेरने के लिए)
	विकरीतुम् (,, ,,)
तॄ+ ,,	तरितुम् (तैरने के लिए)
	तरीतुम् (,, ,,)
निगॄ+ ,,	निगरितुम् (निगलने के लिए)
	निगरीतुम् (,, ,,)
जॄ+ ,,	जरितुम् (जीर्ण होने के लिए)
	जरीतुम् (,, ,,)
गुप्+ ,,	गोप्तुम् (रक्षा करने के लिए)
	गोपितुम् (,, ,,)
तृप्+ ,,	त्रप्तुम् (तृप्त करने के लिए)
	तप्तुम् (,, ,,)
	तर्पितुम् (,, ,,)
नु (स्तुतौ)+तुमुन्	नवितुम् (स्तुति करने के लिए)
नू (स्तवने)+ ,,	नुवितुम् (,, ,,)

धातु+तुमुन्	तुमुन्प्रत्ययान्त शब्द (हिन्दी अर्थ)
मन् (ज्ञाने)+तुमुन्	मन्तुम् (जानने के लिए)
द्रुह्+तुमुन्	द्रोग्धुम् (द्रोह करने के लिए)
	द्रोढुम् (,, ,,)
	द्रोहितुम् (,, ,,)
स्निह्+ ,,	स्नेग्धुम् (स्नेह करने के लिए)
	स्नेढुम् (,, ,,)
	स्नेहितुम् (,, ,,)
विद् (ज्ञाने)+तुमुन्	वेदितुम् (जानने के लिए)
विद् (लाभे)+ ,,	वेत्तुम् (पाने के लिए)
विद् (विचारणे)+,,	वेत्तुम् (विचारने के लिए)
चोरि (चुर्+णिच्)+ ,,	चोरयितुम् (चोरने के लिए)
	(चुराने के लिए)
	(चुरवाने के लिए)
कथि+तुमुन्	कथयितुम् (कहने के लिए)
भक्षि+ ,,	भक्षयितुम् (खाने के लिए)
कारि+ ,,	कारयितुम् (करवाने के लिए)
पाठि+ ,,	पाठयितुम् (पढ़ाने के लिए)
जिज्ञास+ ,,	जिज्ञासितुम् (जानना चाहने के ,,)
पापठ्य+ ,,	पापठितुम् (बार-बार पढ़ने के लिए)

अभ्यास

१. आप क्या बनना चाहते हैं ?=भवान् किं भवितुं वाञ्छति ?

२. मैं छात्रावास में भोजन पकाने और यह बर्तन मांजने जाते हैं।
अहं छात्रावासे भोजनं पक्तुम् अयं च पात्राणि मार्ष्टुं (मार्जितुं) गच्छावः।

३. जब श्याम पढ़ने जाता है, तब राम गाने और सुरेन्द्र दवाई घोटने जाता है।
यदा श्यामः पठितुं याति तदा रामः गातुं सुरेन्द्रः च औषधं घुटितुं यातः।

४. तुम तो भोजन पाने को जतन कर रहे हो पर मेरे प्राण जल पीने के लिए तड़प रहे हैं।
यूयं तु भोजनं लब्धुं (आप्तुम्) यतध्वे, परं मम प्राणाः तु पयः पातुं तप्यन्ते।

५. यज्ञ करने को और दक्षिणा लेने को ही तुम्हें ब्राह्मण नहीं बनाया है।
यज्ञं यष्टुं दक्षिणाम् ग्रहीतुम् एव च त्वं न ब्राह्मणः निर्मितः असि।

६. तुझे यहाँ गेहूं की बोरियाँ ढोने के लिए और पेड़ काटने के लिये बुलाया है।
त्वाम् अत्र गोधूमानां गोणीः वोढुं वृक्षान् च कर्तितुम् आहूतवान् अस्मि।

७. उसके क्षमा मांग लेने पर मेरे पास कहने को कुछ नहीं था।
क्षमां याचितवति तस्मिन् न वक्तुं किमपि अवशिष्टम् आसीत् मम समीपे।

८. मैं बाल्टी ढकने जा ही रहा था कि पिताजी ने मुझे लकड़ी फाड़ने भेज दिया।
सेचनीम् ऊर्णवितुम् (ऊर्णुवितुम्) गच्छन्तम् एव मां जनकः काष्ठं भेत्तुं अप्रेषयत् (अपिप्रेषत्, प्रैषयत् प्राषिषत्)।

९. माता ने दोनों लड़कियों को पुनः प्रयत्न करने को उत्साहित किया।
जननी उभे सुते पुनः यतितुम् उदसाहयत्।

१०. जो कार्य मैंने करने को दिये हैं उन्हें शीघ्र करो।
यानि कार्याणि कर्तुम् अहम् अदां तानि सपदि साधय।

११. ईश्वर की स्तुति करने के लिये और उपदेश सुनने के लिए तुम्हें फ़ुरसत नहीं है पर सिनेमा देखने के लिये बहुत फुरसत है !
परमेश्वरं स्तोतुं (नवितुम्, नुवितुम्) प्रवचनानि श्रोतुं च तव अवकाशः नास्ति परं चलचित्राणि द्रष्टुं प्रचुरः अवकाशः अस्ति !

१२. यह सेठ अनाथों को कपड़े देने के लिये अजमेर जायेगा।
अयं धनिकः अनाथेभ्यः वासांसि दातुम् अजमेरनगरं यास्यति।

१३. यह रोगी दवाई चाटने के लिये और दूध पीने के लिये शोर मचाता है।
अयं रुग्णः औषधं लेढुं दुग्धं च पातुं कोलाहलं करोति।

१४. तुम यहाँ आश्रय लेने आये हो अथवा मुझे पीड़ित करने ?
त्वमत्र माम् आश्रयितुम् आगच्छः (आगमः) आहोस्वित् मां तोत्तुं (पीडयितुम्) ?

१५. ऊर्मिला के गाय दुहने चले जाने पर तुम लोग पढ़ने बैठ जाना ।
गां दोग्धुं गमिष्यत्यां (गमिष्यन्त्यां) ऊर्मिलायां यूयं पठितुं (अध्येतुम्) उपवेक्ष्यथ ।

१६. ऊंट बेचने और गायें खरीदने को आये सारे व्यापारी लड्डू खाने बैठ गये हैं ।
क्रमेलकान् विक्रेतुं गाः च क्रेतुम् आगताः सर्वे वणिजः मोदकानि भक्षयितुम् (अशितुम्) उपाविक्षन् ।

१७. वह घुड़साल में घोड़े बांधने और वहाँ का कूड़ा फेंकने जायेगा ।
सः मन्दुरायां तुरगान् बन्धुं (नद्धुमु) तत्रत्यम् अवकरं च क्षेप्तुं यास्यति ।

१८. यह इतने ऊँचे पद को पाकर भी और ऊँचा उड़ना चाहता है ।
अयम् एतादृशम् उन्नतं पदम् अवाप्य अपि उच्चैः एव उड्डयितुं कामयते ।

१९. हम उनके कार्यक्रम को जानने और उनकी धूर्तता को समझने जायेंगे ।
वयं तेषां कार्यक्रमं मन्तुं (ज्ञातुं) तदीयां शठतां मनितुं च यास्यामः ।

२०. इन्दुमती अपने अभीष्ट वर को वरने के लिये स्वयंवर सभा में जायेगी ।
इन्दुमती स्वमनोवाञ्छितं वरं वरितुं (वरीतुं) स्वयंवरसभां यास्यति ।

२१. अन्धे व्यक्ति का भी बढ़िया कपड़ा पहनने को जी मचलता है ।
नेत्रहीनस्य अपि जनस्य मसृणानि वासांसि परिधातुम् उत्कण्ठते चेतः ।

२२. कुछ मछलियाँ अण्डे देने के लिये दूसरे समुद्र में जाती हैं ।
काश्चन मत्स्यः अण्डानि सोतुं (सवितुं) सागरान्तरं व्रजन्ति ।

२३. ब्राह्मी का रस निचोड़ने को तैय्यार हो जाओ ।
ब्राह्मीरसं सोतुं (निश्च्योतितुं) सज्जाः भवत ।

२४. ये बच्चे बगिया में नाचने, लुढ़कने और पत्ते तोड़ने आये हैं ।
एते शिशवः बालोद्याने नर्त्तितुं, लुठितुं, पत्राणि तुडितुं च आगताः सन्ति ।

२५. यज्ञ की रक्षा करने के लिये राम और लक्ष्मण रात्रि में भी जागते रहे ।
यज्ञं गोप्तुं (गोपितुम्) रामलक्ष्मणौ निशायाम् अपि जागराम्बभूवतुः ।

२६. हम कष्ट सहने को तैयार हैं, पर नष्ट होने को कभी नहीं ।
वयं कष्टानि सहितुं (सोढुं) सज्जाः स्म परं नशितुं (नंष्टुम्) कदापि नैव ।

२७. पानी को मथने के लिये वे वनैले हाथी तालाब में घुस गये।
ते वन्याः गजाः वारि विगाहितुं (विगाढुं) सरोवरम् अविशन् (अविक्षन्)

२८. यह लड़की कबूतरों के लिये गेहूं बिखेरने को जायेगी।
इयं बाला पारावतानां कृते गोधूमान् विकरितुं (विकरीतुं) व्रजिष्यति।

२९. इस झील का साफ पानी देखकर तैरने को जी करता है।
अस्याः सरस्याः स्वच्छं सलिलं विलोक्य तरितुं (तरीतुम्) उत्सहते चेतः।

३०. दिखती मक्खी को निगलना कौन चाहेगा ?
कस्तावद् दृश्यमानां मक्षिकां निगरितुं (निगरीतुं) वाञ्छिष्यति ?

३१. जो जीर्ण नहीं होना चाहता उसे दुराचार का मार्ग त्याग देना चाहिये।
यः जरितुं (जरीतुं) न कामयेत सः दुरितपथं त्यजेत्।

३२. जीवित माता पिता को तृप्त करने का कभी प्रयत्न नहीं किया और अब मरे पीछे श्राद्ध कर रहा है।
जीवितौ पितरौ तर्पितुं (तप्तुं, त्रप्तुं) न प्रायतत सः सम्प्रति च मरणानन्तरं श्राद्धं करोति।

३३. तीन साल बाहर रहा यह विश्वदेव अपने बच्चों को प्यार करने के लिए तड़प रहा है।
त्रीणि वर्षाणि बहिः प्रोषितः अयं विश्वदेवः स्वसुतान् स्नेहितुं (स्नेढुं, स्नेग्धुम्) समुद्विजते।

३४. मैं तो छोटे भाई से मन से भी द्रोह करना नहीं चाहता।
अहं तु अनुजाय मनसा अपि द्रोहितुं (द्रोग्धुं, द्रोढुं) न कामये।

३५. जो समस्या को विचारने में और उपायों को जानने में समर्थ नहीं वे फल पाने में कैसे समर्थ हो सकते हैं।
ये समस्याः वेत्तुम् उपायान् च वेदितुं न प्रभवन्ति ते फलं वेत्तुं कथं प्रभवन्ति ?

३६. जो स्वयं चोरी नहीं कर सकता वह दूसरे से चोरी करवा भी नहीं सकता।
यः स्वयं चोरयितुं न पारयति सः अन्येन चोरयितुम् अपि न पारयति।

३७. हम नई चीज जानना चाहने को नित्य तत्पर रहते हैं और आप सदा पढ़ाने को।
वयं नव्यं वस्तु जिज्ञासितुं सदा तत्पराः तिष्ठामः भवान् च नित्यं पाठयितुम्।

३८. यह रसिक पढ़े हुए भी उस ग्रन्थ को बार बार पढ़ने के लिये प्रार्थना करता है।
अयं रसिकः पठितम् अपि तं ग्रन्थं पापठितुं प्रार्थयते।

तद्धित प्रत्यय

ऊपर हमने धातुओं से होने वाले कुछ मुख्य-मुख्य प्रत्ययों का विषय समझाया है। वे प्रत्यय 'कृत्' प्रत्यय कहलाते हैं। अब तद्धित प्रत्ययों का विषय समझाते हैं। तद्धित प्रत्यय, धातुओं से न होकर शब्दों से होते हैं। शब्द दो प्रकार के होते हैं १-स्त्री प्रत्ययान्त शब्द[1] और २-प्रातिपदिक शब्द । प्रातिपदिक चार प्रकार के होते हैं[2] १- अर्थवान् अव्युत्पन्न शब्द यथा—डित्थ, कपित्थ आदि । २-कृत्प्रत्ययान्त शब्द, यथा→कारक, कर्ता, कार्य, उष्णभोजी आदि । ३-तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द, यथा, शैव, मनुष्य, धनवान् आदि । ४-समस्त (=समास युक्त शब्द) शब्द, यथा→राजपुरुष, उपनगर, पीताम्बर आदि । इन स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से और चारों प्रकार के प्रातिपदिक शब्दों से तद्धित प्रत्यय यथानिर्दिष्ट रूप से होते हैं[3] । तद्धित प्रत्यय भी सैंकड़ों हैं । यहाँ कुछ प्रमुख तद्धित प्रत्ययों का विषय समझायेंगे ।

मतुबर्थ प्रत्यय

मतुप् प्रत्यय के अर्थ में जो प्रत्यय होते हैं उन्हें मतुबर्थ प्रत्यय कहते हैं। मतुप् होता है-'वह उसका है' अथवा 'वह उसमें है ; इन दो अर्थों में[4] । इन अर्थों के अतिरिक्त निम्नलिखित में से कोई एक विशिष्ट अर्थ भी साथ हो तभी मतुबर्थ प्रत्यय होते हैं ।

१-भूमा (बहुतायत)→ [गोमान् =बहुत गौओं वाला]
२-निन्दा→ [कुष्ठवान्=कोढ़ वाला]
३-प्रशंसा→ [मातृमान्=प्रशंसनीय माता वाला]
४-नित्ययोग (संयुक्त रहना)→[क्षीरिणः वृक्षाः=सदा दूध से युक्त रहने वाले वृक्ष]
५-अतिशायने→ [उदरिणी कन्या=बड़े पेट वाली कन्या]
६-संसर्ग→ [दण्डी=दण्ड वाला]
७-अस्ति-विवक्षा (अस्तित्व को कहने की इच्छा) [धनवान्=धन वाला]

---

१. स्त्री प्रत्यय सात हैं— टाप्, डाप्, चाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन्, ति ।
२. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ; कृत्तद्धितसमासाश्च (अष्टा.१.२.४५;४६)
३. ङ्याप्प्रातिपदिकात् (अष्टा.४.१.१); तद्धिताः (४.१.७६)
४. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (अष्टा.५.२.९४)

मतुबर्थं वाले प्रत्यय लगभग ४१ हैं। प्रत्येक प्रत्यय का एक एक शब्द और उसका अर्थ उदाहरणार्थ दर्शाते हैं।

शब्द + प्रत्यय	मतुबर्थप्रत्ययान्त शब्द	(हिन्दी अर्थ)	शब्द + प्रत्यय	मतुबर्थं प्रत्ययान्त शब्द	(हिन्दी अर्थ)
धन + मतुप्	[1]धनवान्	(धन वाला)	अहं + युस्	[9]अहंयु:	(अहङ्कार वाला)
धन + इनि	[2]धनी	(,,)	हृदय + आलु	[10]हृदयालु:	(प्रशंसनीय हृदय वाला)
तपस् + विनि	[3]तपस्वी	(तप करने वाला)	शीत + आलुच्	[11]शीतालु:	(ठंड को न सहने वाला)
गो + मिनि	[4]गोमी	(गाय वाला) रूढ	हिम + चेलु	[12]हिमेलु:	(बर्फ को न सहने वाला)
स्व + आमिन्	[5]स्वामी	(ऐश्वर्य वाला)	चूडा + लच्	[13]चूडाल:	(चोटी वाला)
वाच् + ग्मिनि	[6]वाग्मी	(श्रेष्ठ वाणी वाला)	पिच्छ + इलच्	[14]पिच्छिल:	(फिसलना स्थान)
मघ + वनिप्	[7]मघवा	(ऐश्वर्य वाला = इन्द्र)	वात + ऊलच्	[15]वातूल:	(बवंडर वायु को न सहने वाला)
शम् + ति	[8]शन्ति:	(शान्ति वाला)	मल + इनच्	[4]मलिन:	(मैल वाला)
,, + तु	[8]शन्तु:	(,, ,,)	,, + ईमसच्	[4]मलीमस:	(,, ,,)
			लोम + श	[14]लोमश:	(रोओं वाला)
			पाम + न	[15]पामन:	(खुजली वाला)

१. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (अष्टा. ५.२.९४)
२. अत इनिठनौ (अष्टा. ५.२.११५)
३. अस्मायामेधास्रजो विनि: (अष्टा. ५.२.१२१)
४. ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसा: (अष्टा. ५.२.११४)
५. स्वामिन्नैश्वर्ये (अष्टा. ५.२.१२६)
६. वाचो ग्मिनि: (अष्टा. ५.२.१२४)
७. छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ [वा.] (अष्टा. ५.२.१०९)
८. कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयस: (अष्टा. ५.२.१३८)
९. अहंशुभमोर्युस् (अष्टा. ५.२.१४०)
१०. हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् [वा.] (अष्टा. ५.२.१२२)
११. शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इत्यालुच् [वा.] (अष्टा. ५.२.१२२)
१२. तन्न सहत इति हिमाच्चेलु: [वा.] (अष्टा. ५.२.१२२)
१३. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् (अष्टा. ५.२.९६)
१४. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: शनेलच: (अष्टा. ५.२.१००)
१५. वातात् समूहे च.[वा.] (अष्टा. ५.२.१२२)

शब्द + प्रत्यय	मतु० प्रत्ययान्त शब्द	(हिन्दी अर्थ)	शब्द + प्रत्यय	मतु० प्रत्ययान्त शब्द	(हिन्दी अर्थ)
प्रज्ञा + ण	[1]प्राज्ञः	(बुद्धि वाला)	धन + ठन्	[9]धनिकः	(धनवाला)
तपस् + अण्	[2]तापसः	(तप करने वाला)	वाच् + आलच्	[10]वाचालः	(अधिक बोलने वाला)
दन्त + उरच्	[3]दन्तुरः	(ऊँचे दान्तों वाला)	,, + आटच्	[10]वाचाटः	(,, ,, ,,)
सुषि + र	[4]सुषिरः	(छेद वाला)	अर्शस् + अच्	[11]अर्शसः	(बवासीर वाला)
द्रु + म	[5]द्रुमः	(काठ वाला = पेड़) रूढ	कम् + ब	[12]कम्बः	(जल वाला)
केश + व	[6]केशवः	(लम्बे केश वाला)	,, + भ	[12]कम्भः	(,, ,,)
काण्ड + ईरन्	[7]काण्डीरः	(काण्ड [धनुष] वाला)	,, + त	[12]कन्तः	(,, ,,)
अण्ड + ईरच्	[7]अण्डीरः	(जवान पुरुष)	,, + यस्	[12]कंयः	(,, ,,)
कृषि + वलच्	[8]कृषीवलः	(खेती वाला = किसान)	रूप + यप्	[13]रूप्यः	(प्रशंसनीय रूप वाला)
			रथ + ई	[14]रथीः	(रथ वाला)
			गोसहस्र + ठञ्	[15]गोसहस्रिकः	(हजार गायों वाला)

१. प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः (अष्टा. ५.२.१०१)
२. अण् च (अष्टा ५.२.१०३)
३. दन्त उन्नत उरच् (अष्टा. ५.२.१०६)
४. ऊषसुषिमुष्कमधो रः (अष्टा. ५.२.१०७)
५. द्यु द्रुभ्यां मः (अष्टा. ५.२.१०८)
६. केशाद्वोऽन्यतरस्याम् (अष्टा. ५.२.१०९)
७. काण्डाण्डादीरन्नीरचौ (अष्टा. ५.२.१११)
८. रजःकृष्यासुतीपरिषदो वलच् (अष्टा. ५.२.११२)
९. अत इनिठनौ (अष्टा. ५.२.११५)
१०. आलजाटचौ बहुभाषिणि (अष्टा. ५.२.१२५)
११. अर्श आदिभ्योऽच् (अष्टा. ५.२.१२७)
१२. कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः (अष्टा. ५.२.१३८)
१३. रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् (अष्टा. ५.२.१२०)
१४. छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ [वा०] अष्टा. ५.२ १०९)
१५. एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् (अष्टा. ५.२.११८)

इन मतुबर्थ-प्रत्ययान्त शब्दों में से धनवान् (=धनवत्) आदि मतुप्-प्रत्ययान्त शब्दों के 'धनवान् धनवन्तौ धनवन्तः' आदि रूप 'भवत्' (=भवान्) शब्द के समान बनेंगे। स्त्रीलिङ्ग में ई (=ङीप्) अन्त में लगेगा[1] और 'धनवती धनवत्यौ धनवत्यः' आदि रूप 'गौरी' के समान चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'जगत्' के समान 'धनवत् धनवती धनवन्ति' आदि चलेंगे। धनी (=धनिन्), तपस्वी (तपस्विन्), गोमी (=गोमिन्), स्वामी (=स्वामिन्), वाग्ग्मी (=वाग्ग्मिन्) आदि इनन्त शब्दों के रूप 'धनी धनिनौ धनिनः', 'स्वामी स्वामिनौ स्वामिनः' आदि 'करी (=करिन्)' शब्द के समान चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में इनसे ई (=ङीप्) प्रत्यय लगेगा[2] और 'धनिनी धनिन्यौ धनिन्यः' 'तपस्विनी तपस्विन्यौ तपस्विन्यः' आदि रूप भी गौरी के समान बनेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'धनि धनिनी धनीनि, आदि वारि के समान रूप चलेंगे। 'शन्ति' शब्द के 'हरि' के समान रूप 'शन्तिः शन्ती शन्तयः' आदि बनेंगे। स्त्रीलिङ्ग में अन्त में ई (=ङीष्) लगेगा[3] और 'शन्ती शन्त्यौ शन्त्यः' आदि रूप 'गौरी' के समान चलेंगे। शन्तु, अहंयु,हृदयालु, शीतालु और हिमेलु इन शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में 'भानु' के समान और स्त्रीलिङ्ग में 'धेनु' के समान चलेंगे 'मघवा (=मघवन्) और रथी' शब्दों के रूप अन्यों से सर्वथा भिन्न हैं। पर ये शब्द अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं। शेष चूडालः, पिच्छिलः, धनिकः आदि सभी अकारान्त शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में 'राम' के समान 'चूडालः चूडालौ चूडालाः' आदि होंगे। स्त्रीलिङ्ग में इनके अन्त में आ (=टाप्) लगेगा[4] और 'रमा' के समान 'चूडाला चूडाले चूडालाः' आदि रूप बनेंगे। किन्तु अण्-प्रत्ययान्त 'प्राज्ञ' और णप्रत्ययान्त 'तापस' के 'प्राज्ञी प्राज्ञ्यौ प्राज्ञ्यः' 'तापसी तापस्यौ तापस्यः' आदि तथा ठञ्-प्रत्ययान्त 'गौसहस्रिक' के 'गौसहस्रिकी गौसहस्रिक्यौ गौसहस्रिक्यः' आदि रूप गौरी के समान चलेंगे[5]। नपुंसकलिङ्ग में 'चूडालं चूडाले चूडालानि' आदि रूप 'ज्ञान' के समान बनेंगे।

मतुप् प्रत्यय में से उ और प् की इत्सञ्ज्ञा होने पर 'मत्' शेष रहता है। इस मत् (=मतुप्) के म को व आदेश हो जाता है यदि वह मत् (=मतुप्) प्रत्यय मकारान्त, मकारोपध, ह्रस्व अकारान्त, ह्रस्व अकारोपध, आकारान्त, आकारोपध, वर्गों के प्रथमवर्णान्त, द्वितीयवर्णान्त, तृतीयवर्णान्त और चतुर्थवर्णान्त शब्दों के बाद में आया हो।[6] यथा-किम् + मतुप् = किंवान्, शमी + मतुप् = शमीवान्, लक्ष्मी + मतुप् =

१. उगितश्च (अष्टा ४.१.६)
२. ऋन्नेभ्यो ङीप् (अष्टा ४.१.५)
३. सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके (अष्टा. ४.१.४५)
४. अजाद्यतष्टाप् (अष्टा. ४.१.४)
५. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः (अष्टा. ४.१.१५)
६. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः, झयः (अष्टा. ८.२.९-,१०)

लक्ष्मीवान्, वृक्ष+मतुप्=वृक्षवान्, माला+मतुप्=मालावान्, पयस्+मतुप्=पयस्वान्, भास्+मतुप्=भास्वान्, विद्युत्+मतुप्=विद्युत्वान् आदि। अहीवती, मुनीवती, अष्ठीवान् आदि कुछ शब्दों मे भी मत् के म को व होता है किन्तु ये सञ्ज्ञा शब्द हैं। शेष सब शब्दों में मत् (मतुप्) वैसे ही रहेगा, जैसे→बुद्धि+मतुप्=बुद्धिमान्, वायु+मतुप्=वायुमान्, पितृ+मतुप्=पितृमान्, गो+मतुप्=गोमान् आदि। यव, भूमि, कृमि, द्राक्षा आदि शब्दों के मतुप् को भी वकार नहीं होता।[1]

इन मतुबर्थ प्रत्ययों में से मतुप् प्रत्यय तो सभी शब्दों से होता है। इनि और ठन् प्रत्यय सभी ह्रस्व अकारान्त शब्दों से और व्रीहि आदि कुछ शब्दों से होते हैं। शेष विनि, लच् आदि समस्त प्रत्यय कुछ विशिष्ट शब्दों से ही होते हैं। अष्टाध्यायी के एतत्सम्बन्धी सूत्रों से इनका ज्ञान सरलता से हो सकता है।

अभ्यास

१. जिस माता का पुत्र विद्वान् नहीं, यदि वह अपने आप को पुत्रवाली कहती है तो बांझ किसे कहते हैं?
   यस्याः मातुः सुतः सुधीः नास्ति, सा चेत् आत्मानं पुत्रिणीं (पुत्रवतीं) कथयति, तर्हि वन्ध्या का कथ्यते?

२. ये सब स्नातक ज्ञान वाले हैं=एते सर्वे स्नातकाः ज्ञानिनः (ज्ञानवन्तः) सन्ति।

३. यह बुढ़िया पापिन है=पापवती(पापिनी) इयं वृद्धा।

४. उस घोड़ों वाले गाँव में चार बुद्धिमान् पण्डित रहते थे।
   तस्मिन् अश्ववति ग्रामे चत्वारः मेधाविनः (मेधावन्तः) पण्डिताः न्यवसन्।

५. उस गाय वाले किसान को घास के पूले दे आ।
   तस्मै गोमते (गोमिने) कृषकाय घासपूलान् प्रयच्छ।

६. अपने जलसे में खूब बढ़िया बोलने वाले उस स्वामी को बुलायेंगे।
   निजोत्सवे वाग्मिनं तं स्वामिनं निमन्त्रयिष्यामः।

७. जो शान्तिप्रिय होता है वह बकवासी कभी नहीं होता।
   यः जनः शवान् (शन्तिः, शन्तुः, शंयुः, शम्बः, शम्भः, शन्तः, शंयः) भवति सः कदापि वाचालः (वाचाटः) न भवति।

८. अहङ्कारी लोग सात्त्विक हृदय वालों को कभी अच्छे नहीं लगते।
   अहंयवः (अहंवन्तः) जनाः हृदयालुभ्यः जातुचित् न रोचन्ते।

---

१. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः (अष्टा. ८.२.९)

९. ठंड और बर्फ को न सह सकने वाले अमरनाथ में नहीं रह सकते ?
शीतालवः हिमेलवः च जनाः अमरनाथे निवस्तुं न शक्नुवन्ति ?

१०. यह चोटी वाला बालक कभी मैले कपड़े नहीं पहनता ।
अयं चूडालः (चूडावान्) बालः कदापि मलिनानि (मलीमसानि, मलवन्ति) वासांसि न धत्ते ।

११. स्त्री और पुरुष का प्रकट लक्षण क्या है ? स्तनों और बड़े केशों वाली स्त्री होती है और जिसके शरीर पर बड़े, बड़े रोएं हों वह पुरुष होता है ।
स्त्रीपुरुषयोः प्रकटं लक्षणं किम् अस्ति ? 'स्तनकेशवती स्त्री स्यात्, लोमशः पुरुषः स्मृतः'[1]

१२. बवण्डर में इस फिसलने मार्ग से मत जाओ ।
वातूले अनेन पिच्छिलेन पथा मा गमत (मा स्म गच्छत)

१३. इन बालकों को उस खुजली वाले बालक से दूर बैठाओ ?
इमान् बालकान् तस्मात् पामनात् (पामवतः) बालकात् दूरे (दूरेण, दूरं, दूरात्) उपवेशय ?

१४. पहले के अध्यापक बड़े बुद्धिशाली और तपस्वी हुआ करते थे ।
प्राक्तनाः अध्यापकाः प्रकृष्टाः प्राज्ञाः तापसाः च अभूवन् (अभवन्, बभूवुः)

१५. यह ऊंचे दांत वाला किसान छिद्रवाली डण्डी से बैल हांक रहा है ।
अयं दन्तुरः कृषीवलः सुषिरेण दण्डेन बलीवर्दौ प्राजति ।

१६. उस लम्बे केश वाले जवान धनुषधारी को राज्यपाल इनाम देंगे ?
तस्मै केशवाय अण्डीराय काण्डीराय राज्यपालः पारितोषिकं प्रदास्यति ।

१७. इस वैद्य ने उस धनवान् बवासीर वाले से बहुत रुपये लिये हैं ?
अयं वैद्यः तस्मात् धनिकात् अर्शसात् प्रचुराणि रूप्यकाणि अगृह्णात् ?

१८. इस खूब पानी वाले तालाब से भैंसे निकलते ही नहीं हैं ?
अस्मात् कंवतः (कम्बात्, कम्भात्, कन्तात्, कंयात्, कंयोः, कन्तोः, कन्तेः) कासारात् कासराः (महिषाः) निस्सरन्ति एव नहि ?

१९. यह रथ वाला अपने रथ को पेड़ों से दूर रखता है ?
अयं रथीः (रथी, रथवान्) निजं रथं द्रुमेभ्यः दूरं रक्षति ।

२०. 'व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु[2] ये न मायिनः'[3] ।

---

१. महाभाष्य (अष्टा. ४.१.३)

२. अस्मायामेधास्रजो विनिः (अष्टा. ५.२.१२१) से माया शब्द से विनि प्रत्यय ।

३. व्रीह्यादिभ्यश्च (अष्टा ५.२.११६) से माया शब्द से इनि प्रत्यय ।

वे मूर्ख लोग पराजय को प्राप्त होते हैं जो छली शत्रुओं के प्रति छली सा व्यवहार नहीं करते हैं।

२१. सञ्ज्ञा शब्दों को जिनकी वे सञ्ज्ञाएं हैं उनके साथ लिखो ?
सञ्ज्ञाशब्दान् सञ्ज्ञिभिः[1] शब्दैः सह लिखत ?

२२. एक हजार गायों वाली गोशाला में २० कर्मचारी हैं।
अस्यां गौसहस्रिक्यां गोशालायां (अस्मिन् गौसहस्रिके गोशाले) विंशतिः कर्मकराः सन्ति ?

२३. इस मोटे पेट वाले ने उससे मोर के चन्दोए और भेड़ की ऊन मांगी थी।
अयं तुन्दिलः तं शिखिनः[1] पिच्छान् ऊर्णायोः ऊर्णां च अयाचत (अयाचत्)।

सर्वनामीय शैषिक प्रत्यय

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से शेष[2] अर्थों में खञ्, अण् और छ प्रत्यय होते हैं[3]। जब खञ् या अण् प्रत्यय होगा तब (बहुत्व या द्वित्व अर्थ वाले) युस्मद् और अस्मद् के स्थान पर क्रमशः युष्माक और अस्माक आदेश होंगे[4]। एकत्व अर्थ में युष्मद् अस्मद् के स्थान पर क्रमशः तवक, ममक आदेश होंगे[5]। जब छ प्रत्यय होगा तब एकत्व अर्थ वाले युष्मद्, अस्मद् के स्थान पर त्वद्, मद् रहेगा।[6] ख के स्थान पर 'ईन' और 'छ' के स्थान पर 'ईय' आदेश होगा।[7] जैसा अभी बताया था कि ये प्रत्यय इन शब्दों से शेष अर्थों में होते हैं। उन शेष अर्थों में से प्रमुख अर्थ 'तस्येदम्'='उसका यह' रूपी सम्बन्ध-द्योतक है। इन शब्दों के उपर्युक्त-प्रत्ययान्त शब्द विशेषण शब्द होते हैं तथा 'तुम्हारा', 'तेरा', 'हमारा', 'मेरा' आदि इनके अर्थ होते हैं और तीनों लिङ्गों में रूप चलते हैं। पुँल्लिङ्ग में 'तावकः तावकौ तावकाः', 'तावकीनः तावकीनौ तावकीनाः' 'त्वदीयः त्वदीयौ त्वदीयाः' आदि राम के समान रूप चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में खञ्प्रत्ययान्त और छप्रत्ययान्त शब्दों से आ (=टाप्) होगा और 'तावकीना तावकीने तावकीनाः' 'त्वदीया त्वदीये त्वदीयाः' आदि रूप 'रमा' के समान बनेंगे। अण् प्रत्यय जब होगा तब इनसे ई (=ङीप्) लगेगा और 'तावकी तावक्यौ तावक्यः' 'आस्माकी

---

१. व्रीह्यादिभ्यश्च (अष्टा. ५.२.११६) से इनि प्रत्यय।

२. शेष अर्थ अनेक हैं जसे 'वहां उत्पन्न हुआ' ('तत्र जातः' अष्टा. ४.३.२५); 'वहां होने वाला' (तत्र भवः ४.३.५३), 'वहां से आया' (तत आगतः ४.३.७४, 'उसका यह') तस्येदम् ४.३.१२०) आदि।

३. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च, प्राग्दीव्यतोऽण्, वृद्धाच्छः (अष्टा. ४.३.१,४.१.८३,४.२.११४) ४. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ (अष्टा.४.३.२)

५. तवकममकावेकवचने (अष्टा. ४.३.३) ६. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (अष्टा. ७.२.२८)

७. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् (अष्टा. ७.१.२)

आस्माक्यौ आस्माक्यः' आदि रूप 'गौरी' शब्द के समान बनेंगे। किन्तु अस्मद् शब्द के स्थान पर (अण् प्रत्यय में) जब ममक आदेश होगा तब स्त्रीलिङ्ग में आ (=टाप्) होगा[1] और 'मामिका मामिके मामिकाः' आदि रूप रमावत् चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'तावकं तावके तावकानि, त्वदीयं त्वदीये त्वदीयानि' आदि रूप 'ज्ञान' के समान बनेंगे।

युवयोः अयं, युष्माकम् अयम्→युष्मद्+अण्=
यौष्माकः (तुम्हारा) यौष्माकी यौष्माकम्
„ „ „ →„+खञ्=यौष्माकीणः („) यौष्माकीणा यौष्माकीणम्
„ „ „ →„+छ =युष्मदीयः („) युष्मदीया युष्मदीयम्
तव अयं, →युष्मद्+अण्=तावकः (तेरा) तावकी तावकम्
„ „→ „ +खञ्=तावकीनः („) तावकीना तावकीनम्
„ „→ „ +छ =त्वदीयः („) त्वदीया त्वदीयम्

आवयोः अयं, अस्माकम् अयम्→अस्मद्+अण्=
आस्माकः (हमारा) आस्माकी आस्माकम्
" ", "→"+खञ्=आस्माकीनः (") आस्माकीना आस्माकीनम्
" ", "→"+छ =अस्मदीयः (") अस्मदीया अस्मदीयम्
मम अयम्→अस्मद्+अण्=मामकः (मेरा) मामिका मामकम्
" →" +खञ्=मामकीनः (") मामकीना मामकीनम्
" →" +छ =मदीयः (") मदीया मदीयम्

त्यदादि शब्दों से उपर्युक्त शेष अर्थों में छ प्रत्यय ही होता है।[2] किन्तु इनके अन्तर्गत आये हुए 'भवत्' (=आप) शब्द से छ (छस्) के साथ ठक् प्रत्यय भी होगा[3] ठ के स्थान पर क आदेश होगा[4] ठक्प्रत्ययान्त से स्त्रीलिङ्ग में ई (=ङीप्) होगा[5], और 'गौरी' के समान रूप चलेंगे अवशिष्ट शब्दों के रूप 'त्वदीय' आदि के समान चलेंगे।

---

१. केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च (अष्टा. ४.१.३०) इस सूत्र के नियम से 'मामक' शब्द से वेद में ही ङीप् होता है। लौकिक संस्कृत में तो आ (टाप्) ही होगा और ककार से पूर्व अ को इ होगा (नरकमामकयोरुपसङ्ख्यानम्०) [वा०] अष्टा. ७.३.४४.

२. त्यदादीनि च (अष्टा. १.१.७४) से त्यद् आदि शब्दों की 'वृद्ध' सञ्ज्ञा होती है। और 'वृद्धाच्छः' (अष्टा. ४.२.११४) से छ प्रत्यय होता है।

३. भवतष्ठक्छसौ (अष्टा.४.२.११५)।

४. इसुसुक्तान्तात्कः (७.३.५१)।

५. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः (अष्टा. ४.१.१५)

त्यस्य	अयम् → त्यद् + छ = त्यदीयः	(उसका)	त्यदीया	त्यदीयम्
तस्य	अयम् → तद् + " = तदीयः	(")	तदीया	तदीयम्
यस्य	" → यद् + " = यदीयः	(जिसका)	यदीया	यदीयम्
एतस्य	" → एतद् + " = एतदीयः	(इसका)	एतदीया	एतदीयम्
इदम्	" → इदम् + " = इदमीयः	(")	इदमीया	इदमीयम्
अमुष्य	" → अदस् + " = अदसीयः	(उसका)	अदसीया	अदसीयम्
एकस्य	" → एक + " = एकीयः	(एक का)	एकीया	एकीयम्
द्वयोः	" → द्वि + " = द्वीयः	(दो का)	द्वीया	द्वीयम्
कस्य	" → किम् + " = किमीयः	(किसका)	किमीया	किमीयम्
भवतः	" → भवत् + छस् = भवदीयः	(आपका)	भवदीया	भवदीयम्
"	" → " + ठक् = भावत्कः	(")	भावत्की	भावत्कम्

अभ्यास

१. मेरी पुस्तकें जिसने ली हैं उसकी पुस्तकें कहाँ हैं ?
मदीयानि पुस्तकानि येन गृहीतानि सन्ति तदीयानि पुस्तकानि कुत्र सन्ति ?

२. यह मेरे मनुष्यों से द्रोह करता है।
अयं मदीयेभ्यः (मामकेभ्यः, मामकीनेभ्यः) मनुष्येभ्यः द्रुह्यति ।

३. यह पुस्तक मेरी लड़की और यह छाता उसकी लड़की को देना।
इदं पुस्तकं मदीयायै (मामकीनायै, मामिकायै) सुतायै, इदं च छत्रम् इदमीयायै (एतदीयायै) सुतायै प्रयच्छ ।

४. तुम्हारे लड़कों का हमारे लड़कों पर विश्वास नहीं है।
यौष्माकाः (यौष्माकीनाः, युष्मदीयाः) बालकाः आस्माकेषु (आस्माकीनेषु, अस्मदीयेषु) बालकेषु न विश्वसन्ति ।

५. हमारी लड़की तुम्हारी लड़की से चतुर है।
आस्माकी (आस्माकीना, अस्मदीया) बाला यौष्माक्याः (यौष्माकीनायाः, युष्मदीयायाः) बालायाः पटीयसी (पटुतरा) अस्ति ।

६. हमारे फल किसने चुराये = आस्माकानि (आस्माकीनानि, अस्मदीयानि) फलानि कः अचूचुरत् ?

७. इसकी पुस्तकें उसके लड़के के पास हैं = एतदीयानि (इदमीयानि) पुस्तकानि तदीयस्य (अदसीयस्य) बालकस्य सविधे सन्ति ।

८. तेरी गाय का दूध बहुत ही मीठा और गाढा है।

तावक्याः (तावकीनायाः, त्वदीयायाः) धेन्वाः (धेनोः) क्षीरम् अतीव मधुरं प्रगाढं च वर्त्तते ।

९. मेरी सारी बकरियाँ कुल दस सेर दूध देती हैं ।
मामिकाः (मामकीनाः, मदीयाः) सर्वाः अजाः दशसेटक-परिमितं पयः प्रयच्छन्ति ।

१०. जिसकी यह रेशमी धोती है उसी के ये जूते भी हैं ।
यदीया इयं कौशेयी शाटिका ऽस्ति तदीये (त्यदीये) एते उपानहौ अपि स्तः ।

११. किसका यह ग्रन्थ है ? जिसे पढ़कर संस्कृत पढ़ने में उत्साह बढ़ता ही जाता है ।
किमीयः अयं ग्रन्थः अस्ति ? यं सम्पठ्य संस्कृताध्ययने उत्तरोत्तरम् एधते समुत्साहः ।

१२. साक्षात्कार के लिये एक का प्रबन्ध, एक की आख्यायिका और एक का नाटक तैयार कर लो ।
साक्षात्कारस्य कृते एकीयः प्रबन्धः, एकीया आख्यायिका एकीयं च नाटकं सज्जी-कर्त्तव्यानि ।

१३. तुम्हें मैंने दो का भात, दो की खीर और दो का दलिया दिया है तो भी तुम्हारा पेट नहीं भरा ?
तुभ्यं मया द्वीयः ओदनः, द्वीयं पायसान्नं द्वीया च यवागू प्रादायि (प्रदत्ता), तथापि तवोदरदरी न पूर्णा ?

१४. आपकी कृपा और आपके निर्देश से ही हमारी जीत हुई है ।
भवदीयया (भावत्कया) कृपया भवदीयेन (भावत्केन) निर्देशेन चैव वयं व्यजयामहि (व्यजैष्महि) ।

१५. आपका यह मकान बहुत ही सुन्दर लग रहा है ।
भवदीयं (भावत्कम्) एतद् भवनम् अतीव भव्यम् आभाति ।

त्व, तल् आदि तद्धित भाव-प्रत्यय

किसी पदार्थ के भाव को कहने के अर्थ में शब्दों से (स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों और प्रातिपदिकों से) जो तद्धित प्रत्यय होते हैं उन्हें तद्धित भाव-प्रत्यय कहते हैं । जैसे मनुष्य का भाव = मनुष्यता (= मनुष्यपना), पशु का भाव = पशुता (= पशुपना) आदि मनुष्यता और पशुता ये तद्धित-भाव-प्रत्ययान्त शब्द हैं । इनमें 'तल् (= त) प्रत्यय है । ये तद्धित भाव-प्रत्यय कुल १२ बारह हैं→ त्व, तल्, इमनिच्, ष्यञ्, यत्, य,

ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ्, छ[1]। इनमें नञ् और स्नञ्[2] को और जोड़ दें तो इनकी संख्या १४ होगी। इनमें से त्व और तल् प्रत्यय सभी शब्दों से होते हैं। शेष इमनिच्, ष्यञ् आदि प्रत्यय कुछ विशेष शब्दों से होते हैं। ष्यञ्, यत् आदि अन्तिम नौ प्रत्यय भाव अर्थ के साथ ही साथ कर्म अर्थ में भी होते हैं। इनमें से तल्-प्रत्ययान्त शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं।[3] इनके अन्त में आ (टाप्) लगता है।[4] जैसे—मनुष्यता, पशुता आदि इनके रूप 'पशुता पशुते पशुताः' आदि 'रमा' शब्द के समान चलेंगे। कुछ वुञ्-प्रत्ययान्त शब्द भी स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं, जैसे—गोपालों और पशुपालों का भाव अथवा कर्म—गौपालपशुपालिका। शिष्यों और उपाध्यायों का भाव या कर्म—शैष्योपाध्यायिका आदि आदि। इनके रूप भी रमावत् बनेंगे। इमनिच् प्रत्यय में से नि के इ की और च् की इत्सञ्ज्ञा होने पर इमन् रह जाता है और महिमा, गरिमा आदि शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं[5] स्त्रीलिङ्ग नहीं। अयं महिमा, एषः गरिमा आदि रूप में ये प्रयुक्त होते हैं। इनके 'महिमा महिमानौ महिमानः आदि रूप 'राजन्' शब्द के समान चलेंगे। शेष त्व, ष्यञ्, यत्, यक् आदि प्रत्ययान्त शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग वाले होते हैं,[6] यथा—मनुष्यत्वम्, पशुत्वम्, कौमार्यम्, स्तेयम् आदि।

ष्यञ् के ष् की इत्सञ्ज्ञा[7] और ञ् की इत्सञ्ज्ञा होने पर 'य' शेष रहेगा। इस 'य' के षित् होने के कारण इससे स्त्रीलिङ्ग में ई (=ङीष्) लगेगा[8] और 'गौरी' के समान रूप बनेंगे। ढ (=ढक्) के स्थान पर एय आदेश होता है[9]→ कपि+ढक्→ कपि+एय=कापेयम् (बंदरपना अथवा बन्दर का कर्म)। वु (=वुञ्) के स्थान पर अक आदेश होता है[10]→रमणीय+वु→रमणीय+अक=रामणीयकम् (रमणीयता=

---

१. तस्य भावस्त्वतलौ। पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। स्तेनाद् यन्नलोपश्च। सख्युर्यः। कपिज्ञात्योर्ढक्। पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। प्राणभृज्जाति-वयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्। हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्। होत्राभ्यश्छः। (अष्टा. ५.१.११९;१२२;१२३;१२५—१३०;१३२;१३५)

२. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् (अष्टा.४.१.८७)

३. तलन्तः (लिङ्गानुशासन, स्त्रीप्रकरण)

४. अजाद्यतष्टाप् (अष्टा.४.१.४)

५. नान्तः (लिङ्गानु० पु० १४)

६. त्वष्यञौ तद्धितौ; यद्यढग्यगञ्वुञ्छाश्च भावकर्मणि (लिङ्गानु० नपुं० ४;६)

७. षः प्रत्ययस्य (अष्टा.१.३.६)

८. षिद् गौरादिभ्यश्च (अष्टा. ४.१.४१)

९. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् (अष्टा.७.१.२)

१०. युवोरनाकौ (अष्टा.७.१.१)

सौन्दर्यं अथवा रमणीय का कर्म)। अब इन भाव-प्रत्ययान्त शब्दों के स्वरूप उदाहरणार्थ दर्शाते हैं →

विग्रह	शब्द + भावप्रत्यय	-प्रत्ययान्त-शब्द (लि०)	(हिन्दी अर्थ)
मनुष्यस्य भावः =	मनुष्य + त्व	मनुष्यत्वम् (न०)	(मनुष्यपना)
,,	,, + तल्	मनुष्यता (स्त्री०)	(,,)
मृदोः भावः =	मृदु + इमनिच्	म्रदिमा (पु०)	(कोमलपना)
,,	,, + अण्	मार्दवम्[1] (न०)	(,,)
,,	,, + त्व	मृदुत्वम् (न०)	(,,)
,,	,, + तल्	मृदुता (स्त्री०)	(,,)
महतः भावः =	महत् + इमनिच्	महिमा (पु०)	(बड़प्पन)
,,	,, + त्व	महत्त्वम् (न०)	(,,)
,,	,, + तल्	महत्ता (स्त्री०)	(,,)
पटोः भावः =	पटु + इमनिच्	पटिमा (पु०)	(चतुराई)
,,	,, + अण्	पाटवम्[1] (न०)	(,,)
,,	,, + त्व	पटुत्वम् (,,)	(,,)
,,	,, + तल्	पटुता (स्त्री०)	(,,)
शुक्लस्य भावः =	शुक्ल + ष्यञ्	शौक्ल्यम् (न०), शौक्ली (स्त्री०)	(सफेदी)
,,	,, + इमनिच्	शुक्लिमा (पु०)	(,,)
,,	,, + त्व	शुक्लत्वम् (न०)	(,,)
,,	,, + तल्	शुक्लता (स्त्री०)	(,,)
दृढस्य भावः =	दृढ + ष्यञ्	दार्ढ्यम् (न०), दार्ढी (स्त्री०)	(मज़बूती)
,,	,, + इमनिच्	द्रढिमा (पु०)	(,,)
,,	,, + त्व	दृढत्वम् (न०)	(,,)
,,	,, + तल्	दृढता (स्त्री०)	(,,)
मधुरस्य भावः =	मधुर + ष्यञ्	माधुर्यम् (न०), माधुरी (स्त्री०)	(मीठापन)
,,	,, + इमनिच्	मधुरिमा (पु०)	(,,)
,,	,, + त्व	मधुरत्वम् (न०)	(,,)
,,	,, + तल्	मधुरता (स्त्री०)	(,,)

१. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् (अष्टा.५.१.१३१) से अण् प्रत्यय।

विग्रहवाक्य	शब्द + भावप्रत्यय	-प्रत्ययान्त-शब्द (लि०)	[हिन्दी अर्थ]
जडस्य भावः कर्म वा	जड + ष्यञ्[1]	जाड्यम् (न.), जाडी (स्त्री.)	[सुस्ती, मूर्खता]
,, ,, ,,	,, + इमनिच्	जडिमा (पु.)	[,, ,,]
,, ,,	,, + त्व	जडत्वम् (न.)	[,, ,,]
,, ,,	,, + तल्	जडता (स्त्री.)	[,, ,,]
ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा	ब्राह्मण + ष्यञ्[1]	ब्राह्मण्यम् (न.)	[ब्राह्मणपना या ब्राह्मण का कर्म]
,, ,, ,,	,, + त्व	ब्राह्मणत्वम् (न.)	[,, ,,]
,, ,, ,,	,, + तल्	ब्राह्मणता (स्त्री.)	[,, ,,]
निपुणस्य भावः कर्म वा	निपुण + ष्यञ्[1]	नैपुण्यम् (न.), नैपुणी (स्त्री.)	[कुशलता]
,, ,, ,,	,, + त्व	निपुणत्वम् (न.)	[,,]
,, ,, ,,	,, + अण्[2]	नैपुणम् (न.)	[,,]
,, ,, ,,	,, + तल्	निपुणता (स्त्री.)	[,,]
स्तेनस्य भावः कर्म वा	स्तेन + यत्	स्तेयम् (न.)	[चोरी]
,, ,, ,,	,, + त्व	स्तेनत्वम् (न.)	[,,]
,, ,, ,,	,, + तल्	स्तेनता (स्त्री.)	[,,]
सख्युः भावः कर्म वा	सखि + य	सख्यम् (न.) [मित्रता] = सखित्वम्, सखिता	
कपेः ,, ,,	कपि + ढक्	कापेयम् (न.) [बन्दरपना] = कपित्वम्, कपिता	
सेनापतेः भावः कर्म वा	सेनापति + यक्	सैनापत्यम् (न.) [सेनापति का भाव, कर्म] = सेनापतित्वं, सेनापतिता	
पुरोहितस्य ,, ,,	पुरोहित + ,,	पौरोहित्यम् (,,) [पुरोहित का भाव, कर्म] = पुरोहितत्वम्, पुरोहितता	

१. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि ष्यञ् च (अष्टा. ५.१.१२४) २. हायनान्तयुवादिभ्योऽण् (अष्टा. ५.१.१३०)

विग्रहवाक्य	शब्द + भावप्रत्यय	–प्रत्ययान्तशब्द (लि०) [हिन्दी अर्थ] अन्य भाव प्रत्यय
अश्वस्य भावः कर्म वा	अश्व + अञ्	आश्वम् (न.) [घोड़े का भाव, कर्म] = अश्वत्वम्, अश्वता
कुमारस्य ,, ,,	कुमार + ,,	कौमारम् (न.) [कुमारपना, कुमारकार्य] = कुमारत्वम्, कुमारता
सुष्ठु ,, ,,	सुष्ठु + ,,	सौष्ठवम् (न.) [अच्छापन] = सुष्ठुत्वम्, सुष्ठुता
द्विहायनस्य भावः कर्म वा	द्विहायन + अण्	द्वैहायनम् (न.) [दोवर्ष वाले का भाव; कर्म] = द्विहायनत्वं, द्विहायनता
यूनः ,, ,,	युवन् + ,,	यौवनम् (न.) [जवानी] = युवत्वम्, युवता, यौवनिका
शुचेः भावः कर्म वा	शुचि + अण्[1]	शौचम् (न.) [सफाई] = शुचित्वम्, शुचिता
रमणीयस्य भावः कर्म वा	रमणीय + वुञ्	रामणीयकम् (न.) [सौन्दर्य] = रमणीयत्वम्, रमणीयता
मनोज्ञस्य भावः कर्म वा	मनोज्ञ + वुञ्[2]	मानोज्ञकम् (न.) [सौन्दर्य] = मनोज्ञत्वम्, मनोज्ञता
पोतुः भावः कर्म वा	पोतृ + छ	पोत्रीयम् (न.) [ब्रह्मा का भाव या कर्म] = पोतृत्वम्, पोतृता
अर्हतः भावः कर्म वा	अर्हत् + ष्यञ्	आर्हन्त्यम् (न०) [योग्यता] = आर्हन्ती, अर्हत्वम्, अर्हता
कुशलस्य भावः कर्म वा	कुशल + ष्यञ्	कौशल्यम् (न०) [निपुणता] = कौशलम्, कुशलता०
चपलस्य भावः कर्म वा	चपल + ष्यञ्	चापल्यम् (न०) [चञ्चलता] = चापलम्, चपलता०,
पिशुनस्य भावः कर्म वा	पिशुन + ष्यञ्	पैशुन्यम् (न०) [चुगलखोरी] = पैशुनम्, पिशुनता०,
गुरोः भावः	गुरु + इमनिच्	गरिमा (पु०) [भारीपन] = गुरुत्वम्, गुरुता
बहोः भावः	बहु + इमनिच्	भूमा (पु०) [अधिकता] = बहुत्वम्, बहुता
बहुलस्य भावः	बहुल + इमनिच्	बंहिमा (पु०) [,,] = बहुलत्वम्, बहुलता०
प्रियस्य भावः	प्रिय + इमनिच्	प्रेमा (पु०) [प्रेम] = प्रियत्वम्, प्रियता
स्त्रियाः भावः	स्त्री + नञ्	स्त्रैणम् (न०) [स्त्रीपना] = स्त्रीत्वम्, स्त्रीता
पुंसः भावः	पुम् + स्नञ्	पौंस्नम् (न०) [पुरुषपना] = पुरुषत्वम्, पुरुषता

१. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् (अष्टा. ५.१.१३१)   २. द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च (अष्टा. ५.१.१३३)

अभ्यास

१. अहो तेरी कैसी मूर्खता है।
अहो ! कीदृशं ते मौर्ख्यम् (मूर्खत्वम्) [कीदृशी मौर्खी, (मूर्खता)] {कीदृशः मूर्खिमा} अस्ति।

२. तुझ धूर्त्तता कभी नहीं छोड़ेगी।
न त्वां धूर्त्तता (धूर्त्तत्वं, धौर्त्यं, धौर्ती) वियोक्ष्यते जातुचित्।

३. ये पाखण्डी अपने पाखण्ड से बदनाम हुए हैं।
एते पाखण्डिनः (दाम्भिकाः) स्वपाखण्डित्वात् (स्वपाखण्डितायाः, स्वदाम्भिकत्वात्, स्वदाम्भिकतायाः) अपकीर्तिं प्राप्ताः।

४. तेरी पण्डिताई व्यर्थ है, तू कोई भी ब्राह्मण का काम नहीं करता।
व्यर्थं ते पाण्डित्यं (पाण्डिती, पण्डितिमा, पण्डितत्वं, पण्डितता) न त्वं किमपि ब्राह्मण्यम् (ब्राह्मणत्वं, ब्राह्मणताम्) अनुतिष्ठसि।

५. ईश्वर की महिमा को देख।
ईश्वरस्य महिमानं (महत्त्वं, महत्तां) पश्य।

६. वेदों के बड़प्पन का कोई पार नहीं पा सकता।
वेदानां गरिम्णः (गौरवस्य, गुरुत्वस्य, गुरुतायाः) पारं गन्तुं न कोऽपि शक्ष्यति।

७. इनकी निपुणता और उनकी योग्यता को देखकर सभी प्रसन्न हो गये।
एतदीयां (इदमीयां) नैपुणीं (निपुणतां) तदीयां (त्यदीयां) आर्हन्तीम् (अर्हताम्) च वीक्ष्य सर्वे प्रासीदन्।

८. तलवार चलाने की निपुणता के लिए तुझे पुरस्कार मिलेगा।
असिचालने नैपुण्यस्य (निपुणत्वस्य, निपुणतायाः, नैपुण्याः) कृते त्वं पुरस्कारं प्राप्स्यसि।

९. अश्वपति के राज्य में कोई चोरी नहीं करता था।
अश्वपतेः शासने न कश्चित् स्तेयम् (स्तेनत्वं, स्तेनताम्) आचचार।

१०. नारद और पर्वत नामक ऋषियों की मित्रता का अनुकरण करो ?
नारदपर्वतयोः ऋष्योः सख्यं (सखित्वं, सखिताम्) अनुकुरुध्वम्।

११. सभा में भी यदि बन्दरपन करेगा तो सब तेरा मजाक उड़ायेंगे।
सभायाम् अपि यदि कापेयं (कपित्वं, कपिताम्) आचरिष्यसि तर्हि सर्वे त्वाम् उपहसिष्यन्ति।

१२. भीष्म के सेनापतित्व में कौरव सेना दस दिन लड़ी।

भीष्मस्य सैनापत्ये (सेनापतित्वे, सेनापतितायाम्) कौरवसेना दश दिनानि यावत् युयुधे (अयुध्यत, अयुद्ध)।

१३. दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग की पुरोहिताई में पुत्रेष्टियज्ञ रचा।
दशरथः ऋष्यशृङ्गस्य पौरोहित्ये (पुरोहितत्वे, पुरोहिततायां) पु टयज्ञं रचयामास (रचयाम्बभूव, रचयाञ्चकार, अरचयत्, अररचत्)।

१४. इस पशु चिकित्सक ने घोड़ों के स्वभाव का अच्छा अध्ययन किया है।
अयं पशुचिकित्सकः आश्वं (अश्वत्वम्, अश्वताम्) सम्यक् अध्यैष्ट (अध्यगीष्ट)

१५. कुमारावस्था में ही शुकदेव ने वेद पढ़ लिये थे।
कौमारे (कुमारत्वे, कुमारतायाम्) एव शुकदेवः वेदान् पपाठ (अधिजगे)।

१६. इस सुघड़ बहू का हर काम में सलीका देखने लायक है।
अस्याः सुलक्षणायाः वध्वाः प्रतिकर्म सौष्ठवं (सुष्ठुत्वं) दर्शनीयं (सुष्ठुता दर्शनीया) अस्ति।

१७. जवानी में जो इन्द्रियों को वश में रखेगा, बुढ़ापे में सुख पायेगा।
यौवने (युवत्वे, युवतायां, यौवनिकायां) यः इन्द्रियाणि वशे स्थापयिष्यति सः स्थाविरे (स्थविरत्वे, स्थविरतायां) सुखं लप्स्यते।

१८. जिसको सफाई पसन्द नहीं वह भी कोई मनुष्य है।
यस्मै शौचं (शुचित्वं, शुचिता) न रोचते किं सः अपि कश्चिद् मनुष्यः अस्ति ?

१९. अलवर के इस बाग की सुन्दरता को देखकर हम यहीं ठहर गये ?
अलवरस्य अस्य आरामस्य रामणीयकं (रमणीयत्वं, रमणीयतां) विलोक्य वयम् अत्रैव व्यरमाम (व्यरंसिष्म) ?

२०. मनुष्य में सुन्दरता के साथ अच्छे गुण भी हों तभी उसका नाम फैलता है।
मनुष्ये मानोज्ञकेन (मनोज्ञत्वेन, मनोज्ञतया) सहैव सद्गुणाः अपि यदि भवन्ति तदैव तस्य यशः तनुते।

वतुप् प्रत्यय

यत्, तत्, एतत्, किम् और इदम् इन सर्वनामवाची शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है।[1] वतुप् में से उ और प् की इत्सञ्ज्ञा होने पर 'वत्' भाग शेष रहता है। यत्, तत् और एतत् के अन्तिम त् के स्थान पर 'आ' आदेश होगा[2] और

१. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् (अष्टा. ५ २.३९); किमिदम्भ्यां वो घः (अ० ५.२.४०)
२. आ सर्वनाम्नः (अष्टा० ६.३.९१)

यावत्, तावत्, एतावत् इस प्रकार प्रातिपदिक बनेंगे। किम् के स्थान पर 'की' और इदम् के स्थान पर 'ई' (=ईश्) आदेश होगा[1] और 'वत्' (=वतुप्) के 'व' के स्थान पर घ आदेश हो जायेगा,[2]। उस 'घ' के स्थान पर 'इय' आदेश होगा तथा ई और की के ई का लोप[3]। यथा—किम् + वतुप् = किम् + वत् → की + वत् → की + घत् → की + इयत् → क् + इयत् = कियत्। इदम् + वतुप् = इदम् + वत् → ईश् + वत् → ई + वत् → ई + घत् → ई + इयत् = इयत्। ये 'वत्' (वतुप्)-प्रत्ययान्त शब्द भी विशेषण शब्द हैं और तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं। पुंल्लिङ्ग में इनके 'यावान् यावन्तौ यावन्तः' आदि रूप 'भवत्' (=आप) शब्द के समान चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में इनसे ई (=ङीप्) लगेगा[4] और यावती, तावती आदि शब्द बन जायेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'यावत् यावती यावन्ति' आदि 'जगत्' शब्द के समान रूप चलेंगे।

शब्द + वतुप्	वत्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक	पुंल्लिङ्ग शब्द	(हिन्दी अर्थ)	स्त्रीलिङ्ग शब्द	नपुंसकलिङ्ग शब्द
यत् + वतुप्	यावत्	यावान्	(जितना)	यावती	यावत्
तत् + "	तावत्	तावान्	(उतना)	तावती	तावत्
एतत् + "	एतावत्	एतावान्	(इतना)	एतावती	एतावत्
इदम् + "	इयत्	इयान्	(इतना)	इयती	इयत्
किम् + "	कियत्	कियान्	(कितना)	कियती	कियत्

अभ्यास

१. वहाँ रहकर तुमने कितने काम किए ?
तत्र उषित्वा त्वं कियन्ति कार्याणि अकरोः (अकार्षीः) ?

२. जितनी कथाएं मैंने सुनी हैं उतनी तूने नहीं।
यावतीः कथाः अहम् अश्रौषं (अशृणवं) तावतीः न त्वम्।

३. जितने मनुष्य कलकत्ते में रहते हैं उतने बम्बई में नहीं ?
यावन्तः जनाः कलिकातानगरे वसन्ति न तावन्तः मुम्बापुरीनगरे।

४. देवेन्द्र भी उतने ही फल खा गया जितने वेदपाल ने खाये थे ?
देवेन्द्रः अपि तावन्ति एव फलानि अबभक्षत् यावन्ति वेदपालः अभक्षयत् ?

---

१. इदकिमोरीश्की (अष्टा० ६.३.९०)
२. किमिदम्भ्यां वो घः (अष्टा० ५.२.४०)
३. यस्येति च (अष्टा० ६.४.१४८)
४. उगितश्च (अष्टा० ४.१.६)

५. इतने फूल कितनी मालाओं के लिए पर्याप्त होंगे ?
एतावन्ति (इयन्ति) पुष्पाणि कियतीभ्यः मालाभ्यः अलं भविष्यन्ति ?

६. इस विद्यालय में कितने कमरों में कितनी लड़कियाँ बैठती हैं ?
अस्मिन् विद्यालये कियत्सु प्रकोष्ठेषु कियत्यः बालाः उपविशन्ति ?

७. इतनी कहानियाँ सुनकर भी तू तृप्त नहीं हुआ और कितनी सुनेगा ?
एतावतीः (इयतीः) कथाः श्रुत्वा अपि त्वं न तृप्यसि तर्हि अन्याः कियतीः श्रोष्यसि ?

८. इतनी सी उम्र में जितने छात्रों को आपने पढ़ाया उतनों को मैंने अब तक नहीं पढ़ाया ।
एतावति (इयति) वयसि यावतः छात्रान् भवान् अपीपठत् (अपाठयत्) तावतः अद्यावधि अहं न अध्यापयम् (अध्यजीगपम्) ।

९. जितने घरों से चंदा लाये हो उतने घरों का नाम लिखो ?
यावद्भ्यः गृहेभ्यः अंशदानम् आनैषीः (आनयः) तावतां नामानि लिखत (लिखेत)

१०. जितने मित्र आ चुके हैं और जितनों को आप पहिचानते हैं उतनों से प्रवेश पत्र ले लें और उतनों को ही दस दस लड्डू परोस दें ?
यावन्ति मित्राणि आगतवन्ति यावन्ति च भवन्तः परिचिन्वन्ति, तावद्भ्यः प्रवेश-पत्राणि संगृह्णन्तु तावद्भ्यः एव च दश दश मोदकानि परिवेषयन्तु ।

तरप्, तमप्, ईयसुन्, इष्ठन् प्रत्यय

दो में से एक का आधिक्य (अधिकता) बताने में तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं तथा बहुतों में से एक की अधिकता (=श्रेष्ठता) बताने में तमप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।[1] तरप् और ईयसुन् प्रत्यय किसी से दूसरे की पृथक्ता बताने में भी प्रयुक्त होते हैं। इन चारों प्रत्ययों में से अजादि प्रत्यय अर्थात् ईयसुन् और इष्ठन् प्रायः गुणवाची शब्दों से ही होते हैं[2]। जबकि तरप् और तमप् सब प्रकार के शब्दों से होते हैं। ये तरप् और तमप् क्रिया-शब्दों (=तिङन्तों) से भी होते हैं[3]। तरप् और तमप् के प् की इत्सञ्ज्ञा होने पर तर और तम शेष रहते हैं—जैसे—पटुतरः, पटुतमः। ईयसुन में से उ और न् की इत्सञ्ज्ञा होने पर ईयस् शेष रहेगा और इष्ठन्

१. अतिशायने तमबिष्ठनौ; द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ (अष्टा० ५.३.५५;५७)
२. अजादी गुणवचनादेव (अष्टा० ५.३.५८)
३. तिङश्च (अष्टा० ५.३ ५६)

में से इष्ठ शेष रहेगा। ईयस् और इष्ठ परे रहने पर पूर्व के शब्द के टिभाग (अन्तिम अच् (=स्वर) तथा उसके बाद वाला व्यञ्जन भी) का लोप हो जायेगा।[१] यथा—पटु+ईयस्→पट्+ईयस्=पटीयस्=पटीयान्। पटु+इष्ठ→पट्+इष्ठ=पटिष्ठः आदि। स्थूल, दूर, युवन्, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र इन शब्दों के क्रमशः ल, र, वन्, व, र, र का लोप हो जायेगा तथा पूर्व में विद्यमान इ, उ, ऊ को गुण (ए, ओ) भी होगा[२] और ओ के स्थान पर अव् आदेश होगा।[३] तब स्थविष्ठः, दविष्ठः, यविष्ठः, ह्रसिष्ठः, क्षेपिष्ठः और क्षोदिष्ठः स्वरूप बनेगा। दस शब्द ऐसे हैं जिनका पूरा ही रूपान्तर इन प्रत्ययों में हो जाता है। उन्हें दर्शाते हैं—

प्रिय	स्थिर	स्फिर	उरु	बहुल	गुरु	वृद्ध	तृप्र	दीर्घ	वृन्दारक
प्र	स्थ	स्फ	वर्	बंहि	गर्	वर्षि	त्रप्	द्राघि	वृन्द

इनमे इष्ठन् आदि होने पर—प्रेष्ठः, स्थेष्ठः, स्फेष्ठः, वरिष्ठः, बंहिष्ठः, गरिष्ठः, वर्षिष्ठः, त्रपिष्ठः, द्राघिष्ठः, वृन्दिष्ठः आदि शब्द बनेंगे।[४]

बहु शब्द के स्थान पर भू आदेश होता है तथा इष्ठन् और ईयसुन् के इ, ई का लोप होता है।[५] इष्ठन् के इ का लोप होने पर जो ष्ठ रहता है उसको यि (=यिट्) आगम होता है[६]→बहु+ईयसुन्→भू+ईयस्→भू+यस्=भूयान्। बहु+इष्ठन्→बहु+इष्ठ भू+इष्ठ→भू+ष्ठ→भू+यिट्ष्ठ=भूयिष्ठः।

प्रशस्य शब्द के स्थान पर श्र अथवा ज्य आदेश होता है[७]→प्रशस्य=इष्ठन् श्र+इष्ठ=श्रेष्ठः, ज्य+इष्ठ=ज्येष्ठः। वृद्ध के स्थान पर भी ज्य आदेश होता है। वृद्ध+इष्ठन्→ज्य+इष्ठ=ज्येष्ठः। ज्य से परे वर्तमान ईयसुन् के 'ई' के स्थान पर आकार आदेश होता है।[८] अन्तिक के स्थान पर 'नेद' और 'बाढम्' के स्थान पर

---

१. टेः (६.४.१७५)
२. स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः (अष्टा० ६.४.१५६)
३. एचोऽयवायावः (अष्टा० ६.१.७८)
४. प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः (अष्टा० ६.४.१५७)
५. बहोर्लोपो भू च बहोः (अष्टा० ६.४.१५८)
६. इष्ठस्य यिट् च (अष्टा० ६.४.१५९)
७. प्रशस्यस्य श्रः; ज्य च (अष्टा० ५.३.६०;६१)
८. वृद्धस्य च (अष्टा० ५.३.६२)
९. ज्यादादीयसः (अष्टा० ६.४.१६०)

'साध' आदेश होंगे[1]—अन्तिक+इष्ठन्→नेद+इष्ठ=नेदिष्ठः। बाढम्+इष्ठन्—साध+इष्ठ=साधिष्ठः। युवन् और अल्प के स्थान पर विकल्प से कन् आदेश होगा[2]—युवन्+इष्ठन्→कन्+इष्ठ=कनिष्ठः। अल्प+इष्ठन्→कन्+इष्ठ=कनिष्ठः। विन्प्रत्ययान्त शब्द के विन् भाग का लोप होगा[3]—स्रग्विन्+इष्ठन्—स्रज्+इष्ठ=स्रजिष्ठः। मतुप् (=मत्) प्रत्ययान्त शब्द के मत् भाग का भी लोप हो जायेगा[3]—त्वग्वत्+इष्ठन्—त्वच्+इष्ठ=त्वचिष्ठः। तरप्, तमप् और इष्ठन् प्रत्ययान्त शब्दों के पुंल्लिङ्ग में रूप 'पटुतरः पटुतरौ पटुतराः,' 'पटुतमः पटुतमौ पटुतमाः,' 'पटिष्ठः पटिष्ठौ पटिष्ठाः' आदि 'राम' शब्द के समान चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में 'पटुतरा पटुतरे पटुतराः, 'पटुतमा पटुतमे पटुतमाः,' 'पटिष्ठा पटिष्ठे पटिष्ठाः' आदि रूप रमा के समान बनेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'पटुतमं पटुतमे पटुतमानि,' पटुतरं पटुतरे पटुतराणि, 'पटिष्ठं पटिष्ठे पटिष्ठानि' आदि रूप 'ज्ञान' शब्द के समान चलेंगे। क्रियाशब्दों (तिङन्तों) से जब तर और तम प्रत्यय होंगे तो उनके अन्त में 'आम' प्रत्यय और लग जायेगा[4] और उनकी अव्ययसंज्ञा भी होगी।[5] फलतः तीनों लिङ्गों में एक सा रूप रहेगा। यथा—पचतितमाम्। ईयस् (=ईयसुन्) प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में 'पटीयान् पटीयांसौ पटीयांसः' आदि 'ज्यायस्' शब्द के समान चलेंगे। स्त्रीलिङ्ग में ई (=ङीप्) प्रत्यय अन्त में लगेगा[6] और 'पटीयसी पटीयस्यौ पटीयस्यः' आदि रूप 'गौरी' के समान चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में 'पटीयः पटीयसी पटीयांसि' आदि रूप 'यशस्' शब्द के समान चलेंगे।

---

१. अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ (अष्टा० ५.३.६३)
२. युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् (अष्टा० ५.३.६४)
३. विन्मतोर्लुक् (अष्टा० ५.३.६५)
४. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे (अष्टा०. ५.४.११)
५. स्वरादिनिपातमव्ययम् (अष्टा० १.१.३७)
६. उगितश्च (अष्टा० ४.१.६)

शब्द	दो में से एक की अधिकता के लिये				बहुतों में से एक की अधिकता के लिए			
	तरप्-प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)	ईयसुन्-प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)	इष्ठन्-प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)	तमप्प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)
आढ्य	आढ्यतरः	(दो में अधिक आढ्य)	—		—		आढ्यतमः	(बहुतों में अधिक आढ्य
दर्शनीय	दर्शनीयतरः	(,, दर्शनीय)	—		—		दर्शनीयतमः	(,, ,,)
पटु	पटुतरः	(,, चतुर)	पटीयान्	(दो में अधिक चतुर)	पटिष्ठः	(बहुतों में अधिक चतुर)	पटुतमः	(,, चतुर)
लघु	लघुतरः	(,, छोटा)	लघीयान्	(,, छोटा)	लघिष्ठः	(,, छोटा)	लघुतमः	(,, छोटा)
स्थूल	स्थूलतरः	(,, मोटा)	स्थवीयान्	(,, मोटा)	स्थविष्ठः	(,, मोटा)	स्थूलतमः	(,, मोटा)
दूर	दूरतरः	(,, दूर)	दवीयान्	(,, दूर)	दविष्ठः	(,, दूर)	दूरतमः	(,, दूर)
युवन्	युवतरः	(,, जवान)	यवीयान्	(,, जवान)	यविष्ठः	(,, जवान)	युवतमः	(,, जवान)
युवन्	,,	(,, जवान)	कनीयान्	(,, जवान)	कनिष्ठः	(,, जवान)	,,	(,, जवान)
ह्रस्व	ह्रस्वतरः	(,, छोटा)	ह्रसीयान्	(,, छोटा)	ह्रसिष्ठः	(,, छोटा)	ह्रस्वतमः	(,, छोटा)
क्षिप्र	क्षिप्रतरः	(,, फुर्तीला)	क्षेपीयान्	(,, फुर्तीला)	क्षेपिष्ठः	(,, फुर्तीला)	क्षिप्रतमः	(,, फुर्तीला)
क्षुद्र	क्षुद्रतरः	(,, तुच्छ)	क्षोदीयान्	(,, तुच्छ)	क्षोदिष्ठः	(,, तुच्छ)	क्षुद्रतमः	(,, तुच्छ)
बहु	बहुतरः	(,, ज्यादा)	भूयान्	(,, ज्यादा)	भूयिष्ठः	(,, ज्यादा)	बहुतमः	(,, ज्यादा)
प्रिय	प्रियतरः	(,, प्यारा)	प्रेयान्	(,, प्यारा)	प्रेष्ठः	(,, प्यारा)	प्रियतमः	(,, प्यारा)
स्थिर	स्थिरतरः	(,, स्थायी)	स्थेयान्	(,, स्थायी)	स्थेष्ठः	(,, स्थायी)	स्थिरतमः	(,, स्थायी)
स्फिर	स्फिरतरः	(,, विशाल)	स्फेयान्	(,, विशाल)	स्फेष्ठः	(,, विशाल)	स्फिरतमः	(,, विशाल)
उरु	उरुतरः	(,, विस्तृत)	वरीयान्	(,, विस्तृत)	वरिष्ठः	(,, विस्तृत)	उरुतमः	(,, विस्तृत)
		(,, अच्छा)		(,, अच्छा)		(,, अच्छा)		(,, अच्छा)
बहुल	बहुलतरः	(,, बहुत)	बंहीयान्	(,, बहुत)	बंहिष्ठः	(,, बहुत)	बहुलतमः	(,, बहुत)
गुरु	गुरुतरः	(,, भारी)	गरीयान्	(,, भारी)	गरिष्ठः	(,, भारी)	गुरुतमः	(,, भारी)
वृद्ध	वृद्धतरः	(,, बड़ा)	वर्षीयान् ज्यायान्	(,, बड़ा)	वर्षिष्ठः ज्येष्ठः	(,, बड़ा)	वृद्धतमः	(,, बड़ा)
तृप्र	तृप्रतरः	(,, सन्तुष्ट)	त्रपीयान्	(,, सन्तुष्ट)	त्रपिष्ठः	(,, सन्तुष्ट)	तृप्रतमः	(,, सन्तुष्ट)
दीर्घ	दीर्घतरः	(,, लम्बा)	द्राघीयान्	(,, लम्बा)	द्राघिष्ठः	(,, लम्बा)	दीर्घतमः	(,, लम्बा)

	दो में से एक की अधिकता के लिये				बहुतों में से एक की अधिकता के लिये			
शब्द	तरप्-प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)	ईयसुन्-प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)	इष्ठन्-प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)	तमप्प्रत्ययान्त-शब्द	(हिन्दी अर्थ)
वृन्दारक	वृन्दारकतरः	(दोमें अधिक पूज्य सुन्दर)	वृन्दीयान्	(दो में अ० पूज्य सुन्दर)	वृन्दिष्ठः	(बहुतों में अ० पूज्य सुन्दर)	वृन्दारकतमः	(बहुतों में अ.पूज्य)
प्रशस्य	प्रशस्यतरः	(,, प्रशंसनीय)	श्रेयान् ज्यायान्	(,, प्रशंसनीय)	श्रेष्ठः ज्येष्ठः	(,, प्रशंसनीय)	प्रशस्यतमः	(,, प्रशंसनीय)
अन्तिक	अन्तिकतरः	(,, समीप)	नेदीयान्	(,, समीप)	नेदिष्ठः	(,, समीप)	अन्तिकतमः	(,, समीप)
बाढम्	—		साधीयान्	(,, न्याय्य)	साधिष्ठः	(,, न्याय्य)	—	
साधु	साधुतरः	(,, सज्जन)	साधीयान्	(,, सज्जन)	साधिष्ठः	(,, सज्जन)	साधुतमः	(,, सज्जन)
अल्प	अल्पतरः	(,, थोड़ा)	अल्पीयान् कनीयान्	(,, थोड़ा)	अल्पिष्ठः कनिष्ठः	(,, थोड़ा)	अल्पतमः	(,, थोड़ा)
स्रग्विन्	स्रग्वितरः	(,, मालावाला)	स्रजीयान्	(,, मालावाला)	स्रजिष्ठः	(,, मालावाला)	स्रग्वितमः	(,, मालावाला)
त्वग्वत्	त्वग्वत्तरः	(,, त्वचावाला)	त्वचीयान्	(,, त्वचावाला)	त्वचिष्ठः	(,, त्वचाबाला)	त्वग्वत्तमः	(,, त्वचावाला)
पचति	पचतितराम्	(,, पकाता है)	—		—		पचतितमाम्	(,, पकाता है)
अत्ति	अत्तितराम्	(,, खाता है)	—		—		अत्तितमाम्	(,, खाता है)
कृश	कृशतरः	(,, निर्बल)	क्रशीयान्	(,, निर्बल)	क्रशिष्ठः	(,, निर्बल)	कृशतमः	(,, निर्बल)

अभ्यास

१. सुरेन्द्र और देवेन्द्र में से देवेन्द्र अधिक प्रिय है।
सुरेन्द्रदेवेन्द्रयोः देवेन्द्रः प्रियतरः (प्रेयान्) अस्ति।

२. इन सब छात्रों में मेरे लिये सर्वमित्र सबसे अधिक प्रिय है।
एतेषु सर्वेषु छात्रेषु सर्वमित्रः प्रियतमः (प्रेष्ठः) मम।

३. हे मौसी ! दोनों पुत्रियों में आपकी अधिक प्यारी कौनसी है ?
हे मातृष्वसः ! (मातुःष्वसः, मातुःस्वसः)[1] उभयोः सुतयोः का भवत्याः प्रियतरा (प्रेयसी) अस्ति ?

४. मेरी सब पुत्रियों में उषा प्रियतम है।
मम सर्वासु सुतासु उषा प्रियतमा (प्रेष्ठा) वर्त्तते।

५. मैं अपनी पुत्री अधिक धनवान् को दूंगा।
अहं स्वां दुहितरम् आढयतराय दास्यामि।

६. हम दोनों में तो उदयन चतुर है किन्तु उषर्बुध सबसे चतुर है।
आवयोः तु उदयनः पटुतरः (पटीयान्) अस्ति किन्तु उषर्बुधः सर्वेषु पटुतमः (पटिष्ठः) अस्ति।

७. अपने छोटे से छोटे दोष के निवारण में प्रयत्नशील होना चाहिए।
निजस्य लघुतरस्य लघुतमस्यापि वा (लघीयसः, लघिष्ठस्यापि वा) दोषस्य निवारणे प्रयतितव्यम् (प्रयतनीयं, प्रयात्यम्)।

८. हाथी चौपायों में सबसे मोटा होता है।
हस्ती चतुष्पदां (चतुष्पत्सु) स्थूलतमः (स्थविष्ठः) भवति।

९. अधिक मोटे और अधिक दुबले में से अधिक मोटे को रोग अधिक सताते हैं।
स्थूलतर-कृशतरयोः (स्थवीयःक्रशीयसोः) स्थूलतरं (स्थवीयांसं) गदाः शातयन्तितराम्।

१०. इस छोटे से पात्र में दूध लाये हो, क्या इसे कान में डालना है ?
अस्मिन् क्षुद्रतरे (क्षोदीयसि) पात्रे क्षीरम् आनीतवान् असि, किमनेन कर्णकुहरं पूरणीयमस्ति ?

११. ईश्वर दूर से दूर स्थान पर भी व्यापक है।
ईश्वरः दूरतमे (दविष्ठे) अपि स्थले व्यापकः अस्ति।

---

१. मातृपितृभ्यां स्वसा; मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् (अष्टा.८.३.८४;८५)

१२. वह अणु से भी सूक्ष्म और बड़े से भी बड़ा है ।
सः अणोः अणीयान् महतो महीयान् अस्ति ।

१३. जो तुम दोनों में अधिक युवा हो वही इस बाल्टी से पौधे सींचे ।
यः युवयोः युवतरः (यवीयान्, कनीयान्) अस्ति सः एव अनया सेचन्या क्षुपान् सिञ्चेत् (सिञ्चतु) ।

१४. तेरा सबसे छोटा लड़का सबसे फुर्तीला है ।
तव युवतमः (कनिष्ठः, यविष्ठः) सुतः क्षिप्रतमः (क्षेपिष्ठः) वर्तते ।

१५. छोटा सा भी तिनका आँख में बड़ी पीड़ा उत्पन्न कर देता है ।
ह्रस्वतमं (ह्रसिष्ठं) अपि तृणं चक्षुषि बहुतरां (भूयसीं) पीडां जनयति ।

१६. यह स्नातक विद्या के श्रम और तपस्या के कारण दुबला भले ही होगया है किन्तु अब यह सबमें प्रतिष्ठित बनकर बहुत सुख पायेगा ।

अयं स्नातकः विद्योपार्जनश्रमेण तपसा च कामं कृशतरः (क्रशीयान्) संवृत्तः परम् अधुना एषः वृन्दारकतमः (वृन्दिष्ठः) भूत्वा बहुतमं (भूयिष्ठं) सुखम् आप्स्यति ।

१७. मुझे तो वही वस्त्र सबसे प्रिय है जो बहुत टिकाऊ हो ।
मम तु तदेव वस्त्रं प्रियतमं (प्रेष्ठं) भवति यद् स्थिरतमं (स्थेष्ठं) भवति ।

१८. यह जरूरी नहीं है कि मोटी वस्तु टिकाऊ भी हो ।
स्थूलतरं (स्थवीयः) वस्तु स्थिरतरं (स्थेयः) अपि स्याद् इति नावश्यकम् ।

१९. इस जङ्गल में सबसे विशाल बड़ का पेड़ है
अस्मिन् कान्तारे स्फेष्ठः (स्फिरतमः) वटवृक्षः अस्ति ।

२०. बड़े से बड़े नगर में भी भारी गरमी है ।
उरुतमे (वरिष्ठे) अपि नगरे बहुलतमा (बंहिष्ठा) उष्णता आस्ते ।

२१. इस कुए से उस पास वाली बावड़ी का पानी अधिक मीठा है ।
अस्य कूपस्य नीरात् तस्याः अन्तिकतरायाः (नेदीयस्याः) वाप्याः नीरं मधुरतरम् अस्ति ।

२२. थोड़ी सी भी बालू भोजन को किरकिरा कर देती है ।
अल्पिष्ठाः (कनिष्ठाः, अल्पतमाः) अपि सिकताः भोज्यं सैकतं कुर्वन्ति ।

२३. माता भूमि से अधिक बड़ी (गौरवशालिनी) और पिता आकाश से भी ऊँचा होता है ।
माता भूमेः (भूम्याः) गरीयसी (गुरुतरा) खाद् उच्चतरः च पिता वर्त्तते ।

२४. राम और लक्ष्मण में से राम बड़ा और लम्बा था।
रामलक्ष्मणयोः रामः वृद्धतरः (वर्षीयान्, ज्यायान्). दीर्घतरः (द्राघीयान्) च आसीत्।

२५. लेखराम और श्रद्धानन्द में से कौन अधिक अच्छा था यह निश्चय करना कठिन है
लेखराम-श्रद्धानन्दयोः कतरः प्रशस्यतरः (श्रेयान्, ज्यायान्) आसीदिति निश्चित्य कथनं कठिनतरमस्ति।

२६. कुसुमलता अपनी बड़ी बहिन से अधिक सन्तुष्ट, अच्छी और प्रतिष्ठित है।
कुसुमलता स्ववर्षीयस्याः (ज्यायस्याः, वृद्धतरायाः) स्वसुः त्रपीयसी (तृप्रतरा), श्रेयसी (ज्यायसी, प्रशस्यतरा) वृन्दीयसी (वृन्दारकतरा) चास्ति।

२७. सुमित्रा केवल शरीर से ही भारी नहीं है गुणों में भी बड़ी है।
सुमित्रा केवलं शरीरेणैव स्थवीयसी (स्थूलतरा) नास्ति, गुणैः अपि गरीयसी (गुरुतरा) वर्त्तते

२८. उन मालाधारियों में शिवानन्द सबसे अधिक माला वाला है
तेषु स्रग्विषु शिवानन्दः स्रजिष्ठः (स्रग्वितमः) विद्यते

२९. बीमार व्यक्ति के लिए अधिक हलकी खाने की चीजें ही लाभदायक होती हैं।
रोगिणे जनाय लघीयांसि (लघुतराणि) भोज्यवस्तूनि एव पथ्यानि भवन्ति।

३०. गधा अतितुच्छ तुस को भी खा कर अति बलवान् हो जाता है।
गर्दभः क्षोदिष्ठान् (क्षुद्रतमान्) तुषान् अपि भक्षयित्वा बलिष्ठः (बलवत्तमः) जायते

क्रियाशब्दों (तिङन्तों) के साथ उपसर्गों का प्रयोग

तिङन्त विषय में हमने कई बार यह कहा था कि अमुक धातु के रूपों को सोपसर्ग धातुओं के प्रकरण में समझायेंगे। सो अब उपसर्गों को लगाकर कुछ धातुओं के रूपों का प्रयोग समझाते हैं। धातुपाठ में धातुओं के अर्थ लिखे हैं, पर वे अर्थ उपलक्षण (नमूना) मात्र हैं। उनके अतिरिक्त अन्य अर्थ भी धातुओं के होते हैं। उपसर्ग लगने से वे अर्थ प्रतीत होते हैं। जैसे घर में अन्धकार में पड़ी हुई वस्तुएँ दीपक के प्रकाश के होने पर प्रकाशित हो जाती हैं, वैसे ही उपसर्ग के योग से धातुओं के अन्य अर्थ भी प्रकट हो जाते हैं। उपसर्ग २२ हैं—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति परि, उप[1]। सब उपसर्गों का सभी धातुओं से योग प्रसिद्ध नहीं है। उपसर्ग और धातुओं के सहप्रयोगों का कहीं पर्याप्त सङ्ग्रह भी उपलब्ध नहीं होता। मैंने साहित्य में जैसा पढ़ा

---

१. प्रादयः; उपसर्गाः क्रियायोगे (अष्टा० १.४.५८;५९)

है, तदनुसार उदाहरणार्थ, कुछ धातुओं का सोपसर्ग प्रयोग बता रहा हूं। पठनार्थी साहित्य में से स्वयं भी, इस विषय को पल्लवित कर सकते हैं।

लङ्, लुङ्, लृङ् में अ (अट्) अथवा आ (आट्) आगम होता है, उसके साथ उपसर्ग की सन्धि करना आवश्यक है। सन्धि के विषय में यह स्मरण कर लेना चाहिये कि—

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

—संहिता (=सन्धि) एक पद में अर्थात् एक ही शब्द में नित्य करनी चाहिये, धातु और उपसर्ग में नित्य करनी चाहिये और समास (=समस्त शब्द) में भी नित्य करनी चाहिए। हाँ वाक्य में इच्छा पर निर्भर है, चाहे सन्धि कर दें चाहे बिना सन्धि के ही प्रयोग करें।

यथा→ एकपद में—चिन्मयम् (=चित्+मयम्)। यज्ञः (=यज्+न:)।
धातूपसर्ग में—अधीते (=अधि+इते)। व्याकरोति (=वि+आ+करोति) न्यविशत (=नि+अविशत)। उपास्ते (उप+आस्ते)।
समास में—प्रत्यङ्गम् (=प्रति+अङ्गम्) दध्योदनः (=दधि+ओदनः)
वाक्य में—दधि आनय अथवा दध्यानय आदि।

भू धातु

प्र+भू=समर्थ होना, निकलना

आज मैं उसके साथ नहीं जा सका=अद्य अहं तेन सह गन्तुं न प्राभूवम्।
हिमालय से गंगा निकलती है=हिमवतः[1] गङ्गा प्रभवति।

परि+भू=तिरस्कार करना (हराना)
परा+भू= ,, ,, ,,
अभि+भू= ,, ,, ,,

भारतीय सेना अन्य सेनाओं को हरा देती है=भारतीयचमूः अन्याः चमूः परिभवति (पराभवति)।

गुरुजनों का तिरस्कार कभी न करें।
गुरुजनान् जातुचिदपि न परिभवेत् (पराभवेत्, अभिभवेत्)।
तोपों से लैस बाबर ने राणा सांगा को हरा दिया।

---

१. भुवः प्रभवः (अष्टा. १.४.३१) से जहाँ से वस्तु निकलती है उस शब्द की अपादान सञ्ज्ञा होती है और अपादान के कारण उसमें पञ्चमी विभक्ति लगती है।

शतघ्नीमान् बाबरः महाराजं सङ्ग्रामसिंहं पर्यभवत् (पराभवत्, अभ्यभवत्; पर्यभूत्, पराभूत्, अभ्यभूत्)।

अभि+भू=दबाना।

सूर्य का प्रकाश तारों की ज्योति को दबा देता है।

सूर्यप्रकाशः ताराज्योतिः अभिभवति।

बिजली की ज्योति दीपक के प्रकाश को दबा देती है।

विद्युज्ज्योतिः दीपप्रकाशम् अभिभवति।

सम्+भू=सम्भव होना, किसी वस्तु का किसी पात्र में पूरा आना।

यह सम्भव नहीं होगा कि सभी विद्वान् हो जायें।

नेदं सम्भविष्यति यत् सर्वे विद्वांसः भविष्यन्ति।

इस पात्र में पांच सेर चावल आ सकते हैं।

एतत् पात्रं पञ्चसेटकपरिमितान् तण्डुलान् सम्भवति।

अथवा

एतस्मिन् पात्रे पञ्चसेटकपरिमिताः तण्डुलाः सम्भवन्ति।

उद्+भू=भूमि फाड़कर पैदा होना (उगना)।

इस उपजाऊ भूमि में सभी पेड़ जल्दी उगते हैं।

अस्याम् उर्वरायां भूम्यां (भूमौ) सर्वे वृक्षाः सपदि उद्भवन्ति।

प्रादुस्[२]+भू=प्रकट होना

अन्धकार होते ही अचानक वहाँ शेर प्रकट हो गया।

अन्धकारे सत्येव अकस्मात् तत्र सिंहः प्रादुरभूत् (प्रादुरभवत्)

अनु+भू=अनुभव करना।

बनारस में रहते हुए मैंने बड़ा कष्ट अनुभव किया और मेरे साथ मेरे मित्र ने भी अनेक कष्ट अनुभव किये।

वाराणस्यां वसन् अहं महत् कष्टम् अन्वभवम् (अनुभूतवान्) मम मित्रम् अपि भूयांसि कष्टानि अन्वभवत् (अनुभूतवत्)।

जब मैं बनारस चला गया मेरी मां ने भी बहुत कष्ट उठाये।

कर्तृ०—वाराणसीं गतवति मयि मम माता अपि बहूनि कष्टानि अनुभूतवती।

कर्म०— ,, ,, ,, मम मात्रा अपि ,, ,, अनुभूतानि।

---

२. 'प्रादुस्' अव्यय है। इसकी 'साक्षात्प्रभृतीनि च' (अष्टा० १.४.७४) से गति सञ्ज्ञा हुई जिससे उसका क्रियायोग होता है।

गम्लृ (गम्) गतौ ।

आङ् + गम् = आना, आगच्छति = आता है ।

प्रति + आङ् + गम् = लौटकर आना, प्रत्यागच्छति = लौटकर वापिस आता है ।

अव + गम् = जानना, अवगच्छति = जानता है ।

अधि + गम् = प्राप्त करना, अधिगच्छति = प्राप्त करता है ।

उप + गम् = समीप पहुँचना, उपगच्छति = समीप पहुँचता है ।

अभि + गम् = सामने पहुँचना, अभिगच्छति = सामने आता है ।

अभि + उप + गम् = {स्वीकार करना, समीप पहुँचना} अभ्युपगच्छति = {स्वीकार करता है । समीप पहुँचता है ।}

अनु + गम् = साथ साथ जाना, अनुगच्छति = साथ साथ जाता है ।

निर् + गम् = निकलना, निर्गच्छति = निकलता है ।

उद् + गम् = {ऊपर उठना, ऊपर निकलना} उद्गच्छति = {ऊपर उठता है । ऊपर निकलता है ।}

प्रति + उद् + गम् = {अगवानी करना, किसी के स्वागत में आगे जाना} प्रत्युद्गच्छति = अगवानी करता है ।

सम् + गम् = मिलना, सङ्गच्छति = मिलता है ।

सम् + गम् = सङ्गत होना, सङ्गच्छते = सङ्गत होता है, नदी आदि परस्पर मिलती हैं ।

अप् + गम् = दूर हटना अपगच्छति = दूर हटता है ।

वि + अप + गम् = {विशेष दूर होना, रहित होना} व्यपगच्छति = {विशेष दूर हटता है । रहित होता है ।}

अभ्यास

१. कल जल्दी आऊँगा = श्वः सपदि आगन्तास्मि ।

२. आज जाऊँगा परसों वापिस आ जाऊँगा ।
अद्य गमिष्यामि परश्वः प्रत्यागमिष्यामि ।

३. मैंने आपको नहीं जाना ।
कर्तृ०—अहं भवन्तं न अवागमम् (अवागच्छम्, अवगतवान्)
कर्म०—मया भवान् न अवागम्यत (न अवगतः) ।

४. कहाँ रहकर तूने विद्या पढ़ी ?
कर्तृ०—कुत्र (क्व) उषित्वा त्वं विद्याम् अध्यगच्छः (अध्यगमः, अधिगतवान्) ?
कर्म०—कुत्र (क्व) उषित्वा त्वया विद्या (अध्यगम्यत, अध्यगामि, अधिगता) ?

५. वह मेरे पास आया ।

कर्तृ०—सः माम् उपागच्छत् (उपागमत्, उपगतवान्, उपगतः) ।
कर्म०—तेन अहम् उपागम्ये (उपागंसि, उपगतः) ।

६. आज मेरे मित्र मुझे मिले, उनसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई ।
अद्य मम मित्राणि मां समगमन् (सङ्गतवन्ति) [सङ्गतानि] तानि सङ्गत्य सुतराम् अमोदिषि) ।

७. तेरी कोई भी युक्ति यहाँ सङ्गत नहीं होती ।
तव काऽपि युक्तिः अत्र न सङ्गच्छते ।

८. 'सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'[1] ।
'साथ मिलकर चलो, साथ बोलो और तुम्हारे मन एकसी समझ वाले हों ।'

९. वह उनके सामने आया = सः तान् अभ्यगच्छत् (अभ्यगमत्, अभिगतः, अभिगतवान्)

१०. उनके सामने मत जाना, उनकी कोई बात मत मानना ।
मा तान् अभिगमः, तेषां काम् अपि वार्तां मा अभ्युपगमः ।

११. मनुष्य के किये हुए काम सदा उसके साथ साथ चलते हैं उसे एक क्षण भी नहीं छोड़ते । = मनुष्यकृतानि शुभाशुभकर्माणि तं सततम् अनुगच्छन्ति पलम् अपि न वियुञ्जते ।

१२. वह सुखपूर्वक मेरे घर से निकल गया ।
कर्तृ०—सुखेन सः मम गृहात् निरगच्छत् (निरगमत्, निर्गतवान्, निर्गतः) ।
कर्म०—तेन सुखेन मम गृहात् निरगम्यत (निरगामि, निर्गतम्) ।

१३. ऐसा उपाय करो कि रसोई का सारा धूंआ ऊपर जाये अन्दर न फैले ।
एतादृशः उपायः विधेयः (विधीयताम्) येन रसवत्याः सर्वः धूमः उद्गच्छेत् अन्तः न प्रसरेत् ।

१४. वह ऊपर हाथ किये हुए रोता है पर उसे कोई नहीं सुनता ।
सः उद्गतबाहुः रोदिति न च कश्चित् शृणोति तम् ।

१५. मैं कलकत्ते से आने वाले अपने मित्रों की अगवानी करूँगा ।
अहं कलिकातानगरात् आगमिष्यन्ति निजमित्राणि प्रत्युद्गमिष्यामि ।

१६. मेरे स्थान से दूर हट जा अपगच्छ मत्स्थानात् ।

एक दो उदाहरण 'इण् गतौ' के भी बताते हैं—

अभि + उप + इण् = स्वीकार करना, समीप आना ।
अप + इण् = दूर हटना ।

---

१. ऋग्वेद (१०.१९१.२)

१. मेरी बात स्वीकार कर=मदीया वार्त्ता अभ्युपेया। अथवा अस्मत्सिद्धान्तशय्याम् अधिशय्य प्रमोदमयी निद्रा अभ्युपेया।

२. पापाचरण से दूर हट जा=पापाचरणात् अपेहि।

३. अधार्मिक के पास मत जा सङ्गदोष लग जायेगा।
अधार्मिकं नैव अभ्युपेहि सङ्गदोषः त्वां संक्रमिष्यते।

गै=शब्दे (गाना)

वि+गै=निन्दा करना, विगायति =निन्दा करता है।
अव+गै= ,, ,, , अवगायति =,, ,, ।

१. किसी की निन्दा मत कर =कम् अपि मा अवगासीः (विगासीः)।
अथवा—न कश्चिद् अवगेयः (विगेयः)

श्रु श्रवणे (सुनना)

आ+श्रु=प्रतिज्ञा करना, आशृणोति =प्रतिज्ञा करता है।
प्रति+श्रु= ,, ,, , प्रतिशृणोति = ,, ,, ।

१. मैं तुझे गाय देने की प्रतिज्ञा करता हूं=अहं तुभ्यं गां दातुं प्रतिशृणोमि (आशृणोमि)

२. तेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ न हो जावे।
मा भूत् ते प्रतिश्रुतिः (आश्रुतिः) जललिप्यायिता, (पूतिकूष्माण्डायिता, वियन्मुष्टिहननकल्पायिता)।

ष्ठा (स्था) गतिनिवृत्तौ (ठहरना)

अनु+स्था(=तिष्ठ) = करना; अनुतिष्ठति= करता है
उत्+स्था(=तिष्ठ) = उठना; उत्तिष्ठति = उठता है (खड़ा होता है।)
,, + ,, ,, ,, = उन्नति करना; उत्तिष्ठते[1]=उन्नति करता है।
उप+स्था(=तिष्ठ) = देवपूजा करना;
गुरुम् उपतिष्ठते[2]=गुरु की पूजा करता है।
,, ,, ,, = सङ्गतिकरना (मिलना);
गङ्गा यमुनाम् उपतिष्ठते[2]=गङ्गा यमुना में मिलती है।
,, ,, ,, = मित्रता करना;
सैनिकान् उपतिष्ठते[2]=सैनिकों से मित्रता करता है

---

१. उदोऽनूर्ध्वकर्मणि (अष्टा १. ३. २४.) से आत्मनेपद।
२. उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रीकरणपथिष्विति वाच्यम् [वा०] (अष्टा. १.३.२५)

उप+स्था (=तिष्ठ) = 'मार्ग का जाना'; अयं पन्थाः गिरिम् उपतिष्ठते
=यह मार्ग पहाड़ को जाता है।

" " " = समीप ठहरना; सः राजानम् उपतिष्ठति
=वह राजा के पास ठहरता है।

सम्+स्था (=तिष्ठ)= {मरना । सन्तिष्ठते[1]=मरता है
{अच्छी प्रकार ठहरना । सन्तिष्ठते =
अच्छी प्रकार ठहरता है।

प्र+स्था(=तिष्ठ)=जाना, प्रस्थान करना। प्रतिष्ठते[1]=प्रस्थान करता है।

प्रति+अव+स्था (=तिष्ठ)=सामना करना। प्रत्यवतिष्ठते[1]
=सामना करता है।

वि+अव+स्था+णिच् =व्यवस्था करना। व्यवस्थापयति
=व्यवस्था करता है।

१. यह गृहस्थ प्रतिदिन पांच महायज्ञ करता है।

अयं गृहस्थः नित्यं पञ्च महायज्ञान् अनुतिष्ठति।

२. हमें देखकर सारे छात्र खड़े हो गये।
अस्मान् विलोक्य सर्वे छात्राः उदतिष्ठन् (उदस्थुः)

३. इस स्कूल के छात्र खूब उन्नति करेंगे=अस्य विद्यालयस्य छात्राः भृशम् उत्थास्यन्ते।

४. जो प्रतिदिन माता पिता आदि देवताओं की पूजा करता है वह जीवन में उन्नति करता है।
यः नित्यं मातृपितृप्रभृतीः देवताः उपतिष्ठते सः जीवने उत्तिष्ठते।

५. सुधीन्द्र जहां रहता है वहां के लोगों को मित्र बना लेता है।
सुधीन्द्रः यत्र निवसति तत्रत्यान् जनान् उपतिष्ठते।

६. यह मार्ग जयपुर को जाता है=अयं पन्थाः जयपुरम् उपतिष्ठते।

७. चापलूस लोग सदा राजा के पास बने रहते हैं।
प्रियालापिनः जनाः सदा राजानम् उपतिष्ठन्ति।

८. टी बी. के मरीज जल्दी मरते हैं=यक्ष्मरोगग्रस्ताः नराः सपदि सन्तिष्ठन्ते।

९. वह सेवाभावी सेवक बुखार के दिनों में सदा मेरे पास रहा।
सः सेवापरायणः परिचारकः ज्वरावस्थायां सदा मदन्तिके समतिष्ठत।

---

१. समवप्रविभ्यः स्थः (अष्टा. १. ३. २२)

१०. तू आज ही रवाना हो जा हम सब कल सबेरे रवाना होंगे।
त्वम् अद्यैव प्रतिष्ठस्व वयं श्वः प्रातः प्रस्थातास्महे।

११. यह ढीठ बालक सदा गुरुजनों का सामना करता है।
अयं धृष्टः बालकः सदा गुरून् प्रत्यवतिष्ठते।

१२. सब चीजें व्यवस्थित कर दे=सर्वाणि वस्तूनि व्यवस्थापय।

युजिर् (=युज्) योगे (जोड़ना) [रुधादि.] उभ०

उत्+युज्=उद्योग करना। उद्युङ्क्ते=उद्योग करता है।
नि+युज्=नियुक्त करना। नियुङ्क्ते=नियुक्त करता है।
प्र+युज्=प्रयोग करना। प्रयुङ्क्ते=प्रयोग करता है।
वि+युज्=वियुक्त होना (पृथक् होना)। वियुङ्क्ते=वियुक्त होता है, पृथक् होता है।
परि+अनु+युज्=प्रश्न करना। पर्यनुयुङ्क्ते =प्रश्न करता है।
सम्+युज्=जोड़ना। संयुङ्क्ते=जोड़ता है।
अभि+युज्=मुकदमा चलाना। अभियुङ्क्ते =मुकदमा चलाता है।
उप+युज्=उपयोग में लाना। उपयुङ्क्ते =उपयोग में लाता है।

१ हम ऐसे शिक्षकों को नियुक्त करते हैं जो विद्यावृद्धि के लिये उद्योग करते हैं।
वयम् एतादृशान् शिक्षकान् नियुञ्ज्महे ये विद्यावृद्धये उद्युञ्जते।
इन वाक्यों का कर्मवाच्य में प्रयोग करो।
एतानि वाक्यानि कर्मवाच्ये प्रयुङ्ग्ध्वम्।

३ ये पक्के मित्र हैं ये कभी अलग नहीं होंगे।
एतानि दृढानि मित्राणि सन्ति, एतानि न जातुचित् वियोक्ष्यन्ते।

४ साक्षात्कार में एक्सपर्ट अनेक प्रश्न पूछते हैं।
साक्षात्कारे विशेषज्ञाः नैकान् प्रश्नान् पर्यनुयुञ्जते।

५ यह नहर अन्धमहासागर को प्रशान्त महासागर से जोड़ती है।
इयं कुल्या अन्धमहासागरं प्रशान्तमहासागरेण संयुङ्क्ते।

६ रामायण की यही शिक्षा है कि भाई-भाई पर मुकदमा न चलावे।
रामायणस्य अयमेव उपदेशः—भ्राता भ्रातरं न अभियुञ्जीत (अभियुङ्क्ताम्)
अच्छे पेन का उपयोग कर=शोभनां लेखनीम् उपयुङ्ग्धि।

ह्वेञ् आह्वाने रोदने च

आ+ह्वेञ्=बुलाना=आह्वयति (आह्वयते)=बुलाता है।
„ + „ {ललकारना / स्पर्धाकरना} = आह्वयते[1] = {आह्वान करता है। / स्पर्धा करता है।}

---

१. स्पर्धायामाङः (अष्टा० १.३.३१) से केवल आत्मनेपद ही होगा।

१. तू किसको बुलाता है ?=त्वं कम् आह्वयसि (आह्वयसे) ?

२. ऋषियों ने शिष्यों को बुलाया=ऋषयः शिष्यान् आजुहुवुः (आजुहुविरे)।

३. मैं कल बढ़ई को बुलाऊँगा=अहं श्वः वर्धकिम् आह्वातास्मि (आह्वाताहे)।

४. बाग में जाते हुए आप मुझे बुला लेना।
उद्यानं गच्छन् भवान् माम् आह्वास्यति (आह्वास्यते)।

५. क्या मैं पुलिस को बुलाऊँ ?=किम् अहम् आरक्षिणम् आह्वयानि (आह्वयै) ?

६. रोगी के उपचार के लिये डाक्टर को बुलाना चाहिये।
रोगिणः उपचाराय चिकित्सकम् आह्वयेत् (आह्वयेत)।

७. मैंने कल तेली को बुलाया था=ह्यः अहं तिलन्तुदम् आह्वयम् (आह्वये)।

८. आज मुझे सुपरिन्टेण्डेण्ट ने बुलाया था।
अद्य माम् अधीक्षकः आह्वत् (आह्वत, आह्वास्त)।

९. यदि तुम मुझे बुलाते तो मैं अवश्य आता ?
यदि यूयं माम् आह्वास्यत (आह्वास्यध्वम्) तर्हि अहम् अवश्यम् आयास्यम्।

अब हम कुछ धातुओं के उपसर्ग लगने पर क्या क्या अर्थ होते हैं, केवल यही दर्शाते हैं, उनका वाक्यों में अभ्यास वाच्य परिवर्त्तन के प्रसङ्ग में करवा देंगे।

डुधाञ् (धा) धारणपोषणयोः=धारण करना तथा पोषण करना (जुहो०) [उभय०]

वि+धा=करना। विदधाति, विधत्ते=करता है।
अभि+धा=कहना। अभिदधाति, अभिधत्ते=कहता है।
सम्+धा=सन्धि करना। सन्दधाति, सन्धत्ते=सन्धि करता है।
अनु+सम्+धा=अनुसन्धान करना। नई वस्तु की खोज करना।
अनुसन्दधाति, अनुसन्धत्ते=अनुसन्धान करता है।
नि+धा=रखना। निदधाति, निधत्ते=रखता है।
अव+धा=ध्यान देना। अवदधाति, अवधत्ते=ध्यान देता है।
प्रति+वि+धा=प्रतिकार करना। प्रतिविधत्ते=प्रतिकार करता है।
सम्+आ+धा=समाधान करना। समादधाति, समाधत्ते=समाधान करता है।

रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च=उगना, उत्पन्न होना

आ+रुह्=चढ़ना। आरोहति=चढ़ता है।
अव+रुह्=उतरना। अवरोहति=उतरता है।
अधि+रुह्=चढ़ना। अधिरोहति=चढ़ता है।
प्र+रुह्=घाव आदि का भरना। प्ररोहति=(घाव) भरता है।

हृञ् (हरणे)=हरण करना [उभय०]

वि+हृ	=विहार करना (घूमना)।	विहरति	=विहार करता है।
वि+आ+हृ	=कहना।	व्याहरति	=कहता है।
वि+अव+हृ	=व्यवहार करना।	व्यवहरति	=व्यवहार करता है।
अभि+अव+हृ	=खाना।	अभ्यवहरति	=खाता है।
आङ्+हृ	=लाना, खाना।	आहरति	=लाता है, खाता है।
उप+हृ	=उपहार देना।	उपहरति	=उपहार देता है।
उत्+आ+हृ	=उदाहरण देना।	उदाहरति	=उदाहरण देता है।
+हृ	=उद्धार करना, उद्धरण देना।	उद्धरति	=उद्धार करता है। उद्धरण देता है।
अनु+हृ	=माता पिता का अनुकरण करना।	अनुहरते	=माता पिता का अनुकरण करता है।
निर्+हृ	=मुर्दा (अर्थी) उठाना।	निर्हरति	=मुर्दा (अर्थी) उठाता है।
प्र+हृ	=प्रहार करना।	प्रहरति	=प्रहार करता है।
परि+हृ	=अपने लाञ्छन को हटाना, त्यागना।	परिहरति	=स्वलाञ्छन को हटाता है।
अधि+आ+हृ	=अध्याहार करना।	अध्याहरति	=अध्याहार करता है।
सम्+हृ	=संहार करना, नाश करना।	संहरति	=संहार करता है, नष्ट करता है।
उप+सम्+हृ	=उपसंहार करना, समेटना।	उपसंहरति	=उपसंहार करता है, समेटता है।
अप+हृ	=आहरण करना, चुराना, दूर करना।	अपहरति	=चुराता है, दूर करता है।
निर्+आ+हृ	=भूखा रहना	निराहरति	=भूखा रहता है।

णीञ् (नी) प्रापणे=ले जाना [उभय०]

उप+नी=समीप लाना। उपनयति=समीप लाता है।

„ + „=भेट देना। उपनयति=भेट देता है।

„ + „=यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त करना। =उपनयते=यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त करता है।

निर्+नी=निर्णय करना। =निर्णयति=निर्णय करता है।

अभि+नी=नाटक करना। =अभिनयति=नाटक करता है।

अनु+नी=मनाना। =अनुनयति=मनाता है।

वि+नी=विनय करना। विनयति=विनय करता है।

वि+नी=स्वदोष को दबाना। विनयते=स्वदोष को दबाता है।

आङ्+नी=लाना। आनयति=लाता है।

प्र+नी=प्रेम करना, विवाह करना। प्रणयति=प्रेम करता है, विवाह करता है।

परि+नी=" " " " । परिणयति=" "

{ प्र+नी=ग्रन्थ या लेखादि लिखना। प्रणयनम्=ग्रन्थादिरचनम्।
{ परि+नी=" " । परिणयनम्=" "

उत्+नी=ऊपर उठाना, उन्नति करना। उन्नयति=ऊपर ले जाता है।

अप+नी=दूर करना। अपनयति=दूर करता है।

वि+अप+नी=विशेष दूर करना। व्यपनयति=विशेष दूर करता है।

चिञ् चयने (=चुनना) [उभयपदी]

निस्+चिञ्=निश्चय करना। निश्चिनोति=निश्चय करता है।

परि+चिञ्=परिचय करना। परिचिनोति=परिचय करता है।

वि+चिञ्=तलाशी लेना। विचिनोति=तलाशी लेता है।

सम्+चिञ्=सञ्चय करना, इकट्ठा करना। सञ्चिनोति=इकट्ठा करता है।

अव+चिञ् (द्विकर्मक)=तोड़ना। अवचिनोति=तोड़ता है।

उप+चिञ्=बढ़ना। उपचीयते=बढ़ता है।

अप+चिञ्=घटना। अपचीयते=घटता है।

डुकृञ् (कृ) करणे (=करना) [उभयपदी]

उप+कृ=उपकार करना। उपकरोति=उपकार करता है।

अप+कृ=अपकार करना। अपकरोति=अपकार करता है।

निर्+आ+कृ=दूर करना। निराकरोति=दूर करता है।

अनु+कृ=अनुकरण करना। अनुकरोति=अनुकरण करता है।

सम्+कृ= { सजाना, संस्कृत करना । संस्करोति=सजाता है, संस्कृत करता है।

परि+कृ=" " । परिष्करोति=" " "

[1]सत्+कृ=सत्कार करना। सत्करोति=सत्कार करता है।

[2]धिक्+कृ=धिक्कार करना। धिक्करोति=धिक्कार करता है।

[2]न्यक्+कृ=तिरस्कार करना। न्यक्करोति=तिरस्कार करता है।

---

१. 'सत्' अव्यय है। इसकी 'आदरानादरयोः सदसती' (अष्टा. १.४.६३) से गति सञ्ज्ञा हुई, अतः इसका क्रियायोग होता है।

२. धिक् और न्यक् मात्र अव्यय हैं, गतिसञ्ज्ञक नहीं। इनका क्रिया के साथ सामान्य प्रयोग होता है।

अधि+कृ=अधिकार करना । अधिकरोति=अधिकार करता है ।

वि+कृ=विकृत करना । विकरोति=विकृत करता है ।

" +"=निष्फल चेष्टा करना । विकुरुते=निष्फल चेष्टा करता है ।

वृतु वर्तने (होना) [उभयपदी]

प्र+वृत्=किसी कार्य में प्रवृत्त होना । प्रवर्त्तते=प्रवृत्त होता है ।

परि+वृत्=बदलना । परिवर्तते=बदलता है ।

प्रति+नि+वृत्=लौटना । प्रतिनिवर्तते=लौटता है ।

अभि+वृत्=सामने आना । अभिवर्तते । सामने आता है ।

अभि+नि+वृत्=लौटना । अभिनिवर्तते=लौटता है ।

सम्+आ+वृत्=पढ़ाई पूरी करके वापस आना । समावर्त्तते=गुरुकुल से लौटता है ।

निर्+वृत्+णिच्=परोसना । निर्वर्तयति=परोसता है ।

अनु+वृत्=अनुकरण करना । अनुवर्तते=अनुकरण करता है ।

पद गतौ (जानना, जाना, प्राप्त करना) [आत्मनेपदी]

उत्+पद्=उत्पन्न होना । उत्पद्यते=उत्पन्न होता है ।

निस्+पद्={उत्पन्न होना, पूर्ण होना} निष्पद्यते={उत्पन्न होता है, पूर्ण होता है ।}

वि+पद्=विपत्ति में फसना, मरना । विपद्यते={विपत्ति में फंसता है, मरता है ।}

प्रति+पद्=प्राप्त करना । प्रतिपद्यते=प्राप्त करता है ।

उप+पद्=स्वीकार करना, उचित होना । उपपद्यते={स्वीकार करता है, उचित होता है ।}

प्रति+पद्+णिच्=प्रतिपादन करना, कहना, देना । प्रतिपादयति={प्रतिपादित करता है, कहता है, देता है ।}

प्र+पद्=प्राप्त करना । प्रपद्यते=प्राप्त करता है ।

उप+पद्+णिच्=सिद्ध करना । उपपादयति=सिद्ध करता है ।

निस्+पद्+णिच्={निष्पादन करना, परिणाम निकालना ।} निष्पादयति=निष्पादन करता है

सम्+पद्=सम्पन्न होना । सम्पद्यते=सम्पन्न होता है ।

क्रमु पादविक्षेपे (चलना)

वि+क्रम्=पराक्रम दिखाना । विक्रमते=पराक्रम दिखाता है ।

---

१. उपपराभ्याम् (अष्टा. १.३.३९) से आत्मनेपद ।

परा+क्रम्=पराक्रम दिखाना। पराक्रमते[1] =पराक्रम दिखाता है।

आ+क्रम्=धुएं का ऊपर को निकलना। आक्रामति=धुआं ऊपर निकलता है।

आ+क्रम् {सूर्य अथवा चन्द्रादि का उदय होना। आक्रमते[2]=सूर्य अथवा चन्द्र उगता है।

आ+क्रम्=आक्रमण करना। आक्रामति=आक्रमण करता है।

उप+क्रम्=प्रारम्भ करना। उपक्रमते[3]=प्रारम्भ करता है।

प्र+क्रम्= " " । प्रक्रमते[3]=" "

निस्+क्रम्=निकलना। निष्क्रामति=निकलता है।

अभि+क्रम्=दबाना। अभिक्रामति=दबाता है।

ज्ञा अवबोधने (जानना) [उभयपदी]

अव+ज्ञा =तिरस्कार करना। अवजानाति=तिरस्कार करता है।

प्रति+ज्ञा =प्रतिज्ञा करना। प्रतिजानीते[4]=प्रतिज्ञा करता है।

अनु+ज्ञा =अनुमति देना। अनुजानाति=अनुमति देता है।

आ+ज्ञा+णिच्=आज्ञा देना। आज्ञापयति=आज्ञा देता है।

वि+ज्ञा+णिच्= बताना, प्रार्थना करना। विज्ञापयति=बताता है, प्रार्थना करता है।

अभि+ज्ञा=भूली वस्तु को पहिचानना। अभिजानाति=भूली वस्तु को पहिचानता है।

प्रति+अभि+ज्ञा= " " । प्रत्यभिजानाति= " "

अप+ज्ञा=मुकरना। अपजानीते[5] =मुकरता है।

लप (व्यक्तायां वाचि) बोलना

अप+लप्=मुकरना। अपलपति=मुकरता है।

डुलभष् (लभ्) प्राप्तौ (पाना)

उप+आ+लभ्=उलाहना देना। उपालभते=उलाहना देता है।

वि+प्र+लभ्=ठगना। विप्रलभते=ठगता है।

मनु अवबोधने (मानना) [आत्मने०] मन्यते

अव+मन्=तिरस्कार करना। अवमन्यते=तिरस्कार करता है।

अनु+मन्=अनुमति देना। अनुमन्यते=अनुमति देता है।

अभि+मन्=अभिमान करना। अभिमन्यते=अभिमान करता है।

---

१. उपपराभ्याम् (अष्टा. १.३.३९) से आत्मनेपद।

२. आङ् उद्गमने (अष्टा. १.३.४०) से आत्मनेपद।

३. प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् (अष्टा. १.३.४२) से आत्मनेपद।

४. यहाँ 'सम्प्रातिभ्यामनाध्याने' (अष्टा. १. ३. ४६) से आत्मनेपद ही होगा।

५. यहां 'अपह्नवे ज्ञः' (अष्टा. १. ३. ४४) से केवल आत्मनेपद होगा।

रमु क्रीडायाम् (खेलना) [आत्मने०]

वि+रम्=रुकना, हटना। विरमति[1]=रुकता है, हटता है।

उप+रम्=मरना। {उपरमति[2] / उपरमते}=मरता है।

वह प्रापणे (ढोना) [उभयपदी]

उत्+वह्+णिच्=विवाह करना। उद्वाहयति=विवाह करता है।

सम्+वह्+णिच्=पैर दबाना। संवाहयति=पैर दबाता है।

वि+वह्+णिच्=विवाह करना। विवाहयति=विवाह करता है।

अप+वह्+णिच्=ठगना। अपवाहयति=ठगता है।

तॄ प्लवनसन्तरणयो: (तैरना) [परस्मै०]

वि+तॄ=बाँटना। वितरति=बांटता है।

अव+तॄ=उतारना। अवतरति=उतरता है।

उत्+तॄ=उत्तर देना। उत्तरति=उत्तर देता है पार होता है।

अव+तॄ=णिच्=उतरना। अवतारयति=उतारता है।

प्र+तॄ=णिच्=ठगना। प्रतारयति=ठगता है।

कपि चलने (=कांपना) [आत्मने०]

अनु+कम्प्=कृपा करना। अनुकम्पते=कृपा करता है।

गुहू संवरणे (ढकना)

अव+गुह्=आलिङ्गन करना। अवगूहति[3]=आलिङ्गन करता है।

इण् गतौ (जाना आदि) [अदादि०] परस्मै०

अनु+इण्=पीछे-पीछे जाना। अन्वेति=पीछे-पीछे जाता है।

उप+इण्=समीप पहुंचना। उपैति=समीप पहुंचता है।

अव+इण्=जानना। अवैति=जानता है।

अभि+उप+इण्=स्वीकार करना। अभ्युपैति=स्वीकार करता है।

ईक्ष दर्शने (=देखना) [आत्मने०]

परि+ईक्ष्=परीक्षा लेना। परीक्षते=परीक्षा लेता है।

प्रति+ईक्ष्=इन्तजार करना। प्रतीक्षते=इन्तजार करता है।

---

१. व्याङ्परिभ्यो रमः (अष्टा. १. ३. ८३) से परस्मैपद।

२. विभाषाऽकर्मकात् (अष्टा. १. ३. ८५) से विकल्प से परस्मैपद।

३. ऊदुपधाया गोहः (अष्टा. ६. ४. ८९) से गुह् की उपधा को दीर्घ ऊकार।

सम्+ईक्ष्=समालोचना करना। समीक्षते=समालोचना करता है।
निर्+ईक्ष्=निरीक्षण करना। निरीक्षते=निरीक्षण करता है।
उत्+प्र+ईक्ष्=उत्प्रेक्षा करना, कल्पना करना। उत्प्रेक्षते=उत्प्रेक्षा (कल्पना) करता है।
उप+ईक्ष्=उपेक्षा करना, लापरवाही करना। उपेक्षते=उपेक्षा करता है, लापरवाही करता है।
अप+ईक्ष्=चाहना। अपेक्षते=चाहता है, अपेक्षा करता है।

लोचृ दर्शने (देखना)

सम्+आ+लोच्+णिच्=समालोचना करना। समालोचयति=समालोचना करता है।

डीङ् विहायसा गतौ (आकाश में गति करना) [आत्मने०]

उत्+डी=उड़ना	उड्डयते (भ्वादि०)=उड़ता है।
„+ =„	उड्डीयते (दिवादि०)= „ „

विश प्रवेशने (प्रवेश करना) [परस्मै०]

प्र+विश्=प्रवेश करना।	प्रविशति=घुसता है।
उप+विश्=बैठना।	उपविशति=बैठता है।
नि+विश्=पड़ाव डालना।	निविशते[1]=पड़ाव डालता है।

मील निमेषणे (सङ्कोच करना=सिकोड़ना) [परस्मै०]

उत्+मील्=आंख खोलना।	उन्मीलति=आंख खोलता है।
नि+मील्=आंख मीचना।	निमीलति=आंख मीचता है।

मुच्लृ मोचने (छोड़ना, मुक्त करना) [परस्मै०]

प्रति+मुच्=पहनना।	प्रतिमुञ्चति=पहनता है।
परि+मुच्= „	परिमुञ्चति= „ „
उत्+मुच्=उतारना।	उन्मुञ्चति=उतारता है।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये (वस्तु की अदल बदल करना) [उभय०]

क्री, सम्+क्री=खरीदना।	क्रीणाति, सङ्क्रीणाति=खरीदता है।
वि+क्री=बेचना।	विक्रीणीते[2]=बेचता है।

---

१. नेर्विशः (अष्टा. १.३.१७) से आत्मनेपद।
२. परिव्यवेभ्यः क्रियः (अष्टा. १.३.१८) से केवल आत्मनेपद।

षद्लृ (सद्) विशरणगत्यवसादनेषु (सड़ना, जाना, निरुत्साहित होना)

नि+सद्=बैठना । निषीदति=बैठता है ।

अव+सद्=नष्ट होना, कष्ट पाना । अवसीदति=नष्ट होता है, कष्ट पाता है ।

प्र+सद्=प्रसन्न होना । प्रसीदति=प्रसन्न होता है ।

प्रति+आ+सद्=समीप आना । प्रत्यासीदति=समीप आता है ।

वद व्यक्तायां वाचि (बोलना)

वि+वद्=विवाद करना । विवदन्ते[1]=विवाद करते हैं ।

अनु+वद्=सदृश बोलना । अनुवदते[2] (अक.)=समान बोलता है ।

„ + „ =अनुवाद करना । अनुवदति (सक.)=अनुवाद करता है ।

सम्+वद्={आकृति का मिलना, परस्पर संवाद करना । संवदति=आकृति मिलती है ।

अप+वद्=निन्दा करना । अपवदति=निन्दा करता है ।

डुदाञ् (दा) दाने=देना [उभयपदी] जुहोत्या०

आङ्+दा=लेना । आदत्ते[3]=लेता है

मन्त्रि (मन्त्र्) =गुप्तपरिभाषणे (मन्त्रणा करना) [चुरा०]

नि+मन्त्र्=निमन्त्रण देना । निमन्त्रयति=निमन्त्रण देता है ।

पाल रक्षणे (पालन करना) [चुरा०]

प्रति+पाल्=प्रतीक्षा करना । प्रतिपालयति=प्रतीक्षा करता है ।

दिश अतिसर्जने (त्याग करना) [तुदादि०] उभय०

	परस्मै०	आत्मने०
लट्	दिशति ।	दिशते
लिट्	दिदेश ।	दिदिशे
लुट्	देष्टा ।	देष्टा
लृट्	देक्ष्यति ।	देक्ष्यते
लोट्	दिशतु ।	दिशताम्
लङ्	अदिशत् ।	अदिशत
वि०लिङ्	दिशेत् ।	दिशेत

लुङ् (परस्मै०)

अदिक्षत्	अदिक्षताम्	अदिक्षन्
अदिक्षः	अदिक्षतम्	अदिक्षत
अदिक्षम्	अदिक्षाव	अदिक्षाम

(आत्मने०)

अदिक्षत	अदिक्षाताम्	अदिक्षन्त
अदिक्षथाः	अदिक्षाथाम्	अदिक्षध्वम्, अदिग्ध्वम्
अदिक्षि	अदिक्षावहि	अदिक्षामहि

लृङ्—अदेक्ष्यत् (पर०) । अदेक्ष्यत (आत्म०)

---

१. व्यक्तवाचां समुच्चारणे (अष्टा. १.३.४८) से आत्मनेपद ।

२. अनोरकर्मकात् (अष्टा. १.३.४९) से आत्मनेपद ।

३. आङो दोऽनास्यविहरणे (अष्टा. १.३.२०) से आत्मनेपद ही होगा ।

उप+दिश्=उपदेश देना। उपदिशति=उपदेश देता है।

निर्+दिश्=निर्देश देना। निर्दिशति=निर्देश देता है।

अधि+आ+दिश्=अध्यादेश देना। अध्यादिशति=अध्यादेश देता है।

अति+दिश्=देना अतिदिशति=देता है।

आ+दिश्=आदेश देना। आदिशति=आदेश देता है।

सम्+दिश्=सन्देश देना। सन्दिशति=सन्देश देता है।

प्रति+आ=दिश्=खण्डन करना। प्रत्यादिशति=खण्डन करता है।

वि+अप+दिश्=बहाना बनाना। व्यपदिशति=बहाना बनाता है।

शीङ् शये (सोना)

अति+शीङ्=मात करना, अधिक होना।
अतिशेते =मात करता है, अधिक होता है।

वृतु वर्त्तने। अति+वृत्=मात करना, अधिक होना।
अतिवर्तते =मात करता है, अधिक होता है।

क्रमु पादविक्षेपे। अति+क्रम्=मात करना, अधिक होना।
अतिक्रमते=मात करता है, अधिक होता है।

वाच्य-परिवर्तन

कृत्प्रत्ययों के प्रकरण में हमने वाच्य-परिवर्तन का थोड़ा सा विषय समझाया था। अब धातुओं के लकारों के वाच्य-परिवर्तन के विषय में बताते हैं। धातुरूपों (तिङन्त क्रियापदों) के प्रसङ्ग में कर्तृवाच्य का तो पर्याप्त अभ्यास हो ही चुका है। कर्तृवाच्य में कर्ता की प्रधानता होती है। कर्ता के अनुसार ही क्रिया में परिवर्तन होता है। जो धातु जिस गण की होती है तदनुसार शप्, श्यन् आदि विकरण लट् आदि चार लकारों में होते हैं। परस्मैपदी धातु से परस्मैपद प्रत्यय, आत्मनेपदी धातु से आत्मनेपद प्रत्यय और उभयपदी धातु से दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं। कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया होती है।

किन्तु कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य बनाने में कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिये।

१. कर्मवाच्य में सकर्मक धातुओं का प्रयोग होता है और भाववाच्य में केवल अकर्मक धातुओं का[1]।

२. कर्मवाच्य तथा भाववाच्य दोनों में सब प्रकार की धातुओं से सदा आत्मनेपद प्रत्यय ही होते हैं[2]।

३. लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन चार लकारों मे सब धातुओं से (=सब गणों की धातुओं से) य (यक्) विकरण होता है[3]।

४. लुङ् लकार के एकवचन में च्लि के स्थान पर चिण् (इ) होता है[4] और 'त' का लोप[5]।

जैसे—अपाठि, अगादि, अस्मारि आदि।

५. अजन्त (=स्वरान्त) धातुओं से तथा हन्, ग्रह् और दृश् इन धातुओं से लुट्, लृट्, लुङ्, लृङ् तथा आशीर्लिङ् में तास्, स्य, सिच्, स्य और सीयुट् को विकल्प से इट् (=इ) आगम होता है तथा इन धातुओं को चिण्वत् कार्य होता है[6]। अर्थात् जो कार्य चिण् परे रहने पर किसी धातु को होते हैं, वे कार्य इस इ (=इट्) के परे रहने पर हो जायेंगे। जैसे—इगन्त धातु के अन्त्य अच् को वृद्धि[7] (=ऐ, औ, आर्) और आय्, आव् आदेश[8]। ह्रस्व अकार यदि उपधा में हो तो उसको वृद्धि (आ=)[9]। आकारान्त धातु को य् (=युक्) का आगम[10] आदि। जैसे—चेष्यते, चायिष्यते। स्तोष्यते, स्ताविष्यते। करिष्यते, कारिष्यते। दास्यते, दायिष्यते। ग्रहीष्यते, ग्राहिष्यते। हन् के ह् को घ् आदेश होगा[11], हनिष्यते, घानिष्यते।

६. कर्मवाच्य और भाववाच्य दोनों में कर्त्ता में तृतीया रहेगी। कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा रहेगी और कर्म के अनुसार ही क्रिया [=धातुरूप] में पुरुष और वचन का परिवर्तन होगा। भाववाच्य में कर्म होता ही नहीं। अतः भाववाच्य में सब

---

१. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः (अष्टा ३.४.६९)

२. भावकर्मणोः (अष्टा. १.३.१३)

३. सार्वधातुके यक् (अष्टा. ३.१.६७)

४. चिण् भावकर्मणोः (अष्टा. ३.१.६६)

५. चिणो लुक् (अष्टा. ६.४.१०४)

६. स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन्ग्रह्दृशां वा चिण्वदिट् च। [अष्टा. ६.४.६२]

७. अचो ञ्णिति [अष्टा. ७.२.११५]

८. एचोऽयवायावः [अष्टा. ६.१.७८]

९. अत उपधायाः [अष्टा. ७.२.११६]

१०. आतो युक् चिण्कृतोः [७.३.३३]

११. हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु [अष्टा. ७.३.५४]

लकारों में सदा प्रथमपुरुष ही होगा और उसका भी एकवचन ही प्रयुक्त होगा।

अब मैं तुम्हारी सुविधा के लिए सब लकारों में एक धातु के कर्तृवाच्यों को कर्मवाच्य में वाक्यप्रयोग सहित बदल कर बताता हूं। एतदर्थ मैं 'गद' धातु को लेता हूं। इसके रूप हैं भी सरल।

१. देवदत्त लड़कों को कहता है। कर्तृ०—देवदत्तः बालकान् गदति।
कर्म०—देवदत्तेन बालकाः गद्यन्ते।

२. वे दो उन सबको कहते हैं। कर्तृ०—तौ तान् गदतः।
कर्म०—ताभ्यां ते गद्यन्ते।

३. वे सब उन दोनों को कहते हैं। कर्तृ०—ते तौ गदन्ति। कर्म०—तैः तौ गद्येते।

४. मैं तुझे कहता हूं। कर्तृ०—अहं त्वां गदामि। कर्म०—मया त्वं गद्यसे।

५. वे सब मुझे कहते हैं। कर्तृ०—ते मां गदन्ति। कर्म०—तैः अहं गद्ये।

६. तुम सब हमको कहते हो। कर्तृ०—यूयम् अस्मान् गदथ।
कर्म०—युष्माभिः वयं गद्यामहे।

लिट्

७. विश्वामित्र ने दशरथ को कहा। कर्तृ०—विश्वामित्रः दशरथं जगाद।
कर्म०—विश्वामित्रेण दशरथः जगदे।

८. भरत ने राम लक्ष्मण से कहा। कर्तृ०—भरतः रामलक्ष्मणौ [२.२] जगाद।
कर्म०—भरतेन रामलक्ष्मणौ [१.२] जगदाते।

९. अगस्त्य ने शिष्यों से कहा। कर्तृ०—अगस्त्यः शिष्यान् जगाद।
कर्म०—अगस्त्येन शिष्याः जगदिरे।

१०. कैकेयी ने राम, सीता और लक्ष्मण को कटुवचन कहे।
कर्तृ०—कैकेयी रामसीतालक्ष्मणान् कटुवचनानि [२.३] जगाद।
कर्म०—कैकेय्या रामसीतालक्ष्मणाः कटुवचनानि [२.३] जगदिरे।

यहाँ गद धातु द्विकर्मक हो गई है। राम, सीता और लक्ष्मण ये एक कर्म है और कटुवचन दूसरा कर्म। राम, सीता, लक्ष्मण रूपी कर्म में प्रथमा हो जायेगी, किन्तु कटुवचन में प्रथमा नहीं होगी। नियम आगे बताऊँगा।

लृट्

११. वे मुझे आज कहेंगे। कर्तृ०—ते माम् अद्य गदिष्यन्ति।
कर्म०—तैः अहम् अद्य गदिष्ये।

१२. मैं उनको कहूंगा । कर्तृ०—अहं तान् गदिष्यामि [गदितास्मि] ।
कर्म०—मया ते गदिष्यन्ते [गदितारः] ।

लोट्, लिङ्

१३. मैं तुम सबको क्या कहूं ? कर्तृ०—अहं युष्मान् किं गदानि [गदेयम्] ?
कर्म०—मया यूयं किं गद्यध्व [गद्येध्वम्] ?

१४. आप सब मुझे कहें । कर्तृ० – भवन्तः मां गदन्तु [गदेयुः] ।
कर्म०—भवद्भिः अहं गद्यै [गद्येय] ।

१५. वे तुम्हें ये वचन कहें ।
कर्तृ०—ते त्वाम् इमानि वचनानि [२.३] गदन्तु [गदेयुः] ।
कर्म०—तैः त्वम् इमानि वचनानि [२.३] गद्यस्व [गद्येथाः] ।

१६. मैं उन सब मूर्खों को क्या कहूं ?
कर्तृ०—अहं तान् मूर्खान् किं गदानि [गदेयम्] ?
कर्म०—मया ते मूर्खाः किं गद्यन्ताम् [गद्येरन्] ?

लङ्, लुङ्

१७. मैंने उससे कहा, तू ये सब पत्र कब लिखेगा ?
कर्तृ०—अहं तम् अगदिषम् [अगादिषम्, अगदं] त्वम् इमानि समानि पत्राणि [२.३] कदा लेखिष्यसि [लेखितासि] ?
कर्म०—मया सः अगादि [अगद्यत] त्वया इमानि समानि पत्राणि (१.३) कदा लेखिष्यन्ते [लेखितारः] ?

१८. उसने मुझे कल कहा था, मैं ये पत्र कल लिखूंगा ?
कर्तृ० – सः मां ह्यः अगदत् अहम् एतानि पत्राणि श्वः लेखितास्मि ?
कर्म०—तेन अहं ह्यः अगद्ये, मया एतानि पत्राणि श्वः लेखितारः ?

१९. तूने मुझे आज वहां जाने के लिए कहा था, तू समय पर क्यों नहीं आया ?
कर्तृ०—त्वं माम् अद्य तत्र गन्तुम् अगादीः (अगदीः) त्वं समये कथं न आयासीः ?
कर्म०—त्वया अहम् अद्य तत्र गन्तुम् अगदिषि, त्वया समये कथं न आयायि ?

२०. मैंने तुझे आज कहा था कि आज बाग में जायेंगे ।
कर्तृ०—अहं त्वाम् अद्य अगदिषम् (अगादिषम्) यद् अद्य उद्यानं गमिष्यामः ।
कर्म०—मया त्वम् अद्य अगदिष्ठाः यद् अद्य अस्माभिः उद्यानं गंस्यते[1] ।

---

१. गम् धातु के लृट्, लृङ्, आदि में परस्मैपद में ही (गमेरिट् परस्मैपदेषु) इट् आगम होता है आत्मनेपद में नहीं, अतः 'गंस्यते' 'अगंस्यत' आदि प्रयोग ही आत्मनेपद में साधु हैं ।

२१. उन सबने हम सबसे कहा, क्या हम घर जावें ?

कर्तृ०—ते अस्मान् अगादिषुः (अगदिषुः, अगदन्) किं वयं गृहं गच्छेम ?

कर्म०—तैः वयम् अगादिष्महि(अगद्यामहि), किम् अस्माभिः गृहं गम्यतां (गम्येत)?

२२. यदि आप सब मुझे जाने के लिए कहते, मैं आपके साथ चलता ।

कर्तृ०—यदि भवन्तः मां गन्तुम् अगदिष्यन्, तर्हि अहं भवद्भिः सह अगमिष्यम् ।

कर्म०—यदि भवद्भिः अहं गन्तुम् अगदिष्ये तर्हि मया भवद्भिः सह अगंस्यत[1] ।

ऊपर के इन वाक्यों में कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन दिखाया गया है, जहां कि कर्म के पुरुष वचन के अनुसार क्रिया में भी पुरुष वचन बदल जाता है। अब कुछ वाक्य भाववाच्य में परिवर्त्तन करके दिखलाते हैं। भाववाच्य में भी कर्ता तृतीयान्त होगा। भाववाच्य में कर्म कोई होता ही नहीं, अतः कर्तृवाच्य की जो क्रिया जिस लकार की है उसी लकार के यक्सहित आत्मनेपद के प्रथम पुरुष के एक वचन का रूप भाववाच्य में लगा लीजिये, चाहे कर्ता (=तृतीयान्त कर्ता) किसी पुरुष का हो और चाहे वह एकवचन हो, द्विवचन हो अथवा बहुवचन हो।

१. आप कहां ठहरते हैं ?

कर्तृ०—भवन्तः क्व तिष्ठन्ति ? भाव०—भवद्भिः क्व स्थीयते ?

२. हम यहीं ठहरते हैं ?

कर्तृ०—वयम् अत्रैव तिष्ठामः। भाव०—अस्माभिः अत्रैव स्थीयते ?

३. घर जाते हुए हम सब आपके घर ठहरेंगे।

कर्तृ०—गृहं गच्छन्तः वयं भवतां गृहे स्थास्यामः (स्थातास्मः)

भाव०—गृहं गच्छद्भिः अस्माभिः भवतां गृहे स्थास्यते (स्थायिष्यते, स्थाता, स्थायिता)

४. आप कुछ दिन मेरे घर रहिये।

कर्तृ०—भवन्तः कानिचिद् दिनानि मम गृहे वसन्तु (वसेयुः)।

भाव०—भवद्भिः कानिचिद् दिनानि मम गृहे उष्यताम्[2] (उष्येत)।

५. आप सब कहा रहते हैं ? कर्तृ०—भवन्तः कुत्र वसन्ति ?

भाव०—भवद्भिः कुत्र उष्यते[1] ?

६. हरिद्वार जाती हुई आपकी सास, दिल्ली मेरे बहनोई के घर ठहरी थी।

---

१. पृष्ठ ३३१ की टिप्पणी देखो।

२. वचिस्वपियजादीनां किति (अष्टा. ६.१.१५) से सम्प्रसारण।

कर्तृ०—हरिद्वारं गच्छन्ती भवतां श्वश्रूः इन्द्रप्रस्थे मम आवुत्तस्य गेहे अतिष्ठत् (अस्थात्)

भाव०—हरिद्वारं गच्छन्त्या भवतां श्वश्र्वा इन्द्रप्रस्थे मम आवुत्तस्य गेहे अस्थीयत (अस्थायि)

७. यूरोप जाते हुए मेरे दो मित्र बम्बई में मेरे पास ठहरे थे।

कर्तृ०—हरिवर्षं गच्छन्ती मम मित्रे मुम्बापुर्यां मम पार्श्वे अतिष्ठताम् (अस्थाताम्)

भाव०—हरिवर्षं गच्छद्भ्यां मम मित्राभ्यां मुम्बापुर्यां मम पार्श्वे अस्थीयत (अस्थायि)

८. मैं कहां सोऊँ ?

कर्तृ०—अहं कुत्र शयै (शयीय) ? भाव०—मया कुत्र शय्यताम् (शय्येत) ?

९. तू यहां सो जा ?

कर्तृ०—त्वम् अत्र स्वपिहि (स्वप्याः)। भाव०—त्वया अत्र सुप्यताम् (सुप्येत)।

१०. आप लोग कहाँ होंगे ?

कर्तृ०—भवन्तः कुत्र भविष्यन्ति (भवितारः) ?

भाव०—भवद्भिः कुत्र भविष्यते (भाविष्यते; भविता, भाविता) ?

११. मैं आज यहां नहीं था ?

कर्तृ०—अहम् अद्य अत्र न अभूवम्। भाव०—मया अद्य अत्र न अभावि।

१२. वे दो लड़कियाँ विद्यालय में नहीं थीं।

कर्तृ०—ते बाले विद्यालये न आस्ताम् (अभूताम्)।

भाव०—ताभ्यां बालाभ्यां विद्यालये न अभूयत (अभावि)।

अब मैं मिले जुले वाक्यों के द्वारा कर्मवाच्य और भाववाच्य का अभ्यास करवाता हूं।

१. हिमालय से गंगा निकलती है ?

कर्तृ०—हिमवतः गङ्गा प्रभवति। भाव०—हिमवतः गङ्गया प्रभूयते।

२. किसने तुम्हें हराया है ?

कर्तृ०—कः त्वां पराभूत् ? (पराभवत्, अभ्यभूत्, अभ्यभवत्)

कर्म०—केन त्वं पराभविष्ठाः (पराभाविष्ठाः, पराभूयथाः, अभ्यभविष्ठाः अभ्यभाविष्ठाः, अभ्यभूयथाः)

३. वृक्ष उगते हैं ?

कर्तृ०—वृक्षाः उद्भवन्ति। भाव०—वृक्षैः उद्भूयते।

४. यह अचानक प्रकट हो गया ?

कर्तृ०—एष: अकस्मात् प्रादुरभवत् (प्रादुरभूत्)

भाव०—एतेन अकस्मात् प्रादुरभूयत, (प्रादुरभावि) ।

५. बनारस में रहते हुए मैंने बहुत से कष्ट भोगे ।

कर्तृ०—वाराणस्यां वसन् अहं बहूनि कष्टानि अन्वभवम् (अन्वभूवम्)

कर्म०—वाराणस्यां वसता मया बहूनि कष्टानि अन्वभूयन्त (अन्वभविषत, अन्वभाविजत)

गम्लृ गतौ

१. मैं कल आऊंगा । कर्तृ०—अहं श्वः आगन्तास्मि । कर्म०—मया श्वः आगन्ता ।

२. आज जाऊँगा, परसों वापिस आऊँगा ।

कर्तृ० – अद्य गमिष्यामि, परश्वः प्रत्यागन्तास्मि ।

कर्म० – अद्य गंस्यते, परश्वः मया प्रत्यागन्ता ।

३. कहाँ रहकर तूने विद्या प्राप्त की ?

कर्तृ० —क्व उषित्वा त्वं विद्याम् अध्यगच्छः (अध्यगमः) ?

कर्म०—क्व उषित्वा त्वया विद्या अध्यगम्यत (अध्यगामि) ?

४. वह मेरे पास आया = कर्तृ०—सः माम् उपागच्छत् (उपागमत्) ।

कर्म०—तेन अहम् उपागम्ये (उपागंसि) ।

५. मैंने आपको नहीं जाना = कर्तृ०—अहं भवन्तं न अवागच्छम् (अवागमम्) ।

भाव०—मया भवान् न अवागम्यत (अवागामि) ।

६. आज मेरे मित्र मुझसे मिले, उनसे मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ ।

कर्तृ०—अद्य मम मित्राणि मां समागमन्, तानि संगत्य अहं सुतराम् अमोदिषि ।

कर्म०—अद्य मम मित्रैः अहं समगंसि, तानि संगत्य मया सुतराम् अमोदि ।

७. उनके पास मत जा = कर्तृ०—त्वं तान् मा अभि गमः (मा स्म अभि गच्छः) ।

कर्म० —त्वया ते मा अभि गसत (मा स्म अभि गम्यन्त) ।

८. उनकी बात मत स्वीकार करना ।

कर्तृ०—तेषां वार्तां मा अभ्युपगमः (मा स्म अभ्युपगच्छः) ।

कर्म०—तेषां वार्ता मा अभ्युपगामि (मा स्म अभ्युपगम्यत) ।

९. मनुष्य के किये कार्य सदा उसके साथ चलते हैं, एक क्षण भी उसे नहीं छोड़ते ।

कर्तृ०—मनुष्यकृतानि स्वकर्माणि सततं तम् अनुगच्छन्ति, न पलम् अपि वियुञ्जते ।

कर्म०—मनुष्यकृतैः स्वकर्मभिः सः सततम् अनुगम्यते, न पलम् अपि वियुज्यते ।

१०. वह सुख से मेरे घर से निकल गया।

कर्तृ०—सः सुखेन मम गृहात् निरगच्छत् (निरगमत्)।

भाव०—तेन सुखेन मम गृहात् निरगम्यत (निरगामि)।

११. मैं हैदराबाद से आने वाले अपने मित्रों का अभिनन्दन करने के लिए आज उनकी अगवानी करूँगा।

कर्तृ०—अहं भाग्यनगरात् आगमिष्यन्ति स्वमित्राणि सम्भावयितुम् अद्य तानि (२.३) प्रत्युद्गमिष्यामि।

कर्म०—मया भाग्यनगरात् आगमिष्यन्ति स्वमित्राणि सम्भावयितुं अद्य तानि (१.३) प्रत्युद्गंस्यन्ते।

१२. तू मेरे स्थान से दूर हट जा=कर्तृ०—त्वं मत्स्थानात् अपगच्छ (अपगच्छेः)।

भाव०—त्वया मत्स्थानात् अपगम्यताम् (अपगम्येत)।

गै शब्दे। [वि+गै, अव+गै=निन्दा करना]

१. वह सबकी निन्दा करता है=कर्तृ०—सः सर्वान् विगायति (अवगायति)।

कर्म०—तेन सर्वे विगीयन्ते (अवगीयन्ते)।

२. गुणियों की भी निन्दा करने वाले पुरुष का कोई आदर नहीं करता।

कर्तृ०—गुणिनाम् अपि (गुणिनः अपि) विगातारम् (अवगातारं) न कोऽपि आद्रियते।

कर्म०—गुणिनाम् (गुणिनः) विगाता (अवगाता) न केनापि आद्रियते।

श्रु श्रवणे [प्रति+श्रु, आ श्रु,=प्रतिज्ञा करना]

१. उसने गुरुकुल के लिये पांच सौ रुपये देने की प्रतिज्ञा की।

कर्तृ०—सः गुरुकुलाय पञ्चशतानि रूप्यकाणि दातुं प्रत्यश्रौषीत् (प्रत्यशृणोत्, आश्रौषीत्, आशृणोत्)।

कर्म०—तेन गुरुकुलाय पञ्चशतानि रूप्यकाणि दातुं प्रत्यश्रविषत (प्रत्यश्राविषत, प्रत्यश्रूयन्त, आश्रविषत, आश्राविषत, आश्रूयन्त)।

(ष्ठा स्था)

१. मेरे कार्य कर=कर्तृ०—मम कार्याणि अनुतिष्ठ (अनुतिष्ठेः)।

कर्म०—मम कार्याणि अनुष्ठीयन्ताम् (अनुष्ठीयेरन्)।

२. इस बहुमूल्य आसन से उठ।

कर्तृ०—अस्मात् महार्घात् आसनाद् उत्तिष्ठ (उत्तिष्ठेः)

कर्म०—अस्मात् महार्घात् आसनात् उत्थीयताम् (उत्थीयेत)

३. उसने विद्या में बड़ी उन्नति की है।

कर्तृ०—सः विद्यायां भृशम् उदतिष्ठत (उदस्थित)।

भाव०—तेन विद्यायां भृशम् उदस्थीयत (उदस्थायि)।

४. विद्या में उन्नति करते हुए शिष्यों को देख कर कौन गुरु प्रसन्न नहीं होता ?

कर्तृ०—विद्यायाम् उत्तिष्ठमानान् शिष्यान् निर्वर्ण्य कः गुरुः न प्रसीदति ?

भाव०—विद्यायाम् उत्तिष्ठमानान् शिष्यान् निर्वर्ण्य केन गुरुणा न प्रसद्यते।

५. क्या यह मार्ग मथुरा आयेगा ?=कर्तृ०—अपि एषः मार्गः मथुराम् उपस्थास्यते ?

कर्म०—अपि एतेन मार्गेण मथुरा—उपस्थास्यते (उपस्थायिष्यते)।

६. वह मेरे पास मैत्री के लिए आया। कर्तृ०—सः मैत्र्यर्थं माम् उपास्थित (उपातिष्ठत)

कर्म०—तेन अहं मैत्र्यर्थम् उपास्थिषि (उपास्थायिषि, उपास्थीये)

७. उसने मेरे रहने के लिए अपने घर में व्यवस्था की।

कर्तृ०— सः मम निवासाय निजगेहे व्यवास्थापयत् (व्यवातिष्ठिपत्)।

भाव०—तेन मम निवासाय निजगेहे व्यवास्थाप्यत (व्यवास्थापि)।

८. वह मेरा मुकाबला करेगा=कर्तृ०—सः माम् प्रत्यवस्थास्यते (प्रत्यवस्थाता)

कर्म०—तेन अहं प्रत्यवस्थास्ये (प्रत्यवस्थायिष्ये, प्रत्यवस्थाताहे, प्रत्यवस्थायिताहे)।

९. वह उसी समय चल पड़ा=कर्तृ० —सः तदानीमेव प्रातिष्ठत (प्रास्थित)।

भाव०—तेन तदानीमेव प्रास्थीयत (प्रास्थायि)।

युज्

१. मैंने उद्योग किया ?

कर्तृ०—अहम् उदयुनजम् (उदयुञ्जि, उदयुजम्, उदयौक्षम्)

भाव०—मया उदयुज्यत (उदयोजि)।

२. मैं तुम्हें कल अध्यापक रखूंगा।

कर्तृ०—अहं त्वां श्वः अध्यापकपदे नियोक्तास्मि (नियोक्ताहे)।

कर्म०—मया त्वं श्वः अध्यापकपदे नियोक्तासे।

३. क्या मैं इन वाक्यों का प्रयोग करूँ ?

कर्तृ०—किम् अहम् एतानि वाक्यानि प्रयुनजानि (प्रयुञ्जै, प्रयुञ्जीय, प्रयुञ्ज्याम्)।

कर्म०—किम् मया एतानि वाक्यानि प्रयुज्यन्ताम् (प्रयुज्येरन्) ?

४. मेरे मित्रों का मुझसे वियोग हुए एक वर्ष हो गया।

कर्तृ०—मम मित्राणि मां वर्षेण व्ययुञ्जन् (व्ययुञ्जत, व्ययौक्षुः, व्ययुजन्, व्ययुक्षत)।

कर्म०—मम मित्रैः अहं वर्षेण व्ययुज्ये (व्ययुक्षि)।

अथवा

कर्तृ०—मत्तः वियुञ्जानानां (वियुञ्जतां) मित्राणां वर्षम् एकं समजनि (समजनिष्ट)।

कर्म०—" " " " वर्षेण एकेन समजनि।

५. तुम मुझ से कभी जुदा मत होना।

कर्तृ०—त्वं मां कदापि मा वियौक्षीः (वियुजः, वियुक्थाः, मा स्म वियुञ्जथाः)।

कर्म०—त्वया अहं कदापि मा वियुक्षि (मा स्म वियुज्ये)।

६. तू मुझे पूछ, मैं उत्तर दूंगा।

कर्तृ०—त्वं मां पर्यनुयुङ्क्ष्व (पर्यनुयुञ्जीथाः) अहं प्रतिवक्ष्यामि (प्रतिवक्तास्मि)।

कर्म०—त्वया अहं पर्यनुयुज्यै (पर्यनुयुज्येय) मया प्रतिवक्ष्यते (प्रतिवक्ता)।

७. थोड़े से विवाद पर आपस में मुकदमा करते हुए भारतीयों को देखकर बहुत दुःख होता है ?

कर्तृ०—अल्पीयसि विवादे अपि परस्परम् अभियुञ्जानान् (अभियुञ्जतः) भारतीयान् दर्शं दर्शं भृशं दोदूये।

कर्म०—" " " भृशं दोदूयते मया।

८. क्या मैं तेरे वस्त्रों का उपयोग कर लूं ?

कर्तृ०—अपि तव वस्त्राणि उपयुनजानि (उपयुञ्जै, उपयुञ्ज्याम्, उपयुञ्जीय)

कर्म०—अपि तव वस्त्राणि मया उपयुज्यन्ताम् (उपयुज्येरन्) ?

धा

१. आजकल एक दूसरे को ठगने के लिए मित्र बनते हैं।

कर्तृ०—अद्यत्वे अन्योन्यस्य अतिसन्धित्सया मित्रायन्ते जनाः।

कर्म०—" " " मित्राय्यते जनैः।

२. तू ये कार्य कर ?

कर्तृ०—त्वम् एतानि कार्याणि विधत्स्व (विधेहि; विदध्याः, विदधीथाः)।

कर्म०—त्वया एतानि कार्याणि विधीयन्ताम् (विधीयेरन्)।

३. मुझे तूने क्या कहा ?

कर्तृ०—मां त्वं किम् अभ्यदधाः (अभ्यधत्थाः, अभ्यधाः, अभ्यधिथाः) ?

कर्म०—अहं त्वया किम् अभ्यधीये (अभ्यधिषि, अभ्यधायिषि) ?

४. मैं तुझे कहूंगा।

कर्तृ०—अहं त्वाम् अभिधास्यामि (अभिधास्ये; अभिधातास्मि, अभिधाताहे)

कर्म०—मया त्वम् अभिधास्यसे (अभिधायिष्यसे; अभिधातासे, अभिधायितासे)

५. राम ने सीता से कहा ।
कर्तृ०—रामः सीताम् अभिदधौ (अभिदधे) ।
कर्म०—रामेण सीता अभिदधे ।

६. मैं इनके साथ सन्धि करूँगा ?
कर्तृ०—अहम् एतैः सह सन्धास्यामि (सन्धास्ये; सन्धातास्मि, सन्धाताहे) ।
कर्म०—मया एतैः सह सन्धास्यते (सन्धायिष्यते; सन्धाता, सन्धायिता) ।

७. बहुत वर्षों से अनुसंधान करते हुए हमारे वैज्ञानिकों के कार्य अब सिद्ध हो गये हैं ।
कर्तृ०—बहुभिः वर्षैः अनुसन्दधानानाम् (अनुसन्दधताम्) अस्मद् विज्ञानविदां कार्याणि इदानीं साफल्यम् अधिगतवन्ति (अध्यगमन्) ।
कर्म०—" " " विज्ञानविदां कार्यैः इदानीं साफल्यम् अधिगतम् (अध्यगामि) ।

८. इन वस्तुओं को यहाँ रख दे ।
कर्तृ०—इमानि वस्तूनि (२.३) अत्र निधत्स्व (निधेहि; निदध्याः, निदधीथाः) ।
कर्म०—इमानि वस्तूनि (१.१) अत्र निधीयन्तां (निधीयेरन्) ।

९. तू मेरे कहने पर ध्यान क्यों नहीं देता ?
कर्तृ०—त्वं कथं न मम वाक्येषु अवदधासि (अवधत्से) ?
भाव०—त्वया मम वाक्येषु कथं न अवधीयते ?

१०. मैं आपको पूछता हूं, इन सिर पर आती हुई विपत्तियों का क्या इलाज करूँ ?
कर्तृ०—अहं भवन्तं पृच्छामि कथम् एताः शिरसि आपतन्तीः विपदः प्रतिविदध्यां (प्रतिविदधानि, प्रतिविदधै, प्रतिविदधीय) ?
कर्म०—मया भवान् पृच्छयते एताः शिरसि आपतन्त्यः विपदः कथं प्रतिविधीयेरन् (प्रतिविधीयन्ताम्) ।

११. इन शङ्का के कीचड़ से कलङ्कितों का समाधान कैसे करूँ ?
कर्तृ०—कथम् एतान् शङ्कापङ्ककलङ्कितान् समादध्यां (समादधीय; समादधै, समादधानि) ?
कर्म०—कथम् एते शङ्कापङ्ककलङ्किताः मया समाधीयेरन् (समाधीयन्ताम्)?

रुह्

१. वह वृक्षों पर चढ़ा ?
कर्तृ०—सः वृक्षान् अध्यरुक्षत् (अध्यरोहत्) ।
कर्म०—तेन वृक्षाः अध्यरुक्षन्त (अध्यरुह्यन्त) ।

२. वृक्ष से उतर ?
कर्तृ०—वृक्षात् अवरोह (अवरोहेः) कर्म०—वृक्षात् अवरुह्यताम् (अवरुह्येत)

३. ये तेरे मर्मघाती वाक्यों के घाव कभी नहीं भरेंगे।
कर्तृ०—एते तव अरुन्तुदैः वाक्यैः विहिताः व्रणाः न जातुचित् प्ररोक्ष्यन्ति (प्ररोढारः)।
कर्म०—एतैः तव अरुन्तुदैः वाक्यैः विहितैः व्रणैः न जातुचित् प्ररोक्ष्यते (प्ररोढा)।

हृञ्

१. आज वह उद्यान में बहुत घूमा।
कर्तृ०—अद्य सः उद्यानं बहु व्यहार्षीत् (व्यहृत)।
कर्म० अद्य तेन उद्यानं बहु व्यहारि।

२. तूने मुझे क्या कहा। कर्तृ०—त्वं मां किं व्याहार्षीः, (व्याहरः, व्याहृथाः)?
कर्म०—त्वया अहं किं व्याहृषि (व्याहारिषि, व्याह्रिये)।

३. आप लड्डू खायें
कर्तृ०—भवन्तः मोदकान् अभ्यवहरन्तु (अभ्यवहरन्ताम्, अभ्यवहरेयुः, अभ्यवहरेरन्)।
कर्म०—भवद्भिः मोदकाः अभ्यवह्रियन्ताम् (अभ्यवह्रियेरन्)।

४. पुस्तकें ला। कर्तृ०—पुस्तकानि आहर (आहरेः, आहरस्व, आहरेथाः)।
कर्म०—पुस्तकानि आह्रियन्ताम् (आह्रियेरन्)।

५. तू मुझे क्या भेट देगा?
कर्तृ०—त्वं मह्यं किम् उपहरिष्यसि (उपहरिष्यसे; उपहर्तासि, उपहर्तासे)।
कर्म०—त्वया मह्यं किम् उपहरिष्यते (उपहारिष्यते, उपहर्ता, उपहारिता)।

६. मैं उदाहरण दूंगा।
कर्तृ०—अहम् उदाहरिष्यामि (उदाहर्तास्मि, उदाहर्ताहे)।
कर्म०—मया उदाहरिष्यते (उदाहारिष्यते; उदाहर्ता, उदाहारिता)।

७. मित्र के अतिरिक्त अन्य कौन मुझे इस दुःखसागर से निकालेगा?
कर्तृ०—कः मां मित्रादन्यः अस्माद् दुःखसागराद् उद्धरेत् (उद्धरतु)?
कर्म० केन अहं मित्रादन्येन अस्माद् दुःखसागराद् (उद्ध्रियै) (उद्ध्रियेय)?

८. ये बच्चे अपने पिता पर गये हैं।
कर्तृ०—एते बालाः पितरम् अनुहरन्ते।
कर्म०—एतैः बालैः पिता अनुह्रियते।

९. गरीबों पर चोट मत करो।
कर्तृ०—दीनान् मा प्रहार्षीः (प्रहृथाः; मा स्म प्रहरः, मा स्म प्रहरथाः)।
कर्म०—दीनाः मा प्रहारिषत; (प्रहृषत; मा स्म प्रह्रियन्त)।

१०. चञ्चलता छोड़ दे ।

कर्तृ०—चाञ्चल्यं परिहर (परिहरेः, परिहरस्व, परिहरेथाः) ।

कर्म०—चाञ्चल्यं परिह्रियतां (परिह्रियेत) ।

११. ऊपर से ले ले (अध्याहार कर ले) ।

कर्तृ०—उपरिष्टात् अध्याहर (अध्याहरेः, अध्याहरस्व, अध्याहरेथाः) ।

कर्म०—उपरिष्टात् अध्याह्रियताम् (अध्याह्रियेत) ।

१२. परमेश्वर सृष्टि का संहार करता है । कर्तृ०—परमेश्वरः सृष्टिं संहरति ।

कर्म०—परमेश्वरेण सृष्टिः संह्रियते ।

१३. कर्तृ०—श्लोक—अरावप्युचितं कार्यम् आतिथ्यं गृहमागते ।

छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ।।

—घर पर आये हुए शत्रु का भी अतिथि-सत्कार करना चाहिए ।

[वृक्ष के आचरण को देखो] वृक्ष को जब कोई काटने के लिए उसके पास जाता है, तब वह वृक्ष उस पर से भी अपनी छाया नहीं हटाता ।

कर्म०—............। छेत्तुः पार्श्वगता छाया नोपसंह्रियते द्रुमेण ।

१४. किसी के धन को मत चुरा ।

कर्तृ०—मा कस्य अपि धनम् अपहार्षीः (अपहृथाः) मा स्म अपहरः (मा स्म अपहरथाः) ।

कर्म०—मा कस्य अपि धनम् अपहारि त्वया (मा स्म अपह्रियत त्वया) ।

णीञ्

१. आज गुरु ने सब ब्रह्मचारियों को यज्ञोपवीत दिया ।

कर्तृ०—अद्य गुरुः सर्वान् ब्रह्मचारिणः उपानैषीत् (उपानेष्ट) ।

कर्म०—अद्य गुरुणा सर्वे ब्रह्मचारिणः उपानायिषत (उपानेषत) ।

२. मैं इस विवाद का कल निर्णय करूंगा ।

कर्तृ०—अहम् इमं विवादं श्वः निर्णेतास्मि (निर्णेताहे) ।

कर्म०—मया अयं विवादः श्वः निर्णेता (निर्णायिता) ।

३. आज सब छात्र शाम को अभिमन्यु का नाटक करेंगे ।

कर्तृ०—अद्य सर्वे छात्राः सायम् अभिमन्युम् अभिनेष्यन्ति (अभिनेष्यन्ते) ।

कर्म०—अद्य सर्वैः छात्रैः सायम् अभिमन्युः अभिनेष्यते (अभिनायिष्यते) ।

४. मेरे मित्रों ने रोटी बनाने के लिए बुढ़िया को मना लिया ।

कर्तृ०—मम मित्राणि भोजनं पक्तुं वृद्धाम् अन्वनैषुः (अन्वनेषत; अन्वनयन्; अन्वनयन्त) ।

कर्म०—मम मित्रैः भोजनं पक्तुं वृद्धा अन्वनायि (अन्वनीयत)।

५. बहुत अधिक विनय करते हुए मेरे मित्रों से मैंने कहा—बहुत अधिक विनय की आवश्यकता नहीं है।

कर्तृ०—अत्यर्थं विनयन्ति (विनयमानानि) स्वमित्राणि (२.३) अहम् अवादिषम् (अवदम्) अलम् अतिविनयेन।

कर्म०—अत्यर्थं विनयन्ति (विनयमानानि) स्वमित्राणि (१.३) मया अवदिषत (औद्यन्त) अलम् अतिविनयेन।

६. सब पुस्तकें यहां ले आओ।

कर्तृ०—सर्वाणि पुस्तकानि (२.३) अत्र आनयत (आनयध्वम्), आनयेत; आनयेध्वम्।

कर्म०—सर्वाणि पुस्तकानि अत्र (१.३) आनीयन्ताम् (आनीयेरन्)।

७. वह एक सुरूपवती कन्या से विवाह करेगा।

कर्तृ०—सः एकां सुरूपां कन्यां परिणेष्यति (परिणेष्यते, परिणेता)।

कर्म०—तेन एका सुरूपा कन्या परिणेष्यते (परिणायिष्यते, परिणेता, परिणायिता)।

८. मैं एक अनुवाद-पुस्तक लिखूंगा।

कर्तृ०—अहम् एकम् अनुवादपुस्तकं प्रणेष्यामि (प्रणेष्ये; प्रणेतास्मि, प्रणेताहे)।

कर्म०—मया एकम् अनुवादपुस्तकं प्रणेष्यते (प्रणायिष्यते; प्रणेता, प्रणायिता)।

९. इन दुष्टों को दूर हटा। कर्तृ०—अपनय (अपनयेः) इमान् सर्वान् दुष्टान्।

कर्म०—अपनीयन्ताम् (अपनीयेरन्) इमे सर्वे दुष्टाः।

चिञ्

१. मैंने कल यह कार्य करने का निश्चय किया था।

कर्तृ०—अहं ह्यः एतत् कार्यं विधातुं निरचिन्वि (निरचिनवम्)।

कर्म०—मया ह्यः एतत् कार्यं विधातुं (निरचीयत)।

२. क्या आज आपने मेरे साथ जाने का निश्चय कर लिया ?

कर्तृ०—अपि अद्य भवान् मया सह गन्तुं निरचैषीत् (निरचेष्ट)।

कर्म०—अपि अद्य भवता मया सह गन्तुं निरचायि।

३. मैं निश्चय करूंगा।

कर्तृ०—अहं निश्चेष्यामि (निश्चेष्ये; निश्चेतास्मि, निश्चेताहे)।

कर्म०—मया निश्चेष्यते (निश्चायिष्यते; निश्चेता, निश्चायिता)।

४. क्या तूने मुझे पहिचाना ?

कर्तृ०—अपि त्वं मां पर्यचैषीः (पर्यचेष्ठाः; पर्यचिनोः, पर्यचिनुथाः)।
कर्म०—अपि त्वया अहं पर्यचायिषि (पर्यचेषि, पर्यचीये)।

५. मुझे पहिचान। कर्तृ०—माम् परिचिनुष्व (परिचिनु; परिचिनुयाः, परिचिन्वीथाः)।
कर्म०—अहं त्वया परिचीयै (परिचीयेय)।

६. मैं तेरे घर की तलाशी लूंगा।
कर्तृ०—अहं तव गृहं विचेष्यामि (विचेष्ये; विचेतास्मि, विचेताहे)।
कर्म०—मया तव गृहं विचेष्यते (विचायिष्यते; विचेता, विचायिता)।

७. कुछ लोग राष्ट्र की चिन्ता छोड़कर रातदिन धन ही इकट्ठा करते हैं।
कर्तृ०—केचित् जनाः राष्ट्रचिन्ताम् अपहाय अहर्निशं वित्तं संचिन्वन्ति।
कर्म०—कैश्चित् जनैः राष्ट्रचिन्ताम् अपहाय अहर्निशं वित्तं संचीयते।

८. इन साधुओं की तलाशी मत लेना।
कर्तृ०—एतान् साधून् मा विचैषीः (विचेष्ठाः; मा स्म विचिनोः, मा स्म विचिनुथाः)।
कर्म०—त्वया एते साधवः मा विचेषत (विचायिषत, मा स्म विचीयन्त)।

डुकृञ्

१. मेरे मित्रों ने मुझ पर उपकार किया।
कर्तृ०—मम मित्राणि माम् उपाकार्षुः (उपाकृषत; उपाकुर्वन्, उपाकुर्वत)।
कर्म०—मम मित्रैः अहम् उपाकारिषि, (उपाकृषि, उपाक्रिये)।

२. ये दुष्ट सबका अपकार करते हैं और करेंगे।
कर्तृ०—एते दुष्टाः सदा सर्वान् अपकुर्वते अपकरिष्यन्ति च।
कर्म०—एतैः दुष्टैः सदा सर्वे अपक्रियन्ते अपकरिष्यन्ते (अपकारिष्यन्ते) च।

३. सिर पर आयी आपत्तियों का निराकरण कर।
कर्तृ०—शिरसि आपतन्तीः आपदः (२.३) निराकुरु (निराकुरुष्व, निराकुर्याः; निराकुर्वीथाः)।
कर्म०—शिरसि आपतन्त्यः आपदः (१.३) निराक्रियन्ताम् (निराक्रियेरन्)।

४. सज्जनों का अनुकरण कर दुष्टों का नहीं।
कर्तृ०—सज्जनान् अनुकुरु (अनुकुरुष्व; अनुकुर्याः, अनुकुर्वीथाः) दुष्टान् मा अनुकार्षीः (मा अनुकृथाः, मा स्म अनुकरोः, मा स्म अनुकुरुथाः)।
कर्म०—सज्जनाः अनुक्रियन्ताम् (अनुक्रियेरन्) दुष्टाः मा अनुकृषत (मा अनुकारिषत; मा स्म अनुक्रियन्त)।

५. दीपमालिका के उत्सव पर सभी अपने घरों को सजाते हैं।

कर्तृ०—दीपमालिकायाः उत्सवे सर्वे स्वगृहाणि संस्कुर्वन्ति (परिष्कुर्वन्ति)।
कर्म० — ,, ,, सर्वैः स्वगृहाणि संस्क्रियन्ते (परिष्क्रियन्ते)।

६. इन सब अतिथियों का सत्कार कर।
कर्तृ०—सर्वान् एतान् अतिथीन् सत्कुरु (सत्कुरुष्व; सत्कुर्याः, सत्कुर्वीथाः)।
कर्म०—सर्वे एते अतिथयः सत्क्रियन्ताम् (सत्क्रियेरन्)।

७. ये दुष्ट परायी सम्पत्ति पर अधिकार करते हैं।
कर्तृ०—एते दुष्टाः परसम्पदम् अधिकुर्वते।
कर्म०—एतैः दुष्टैः परसम्पद् अधिक्रियते।

८. दुर्जन सज्जनों का तिरस्कार करते हैं।
कर्तृ०—दुर्जनाः सज्जनान् न्यक्कुर्वन्ति [धिक्कुर्वन्ति]।
कर्म०—दुर्जनैः सज्जनाः न्यक्क्रियन्ते [धिक्क्रियन्ते]।

९. वे विकृत होते हैं। कर्तृ०—ते विकुर्वते।
कर्म०—तैः विक्रियते।

वृतु

१. आज से लेकर हम इस काम में लग जायेंगे।
कर्तृ०—अद्यप्रभृति वयम् अस्मिन् कर्मणि प्रवर्तिष्यामहे (प्रवर्त्स्यामः; प्रवर्तितास्महे)।
कर्म०—अद्यप्रभृति अस्माभिः अस्मिन् कर्मणि प्रवर्तिष्यते (प्रवर्तिता)।

२. आजकल नेता प्रतिक्षण दल बदलते हैं।
कर्तृ०—अद्यत्वे नेतारः अनुक्षणं पक्षं परिवर्तन्ते।
कर्म०—अद्यत्वे नेतृभिः अनुक्षणं पक्षः परिवृत्यते।

३. आज ही सुरेन्द्र उदयपुर से लौट आया।
कर्तृ०—अद्यैव सुरेन्द्रः उदयपुरात् प्रतिन्यवृतत् (प्रतिन्यवर्तिष्ट)।
कर्म०—अद्यैव सुरेन्द्रेण उदयपुरात् प्रतिन्यवर्ति।

४. वह मेरे सामने आया। कर्तृ०—सः माम् अभ्यवर्तिष्ट (अभ्यवृतत्)।
कर्म०—तेन अहम् अभ्यवर्तिषि।

५. ब्रह्मचारी चौदह वर्ष तक विद्या पढ़कर आ गये।
कर्तृ०—ब्रह्मचारिणः चतुर्दशभिः वर्षैः विद्याम् अधीत्य समावृतन् (समावर्तिषत; समावर्तन्त)।
कर्म०—ब्रह्मचारिभिः चतुर्दशभिः वर्षैः विद्याम् अधीत्य समावर्ति (समावृत्यत)।

६. लड्डू परोस। कर्तृ०—मोदकान् निर्वर्तय (निर्वर्तयस्व)।
कर्म०—त्वया मोदकाः निर्वृत्यन्ताम् (निर्वृत्येरन्)।

७. प्रजा रामचन्द्र के पीछे चली।
कर्तृ०—प्रजाः रामम् अन्ववर्तन्त (अन्ववर्तिषत, अन्ववृतन्, अनुववृतिरे)।
कर्म०—प्रजाभिः रामो अन्ववर्ति (अन्ववृत्यत, अनुववृते)।

पद गतौ

१. सुना जाता है कि अफ्रीका में बहुत से आदमी भूख से मर रहे हैं, बहुत से मर गये हैं और बहुत से मरनेवाले हैं।
कर्तृ०—श्रूयते यद् अफ्रीकादेशे बहवः जनाः बुभुक्षया विपद्यमानाः सन्ति, बहवः व्यपद्यन्त (व्यपत्सत) बहवः च जनाः विपत्स्यमानाः सन्ति।
भाव०—श्रूयते यद् अफ्रीकादेशे बहुभिः जनैः विपद्यमानैः भूयते, बहुभिः व्यपद्यत (व्यपादि) बहुभिः च विपत्स्यमानैः भूयते।

२. प्रतिदिन भारत में बरसात में मेंढकों के समान बहुत से बालक उत्पन्न होते हैं।
कर्तृ०—प्रत्यहं भारते वर्षासु मण्डूकाः इव बालकाः उत्पद्यन्ते (निष्पद्यन्ते)।
भाव०— ,, ,, ,, मण्डूकैः इव बालकैः उत्पद्यते (निष्पद्यते)।

३. आज भी, धन का लालच करते हुए भारतीय अपने हित को छोड़कर राष्ट्रहित को प्राप्त नहीं करते।
कर्तृ०—अद्यापि धनाय स्पृहयन्तः भारतीयाः स्वहितम् उत्सृज्य राष्ट्रहितं न प्रतिपद्यन्ते।
कर्म०—अद्यापि धनाय स्पृहयद्भिः भारतीयैः स्वहितम् उत्सृज्य राष्ट्रहितं न प्रतिपद्यते।

४. यह ठीक ही है कि सरकार लालची व्यापारियों से वस्तुएं छीनकर जनता को बांटती है।
कर्तृ०—उपपद्यते एतत् यत् शासकाः गृध्नुभ्यः वणिग्भ्यः वस्तूनि आच्छिद्य जनतायै वितरन्ति।
कर्म०—उपपद्यते एतेन यत् शासकैः गृध्नुभ्यः वणिग्भ्यः वस्तूनि आच्छिद्य जनतायै वितीर्यन्ते।

५. आपका कहना यहाँ उचित नहीं है। कर्तृ०—न उपपद्यते श्रीमतां कथनम् अत्र।
भाव०—न उपपद्यते श्रीमतां कथनेन अत्र।

६. तेरे तर्क ठीक हैं। कर्तृ०—उपपद्यन्ते ते तर्काः (उपपन्नाः ते तर्काः)।
भाव०—उपपद्यते ते तर्कैः (उपपन्नं ते तर्कैः)।

७. मैंने तुझे वहाँ जाने को कहा था।
कर्तृ०—अहं भवन्तं तत्र गमनाय प्रत्यपीपदम् (प्रत्यपादयम्)।
कर्म०—मया भवान् तत्र गमनाय प्रत्यपादि (प्रत्यपाद्यत)।

८. ये अच्छे कपड़े, अच्छे पुरुषों को देने हैं।
कर्तृ०—गुणवन्ति एतानि वस्त्राणि (२.३) गुणवद्भ्यः पुरुषेभ्यः प्रतिपादय।
कर्म०—गुणवन्ति एतानि वस्त्राणि (१.३) गुणवद्भ्यः पुरुषेभ्यः प्रतिपाद्यन्ताम्।

९. सब अपने पक्ष को ही सिद्ध करते हैं।
कर्तृ०—सर्वे स्वपक्षस्य औचित्यम् एव प्रतिपादयन्ति (उपपादयन्ति, निष्पादयन्ति)।
कर्म०—सर्वैः स्वपक्षस्य औचित्यम् एव प्रतिपाद्यते (उपपाद्यते, निष्पाद्यते)।

१०. धन ज्यादा प्राप्त करने की इच्छा से फैक्ट्री के मालिक पदार्थों का कम उत्पादन करते हैं।
कर्तृ०—धनस्य प्रपित्सया निर्माणीपतयः पदार्थान् अल्पान् उत्पादयन्ति (निष्पादयन्ति)।
कर्म०—धनस्य प्रपित्सया निर्माणीपतिभिः पदार्थाः अल्पाः उत्पाद्यन्ते (निष्पाद्यन्ते)

११. काम जल्दी करो=कर्तृ०—कार्याणि (२.३) सपदि सम्पादय (सम्पादयेः)।
कर्म०—कार्याणि (१.३) सपदि सम्पाद्यन्ताम् (सम्पाद्येरन्)

ज्ञा

१. वृद्धों का तिरस्कार मत कर।
कर्तृ०—वृद्धान् मा अवज्ञासीः (मा स्म अवजानाः)।
कर्म०—वृद्धाः मा अवज्ञायिषत (अवज्ञासत, मा स्म अवज्ञायन्त)।

२. यदि तू पढ़ने की प्रतिज्ञा करे तो मैं तुझे दण्ड न दूं।
कर्तृ०—यदि त्वम् अध्ययनाय प्रतिजानीष्व[1] (प्रतिजानीथाः) तर्हि अहं त्वां न दण्डयानि (दण्डयेयम्)।
कर्म०—यदि त्वया अध्ययनाय प्रतिज्ञायताम् (प्रतिज्ञायेत) तर्हि मया त्वं न दण्ड्यस्व (दण्ड्येथाः)।

३. मैं प्रतिज्ञा करूंगा=कर्तृ०—अहं प्रतिज्ञास्ये[1] (प्रतिज्ञाताहे)
कर्म०—मया प्रतिज्ञास्यते (प्रतिज्ञायिष्यते; प्रतिज्ञाता, प्रतिज्ञायिता)।

४. मैंने उसे घर जाने के लिए अनुमति नहीं दी।

---

१. सम्प्रतिभ्यामनाध्याने (अष्टा० १. ३. ४६) से आत्मनेपद।

कर्तृ०—अहं तं गृहगमनाय न अन्वज्ञासिषम् (अन्वजानम्) ।
कर्म०—मया सः गृहगमनाय न अन्वज्ञायि (अन्वज्ञायत) ।

५. सब नौकरों को मैंने काम करने की आज्ञा दी।
कर्तृ०—सर्वान् भृत्यान् अहं कार्याणि विधातुम् आजिज्ञपम् (आज्ञापयम्) ।
कर्म०—सर्वे भृत्याः मया कार्याणि विधातुम् आज्ञापिषत (आज्ञाप्यन्त) ।

६. मैं आपसे प्रार्थना करूंगा ।
कर्तृ०—अहं भवन्तं विज्ञापयिष्यामि (विज्ञापयितास्मि) ।
कर्म०—मया भवान् विज्ञापयिष्यते (विज्ञापयिता) ।

७. मैंने देर से उसे पहिचाना ।
कर्तृ०—अहं चिरात् तं प्रत्यभिज्ञासिषम् (प्रत्यभिजानाम्) ।
कर्म०—मया सः चिरात् प्रत्यभिज्ञायि (प्रत्यभिज्ञायत) ।

लप्

१. उसने मेरे सौ रुपये मार लिये ।
कर्तृ०—सः मदीयानि शतं रूप्यकाणि अपालापीत् (अपालपत्),
कर्म०—तेन मदीयानि शतं रूप्यकाणि **अपालपिषत** (अपालप्यन्त) ।

लभ्

१. उन्होंने मुझे समय पर रुपये नहीं दिये, इसलिये मैं उन्हें उलाहना दूंगा ।
कर्तृ०—ते मह्यं समये रूप्यकाणि न अदुः, अतः अहं तान् उपालप्स्ये (उपालब्धाहे)[1]
कर्म०—तैः मह्यं समये रूप्यकाणि न अदायिषत (अदिषत, अदीयन्त); अतः
ते मया उपालप्स्यन्ते (उपालब्धारः) ।

२. बहुत से मनुष्य चिकनी चुपड़ी बातों से दूसरों को ठगते हैं ।
कर्तृ०—बहवः जनाः उपात्तरम्यैः वचोभिः परान् विप्रलभन्ते ।
कर्म०—बहुभिः जनैः उपात्तरम्यैः वचोभिः परे विप्रलभ्यन्ते ।

मन्

१. विद्वान् मनुष्यों का तिरस्कार मत कर ।
कर्तृ०—विदुषः जनान् मा अवमंस्थाः (मा स्म अवमन्यथाः)
कर्म०—विद्वांसः जनाः मा अवमंसत (मा स्म अवमन्यन्त) ।
[न अवमन्यन्ताम्, न अवमन्येरन्]

२. आप मुझे घर जाने की आज्ञा दें ।
कर्तृ०—भवन्तः मां गृहगमनाय अनुमन्यन्ताम् (अनुमन्येरन्)
कर्म०—भवद्भिः अहं गृहगमनाय अनुमन्यै (अनुमन्येय)

३. वे अपने धन का अभिमान करते हैं।
कर्तृ०—ते निजधनम् अभिमन्यन्ते। कर्म०—तैः निजधनम् अभिमन्यते।

रम्

१. इस दुर्व्यसन से हट जा। कर्तृ०—विरम[1] (विरमेः) अस्मात् दुर्व्यसनात्[2]।
कर्म०—विरम्यताम् (विरम्येत) अस्मात् दुर्व्यसनात्।
२. वे मरते हैं। कर्तृ०—ते उपरमन्ते (उपरमन्ति)। कर्म०—तैः उपरम्यते।

वह्

१. वह सुशील कन्या से विवाह करता है।
कर्तृ०—सः सुशीलां कन्याम् उद्वाहयति (विवाहयति)।
कर्म०—तेन सुशीला कन्या उद्वाह्यते (विवाह्यते)।
२. वह गुरु के चरणों को दबाता है। कर्तृ०—सः गुरोः पादौ संवाहयति।
कर्म०—तेन गुरोः पादौ संवाह्यते।
३. चालाक लोग बनावटी बातों से भोले भाले लोगों को ठग लेते हैं।
कर्तृ०—धूर्ताः जनाः कृतकवचनचातुर्यम् उद्वहन्तः मुग्धान् जनान् अपवाहयन्ति।
कर्म०—धूर्तैः जनैः कृतकवचनचातुर्यम् उद्वहद्भिः मुग्धाः जनाः अपवाह्यन्ते।

तॄ

१. आज मैं सब विद्यार्थियों को पुस्तकें बांटूंगा।
कर्तृ०—अद्य अहं सर्वेभ्यः विद्यार्थिभ्यः पुस्तकानि वितरिष्यामि (वितरीष्यामि)।
कर्म०—अद्य मया सर्वेभ्यः छात्रेभ्यः पुस्तकानि वितरिष्यन्ते (वितरीष्यन्ते, वितारिष्यन्ते)।
२. वह वृक्ष से उतरा। कर्तृ०—सः वृक्षात् अवातारीत् (अवातरत्)।
कर्म०—तेन वृक्षात् अवातारि (अवातीर्यत)।
३. वह सब विपत्तियों के पार चला गया।
कर्तृ०—सः सर्वाः विपदः उदतारीत् (उदतरत्)।
कर्म०—तेन सर्वाः विपदः उदतारिषत (उदतीर्यन्त)।
४. उसने बहुतों को ठगा। कर्तृ०—सः बहून् प्रातीतरत् (प्रातारयत्)।
कर्म०—तेन बहवः प्रातारिषत (प्रातार्यन्त)।
५. मैंने आपके कथन का तात्पर्य समझ लिया।

---

१. व्याङ्परिभ्यो रमः (अष्टा. १.३.८३) से परस्मैपद।
२. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् [वा.] (अष्टा. १.४.२४.) से अपादान संज्ञा।

कर्तृ०—अहं भवतः कथनाभिसन्धिं कर्णपथम् अवातीतरम् (अवातारयम्)।
कर्म०—मया भवतः कथनाभिसन्धिः कर्णपथम् अवातारि (अवातार्यत)।

ग्रह्

१. आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, उससे मेरे रुपये दिलवा दिये।
कर्तृ०—भवन्तः तेन मह्यं मदीयानि रूप्यकाणि सन्दाप्य मां नितराम् अन्वग्रहीषुः (अन्वगृह्णन्, अन्वग्रहीषत, अन्वगृह्णत)।
कर्म०—भवद्भिः अहं तेन मदीयानि रूप्यकाणि सन्दाप्य अन्वग्रहीषि (अन्वग्राहिषि, अन्वगृह्ये)।

२. संसार पर कृपा करते हुए आप जैसे लोग किसके प्रेमपात्र नहीं होते।
कर्तृ०—संसारम् अनुगृह्णन्तः (अनुगृह्णानाः) भवादृशाः सज्जनाः कस्य प्रीतिपात्राणि न भवन्ति ?
कर्म०—संसारम् अनुगृह्णद्भिः (अनुगृह्णानैः) भवादृशैः सज्जनैः कस्य प्रीतिपात्रैः न भूयते ?

३. उससे मैं अपनी वस्तुएं वापिस ले लूंगा।
कर्तृ०—तस्माद् अहं निजवस्तूनि प्रतिग्रहीष्यामि (प्रतिग्रहीष्ये, प्रतिग्रहीतास्मि, प्रतिग्रहीताहे)।
कर्म०—तस्माद् मया निजवस्तूनि प्रतिग्रहीष्यन्ते (प्रतिग्राहिष्यन्ते, प्रतिग्रहीतारः, प्रतिग्राहितारः)।

कम्प्

१. विरजानन्द ने दयानन्द पर बड़ी कृपा की।
कर्तृ०—विरजानन्दः दयानन्दं भृशम् अन्वकम्पिष्ट (अन्वकम्पत, अनुचकम्पे)।
कर्म०—विरजानन्देन दयानन्दः भृशम् अन्वकम्पि (अन्वकम्प्यत, अनुचकम्पे)।

२. आप मेरे पर कृपा करते हुए इस बच्चे को क्षमा कर दीजिये।
कर्तृ०—भवन्तः माम् अनुकम्पमानाः एनं बालकं क्षमन्ताम् (क्षमेरन्)।
कर्म०—भवद्भिः माम् अनुकम्पमानैः एषः बालकः क्षम्यताम् (क्षम्येत)।

गुह्

१. मित्रो ! इस गरीब सत्यवादी का आलिङ्गन करो।
कर्तृ०—मित्राणि ! भवन्तः इमं निर्धनं सत्यवादिनम् अवगूहन्ताम् (अवगूहेरन्)।
कर्म०—मित्राणि ! भवद्भिः अयं निर्धनः सत्यवादी अवगुह्यताम् (अवगुह्येत)।

इण् गतौ

१. वह मेरे पीछे आया। कर्तृ०—सः माम् अन्वैत् (अन्वगात्)।

कर्म०—तेन अहम् अन्वीये (अन्वगीषि, अन्वगायिषि)।

२. असत्य को छोड़, सत्य को प्राप्त कर।

कर्तृ०—अनृतं परिहर, ऋतम् उपेहि।

कर्म०—अनृतं परिह्रियताम् (परिह्रियेत), ऋतम् उपेयताम् (उपेयेत)।

३. आप उसके पास मत जायें। कर्तृ०—भवन्तः तं मा उपगुः (मा स्म उपयन्)।

कर्म०—भवद्भिः सः मा उपगायि (मा स्म उपेयत)।

४. मेरी बात स्वीकार करें।

कर्तृ०—मम वार्तां भवन्तः अभ्युपयन्तु (अभ्युपेयुः)।

कर्म०—मम वार्ता भवद्भिः अभ्युपेयताम् (अभ्युपेयेत)।

५. मैं उसे जानता हूं। कर्तृ०—अहं तम् अवैमि। कर्म०—मया स अवेयते।

६. मेरी बात स्वीकार करके ही आपको सुख मिलेगा।

कर्तृ०—मम वार्ताम् अभ्युपेत्यैव सुखमध्येष्यति भवान्।

कर्म०—मम वार्ताम् अभ्युपेत्यैव सुखम् अध्येष्यते (अध्यायिष्यते) भवता।

७. आप घर से कब आये?

कर्तृ०—कदा आगुः ओकसः भवन्तः (कदागुरोकसो भवन्तः?)

कर्म०—कदा आगायि ओकसः भवद्भिः (कदागाय्योकसो भवद्भिः)?

ईक्ष

१. आजकल सब परीक्षा से डरते हैं। कर्तृ०—अद्यत्वे सर्वे परीक्षायाः बिभ्यति।

कर्म०—अद्यत्वे सर्वैः परीक्षायाः भीयते।

२. यदि अच्छी प्रकार परीक्षा ली जाये तो कुछ ही उत्तीर्ण हों।

कर्तृ०—[परीक्षकाः] यदि [परीक्षार्थिनः २.३] सम्यक्तया परीक्षेरन् तर्हि केचिद् एव उत्तीर्णाः स्युः।

कर्म०—यदि सम्यक्तया परीक्ष्येरन् तर्हि कैश्चिद् एव उत्तीर्णैः भूयेत।

३. बहुत देर तक आपकी इन्तजार की।

कर्तृ०—चिराय प्रत्यैक्षिषि (प्रत्यैक्षे) भवन्तम्।

कर्म०—चिराय प्रत्यैक्षिषत (प्रत्यैक्षन्त) भवन्तः मया।

४. क्या दुर्ग को न देखूँ। कर्तृ०—अपि मा ईक्षिषि (मा स्म ईक्षे) दुर्गम् [२.१]?

कर्म०—अपि मा ईक्षि (मा स्म ईक्ष्यत) दुर्गम् [१.१] मया?

५. किला मत देखो, यहाँ बैठो। कर्तृ०—न ईक्षध्वं दुर्गम्, अत्रैव आध्वम्।

कर्म०—न ईक्ष्यतां दुर्गम्, अत्रैव आस्यताम्।

६. गुरुजी मेरे वाक्य देखेंगे ।
कर्तृ० — गुरुचरणाः मम वाक्यानि [२.३] समीक्षिष्यन्ते (समीक्षितारः) ।
कर्म०—गुरुचरणैः मम वाक्यानि [१.३] समीक्षिष्यन्ते (समीक्षितारः) ।

७. आज मैंने बहुत से रोगियों का निरीक्षण किया ।
कर्तृ०—अद्य अहं बहून् रुग्णान् निरैक्षिषि ।
कर्म०—अद्य मया बहवः रुग्णाः निरैक्षिषत ।

८. गुरुओं की उपेक्षा मत कर । कर्तृ० गुरून् मा उपेक्षिष्ठाः (मा स्म उपेक्षथाः) ।
कर्म० गुरवः मा उपेक्षिषत (मा स्म उपेक्ष्यन्त) ।

९. गुरुकुलवासी आप जैसे अध्यापक की गुरुकुल में निरन्तर अपेक्षा करते हैं ।
कर्तृ०—गुरुकुलवासिनः भवादृशान् गुरुचरणान् गुरुकुले सततम् अपेक्षन्ते ।
कर्म०—गुरुकुलवासिभिः भवादृशाः गुरुचरणाः गुरुकुले सततम् अपेक्ष्यन्ते ।

डीङ्

१. पक्षी आकाश में उड़ते हैं । कर्तृ०—खगाः गगने उड्डयन्ते (उड्डीयन्ते) ।
कर्म०— खगैः गगने उड्डीयते ।

२. आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देख-देख कर लोगों के चित्त प्रसन्न होते हैं ।
कर्तृ०—अधिगगनम् उड्डीयमानान् विहगान् दर्शं दर्शं चेतांसि मोमुद्यन्ते जनानाम् ।
कर्म०— ,, ,, ,, ,, ,, चेतोभिः मोमुद्यते जनानाम् ।

मील

१. उत्पन्न होने वाले आँखें खोलते हैं और मरने वाले आँखें बन्द करते हैं ।
कर्तृ०—उत्पद्यमानाः चक्षूंषि उन्मीलन्ति विपद्यमानाः च निमीलन्ति ।
कर्म०—उत्पद्यमानैः चक्षूंषि उन्मील्यन्ते विपद्यमानैः च निमील्यन्ते ।

मुच्

१. श्रावणी पूर्णिमा पर सब ब्रह्मचारी नवीन यज्ञोपवीत धारण करते हैं और पुराने उतारते हैं ।
कर्तृ०—श्रावण्यां पौर्णमास्यां सर्वे ब्रह्मचारिणः नूतनानि यज्ञोपवीतानि प्रतिमुञ्चन्ति पुरातनानि च उन्मुञ्चन्ति ।
कर्म०—श्रावण्यां पौर्णमास्यां सर्वैः ब्रह्मचारिभिः नूतनानि यज्ञोपवीतानि प्रतिमुच्यन्ते पुरातनानि च उन्मुच्यन्ते ।

डुक्रीञ्

१. बनिये अपनी वस्तुएँ बेचते हैं ।
कर्तृ०—वणिजः स्ववस्तूनि विक्रीणते । कर्म०—वणिग्भिः स्ववस्तूनि विक्रीयन्ते ।

षद्लृ (सद्)

१. आप मेरे घर में बैठें। कर्तृ०—भवन्तः मद्गेहे निषीदन्तु (निषीदेयुः)।
कर्म०—भवद्भिः मद्गेहे निषद्यताम्।

२. हा पुत्र! तू इतनी रातों में नहीं पढ़ा; इसलिये विद्वानों के बीच, कीचड़ में फँसी गौ के समान दुःख पाता है।
कर्तृ०—हा हा पुत्रक नाध्यैष्ठाः सुगतास्वेतासु रात्रिषु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि॥
कर्म०—हा हा पुत्रक नाध्यायि सुगतास्वेतासु रात्रिषु।
तेन त्वया सुधीमध्ये पङ्के गवेव सद्यते॥

३. मेरे घर भोजन के लिये प्रसन्न होइये।
कर्तृ०—प्रसीदन्तु आर्यमिश्राः मम गृहे भोजनाय।
कर्म०—प्रसद्यताम् आर्यमिश्रैः मम गृहे भोजनाय।

४. समीप आती हुई विपत्तियों का उपाय करो।
कर्तृ०—प्रतिविधेहि प्रत्यासीदन्तीः विपदः [२.३]।
कर्म०—प्रतिविधीयन्तां प्रत्यासीदन्त्यः विपदः [१.३]।

वद

१. विवाद करते हुए नेताओं को देख कर बहुत कष्ट होता है।
कर्तृ०—विवदमानान् नेतॄन् दर्शं दर्शं दोदूये अहम्।
भाव०—विवदमानान् नेतॄन् दर्शं दर्शं दोदूयते मया।

२. नीचे लिखे वाक्यों का हिन्दी भाषा में अनुवाद करो।
कर्तृ०—अधोलिखितानि वाक्यानि [२.३] अनुवदत हिन्दी-भाषायाम्।
कर्म०—अधोलिखितानि वाक्यानि [१.३] अनूद्यन्तां हिन्दी-भाषायाम्।

३. इन बालकों की शक्ल माता पिता से मिलती है।
कर्तृ०—एते बालाः पितरौ संवदन्ति। कर्म०—एतैः बालैः पितरौ समुद्येते।

४. सज्जनों की निन्दा करते हुए दुर्जनों को कौन रोक सकता है।
कर्तृ०—कः खलु सज्जनान् अपवदतः दुर्जनान् वारयितुं प्रभवति।
कर्म०—केन खलु सज्जनान् अपवदन्तः दुर्जनाः वारयितुं प्रभूयन्ते (शक्यन्ते)।

डुदाञ्

१. उससे देखने की फीस नहीं ली। कर्तृ०—न तस्मात् निरीक्षणशुल्कम् आदिषि।
कर्म०—न तस्मात् निरीक्षणशुल्कम् आदायि मया।

पाल

१. वे देर से मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।=कर्तृ०—चिराय ते मां प्रतिपालयन्ति।
कर्म०—चिराय तैः अहं प्रतिपाल्ये।

दिश

१. आज अधिष्ठाता जी ने ब्रह्मचारियों को उपदेश दिया।
कर्तृ०—अद्य खलु अधिष्ठातृचरणाः ब्रह्मचारिणः उपादिक्षन्।
कर्म०—अद्य खलु अधिष्ठातृचरणैः ब्रह्मचारिणः उपादिक्षत।

२. निर्देश दीजिये क्या करूँ?
कर्तृ०—निर्दिशन्तु श्रीमन्तः किम् अहं विदध्याम्?
कर्म०—निर्दिश्यतां श्रीमद्भिः किं मया विधियताम्?

३. आज राष्ट्रपति ने तस्करों को पकड़ने का अभ्यादेश दिया।
कर्तृ०—अद्य राष्ट्रपतिः तस्करान् निग्रहीतुम् अभ्यादिक्षत्।
कर्म०—अद्य राष्ट्रपतिना तस्करान् निग्रहीतुम् अभ्यादेशि।

४. आप गुरुकुल के लिये कुछ दीजिये।
कर्तृ०—भवन्तः गुरुकुलाय किञ्चिद् अतिदिशन्तु।
कर्म०—भवद्भिः गुरुकुलाय किञ्चिद् अतिदिश्यताम्।

५. आप कुछ सन्देश दीजिये=कर्तृ०—किमपि सन्दिशन्तु भवन्तः।
कर्म०—किमपि सन्दिश्यतां भवद्भिः।

६. आप रास्ता बतायें=कर्तृ०—मार्गम् आदिशन्तु भवन्तः।
कर्म०—मार्गः आदिश्यतां भवद्भिः।

७. इन दुष्टों को यहाँ से हटा दो, मैं इन्हें नहीं पढ़ाना चाहता।
कर्तृ०—प्रत्यादिश एतान् दुष्टान् नाहम् एतान् पिपाठयिषामि।
कर्म०—प्रत्यादिश्यन्ताम् एते दुष्टाः न मया एते पिपाठयिष्यन्ते।

८. आजकल धर्म के बहाने से अन्य काम करते इन पाखण्डियों को लज्जा नहीं आती।
कर्तृ०—अद्यत्वे धर्मव्यपदेशेन अन्यत् कार्यं विदधानाः (विदधतः) एते धिप्सवः न वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयाः भवन्ति।
कर्म०—अद्यत्वे धर्मव्यपदेशेन अन्यत् कार्यं विदधानैः (विदधद्भिः) एतैः धिप्सुभिः न वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयैः भूयते।

९. चन्द्रशेखर पढ़ने में सब ब्रह्मचारियों को मात करता है।
कर्तृ०—चन्द्रशेखरः पठनेन सर्वान् ब्रह्मचारिणः अतिशेते।
कर्म०—चन्द्रशेखरेण पठनेन सर्वे ब्रह्मचारिणः अतिशय्यन्ते।

द्विकर्मक धातुएँ

जिस धातु के दो कर्म हों उसे द्विकर्मक धातु कहते हैं। ऐसी धातुओं का एक मुख्य (प्रधान) कर्म होता है और दूसरा गौण (अप्रधान) कर्म होता है। जैसे—भिक्षुकः गृहस्थं भिक्षां याचते (भिखारी गृहस्थ से भीख मांगता है)। यहाँ मुख्य कर्म भिक्षा है और गौण कर्म गृहस्थ है। भिक्षा, कर्ता की ईप्सिततम वस्तु है, अतः उसे कर्म कहते हैं[1]। 'गृहस्थ' किसी भी अन्य कारक के क्षेत्र में नहीं आता अतः वह भी 'अकथित' होने से कर्म कहलाता है[2]। मुख्य द्विकर्मक धातुएं १६ हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रछ्, चि ब्रू, शास्, जि, मन्थ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्। कुछ धातुएं णिजन्त अवस्था में जाकर द्विकर्मक हो जाती हैं। जैसे—गति[3] (जाना) अर्थ वाली, बुद्धि (ज्ञान) अर्थ वाली, प्रत्यवसान (खाना) अर्थ वाली तथा देखने अर्थ वाली धातुएं और चुरवाना (उठवाना) अर्थ वाली हृञ् ये धातुएँ ण्यन्तावस्था में द्विकर्मक हो जाती हैं।

वाच्यपरिवर्तन के विषय में जैसा पहले बताया जा चुका है कि कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में बदलते समय कर्ता में तृतीया होगी और कर्म में प्रथमा। क्रिया में पुरुष और वचन आदि कर्म के अनुसार होंगे। द्विकर्मक धातुओं के विषय में इतना और ध्यान रखना चाहिये कि, इन धातुओं के कर्मवाच्य में उपर्युक्त सोलह धातुओं में से आरम्भ की दुह् आदि १२ धातुओं के गौण कर्म में परिवर्तन होता है अर्थात् गौण कर्म में प्रथमा होती है। मुख्य कर्म में परिवर्त्तन नहीं होता, कर्तृवाच्यवत् द्वितीया ही रहती है। अन्तिम चार धातुओं (नी, हृ, कृष्, वह्) के मुख्य कर्म में परिवर्त्तन होगा। गौण कर्म में परिवर्त्तन नहीं होगा, कर्तृवाच्यवत् बना रहेगा। गति, ज्ञान, भक्षण आदि अर्थ वाली धातुओं के और शब्दकर्मक (पढ़ाना) आदि धातुओं के मुख्य कर्म अथवा गौण कर्म में से किसी एक में स्वेच्छानुसार प्रयोक्ता परिवर्तन कर सकता है। चाहे मुख्य कर्म में प्रथमा कर दे, चाहे गौण कर्म में प्रथमा कर दे। शेष कोई धातु रहती है तो उसके प्रयोज्य कर्म में परिवर्त्तन होता है। जिससे हम काम करवाते हैं उसे प्रयोज्य कर्म कहते हैं। जो काम करवाने वाला है वह प्रयोजक कहलाता है। जैसे—सुधीन्द्र छात्रों से फूल सुंघवाता है (सुधीन्द्रः छात्रान् पुष्पाणि (२.३) घ्रापयति)। यहाँ सुधीन्द्र प्रयोजक है और छात्र प्रयोज्य हैं। इसका कर्मवाच्य में—सुधीन्द्रेण छात्राः पुष्पाणि (२.३) घ्राप्यन्ते। यह बनेगा। प्रयोज्य कर्म (छात्र) में परिवर्त्तन हुआ। इन नियमों को सदा उपस्थित रखने के लिये निम्नलिखित कारिका स्मरण कर लेनी चाहिते—

---

१. कर्तुरीप्सिततमं कर्म (अष्टा. १.४.४९)। २. अकथितं च (अष्टा. १.४.५१)।
३. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ (अष्टा १.४.५२)।

गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने णीहृकृष्वहाम् ।
गतिबुद्धिभक्ष-शब्दकर्मकाणां निजेच्छया ॥
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥

अभ्यास

१. मैं गायों का दूध निकालूंगा ?
कर्तृ०—अहं गाः दुग्धं (२.१) धोक्ष्यामि (दोग्धास्मि) ।
कर्म०—मया गावः दुग्धं (२.१) धोक्ष्यन्ते (दोग्धारः) ?

२. मैंने अपने मित्र से पांच रुपये मांगे ?
कर्तृ०—अहं स्वमित्रं (२.१) पञ्च रूप्यकाणि (२.३) अयाचम् (अयाचे अयाचिषि, अयाचिषम्) ।
कर्म०—मया स्वमित्रं (१.१) पञ्च रूप्यकाणि (२.३) अयाच्यत (अयाचि)

३. मैं एक सेर आटे की चार रोटियां बनाऊँगा ।
कर्तृ०—अहं सेटकं चूर्णं (२.१) चतस्रः करपट्टिकाः पक्ष्यामि (पक्ष्ये) ।
कर्म०—मया सेटकं चूर्णं (१.१) चतस्रः करपट्टिकाः पक्ष्यते (पक्ता) ।

४. आज न्यायाधीश ने दस आदमियों पर बीस-बीस रुपये जुर्माना कर दिया ।
कर्तृ०—अद्य न्यायाधीशः दश पुरुषान् प्रत्येकं विंशतिं रूप्यकाणि अददण्डत् ।
कर्म०—अद्य न्यायाधीशेन दश पुरुषाः प्रत्येकं विंशतिं रूप्यकाणि अदण्डिषत ।

५. आज जेलर ने पचास पुरुषों को जेल में बन्द कर दिया ।
कर्तृ०—अद्य काराध्यक्षः पञ्चाशतं पुरुषान् काराम् अवारौत्सीत् (अवारुधत्, अवारुद्ध)
कर्म०—अद्य काराध्यक्षेणः पञ्चाशतं पुरुषान् कारा अवारोधि ।

६. मैंने देवेन्द्र से बहुत सी बातें पूछीं ।
कर्तृ०—अहं देवेन्द्रं भूयसीः वार्ताः (२.३) अप्राक्षम् (अपृच्छम्) ।
कर्म०—मया देवेन्द्रः भूयसीः वार्ताः (२.३) अप्रच्छि (अपृच्छयत)

७. मैं वृक्ष से फल तोडूंगा ।
कर्तृ०—अहं वृक्ष फलानि अवचेष्यामि (अवचेतास्मि) ।
कर्म०—मया वृक्षः फलानि अवचेष्यते (अवचायिष्यते, अवचेता, अवचायिता) ।

८. मैंने भद्रसेन को डांटते हुए उसे कटुवचन कहे ।
कर्तृ० अहं भद्रसेनं भर्त्सयन् तं कटुवचनानि (२.३) अब्रुवम् (अवोचम्) ।
कर्म०—मया भद्रसेन भर्त्सयता सः कटुवचनानि (२.३) औच्यत (अवाचि) ।

९. मुझे धर्म सिखला।

कर्तृ०—त्वं मां धर्मं शाधि (शिष्याः)=कर्म०—त्वया अहं धर्मं शिष्यै (शिष्येय)।

१०. मैं उससे सौ रुपये जीत लूंगा।

कर्तृ०—अहं तं शतं रूप्यकाणि (२.३) जेष्यामि, (जेतास्मि)।

कर्म०—मया सः शतं रूप्यकाणि (२.३) जेष्यते (जायिष्यते, जेता; जायिता)।

११. मैं मक्खन के लिए दही मथूंगा।

कर्तृ०—अहं नवनीतं (२.१) दधि (२.१) मन्थिष्यामि (मन्थितास्मि)।

कर्म०—मया नवनीतं (१.१) दधि (२.१) मन्थिष्यते (मन्थिता)।

१२. उसने मेरे सारे वस्त्र चुरा लिये।

कर्तृ०—सः मां सर्वाणि वस्त्राणि (२.३) अमूषीत् (अमोषीत्, अमूषत्, अमुष्णात्)

कर्म०—तेन अहं सर्वाणि वस्त्राणि (२.३) अमूषिषि (अमोषिषि, अमूष्ये, अमुष्ये)

१३. वह मुझे गाँव ले गया।

कर्तृ०—सः मां ग्रामम् अनैषीत् (अनेष्ट, अनयत्, अनयत)।

कर्म०—तेन अहं ग्रामम् अनेषि (अनायिषि, अनीये)

१४. सीता को रावण लङ्का में ले गया।

कर्तृ०—रावणः सीतां लङ्कां जहार। कर्म०—रावणेन सीता लङ्कां जह्रे।

१५. नौकर ने गांव में भार ढोया।

कर्तृ०—भृत्यः ग्रामं भारम् अवहत् (अवहत, अवाक्षीत्, अवोढ)।

कर्म०—भृत्येन ग्रामं भारः औह्यत (अवाहि)

१६. पशुनाथ बकरी को गांव खींच लाया।

कर्तृ०—पशुनाथः अजां ग्रामम् अकर्षत् (अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत्)।

कर्म०—पशुनाथेन अजा ग्रामम् अकृष्यत (अकर्षि)

१७. मेरे मित्रों ने मुझे गांव में पहुंचाया।

कर्तृ०—मम मित्राणि मां ग्रामम् (अजीगमन्, अगमयन्)।

कर्म०—मम मित्रैः अहं ग्रामम् अगमिषि (अगम्ये)

अथवा

मम मित्रैः मां ग्रामः अगामि (अगम्यत)।

१८. द्रौपदी देवी मुझे लाहौर पहुंचा देगी।

कर्तृ०—द्रौपदी देवी मां लवपुरं गमयिष्यति (गमयिता)।

कर्म०—द्रौपद्या देव्या अहं लवपुरं (२.१) गमयिष्ये (गमयिताहे)।

अथवा

द्रौपद्या देव्या मां लवपुरं (१.१) गमयिष्यते (गमयिता)।

१९. उसने मुझे धर्म समझाया।

कर्तृ०—सः मां धर्मम् अबूबुधत् (अबोधयत्)।

कर्म०—तेन अहं धर्मम् अबोधिषि (अबोध्ये)।

अथवा

तेन मां धर्मः अबोधि (अबोध्यत)।

२०. हम उन्हें व्याकरण पढ़ायेंगे।

कर्तृ०—वयं तान् व्याकरणं पाठयिष्यामः (पाठयितास्मः)।

कर्म०—अस्माभिः ते व्याकरणं (२.१) पाठयिष्यन्ते (पाठयितारः)।

अथवा

अस्माभिः तान् व्याकरणं (१.१) पाठयिष्यते (पाठयिता)।

२१. इन छात्रों को लड्डू खिलाइये।

कर्तृ०—एतान् छात्रान् मोदकान् भोजय (भोजयेः)।

कर्म०—त्वया एते छात्राः मोदकान् भोज्यन्ताम् (भोज्येरन्)।

अथवा

त्वया एतान् छात्रान् मोदकाः भोज्यन्ताम् (भोज्येरन्)।

२२. अध्यापक ने ब्रह्मचारियों को किला दिखलाया।

कर्तृ०—अध्यापकः ब्रह्मचारिणः (२.३) दुर्गम् (२.१) अददर्शत् (अदीदृशत्[1], अदर्शयत्)।

कर्म०—अध्यापकेन ब्रह्मचारिणः (१.३) दुर्गम् (२.१) अदर्शिषत (अदर्श्यन्त)।

अथवा

अध्यापकेन ब्रह्मचारिणः (२.३) दुर्गम् (१.१) अदर्शि (अदर्श्यत)।

२३. मैंने कुम्हार से चालीस घड़े बनवाये।

कर्तृ०—अहं कुम्भकारं चत्वारिंशतं घटान् अचीकरम् (अकारयम्)।

कर्म०—मया कुम्भकारः चत्वारिंशतं घटान् अकारि (अकार्यत)।

इस वाक्य में कुम्भकार प्रयोज्य है, अतः उसी में परिवर्त्तन हुआ है। मुख्य कर्म में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

---

१. उऋत् (अष्टा. ७.४.७) से 'दृश्' के ऋ के स्थान पर विकल्प से ऋ आदेश ही होता है।

यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है। हृ और कृ धातुओं की अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्म सञ्ज्ञा होती है[1]। कर्म-सञ्ज्ञा-पक्ष में द्वितीया होगी, जैसा कि अभी इस वाक्य में ऊपर दर्शाया है। कर्म सञ्ज्ञा के अभाव पक्ष में कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी और कर्मवाच्य में मुख्य कर्म में परिवर्त्तन होगा। तब निम्न० प्रकार से वाक्य बनेगा --

कर्तृ०—अहं कुम्भकारेण चत्वारिंशतं घटान् अचीकरम् (अकारयम्)।

कर्म०—मया कुम्भकारेण चत्वारिंशत् घटाः अकारिषत (अकार्यन्त)।

भक्ष अर्थ में दो ही धातु द्विकर्मक ली गई हैं—भुज् और अश्। अद् और खाद् धातु को ण्यन्तावस्था में द्विकर्मक नहीं माना गया है अर्थात् इनके अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्म सञ्ज्ञा का निषेध किया गया है[2]। अतः वह ण्यन्तावस्था में भी कर्ता ही रहेगा और तब कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी[3]।

१. ब्रह्मचारी अन्न खाता है=वटुः अन्नम् अत्ति (खादति)।

मैं ब्रह्मचारी को अन्न खिलाता हूं।

कर्तृ०—अहं वटुना अन्नं (२.१) आदयामि (खादयामि)।

कर्म०—मया वटुना अन्नम् (१.१) आद्यते (खाद्यते)।

भक्ष धातु (णिजन्त) केवल हिंसा अर्थ में ही द्विकर्मक मानी गई है—

बैल फसल खाते हैं=बलीवर्दाः सस्यं भक्षयन्ति।

१. सुरेन्द्र बैलों को फसल खिलाता है।

कर्तृ०—सुरेन्द्रः बलीवर्दान् सस्यं (२.१) भक्षयति।

कर्म०—सुरेन्द्रेण बलीवर्दाः सस्यं (२.१) भक्ष्यन्ते।

अहिंसार्थक भक्ष धातु ण्यन्तावस्था में द्विकर्मक नहीं मानी गई है, अर्थात् भक्ष् धातु जब अहिंसा अर्थ वाली होगी (=हरी फसल आदि खाने के द्वारा जब हिंसा की प्रतीति नहीं होगी) तब उसके अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा नहीं होगी[4], फलतः वह तब भी कर्ता ही रहेगा और तृतीया विभक्ति होगी।

ब्राह्मण लड्डू खाते हैं=ब्राह्मणाः मोदकान् भक्षयन्ति।

१. मैं ब्राह्मणों को लड्डू खिलाता हूं=कर्तृ०—अहं ब्राह्मणैः मोदकान् भक्षयामि।

कर्म०—मया ब्राह्मणैः मोदकाः भक्ष्यन्ते।

भाष्यकार ने तीन अन्य णिजन्त धातुओं को भी द्विकर्मक माना है—१. श्रु

---

१. हृक्रोरन्यतरस्याम् (अष्टा. १.४.५३)।

२. आदिखाद्योः प्रतिषेधो वक्तव्यः [वा०] (अष्टा. १.४.५२)।

३. कर्तृकरणयोस्तृतीया (अष्टा० २.३.१८)।

४. भक्षेरहिंसार्थस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः [वा०] (अष्टा० १.४.५२)।

(=श्रावि), २. विज्ञा (=विज्ञापि), ३. लभ् (=लम्भि)।

१. मैं बालकों को श्लोक सुनाता हूं।=कर्तृ०—अहं बालकान् श्लोकान् श्रावयामि।
कर्म०—मया बालकाः श्लोकान् श्राव्यन्ते

२. मैं उसको धर्म समझाता हूं=कर्तृ०—अहं तं धर्मं विज्ञापयामि।
कर्म०—मया सः धर्मं विज्ञाप्यते।

३. मैं विद्वानों को धन प्राप्त कराता हूं=कर्तृ०—अहं विदुषः धनं लम्भयामि।
कर्म०—मया विद्वांसः धनं लम्भ्यन्ते।

इन तीनों वाक्यों में भी प्रयोज्य कर्म (बालक, वह और विद्वान्) में ही परिवर्त्तन हुआ है। वि पूर्वक णिजन्त ज्ञा धातु (=विज्ञापि) जब प्रार्थना करने अर्थ में प्रयुक्त होती है, तब वह द्विकर्मक नहीं होती है।

१. मैं आपसे प्रार्थना करता हूं (प्रार्थना पूर्वक कहता हूं)।
कर्तृ०—अहं भवन्तं विज्ञापयामि। कर्म०—मया भवान् विज्ञाप्यते।

आज्ञा देने अर्थ में भी आङ्ज्ञा+णिच् (=आज्ञापि) द्विकर्मक नहीं होगी—

१. मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं=कर्तृ०—अहं त्वाम् आज्ञापयामि।
कर्म०—मया त्वं आज्ञाप्यसे।

इन दोनों वाक्यों में एक ही कर्म है। कर्मवाच्य में उसी कर्म की विभक्ति में परिवर्त्तन हो गया।

यह मैंने द्विकर्मक धातुओं के विषय में थोड़ा सा समझाया है। कुछ धातुओं को विवक्षा (=कहने की इच्छा) से अकर्मक, सकर्मक या द्विकर्मक बनाया जा सकता है; क्योंकि धातुओं की अकर्मकता, सकर्मकता और द्विकर्मकता अधिकतर अर्थ के आधार पर बनती है। उदाहरणार्थ 'वह्' धातु को ही ले लो—

जब यह कहा जाता है कि—"वह गांव को भार ढोता है=सः ग्रामं भारं वहति।" तो 'वह्' धातु द्विकर्मक हो गई। और जब यह कहा जायेगा—"नदी बहती है=नदी वहति"—यहाँ 'वह्' धातु अकर्मक हो गई। "नौकर से गांव को भार ढुवाता है=ग्रामं भारं वाहयति भृत्येन" यहाँ सामान्य नियम[1] से णिजन्त 'वह्' धातु को द्विकर्मकता प्राप्त थी, किन्तु विशेष नियम से[2] उसका निषेध हो जाता है। पर यदि सारथि आदि कर्ता हो तब यह निषेध लागू नहीं होता[3] और वह (णिजन्त) धातु द्विकर्मक हो जाती है, यथा—'सारथि बैलों से जौ ढुवाता है=सारथिः बलीवर्दान् यवान् वाहयति।

---

१. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ। (अष्टा० १.४.५२)

२. गत्यर्थेषु नीवह्योः प्रतिषेधो वक्तव्यः [वा०] (अष्टा० १.४.५२)

३. वहेरनियन्तृकर्तृकस्येति वक्तव्यम् [वा०] (अष्टा० १.४.५२)

विभक्ति और कारक

अब मैं विभक्त्यर्थ और कारक के विषय में विशेष रूप से समझा रहा हूं।

प्रथमा विभक्ति

१. प्रातिपदिकार्थ (=सत्ता) मात्र में, लिङ्ग मात्र में, परिमाण मात्र में और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है[1]। प्रातिपदिकार्थ मात्र में—उच्चैः, घटः, पटः, महिषी, गौः, रामः, हरिः आदि। लिङ्गमात्र में—ज्ञानम्, लता, पुरुषः आदि। परिमाणमात्र में—द्रोणः, खारी, आढकम् आदि। वचनमात्र में—एकं, द्वे, त्रीणि। एकः, द्वौ, त्रयः। एका, द्वे, तिस्रः। एकं फलम्, द्वे फले, त्रीणि फलानि; एकः पुरुषः, द्वौ पुरुषौ, त्रयः पुरुषाः; एका कन्या, द्वे कन्ये, तिस्रः कन्याः।

२. सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति होती है[2]।

द्वितीया विभक्ति

[१] अनभिहित (=अनुक्त=अकथित) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है[3]। जहां कर्मत्व अन्य किसी के द्वारा अभिहित (=उक्त) होगा अर्थात् कह दिया जायेगा वहाँ कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति नहीं होगी। तिङ् प्रत्ययों के द्वारा, कृत् प्रत्ययों के द्वारा, तद्धित प्रत्ययों के द्वारा अथवा समास के द्वारा ही कर्मत्व का अभिधान (=कथन) सम्भव है। 'क्रियते कटः'=चटाई बनाई जाती है। इस वाक्य में 'कट' कर्म कारक है, किन्तु उसका कर्मत्व, कर्म में होने वाले आत्मनेपद[4] रूप तिङ् प्रत्यय के द्वारा अभिहित (=कथित) हो गया, अतः उसमें द्वितीया विभक्ति नहीं हुई। प्रातिपदिकार्थ नियम से प्रथमा ही हुई। 'कृतः कटः=चटाई बनाई गई'। इस वाक्य में भी 'कट' कर्म कारक है, किन्तु उसका कर्मत्व, कर्म में होने वाले[5] क्त रूप कृत् प्रत्यय के द्वारा अभिहित हो जाने से उसमें द्वितीया नहीं हुई। पूर्ववत् प्रथमा ही हुई। 'शत्यः पटः=सौ रुपयों से खरीदा हुआ कपड़ा'। यहाँ 'पट' कर्म कारक है, किन्तु (परोक्ष रूप से) कर्म में होने वाले 'यत्' रूप तद्धित प्रत्यय[6] के द्वारा कर्मत्व के अभिहित हो जाने से 'पट' में द्वितीया नहीं हुई, प्रथमा ही हुई। 'प्राप्तोदकः ग्रामः'=प्राप्त हो गया है जल जिसको वह गांव। इस वाक्य में 'ग्राम' कर्म कारक

---

१. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (अष्टा. २.३.४६)।
२. सम्बोधने च (अष्टा. २.३. ४७)।
३. अनभिहिते; कर्मणि द्वितीया (अष्टा. २.३.१.२)।
४. भावकर्मणोः (अष्टा. १.३.१३)।
५. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (अष्टा. ३.४.७०)।
६. शताच्च ठन्यतावशते:; तेन क्रीतम् (अष्टा. ५.१.२१.; ३७)।

है, किन्तु उसका कर्मत्व, 'प्राप्तम् उदकं यं ग्रामम्' इस प्रकार के विग्रह वाले बहुव्रीहि समास[१] के द्वारा अभिहित हो जाने से ग्राम में द्वितीया विभक्ति नहीं हुई, प्रथमा ही हुई।

यह थोड़ा सा अभिहित और अनभिहित के विषय में शास्त्रीय ढंग से बताया है। यदि इस बात को बहुत सरल ढंग से कहना हो तो यों कह सकते हैं कि—जिसके अनुसार क्रिया आती है—बदलती है उसे उक्त अथवा अभिहित कहते हैं और जिसके अनुसार क्रिया न आये — न बदले उसे अनुक्त अथवा अनभिहित कहते हैं। यथा—'सः ग्रामं गच्छति', तौ ग्राम गच्छतः, ते ग्रामं गच्छन्ति' इन वाक्यों में स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि 'सः, तौ, ते' रूपी कर्त्ता के अनुसार क्रिया बदली है। अतः इन वाक्यों में कर्ता उक्त या अभिहित है। इन्हीं वाक्यों में 'ग्रामः' के अनुसार क्रियां में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, अतः यहाँ 'ग्राम' रूपी कर्मकारक अनुक्त अथवा अनभिहित है और इसीलिये 'ग्राम' में द्वितीया हुई। इन वाक्यों में जो 'सः, तौ, ते' रूपी कर्ता है उनके कर्तृत्व के [तिङ् प्रत्यय द्वारा] अभिहित हो जाने के कारण ही उनमें तृतीया नहीं हुई। यदि वे भी अनभिहित होते तो वहां तृतीया ही होती[२]। यथा—'तेन ग्रामः गम्यते' आदि।

यह अनभिहित वाली शर्त, विभक्ति के विधान में, प्रत्येक कारक के साथ समझनी चाहिये।

ऊपर कहा गया था कि अनभिहित कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है। प्रश्न उठता है कि किस किस को कर्म कहते हैं? उत्तर यह है कि कारक की, सात अवस्थाओं में कर्म सञ्ज्ञा होती है—

(i) कर्ता का, क्रिया के द्वारा प्राप्त करने को इष्टतम जो कारक होता है उसकी कर्म सञ्ज्ञा होती है[३]। यथा—चलचित्रं पश्यति, आम्रं चूषति, ग्रामं गच्छति।

(ii) कर्त्ता का, क्रिया के द्वारा प्राप्त करने को जो इष्ट न हो पर प्राप्त हो जाये उस कारक को भी कर्म कहते हैं।[४] यथा—विषं भक्षयति, चोरान् पश्यति, ग्रामं गच्छन् वृक्षमूलानि उपसर्पति, आदि।

(iii) द्यूतक्रीडा अर्थ वाली दिव् धातु के साधकतम कारक की भी एक पक्ष में कर्मसञ्ज्ञा होगी।[५] यथा—अक्षान् दीव्यति=पासों से खेलता है। पक्ष में यथाप्राप्त करणसञ्ज्ञा होने के कारण तृतीया भी होगी—अक्षैः दीव्यति।

---

१. अनेकमन्यपदार्थे (अष्टा. २.२.२४)।
२. कर्तृकरणयोस्तृतीया (अष्टा. २.३.१८)।
३. कर्तुरीप्सिततमं कर्म (अष्टा. १.४.४९)।
४. तथायुक्तं चानीप्सितम् (अष्टा० १.४.५०)। ५. दिवः कर्म च (अष्टा० १.४.४३)।

(iv) अधि+शीङ्, अधि+स्था, अधि+आस्; अभि+नि+विश्; उप+वस्, अनु+वस्, अधि+वस् और आङ्+वस् इन धातुओं (=क्रियाओं) के आधार रूप कारक की भी कर्म सञ्ज्ञा होती है।[1] यथा—पर्यङ्कम् अधिशेते=पलङ्ग पर सोता है, ग्रामम् अधितिष्ठति=गांव में ठहरता है, आसन्दीम् अध्यास्ते=कुर्सी पर बैठता है; गुहाम् अभिनिविशते=गुफा में घुसता है; कटकम् उपवसति सेना=छावनी में सेना रहती है। इसी प्रकार—पर्वतम् उपवसति मुनिः, ग्रामम् अनुवसति भिक्षुकः, नगरम् अधिवसति मण्डलाधीशः, गुरुकुलम् आवसति गुरुः। भोजन न करने के अर्थ वाली उपवस् धातु के विषय में यह नियम नहीं लगेगा।[2] वहाँ आधार की अधिकरण सञ्ज्ञा होगी और सप्तमी विभक्ति होगी।

(v) अन्य कारकों के द्वारा अकथित कारक की भी कर्मसञ्ज्ञा होती है।[3] यथा—गोपालः गां दोग्धि पयः=ग्वाला गाय से दूध दुहता है। यहाँ 'गो' रूप कारक की इस नियम से कर्म सञ्ज्ञा हुई है। द्विकर्मक प्रकरण में पठित दुह्, याच् आदि १६ धातुओं के गौण (=अप्रधान) कर्म की 'कर्म' सञ्ज्ञा इसी से हुई है। इनमें जो प्रधान कर्म है उसकी तो कर्मसञ्ज्ञा प्रथम नियम से ही होती है।

(vi) गति अर्थ वाली, ज्ञान अर्थवाली, भक्षण अर्थवाली, शब्द कर्मवाली और अकर्मक धातुओं के *अण्यन्तावस्था* के कर्ता की *ण्यन्तावस्था* में कर्म सञ्ज्ञा हो जाती है।[4] यथा—बालः विद्यालयं गच्छति—बालं विद्यालयं गमयति, आदि।

(vii) सोपसर्ग क्रुध्, और द्रुह् धातु तथा उस अर्थवाली अन्य सोपसर्ग धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति क्रोध या द्रोह किया जाय उस कारक की कर्मसंज्ञा होती है[5] और उससे द्वितीया विभक्ति। यथा—श्यामः गोपालम् अभिक्रुध्यति। दुष्टोऽयं भ्रातरम् अभिद्रुह्यति।

इन सात प्रकार के कर्म कारकों में द्वितीया विभक्ति होती है। कर्म आदि कारक सञ्ज्ञा होने के आधार पर जो विभक्तियां होती हैं, उन्हें कारक-विभक्ति कहते हैं। यहाँ तक जो द्वितीया विभक्ति हुई है वह द्वितीया कारक-विभक्ति है।

[२] अब कुछ ऐसे शब्द बताते हैं जिनके उपपद में (=साथ में प्रयुक्त) होने पर अन्य शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसी विभक्ति को उपपद-विभक्ति कहते हैं।

---

१. अधिशीङ्स्थासां कर्म; अभिनिविशश्च; उपान्वध्याङ्वसः (अष्टा. १.४.४६,४७,४८)।

२. वसेरश्यर्थस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः [वा०] (अष्टा० १.४.४८)।

३. अकथितं च (अष्टा० १.४.५१)।

४. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ (अष्टा० १.४.५२)।

५. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (अष्टा० १.४.३८)।

[क] बिना और बीच अर्थ के वाचक 'अन्तरा' और 'अन्तरेण' शब्दों के योग में अन्य शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है।[1] यथा—

१. तेरे और मेरे बीच ईश्वर है=अन्तरा (अन्तरेण) त्वां माम् ईश्वरः अस्ति।
२. उन दो बालकों के बिना वे दो बालक नहीं खेलते।
तौ द्वौ बालकौ (२.३) अन्तरेण तौ बालकौ (१.२) नैव क्रीडतः।
३. संस्कृत के बिना मत बोल।
अन्तरेण (अन्तरा) देववाणीं मा व्याहार्षीः।

[ख] उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अध्यधि और अधोऽधः इन शब्दों के योग में अन्य शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है।[2]

१. गांव के दोनों ओर वृक्ष हैं=ग्रामम् उभयतः वृक्षाः सन्ति।
२. लङ्का के सब ओर समुद्र है=लङ्कां सर्वतः समुद्रः अस्ति।
३. दूसरों का धन चुराने वालों को धिक्कार है।
धिक् परद्रव्यापहारकान् चोरान्।
४. गांवों के ऊपर पंचायतें हैं=उपर्युपरि ग्रामान् पञ्चायतनानि सन्ति।
५. बादलों के ऊपर विमान उड़ते हैं।
अध्यधि मेघान् वायुयानानि उड्डीयन्ते।
६. ये तपस्वी पेड़ों के नीचे सोते हैं। एते तपस्विनः अधोऽधः वृक्षान् शेरते।

[ग] अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति इन शब्दों के योग में अन्य शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है।[3]

१. अजमेर नगर के दोनों ओर पर्वत हैं। अजमेरनगरम् अभितः गिरयः सन्ति।
२. पृथिवी के चारों ओर वायुमण्डल है। पृथिवीं परितः वायुमण्डलम् अस्ति।
३. बगीचे के समीप अस्पताल है=उद्यानं निकषा चिकित्सालयः अस्ति।
४. गुरुकुल के समीप सदा बहने वाली नदी है।
गुरुकुलं समया सदानीरा सरित् वर्तते।
५. उसने देवदत्त के लिये शोक किया=हा! देवदत्तम् इति कृत्वा सः अशोचीत्।
६. आजकल लोगों को धन के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता।
अद्यत्वे ऋते धनात् जनान् न प्रति भाति किञ्चित्।

---

१. अन्तरान्तरेणयुक्ते (अष्टा. २.३.४)
२. उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ [वा० का०] (अष्टा० २.३.२)
३. अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेषु च दृश्यते [वा०] (अष्टा० २.३.२)

[घ] कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा वाले शब्दों के योग में अन्य शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है[1]। अनु, उप, अप, परि, आङ्, प्रति, अभि, अधि, सु, अति, अपि ये ग्यारह शब्द (उपसर्ग) कर्मप्रवचनीय कहलाते हैं। इनकी किस किस अर्थ में अथवा किस प्रसङ्ग में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है, यह बताते हैं और साथ ही उनसे युक्त शब्दों से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग भी दर्शाते जाते हैं—

इनमें से अप, आङ्, परि (वर्जनार्थक) के योग में तो पञ्चमी विभक्ति[2] और अधि के योग में सप्तमी[3] होगी। शेष सभी के योग में द्वितीया होती है।

(i) अनु शब्द यदि लक्षण अर्थ में, तृतीयार्थ में, हीनता अर्थ में, इत्थं भूताख्यान अर्थ में, भाग अर्थ में और वीप्सा (व्याप्ति) अर्थ में प्रयुक्त हो तो उसकी कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[4]। और उसके योग में अन्य शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है।

१. यज्ञ करने के बाद वर्षा हुई=यज्ञम् अनु प्रावर्षत्।
२. नदी के साथ साथ सेना पड़ी है=नदीम् अनु अवसिता (स्थिता) सेना।
३. पढ़ने में सब चन्द्रशेखर के पीछे हैं=अध्ययने सर्वे अनु चन्द्रशेखरं सन्ति।
४. महेन्द्र अपनी माता के प्रति अति सज्जन है=महेन्द्रः साधुः निजजननीम् अनु।
५. इसमें जो मेरा भाग हो वह मुझे दे दो=यदत्र माम् अनु स्यात्, तत् मह्यं देहि।
६. घर घर में पानी का प्रबन्ध है=गृहं गृहम् अनु जलप्रबन्धः अस्ति।
७. प्रत्येक नगर में विद्वान् होते थे=नगरं नगरम् अनु विद्वांसः बभूवुः।

(ii) उप शब्द यदि अधिकता अथवा हीनता अर्थ में प्रयुक्त हो तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है[5]। उसके योग में पूर्ववत् द्वितीया होगी।

१. आचार्य उदयन तर्क में सबसे अधिक थे=आचार्यः उदयनः उप सर्वेषु तर्के बभूव।
२. शास्त्रार्थ में सब दयानन्द से हीन थे=उप दयानन्दं सर्वे बभूवुः शास्त्रार्थे।

(iii) परि शब्द की लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग और वीप्सा अर्थ में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[6] और तब उसके योग में पूर्ववत् द्वितीया। वर्जनार्थक और

---

१. कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया (अष्टा. २.३.८)।
२. पञ्चम्यपाङ्परिभिः (अष्टा. २.३.१०)
३. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी (अष्टा. २.३.९)।
४. अनुर्लक्षणे; तृतीयार्थे; हीने; लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (अष्टा. १.४.८४,८५,८६;९०)।
५. उपोऽधिके च (अष्टा. १.४.८७)।
६. लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (अष्टा. १.४.९०)।

अनर्थक परि भी कर्मप्रवचनीय कहलाता है, उसकी चर्चा पञ्चमी के प्रकरण में करेंगे।

१. किले की ओर बिजली चमक रही है = दुर्गम् परि विद्योतते विद्युत्।

२. श्रुतिधर गुरु के प्रति सज्जन है—श्रुतिधरः साधुः गुरुं परि।

३. इन रसगुल्लों में जो उसका हिस्सा हो वह उसे दे दो।
एषु रसगोलेषु यत् तं परि स्यात् तत् तस्मै देहि।

४. हर गुरुकुल में व्याकरणाचार्य हैं।
गुरुकुलं गुरुकुलं परि व्याकरणाचार्याः सन्ति।

(iv) प्रति शब्द की, 'लक्षण—इत्थंभूताख्यान—भाग-वीप्सा' इन अर्थों में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[1] और तद्योग में द्वितीया। प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में भी यह कर्मप्रवचनीय कहलाता है, उसकी चर्चा पञ्चमी-प्रसङ्ग में करेंगे।

१. पुष्कर की ओर बादल उमड़ रहे हैं=पुष्करं प्रति मेघाः प्रादुर्भवन्ति।

२. कुसुमलता अपने भ्राता जी के प्रति सज्जन है।
कुसुमलता साध्वी (मृद्वी) भ्रातरं प्रति।

३. उन गहनों में वह भाग लक्ष्मी का है, इसे उसे दे दो।
तेषु भूषणेषु तत् लक्ष्मीं प्रति विद्यते तत् तस्यै प्रयच्छ।

४. हर घर में बालक खेलते हैं=गेहं गेहं प्रति बालकाः रमन्ते।

(v) अभि शब्द की लक्षण, इत्थंभूताख्यान और वीप्सा इन अर्थों में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[2] और तद्योग में द्वितीया।

१. हृदय की तरफ पसलियां दुखती हैं=हृदयम् अभि पर्शवः पीड्यन्ते।

२. भारतीय गौओं के प्रति दयालु होते हैं=भारतीयाः गाः अभि दयालवः भवन्ति।

३. आज हर परिवार में झगड़ा है।
अद्यत्वे परिवारं परिवारम् अभि कलहः वर्तते।

(vi) सु शब्द की पूजा अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है[3]।

१. आपने बहुत अच्छी स्तुति की=सु स्तुतं भवता।

यहाँ कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा के कारण, उपसर्ग सञ्ज्ञाधीन षत्व[4] नहीं हुआ। क्योंकि कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होने के कारण यहां सु की उपसर्ग संज्ञा नहीं हुई।

(vii) अति शब्द की, अतिक्रमण और पूजा अर्थ में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[5] और उसके योग में अन्य शब्द से द्वितीया।

---

१. लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (अष्टा० १.४.९०)

२. अभिरभागे (अष्टा. १.४.९१)। ३. सुः पूजायाम् (अष्टा. १.४.९४)।

४. उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् (अष्टा. ८.३.६५)। ५. अतिरतिक्रमणे च (अष्टा. १.४.९५)।

१. भीमसेन मेरे से बढ़कर है—भीमसेनः माम् अति वर्तते ।

२. आपने बहुत अच्छा सींचा—अतिसिक्तं भवता ।

(viii) अपि शब्द की पदार्थ, सम्भावन, अन्ववसर्ग (अनुमति देना), गर्हा (निन्दा) और समुच्चय इन अर्थों में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है[1] ।

१. यह हजार मूलियों को सींच सकता है—अपि सिञ्चेत् मूलकसहस्रम् ।

२. धिक्कार है ऐसे रसोइये को जो स्वामी को विष दे दे।
धिक् एतादृशं सूपकारं (पाचकं) अपि स्वामिने गरलं दद्यात् ।

३. क्या वे गुरुजन मेरे हृदय से शङ्का रूपी कील उखाड़ देंगे ?
अपि ते गुरवः उत्पाटयेयुः मम हृदयात् शङ्काशङ्कुम् ?

४. क्या शङ्कारूपी कीचड़ से सने हुए मुझको वे धो देंगे ?
अपि शङ्कापङ्ककलङ्कित मां प्रक्षालयेयुः ?

५. क्या मेरे मित्र मुझे अपार दुःख के सागर से निकाल देंगे ?
अपि नाम मम मित्राणि माम् अपाराद् दुःखकूपारात् उद्धरेयुः ?

६. क्या वह दुष्टों की निन्दा नहीं करेगा ?
अपि सः दुष्टान् न विगायेत् (अवगायेत्) ?

[ङ] विना शब्द के योग में अन्य शब्दों से विकल्प से द्वितीया विभक्ति होती है[2] ।

१. बिना हवा के, बिना बरसात के, बिना बिजली गिरे और बिना हाथी के उजाड़ किये, ये दोनों पेड़ किसने गिरा दिये ?
'विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना ।
विना हस्तिकृतान् दोषान् केनेमौ पातितौ द्रुमौ ॥'

[च] एनप्-प्रत्ययान्त शब्द के योग में अन्य शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है[3] ।

१. भारत के दक्षिण में समुद्र और उत्तर में हिमालय है ।
भारतं दक्षिणेन महासागरः उत्तरेण च हिमालयः वर्त्तते ।
यहाँ षष्ठी भी हो सकती है ।

---

१. अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु (अष्टा. १.४.९६) ।

२. पृथग्विनानानाभिः (अष्टा. २.३.३२) इतने योगविभाग से ।

३. एनपा द्वितीया (अष्टा. २.३.३१) ।

[३] कालवाची शब्दों से और अध्ववाची (मार्गवाची) शब्दों से द्वितीया विभक्ति लगती है यदि अत्यन्त संयोग की प्रतीति हो रही हो तो[1]।

१. वह एक महीने तक दही खाता है=सः मासं दधि भुङ्क्ते।

२. हम दो कोस दौड़ते हैं=वयं द्वौ क्रोशौ (२.२) धावामः।

३. एक कोस तक नदी टेढ़ी है=क्रोशं कुटिला नदी।

[४] दूरवाची और समीपवाची शब्दों से विकल्प से द्वितीया विभक्ति होती है[2]।

१. मेरा खेत गांव से दूर है=मम क्षेत्रं ग्रामात् (ग्रामस्य) दूरं वर्त्तते।

२. साधु की कुटिया नदी के पास है=साधोः कुटी नद्याः अन्तिकम् अस्ति।

दूर और समीपवाचियों से पक्ष में तृतीया अथवा पञ्चमी अथवा सप्तमी भी हो सकती है।

तृतीया विभक्ति

[१] अनभिहित कर्ता कारक में और अनभिहित करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है[3]। कर्ता केवल कर्मवाच्य और भाववाच्य में ही अनभिहित होता है; अतः कर्ता कारक में तृतीया कर्मवाच्य या भाववाच्य में ही होती है, कर्तृवाच्य में नहीं। कर्तृवाच्य में तो कर्तृ अर्थ में होने वाले लकार[4] (तिङ् प्रत्यय) के द्वारा कर्ता अभिहित हो जाता है, अतः वहाँ तृतीया नहीं होगी, प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा ही होगी।

जो कारक क्रिया की सिद्धि में स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करता है उसे कर्ता कहते हैं।[5] स्वतन्त्र कर्ता को प्रेरित करने वाला (=प्रवृत्त करने वाला) भी कर्ता कहलाता है।[6] इस दूसरे प्रकार के कर्ता की 'हेतु' सञ्ज्ञा भी होती है।[6]

(i) १. राम के द्वारा रावण मारा गया=रामेण रावणः जघ्ने (अहन्यत)।

२. यह कोठी तो दस जनों से उठेगी
अयं कुसूलः तु दशभिः जनैः उत्थापयिष्यते।

---

१. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (अष्टा. २.३.५)।

२. दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च (अष्टा. २.३.३५)।

३. कर्तृकरणयोस्तृतीया (अष्टा. २.३.१८)।

४. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः (अष्टा. ३.४.६९)।

५. स्वतन्त्रः कर्ता (अष्टा. १.४.५४)

६. तत्प्रयोजको हेतुश्च (अष्टा. १.४.५५)

३. अधिष्ठाता जी ! ये कपड़े तो अध्यापक जी के द्वारा छात्रों से धुलवाये जा सकते हैं=अधिष्ठातृमहाभाग ! एतानि वासांसि तु अध्यापकमहोदयेन छात्रैः क्षालयितुं शक्यन्ते ।

जो कारक, क्रिया की सिद्धि में कर्ता का सबसे अधिक (अत्यधिक) सहायक हो उसकी करण सञ्ज्ञा होती है ।[1] अर्थात् जिसके बिना कर्ता कोई क्रिया नहीं कर सकता, उस साधन का नाम करण है । कुछ अकर्मक क्रियाओं को (जिनमें कि साधन की=करण की प्रतीति नहीं होती। जैसे सः शेते=वह सोता है) छोड़कर शेष सब क्रियाओं में करण, परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अवश्य अपेक्षित होता है । कई क्रियाओं में एक से अधिक करण (=साधन) हो सकते हैं । उन सभी में तृतीया विभक्ति होगी । यथा—'लिखति=लिखता है, क्रिया है । इसके लिखने की योग्यता, हाथ, क़लम, स्याही आदि अनेक करण हैं । अतः—'देवदत्तः योग्यतया हस्तेन लेखन्या मस्या पत्रं लिखति' इस वाक्य में योग्यता, हस्त, लेखनी और मसो इन सब करणों में तृतीया विभक्ति हुई ।

(ii) १. राम ने बाण से बाली को मारा=रामः बाणेन बालिं जघान ।

२. सैनिक बन्दूक से शत्रु को भेदता है=सैनिकः भुशुण्ड्या शत्रुं भिनत्ति ।

३. सांप सीने से चलता है=सर्पः उरसा गच्छति ।

४. प्रधानमन्त्री हवाई जहाज से यूरोप जाएगा ।
प्रधानमन्त्री वायुयानेन हरिवर्षं यास्यति ।

[२] सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म कारक में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है ।[2]

१. पिता को वह अच्छी तरह जानता है=पित्रा संजानीते ।
यहाँ यथाप्राप्त द्वितीया भी पक्ष में होगी । पितरं संजानीते

[३] जिस विकृत अङ्ग से किसी प्राणी का शरीर विकारयुक्त प्रतीत होता है, उस विकृतअङ्ग वाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती है ।[3]

१. मैं आंख से काणा हूं, पांव से लगड़ा नहीं हूं ।
अहं अक्ष्णा काणः अस्मि परं पादेन खञ्जः न अस्मि ।

---

१. साधकतमं करणम् (अष्टा. १.४.४२)
२. सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि (अष्टा. २.३.२२)
३. येनाङ्गविकारः (अष्टा. २.३ २०)

२. वहाँ कान से बहिरे, मुंह से गूंगे, सिर से गंजे और शरीर से बौने रहते हैं।

तत्र कर्णैः बधिराः, मुखैः मूकाः, शिरसा खल्वाटाः, शरीरेण च वामनाः निवसन्ति।

[४] जिस वस्तु से कोई पहिचाना जाये उससे तृतीया विभक्ति होती है।[1]

१. गेरुए वस्त्रों से आप संन्यासी प्रतीत होते हैं।

काषायवस्त्रैः भवान् मस्करी प्रति भाति।

२. पीले कपड़े वाले ब्रह्मचारी को मैंने देखा है।

पीतवस्त्रैः ब्रह्मचारिणम् अहम् अद्राक्षम्।

३. जटाओं से मैंने उसे तपस्वी जानकर उसे कम्बल दे दिया।

जटाभिः तं तापसं मत्वा तस्मै कम्बलं प्रायच्छम्।

४. ये लोग जनेऊ से द्विज प्रतीत होते हैं।

एते जनाः यज्ञोपवीतैः द्विजाः प्रतीयन्ते।

[५] हेतु (=कारण) में वर्तमान शब्दों से (=हेतुभूत शब्द से) तृतीया विभक्ति होती है।[2]

१. धन से कुल बढ़ता है=धनेन कुलम् एधते।

२. कुशिक्षा से शोक होता है=कुशिक्षया शोकः जायते।

३. विद्या से नम्रता आती है=विद्यया विनयः आगच्छति।

४. पुण्यों से आप जैसे दोस्तों का दर्शन किया।

पुण्यैः अहं भवादृशां सुहृदां दर्शनम् अकार्षम्।

५. देवदत्त गुणों से पूजा गया=देवदत्तः गुणैः अपूज्यत।

[६] सह (=साथ) वाची शब्दों के प्रयोग होने पर अप्रधान के वाचक शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है।[3]

१. राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन को गये।

रामः सीतालक्ष्मणाभ्यां सह वनं जगाम।

२. मेरा मित्र अपनी लड़की के साथ जोधपुर जायेगा।

मम मित्रं स्वदुहित्रा सत्रा (सह, सार्धं, समं) योधपुरं यास्यति।

३. इस शाला के अध्यापक, छात्रों के साथ काश्मीर जाने वाले हैं।

अस्याः शालायाः शिक्षकाः छात्रैः समं (सह, सार्धं, सत्रा) काश्मीरं गमिष्यन्तः सन्ति।

---

१. इत्थंभूतलक्षणे (अष्टा. २.३.२१)

२. हेतौ (अष्टा. २.३.२३)

३. सहयुक्तेऽप्रधाने (अष्टा. २.३.१९)

[७] प्रकृति, प्रायः, सम, विषम, गोत्र आदि शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है[१]।

१. सज्जन पुरुष प्रकृति से ही दयालु होते हैं।
सज्जनाः प्रकृत्या (स्वभावेन) एव दयालवः भवन्ति।

२. जो स्वभाव से कंजूस होते हैं, उनके संतान प्रायः दुःख पाते हैं।
ये प्रकृत्या कृपणाः भवन्ति, तेषाम् अपत्यानि प्रायेण दुःखं लभन्ते।

३. अलवर के कई परिवार प्रायः यज्ञ करते हैं।
अलवरनगरस्य नैके परिवाराः प्रायेण याज्ञिकाः सन्ति।

४. ये बच्चे ऊबड़ खाबड़ मार्ग से दौड़ते हुए ,सपाट रास्ते से दौड़ने वालों से कैसे होड़ करेंगे ?
एते शिशवः विषमेण मार्गेण धावन्तः, समेन मार्गेण धावद्भिः शिशुभिः सह कथं स्पर्धिष्यन्ते ?

५. ये पण्डितजी वर्ण से ब्राह्मण और गोत्र से दाधीच हैं।
अयं पण्डितमहाभागः वर्णेन ब्राह्मणः गोत्रेण च दाधीचः अस्ति।

६. उदयन ने दस रुपयों में पन्द्रह पेंसिलें खरीदी थीं।
उदयनः दशभिः रूप्यकैः पञ्चदश मसीगर्भाः लेखनीः अक्रीणात्।
(अक्रैषीत्; अक्रीणीत, अक्रेष्ट)।

[८] अपवर्ग अर्थात् फलप्राप्ति होने पर क्रिया की समाप्ति के विषय में कालवाची और मार्गवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है[२]।

१. मैंने पांच वर्षों में दर्शन पढ़ लिये।
अहं पञ्चभिः वर्षैः दर्शनानि अध्यगीषि (अध्यैषि, अपाठिषम्)।

२. उसने एक कोस जाकर आम पा लिये।
सः एकेन क्रोशेन आम्राणि प्रापत्।

३. रेलयात्रा में दस मील में देवेन्द्र पन्द्रह कचौरी खा गया।
रेलयात्रायां देवेन्द्रः पञ्चभिः क्रोशैः पञ्चदश घृतपूरीः अभक्षयत्।

जहाँ फलप्राप्ति नहीं होगी वहाँ इनसे द्वितीया ही होती है[३]।

उसने दश वर्ष व्याकरण पढ़ा पर कुछ नहीं आया।
सः दश वर्षाणि व्याकरणम् अपठत् किन्तु अज्ञः एव अतिष्ठत्।

---

१. तृतीयाविधाने प्रकृत्यादीनामुपसंख्यानम् [वा०] (अष्टा. २.३.१८)।
२. अपवर्गे तृतीया (अष्टा. २.३.६)।
३. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (अष्टा. २.३.५)।

[९] पृथक्, विना और नाना इन शब्दों का प्रयोग हो तो अन्य शब्दों से विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है[1]।

१. तू उस दुष्ट से अलग रहकर ही सुख पायेगा।
त्वं तेन खलेन पृथक् उषित्वा एव सुखं प्राप्स्यसि।

२. धर्म के बिना विद्या शोभा नहीं देती=धर्मेण विना न शोभते विद्या।

३. आंख के विना मनुष्य कुछ नहीं देख सकता।
नयनेन नाना (विना) ना (नरः) न किमपि निरीक्षितुं शक्नोति।

इनके योग में पक्ष में पञ्चमी भी होती है[1]।

[१०] दूरवाची और समीपवाची शब्दों से विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है[2]।

१. अशोक का घर श्रुतिधर के घर से दूर है।
अशोकस्य गृहं श्रुतिधरस्य गृहात् दूरेण अस्ति।

२. उस पर्वत के समीप ही मीठे पानी का तालाब है।
तस्मात् पर्वतात् समीपेन (अन्तिकेन, अभ्यर्णेन, अभ्याशेन) एव मधुरनीरवान् सरोवरः अस्ति।

३. परमेश्वर पापियों से दूर और पुण्यात्माओं के समीप है।
परमेश्वरः पापिभ्यः दूरेण पुण्यात्मभ्यः च समीपेन (निकटेन, अन्तिकेन) अस्ति।

दूरवाची और समीपवाची शब्दों से पक्ष में द्वितीया, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियां भी होती हैं[2]।

[११] तुल्यवाची शब्दों का प्रयोग हो तो अन्य शब्दों से विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है[3]। परन्तु 'तुला' और 'उपमा' इन दो शब्दों के प्रयोग के विषय में यह नियम लागू नहीं होगा, वहाँ षष्ठी ही होगी।

१. राम जैसा धनुर्धारी संसार में दूसरा नहीं हुआ।
रामेण तुल्यः (सदृशः, सदृक्षः, सदृक्; सन्निभः, समानः) धनुर्धरः जगति अन्यः न बभूव।

२. दयानन्द के समान सत्य के पक्षपाती मिलने कठिन हैं।
दयानन्देन समानाः (तुल्याः, सदृशाः, सन्निभाः) सत्यपक्षपातिनः दुर्लभाः खलु।

---

१. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् (अष्टा. २.३.३२)।

२. दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च (अष्टा. २.३.३५)।

३. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् (अष्टा. २.३.७२)।

[१२] अशिष्ट व्यवहार में अर्थात् जहाँ शास्त्रनिषिद्धकर्म के (बुरे कर्म के) निमित्त कुछ दिया जाय वहाँ जिसको धनादि दिया जाय उसमें तृतीया विभक्ति होती है[1]।

१. उसने सारा धन वेश्याओं को दे दिया। सः समस्तं धनं वाराङ्गनाभिः अदित[2]

२. वेश्या ने ऋषि के वध के लिए रसोइये को धन दिया।
वाराङ्गना ऋषेः वधाय सूपकारेण द्रविणम् ददे[2]।

चतुर्थी विभक्ति

[१] सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है[3]।

सम्प्रदान कारक ग्यारह प्रकार का होता है।

(i) कर्ता साधनरूप बने हुए कर्म के द्वारा जिसके सामीप्य को प्राप्त करता है जिसे स्वानुकूल करता है, उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं[4]। इसे स्थूल रूप में ऐसा कह सकते हैं कि देने की क्रिया में जिसे वस्तु दी जाती है, उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है। और सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति। यथा-तेजोरामः श्रीमते ईश्वरचन्द्राय स्वर्णं प्रयच्छति=तेजोराम श्री ईश्वरचन्द्र जी को सोना देता है। धनिक लोग गरीबों को वस्त्र देते हैं=धनिकाः निर्धनेभ्यः वस्त्राणि ददति (ददते, ददन्ते)। जनक ने याज्ञवल्क्य को एक हजार गायें दीं=जनकः याज्ञवल्क्याय सहस्रं गाः प्रादात् (प्रददौ)।

यहां थोड़ा सा देने की क्रिया में दीयमान वस्तु की सत्ता या असत्ता के विषय में विचार करना अपेक्षित है। ऊपर के तीनों उदाहरण-वाक्यों में देने की क्रिया है और स्वर्ण, वस्त्र और गौ ये दीयमान वस्तुएँ हैं। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि देने की क्रिया तो होती है पर वहां वस्तु दूसरे को दे नहीं दी जाती अर्थात् उस वस्तु पर से अपना अधिकार समाप्त करके उस पर दूसरे का अधिकार नहीं कराया जाता,[5] अपितु किसी विशेष प्रयोजन से वह वस्तु किसी को कुछ काल के लिए दी जाती है। यथा—धोबी को कपड़े मात्र प्रक्षालनार्थ उसे सौंपे जा रहे हैं उन पर धोवी का स्वत्व स्थापित नहीं किया जा रहा। भट्टोजीदीक्षित आदि का मत है कि ऐसे स्थानों पर 'धोबी' आदि की सम्प्रदान सञ्ज्ञा नहीं होनी चाहिए और अतएव चतुर्थी विभक्ति भी

---

१. अशिष्टव्यवहारे तृतीया चतुर्थ्यर्थे भवतीति वक्तव्यम् (अष्टा. १.३.३५ [वा.])।

२. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे (अष्टा. १. ३. ५५) से आत्मनेपद।

३. चतुर्थी सम्प्रदाने (अष्टा. २. १३)

४. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (अष्टा. १. ४. ३२)

५. 'स्वस्वत्वनिवृत्ति-पूर्वकं परसत्त्वोत्पादनं दानम्' दान उसे कहते हैं कि जब हम किसी को कोई पदार्थ दान करते हैं तब उस पदार्थ में हमारा कोई अपनापन नहीं रह जाता अपितु उस पर दूसरे का स्वत्व हो जाता है।

नहीं होनी चाहिए, अपितु शेष में षष्ठी विभक्ति होनी चाहिए—'रजकस्य वस्त्राणि प्रयच्छति'। अर्थात् इन लोगों का मन्तव्य है कि, देने की क्रिया में जिसे वस्तु दी जाती है उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा तभी होगी जब कोई वस्तु उसे स्वस्वत्व-निवृत्ति-पूर्वक तत्स्वत्व-निर्माणाय दी जाए। किन्तु महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि देने की क्रिया-मात्र में जिसे कुछ दिया जाय उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा मानते हैं। उनका यह अभियत उनके द्वारा प्रयुक्त इस वाक्य से स्पष्ट हो रहा है—'खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटिकां ददाति'=वेदाध्यापक [गलती करने पर] शिष्य को चपत लगाता है। यहां कोई खास वस्तु देने के लिए नहीं है, फिर भी देने मात्र में चतुर्थी विभक्ति हुई।

मैं तो महाभाष्यकार के सिद्धान्त को ही प्रामाणिक मानता हूं और देने मात्र में सम्प्रदान सञ्ज्ञा और तदनुसार चतुर्थी विभक्ति करना उपयुक्त समझता हूं।

(ii) क्रिया के द्वारा कर्ता जिसको स्वानुकूल करता है उसकी भी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है[1] और फलतः उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है।

इस प्रकार के सम्प्रदान और उसके उदाहरणों के विषय में व्याकरण पढ़ने पढ़ाने वालों में बहुत भ्रम फैला हुआ है। भट्टोजी दीक्षित (=कौमुदीकार) आदि ने भी इसे ढंग से स्पष्ट नहीं किया है और जो उदाहरण दिये हैं वे भी अनुचित हैं। इस विषय को, काशी के प्रसिद्ध वैयाकरण महाभाष्य आदि के अद्वितीय अध्यापक श्री हरनारायण जी तिवारी बहुत अच्छी तरह समझाते थे। मेरे गुरु पं० ईश्वरचन्द्र जी दर्शनाचार्य, तिवारी जी को पाणिनि का अवतार मानते हैं। मुझे भी श्री तिवारी जी के श्री मुख से व्याकरण सुनने का शुभावसर प्राप्त हुआ है। श्री तिवारी जी ने इस सम्प्रदान के विषय को इस प्रकार समझाया था—'जब मनुष्य स्वयं कोई क्रिया करके अन्य से भी वही क्रिया करवाना चाहता है, तो जिससे क्रिया करवाना अभीष्ट है उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।' दूसरे शब्दों में जिस मनुष्य से कोई क्रिया करवाने के उद्देश्य से उसके उत्साहनार्थ मनुष्य स्वयं क्रिया करता है, उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है और अतएव उससे चतुर्थी विभक्ति। उदाहरणार्थ—

१. विद्यालय में छात्रों को झाड़ू लगानी चाहिये। परन्तु आलस्यादिवश छात्रों ने ऐसा नहीं किया। गुरु जी को जब इस बात का ज्ञान हुआ तब उनको वाणी से कुछ न कहकर, उनको झाड़ू लगाने की क्रिया में उत्साहित करने के लिये वे स्वयं झाड़ू देने लगते हैं। इस बात का वर्णन— 'गुरु शिष्यों के लिये झाड़ू लगाता है' इस वाक्य में हुआ। यहां गुरु कर्ता कारक है और शिष्य सम्प्रदान कारक है, अतः शिष्य में चतुर्थी होगी—'गुरुः शिष्येभ्यः मार्जनं करोति'।

२. रात को सोने का समय हो गया है। सब अपने-अपने बिस्तरों पर सोने

---

१. क्रिययाऽपि यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् [वा०] (अष्टा. १. ४. ३२)

लग रहे हैं। पत्नी को भी सोना है, परन्तु उसके पति किसी विषय पर निरन्तर बात करते जा रहे हैं। तब पत्नी उनको भी सोने के लिये बाधित करने को स्वयं अक्षि-निमीलन, ऊंघ और खर्र्-खर्र् आदि की ध्वनि के द्वारा सोने की क्रिया प्रदर्शित करती है—सोती है। तब कहा जायेगा—पत्नी पति के लिये [=पति को सुलाने के लिये] सोती है='पत्नी पत्ये शेते।'

३. बच्चा हठ करके दूध नहीं पी रहा। गिलास मुंह से लगाते हैं, वह हटा देता है। हारकर माता ने उसे दूध पिलाने का उपाय यही विचारा कि, स्वयं उस दूध को पीने का उपक्रम करें, जिससे बच्चा दूध के गिलास को छीन ले।—'माता शिशु के लिये (=शिशु को पिलाने के उद्देश्य से) दूध पीती है'='माता शिशवे पयः पिबति'।

(iii) रुचि अर्थ वाली (=अच्छा लगना अर्थ वाली) धातुओं के प्रयोग में जिसे कोई वस्तु अच्छी लगती है उस प्राणी की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है[1] और फलतः उससे चतुर्थी विभक्ति।

१. देवदत्त को लड्डू अच्छे लगते हैं=देवदत्ताय रोचन्ते मोदकाः।

२. सुमित्रा को दाल का हलुआ स्वाद लगता है=सुमित्रायै द्विदलसंयावः स्वदते।

३. ऊंट को कांटे अच्छे लगते हैं=क्रमेलकाय कण्टकाः रोचन्ते।

(iv) श्लाघ, ह्नुङ्, स्था और शप धातुओं के प्रयोग में जिसे ये क्रियाएँ जताना अभिप्रेत हैं, उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा होती है[2] और उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

इस विषय को इस प्रकार समझना चाहिये कि प्रशंसा करके, छिपाकर, ठहरकर अथवा कसम खाकर किसी को श्रद्धा या प्रेम दिखलाना हो तो जिसके प्रति श्रद्धा अथवा प्रेम दिखाया जाय उस कारक की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है और अतएव उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—

१. मित्र की प्रशंसा करता है=मित्राय श्लाघते (अर्थात् तत्प्रशंसया स्वानुरागं प्रकटयति)।

२. गुरु की प्रशंसा करता है=गुरवे श्लाघते (अर्थात् तत्प्रशंसया गुरुं प्रसादयति)।

३. कभी कोई बच्चा पिता का अपराध करके माता के पास चला जाता है। माता कसम खाकर पुत्र को छिपा लेती है=माता पुत्राय ह्नुते (अर्थात् अपह्नुत्या वात्सल्यं दर्शयति)।

---

१. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः (अष्टा० १.४.३३)

२. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः (अष्टा० १.४.३४)

४. कभी कभी गुरु जी पैदल चल रहे होते हैं और उनका शिष्य कार में जा रहा होता है, तो गुरु जी को देखकर वह कार रोक लेता है—ठहर जाता है—ठहर कर उनके प्रति श्रद्धा दिखाता है। तब वाक्य प्रयोग होगा—शिष्य गुरु के लिये ठहरता है=शिष्यः गुरवे तिष्ठते।

५. किसी प्रसङ्ग में कोई मित्र के लिए कसम खाकर गवाही देता है, तब वाक्य का प्रयोग होगा—

मित्र के लिये कसम खाता है=मित्राय शपते (अर्थात् शप्त्या अनुरागं दर्शयति)।

(v) धारि (धृ+णिच्) धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (=ऋण देने वाले) कारक की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है[1] और उस सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है।

कर्जदार नरेन्द्र सुरेन्द्र के पचास रुपये लिये बैठा है।
अधमर्णः नरेन्द्रः सुरेन्द्राय पञ्चाशतं रूप्यकाणि धारयति।

(vi) स्पृह् धातु के प्रयोग में जिसको प्राप्त करने की इच्छा की जाय (=जिसका लालच किया जाय) उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।[2] फलतः उसमें चतुर्थी विभक्ति होगी।

मैंने कभी धन का लालच नहीं किया।
न जातुचित् धनाय अपस्पृहम् (अस्पृहयम्) अहम्।

(vii) क्रोध, द्रोह (=मारने की इच्छा, बुरा चाहना), ईर्ष्या और असूया (=गुणों में भी दोष ढूंढ़ना) इन अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में, जिसके प्रति क्रोध आदि किया जाता है उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।[3] और अतएव उससे चतुर्थी विभक्ति।

१. राजा दुष्टों पर क्रोध करता है=नृपः दुष्टेभ्यः क्रुध्यति।

२. दुर्जन सज्जनों से द्रोह करते हैं=दुर्जनाः सज्जनेभ्यः द्रुह्यन्ति।

३. मूर्ख गुणियों से ईर्ष्या करते हैं=मूर्खाः गुणिभ्यः ईर्ष्यन्ति।

४. वह मेरे में दोष निकालता है=सः मह्यम् असूयति।

अपराध क्रिया में भी जिसके प्रति अपराध किया जाय उसमें चतुर्थी का प्रयोग होता है।

---

१. धारेरुत्तमर्णः (अष्टा० १.४.३५)
२. स्पृहेरीप्सितः (अष्टा० १.४.३६)
३. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (अष्टा० १.४.३७)

श्लोक—न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति ।
यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम् ॥[1]

श्री कृष्ण जी कहते हैं—मुझे इस बात का दुःख नहीं है कि शिशुपाल मेरे प्रति अपराध कर रहा है। किन्तु उसके कारण प्रजा का जो उत्पीड़न हो रहा है, यही बात मुझे परेशान कर रही है।

क्रुध् और द्रुह् धातुओं का उपसर्ग-सहित प्रयोग होगा तो जिसके प्रति क्रोध या द्रोह किया जा रहा है उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा नहीं होगी, अपितु कर्म सञ्ज्ञा होगी, जैसा कि द्वितीया विभक्ति के प्रकरण में सोदाहरण समझा दिया गया था।

(viii) राध और ईक्ष धातु के प्रयोग में उस कारक की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है, जिसके विषय में विविध प्रश्न किये जाते हैं।[2] सम्प्रदानत्व के कारण उससे चतुर्थी विभक्ति होगी।

कोई पिता अपने बालक को किसी मनोविज्ञान-शास्त्र के विशेषज्ञ के पास ले जाता है। वह विशेषज्ञ उस बालक की जांच पड़ताल करता है। तब उस बालक के विकास तथा भविष्यत्-सम्भावनाओं के विषय में पिता उस विशेषज्ञ से अनेक बातें पूछता है। उस विषय में वाक्य बनेगा—पिता पुत्र के विषय में पूछता है।=पिता पुत्राय राध्यति (ईक्षते)।

(ix) प्रति और आङ् उपसर्ग पूर्वक श्रु धातु प्रतिज्ञा करने अर्थ में प्रयुक्त होती है। प्रतिश्रु और आश्रु के प्रयोग में उस कारक की सम्प्रदानसञ्ज्ञा होती है, जो कि पूर्वक्रिया का कर्ता हो।[3] प्रतिज्ञा-क्रिया में पूर्व क्रिया की अपेक्षा रहती है। 'देवेन्द्र नरेन्द्र से रेडियो मांगता है और नरेन्द्र, देवेन्द्र को रेडियो देने की प्रतिज्ञा करता है' इस वाक्य में 'मांगना' पूर्व क्रिया है और प्रतिज्ञा करना उत्तर क्रिया है। पूर्वक्रिया के कर्ता देवेन्द्र की उत्तर वाक्य में (वाक्य के उत्तरांश में)—प्रतिज्ञाक्रिया के प्रसङ्ग में सम्प्रदान सञ्ज्ञा होगी और चतुर्थी विभक्ति।

देवेन्द्रः नरेन्द्रम् आकाशवाणीयन्त्रं याचति (याचते), नरेन्द्रः देवेन्द्राय आकाशवाणीयन्त्रं प्रतिशृणोति (आशृणोति)।

२. यजमान पुरोहित को गाय देने का वचन देता है।
यजमानः पुरोहिताय गाम् आशृणोति (प्रतिशृणोति)।

३. ओम्प्रकाश वैद्यराज तथा देवेन्द्र कपूर ने मेरे सारे जीवन का व्यय भार लेने की प्रतिज्ञा की।

---

१. शिशुपालवध (२.११)
२. राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः (अष्टा० १.४.३९)
३. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता (अष्टा० १.४.४०)

ओम्प्रकाशवैद्यराजः देवेन्द्रकर्पूरश्च मम व्ययभारम् आजीवनं वोढुं मह्यं प्रत्यश्रौष्टाम् (आश्रौष्टाम्; प्रत्यशृणुताम्, आशृणुताम्)।

(x) परिक्रयण क्रिया (=किसी को वेतन आदि के द्वारा कुछ निश्चित समय के लिये खरीद लेना=वेतन पर रख लेना) में साधकतम (=साधनभूत वेतन, रुपये आदि) कारक की विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है।[1]

महेश योगी ने धन से तीन लेखकों को दो वर्ष के लिये खरीद लिया।

महेशः योगी धनाय त्रीन् लेखकान् द्वे वर्षे यावत् अक्रीणात् (अक्रीणीत)।

पक्ष में यथाप्राप्त करण सञ्ज्ञा और उससे तृतीया विभक्ति भी होगी।

(xi) अनु और प्रति उपसर्गपूर्वक गॄ (शब्दे) धातु के प्रयोग में पूर्वक्रिया के कर्ता कारक की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है[2] और अतएव उससे चतुर्थी विभक्ति भी होती है।

होता नामक ऋत्विक् पहिले मन्त्रोच्चारण करता है, तब उसे उत्साहित करने के लिये दूसरा ऋत्विक् भी मन्त्रों का अनूच्चारण अथवा प्रत्युच्चारण करता है। यहां होता की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होगी। होत्रे अनुगृणाति (होत्रे प्रतिगृणाति)।

[२] तुमुन् प्रत्यय के अर्थ को द्योतित करने वाले अर्थात् तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्द के समान अर्थ वाले भाववाचक शब्द से (भाव-प्रत्ययान्त शब्द से) चतुर्थी विभक्ति होती है[3]।

१. पकाने के लिये जाता है=पाकाय व्रजति (पक्तुं व्रजति)।

२. गाय दुहने के लिये जाता है=गोदोहनाय गच्छति (गां दोग्धुं गच्छति)।

३. धन के लाभ के लिये जाता है=धनलाभाय (धनलभायै[4]) गच्छति (धनं लब्धुं गच्छति)।

४. आत्मा को तृप्त करने सभा में जाता है।
आत्मतृप्तये सभां गच्छति (=आत्मानं तर्पितुं सभां गच्छति)।

---

१. परिक्रमणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् (अष्टा० १.४.४४)

२. अनुप्रतिगृणश्च (अष्टा० १.४.४१)

३. तुमर्थाच्च भाववचनात् (अष्टा. २.३.१५)।

४. 'लभा' शब्द भावशब्द है। (डुलभष्)=लभ् धातु षित् है, अतः षिद्भिदादिभ्योऽङ् (अष्टा. ३.३.१०४) से भाव-स्त्रीत्व में अङ् प्रत्यय हुआ। क्रमशः टाप् होने पर 'लभा' बना। लभा=लाभः।

[३] नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन शब्दों का प्रयोग होने पर अन्य शब्दों से चतुर्थी विभक्ति होती है[1]।

१. गुरुजनों को नमस्कार होवे=गुरुभ्यः नमः अस्तु।
२. सब प्रजाओं का कल्याण होवे=सर्वाभ्यः प्रजाभ्यः स्वस्ति भवतु।
३. मित्र और वरुण के लिये स्वाहा=मित्रावरुणाभ्यां स्वाहा।
४. दादा और दादी के लिये स्वधा (अन्न) है=पितामहाय पितामह्यै च स्वधा अस्ति।
५. चन्दगीराम इन पहलवानों के लिए पर्याप्त है।
   चन्दगीरामः एभ्यः मल्लेभ्यः अलम्।
६. अग्नि के लिये वषट्=अग्नये वषट्।

पहिले समझाया गया था कि विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं उपपद-विभक्ति और कारक-विभक्ति। जो विभक्ति किसी शब्द में किसी उपपद (समीपस्थ पद) के कारण लगती है उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं, जैसे अभी इसी नियम में बताया गया था कि नमः स्वस्ति आदि शब्दों के योग में साथ वाले अन्य शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। जहाँ किसी शब्द की कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि कारक सञ्ज्ञा पहिले की जाती है और तदनन्तर उससे कोई विभक्ति होती है, उसे कारक-विभक्ति कहते हैं, जैसा कि ऊपर ग्यारह प्रकार के शब्दों की सम्प्रदान संज्ञा हुई थी और उनसे चतुर्थी विभक्ति।

कहीं कहीं वाक्य प्रयोग में ऐसा प्रसङ्ग आ जाता है जहाँ यह समस्या उपस्थित होती है कि, यहाँ उपपदविभक्ति करें अथवा कारकविभक्ति करें? जैसे—'वह गुरुजनों को नमस्कार करता है' इस वाक्य में 'नमस्' उपपद होने के कारण तो गुरु शब्द से चतुर्थी विभक्ति (=चतुर्थी उपपदविभक्ति) होनी चाहिये किन्तु कारक की दृष्टि से गुरु कर्म कारक है अतः 'कर्मणि द्वितीया' के नियम से द्वितीया विभक्ति (द्वितीया कारक-विभक्ति) होनी चाहिये। ऐसी परिस्थितियों के लिए वैयाकरणों ने एक नियम बना रखा है 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिः बलीयसी' अर्थात् उपपद-विभक्ति से कारक-विभक्ति अधिक बलवान् होती है। इस व्यवस्था के अनुसार उपर्युक्त वाक्य में कारकानुसारी द्वितीया विभक्ति होगी—

वह गुरुजनों को नमस्कार करता है।
सः गुरुजनान् नमस् करोति।

[४] मन् (मन्य) धातु के उपमान-भूत कर्म कारक (प्राणी को छोड़कर)

---

१. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च (अष्टा. २.३.१६)।

में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है यदि अनादर का विषय हो तो[1]। पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीया भी होगी।

१. मैं तुझे तिनके के समान मानता हूं—अहं त्वां तृणाय मन्ये (तृणं मन्ये)।

२. मैं तेरे धन को धूल के समान समझता हूं।
अहं त्वदीयं धनं पांसुभ्यः मन्ये (पांसून् मन्ये)।

३. अभयसिंह शत्रुओं को गोबर के समान मानता है।
अभयसिंहः शत्रून् गोमयाय मन्यते (गोमयं मन्यते)।

[५] गति अर्थवाली धातुओं के (मार्ग से भिन्न) कर्म कारक में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है, यदि चेष्टा की प्रतीति हो रही हो तो[2]। पक्ष में द्वितीया भी होगी।

१. बालक प्रातःकाल विद्यालय को जाते हैं।
बालकाः प्रातः विद्यालयाय गच्छन्ति (विद्यालयं गच्छन्ति];

२. नागरिक घूमने को बगीचे में जाते हैं।
नागरिकाः भ्रमितुम् उद्यानाय गच्छन्ति (उद्यानं गच्छन्ति)।

[६] क्रियार्था क्रिया उपपद में हो जिसके ऐसी साध्य अप्रयुक्त क्रिया के कर्म कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है[3]। 'फूलों को लाने के लिये जाता है' यहां दो क्रियाएं हैं एक साध्य क्रिया और दूसरी साधन क्रिया। 'लाना' यह साध्य क्रिया है और 'जाना' यह साधन क्रिया है। साध्य क्रिया को मुख्य क्रिया भी कहा जाता है और साधन क्रिया को 'क्रियार्था क्रिया' कहते हैं, क्योंकि वह क्रिया स्वयं किसी अन्य क्रिया के लिये है। उपर्युक्त वाक्य में 'लाना' रूप साध्य क्रिया तथा 'जाना' रूप क्रियार्था क्रिया दोनों प्रयुक्त हैं, किन्तु उसी बात को जब 'फूलों के लिये जाता है' इस प्रकार कहा जाता है तो यहां साध्य क्रिया ('लाना' रूप क्रिया) अप्रयुक्त है और तब भी क्रियार्था क्रिया 'जाना' उपपद में है ही, अतः साध्य क्रिया (लाना) के कर्म कारक पुष्प से चतुर्थी विभक्ति होगी।

१. फूलों के लिये जाता है—पुष्पेभ्यः व्रजति [=पुष्पान् आहर्तुं व्रजति]

२. ज्ञान के लिये पढ़ता है—ज्ञानाय पठति [=ज्ञानं लब्धुं पठति]

३. यश के लिये लड़ता है—यशसे युध्यते [यशः वितनितुं युध्यते]

---

१. मन्यकर्मण्यनादरे विभाषा ऽप्राणिषु (अष्टा. २.३.१७)।

२. गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि (अष्टा. २.३.१२)।

३. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (अष्टा. २.३.१४)।

[७] आशीर्वाद विषय में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित इन शब्दों का प्रयोग हो तो इनके साथ वाले शब्द से चतुर्थी विभक्ति विकल्प से होती है।[1] पक्ष में षष्ठी भी होगी।

१. देवदत्त की दीर्घ आयु हो।
देवदत्ताय दीर्घम् आयुष्यं भूयात् [पक्षे—देवदत्तस्य दीर्घं०]

२. दु:खियों को आनन्द होवे।
दु:खिभ्य: मद्रं भूयात् [पक्षे—दु:खिनाम् मद्रं भूयात्]

३. प्राणिमात्र का भला हो।
प्राणिमात्राय भद्रं भूयात् [पक्षे—प्राणिमात्रस्य भद्रं भूयात्]

४. तुम सबका कुशल हो।
युष्मभ्यं कुशलं भूयात् [पक्षे—युष्माकं कुशलं भूयात्]

५. गौओं को सुख हो=गोभ्य: सुखं भवतु [पक्षे—गवां सुखं भवतु]

६. गृहस्थ का अर्थ होवे=गृहस्थाय अर्थ: भूयात् [पक्षे—गृहस्थस्य अर्थ: भूयात्]

७. सब प्राणियों का हित हो।
सर्वभूतेभ्य: हितं भवतु [पक्षे—सर्वभूतानां हितं भवतु]

[८] तादर्थ्य में [='उसके लिये यह' इस अर्थ में] चतुर्थी विभक्ति होती है।[2]

१. हे पुत्र ! यज्ञस्तम्भ के लिये लकड़ी ला=हे पुत्र ! यूपाय दारु आनय।

२. मैं आज कुण्डल के लिये सोना लाऊँगा=अहम् अद्य कुण्डलाय हिरण्यम् आनेष्यामि।

३. इस बिचारे के पास रांधने के लिये बटलोई भी नहीं है।
अस्य वराकस्य समीपे रन्धनाय स्थाली अपि नास्ति।

४. जौओं के खांडने के लिये ओखली बहुत जरूरी है।
यवानाम् अवहननाय उलूखलम् अत्यन्तम् आवश्यकम् अस्ति।

[९] क्लृप् अर्थवाली [समर्थ होना अर्थवाली] धातुओं के प्रयोग में सम्पद्यमान [=उत्पद्यमान] वस्तु के वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है[3]।

---

१. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्राकुशलसुखार्थहितैः (अष्टा० २.३.७३)
२. चतुर्थीविधाने तादर्थ्ये उपसंख्यानम् [वा०] (अष्टा० २.३.१३)
३. क्लृपिसम्पद्यमाने चतुर्थी वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.३.१३)

१. दलिया बहुत मूत्र लाता है=यवागूः मूत्राय कल्पते।
२. कद्दू बहुत मल उत्पन्न करता है=कूष्माण्डः मलाय सम्पद्यते।
३. भैंस का दूध बुद्धिमान्द्य लाता है=महिषीदुग्धं मतिमान्द्याय जायते (कल्पते)।

[१०] दैवी उत्पात के विषय में सूच्यमान वस्तु में चतुर्थी विभक्ति होती है।[1]

श्लोक—वाताय कपिला विद्युद् आतपायातिलोहिनी।
पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

भूरे रंग की बिजली तेज हवा चलने की सूचना देती है, गहरी लाल बिजली तीव्र धूप पड़ने को सूचित करती है। पीले रंग की बिजली वर्षा के आगमन को बताती है और सफेद रंग की बिजली अकाल (=दुर्भिक्ष) को सूचित करती है।

[११] कहीं कहीं षष्ठी के अर्थ में [सम्बन्ध आदि अर्थों में] भी चतुर्थी विभक्ति होती है।[2]

१. जो ऋतुकाल में दांतों को धोती है, उसके काले दांत वाला जन्मता है।
या ऋतुकाले दतः धावति तस्यै श्यावदन् जायते।
२. जो नख काटती है, उसके खराब नख वाला जन्मता है।
या नखानि कृन्तति तस्यै कुनखः जायते।
३. जो अञ्जन लगाती है उसके काणा जन्मता है।
या अङ्क्ते तस्यै काणः जायते।

पञ्चमी विभक्ति

[१] अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है[3]।

अपादान कारक नौ प्रकार का है।

(i) अपाय की (दूर होने की) क्रिया में जो वस्तु ध्रुव अर्थात् स्थिर होती है, उसकी अपादान सञ्ज्ञा है[4]। उससे पञ्चमी विभक्ति होगी।

१. वृक्ष से पीले पत्ते गिरते हैं=वृक्षात् पीतानि पत्राणि पतन्ति।
२. पहाड़ से बकरियाँ उतरती हैं=पर्वतात् अजाः अवरोहन्ति।
३. मैं बचपन में दौड़ते घोड़े से लुढ़क गया।
अहं बाल्ये धावतः (धावमानात्) अश्वात् अलुठम्।

---

१. उत्पातेन ज्ञाप्यमाने चतुर्थी वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.३.१३)
2. षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.३.६२)
३. अपादाने पञ्चमी (अष्टा. २.३.२८)।
४. ध्रुवमपायेऽपादानम् (अष्टा. १.४.२४)।

(ii) जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना) और प्रमाद (लापरवाही) इन अर्थों वाली क्रियाओं के उस कारक की अपादान सञ्ज्ञा होती है जिससे घृणा की जाय अथवा जिससे रुका जाय अथवा जिसके प्रति लापरवाही बरती जाय[1]।

१. सज्जन सदा पाप से घृणा करते हैं=सज्जनाः सदा पापात् जुगुप्सन्ते।

२. ये छात्र अधर्म से विरत रहते हैं=एते छात्राः अधर्माद् विरमन्ति।

३. जो धर्म में प्रमाद करते हैं वे दुःख पाते हैं=ये धर्मात् प्रमाद्यन्ति ते दुःखं लभन्ते।

(iii) भय अर्थ वाली और रक्षा अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में भय के हेतु रूप कारक की अपादान संज्ञा होती है[2]। उस अपादान से पञ्चमी विभक्ति होती है।

१. प्रमादी छात्र घर में पिता से और विद्यालय में अध्यापक से डरते हैं।
प्रमादिनः छात्राः गृहे पितुः विद्यालये च अध्यापकात् बिभ्यति।

२. वह वन में शेर से और घर में सांप से डरता ही रहता है।
सः वने सिंहात् गृहे च सर्पात् सदा बिभेति।

३. वैद्य रोगों से बचाता है=वैद्यः रोगेभ्यः त्रायते।

४. डण्डा चोरों, कुत्तों और पशुओं से रक्षा करता है।
दण्डः चौरेभ्यः कुक्कुरेभ्यः पशुभ्यः च रक्षति।

(iv) परा उपसर्ग पूर्वक जि धातु के प्रयोग में उस कारक की अपादान संज्ञा होती है जो सहन नहीं किया जा सकता हो (असह्य हो)।[3] उससे पञ्चमी विभक्ति होती है।

१. वह सरदी सहन नहीं करता है अथवा सरदी से पराभूत होता है।
सः शैत्यात् पराजयते।

२. पढ़ाई से ऊब गया=अध्ययनात् पराजयत (पराजेष्ट)।

३. घर के धन्धों से मैं तो हार जाती हूं=गृहकार्येभ्यः पराजये खलु अहम्।

(v) वारण (हटाना) अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जो ईप्सित (इच्छित) कारक है उसकी अपादान सञ्ज्ञा होती है[4]। और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है।

१. जौ से गौ को हटाता है=यवेभ्यः गां वारयति।

२. दूध से बिल्ली को भगा दे=दुग्धात् मार्जारीं वारय।

---

१. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् [वा०] (अष्टा. १.४.२४)।

२. भीत्रार्थानां भयहेतुः (अष्टा. १.४.२५)।

३. पराजेरसोढः (अष्टा. १.४.२६)।

४. वारणार्थानामीप्सितः (अष्टा. १.४.२७)।

३. राष्ट्र की भूमि से देशद्रोहियों को हटायेंगे।
राष्ट्रभूमेः देशद्रोहिणः वारयिष्यामः।

कहीं वारण क्रिया के अनीप्सित (जो इच्छित न हो) कारक की भी अपादान सञ्ज्ञा होती है।

१. बालक को सांप से हटाता है=बालकं सर्पात् वारयति।

२. बच्चे को अग्नि से हटा ले=शिशुं पावकात् वारय।

यहां सर्प और अग्नि दोनों ही इच्छित नहीं हैं तो भी उनकी अपादान सञ्ज्ञा हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी सम्भव हैं—

३. मित्र को पाप से रोकता है=मित्रं पापात् निवारयति।

४. संन्यासी गृहस्थों को अनाचार से हटाता है।
संन्यासी गृहस्थान् अनाचारात् निवारयति।

(vi) छिपने की क्रिया में जिससे छिपना चाहते हैं उस कारक की अपादान सञ्ज्ञा होती है[1]। फलतः उससे पञ्चमी विभक्ति होती है।

१. ऋण लेने वाला ऋण देने वाले से छिपता है।
अधमर्णः उत्तमर्णात् निलीयते।

२. अपराधी सिपाहियों से छिपते हुए भाग निकले।
अपराधिनः आरक्षिभ्यः निलीयमानाः पलायन्त (पलायिषत)।

३. पैसा चुराने वाले बालक माता से छिपते हैं।
द्रव्यापहारकाः बालकाः मातुः निलीयन्ते।

(vii) नियमपूर्वक अध्ययन करने की क्रिया में जिससे (गुरु आदि से) पढ़ा या सुना जाय उसकी अपादान सञ्ज्ञा होती है[2] और उसमें पञ्चमी विभक्ति भी।

१. मैंने हरनारायण तिवारी जी से काशी में व्याकरण पढ़ा।
अहं तिवारी-समुपाख्येभ्यः हरनारायणमहाभागेभ्यः काश्यां व्याकरणम् अध्यैयि (अध्यैषि, अध्यगीषि)।

२. राम और लक्ष्मण ने विश्वामित्र से अस्त्र-विद्या के रहस्य सीखे।
रामलक्ष्मणौ विश्वामित्रात् अस्त्रविद्यारहस्यानि शिशिक्षाते।

३. हम रामशास्त्री जी से संस्कृत पढ़ते हैं=वयं रामशास्त्रिणः संस्कृतं पठामः।

---

१. अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति (अष्टा. १.४.२८)।
२. आख्यातोपयोगे (अष्टा. १.४.२९)।

(viii) जन्म लेने की (=उत्पन्न होने की) क्रिया में उत्पन्न होने वाले की जो प्रकृति (=मूल, उपादान कारण) है उसकी अपादान संज्ञा होती है[1], और अतएव उससे पञ्चमी विभक्ति भी।

१. गोबर से बिच्छू पैदा होते हैं=गोमयाद् वृश्चिकाः जायन्ते।

२. हरिण के सींग से बाण बनता है=मृगशृङ्गात् शरः जायते।

३. भूमि से वनस्पतियां उगती हैं=भूमेः वनस्पतयः प्ररोहन्ति।

४. झूठ से पाप उत्पन्न होता है और पाप से मनुष्य का पतन होता है।
अनृतात् पापम् उपजायते पापात् च मनुष्यस्य पतनं जायते।

५. आसक्ति से काम उत्पन्न होता है और काम से क्रोध।
'सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते'।[2]

(ix) जिस स्थान से नदी आदि निकलती हैं, उसकी अपादान सञ्ज्ञा होती है[3] और पञ्चमी विभक्ति।

१. हिमालय से गङ्गा निकलती है=हिमवतः गङ्गा प्रभवति।

२. कश्मीर से वितस्ता निकलती है=कश्मीरेभ्यः वितस्ता प्रभवति।

[२] ल्यप् के लोप के विषय में अर्थात् जहाँ ल्यप्प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग तो न हो रहा हो किन्तु उसके अर्थ की प्रतीति हो रही हो तो कर्म कारक और अधिकरण कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है[4]।

१. दमयन्ती ने महल से नल के रथ को देखा।
दमयन्ती प्रासादात् नलस्यन्दनं ददर्श [प्रासादम् आरुह्य ददर्श इत्यर्थः]

२. नकुल ने वृक्ष से सरोवर को देखा।
नकुलः वृक्षात् सरोवरम् अपश्यत् [वृक्षम् आरुह्य अपश्यत् इत्यर्थः]

३. ईश्वरचन्द्र जी पीठासन से दर्शन पढ़ाते हैं।
ईश्वरचन्द्रमहाभागाः पीठासनात् दर्शनानि पाठयन्ति।
[पीठासने उपविश्य पाठयन्ति इत्यर्थः]

४. दादाजी बिस्तर से डांटते हैं।
पितामहः शयनात् भर्त्सयति [शयने शयित्वा भर्त्सयति इत्यर्थः]

---

१. जनिकर्तुः प्रकृतिः (अष्टा. १.४.३०) २. गीता २.६२.
३. भुवः प्रभवः (अष्टा. १.४.३१)
४. पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसङ्ख्यानम्; अधिकरणे चोपसङ्ख्यानम् [वा०] (अष्टा० २.३.२८)

५. नववधू श्वशुर से लजाती है=नववधूः श्वशुरात् जिह्रेति। [श्वशुरं दृष्ट्वा जिह्रेति]

[३] प्रश्न और उसके उत्तर के प्रसङ्ग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है।[1] जहां क्रिया का प्रत्यक्ष प्रयोग होता है वहां तो उसके विभिन्न कारकों का निश्चय सरलता से हो जाता है, पर जहाँ क्रिया का प्रयोग प्रत्यक्षतः नहीं हुआ हो वहां कारक का निश्चय झटिति न होने से वहां कारक विभक्ति होवे कि नहीं? यह समस्या आती है। जैसे—आप कहां से आ रहे हैं?[1] इस प्रश्न-वाक्य में 'आना' (अलग होना') क्रिया प्रत्यक्षतः प्रयुक्त है, अतः उसके स्थिर कारक की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति हो गई। 'भवान् कस्मात् [स्थानात्] आगच्छति?'। इसी 'प्रकार 'अहं पुण्यपत्तनात् आगच्छामि' इस उत्तर-वाक्य में भी वही बात स्पष्ट है। किन्तु जहाँ क्रिया अप्रयुक्त हो और केवल उसके अर्थ की प्रतीति हो रही हो वहाँ कारक विभक्ति के करने या न करने का सन्देह होता है। जैसे 'आप कहाँ से?' इस वाक्य में और उसके उत्तर-वाक्य 'पूना से' इसमें क्रिया अप्रयुक्त है केवल प्रतीयमान (=गम्यमान) है, ऐसे स्थानों में भी पञ्चमी होती है, यही उपर्युक्त नियम का अभिप्राय है। इसको 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तं भवति' इस वाक्य के द्वारा भी बताया गया है। अर्थात् प्रतीयमान-मात्र क्रिया भी कारक-विभक्ति करने में आधार (= निमित्त) मानी जाती है।

१. तू कहाँ से? [अर्थात् तू कहां से आ रहा है?]
   त्वं कस्मात्? [अर्थात् त्वं कस्मात् स्थानात् आगच्छसि?]
२. नदी से [अर्थात् मैं नदी से आ रहा हूं]
   नद्याः [,, अहं नद्याः आगच्छामि]
३. तू कहां से?=कुतः त्वम्?
४. विद्यालय से=विद्यालयात्।

[४] मार्ग और काल के माप के विषय में जहां से काल और मार्ग का माप करना हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है।[2]

१. अजमेर से जयपुर दस योजन है=अजमेरात् जयपुरं दश योजनानि।
२. उदयपुर से चित्तौड़गढ़ छत्तीस कोस है=उदयपुरात् चित्रकूटं षट्त्रिंशत् क्रोशाः।
३. काती पूनम से पौस की पूनम दो महीनों बाद है।
   कार्तिक्याः पौर्णमास्याः पौषी पौर्णमासी द्वयोः मासयोः अस्ति।

---

१. प्रश्नाख्यानयोश्च पञ्चमी वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.३.२८)
२. यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.३.२८)

४. मङ्गलवार से शनिवार तीन दिन बाद है।
मङ्गलवासरात् शनिवासरः त्रिषु दिवसेषु अस्ति।

[५] अन्य, आरात् [=निकट, दूर], इतर, ऋते इन शब्दों से युक्त शब्द में तथा पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण; प्राक्, प्रत्यक्, उदक्; दक्षिणा, उत्तरा; दक्षिणाहि और उत्तराहि आदि दिशा वाची शब्दों से युक्त शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है।[1]

१. हे देवदत्त! देवेन्द्र से सुरेन्द्र भिन्न है=हे देवदत्त! देवेन्द्रात् अन्यः सुरेन्द्रः।

२. योगेन्द्र के स्वभाव से देवेन्द्र का स्वभाव भिन्न है।
योगेन्द्रस्वभावात् अन्यस्वभावः देवेन्द्रः।

३. नीम के पेड़ वन के समीप और दूर हैं।
निम्बस्य पादपाः वनात् आरात् सन्ति।

४. याचना करने वाले हमारे से कोई दूसरे ही हैं।
याचनाकर्त्तारः अस्मत् इतरे खलु वर्त्तन्ते।

५. ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं=ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः।

६. व्याकरण के अध्ययन के बिना पाण्डित्य कहां से हो सकता है?
ऋते व्याकरणाध्ययनात् कुतः पाण्डित्यम्?

७. गुरुकुल किले के पश्चिम में है।=गुरुकुलं दुर्गात् पश्चिमम् अस्ति।

८. उदयन सञ्जय से पहिला है=उदयनः सञ्जयात् पूर्वः अस्ति।

९. ये नगर विन्ध्याचल से उत्तर में हैं।
इमानि नगराणि विन्ध्याचलात् उत्तराणि सन्ति।

१०. यह तालाब ग्राम से दक्षिण वाले वन में है।
अयं तडागः ग्रामात् दक्षिणे अरण्ये वर्त्तते।

११. इस झील के पूर्व, पश्चिम और उत्तर में पहाड़ हैं।
अस्याः सरस्याः [अस्मात् सरोवरात्] प्राक्, प्रत्यक्, उदक् च पर्वताः सन्ति।

१२. अलवर के उत्तर और दक्षिण में खेत हैं।
अलवरात् [अलवरनगरात्] उत्तरा दक्षिणा च क्षेत्राणि सन्ति।

१३. आश्रमभवन के दक्षिण में विद्यालय और उत्तर में भोजनालय है।
आश्रमभवनात् दक्षिणाहि विद्यालयः उत्तराहि च भोजनालयः अस्ति।

---

१. अन्यारादितरर्त्ते दिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (अष्टा० २.३.२९)

[६] पृथक्, विना और नाना इन शब्दों से युक्त शब्द में विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है[1]। पक्ष में तृतीया विभक्ति तथा द्वितीया भी होती है।

१. इन आमों से पृथक् आम ही आमरस के लिए हैं।
एभ्यः आम्रेभ्यः पृथक् आम्राणि एव आम्ररसाय सन्ति [...आम्रैः पृथक्...]

२. समाज में धन के बिना मान नहीं होता।
समाजे धनात् विना मानः न जायते [...धनेन विना...[[...धनं विना...]

३. सैंकड़ों नदियों के बिना इस देश की सिंचाई सम्भव नहीं
शतेभ्यः नदीभ्यः नाना न सम्भवम् अस्म देशस्य सेचनम्। [.........नदीभिः नाना.........]

[७] स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय ये शब्द जब करण कारक रूप में प्रयुक्त होते हैं तो इनसे विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है, किन्तु ये शब्द द्रव्य-वाची अथवा द्रव्यविशेषण वाची नहीं होने चाहियें[2]। पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है।

१. वह थोड़े से ही मुक्त हो गया = सः स्तोकाद् एव मुक्तः [...स्तोकेन...]

२. तू थोड़े से घबरा गया = त्वम् अल्पात् सम्भ्रान्तः अभवः [...अल्पेन...]

३. यह छात्र बड़ी कठिनाई से समझता है = अयं छात्रः महतः कृच्छ्रात् अवबुध्यते [...महता कृच्छ्रेण...]

४. जनता शासक के कुछ गुणों से ही प्रसन्न हो गई।
प्रजा शासकस्य कतिपयेभ्यः गुणेभ्यः एव प्रासीदत्। [...कतिपयैः गुणैः...]

[८] दूरवाची और समीपवाची शब्दों का प्रयोग होने पर जिससे दूर या समीप की चर्चा हो उसमें विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है[3]। पक्ष में षष्ठी भी होगी।

१. तू विद्यालय से दूर जा = त्वं विद्यालयात् दूरं गच्छ [...विद्यालयस्य...]

२. वह मेरे पास आया = सः मत् समीपम् आगच्छत् [...मम...]

३. आत्मतत्त्व साधकों के समीप और विलासियों से दूर है।
आत्मतत्त्वं साधकेभ्यः समीपं विलासिभ्यः दूरं च आस्ते। [...साधकानां...विलासिनां......]

४. अलवर दिल्ली के समीप और अजमेर से दूर है।

---

१. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् (अष्टा. २. ३. ३२)
२. स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य (अष्टा. २. ३. ३३)
३. दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् (अष्टा. २. ३. ३४)

अलवर-नगरं दिल्ली-नगरात् अन्तिकम् अजमेर-नगरात् च विप्रकृष्टम् अस्ति [···दिल्लीनगरस्य·····अजमेरनगरस्य···]

[६] अप, आङ्, परि और प्रति ये शब्द जब कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा वाले होते हैं, तब इनके प्रयोग में साथ वाले शब्द से पञ्चमी विभक्ति होती है[1]।

(i) अप और परि शब्द की त्यागने (=वर्जन) अर्थ में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[2]। और इनके प्रयोग में साथ वाले शब्द से पञ्चमी विभक्ति।

१. जयपुर को छोड़कर पूर्व दिशा में बादल बरसा है।
अप जयपुरात् पूर्वस्यां दिशि अवर्षीत् मेघः।

२. प्रतापनगर को छोड़कर पक्की सड़क है।
परि प्रतापनगरात् सुदृढः राजमार्गः।

(ii) आ (=आङ्) शब्द की, मर्यादा (=पूर्वसीमा) तथा अभिविधि (=परसीमा) अर्थ में कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[3]। और उसके प्रयोग में साथ वाले शब्द से पञ्चमी विभक्ति।

१. पटना तक गङ्गा स्वच्छ है, पटना का मल उसे मैला कर देता है।
आ पाटलिपुत्रात् गङ्गा निर्मला अस्ति, पाटलिपुत्रस्य मलं तां मलिनयति।

२. बच्चे-बच्चे तक पाणिनि की कीर्ति फैली हुई है।
आ कुमारेभ्यः पाणिनेः यशः प्रसृतम् अस्ति।

(iii) प्रतिनिधि के विषय में और प्रतिदान (=एक वस्तु लेकर बदले में दूसरी वस्तु देना) के विषय में प्रति शब्द की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है[4]। और उसके प्रयोग में साथ वाले शब्द से पञ्चमी विभक्ति।

१. अभिमन्यु अर्जुन की ओर से लड़ा था।
अभिमन्युः अर्जुनतः प्रति अयुध्यत।

२. संयुक्त राष्ट्र सङ्घ में पार्थसारथि भारत की ओर से प्रतिनिधि थे।
संयुक्तराष्ट्रसङ्घे पार्थसारथिः भारतात् प्रति आसीत्।

---

१. पञ्चम्यपाङ्परिभिः (अष्टा. २. ३. १०); प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् (अष्टा. २. ३. ११)
२. अपपरी वर्जने (अष्टा. १. ४. ८८)
३. आङ् मर्यादावचने (अष्टा. १. ४. ८९)
४. प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः (अष्टा. १. ४. ९२)

३. गाय के दूध के बदले में भैंस का दूध बदलता है।
गोदुग्धात् प्रति महिषीदुग्धं यच्छति।

४. अपने कपड़ों से मेरे कपड़े बदल ले। स्ववस्त्रेभ्यः प्रति मम वस्त्राणि यच्छ।

[१०] कर्तृकारक-वर्जित ऋण रूप हेतु से पञ्चमी विभक्ति होती है[1]।

१. वसुदत्त हजार रुपये से बंध गया=वसुदत्तः सहस्रात् बद्धः।

२. भारत विदेशों के अस्सी करोड़ रुपयों से बंध जायगा।
भारतदेशः विदेशानाम् अशीतेः कोटिभ्यः रूप्यकेभ्यः भन्त्स्यति।

[११] गुण रूप हेतु से विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है किन्तु वह गुणवाची शब्द स्त्रीलिङ्ग का नहीं होना चाहिये[2]। पक्ष में तृतीया विभक्ति होगी।

१. वह मूर्खता से ही दुष्टों में फंस गया।
सः जाड्याद् एव खलेषु बद्धः (···जाड्येन········)।

२. मैं नाथद्वारा में पाण्डित्य से ग्रन्थ पा सका।
अहं नाथद्वारानगरे पाण्डित्यात् ग्रन्थं लब्धुम् अशकम्।
(···············पाण्डित्येन·····················।)

'विद्यया पूज्यते' यहाँ विद्या स्त्रीलिङ्ग है अतः पञ्चमी नहीं हुई।

[१२] निर्धारण (बहुतों में से एक को छांटना) के विषय में जहाँ एक को दूसरे से विभक्त (अलग) दिखाना हो वहाँ पञ्चमी विभक्ति होती है[3]।

१. पटना वालों से मथुरा वाले अधिक धनवान् हैं।
पाटलिपुत्रकेभ्यः माथुराः आढ्यतराः सन्ति।

[१३] दो कारकों के बीच में जो मार्गवाची अथवा कालवाची शब्द हों उनसे पञ्चमी विभक्ति होती है और सप्तमी भी[4]।

१. यहाँ ठहरा हुआ वह एक कोश पर निशाना लगा सकता है।
इहस्थः सः क्रोशाद् (क्रोशे) लक्ष्यं विध्येत्।

२. वह आज खाकर पांच दिन में खायेगा।
सः अद्य भुक्त्वा पञ्चभ्यः दिनेभ्यः (पञ्चसु दिनेषु) भोक्ष्यते।

---

१. अकर्तर्यृणे पञ्चमी (अष्टा. २.३.२४)।
२. विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् (अष्टा. २.३.२५)।
३. पञ्चमी विभक्ते (अष्टा. २.३.४२)।
४. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (अष्टा. २.३.७)।

षष्ठी विभक्ति

[१] शेष में षष्ठी विभक्ति होती है[1]। क्रिया की सिद्धि (पूर्णता) में जो जो सहायक होते हैं उन्हें कारक कहा जाता है। उनमें से कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान और अपादान के विषय में ऊपर बताया जा चुका है। अधिकरण कारक के विषय में 'सप्तमी विभक्ति' के प्रकरण में बताया जायेगा। इन छः कारकों के अतिरिक्त भी वाक्य में कुछ अन्य शब्दों का प्रयोग होता है किन्तु उनका क्रिया की सिद्धि में कोई सहयोग नहीं होता। जैसे—सेवक अध्यापक के लिये श्याम के बगीचे में पेड़ से दण्डे से फल तोड़ता है।" इस वाक्य में तोड़ने की क्रिया में 'श्याम' का प्रत्यक्ष कोई सहयोग नहीं है, अतः वह कारक नहीं है, वह कारकों से शेष है—अतिरिक्त है, अवशिष्ट है, इसलिये उसमें षष्ठी विभक्ति होगी। यहाँ बगीचे रूप अधिकरण के साथ श्याम का सम्बन्ध मात्र है, अतः यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी होगी ऐसा भी कह सकते हैं। सेवकः अध्यापकाय श्यामस्य उद्याने वृक्षात् दण्डेन फलानि त्रोटयति। जैसे यहाँ अधिकरण कारक के साथ सम्बन्ध रखने वाले में षष्ठी हुई है वैसे ही अन्य कारकों के साथ सम्बन्ध वाले में भी षष्ठी होगी। सभी कारकों के सम्बन्ध में इसी उपर्युक्त वाक्य में षष्ठी का प्रयोग समझ लो 'त्र्यम्बकशास्त्री का सेवक उच्च कक्षा के अध्यापक के लिये श्याम के बगीचे में ठेकेदार के पेड़ से बांस के डण्डे से आम के फल तोड़ता है' 'त्र्यम्बकशास्त्रिणः सेवकः उच्चकक्षायाः अध्यापकाय श्यामस्य उद्याने कालकेतुः वृक्षात् वंशस्य दण्डेन सहकारस्य फलानि त्रोटयति'।

[२] ज्ञान अर्थ से भिन्न अर्थ वाली अर्थात् प्रवृत्ति अथवा भ्रान्ति आदि अर्थ वाली ज्ञा धातु के करण कारक में षष्ठी विभक्ति होती है[2]।

१. घी के कारण से प्रवृत्त होता है=घृतस्य जानीते।
२. छाछ को घी समझता है=तक्रं घृतस्य जानीते।
३. वनस्पति घी को असली घी समझ लिया।
   निर्वर्णं शीनं तैलं घृतस्य अजानात्।

[३] स्मरण अर्थ वाली धातुओं, दय धातु और ईश् धातु के शेष कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है[3]।

१. हनुमान् ने सीता को ढूंढते हुए माता का स्मरण किया।
   हनूमान् सीताम् गवेषयन् मातुः सस्मार।
२. उसने वस्त्रों का दान किया=सः वस्त्राणां दयाञ्चक्रे।
३. दशरथ ने कोसल पर शासन किया। दशरथः कोसलस्य ईशाञ्चक्रे।

---

१. षष्ठी शेषे (अष्टा. २.३.७)। २. ज्ञोऽविदर्थस्य करणे (अष्टा. २.३.५१)।
३. अधीगर्थदयेशां कर्मणि (अष्टा. २.३.५२)।

[४] किसी वस्तु में अन्य गुणों के आधान (प्रतियत्न) का विषय हो तो कृञ् (डुकृञ्) धातु के शेष कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है[१]।

१. इन्धन पानी को बदल देता है। =एधः दकस्य (उदकस्य) उपस्कुरुते।
२. विद्या मनुष्यों में परिवर्त्तन कर देती है।=विद्या मानवानाम् उपस्कुरुते।
३. खट्टा पदार्थ नीले रंग के कागज को बदल देता है।
   अम्लः पदार्थः नीलवर्णस्य कर्गलस्य उपस्कुरुते।
४. गन्धक का धुंआ गुलाब के रंग को बदल देता है।
   गन्धकधूमः पाटलपुष्पवर्णस्य उपस्कुरुते।

[५] ज्वर और सन्तापि (=सम्+तप्+णिच्) धातुओं को छोड़कर अन्य रोग अर्थ वाली भावकर्तृक धातुओं के शेष कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है[२]।

१. उस कंजूस को रोग सता रहे हैं।
   तस्य कृपणस्य रुजन्ति रोगाः।
२. व्यायाम से थकाये हुए शरीर वाले को रोग तंग नहीं करते हैं।
   व्यायाम-क्षुण्णगात्रस्य आमयाः न आमयन्ति।

[६] आशीः (=इच्छा) अर्थ वाली नाथ (=नाथृ) धातु के शेष कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है[३]।

१. पहलवान घी की इच्छा करता है=मल्लः घृतस्य नाथते।
२. रोगी शहद चाहता है=रुग्णः मधुनः नाथते।

[७] हिंसा अर्थ वाली जासि, 'निप्रहण(=नि+प्र+हन्), नाट, क्राथ और पिष् इन धातुओं के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है।[४]

१. सिपाही डाकुओं को मारते हैं=आरक्षिणः दस्यूनाम् उज्जासयन्ति।
२. नागरिक इन पापियो को मारें=नागरिकाः एषां पापिनां निप्रहन्युः।
३. कोई इन निर्धनों को न मारे=कश्चिदपि एतेषां निर्धनानां न उन्नाटयेत्।
४. जो बेकसूरों को मारता है उसे ईश्वर मारता है।
   यः निरपराधानां क्राथयति तस्य परमेश्वरः क्राथयति।
५. इन दहेज के लोभी हत्यारों को पीस डालो।
   एतेषां यौतुकलुब्धानां घातकानां पिण्ढि।

---

१. कृञः प्रतियत्ने (अष्टा० २.३.५३)
२. रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः (अष्टा. २.३.५४)
३. आशिषि नाथः (अष्टा० २. ३. ५५)
४. जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् (अष्टा० २.३.५६)

[८] व्यवहृ [=वि+अव+हृ), पण् और दिव् इन धातुओं के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है यदि ये धातुएं द्यूत (=जुआ) अथवा क्रयविक्रय रूप व्यवहार अर्थ में प्रयुक्त हों[1]।

१. यह व्यापारिक संस्था एक वर्ष में एक करोड़ रुपये व्यवहार में लाती है।
   इयं व्यापारिक-संस्था एकस्मिन् वत्सरे एकस्याः कोटेः रूप्यकाणां व्यवहरति।

२. कृष्णकुमार के पुत्र अपने व्यापार में लाखों रुपये लगाते हैं।
   कृष्णकुमारस्य सुताः स्ववाणिज्ये लक्षाणां रूप्यकाणां पणन्ते।

३. हर देश में सरकारें अरबों खरबों रुपये विकास के लिये व्यवहार में लाती हैं।
   प्रतिराष्ट्रं शासकाः अब्जानां शङ्कूनां रूप्यकाणां विकासाय दीव्यन्ति।

[९] कहीं कहीं [वेद में] चतुर्थी के अर्थ में भी षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है।[2]

१. 'पुरुषमृगश्चन्द्रमसः'[3]=पुरुषमृग चन्द्रमा के लिए [उपयोगी है]

२. 'गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्।'[3]
   गोह, कालका नामक पक्षी और कठफोड़वा ये वनपस्तियों के लिए हैं।

[१०] कहीं कहीं (=वेद में) यज् धातु के करण कारक में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है[4]। पक्ष में तृतीया भी होती है।

१, घृत से यज्ञ कर='घृतस्य यज'[5]।

२. 'आज्यस्य होतर्यज'[6]=हे होता! घी से हवन कर।

[११] क्रिया के बार-बार करने के अर्थ में होने वाले कृत्वसुच्, सुच् और धा प्रत्ययों से युक्त जो सङ्ख्यावाची पञ्चकृत्वः, द्विः, बहुधा आदि शब्द हैं उनके प्रयोग में क्रिया के कालवाची अधिकरण कारक में षष्ठी विभक्ति होती है।[7]

१. ये धनिक दिन में पाँच बार खाते हैं।
   एते धनाढ्याः दिनस्य पञ्चकृत्वः भुञ्जते।

२. यह पण्डित रात्रि में दो बार नहाता है=अयं पण्डितः रात्रेः द्विः स्नाति।

३. वह बालक घण्टे में तीन बार रोता है। एषः बालकः होरायाः त्रिः रोदिति।

४. यह रोगी पहर में चार बार वमन करता है।=अयं रुग्णः प्रहरस्य चतुः वमति।

---

१. व्यवहृपणोः समर्थयोः; दिवस्तदर्थस्य (अष्टा० २.३.५७; ५८)
२. चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि (अष्टा. २.३.६२)
३. यजुर्वेद अ० २४ मं० ३५.
४. यजेश्च करणे (अष्टा० २.३.६३)
५. शतपथब्राह्मण (४.४.२.४)
६. यजुर्वेद अ० २८, मं० १-११,
७. कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (अष्टा० २.३.६४)

५ योगी चौबीस घंटों में एक बार ही खाता है।
योगी चतुर्विंशतेः होराणां सकृत् एव अश्नाति ।

[१२] कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता कारक में और कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है[१]।

१. आपकी सोने की बारी है—भवतः शायिका अस्ति ।
२. मेरी गांव जाने की इच्छा है—मम ग्रामस्य जिगमिषा वर्त्तते ।
३. मेरा घर जाना उसको अच्छा नहीं लगता।—मम गृहस्य गमनं तस्मै न रोचते।

[१३] कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में जहाँ कर्ता और कर्म दोनों कारक एक साथ उपस्थित हों वहाँ कर्म कारक में ही षष्ठी विभक्ति होगी, कर्ता में नहीं[२]।

१. आश्चर्य है कि महेन्द्र ने बिना ग्वाले के गौओं को दुह लिया।
आश्चर्यम् इदं यत् महेन्द्रः गवां दोहं गोपेन विनैव अकरोत् ।
२. कमाल है जो शिक्षक नहीं है उसने भी वेद पढ़ा दिये।
विचित्रमिदं यत् अशिक्षकेन वेदानाम् अध्यापनम् अक्रियत ।

कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति के विषय में इतना और जानना चाहिए कि यह नियम शतृ, शानच्, कानच्, क्वसु, कि, किन्, उ, इष्णुच्, उक (=उकञ्) अव्यय (=क्त्वा आदि कृत् प्रत्ययों के कारण बने हुए अव्यय), क्त, क्तवतु, खल्, युच्, शानन्, चानश् और तृन् इन प्रत्ययों के प्रयोग में नहीं लगता। इनके योग में षष्ठी नहीं होती[३]। वहाँ कर्म में द्वितीया ही होगी। जैसे—यह दलिया पकाता हुआ सोमदेव पाक करके छात्रों को हलुआ देने का इच्छुक है=अयं यवागूं पचन् (=पचमानः) सोमदेवः पाकं कृत्वा छात्रेभ्यः संयावं दित्सुः अस्ति। इत्यादि।

[१४] तव्यत्, अनीयर्, यत् आदि कृत्य-सञ्ज्ञक कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता कारक में ही षष्ठी विभक्ति होती है और वह भी विकल्प से[४]। पक्ष में तृतीया होगी।

१. आपको तीन चटाइयाँ बनानी हैं।
भवतः त्रयः कटाः कर्त्तव्याः सन्ति (भवता त्रयः·········)
२. हमें दो पुस्तकें लिखनी हैं।
अस्माकं द्वे पुस्तके लेखनीये स्तः (अस्माभिः द्वे·········)

---

१. कर्तृकर्मणोः कृति (अष्टा. २. ३. ६५)
२. उभयप्राप्तौ कर्मणि (अष्टा. २. ३. ६६)
३. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (अष्टा. २. ३. ६९)
४. कृत्यानां कर्त्तरि वा (अष्टा. २. ३. ७१)

३. तुझे इस सभा में एक गीत गाना है।
तव अस्यां सभायाम् एकं गीतं गेयम् अस्ति (त्वया अस्यां·········)

४. उषा को ये बरतन मांजने हैं और उड़द पकाने हैं।
उषाया: इमानि पात्राणि मृज्यानि (मार्ग्याणि) सन्ति, माषा: च पचेलिमा: सन्ति (उषया इमानि पात्राणि·········)

[१५] वर्त्तमान काल में उत्पन्न[1] क्त प्रत्यय के प्रयोग में साथ वाले शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है[2]।

१. यह राजाओं के द्वारा पूजा जाता है—अयं राज्ञां पूजित: अस्ति।

२. विनोबा भावे राजनेताओं द्वारा माने जाते हैं।
'विनोबा भावे' राजनेतॄणां मत: अस्ति।

३. यह प्रोफेसर सब नगरवासियों में विज्ञात है।
अयं प्राध्यापक: सर्वेषां नगरवासिनां बुद्ध: (विज्ञात:) अस्ति।

[१६] अधिकरण कारक अर्थ में उत्पन्न क्त[3]-प्रत्ययान्त शब्द के प्रयोग में साथ वाले शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है[4]।

१. यह इनकी बैठक है—इदम् एषाम् आसितम् अस्ति।

२. मैं उनके शयनागार में बहुत समय बैठा रहा।
अहं तेषां शयिते सुचिरम् उपाविशम्।

३. हमारे खाने के कमरे में दस कुर्सियां हैं।
अस्माकम् अशिते (भुक्ते) दश आसन्द्य: सन्ति।

[१७] तुल्य-वाची शब्दों के प्रयोग में साथ वाले शब्द से विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में तृतीया भी होगी किन्तु तुला और उपमा शब्दों के प्रयोग में तो नित्य षष्ठी ही होगी[5]।

१. भारतवर्ष के समान कोई देश नहीं है।
भारतवर्षस्य तुल्य: कश्चित् देश: नास्ति (भारतवर्षेण तुल्य:···)

२. राम जैसे पितृभक्त संसार में विरले हुए हैं।
रामस्य सदृशा: (सदृश:, सदृक्षा:) पितृभक्ता: संसारे विरला: अभूवन्।
(रामेण सदृशा:··)।

---

१. मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च (अष्टा. ३.२.१८८)
२. क्तस्य च वर्त्तमाने (अष्टा. २.३.६७)
३. क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्य: (अष्टा. ३.४.७६)
४. अधिकरणवाचिनश्च (अष्टा. २.३.६८)
५. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् (अष्टा. २.३.७२)

३. धनुर्धारियों में अर्जुन की बराबरी का नहीं है।
 धनुर्धरेषु अर्जुनस्य तुला नास्ति।
४. दर्शन पढ़ाने वालों में ईश्वरचन्द्र की उपमा नहीं है।
 दर्शनाध्यापकेषु ईश्वरचन्द्रस्य उपमा न विद्यते।

[१८] आशीर्वाद का विषय हो तो आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित इन शब्दों के प्रयोग में जिसके प्रति आशीर्वाद कहा जा रहा है उसमें विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में चतुर्थी होगी[1]।

१. इस बालक की दीर्घ आयु हो।
 अस्य बालकस्य दीर्घायुष्यं भूयात् (अस्मै बालकाय............)
२. इन छात्रों का मङ्गल, कुशल और सुख होवे।
 एषां छात्राणां मङ्गलं कुशलं सुखं च भूयासुः (एभ्यः छात्रेभ्यः............)
३. जनता का कल्याण हो=जनतायाः हितं भूयात् (जनतायै............)

[१९] दक्षिणतः, उत्तरतः, परतः, अवरतः, उपरि, उपरिष्टात्, पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात्, पुरः, अधः, अवः, पुरस्तात्, अधस्तात् और अवस्तात् इन शब्दों के प्रयोग में साथ वाले शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है।[2]

१. भारतवर्ष के दक्षिण में महासागर है।
 भारतवर्षस्य दक्षिणतः (दक्षिणात्) महासागरः अस्ति।
२. इसके उत्तर में हिमालय है=अस्य उत्तरतः (उत्तरात्) हिमालयः अस्ति।
३. इस कमरे के आगे, पीछे और ऊपर दूसरे कमरे हैं।
 अस्य प्रकोष्ठस्य पुरः (पुरस्तात्), अवः (अवस्तात्, अवरतः), पश्चात्, उपरि (उपरिष्टात्) च अन्ये प्रकोष्ठाः सन्ति।
४. उस पेड़ के नीचे सांप का बिल है।
 तस्य वृक्षस्य अधः (अधस्तात्, अधरात्) सर्पबिलं विद्यते।

[२०] कहीं कहीं एनप्-प्रत्ययान्त शब्द के प्रयोग में भी साथ वाले शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है[3]। अन्यथा द्वितीया का ही विधान है[4]।

१. राजभवन के दक्षिण और उत्तर में बगीचे हैं।
 राजभवनस्य दक्षिणेन उत्तरेण च उद्यानानि सन्ति।

---

१. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (अष्टा. २. ३. ७३)
२. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन (अष्टा. २. ३. ३०)
३. षष्ठ्यपीष्यते [इष्टि.] (अष्टाः २. ३. ३१)
४. एनपा द्वितीया (अष्टा. २. ३. ३६)

सप्तमी विभक्ति

[१] अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है[1]।

क्रिया के आधार रूप कारक की अधिकरण सञ्ज्ञा है[2]। आधार तीन प्रकार का होता है—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। औपश्लेषिक आधार वह होता है, जिसका संयोग थोड़ी देर के लिये हो, जैसे—

१. चटाई पर बैठता है=कटे आस्ते।

२. खाट पर सोता है=खट्वायां शेते।

३. गुरुकुल में रहता है=गुरुकुले वसति। आदि।

वैषयिक आधार वह कहाता है, जिसके विषय में क्रिया हो। जैसे—

१. इसकी मोक्ष के विषय में जिज्ञासा है।=अस्य मोक्षे जिज्ञासा अस्ति।

२. वह गणित पढ़ाने में लगा हुआ है।=सः गणिताध्यापने व्यापृतः अस्ति।

३. मेरी व्याकरण में रुचि है=मम व्याकरणे रुचिः अस्ति।

अभिव्यापक आधार वह होता है, जिसमें कर्ता आदि व्याप्त रहते हैं। जैसे—

१. जिस प्रकार तिलों में तेल है उसी प्रकार सब में ईश्वर है।
यथा तिलेषु तैलम् अस्ति तथैव सर्वेषु ईश्वरः अस्ति।

२. तपे हुए लोहे के गोले में अग्नि व्याप्त है।
सुतप्ते लोहगोलके वह्निः व्याप्तः अस्ति।

३. इस दूध में घृत कम है=अस्मिन् दुग्धे सर्पिः न्यूनम् अस्ति।

[२] दूर और समीप वाची शब्दों से विकल्प से सप्तमी विभक्ति होती है।[1] पक्ष में द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी भी होंगी।

१. बुधग्रह सूर्य के समीप है और शनि दूर।
बुध ग्रहः सूर्यस्य अभ्याशे अस्ति शनिश्च दूरे (···अभ्याशं, अभ्याशेन, अभ्याशात् ······दूरं, दूरेण, दूरात्)।

२, रमेश का घर मेरे घर के पास है।
रमेशस्य गृहं मम गृहस्य अन्तिके अस्ति (···अन्तिकं, अन्तिकेन, अन्तिकात्···)

३. विशाखापत्तन कश्मीर से दूर है।

---

१. सप्तम्यधिकरणे च (अष्टा. २. ३. ३६)

२. आधारोऽधिकरणम् (अष्टा. १. ४. ४५)

विशाखापत्तनं कश्मीरेभ्यः (कश्मीराणां) विप्रकृष्टे अस्ति (···विप्रकृष्टं, विप्रकृष्टेन, विप्रकृष्टात् अस्ति)।

[३] क्तप्रत्ययान्त शब्दों से यदि तद्धित इन् प्रत्यय[1] हुआ हो तो उन इन्-प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में कर्म कारक में सप्तमी विभक्ति होती है।[2]

१. ये दोनों छात्र निरन्तर व्याकरण पढ़ने वाले हैं।
इमौ छात्रौ निरन्तरं व्याकरणे अधीतिनौ (पठितिनौ) स्तः।

२. वेद का अभ्यास करने वालों के लिए खीर बना।
छन्दसि (वेदे) आम्नातिभ्यः पायसान्नं सम्पादय।

३. रामशास्त्री ने गुरुमुख से आयुर्वेद सुना है।
रामशास्त्री गुरुमुखात् श्रुती आयुर्वेदे।

[४] साधु और असाधु शब्दों के प्रयोग में साथ वाले शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है।[3]

१. जो राजा सज्जनों के लिए भला और दुष्टों के लिए बुरा होता है वही शासन में सफल होता है।
यः नृपः सज्जनेषु साधुः असज्जनेषु असाधुः च भवति सः एव शासने सफलः जायते।

[५] जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए किसी (वस्तु) को मारा जाय, काटा जाय, फोड़ा जाय, तोड़ा जाय अथवा छीला जाय उससे (=तद्वाची शब्द से) सप्तमी विभक्ति होती है।[4]

१. श्लोक—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

लोग चमड़े की प्राप्ति के लिए चीते को मारते हैं, दांतों के लिए हाथी को मारते हैं, केशों के लिये चँवरी गाय को मारते हैं और कस्तूरी (अथवा अण्डकोष) के लिए पुष्कलक जाति के हरिण को मारते हैं।

२. अंशुमान् छाल के लिये नीम को छीलता है और डण्डे के लिये उसकी डाली काटता है।
अंशुमान् त्वचि निम्बं तक्षति यष्टिकायां च तस्य शाखां छिनत्ति।

---

१. इष्टादिभ्यश्च (अष्टा. ५.२.८८)
२. सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् [वा.] (अष्टा. २.३.३६)
३. साध्वसाधुप्रयोगे च सप्तमी वक्तव्या [वा.] (अष्टा. २.३.३६)
४. निमित्तात् कर्मसंयोगे सप्तमी वक्तव्या [वा.] (अष्टा. २.३.३६)

३. बीजों के लिये कद्दू फोड़ दे=बीजेषु कूष्माण्डं भिन्द्धि।

४. पानी के लिये कच्चा नारियल काट।
जले अपक्वं नारिकेलफलं विध्य।

५. घर के किवाड़ों के लिये वृक्ष मत काट।
गृहकपाटेषु वृक्षं मा छैत्सीः (मा स्म छिनत्, नैव छिन्धि)।

[६] जिस वस्तु की क्रिया से अन्य क्रिया बताई जाती हो उससे सप्तमी विभक्ति होती है।[1]

१. ब्रह्मचारी जब सन्ध्या कर रहे थे तब मैं आया।
सन्ध्याम् उपासीनेषु ब्रह्मचारिषु अहम् आगमम् (आगच्छम्)।

२. जब लड़के पढ़ रहे थे तब मैंने भोजन किया।
पठत्सु बालेषु अहं भोजनम् आदिषि (अबभक्षम्, अघसम्)

३. जब देवेन्द्र नहा रहा था तब मैंने सेनेन्द्र को बुलाया।
देवेन्द्रे स्नाति अहं सेनेन्द्रम् आचीकरम्।

यदि इसी प्रसङ्ग में अनादर का विषय हो तो सप्तमी विकल्प से होगी, पक्ष में षष्ठी भी होगी।[2] जैसे—

१. मेरे प्रार्थना करने पर भी मेरा मित्र भोजन छोड़ कर चला गया।
प्रार्थयमानेऽपि मयि (प्रार्थयमानस्य अपि मम) भोजनं परित्यज्य गतं मे मित्रम्।

२. राणा प्रताप के सैनिकों के लगातार प्रार्थना करने पर भी मानसिंह बिना खाये चला गया।
सततं प्रार्थयमानेषु राणाप्रतापभटेषु (प्रार्थयमानानां प्रतापभटानां) मानसिंहः अभुक्त्वा एव ययौ।

[७] स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षि, प्रतिभू और प्रसूत इन शब्दों के प्रयोग में साथ वाले शब्द से सप्तमी विभक्ति विकल्प से होती है, पक्ष में षष्ठी भी होगी।[3]

१. वह तो गायों का ही स्वामी है, मैं तो सौ मनुष्यों का मालिक हूं।
सः तु गोषु (गवाम्) एव स्वामी वर्त्तते अहं तु शते मनुष्येषु (शतस्य मनुष्याणां) ईश्वरः वर्त्ते।

---

१. यस्य च भावेन भावलक्षणम् (अष्टा. २.३.३७)

२. षष्ठी चानादरे (अष्टा. २.३.३८)

३. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च (अष्टा. २.३.३९)

२. भारतवर्ष के अधिपति दूर देशों से सम्बन्ध रखते थे।
भारतवर्षे (भारतवर्षस्य) अधिपतयः विप्रकृष्टराष्ट्रैः सम्बन्धम् अरक्षन्।

३. दयाचन्द्र का उत्तराधिकारी कृष्णचन्द्र है।
दयाचन्द्रे (दयाचन्द्रस्य) दायादः कृष्णचन्द्रः अस्ति।

४. श्याम के गवाहों और मोहन के जामिनों को बुलाओ।
श्यामे (श्यामस्य) साक्षिणः मोहने (मोहनस्य) प्रतिभून् च आकारय।

५. क्षत्रिय कुल में उत्पन्न पुत्र युद्ध के स्वप्न देखता है।
क्षत्रियकुले (क्षत्रियकुलस्य) प्रसूतः सुतः सङ्ग्रामस्वप्नान् पश्यति।

[८] आयुक्त और कुशल शब्दों के प्रयोग में जिस विषय में तल्लीनता हो उससे सप्तमी विभक्ति विकल्प से होती है, पक्ष में षष्ठी भी होती है।[1]

१. गुरु की सेवा में अर्जुनदेव तल्लीन है।
गुरोः सेवायां (सेवायाः) अर्जुनदेवः आयुक्तः अस्ति।

२. यह नाई बाल काटने में बड़ा कुशल है।
अयं नापितः केशवपने (केशवपनस्य) सुकुशलः वर्त्तते।

३. ये सैनिक लोग सेना के लायक नहीं है।
एते सैनिकाः अनायुक्ताः (अकुशलाः) खलु सेनायां (सेनायाः)

[९] निर्द्धारण के विषय में अर्थात् जाति, गुण अथवा क्रिया के कारण किसी समुदाय में से उसके अवयव या अवयवों के पृथक् (विशिष्ट) बताने के विषय में जिससे पृथक् बताना हो (जिसमें से चुनना हो) उसमें सप्तमी विभक्ति विकल्प से होती है, पक्ष में षष्ठी भी होती है।[2]

१. व्याकरण पढ़ने वालों में चन्द्रशेखर चतुर है।
व्याकरणाध्येतृषु चन्द्रशेखरः पटिष्ठः वर्त्तते (व्याकरणाध्येतृणां ··)

२. सब सैनिकों में वीरेन्द्र शूरवीर है।
सर्वेषु भटेषु वीरेन्द्रः शूरवीरतमः विद्यते (सर्वेषां भटानां वीरेन्द्रः···)

जिस निर्धारण में एक को दूसरे से केवल विभक्त करना ही इष्ट हो वहां पञ्चमी ही होती है, जिसके उदाहरण पञ्चमी के प्रकरण में बताये जा चुके हैं।

[१०] सम्मान का विषय हो तो साधु और निपुण इन दो शब्दों के प्रयोग

---

१. आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् (अष्टा. २.३.४०)
२. यतश्च निर्द्धारणम् (अष्टा. २.३.४१)

में, जिसके प्रति सम्मान अभिव्यक्त किया जा रहा हो उससे सप्तमी विभक्ति होती है, किन्तु वहां प्रति, परि और अनु इन उपसर्गों का प्रयोग नहीं हो।[1]

१. अच्छे बालक माता पिता का सम्मान करते हैं।
सन्तः बालकाः पित्रोः साधवः भवन्ति।

२. गुरुकुल के छात्र गुरुजनों के प्रति शिष्ट होते हैं।
गुरुकुलस्य छात्राः गुरुजनेषु निपुणाः भवन्ति।

[११] प्रसित और उत्सुक शब्दों के प्रयोग में साथ वाले शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है, पक्ष में तृतीया भी होती है।[2]

१. केशों के संवारने में लगे रहने वाले छात्र कब पढ़ेंगे?
केशेषु (केशैः) प्रसिताः बालकाः कदा पठिष्यन्ति?

२. सिनेमा में आसक्त बालक सदाचारी नहीं रह सकते।
चलचित्रेषु (चलच्चित्रैः) उत्सुकाः बालाः सदाचारिणः न भवन्ति।

[१२] ऐसा नक्षत्रवाची शब्द जिससे उत्पन्न तद्धित प्रत्यय का लुप् (=लोप) हो चुका हो उससे सप्तमी विभक्ति होती है और तृतीया भी ?[3]

१. पुष्टि के इच्छुक मनुष्य को पुष्य नक्षत्र के समय खीर खानी चाहिए?
पुष्टिकामः मनुष्यः पुष्ये (पुष्येण) पायसम् अश्नीयात्?

२. गरमी की शान्ति के लिये ज्येष्ठ नक्षत्र में केवड़ा मिश्रित जल का प्रयोग करना चाहिये?
सन्तापशान्तये ज्येष्ठे (ज्येष्ठेन) केतकीसार-मिश्रितम् अम्भः भजेत्।

३. मघा नक्षत्र में उड़द और भात खावे?
मघासु (मघाभिः) माषौदनं भक्षयेत्?

[१३] कर्मप्रवचनीय शब्दों के प्रयोग में जिससे अधिकता बताई जा रही हो अथवा जिसका स्व-स्वामि-भाव बताया जा रहा हो उस शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है।[4]

---

१. साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः; अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् [वा०] (अष्टा. २.३.४३)
२. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च (अष्टा. २.३.४४)
३. नक्षत्रे च लुपि (अष्टा. २.३.४५)
४. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी (अष्टा. २.३.९)

(I) अधिक होने के विषय में उप शब्द की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।[1] और उसके योग में सप्तमी विभक्ति।

१. एक किलो से पांच सौ ग्राम अधिक मिश्री है।
   उप किलोग्रामे पञ्च शतानि ग्रामाः सन्ति सितायाः।
२. इस बादाम की बोरी में एक क्विंटल से दस किलो अधिक हैं।
   अस्यां वातादगोण्यां उप क्विण्टले दश किलोग्रामाः सन्ति।
३- इस कोठी में चार टन से एक क्विंटल अधिक गेहूं हैं।
   अस्मिन् कुसूले उप टनचतुष्टये क्विण्टलं गोधूमानाम्।
४. कुर्ते के लिए तीन मीटर से चालीस सेंटीमीटर अधिक कपड़ा लगेगा।
   कञ्चुकाय उप मीटरत्रितये चत्वारिंशत् सेंटीमीटराणि वस्त्रस्य प्रयोक्ष्यते।
५. इस बाल्टी में चार लिटर से सौ मिलिलिटर दूध अधिक है।
   अस्यां सेचन्यां उप लिटरचतुष्टये शतं मिलिलिटराणि दुग्धस्य।

(II) स्व-स्वामि-भाव के विषय में अधि की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।[2] और उसके योग में कभी स्ववाची से सप्तमी विभक्ति होती है और कभी स्वामिवाची से।

१. पञ्चाल देश ब्रह्मदत्त के अधीन था=अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः आसन्।
२. ब्रह्मदत्त पञ्चाल देश का स्वामी था=अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः।

[१४] दो कारकों के मध्य वर्तमान कालवाची और मार्गवाची शब्दों से सप्तमी विभक्ति होती है और पञ्चमी भी।[3]

१. आज पानी पीकर वह दो दिन में पानी पीयेगा।
   अद्य पयः पीत्वा सः द्व्यहे (द्व्यह्नात्) पयः पास्यति।
२. रूस की भूमि पर स्थित मिसाइल कई हजार किलो मीटर पर निशाना मारेगी।
   रूस-देशभूमौ स्थितं प्रक्षेपास्त्रं सहस्रेषु किलोमीटरेषु (सहस्रेभ्यः किलोमीटरेभ्यः) लक्ष्यं व्यत्स्यति।

ण्यन्तप्रक्रिया

अब हम प्रक्रियाओं का विषय समझाते हैं। सबसे पहिले ण्यन्त प्रक्रिया के विषय में बताते हैं। धातुमात्र से हेतुमान् अर्थ में अर्थात् प्रेरणा करने के अर्थ में णिच्

---

१. उपोऽधिके च (अष्टा १.४.८७)
२. अधिरीश्वरे (अष्टा. १.४.९७)
३. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (अष्टा. २.३.७)

प्रत्यय होता है।[1] णिच् के ण् और च् की इत्सञ्ज्ञा आदि होने पर इ शेष रहता है। यदि धातु इगन्त होगी तो धातु के अन्त्य इ, उ, ऋ को ऐ, औ, आर् होकर[2] ऐ के स्थान पर आय् और औ के स्थान पर आव् आदेश होगा।[3] यथा—चि+णिच्→चि+इ→चै+इ→चाय्+इ=चायि। स्तु+णिच्→स्तु+इ→स्तौ+इ→स्ताव्+इ=स्तावि। हृ+णिच्→हृ+इ→हार्+इ=हारि। धातु की उपधा ह्रस्व अकार होगी तो उसके स्थान पर आ रूप वृद्धि हो जायेगी।[4] यथा→पठ्+णिच्→पठ्+इ→पाठ्+इ=पाठि। यदि धातु की उपधा में इ, उ, ऋ ह्रस्व होंगे तो उनके स्थान पर ए, ओ, अर्, गुण हो जायेगा।[5] यथा—लिख्+णिच्→लेख्+इ=लेखि। बुध्+णिच्→बुध्+इ→बोध्+इ=बोधि। नृत्+णिच्→नृत्+इ=नर्त्+इ=नर्ति। इस प्रकार बने हुए इन णिजन्त चायि, स्तावि, हारि, पाठि, लेखि, बोधि, नर्ति आदि शब्दों की पुनः धातु सञ्ज्ञा होती है।[6] अर्थात् ये धातुएँ कहलाती हैं। इनके अर्थ भी इनकी पूर्वावस्था वाली धातुओं से भिन्न हो जाते हैं। यथा—

पठ्	(=पढ़ना),	पाठि	(=पढ़ाना)
चि	(=चुनना),	चायि	(=चुनवाना)
स्तु	(=स्तुति करना),	स्तावि	(=स्तुति करवाना)
हृ	(=हरण करना),	हारि	(=हरण करवाना)
लिख्	(=लिखना,)	लेखि	(=लिखवाना)
बुध्	(=समझना,),	बोधि	(=समझाना)
अश्	(=खाना),	आशि	(=खिलाना)
रुद्	(=रोना),	रोदि	(=रुलाना) इत्यादि

चुर् आदि धातुओं से स्वार्थ में भी णिच् होता है। यह विषय चुरादिगण के प्रकरण में समझा चुके हैं। वहां णिच् होने पर भी धातु का अपना अर्थ ही रहता है, उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

पाठि आदि णिजन्त धातुओं से सभी लकारों में रूप बनते हैं। णिजन्त धातुओं से सामान्यतया आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों प्रत्यय होते हैं। जब क्रिया का फल कर्ता को मिलता है, तब आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं[7] और जब क्रिया का फल अन्य को मिलने वाला हो तब परस्मैपद। किन्तु निम्नलिखित णिजन्त धातुओं से केवल परस्मैपद ही होते हैं→निगलने अर्थवाली धातुएं, चलने अर्थ वाली धातुएँ,

---

१. हेतुमति च (अष्टा. ३.१.११५)
२. अचो ञ्णिति (अष्टा. ७.२.११५)
३. एचोऽयवायावः (अष्टा. ६.१.७८)
४. अत उपधायाः (अष्टा. ७.२.११६)
५. पुगन्तलघूपधस्य च (अष्टा. ७.३.८६)
६. सनाद्यन्ता धातवः (अष्टा. ३.१.३२)
७. णिचश्च (अष्टा. १. ३. ४८)

अण्यन्तावस्था में ऐसी अकर्मक धातुएं जिनका कर्त्ता चेतन हो, तथा बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु, और स्रु। इन सभी धातुओं से णिच् प्रत्यय लगने पर आत्मनेपद प्रत्यय नहीं होंगे[1], केवल परस्मैपद होंगे। हां, पा (=पीना), दम्, आङ्यम्, आङ्-यस्, परिमुह्, रुच्, नृत्, वद् और वस् इन धातुओं पर यह नियम लागू नहीं होगा[2]। इन धातुओं से णिजन्त अवस्था में कर्त्रभिप्राय क्रियाफल के विषय में केवल आत्मनेपद ही होगा।

अब हम पहिले पाठि (=पठ्+णिच्) धातु के रूप समस्त लकारों में दर्शाते हैं।

पठ्=पढ़ना, पाठि (पठ्+णिच्)=पढ़ाना

परस्मैपद

लट्

पाठयति	पाठयतः	पाठयन्ति
पाठयसि	पाठयथः	पाठयथ
पाठयामि	पाठयावः	पाठयामः

लिट्

(१) प्र० पाठयामास पाठयामासतुः पाठयामासुः

(२) प्र० पाठयाम्बभूव पाठयाम्बभूवतुः पाठयाम्बभूवुः

(३) प्र० पाठयाञ्चकार पाठयाञ्चक्रतुः पाठयाञ्चक्रुः

लुट्

पाठयिता	पाठयितारौ	पाठयितारः
पाठयितासि	पाठयितास्थः	पाठयितास्थ
पाठयितास्मि	पाठयितास्वः	पाठयितास्मः

लृट्

पाठयिष्यति	पाठयिष्यतः	पाठयिष्यन्ति
पाठयिष्यसि	पाठयिष्यथः	पाठयिष्यथ
पाठयिष्यामि	पाठयिष्यावः	पाठयिष्यामः

लोट्

पाठयतु (पाठयतात्)	पाठयताम्	पाठयन्तु
पाठय (,,)	पाठयतम्	पाठयत
पाठयानि	पाठयाव	पाठयाम

लङ्

अपाठयत्	अपाठयताम्	अपाठयन्
अपाठयः	अपाठयतम्	अपाठयत
अपाठयम्	अपाठयाव	अपाठयाम

विधिलिङ्

पाठयेत्	पाठयेताम्	पाठयेयुः
पाठयेः	पाठयेतम्	पाठयेत
पाठयेयम्	पाठयेव	पाठयेम

लुङ्

अपीपठत्	अपीपठताम्	अपीपठन्
अपीपठः	अपीपठतम्	अपीपठत
अपीपठम्	अपीपठाव	अपीपठाम

लृङ्

अपाठयिष्यत्	अपाठयिष्यताम्	अपाठयिष्यन्
अपाठयिष्यः	अपाठयिष्यतम्	अपाठयिष्यत
अपाठयिष्यम्	अपाठयिष्याव	अपाठयिष्याम

---

१. निगरणचलनार्थेभ्यश्च (अष्टा. १. ३ ८७); अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् (अष्टा. १. ३. ८८); बुधयुधनशजनेङ् प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः (अष्टा. १. ३. ८६)

२. न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः (अष्टा. १. ३. ८६)

आत्मनेपद

लट्

पाठयते	पाठयेते	पाठयन्ते
पाठयसे	पाठयेथे	पाठयध्वे
पाठये	पाठयावहे	पाठयामहे

लिट्

(१) पाठयाञ्चक्रे पाठयाञ्चक्राते पाठयाञ्चक्रिरे

(२) पाठयाम्बभूव पाठयाम्बभूवतुः पाठयाम्बभूवुः

(३) पाठयामास पाठयामासतुः पाठयामासुः

लुट्

पाठयिता	पाठयितारौ	पाठयितारः
पाठयितासे	पाठयितासाथे	पाठयिताध्वे
पाठयिताहे	पाठयितास्वहे	पाठयितास्महे

लृट्

पाठयिष्यते	पाठयिष्येते	पाठयिष्यन्ते
पाठयिष्यसे	पाठयिष्येथे	पाठयिष्यध्वे
पाठयिष्ये	पाठयिष्यावहे	पाठयिष्यामहे

लोट्

पाठयताम्	पाठयेताम्	पाठयन्ताम्
पाठयस्व	पाठयेथाम्	पाठयध्वम्
पाठयै	पाठयावहै	पाठयामहै

लङ्

अपाठयत	अपाठयेताम्	अपाठयन्त
अपाठयथाः	अपाठयेथाम्	अपाठयध्वम्
अपाठये	अपाठयावहि	अपाठयामहि

विधिलिङ्

पाठयेत	पाठयेयाताम्	पाठयेरन्
पाठयेथाः	पाठयेयाथाम्	पाठयेध्वम्
पाठयेय	पाठयेवहि	पाठयेमहि

लुङ्

अपीपठत	अपीपठेताम्	अपीपठन्त
अपीपठथाः	अपीपठेथाम्	अपीपठध्वम्
अपीपठे	अपीपठावहि	अपीपठामहि

लृङ्

अपाठयिष्यत अपाठयिष्येताम् अपाठयिष्यन्त

अपाठयिष्यथाः अपाठयिष्येथाम् अपाठयिष्यध्वम्

अपाठयिष्ये अपाठयिष्यावहि अपाठयिष्यामहि

इसी प्रकार अन्य णिजन्त धातुओं से भी उपरिलिखित नियमानुसार परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं, किन्तु अब हम केवल परस्मैपद प्रत्यय (अथवा कहीं आत्मनेपद प्रत्यय) ही लिखेंगे। दोनों के लिखने से विस्तार हो जायेगा।

सभी णिजन्त धातुओं से वे सभी कृत् प्रत्यय भी होते हैं जिनका विधान धातुमात्र से किया गया है। उदाहरणार्थ कुछ प्रत्ययों का योग दर्शाया जा रहा है। यह पहिले ही बताया जा चुका है कि कृदन्त शब्द सुबन्त हो जाते हैं और उनके सातों विभक्तियों में रूप चलते हैं।

पाठि (पठ्+णिच्)

क्त्वा→पाठयित्वा=पढ़ाकर

क्तवतु→(पु.) पाठितवान्=पढ़ाया (पढ़ा चुका)

(स्त्री.) पाठितवती=पढ़ाया (पढ़ा चुकी)

(नपुं.) पाठितवत्=पढ़ाया (पढ़ा चुका)

शतृ→(पु.) पाठयन्=पढ़ाता हुआ

(स्त्री.) पाठयन्ती=पढ़ाती हुई

(नपुं.) पाठयत्=पढ़ाता हुआ मित्र

पाठयन्ती=पढ़ाते हुए दो मित्र

पाठयन्ति=पढ़ाते हुए बहुत मित्र

शानच्→(पु.) पाठयमानः=पढ़ाता हुआ

(स्त्री.) पाठयमाना=पढ़ाती हुई

(नपुं.) पाठयमानम्=पढ़ाता हुआ कुल

लृट्स्थानीय शतृ→

पाठयिष्यन्=भविष्य में पढ़ाने वाला

पाठयिष्यन्ती= ,, पढ़ाने वाली
पाठयिष्यती = ,, ,,

पाठयिष्यत्=,, ,, पढ़ाने वाला कुल

लृट्स्थानीय शानच्→

पाठयिष्यमाणः=भविष्य में पढ़ाने वाला

पाठयिष्यमाणा=,, ,, पढ़ाने वाली

पाठयिष्यमाणम्=,, ,, पढ़ाने वाला मित्र

ल्युट्→पाठनम्=पढ़ाना

ण्वुल्→पाठकः=पढ़ाने वाला

पाठिका=पढ़ाने वाली

पाठकम्=पढ़ाने वाला मित्र

णमुल्→पाठं पाठम्=पढ़ा पढ़ाकर

तृच्-तृन्→पाठयिता=पढ़ाने वाला

पाठयित्री=पढ़ाने वाली

पाठयितृ=पढ़ाने वाला मित्र

णिनि→छात्रपाठी=छात्रों को पढ़ाने वाला

छात्रपाठिनी=,, ,, पढ़ाने वाली

छात्रपाठि=,, ,, पढ़ाने वाला मित्र

क्त→पाठितः=पढाया गया

पाठिता=पढ़ायी गयी

पाठितम्=पढ़ाया हुआ कुल

तव्यत्→पाठयितव्यः=पढ़ाने योग्य पुरुष

पाठयितव्या= ,, ,, योग्य स्त्री

पाठयितव्यम्= ,, ,,, कुल

अनीयर्→पाठनीयः=,, ,, पुरुष

पाठनीया= ,, ,, स्त्री

पाठनीयम्= ,, ,, कुल

यत्→पाठ्या= ,, ,, पुरुष

पाठ्यः= ,, ,, स्त्री

पाठ्यम्= ,, ,, कुल

कर्मवाच्य में पाठि से शानच्→

पाठ्यमानः=पढ़ाया जाता हुआ

पाठ्यमाना=पढ़ाई जाती हुई

पाठ्यमानम्=पढ़ाया जाता हुआ

इसी प्रकार अन्य णिजन्त धातुओं से भी कृत्प्रत्यय होते हैं। उदाहरणार्थ **एक** (पाठि) धातुओं के शब्द लिख दिये हैं। अन्य धातु के स्वयं तुम लोगों को **बना** लेने चाहिएं। अब पाठि धातु के तिङन्त तथा सुबन्त शब्दों का वाक्यों में **अभ्यास** संक्षेप से करवाते हैं।

१. जिस विद्यालय में तुम पढ़ाते हो उसमें पढ़ाने वाले कितने हैं।
यस्मिन् विद्यालये यूयं पाठयथ तत्र कियन्तः पाठयितारः (पाठकाः सन्ति)

२. विरजानन्द ने दयानन्द को आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ाये ।
विरजानन्दः दयानन्दम् आर्षग्रन्थान् एव पाठयाञ्चकार (अपाठयत्, अपीपठत्)

३. तू कल दसवीं को केमेस्ट्री पढ़ावेगा मैं तो उसे सदा पढ़ाऊँगा ।]
त्वं श्वः दशमीं रसायनशास्त्रं पाठयितासि अहं तु तां सर्वदा पाठयिष्यामि ।

४. व्याकरण पढ़ाकर ही इनको वेद पढ़ा ।
व्याकरणं पाठयित्वा एव एतान् वेदं पाठय (पाठयेः)

५. यदि मेरे गुरुजन मुझे प्रेमपूर्वक न पढ़ाते तो मैं मूर्ख ही रह जाता ।
यदि मम गुरुजनाः मां प्रेम्णा न अपाठयिष्यन् तर्हि अहं मूर्खः एव अस्थास्यम् ।

६. कुसुमलता ने अपनी कक्षा को पुरुषसूक्त पढ़ाते हुए सृष्टि-उत्पत्ति का विषय भी पढ़ा दिया ।
कुसुमलता स्वां कक्षां पुरुषसूक्तं पाठयन्ती (पाठयमाना) सृष्ट्युत्पत्तिविषयम् अपि अपीपठत् (पाठितवती) ।

७. सुमित्रा लड़कियों को पाठ पढ़ाती हुई व्याकरण भी पढ़ायेगी ।
सुमित्रा बालिकाः पाठान् पाठयिष्यन्ती (पाठयिष्यमाणा) व्याकरणम् अपि पाठयिष्यति ।

८. मेरे चारों मित्र संस्कृत पढ़ाते हुए धीमे स्वर में बोलते हैं ।
मम चत्वारि मित्राणि संस्कृतं पाठयन्ति मन्देन स्वरेण भाषन्ते ।

९. ये मूर्ख लोग पढ़ाने योग्य नहीं हैं ।
एते मूर्खाः छात्राः अपाठनीयाः (अपाठ्याः, अपाठयितव्याः) खलु ।

१०. मेरे पहिले पढ़ाये हुए छात्र इतने बुद्धिमान नहीं थे जितने कि अब पढ़ाये जा रहे छात्र हैं ।

मम पूर्वं पाठिताः छात्राः न आसन् तावन्तः मतिमन्तः यावन्तः सम्प्रति पाठयमानाः छात्राः सन्ति ।

यहां कर्मवाच्य में परिवर्त्तन करते समय स्वेच्छा से प्रयोज्य कर्म को अथवा मुख्य कर्म को बदल सकते हैं । यथा—

१. मैंने उन्हें अष्टाध्यायी पढ़ायी ।
कर्तृ०—अहं तान् अष्टाध्यायीम् अपाठयम् (अपीपठम्)
कर्म०—मया ते अष्टाध्यायीम् अपाठ्यन्त (अपाठिषत, पाठिताः)

मया तान् अष्टाध्यायी अपाठयत (अपाठि, पाठिता)।

(२) स्था (=ष्ठा) = ठहरना स्थापि (स्था+णिच्) ठहराना, रखना, स्थापित करना।

लट्—[1]स्थापयति	स्थापयतः	स्थापयन्ति
लिट्—स्थापयाञ्चकार	स्थापयाञ्चक्रतुः	स्थापयाञ्चक्रुः
लुट्—स्थापयिता	स्थापयितारौ	स्थापयितारः
लृट्—स्थापयिष्यति	स्थापयिष्यतः	स्थापयिष्यन्ति
लोट्—स्थापयतु (स्थापयतात्)	स्थापयताम्	स्थापयन्तु
लङ्—अस्थापयत्	अस्थापयताम्	अस्थापयन्
वि० लिङ्—स्थापयेत्	स्थापयेताम्	स्थापयेयुः
लुङ्—अतिष्ठिपत्	अतिष्ठिपताम्	अतिष्ठिपन्
अतिष्ठिपः	अतिष्ठिपतम्	अतिष्ठिपत
अतिष्ठिपम्	अतिष्ठिपाव	अतिष्ठिपाम
लृङ्—अस्थापयिष्यत्	अस्थापयिष्यताम्	अस्थापयिष्यन्

आत्मनेपद प्रत्ययों में रूप 'पाठि' के समान 'स्थापयते स्थापयेते स्थापयन्ते' आदि बना लें।

अभ्यास

१. व्रतानन्द जी ने अनेक गुरुकुल स्थापित किये थे।
   व्रतानन्दमहाभागः नैकानि गुरुकुलानि अतिष्ठिपत् (स्थापयाञ्चकार)।
२. इस धर्मशाला के कर्मचारी गरीब यात्रियों को यहां नहीं ठहराते हैं।
   अस्याः धर्मशालायाः कार्यकर्त्तारः निर्धनान् यात्रिणः अत्र न स्थापयन्ति।
३. देवव्रत अपने भतीजों को अपने घर में रखेगा।
   देवव्रतः स्वभ्रातृजान् स्वगेहे स्थापयिष्यति (स्थापयिता)।
४. गुरु अपने शिष्यों को नियम में रक्खे।
   गुरुः निजान् अन्तेवासिनः नियमे स्थापयतु (स्थापयेत्)
५. महर्षि दयानन्द ने 'आर्यसमाज' की स्थापना की थी।
   महर्षिः दयानन्दः 'आर्यसमाजम्' समस्थापयत् (समतिष्ठिपत्)।

---

१. आकारान्त धातु होने के कारण 'अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ (अष्टा० ६.३.३६) से पुक् (=प्) आगम हुआ। सभी आकारान्त धातुओं से इसी प्रकार पुक् आगम होगा।

६. यदि मैं इसको अपने पास न ठहराता तो तुम इससे कैसे मिलते ?
यदि अहम् एनं स्वान्तिके न अस्थापयिष्यम् तर्हि यूयं एनं कथं समगमिष्यत ?

(३) दाण्, (४) डुदाञ्=दाने (देना); दापि, दापि=दिलवाना

लट्—दापयति	दापयतः	दापयन्ति
लिट्—दापयाञ्चकार	दापयाञ्चक्रतुः	दापयाञ्चक्रुः
लुट्—दापयिता	दापयितारौ	दापयितारः
लृट्—दापयिष्यति	दापयिष्यतः	दापयिष्यन्ति
लोट्—दापयतु (दापयतात्)	दापयताम्	दापयन्तु
लङ्—अदापयत्	अदापयताम्	अदापयन्
वि० लिङ्—दापयेत्	दापयेताम्	दापयेयुः
लुङ्—अदीदपत्	अदीदपताम्	अदीदपन्
अदीदपः	अदीदपतम्	अदीदपत
अदीदपम्	अदीदपाव	अदीदपाम
लृङ्—अदापयिष्यत्	अदापयिष्यताम्	अदापयिष्यन्

१. स्वामी अग्निवेश मजदूरों को मालिकों से पूरा वेतन दिलवाते हैं।
स्वामी अग्निवेशमहाभागः श्रमिकेभ्यः अधिपतिभिः पूर्णं वेतनं दापयति।
२. वसिष्ठ ने दशरथ से विश्वामित्र को राम और लक्ष्मण दिलवाये।
वसिष्ठः दशरथेन विश्वामित्राय रामलक्ष्मणौ दापयाञ्चकार।
३. जो मुझे सौ बोरी सीमेंट दिलवायेगा उसका धन्यवाद करूंगा।
यः मह्यं शतं गोणीः सीमेंटं दापयिष्यति (दापयिता) तस्मै धन्यवादं वितरिष्यामि (वितरीष्यामि; वितरितास्मि, वितरीतास्मि)।
४. जैसी दक्षिणा तूने उसे दिलवायी वैसी मुझे दिलवा।
यादृशीं दक्षिणां त्वं तस्मै अदापयः (अदीदपः) तादृशीं मह्यम् अपि दापय (दापयेः)।
५. यदि यह गृहस्थ मुझे पुस्तकें नहीं दिलवाता तो मैं कैसे पढ़ता ?
यदि अयं गृहस्थः मह्यं पुस्तकानि न अदापयिष्यत् तर्हि अहं कथम् अपठिष्यम्।

(५) ष्णा (=स्ना) शौचे=नहाना; स्नापि, स्नपि[1]=नहलाना

लट्—स्नापयति	स्नापयतः	स्नापयन्ति
(स्नपयति	स्नपयतः	स्नपयन्ति)

१. स्ना (=ष्णा) धातु की (उपसर्ग से रहित अवस्था में) विकल्प से मित् सञ्ज्ञा होती है ('ग्लास्नावनुवमांच' धातुसूत्र भ्वा० ५४५)। मित्सञ्ज्ञा पक्ष में णिच् परे रहने पर (मितां ह्रस्वः अष्टा० ६.४.९०) उपधा को ह्रस्व हो जायेगा।

लिट्

स्नापयाञ्चकार स्नापयाञ्चक्रतुः स्नापयाञ्चक्रुः
(स्नपयाञ्चकार स्नपयाञ्चक्रतुः स्नपयाञ्चक्रुः)

लुट्

स्नापयिता स्नापयितारौ स्नापयितारः
(स्नपयिता स्नपयितारौ स्नपयितारः)

लृट्

स्नापयिष्यति स्नापयिष्यतः स्नापयिष्यन्ति
(स्नपयिष्यति स्नपयिष्यतः स्नपयिष्यन्ति)

लोट्

स्नापयतु [स्नापयतात्] स्नापयताम् स्नापयन्तु
(स्नपयतु [स्नपयतात्] स्नपयताम् स्नपयन्तु)

लङ्

अस्नापयत् अस्नापयताम् अस्नापयन्
(अस्नपयत् अस्नपयताम् अस्नपयन्)

वि० लिङ्

स्नापयेत् स्नापयेताम् स्नापयेयुः
(स्नपयेत् स्नपयेताम् स्नपयेयुः)

लुङ्

असिष्णपत् असिष्णपताम् असिष्णपन्

लृङ्

अस्नापयिष्यत् अस्नापयिष्यताम् अस्नापयिष्यन्
(अस्नपयिष्यत् अस्नपयिष्यताम् अस्नपयिष्यन्)

१. तू दादा को नहलाकर फिर पिता को नहला।

त्वं पितामहं स्नापयित्वा (स्नपयित्वा) ततः पितरं स्नापय (स्नपय; स्नापयेः, स्नपयेः)।

२. यज्ञ की समाप्ति पर पुरोहितों ने यज्ञिय कलशों के जल से पुष्यमित्र को स्नान कराया।

यज्ञान्ते पुरोधसः यज्ञियकलशानां जलेन पुष्यमित्रं स्नापयाञ्चक्रुः (स्नपयाञ्चक्रुः)

३. वह इन कोढ़ियों को दवाइयों के पानी से नहलायेगा।

सः इमान् कुष्ठिनः औषधमिश्रितेन जलेन स्नापयिष्यति (स्नपयिष्यति; स्नापयिता, स्नपयिता)।

४. ब्रह्मचारियों ने आज अपने आचार्य को सोते के पानी से स्नान कराया।

ब्रह्मचारिणः अद्य निजम् आचार्यं स्रोतसः सलिलेन असिष्णपन्।

५. यह माता कैसी है? इस भरी गर्मी में भी इसने कल बच्चों को नहीं नहलाया।

कीदृशी इयं जननी? अस्मिन् प्रचण्डे निदाघे अपि इयं ह्यः सुतान् न अस्नापयत् (अस्नपयत्)।

६. यदि हम गौओं को प्रतिदिन न नहलाते तो गौएं इतनी प्रसन्न न रहतीं।
यदि वयं प्रतिदिनं गाः न अस्नापयिष्याम (अस्नपयिष्याम) तर्हि गावः एव प्रसन्नाः न अभविष्यन्।

या (६) { प्रापणे = (आना)
यापि (= या + णिच्) = भेजना, समय बिताना }

लट्—यापयति	यापयतः	यापयन्ति
लिट्—यापयाञ्चकार	यापयाञ्चक्रतुः	यापयाञ्चक्रुः
लुट्—यापयिता	यापयितारौ	यापयितारः
लृट्—यापयिष्यति	यापयिष्यतः	यापयिष्यन्ति
लोट्—यापयतु (यापयतात्)	यापयताम्	यापयन्तु
लङ्—अयापयत्	अयापयताम्	अयापयन्
वि० लिङ्—यापयेत्	यापयेताम्	यापयेयुः
लुङ्—अयीयपत्	अयीयपताम्	अयीयपन्
लृङ्—अयापयिष्यत्	अयापयिष्यताम्	अयापयिष्यन्

१. इस रसमय समय को उदासीनता में मत बिता।
इमं रसमयं समयम् औदासीन्ये मा यीयपः (मा स्म यापयः; मा यापय[1], मा यापयेः; अलं यापयित्वा)।

२. बुद्धिमान् लोग अपना समय परोपकार में बिताते हैं।
मतिमन्तः जनाः स्वसमयं परोपकारे यापयन्ति।

---

१. पहले के पृष्ठों में तिङन्त प्रकरण में निषेध के प्रसङ्ग में 'मा' अव्यय का प्रयोग करते हुए 'माङि लुङ्' और 'स्मोत्तरे लङ् च' (अष्टा० ३.३.१७५, १७६) के अनुसार 'मा' के साथ लुङ् अथवा लङ् का प्रयोग किया गया था, किन्तु आज हमने यहाँ 'मा' के साथ लोट् और वि० लिङ् का भी प्रयोग किया है। ऐसा इसलिये किया गया है कि, छात्रों को यह ज्ञान हो जाये कि साहित्य में 'मा' के साथ लोट् और वि० लिङ् का भी प्रयोग होता है। 'मा' अव्यय दो प्रकार का है। एक ङित् मा अर्थात् माङ् और दूसरा अङित् मा। पाणिनि ने लुङ् और लङ् का विधान ङित् 'मा' के योग में किया है। अङित् 'मा' के योग में लोट् या वि० लिङ् का प्रयोग हो सकता है। ङित् 'माङ्' भी व्यवहारावस्था में 'मा' ही रहता है, अतः फलितार्थ यह हुआ कि 'मा' के योग में चाहे लुङ् अथवा लङ् (स्म सहित में) अथवा लोट् अथवा वि० लिङ् किया जा सकता है।

३. पाण्डवों ने बारह वर्ष वन में बिताये।
पाण्डवाः द्वादशवर्षाणि वने यापयाञ्चक्रुः।

४. हम गर्मी की छुट्टियाँ नाना के घर बितायेंगे।
वयं ग्रीष्मावकाशं मातामहगृहे यापयिष्यामः (यापयितास्मः)।

(७) श्रु श्रवणे (=सुनना)—श्रावि=सुनाना, सुनवाना

लट्—श्रावयति	श्रावयतः	श्रावयन्ति
लिट्—श्रावयाञ्चकार	श्रावयाञ्चक्रतुः	श्रावयाञ्चक्रुः
लुट्—श्रावयिता	श्रावयितारौ	श्रावयितारः
लृट्—श्रावयिष्यति	श्रावयिष्यतः	श्रावयिष्यन्ति
लोट्—श्रावयतु (श्रावयतात्)	श्रावयताम्	श्रावयन्तु
लङ्—अश्रावयत्	अश्रावयताम्	अश्रावयन्
वि० लिङ्—श्रावयेत्	श्रावयेताम्	श्रावयेयुः
लुङ्—(१) अशुश्रवत्	अशुश्रवताम्	अशुश्रवन्
अशुश्रवः	अशुश्रवतम्	अशुश्रवत
अशुश्रवम्	अशुश्रवाव	अशुश्रवाम
(२)[1] अशिश्रवत्	अशिश्रवताम्	अशिश्रवन्
अशिश्रवः	अशिश्रवतम्	अशिश्रवत
अशिश्रवम्	अशिश्रवाव	अशिश्रवाम
लृङ्—अश्रावयिष्यत्	अश्रावयिष्यताम्	अश्रावयिष्यन्

१. ये छात्र प्रतिदिन अपना पठित पाठ सुनाते हैं।
एते छात्राः प्रत्यहं स्वपठितपाठं श्रावयन्ति।

२. दूतों ने जनक का संदेश दशरथ को सुनाया।
दूताः जनकसंदेशं दशरथं श्रावयाञ्चक्रुः।

३. तूने जो गीत कल सुनाये थे वही आज भी सुनाये क्या आगे भी वही सुनाओगे?
त्वं यानि गीतानि ह्यः अश्रावयः तानि एव अद्य अशुश्रवः (अशिश्रवः) किम् अग्रे अपि तानि एव श्रावयिष्यसि (श्रावयितासि)?

४. इन कोमल बुद्धि वाले छात्रों को अश्लील किस्से मत सुना?
इमान् मृदुमतीन् छात्रान् अश्लीलाः कथाः मा शुश्रवः (मा शिश्रवः; मा स्म श्रावयः, न श्रावय, न श्रावयेः)?

---

१. स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा (अष्टा. ७.४.८१) से एक पक्ष में अभ्यास के उ के स्थान पर इकारादेश हुआ।

५. यदि दयानन्द जनता को वेदों का संदेश न सुनाता तो जनता वेदों को न जान पाती।
यदि दयानन्दः जनतां वेदानां सन्देशं न अश्रावयिष्यत् तर्हि जनता वेदान् ज्ञातुं न अशक्ष्यत्।

कर्मवाच्य में परिवर्त्तन करते समय णिजन्त श्रु के प्रसङ्ग में 'प्रयोज्यकर्मण्यन्येषाम्' के अनुसार केवल प्रयोज्य कर्म में ही परिवर्त्तन होगा। यथा—

१. ब्रह्मचारियों ने मुझे बहुत से श्लोक सुनाये।
कर्तृ०—ब्रह्मचारिणः मां बहून् श्लोकान् अश्रावयन् (अशुश्रवन्, अशिश्रवन्)।
कर्म०—ब्रह्मचारिभिः अहं बहून् श्लोकान् अश्राव्ये (अश्राविषि)।

(८) भू सत्तायाम् (=होना)=भावि=हुआना। अनुभावि=अनुभव करवाना। अभिभावि=तिरस्कार करवाना। आदि।

लट्—भावयति	भावयतः	भावयन्ति
लिट्—भावयाञ्चकार	भावयाञ्चक्रतुः	भावयाञ्चक्रुः
लुट्—भावयिता	भावयितारौ	भावयितारः
लृट्—भावयिष्यति	भावयिष्यतः	भावयिष्यन्ति
लोट्—भावयतु (भावयतात्)	भावयताम्	भावयन्तु
लङ्—अभावयत्	अभावयताम्	अभावयन्
वि. लिङ्—भावयेत्	भावयेताम्	भावयेयुः
लुङ्[१]—अबीभवत्	अबीभवताम्	अबीभवन्
लृङ्—अभावयिष्यत्	अभावयिष्यताम्	अभावयिष्यन्

णिजन्त भू (=भावि) धातु के प्रयोग उपसर्गपूर्वक के ही अधिक मिलते हैं, अतः वैसे ही वाक्यों का अभ्यास दिया जा रहा है।

१. पाठशाला में पढ़ते हुए मुझे छात्रों ने बहुत दुःख अनुभव कराये।
पाठशालायां पठता मया छात्राः बहूनि दुःखानि अन्वभावयन् (अन्वबीभवन्, अनुभावितवन्तः)।

२. राजा नन्द ने नौकरों से चाणक्य का तिरस्कार करवाया।
नृपः नन्दः भृत्यैः चाणक्यम् अभ्यभावयत् (अभ्यबीभवत्)

३. हमारी सेना ने जैसे याह्याखाँ की सेना को हराया था, वैसे ही टुक की सेना को भी हरायेगी?

---

१. अभ्यास में वर्त्तमान उ को (भु के उ को) 'ओः पुयण्ज्यपरे' (अष्टा. ७.४.८०) से इकारादेश हो गया। यही बात अन्य भी उवर्णान्त धातुओं में यथानियम होगी।

अस्माकं चमूः यथा 'याह्याखाँ' इत्याख्यस्य सेनापतेः सेनां पर्यभावयत् तथा 'जियाउलहक' शासकस्य सेनाम् अपि परिभावयिष्यति (परिभावयिता) ?

४. दोनों के साथ बातचीत करके इनके मिलन को सम्भव बना।
द्वाभ्याम् अपि सह संलप्य अनयोः सम्मिलनं सम्भावय (सम्भावयेः)

५. गुरुकुल में गुरुजन तपस्या के द्वारा तुम्हें कष्टों का अनुभव न कराते तो तुममें सहन शक्ति न आती।
गुरुकुले गुरुजनाः तपसा युष्माभिः कष्टानि न अन्वभावयिष्यन् तर्हि युष्मासु सहिष्णुता न आगमिष्यत्।

(६) पूञ् पवने (पवित्र करना), पावि=पवित्र करवाना

लट्—पावयति	पावयतः	पावयन्ति
लिट्—पावयाञ्चकार	पावयाञ्चक्रतुः	पावयाञ्चक्रुः
लुट्—पावयिता	पावयितारौ	पावयितारः
लृट्—पावयिष्यति	पावयिष्यतः	पावयिष्यन्ति
लोट्—पावयतु (पावयतात्)	पावयताम्	पावयन्तु
लङ्—अपावयत्	अपावयताम्	अपावयन्
वि० लिङ्—पावयेत्	पावयेताम्	पावयेयुः
लुङ्—अपीपवत्	अपीपवताम्	अपीपवन्
अपीपवः	अपीपवतम्	अपीपवत
अपीपवम्	अपीपवाव	अपीपवाम
लृङ्—अपावयिष्यत्	अपावयिष्यताम्	अपावयिष्यन्

१. सफाई इन्स्पेक्टर शहर की सफाई करवाता है।
स्वच्छतानिरीक्षकः पुरं पावयति।

२. विरजानन्द शिष्यों से अपनी कुटिया को स्वच्छ करवाते थे।
विरजानन्दः शिष्यैः निजकुटीरं पावयाञ्चकार।

३. हमने तो अपनी सड़कें साफ करवा दी हैं, तुम आज अपने मार्ग साफ कराओ।
वयं तु निजराजमार्गान् अपावयाम (अपीपवाम) यूयम् अद्य युष्माकं मार्गान् पावयत (पावयेत)।

४. अब तो हम भी स्वच्छ करवायेंगे, यदि तुम सफाई न करवाते तो हम भी नहीं करवाते।
अधुना तु वयम् अपि पावयिष्यामः (पावयितास्मः) यदि यूयं न अपावयिष्यत तर्हि वयम् अपि न अपावयिष्याम।

५. आपने इन विद्वानों से मेरा घर पवित्र करवाया, अतः आपको धन्यवाद ।

भवन्तः एभिः सुधीभिः मदोकः अपावयन् (अपीपवन्) अतः धन्यवादार्हाः भवन्तः खलु ।

(१०) लूञ् छेदने (=काटना), लावि=कटवाना

लट्—लावयति लावयतः लावयन्ति	लङ्—अलावयत् अलावयताम् अलावयन्
लिट्—लावयाञ्चकार लावयाञ्चक्रतुः लावयाञ्चक्रुः	वि. लिङ्—लावयेत् लावयेताम् लावयेयुः
लुट्—लावयिता लावयितारौ लावयितारः	लुङ्—अलीलवत् अलीलवताम् अलीलवन् अलीलवः अलीलवतम् अलीलवत अलीलवम् अलीलवाव अलीलवाम
लृट्-लावयिष्यति लावयिष्यतः लावयिष्यन्ति	
लोट्—लावयतु लावयताम् लावयन्तु / लावयतात्	लृङ्-अलावयिष्यत् अलावयिष्यताम् अलावयिष्यन्

१. मैं अपनी फसल अपने सहयोगियों से कटवाऊँगा ।

अहं निजसस्यं निजसहयोगिभिः लावयिष्यामि (लावयितास्मि) ।

२. परसों मैंने गेहूं कटवाया था और आज जौ कटवाया है ।

परह्यः अहं गोधूमम् अलावयम् अद्य च यवम् अलीलवम् ।

३. तुम अनार के पेड़ की डालियां कब कटवाओगे ?

त्वं दाडिमवृक्षस्य शाखाः कदा लावयिष्यसि (लावयितासि) ?

४. इन पेड़ों को मत कटवा, ये छायादार और फलदार हैं ।

इमान् महीरुहान् मा लीलवः (मा स्म लावयः; मा लावय, मा लावयेः) एते छायावन्तः फलवन्तः च सन्ति ।

५. यदि अधिकारी जङ्गलों को न कटवाते तो खूब वर्षा होती ।

यदि शासकाः अरण्यानि न अलावयिष्यन् तर्हि पुष्कलः वर्षः अभविष्यत् ।

(११) शासु अनुशिष्टौ (=शासन करना), शासि=शासन करवाना

लट्—शासयति शासयतः शासयन्ति	लङ्—अशासयत् अशासयताम् अशासयन्
लिट्-शासयाञ्चकार शासयाञ्चक्रतुः शासयाञ्चक्रुः	वि. लिङ्—शासयेत् शासयेताम् शासयेयुः
लुट् – शासयिता शासयितारौ शासयितारः	लुङ्—अशशासत् अशशासताम् अशशासन् अशशासः अशशासतम् अशशासत अशशासम् अशशासाव अशशासाम
लृट्—शास ष्यति शासयिष्यतः शासयिष्यन्ति	
लोट्-शासयतु शासयताम् शासयन्तु / शासयतात्	लृङ्-अशासयिष्गत् अशासयिष्यताम् अशासयिष्यन्

१. इन्दिरा जी जिनसे शासन करवाती हैं, उनमें बहुत से उन्हें धोखा देते हैं।
इन्दिरा भगवती यैः प्रजां शासयति, तेषु बहवः भगवतीं वञ्चयन्ति।

२. जवाहरलाल ने कर्मचारियों से प्रजा पर अच्छा शासन करवाया।
जवाहरलालः कर्मचारिभिः प्रजां सम्यक् अशशासत् (अशासयत्)।

३. इस उद्दण्ड प्रजा पर दण्डधारी शासक ही शासन करवायेगा।
इमाः उद्दण्डाः प्रजाः दण्डवान् शासकः एव शासयिष्यति (शासयिता)।

४. विद्वानों पर अविद्वानों से शासन मत करवा।
विदुषः मा शशासः (मा स्म शासयः) अविद्वद्भिः।

५. जैसे राम ने अधिकारियों से जनता पर शासन करवाया था वैसे तुम्हें भी करवाना चाहिये।
यथा रामः अधिकारिभिः जनतां शासयाञ्चकार तथा त्वम् अपि शासयेः।

(१२) षिवु तन्तुसन्ताने (=सीना), सेवि=सिलवाना

लट्—सेवयति सेवयतः सेवयन्ति
लिट्—सेवयाञ्चकार सेवयाञ्चक्रतुः सेवयाञ्चक्रुः
लुट्—सेवयिता सेवयितारौ सेवयितारः
लृट्—सेवयिष्यति सेवयिष्यतः सेवयिष्यन्ति
लोट्—{सेवयतु सेवयताम् सेवयन्तु / सेवयतात्}

लङ्—असेवयत् असेवयताम् असेवयन्
वि०लिङ्—सेवयेत् सेवयेताम् सेवयेयुः
लुङ्—असीषिवत् असीषिवताम् असीषिवन्
असीषिवः असीषिवतम् असीषिवत
असीषिवम् असीषिवाव असीषिवाम
लृङ्—असेवयिष्यत् असेवयिष्यताम् असेवयिष्यन्

१. मैंने पहिले अपने सारे कुर्त्ते दिल्ली के कमीज विशेषज्ञ रूपराम से सिलवाये थे।
अहं पुरा स्वानि समानि कञ्चुकानि दिल्लीस्थेन कञ्चुकविशेषज्ञेन रूपरामेण असेवयम् (असीषिवम्)।

२. आजकल बम्बई रहने वाले मदनलाल से कुर्ते सिलवाता हूं।
अद्यत्वे मुम्बापुरीवास्तव्येन मदनलालेन कञ्चुकानि सेवयामि।

३. इस नालायक से कपड़े मत सिलवा।
अनेन अयोग्येन वस्त्राणि मा सीषिवः (मा स्म सेवयः, नैव सेवय, न सेवयेः)।

४. यदि तू अजमेर में कपड़े सिलवाता तो इतना खर्चा न होता।
यदि त्वम् अजमेरनगरे वस्त्राणि असेवयिष्यः तर्हि एतावान् व्ययः न अभविष्यत्।

५. तू रेशमी वस्त्र कब सिलवायेगा?
त्वं क्षौमानि वासांसि कदा सेवयिष्यसि (सेवयितासि)?

(१३) षह मर्षणे (=सहन करना)—साहि=सहन करवाना

लट्—साहयति साहयतः साहयन्ति
लिट्—साहयाञ्चकार साहयाञ्चक्रतुः साहयाञ्चक्रुः
लुट्—साहयिता साहयितारौ साहयितारः
लृट्—साहयिष्यति साहयिष्यतः साहयिष्यन्ति
लोट्—साहयतु साहयताम् साहयन्तु / साहयतात्
लङ्—असाहयत् असाहयताम् असाहयन्
वि० लिङ्—साहयेत् साहयेताम् साहयेयुः
लुङ्—असीषहत् असीषहताम् असीषहन् असीषहः असीषहतम् असीषहत असीषहम् असीषहाव असीषहाम
लृङ्—असाहयिष्यत् असाहयिष्यताम् असाहयिष्यन्

१. बनारस में संस्कृत पढ़ते हुए मुझे धनाभाव ने बहुत कष्ट सहन करवाये।
वाराणसीमधिष्ठाय संस्कृतं पठता मया धनविरहः महान्ति कष्टानि असाहयत् (असीषहत्)।

२. दुर्योधन की दुष्टता ने पाण्डवों को अनेक दुःख सहन करवाये।
दुर्योधनस्य खलत्वं पाण्डवैः पुष्कलानि दुःखानि साहयाञ्चकार।

३. धर्माचरण आरम्भ में सभी से कष्ट सहन करवाता है।
धर्माचरणं प्रारम्भे सर्वैः एव कष्टानि साहयति।

४. भय और गरीबी बन्धुआ मजदूरों से और कितनी पीड़ा सहन करवायेगी ?
त्रासः निर्धनता च प्रतिबद्धैः श्रमिकैः अन्याः कियतीः पीड़ाः साहयिष्यतः (साहयितारौ)

५. हे कुशासको ! भोली प्रजा से अब और कष्ट मत झिलवाओ।
भोः कुशासकाः ! अप्रगल्भया प्रजया अधुना अन्यानि कष्टानि मा सीषहत (मा स्म साहयत; न साहयत (लोट्), नैव साहयेत)।

६. यदि गुरुजन तुमसे द्वन्द्वों का सहन न करवाते तो तुम्हारे शरीर दृढ़ न बनते।
यदि गुरवः युष्माभिः द्वन्द्वानि न असाहयिष्यन् तर्हि युष्मच्छरीराणि दृढानि न अभविष्यन्।

(१४) डुलभष् (=लभ्) प्राप्तौ=प्राप्त करना, लम्भि[1]=प्राप्त करवाना

लट्—लम्भयति लम्भयतः लम्भयन्ति
लिट्—लम्भयाञ्चकार लम्भयाञ्चक्रतुः लम्भयाञ्चक्रुः
लुट्—लम्भयिता लम्भयितारौ लम्भयितारः
लृट्—लम्भयिष्यति लम्भयिष्यतः लम्भयिष्यन्ति
लोट्—लम्भयतु लम्भयताम् लम्भयन्तु / लम्भयतात्

---

१. णिच् (=इ) परे रहने पर 'लभ्' को 'लभेश्च' (अष्टा० ७.१.६४) से नुम् आगम हो गया।

लङ्—अलम्भयत् अलम्भयताम् अलम्भयन्

वि० लिङ्—लम्भयेत् लम्भयेताम् लम्भयेयु:

लुङ्—अललम्भत् अललम्भताम् अललम्भन्

अललम्भ: अललम्भतम् अललम्भत

अललम्भम् अललम्भाव अललम्भाम

लृङ्—अलम्भयिष्यत् अलम्भयिष्यताम् अलम्भयिष्यन्

१. धर्म ने मनुष्यों को सदा सुख प्राप्त करवाया है।
धर्म: मनुष्यान् नित्यं सुखम् अलम्भयत् (अललम्भत्)।

२. राजा प्रजा को अन्न सुलभ करवाता है=नृप: प्रजाम् अन्नं सुलम्भयति।

३. श्रम और विचक्षणता ही सुराज्य प्राप्त करायेगी।
श्रमविचक्षणते ह्येव सुराज्यं लम्भयिष्यत: (लम्भयितारौ)।

४. हे मन्त्रीजी ! इन नवयुवकों को रोजगार प्राप्त कराओ।
हे मन्त्रिन् ! इमान् यून: जीविकां लम्भय (लम्भये:)

५. राम ने सुग्रीव को राज्य और स्त्री प्राप्त करवाई थी।
राम: सुग्रीवं राज्यं भार्यां च लम्भयाञ्चकार।

६. यदि श्रद्धानन्द ये दुर्लभ ग्रन्थ प्राप्त नहीं करवाते तो हमारा पुस्तकालय अधूरा रहता।
यदि श्रद्धानन्द: इमान् दुर्लभग्रन्थान् न अलम्भयिष्यत् तर्हि अस्मत्पुस्तकालय: अपूर्ण: अस्थास्यत्।

(१५) रभ राभस्ये (=प्रारम्भ करना) =आङ्+रम्भि= आरम्भि[1]=प्रारम्भ करवाना

लट्—
आरम्भयति आरम्भयत: आरम्भयन्ति

लिट्—आरम्भयाञ्चकार
आरम्भयाञ्चक्रतु: आरम्भयाञ्चक्रु:

लुट्—आरम्भयिता आरम्भयितारौ आरम्भयितार:

लृट्—आरम्भयिष्यति आरम्भयिष्यत: आरम्भयिष्यन्ति

लोट्—{आरम्भयतु आरम्भयताम्
{आरम्भयतात् आरम्भयन्तु

लङ्—
आरम्भयत् आरम्भयताम् आरम्भयन्

वि० लिङ्—
आरम्भयेत् आरम्भयेताम् आरम्भयेयु:

लुङ्—
आररम्भत् आररम्भताम् आररम्भन्
आररम्भ: आररम्भतम् आररम्भत
आररम्भम् आररम्भाव आररम्भाम

लृङ्—आरम्भयिष्यत् आरम्भयिष्यताम् आरम्भयिष्यन्

१. रभेरशब्लिटो: (अष्टा० ७.१.६३) से नुमागम।

१. भीमसेन जी ने प्रतिदिन प्रातःकाल नौकरों से कार्य प्रारम्भ करवाया।
भीमसेनमहोदयः प्रत्यहं कल्ये भृत्यैः कार्यम् आरम्भयत्[1] (आररम्भत्)।

२. यह अधिकारी खेती का कार्य प्रत्येक ऋतु में अपने घर वालों से आरम्भ करवाता है।
अयम् अधिकारी कृषिकार्यं प्रत्यृतु स्वगृहसदस्यैः आरम्भयति।

३. चिकित्साविभाग नये डॉक्टरों से गांवों में चिकित्सा का आरम्भ करवावे।
चिकित्साविभागः नूतनैः चिकित्सकैः ग्रामेषु चिकित्साम् आरम्भयतु (आरम्भयेत्)

४. जो समय पर खेतों में कार्य आरम्भ करवायेगा वही सफल होगा।
यः यथाकालं क्षेत्रेषु कार्यम् आरम्भयिष्यति सः एव सफलः भविष्यति।

५. मकान का कार्य यदि मैं शीघ्र आरम्भ न करवाता तो वर्षा से पहिले पूरा न होता।
यदि गृहनिर्माणकार्यं शीघ्रं न आरम्भयिष्यं तर्हि वर्षारम्भात् प्राक् पूर्णं न अभविष्यत्।

स्मृ चिन्तायाम् (=स्मरण करना), स्मारि=स्मरण करवाना

लट्—स्मारयति स्मारयतः स्मारयन्ति

लिट्—स्मारयाञ्चकार स्मारयाञ्चक्रतुः स्मारयाञ्चक्रुः

लुट्—स्मारयिता स्मारयितारौ स्मारयितारः

लृट्—स्मारयिष्यति स्मारयिष्यतः स्मारयिष्यन्ति

लोट्—स्मारयतु स्मारयताम् स्मारयन्तु / स्मारयतात्

लङ्—अस्मारयत् अस्मारयताम् अस्मारयन्

वि० लिङ्—स्मारयेत् स्मारयेताम् स्मारयेयुः

लुङ्[2]—
असस्मरत् असस्मरताम् असस्मरन्
असस्मरः असस्मरतम् असस्मरत
असस्मरम् असस्मराव असस्मराम

लृङ्—अस्मारयिष्यत् अस्मारयिष्यताम् अस्मारयिष्यन्

१. अच्छे माता पिता अपने सन्तानों को सुभाषित याद करवाते हैं।
शोभनौ पितरौ निजापत्यैः सुभाषितानि स्मारयन्ति।

---

१. रभेरशब्लिटोः (अष्टा० ७.१.६३) से नुमागम।

२. अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् (अष्टा० (७.४.९५) से अभ्यास के अकार के स्थान पर ह्रस्व अकार आदेश हुआ, जिससे 'सन्यतः (अष्टा ७.४.७९) से प्राप्त इकारादेश का बाध हो गया।

२. मैंने सुरेन्द्र से पाठ याद करवाया।
अहं सुरेन्द्रेण पाठम् अस्मारयम् (असस्मरम्)।

३. सभी कक्षाध्यापक अपने छात्रों से सौ श्लोक याद करवायेंगे।
सर्वे कक्षाध्यापकाः स्वैः छात्रैः शतं श्लोकान् स्मारयिष्यन्ति (स्मारयितारः)

४. जा, गुरुजी को यज्ञ करवाने की बात याद करवादे।
गच्छ, गुरुभिः यज्ञसम्पादनवार्तां स्मारय (स्मारयेः)।

५. कैकेयी ने दशरथ को अपने दो वरदान याद करवाये।
कैकेयी दशरथेन निजौ द्वौ वरौ स्मारयाञ्चकार।

६. यदि तू मुझे उस घटना का स्मरण न कराता तो मैं उस ठग पर विश्वास कर लेता।
यदि त्वं मया तां घटनां न अस्मारयिष्यः तर्हि तस्मिन् वञ्चके विश्रम्भम् अकरिष्यम्

वेष्ट वेष्टने=लपेटना, वेष्टि=लपेटवाना

लट्—वेष्टयति वेष्टयतः वेष्टयन्ति
लिट्—वेष्टयाञ्चकार वेष्टयाञ्चक्रतुः वेष्टयाञ्चक्रुः
लुट्—वेष्टयिता वेष्टयितारौ वेष्टयितारः
लृट्—वेष्टयिष्यति वेष्टयिष्यतः वेष्टयिष्यन्ति
लोट्—वेष्टयतु वेष्टयताम् वेष्टयन्तु, वेष्टयतात्
लङ्—अवेष्टयत् अवेष्टयताम् अवेष्टयन्

वि० लिङ्—वेष्टयेत् वेष्टयेताम् वेष्टयेयुः
लुङ्[1]-१ अववेष्टत् अववेष्टताम् अववेष्टन्
अववेष्टः अववेष्टतम् अववेष्टत
अववेष्टम् अववेष्टाव अववेष्टाम
२ अविवेष्टत् अविवेष्टताम् अविवेष्टन्
अविवेष्टः अविवेष्टतम् अविवेष्टत
अविवेष्टम् अविवेष्टाव अविवेष्टाम
लृङ्—अवेष्टयिष्यत् अवेष्टयिष्यताम् अवेष्टयिष्यन्

१. इन काच के बर्तनों को कागजों से लिपटवाकर रखवा दे।
इमानि काचपात्राणि कर्गलैः वेष्टयित्वा स्थापय।

२. इन अनार के फलों को कपड़े से लिपटवादे, नहीं तो तोते बिगाड़ेंगे।
इमानि दाडिमफलानि वस्त्रैः परिवेष्टय (परिवेष्टयेः) अन्यथा शुकाः दूषयिष्यन्ति।

३. सारी ककड़ियों को गीले कपड़े से लिपटवाऊंगा।
सर्वाः चर्भटीः आर्द्रेण वस्त्रेण वेष्टयिष्यामि (वेष्टयितास्मि)।

४. भृत्य से कड़वी औषध को मैंने मुनक्के में लिपटवाया था।
तिक्तम् औषधम् अहं भृत्येन द्राक्षया अवेष्टयम् (अविवेष्टम्, अववेष्टम्)।

---

१. विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः (अष्टा० ७.४.९६) से अभ्यास के इ को विकल्प से अकारादेश हुआ।

ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च (स्पर्धा करना और बुलाना)
आह्वायि[1] (=आङ्+ह्वेञ्+णिच्)=बुलवाना

लट्—आह्वाययति	आह्वाययतः	आह्वाययन्ति
लिट्—आह्वाययाञ्चकार	आह्वाययाञ्चक्रतुः	आह्वाययाञ्चक्रुः
लुट्—आह्वाययिता	आह्वाययितारौ	आह्वाययितारः
लृट्—आह्वाययिष्यति	आह्वाययिष्यतः	आह्वाययिष्यन्ति
लोट्—आह्वाययतु (आह्वाययतात्)	आह्वाययताम्	आह्वाययन्तु
लङ्—आह्वाययत्	आह्वाययताम्	आह्वाययन्
वि. लि.—आह्वाययेत्	आह्वाययेताम्	आह्वाययेयुः
लुङ्[2]—आजूहवत्	आजूहवताम्	आजूहवन्
आजूहवः	आजूहवतम्	आजूहवत
आजूहवम्	आजूहवाव	आजूहवाम
लृङ्—आह्वाययिष्यत्	आह्वाययिष्यताम्	आह्वाययिष्यन्

१. भीमसेन जी ने सुरेन्द्र से व्रतानन्द जी के लिये डाक्टर बुलवाया।
भीमसेनमहाभागः सुरेन्द्रेण व्रतानन्दमहोदयेभ्यः चिकित्सकम् आह्वाययत् (आजूहवत्)।

२. हम उत्सव में दीक्षानन्द जी से स्वामी सत्यप्रकाश जी को बुलवायेंगे।
वयम् उत्सवे दीक्षानन्दमहाभागेन स्वामिसत्यप्रकाशमहोदयम् आह्वाययिष्यामः (आह्वाययितास्मः)।

३. उस रूसे हुए ससुर को किसी से मत बुलवा, वह खुद आ जायेगा।
तं रुष्टं श्वशुरं केनचिद् अपि मा आजूहवः (मा स्म आह्वाययः) सः स्वयम् ऐष्यति।

४. प्राचीन काल में आचार्य लोग अपने शिष्यों से सम्राट् को अपने पास बुलवाते थे, पर अब कोई नहीं बुलवाता।
पुरा आचार्याः स्वशिष्यैः सम्राजम् निजान्तिके आह्वाययाञ्चक्रुः परं सम्प्रति कश्चिद् अपि न आह्वाययति।

५. यदि हम डाक्टर को न बुलवाते तो, यह दम तोड़ देता।
यदि वयं चिकित्सकं न आह्वाययिष्याम तर्हि अयं प्राणान् अत्यक्ष्यत्।

---

१. शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् (अष्टा. ७.३.३७) से युक् आगम।
२. 'ह्वः सम्प्रसारणम्' (अष्टा. ६.१.३२) से व् को सम्प्रसारण (=उ) हुआ है।

पा पाने (=पीना, पायि[1]=पिलाना

लट्—पाययति पाययतः पाययन्ति	लङ्—अपाययत् अपाययताम् अपाययन्
लिट्—पाययाञ्चकार पाययाञ्चक्रतुः पाययाञ्चक्रुः	वि. लि.—पाययेत् पाययेताम् पाययेयुः
लुट्—पाययिता पाययितारौ पाययितारः	लुङ्[2]—अपीप्यत् अपीप्यताम् अपीप्यन् अपीप्यः अपीप्यतम् अपीप्यत अपीप्यम् अपीप्याव अपीप्याम
लृट्—पाययिष्यति पाययिष्यतः पाययिष्यन्ति	
लोट्—पाययतु, पाययतात् पाययताम् पाययन्तु	लृङ्—अपाययिष्यत् अपाययिष्यताम् अपाययिष्यन्

१. ज्वरनाश के लिये वैद्य रोगी को कड़वा क्वाथ पिलाते हैं।
ज्वरविनाशाय भिषजः रुजाक्रान्तं तिक्तं क्वाथं पाययन्ति।

२. उन्होंने ब्रह्मचारियों को पेट भर के दूध पिलाया।
ते ब्रह्मचारिणः कणेहृत्य पयः अपाययन् (अपीप्यन्, पायितवन्तः)।

३. हम अपने घर तुमको खूब आम रस पिलायेंगे।
वयं निजनिकेतने युष्मान् पुष्कलं रसालरसं पाययिष्यामः (पाययितास्मः)

४. जेठ अषाढ़ में सबको इलायची वाला ठंडा पानी पिलाओ।
ज्येष्ठाषाढयोः सर्वान् एलामिलितं शीतलं सलिलं पाययत (पाययेत)।

५. यदि तू मुझे घी दूध पिला देती तो तेरा घर मैं क्यों छोड़ता?
यदि त्वं मां क्षीरसर्पिषी अपाययिष्यः तर्हि कथम् अहं तव गृहम् अत्यक्ष्यम्?

६. उस वृद्ध योगी ने रामावतार शर्मा 'विकल' को सोमरस पिलाया था।
सः जीर्णः योगिराजः विकलोपनामानं रामावतारशर्माणं सोमरसं पाययाञ्चकार।

पा रक्षण (=रक्षा करना), पालि[3]=रक्षा करवाना, पालन करवाना

लट्—पालयति पालयतः पालयन्ति	लुट्—पालयिता पालयितारौ पालयितारः
लिट्—पालयाञ्चकार पालयाञ्चक्रतुः पालयाञ्चक्रुः	लृट्—पालयिष्यति पालयिष्यतः पालयिष्यन्ति

---

१. शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् (अष्टा. ७.३.३७) से युक् (=य्) आगम।
२. णिच् (=इ) परे रहने पर पा को युक् (=य्) आगम हुआ, तब 'पाय्' की उपधा 'आ' का 'लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य (अष्टा. ७.४.४) से लोप, स्थानिवद्भाव से द्वित्व, तब अभ्यास के (='प' के अ) के स्थान पर इसी सूत्र से ईकारादेश हुआ।
२. 'लुगागमस्तु तस्य वक्तव्यः' [वा.] अष्टा. ७.३.३७) से लुक् (=ल्) आगम।

लोट्— पालयतु पालयताम् पालयन्तु
पालयतात्
लङ्—अपालयत् अपालयताम् अपालयन्
वि. लि.—पालयेत् पालयेताम् पालयेयुः
लुङ्—अपीपलत् अपीपलताम् अपीपलन्
अपीपलः अपीपलतम् अपीपलत
अपीपलम् अपीपलाव अपीपलाम
लृङ्—अपालयिष्यत् अपालयिष्यताम्
अपालयिष्यन्

१. मनस्वी लोग शरणागत की स्वयं रक्षा करते हैं और उसकी दूसरों से भी रक्षा करवाते हैं।
मनस्विनः शरणागतं स्वयं पान्ति अपरैः च तं पालयन्ति ।

२. जैसे विक्रमादित्य सैनिकों से अपनी प्रजा की रक्षा करवाता था वैसे ही यह राजा भी शूरवीरों से जनता की रक्षा करवायेगा।
यथा विक्रमादित्यः सैनिकैः निजप्रजां पालयाञ्चकार तथैव अयं नृपः अपि शूरवीरैः स्वजनतां पालयिष्यति (पालयितास्ति)।

३. हमने बाढ़पीड़ितों की स्वयंसेवकों से रक्षा करवाई थी।
वयं वन्यानिपीडितान् स्वयंसेवकैः अपालयाम (अपीपलाम)।

४. राजा का कर्त्तव्य है कि वह अनाथ बच्चों की अधिकारियों के द्वारा रक्षा करवावे।
राज्ञः कर्त्तव्यम् इदं यत् सः अनाथान् बालकान् अधिकारिभिः पालयतु (पालयेत्)

५. यदि पन्ना धायी, सेवक के द्वारा उदयसिंह की रक्षा न करवाती तो मेवाड़ का राजवंश नष्ट हो जाता।
यदि पन्ना नाम्नी धात्री भृत्येन उदयसिंहं न अपालयिष्यत् तर्हि मेदपाटस्य राजवंशः अनङ्क्ष्यत् (अनशिष्यत्)।

रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (=उगना, उत्पन्न होना), रोहि (रोपि[1])= उगाना, उत्पन्न करना

आङ् रुह=चढ़ना, आरोहि (आरोपि[1])=चढ़ाना, आरोप लगाना

लट्—रोहयति रोहयतः रोहयन्ति
(रोपयति रोपयतः रोपयन्ति)
लिट्—रोहयाञ्चकार रोहयाञ्चक्रतुः
रोहयाञ्चक्रुः
(रोपयाञ्चकार रोपयाञ्चक्रतुः
रोपयाञ्चक्रुः)
लुट्—रोहयिता रोहयितारौ रोहयितारः
(रोपयिता रोपयितारौ रोपयितारः)

---

१. 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' (अष्टा० ७.३.४३) से विकल्प से रुह् के हकार के स्थान पर पकार आदेश।

लृट्—रोहयिष्यति रोहयिष्यतः रोहयिष्यन्ति
(रोपयिष्यति रोपयिष्यतः रोपयिष्यन्ति)
लोट्—{रोहयतु रोहयताम् रोहयन्तु
रोहयतात्
{रोपयतु रोपयताम् रोपयन्तु)
रोपयतात्
लङ्—अरोहयत् अरोहयताम् अरोहयन्
(अरोपयत् अरोपयताम् अरोपयन्)
वि. लिङ्—रोहयेत् रोहयेताम् रोहयेयुः
(रोपयेत् रोपयेताम् रोपयेयुः)

लुङ् (१) अरूरुहत् अरूरुहताम् अरूरुहन्
अरूरुहः अरूरुहतम् अरूरुहत
अरूरुहम् अरूरुहाव अरूरुहाम
(२) अरूरुपत् अरूरुपताम् अरूरुपन्
अरूरुपः अरूरुपतम् अरूरुपत
अरूरुपम् अरूरुपाव अरूरुपाम
लृङ्—अरोहयिष्यत् अरोहयिष्यताम् अरोहयिष्यन्
(अरोपयिष्यत् अरोपयिष्यताम् अरोपयिष्यन्)

१. जगदेव सिद्धान्ती जी ने अपने प्रमुख शिष्य रघुवीरसिंह शास्त्री को उन्नति के शिखर पर चढ़ाया।

सिद्धान्तीति नाम्ना प्रसिद्धः जगदेवमहाभागः स्वशिष्यावतंसं शास्त्र्युपाह्वं रघुवीरसिंहं समुन्नतिशिखरं अध्यरोपयत् (अध्यरोहयत्, अध्यरूरुहत्, अध्यरूरुपत्)

२. जैसे विरजानन्द ने अपने शिष्य को सर्वश्रेष्ठ पद पर पहुंचाया वैसे मैं भी अपने शिष्य को सर्वोत्तम स्थान पर चढ़ाऊँगा।

यथा विरजानन्दः स्वशिष्यं सर्वश्रेष्ठपदम् आरोहयाञ्चकार (आरोपयाञ्चकार) तथैव अहम् अपि निजान्तेवासिनं सर्वोत्तमपदम् आरोहयिष्यामि (आरोपयिष्यामि, आरोहयितास्मि, आरोपयितास्मि)।

३. इन बालकों को पेड़ पर चढ़ा और डाल पके फल उतरवा।

इमान् बालकान् पादपम् आरोहय (आरोपय; आरोहयेः, आरोपयेः) शाखापक्वानि फलानि च अवचायय (अवचाययेः)।

४. ये मजदूर प्रतिदिन बहुत सी वस्तुएँ जहाज पर चढ़ाते हैं।

एते श्रमिकाः प्रत्यहं बहूनि वस्तूनि पोतम् आरोहयन्ति (आरोपयन्ति)।

५. यदि महावत मुझे हाथी पर न चढ़ाता तो मैं नहीं चढ़ पाता।

यदि हस्तिपकः मां हस्तिनं न आरोहयिष्यत् (आरोपयिष्यत्) तर्हि अहं स्वयं आरोढुं न प्राभविष्यम्।

इङ् अध्ययने (=पढ़ना), अध्यापि[1] (=अधि+इङ्+णिच्)=पढ़ाना

लट्—अध्यापयति अध्यापयतः अध्यापयन्ति

लिट्—अध्यापयाञ्चकार अध्यापयाञ्चक्रतुः अध्यापयाञ्चक्रुः

लुट्—अध्यापयिता अध्यापयितारौ अध्यापयितारः

लृट्—अध्यापयिष्यति अध्यापयिष्यतः अध्यापयिष्यन्ति

लोट्—{अध्यापयतु अध्यापयताम् / अध्यापयतात् अध्यापयन्तु

लङ्—अध्यापयत् अध्यापयताम् अध्यापयन्

वि. लिङ्—अध्यापयेत् अध्यापयेताम् अध्यापयेयुः

लुङ्

(१) अध्यापिपत् अध्यापिपताम् अध्यापिपन्
अध्यापिपः अध्यापिपतम् अध्यापिपत
अध्यापिपम् अध्यापिपाव अध्यापिपाम

(२)[2] अध्यजीगपत् अध्यजीगपताम् अध्यजीगपन्
अध्यजीगपः अध्यजीगपतम् अध्यजीगपत
अध्यजीगपम् अध्यजीगपाव अध्यजीगपाम

लृङ्—अध्यापयिष्यत् अध्यापयिष्यताम् अध्यापयिष्यन्

१. गुरुकुल वृन्दावन में रहते हुए मैंने कृष्णस्वरूप आदि छात्रों को पढ़ाया था।
गुरुकुल-वृन्दावनमधिवसन् अहं कृष्णस्वरूपादीन् छात्रान् अध्यापयम् (अध्यापिपम्, अध्यजीगपम्)।

२. चित्तौड़गढ़ गुरुकुल में रहकर मैंने भीमसेन आदि को पढ़ाया।
चित्तौड़गढ़-गुरुकुलम् अध्युष्य अहं भीमसेनप्रमुखान् अध्यजीगपम् (अध्यापिपम्, अध्यापयम्)।

३. गुरुकुल कुरुक्षेत्र में रहकर मैंने ब्रह्मदत्त आनन्दप्रकाश आदि छात्रों को पढ़ाया।
गुरुकुल कुरुक्षेत्रम् अधितिष्ठता मया ब्रह्मदत्तानन्दप्रकाशप्रमुखाः छात्राः अध्याप्यन्त (अध्यापयिषत, अध्यापिताः)।

४. जहां अयोग्य अध्यापक पढ़ाते हैं, वहां ज्ञान की वृद्धि असम्भव है।
यत्र अयोग्याः अध्यापकाः अध्यापयन्ति तत्र ज्ञानवृद्धिः असम्भवा खलु।

५. आचार्यों ने चन्द्रापीड और वैशम्पायन को सब विद्याएँ पढ़ाईं।
आचार्याः चन्द्रापीडवैशम्पायनौ सर्वाः विद्याः अध्यापयाञ्चक्रुः।

६. हे शिक्षको! आलसी और अभिमानी छात्रों को मत पढ़ाओ।
हे शिक्षकाः! प्रमादिनः अभिमानिनः च छात्रान् न अध्यापयत (नैव अध्यापयेत, मा अध्यापिपत, मा अधिजीगपत; मा स्म अध्यापयत)।

---

१. 'क्रीङ्जीनां णौ' (अष्टा० ६.१.४८) से इ के स्थान पर आकारादेश होने पर उसको अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग्णौ (अष्टा० ७.३.३६) से पुगागम हुआ।

२. णौ च संश्चङोः (अष्टा० २.४.५१) से इङ् के स्थान पर विकल्प से गाङ् आदेश हुआ।

७. यदि शङ्करदेव जी उन्हें व्याकरण न पढ़ाते तो वे मूर्ख ही रहते।
यदि शङ्करदेवमहाभागाः तान् व्याकरणं न अध्यापयिष्यन् तर्हि ते मूर्खाः एव अस्थास्यन्।

दुष वैकृत्ये (=दूषित होना, बिगड़ना), दूषि[1]—दूषित करना, बिगाड़ना

लट्—दूषयति	दूषयतः	दूषयन्ति	लङ्—अदूषयत्	अदूषयताम्	अदूषयन्
लिट्—दूषयाञ्चकार	दूषयाञ्चक्रतुः	दूषयाञ्चक्रुः	वि. लिङ्—दूषयेत्	दूषयेताम्	दूषयेयुः
			लुङ्—अदूदुषत्	अदूदुषताम्	अदूदुषन्
लुट्—दूषयिता	दूषयितारौ	दूषयितारः	अदूदुषः	अदूदुषतम्	अदूदुषत
लृट्—दूषयिष्यति	दूषयिष्यतः	दूषयिष्यन्ति	अदूदुषम्	अदूदुषाव	अदूदुषाम
लोट्—दूषयतु, दूषयतात्	दूषयताम्	दूषयन्तु	लृङ्—अदूषयिष्यत्	अदूषयिष्यताम्	अदूषयिष्यन्

१. कार्य असफल हो जाने पर ये एक दूसरे पर दोष लगाते हैं।
कार्ये असिद्धे सति एते अन्योन्यं दूषयन्ति।

२. धोबी ने रामचन्द्र पर झूठा दोष लगाया था।
रजकः रामचन्द्रं मिथ्यैव दूषयाञ्चकार।

३. बच्चों को गन्दे छात्रावासों में मत रक्खो, बिगड़े हुए लड़के इनको बिगाड़ देंगे।
बालकान् मलिनेषु छात्रावासेषु मा प्रवीविशः (मा स्म प्रवेशयः), दुष्टाः बालकाः एतान् अपि दूषयिष्यन्ति (दूषयितारः)।

४. तुम लोग खेलकर इस कुण्ड के जल को दूषित मत करो।
यूयं क्रीडनेन एतत्कुण्डजलं न दूषयत (नैव दूषयेत, मा दूदुषत, मा स्म दूषयत)।

५. यदि तुम दोनों इस पर दोष न लगाते तो यह कलह न करता।
यदि युवाम् इमं न अदूषयिष्यतम् तर्हि अयं न अकलहयिष्यत्।

हन् हिंसागत्योः (=मारना, जाना), घाति[2]=मरवाना, भेजना

लट्—घातयति	घातयतः	घातयन्ति	लृट्—घातयिष्यति	घातयिष्यतः	घातयिष्यन्ति
लिट्—घातयाञ्चकार	घातयाञ्चक्रतुः	घातयाञ्चक्रुः	लोट्—घातयतु, घातयतात्	घातयताम्	घातयन्तु
लुट्—घातयिता	घातयितारौ	घातयितारः			

१. दोषो णौ (अष्टा० ६.४.९०) से दुष् की उपधा (=उ) को दीर्घ ऊकारादेश हुआ।

२. 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (अष्टा० ७.३.५४) से ह् को घ् तथा 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (अष्टा० ७.३.३२) से न् को त्।

लङ्—अघातयत् अघातयताम् अघातयन्

वि. लिङ्—घातयेत् घातयेताम् घातयेयुः

लुङ्—अजीघतत् अजीघतताम् अजीघतन्

अजीघतः अजीघततम् अजीघतत

अजीघतम् अजीघताव अजीघताम

लृङ्—अघातयिष्यत् अघातयिष्यताम् अघातयिष्यन्

१. चाणक्य ने अपते दूतों से नौ नन्दों को मरवाया।
चाणक्यः निजचरैः नव नन्दान् घातयाञ्चकार (अघातयत्, अजीघतत्)

२. आज डाकुओं ने गांव के दो सेठ मरवा दिये।
अद्य दस्यवः ग्रामस्य द्वौ धनिकौ अजीघतन्।

३. जो निरपराधी की हत्या करवाते हैं, वे पाप के भागी होते हैं।
ये निरपराधान् घातयन्ति ते पापभागिनः भवन्ति।

४. हे ऋत्विजो! तुम यज्ञों में पशुओं को मत मरवावो, यह महापाप है।
हे ऋत्विजः! यूयं यज्ञेषु पशून् नैव घातयत (नैव घातयेत; मा जीघतत; मा स्म घातयत), महापापमिदम्।

५. जो देवालयों में पशुओं को मरवायेगा वह दण्डनीय होगा।
यः देवालयेषु पशून् घातयिष्यति (घातयिता) सः दण्ड्यः भविष्यति (भविता)।

६. यदि नन्हीं भगतन दयानन्द को विषदान से न मरवाती तो भारत का महान् उपकार होता।

यदि 'नन्हीं भगतन' नामिका गणिका दयानन्दं विषदानेन न अघातयिष्यत् तर्हि भारतस्य महान् उपकारः अभविष्यत्।

शीङ् स्वप्ने (=सोना), शायि=सुलाना

लट्—शाययति शाययतः शाययन्ति

लिट्—शाययाञ्चकार शाययाञ्चक्रतुः शाययाञ्चक्रुः

लुट्—शाययिता शाययितारौ शाययितारः

लृट्—शाययिष्यति शाययिष्यतः शाययिष्यन्ति

लोट्—शाययतु / शाययतात् शाययताम् शाययन्तु

लङ्—अशाययत् अशाययताम् अशाययन्

वि. लिङ्—शाययेत् शाययेताम् शाययेयुः

लुङ्—अशीशयत् अशीशयताम् अशीशयन्

अशीशयः अशीशयतम् अशीशयत

अशीशयम् अशीशयाव अशीशयाम

लृङ्—अशाययिष्यत् अशाययिष्यताम् अशाययिष्यन्

१. माता ने पुत्रों को सुलाया।
माता पुत्रान् अशीशयत् (अशाययत्, शायितवती)।

२. मौसी मेरी छोटी बहिन को पलङ्ग पर सुलायेगी।
मातृष्वसा मम अनुजां पर्यङ्के शाययिष्यति (शाययिता)।
३. लक्ष्मण ने राम और सीता को पत्तों के बिछोने पर सुलाया।
लक्ष्मणः सीतारामचन्द्रौ पर्णास्तरणे शाययाञ्चकार।
४. इस बच्चे को गीले में मत सुला।
इमं शिशुम् आर्द्रे स्थले नैव शायय (न शाययेः, मा शीशयः, मा स्म शाययः)।
५. हम अपने अतिथियों को अतिथिगृह में सुलाते हैं।
वयं स्वान् अतिथीन् अतिथिगृहे शाययामः।
६. यदि हम इनको दिन में सुला देते तो ये रात में जग लेते।
यदि वयम् एतान् दिवसे अशाययिष्याम तर्हि एते रात्रौ अजागरिष्यन्।
७. रो रोकर आंसुओं से अपने गालों को भिगोते हुए अपने दूध पीते बच्चे को पीठ सहलाकर सुलाती हुई माता को देखकर चन्द्रशेखर ने भानुप्रकाश से कहा—अहा ! माता को पुत्र के लिये जबर्दस्ती बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं।
रोदं रोदम् अश्रुभिः निजकपोलौ स्नपयन्तं निजस्तनन्धयं शिशुं पृष्ठोपमर्दं शाययन्तीं मातरं दर्शं दर्शं चन्द्रशेखरः भानुप्रकाशम् अवादीत्-अहो ! अनिच्छन्ती अपि माता पुत्रस्य कृते महान्ति कष्टानि सहते।

सन्नन्त प्रक्रिया

कर्म की अवयव भूत उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प से सन् प्रत्यय होता है जिसका कर्त्ता, इच्छा क्रिया का भी कर्त्ता हो।[1] सरल रूप में इसे यों समझ सकते हैं कि धातुमात्र से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है यदि उस धातु (क्रिया) का कर्त्ता और चाहना (इच्छा) रूप क्रिया का कर्त्ता समान हो तो। एक पक्ष में वाक्य का भी प्रयोग होता है।

सन् में से न् की इत्सञ्ज्ञा और लोप हो जाने पर 'स' बच रहता है। तब धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है[2]। द्वित्व हुए स्वरूप के पूर्वभाग की संज्ञा 'अभ्यास' हो जाती है[3]। अभ्यास का प्रथम हल् (व्यञ्जन) शेष रहता है अन्य हलों का लोप हो जाता है[4]। अभ्यास के दीर्घ अच् (स्वर) को ह्रस्व होता है[5]। यदि वह ह्रस्व हुआ स्वर अकार हो तो उसके स्थान पर ह्रस्व इकारादेश होता है[6]। 'स' को

---

१. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा (अष्टा. ३.१.७)।
२. सन्यङोः (अष्टा. ६.१.९)।
३. पूर्वोऽभ्यासः (अष्टा. ६.१.४)।
४. हलादिः शेषः (अष्टा. ७.४.६०)।
५. ह्रस्वः (अष्टा. ७.४.५९)।
६. सन्यतः (७.४.७९)।

इट् (इ) का आगम होता है यदि वह सेट् धातुओं से उत्पन्न हुआ हो[१]। इण् और कवर्ग से परे वर्तमान सन् के स को षत्व होगा[२]। पठ+सन्→पठ्+स→पठ्स् पठ्स् अ→प पठ् स् अ→प पठ्स। पि पठ्स। पिपठ् इस। पिपठिष=पढ़ना चाहना। इस सन्नन्त शब्द की धातु सञ्ज्ञा होगी[३]। सन्नन्त धातु से, धातुमात्र से होने वाले प्रायः सभी कृत् प्रत्यय होते हैं—जैसे तव्यत्, अनीयर्, यत्, क्त क्तवतु, क्त्वा, णमुल्, णिनि, तुमुन् आदि। सन्नन्त धातु से दो प्रत्यय विशेष होते हैं। एक तो उ दूसरा अ। सन्नन्त धातु से उ प्रत्यय[४] होने पर वह विशेषण बनता है। जैसे पिपठिष+उ (अलोप होने पर[५]) पिपठिष्+उ→पिपठिषुः=पढ़ना चाहने वाला अर्थात् पढ़ने का इच्छुक। सन्नन्त धातु से भाव अर्थ में (अकार) प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में[६]। टाप् होने पर→पिपठिष+अ→पिपठिष्+अ→पिपठिष्+अ+टाप्→पिपठिष्+अ+आ=पिपठिषा=पढ़ने की इच्छा।

तिङ् प्रत्ययों में से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों प्रकार के प्रत्यय यथायोग्य रूप से होते हैं। अर्थात् धातु की सादी अवस्था में यदि उससे आत्मनेपद होता है तो उसकी सन्नन्त अवस्था से भी आत्मनेपद ही होगा[७]। यदि धातु के सादे स्वरूप में उससे परस्मैपद होता है तो सन् प्रत्यय करने पर भी परस्मैपद होगा। यदि सादी धातु उभयपदी है तो उसका सन्नन्त स्वरूप भी उभयपदी होगा। इसमें थोड़ा सा यह ध्यान रखना है कि ज्ञा धातु (अनु उपसर्ग रहित), श्रु धातु (प्रति, आङ् रहित) स्मृ धातु और दृश् धातु की सन्नन्त अवस्था से सदा आत्मनेपद ही होगा[८]। सन्नन्त धातु से चाहे आत्मनेपद प्रत्यय होवे चाहे परस्मैपद कर्तृवाच्य में बीच में शप् (अ) विकरण (लट्, लोट्, लङ् और वि० लिङ्) चार लकारों में अवश्य आयेगा[९]। पिपठिष+शप्+ति→पिपठिष+अ+ति→पिपठिषति[१०]। शिशयिष+शप्+ते→शिशयिष+अ+ते→शिशयिषते[१०]।

अब हम एक-एक धातु के दोनों प्रकार के सम्पूर्ण रूप दर्शा देते हैं—

---

१. आर्धधातुकस्येड्वलादेः (अष्टा ७.२.३५)।

२. आदेशप्रत्यययोः (अष्टा. ८.३.५९)। ३. सनाद्यन्ता धातवः (अष्टा. ३.१.३२)।

४. सनाशंसभिक्ष उः (अष्टा. ३.२.१६८)। ५. अतो लोपः (अष्टा. ६.४.४८)।

६. अ प्रत्ययात् (अष्टा. ३.३.१०२)। ७. पूर्ववत्सनः (अष्टा. १.३.६२)।

८. ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः; नानोर्ज्ञः; प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः (अष्टा. १.३.५७; ५८; ५९)।

९. कर्त्तरि शप् (अष्टा. ३.१.६८)।

१०. अतो गुणे (अष्टा. ६.१.९७) से दो अकारों के स्थान पर पररूप ह्रस्व अकारादेश हो गया।

(१) पठ्=पढ़ना। पिपठिष=पढ़ना चाहना।

लट्

पिपठिषति पिपठिषतः पिपठिषन्ति
पिपठिषसि पिपठिषथः पिपठिषथ
पिपठिषामि पिपठिषावः पिपठिषामः

लिट्

(१) पिपठिषाञ्चकार पिपठिषाञ्चक्रतुः पिपठिषाञ्चक्रुः
(२) पिपठिषाम्बभूव पिपठिषाम्बभूवतुः पिपठिषाम्बभूवुः
(३) पिपठिषामास पिपठिषामासतुः पिपठिषामासुः

लुट्

पिपठिषिता पिपठिषितारौ पिपठिषितारः
पिपठिषितासि पिपठिषितास्थः पिपठिषितास्थ
पिपठिषितास्मि पिपठिषितास्वः पिपठिषितास्मः

लृट्

पिपठिषिष्यति पिपठिषिष्यतः पिपठिषिष्यन्ति
पिपठिषिष्यसि पिपठिषिष्यथः पिपठिषिष्यथ
पिपठिषिष्यामि पिपठिषिष्यावः पिपठिषिष्यामः

लोट्

पिपठिषतु, पिपठिषतात् पिपठिषताम् पिपठिषन्तु
पिपठिष पिपठिषतम् पिपठिषत
पिपठिषाणि पिपठिषाव पिपठिषाम

लङ्

अपिपठिषत् अपिपठिषताम् अपिपठिषन्
अपिपठिषः अपिपठिषतम् अपिपठिषत
अपिपठिषम् अपिपठिषाव अपिपठिषाम

वि० लिङ्

पिपठिषेत पिपठिषेताम् पिपठिषेयुः
पिपठिषेः पिपठिषेतम् पिपठिषेत
पिपठिषेयम् पिपठिषेव पिपठिषेम

लुङ्

अपिपठिषीत् अपिपठिषिष्टाम् अपिपठिषिषुः
अपिपठिषीः अपिपठिषिष्टम् अपिपठिषिष्ट
अपिपठिषिषम् अपिपठिषिष्व अपिपठिषिष्म

लृङ्—अपिपठिषिष्यत् अपिपठिषिष्यताम् अपिपठिषिष्यन्
अपिपठिषिष्यः अपिपठिषिष्यतम् अपिपठिषिष्यत
अपिपठिषिष्यम् अपिपठिषिष्याव अपिपठिषिष्याम

पिपठिष+तव्यत्=पिपठिषितव्यम् (=पढ़ना चाहना चाहिये, पढ़ने चाहने योग्य)
पिपठिष+यत् =पिपठिष्यम् (,, ,, ,,)।
पिपठिष+अनीयर्=पिपठिषणीयम् (,, ,, ,,)।
पिपठिष+क्त =पिपठिषितः (पढ़ने को चाहा गया)।
पिपठिष+क्तवतु=पिपठिषितवान् (=पढ़ना चाहा)।
,, +क्त्वा=पिपठिषित्वा (=पढ़ना चाहकर)।

पिपठिष+णमुल् = पिपठिषं पिपठिषम् (=पढ़ने की इच्छा कर कर के)
,, +तुमुन् = पिपठिषितुम् (=पढ़ना चाहने के लिए)
,, +उ = पिपठिषु (=पढ़ने का इच्छुक)
,, +अ = पिपठिषा (=पढ़ने की इच्छा)
,, +ण्वुल् = पिपठिषकः (=पढ़ने का इच्छुक)
,, +तृच् = पिपठिषिता (=,, ,,)
,, +क्विप् = पिपठीः (=,, ,,)
,, +शतृ = पिपठिषन् (=पढ़ना चाहता हुआ)
पिपठिषन्ती = पढ़ना चाहती हुई
पिपठिषत् = पढ़ना चाहता हुआ कुल

अभ्यास

१. तू क्या पढ़ना चाहता है = त्वं किं पिपठिषसि ?
२. मैं तो चैत्र में मीमांसा शास्त्र पढ़ना चाहूंगा ।
अहं तु चैत्रे मीमांसाशास्त्रं पिपठिषिष्यामि (पिपठिषितास्मि)
३. नारद ने सनत्कुमार से आत्मशास्त्र पढ़ना चाहा था ।
नारदः सनत्कुमारात् आत्मशास्त्रं पिपठिषाञ्चकार ।
४. हमने रेवाशङ्कर जी से सामवेद का गानशास्त्र पढ़ना चाहा था ।
वयं रेवाशङ्करमहाभागात् सामवेदस्य गानशास्त्रम् अपिपठिषाम (अपिपठिषिष्म)
५. तुम लोग ईश्वरचन्द्रजी से दर्शन पढ़ने की इच्छा करो ।
यूयम् ईश्वरचन्द्रमहाभागात् दर्शनानि पिपठिषत (पिपठिषेत)
६. तू यदि मुझसे व्याकरण पढ़ना चाहता तो मैं मना नहीं करता ।
त्वं यदि मत्तः व्याकरणम् अपिपठिषिष्यः तर्हि अहं न न्यसेधिष्यम् ।
७. ये सब छात्र संस्कृत पढ़ने के इच्छुक हैं = एते छात्राः संस्कृतं पिपठिषवः सन्ति ।
८. संस्कृत पढ़ने का इच्छुक मैं आपके पास आया हूँ ।
सुरभारतीं पिपठिषुः (पिपठिषकः, पिपठिषिता, पिपठीः) अहं श्रीमतां पादमूलम् आपम् ।
९. संस्कृत पढ़ने की इच्छा से मैं आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ ।
लेखभाषायाः पिपठिषया अहं श्रीचरणान् उपास्थिषि ।
१०. मैं इस ग्रन्थ को पढ़ने की इच्छा कर करके भी इसे न पढ़ सका ।
अहम् इमं ग्रन्थं पिपठिषं पिपठिषम् अपि एनं न पठितुं प्राभूवम् ।
११. महर्षि का जीवन चरित पढ़ना चाहने योग्य है ।
महर्षेः जीवनचरित पिपठिष्यम् (पिपठिषितव्यं, पिपठिषणीयम्) अस्ति ।

१२. जर्मन भाषा पढ़ने के इच्छुक छात्र मेरे पास आ जावें।
शार्मण्यदेशभाषां पिपठिषवः (पिपठिषकाः, पिपठिषितारः, पिपठिषः) सर्वे छात्राः मदभ्यर्णम् आगच्छेयुः।

१३. इस नई छपी आख्यायिका को सभी ने पढ़ना चाहा है।
इमां नवमुद्रिताम् आख्यायिकां सर्वे ह्येव पिपठिषितवन्तः।
इयं नवमुद्रिता आख्यायिका सर्वैः एव पिपठिषिता।

१४. तुम पढ़ना चाहकर क्या करोगे, तुम्हारी आंखें कमजोर हैं।
त्वं पिपठिषित्वा किंकरिष्यसि, निर्बले तव नेत्रे स्तः।

(२) शीङ् स्वप्ने (सोना), शिशयिष=सोना चाहना

लट्

शिशयिषते शिशयिषेते शिशयिषन्ते
शिशयिषसे शिशयिषेथे शिशयिषिध्वे
शिशयिषे शिशयिषावहे शिशयिषामहे

लिट्

(१) शिशयिषाञ्चक्रे शिशयिषाञ्चक्राते शिशयिषाञ्चक्रिरे
(२) शिशयिषाम्बभूव शिशयिषाम्बभूवतुः शिशयिषाम्बभूवुः
(३) शिशयिषामास शिशयिषामासतुः शिशयिषामासुः

लुट्

शिशयिषिता शिशयिषितारौ शिशयिषितारः
शिशयिषितासे शिशयिषितासाथे शिशयिषिताध्वे
शिशयिषिताहे शिशयिषितास्वहे शिशयिषितास्महे

लृट्

शिशयिषिष्यते शिशयिषिष्येते शिशयिषिष्यन्ते
शिशयिषिष्यसे शिशयिषिष्येथे शिशयिषिष्यध्वे
शिशयिषिष्ये शिशयिषिष्यावहे शिशयिषिष्यामहे

लोट्

शिशयिषताम् शिशयिषेताम् शिशयिषन्ताम्
शिशयिषस्व शिशयिषेथाम् शिशयिषध्वम्
शिशयिषै शिशयिषावहै शिशयिषामहै

लङ्

अशिशयिषत अशिशयिषेताम् अशिशयिषन्त
अशिशयिषथाः अशिशयिषेथाम् अशिशयिषध्वम्
अशिशयिषे अशिशयिषावहि अशिशयिषामहि

वि. लिङ्

शिशयिषेत शिशयिषेयाताम् शिशयिषेरन्
शिशयिषेथाः शिशयिषेयाथाम् शिशयिषेध्वम्
शिशयिषेय शिशयिषेवहि शिशयिषेमहि

लुङ्

अशिशयिषिष्ट अशिशयिषिषाताम् अशिशयिषिषत
अशिशयिषिष्ठाः अशिशयिषिषाथाम् अशिशयिषिढ्वम्
अशिशयिषिषि अशिशयिषिष्वहि अशिशयिषिष्महि

लृङ्

अशिशयिषिष्यत अशिशयिषिष्येताम् अशिशयिषिष्यन्त
अशिशयिषिष्यथाः अशिशयिषिष्येथाम् अशिशयिषिष्यध्वम्
अशिशयिषिष्ये अशिशयिषिष्यावहि अशिशयिषिष्यामहि

शिशयिष + तव्यत् = शिशयिषितव्यम् = सोना चाहना चाहिए।
,, + यत् = शिशयिष्यम् = ,, ,, ,,
,, + अनीयर् = शिशयिषणीयम् = ,, ,, ,,
,, + क्तवतु = शिशयिषितवान् = सोना चाहा।
,, + क्त्वा = शिशयिषित्वा = सोना चाहकर (सोने की इच्छा करके)।
,, + णमुल् = शिशयिषं शिशयिषम् = सोने की इच्छा कर करके।
,, + तुमुन् = शिशयिषितुम् = सोना चाहने के लिए।
,, + उ = शिशयिषु: = सोने का इच्छुक।
,, + ण्वुल् = शिशयिषक: = ,, ,, ,,
,, + तृच् = शिशयिषिता = ,, ,, ,, ।
,, + क्विप् = शिशयी: = ,, ,, ,, ।
,, + आ = → शिशयिषा = सोने की इच्छा।
,, + शानच् = शिशयिषमाण: = सोना चाहता हुआ।

अभ्यास

१. हम सब खुली हवा में सोना चाहते हैं = वयं निर्बाधे पवने शिशयिषामहे।

२. राम, लक्ष्मण और सीता ने अगस्त्य आश्रम में ही सोना चाहा।
सीतारामलक्ष्मणा: अगस्त्याश्रमे ह्येव शिशयिषाञ्चक्रिरे।

३. तुम सब कहाँ सोना चाहोगे = यूयं क्व शिशयिषिष्यध्वे (शिशयिषिताध्वे)।

४. तू कितना ही बाहर सोना चाह मैं तुझे बाहर नहीं सुलाऊंगा।
त्वम् कियद् अपि बहि: शिशयिषस्व (शिशयिषेथा:) अहं त्वां बहि: न शाययिष्यामि (शाययितास्मि)।

५. उन्होंने जिस कमरे में सोना चाहा था वहीं सांप निकल आया।
ते यस्मिन् प्रकोष्ठे अशिशयिषन्त (अशिशयिषिषत) तत्रैव सर्प: निरगच्छत्।

६. वह यदि हमारे घर सोना चाहता तो मैं सुला लेता।
स: यदि अस्मद्गेहे अशिशयिषिष्यत तर्हि अहं अशाययिष्यम्।

७. ब्रह्मचारी को दिन में सोने की इच्छा नहीं करनी चाहिये।
ब्रह्मचारिणा दिवा न शिशयिषितव्यम् (शिशियिष्यं, शिशयिषणीयम्)।

८. उसने उष:काल में कभी सोने की इच्छा नहीं की।
स: उष:काले कदापि न शिशयिषितवान्।

९. मैंने सोने की इच्छा करके चादर ओढ़ ली = अहं शिशयिषित्वा प्रावारं प्रावृण्वम्।

१०. तुम लोग सोने की इच्छा कर करके भी सो न सके।
यूयं शिशयिषं शिशयिषम् अपि शयितुं न अशक्नुत (अशकत)।

११. यह रोगी सोना चाहने को प्रयत्नशील है।
अयं रुग्णः शिशयिषितुं प्रयतते।

१२. इन सोने के इच्छुक यात्रियों को यज्ञशाला में सुला दो।
इमान् शिशयिषून् (शिशयिषकान्, शिशयिषितॄन्, शिशयिषः) यात्रिणः यज्ञशालायां शायय (शाययेः)।

१३. मैं अब नहीं पढ़ूंगा, मुझे सोने की इच्छा तंग कर रही है।
अहम् अधुना न अध्येष्ये शिशियिषा मां बाधते।

(३) हृञ् हरणे=हरण करना, जिहीर्ष=हरण करना चाहना अभ्यवजिहीर्ष=खाना चाहना, उपजिहीर्ष=भेंट करना चाहना

	परस्मै०	आत्मने०		परस्मै०	आत्मने०
लट्	जिहीर्षति	जिहीर्षते	लङ्	अजिहीर्षत्	अजिहीर्षत
लिट्	जिहीर्षाञ्चकार	जिहीर्षाञ्चक्रे	वि०लिङ्	जिहीर्षेत्	जिहीर्षेत
लुट्	जिहीर्षिता	जिहीर्षिता	लुङ्	अजिहीर्षीत्	अजिहीर्षिष्ट
लृट्	जिहीर्षिष्यति	जिहीर्षिष्यते	लृङ्	अजिहीर्षिष्यत्	अजिहीर्षिष्यत
लोट्	जिहीर्षतु	जिहीर्षताम्			

उ—जिहीर्षुः, अ—जिहीर्षा, तृच्—जिहीर्षिता,

तुमुन्—जिहीर्षितुम्, क्त्वा—जिहीर्षित्वा। शतृ—जिहीर्षन्, शानच्—जिहीर्षमाणः।

१. आपकी किस पदार्थ को खाने की इच्छा है ?
कस्य पदार्थस्य अभ्यवजिहीर्षा श्रीमताम् ?

२. मेरी खीर खाने की इच्छा है।
मामकीनां पायसान्नस्य अभ्यवजिहीर्षां विदाङ्कुर्वन्तु आर्यमिश्राः।

३. अपने गुरुजी को लवंग भेंट करना चाहते हुए स्वामी दयानन्द जी को विरजानन्द जी ने कहा—दयानन्द ! लौंगों की भेंट की आवश्यकता नहीं है। संसार में फैलते हुए अज्ञानान्धकार को दूर करते हुए आप मुझे बहुत बड़ी दक्षिणा देंगे।
निजगुरुचरणेभ्यः लवङ्गानि उपजिहीर्षतः स्वामिदयानन्दमहाभागान् श्री विरजानन्दचरणाः आजिज्ञपन्—दयानन्द ! कृतं लवङ्गोपहारेण ! जगति प्रसरत् अज्ञानतमः व्यपनयता त्वया महती दक्षिणा मह्यं दास्यते (दायिष्यते)।

४. लगातार नदी के किनारे घूमने की इच्छा से अधिष्ठाता जी को कहते हुए छात्रों को, गुरुकुल की व्यवस्था करवाने की इच्छा से अधिष्ठाता जी ने कहा—छात्रो ! प्रतिदिन अध्ययन की परवाह न करके घूमने की इच्छा करते हुए तुमको लज्जा नहीं आती।

साम्रेडं सरित्तीरस्य विजिहीर्षया अधिष्ठातृचरणान् व्याहरतः छात्रान् गुरुकुलस्य व्यवतिष्ठापिषया अधिष्ठातृमहाभागाः व्याहार्षुः—छात्राः। प्रत्यहम् अध्ययनम् अविगणय्य विहरणाय स्पृहयतः युष्मान् कथं न वैलक्ष्यं लक्ष्यीकरोति ?

(४) गम्लृ गतौ (=जाना), जिगमिष=जाना चाहना

लट्—जिगमिषति, लिट्—जिगमिषाञ्चकारः, लुट्—जिगमिषिता,
लृट्—जिगमिषिष्यति, लोट्—जिगमिषतु, लङ्—अजिगमिषत्,
वि० लिङ्—जिगमिषेत्, लुङ्—अजिगमिषीत्, लृङ्—अजिगमिषिष्यत्,
उ—जिगमिषुः, अ—जिगमिषा, तृच्—जिगमिषिता,
तुमुन्—जिगमिषितुम्, क्त्वा—जिगमिषित्वा, शतृ—जिगमिषन्।

१. तुम्हारी घर जाने की इच्छा थी क्यों नहीं गये ?
तव गृहस्य जिगमिषा आसीत् कथं न अगमः ? (कः अन्तरायः अभूत् ?)।

दृशिर् प्रेक्षणे (=देखना), दिदृक्ष=देखना चाहना

लट्—दिदृक्षते[1], लिट्—दिदृक्षाञ्चक्रे, लुट्—दिदृक्षिता, लृट्—दिदृक्षिष्यते, लोट्—दिदृक्षताम्, लङ्—अदिदृक्षत, वि० लिङ्—दिदृक्षेत, लुङ्—अदिदृक्षिष्ट, लृङ्—अदिदृक्षिष्यत। उ—दिदृक्षुः, अ—दिदृक्षा, तुमुन्—दिदृक्षितुम्।

१. मैं तो अपनी पुस्तक समाप्त करके ही अपनी दोनों लड़कियों को देखने की इच्छा से दिल्ली जाना चाहता हूँ।
अहं तु निजपुस्तकं परिसमाप्यैव निजबालयोः दिदृक्षया इन्द्रप्रस्थं प्रतिष्ठासे।

(५) डुदाञ् दाने (=देना), दित्स[2]=देना चाहना, आदित्स=लेना चाहना)

लकार	परस्मै०	आत्मने०	लकार	परस्मै०	आत्मने०
लट्—	दित्सति।	दित्सते	लुट्—	दित्सिता।	दित्सिता
लिट्—	दित्साञ्चकार।	दित्साञ्चक्रे	लृट्—	दित्सिष्यति	दित्सिष्यते

---

१. सन्नन्त दृश् धातु से 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा. १.३.५७) से नित्य आत्मनेपद ही होगा।

२. सनिमीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् (अष्टा. ७.४.५४) से दा के अच् (=आ) को इस् आदेश और अभ्यास का लोप। आदेश के स् को तकारादेश 'सः स्यार्धधातुके' (अष्टा. ७.४.४९) से हुआ।

लोट्—	दित्सतु । दित्सतात्	दित्सताम्	लुङ्—अदित्सीत् ।	अदित्सिष्ट
	लङ्—अदित्सत् ।	अदित्सत	लृङ्—अदित्सिष्यत् ।	अदित्सिष्यत
	वि० लिङ्—दित्सेत् ।	दित्सेत		

उ—दित्सुः । अ—दित्सा, तृच्—दित्सिता, तुमुन्—दित्सितुम्,

क्त्वा—दित्सित्वा । शतृ—दित्सन् । शानच्—दित्समानः ।

१. कुछ छात्र तिवारी महोदय से व्याकरण का ज्ञान लेने की इच्छा से वाराणसी में रहकर, तिवारी जी के चरणों में उपस्थित होकर, अपने अध्यापन से उत्पन्न परिश्रम को न गिनते हुए रातदिन छात्रों को ज्ञान देने की इच्छा से पढ़ाते हुए श्री तिवारी गुरुजी की इच्छा को देखकर, परस्पर कहने लगे—अहो ! बुढ़ापे में भी इस प्रकार ज्ञान देना चाहते हुए ऐसे गुरुओं का कौन मन्दमति आदर नहीं करेगा ?

केचित् छात्राः तिवारीचरणेभ्यः व्याकरणज्ञानम् आदित्सवः वाराणसीम् अध्युष्य, तिवारीचरणान् उपस्थाय, निजाध्यापनजनितपरिश्रमम् अविगणय्य अहर्निशं छात्रेभ्यः ज्ञानदित्सया पाठयतः श्रीतिवारीगुरुपादान् अक्षिलक्ष्यीकृत्य, अन्योन्यम् अभ्यधुः—अहो ! वार्धक्येऽपि इत्थं छत्रेभ्यः ज्ञानं दित्सतः एतादृशान् गुरून् कः मन्दमतिः समादरदृष्टिपथं न अवतारयिष्यति ?

(६) डुलभष् (=लभ्) प्राप्तौ (=पाना), लिप्स[1]=पाना चाहना

लिप्सते । लिप्साञ्चक्रे । लिप्सिता । लिप्सिष्यते । लिप्सताम् । अलिप्सत । लिप्सेत । अलिप्सिष्ट । अलिप्सिष्यत ।

उ—लिप्सुः । अ—लिप्सा । तृच्—लिप्सिता । तुमुन्—लिप्सितुम् । क्त्वा—लिप्सित्वा । शानच्—लिप्समानः ।

(७) आप्लृ व्याप्तौ (=प्राप्त करना), ईप्स[2]=प्राप्त करना चाहना

ईप्सति । ईप्साञ्चकार । ईप्सिता । ईप्सिष्यति । ईप्सतु । ऐप्सत् । ईप्सेत् । ऐप्सीत् । ऐप्सिष्यत् ॥ उ—ईप्सुः । अ—ईप्सा । तृच्—ईप्सिता । क्त्वा—ईप्सित्वा । शतृ—ईप्सन् ।

---

१. यहाँ भी 'सनि मी०' से 'लभ्' के अ को इस् आदेश हुआ→लिस्भ् स । 'खरि च' (अष्टा. ८.४.५५) से 'भ् को प्→लिस्प् स । 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (अष्टा. ८.२.२९) से संयोग के आरम्भ में वर्तमान स् का लोप→लिप्स ।

२. आप्ज्ञप्यृधामीत् (अष्टा. ७.४.५५) से 'आप्' के आ के स्थान पर दीर्घ ईकारादेश और अभ्यास का लोप । आप्लृ+सन् । आप् स । आ प्स प्स । आपप्स । ईप्स ।

(८) दम्भु दम्भने (=ढोंग करना), धिप्स,[1] धीप्स, दिदम्भिष= ढोंग करना चाहना

धिप्सति । धिप्साञ्चकार । धिप्सिता । धिप्सिष्यति । धिप्सतु । अधिप्सत् । धिप्सेत् । अधिप्सीत् । अधिप्सिष्यत् ।

धीप्सति । धीप्साञ्चकार । धीप्सिता । धीप्सिष्यति । धीप्सतु । अधीप्सत् । धीप्सेत् । अधीप्सीत् । अधीप्सिष्यत् ।

दिदम्भिषति । दिदम्भिषाञ्चकार । दिदम्भिषिता । दिदम्भिषिष्यति । दिदम्भिषतु । अदिदम्भिषत् । दिदम्भिषेत् । अदिदम्भिषीत् । अदिदम्भिषिष्यत् ।

उ—धिप्सुः, धीप्सुः, दिदम्भिषुः । अ—धिप्सा, धीप्सा, दिदम्भिषा । तृच्—धिप्सिता, धीप्सिता, दिदम्भिषिता । क्त्वा—धिप्सित्वा, धीप्सित्वा, दिदम्भिषित्वा । शतृ—धिप्सन्, धीप्सन्, दिदम्भिषन् । इत्यादि ।

१. धन-प्राप्ति की इच्छावाले कुछ ढोंगी मनुष्य बहुत से धन की प्राप्ति की इच्छा से नाना वेश धारण करके भोलेभाले पुरुषों को ठगते हैं ।
केचित् अर्थलिप्सवः धिप्सवः (धीप्सवः, दिदम्भिषवः) जनाः नानावेशान् आकलय्य बहुवित्तस्य ईप्सया मुग्धान् मनुष्यान् विप्रलभन्ते ।

जैसे धातुमात्र से (धातु के सादे स्वरूप से) सन् प्रत्यय होता है वैसे णिच् आदि प्रत्यय करने पर बनी णिजन्त आदि धातुओं से भी इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है । हाँ सन्नन्त से फिर सन् नहीं होता । णिजन्त से सन् का प्रयोग देखो—

(९) अधि+इङ् अध्ययने (=पढ़ना), अध्यापि (अधिइङ्+णिच्)=पढ़ाना अध्यापिपयिष, अधिजिगापयिष[2] (अध्यापि+सन्)=पढ़ाना चाहना

१. एक बार रविवार के दिन उपदेश देते हुए, आर्यसमाजियों से मैंने पूछा—आपमें से कितने अपने लड़के को वेद पढ़ाना चाहते हैं ?
एकदा रविवासरे अधिसभम् उपदिशता मया आर्यसमाजिकाः अपृच्छयन्त भवत्सु कियन्तः निजतनयान् वेदान् अध्यापिपयिषन्ति (अधिजिगापयिषन्ति) ?

---

१. दम्भ् धातु से सन् होने पर, द्वित्व और अभ्यासकार्य द दम्भ् स । 'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भु०' (अष्टा. ७.२.४९) से इट्-विकल्प 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (अष्टा. ६.४.२४) से म् का लोप—ददभ् स 'दम्भ इच्च' (७.४.१६ दभ् के अ के स्थान पर इकार अथवा ई आदेश । अभ्यास लोप । दिभ् स् । दीभ् स । 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' (अष्टा. ८ २.३७) से द् को ध् । धिभ्स । धीभ्स । 'खरि च' (अष्टा. ८.४.५५) से भ् को प्→धिप्स । धीप्स ॥ इट्-पक्ष में दिदम्भिष ॥

२. णौ च संश्चङोः (अष्टा. २.४.५१) से, सन्परक णि परे रहने पर इङ् के स्थान पर विकल्प से गाङ्=(गा) आदेश हुआ ।

२. अशोक किशोरानी जी ने अपने लड़के लड़कियों को संस्कृत पढ़ाने की इच्छा से बालकपन में ही उन्हें गुरुकुलों में भेज दिया।
अशोककिशोरानीमहोदयाः निजबालानां संस्कृतस्य अध्यापिपयिषया (अधिजिगापयिषया) बाल्ये एव तान् गुरुकुलानि प्राहिण्वन्।

३. मैंने भी अपने उषा और सुरेन्द्र नाम के बच्चों को संस्कृत पढ़ाने की इच्छा से उन्हें राजेन्द्रनगरस्थ कन्या गुरुकुल में और चित्तौड़गढ़स्थ आर्य गुरुकुल में प्रविष्ट कराया है।
अहमपि उषासुरेन्द्रनामानौ निजबालौ संस्कृतम् अध्यापिपयिषुः (अधिजिगापयिषुः) तौ राजेन्द्रनगरस्थं कन्यागुरुकुलं चित्तौड़गढ़स्थम् आर्षगुरुकुलं च प्रावीविशम् (प्रावेशयम्)।

(१०) डुदाञ् दाने (=देना), दापि (दा+णिच्)=दिलवाना
दिदापयिष (दापि+सन्)=दिलवाने की इच्छा करना

१. गुरुकुल के मरे रुपये गवर्नमेंट से दिलवाने की इच्छा से श्री वेदायन जी और मनीषी जी सहारनपुर गये।
गुरुकुलस्य अपलपितानां रूप्यकाणां शासनेन दिदापयिषया मनीषिवेदायनमहाभागौ सहारनपुरम् अयासिष्टाम् (अयाताम्)।

(११) डुकृञ् करणे (=करना) कारि (=कृ+णिच्)=करवाना, आकारि (आङ्+कृ+णिच्)=बुलाना, आचिकारयिष (=आकारि+सन्) =बुलाने की इच्छा करना।

१. आचार्य रामशास्त्री जी को बुलाने की इच्छा से गुरुकुल के अधिष्ठाता जी ने बहुत से पत्र भेजे।
आचार्यपदोपबृंहितानां रामशास्त्रिमहोदयानाम् आचिकारयिषया गुरुकुलाधिष्ठातृमहाभागाः बहूनि दलानि प्राहिण्वन्।

यङ्न्त-प्रक्रिया

एक अच् (=स्वर) वाली, हलादि धातु से क्रियासमभिहार में अर्थात् क्रिया कि बार-बार करने अथवा अधिक करने अर्थ में यङ् प्रत्यय होता है[1]। रुच् और शुभ् धातुओं के हलादि और एकाच् होने पर भी उनसे यङ् नहीं होगा[2]। कुछ धातु अनेकाच् अथवा अजादि हैं तो भी उनसे यङ् होता है, यथा—सूचि, सूत्रि, मूत्रि, अट्, ऋ, अश् (भोजने) और ऊर्णु[3]।

---

१. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् (अष्टा० ३.१.२२)
२. 'भृशं शोभते भृशं रोचते' इत्यत्र [यङ्] नेष्यतेऽनभिधानात् (काशिका ३.१.२२)
३. सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यत्यर्यशूर्णोतीनां ग्रहणं यङ्विधावनेकाजहलाद्यर्थम् [वा०] (अष्टा० ३.१.२२)

धातु से यङ् प्रत्यय होने पर ङ् की इत्सञ्ज्ञा तथा उसका लोप होता है। तब य शेष रहता है। धातु को द्वित्व[1]। पूर्वभाग की अभ्यास सञ्ज्ञा[2]। अभ्यास का आदि हल् शेष[3]। ह्रस्वत्व[4]। अभ्यास के अकार को दीर्घत्व[5]। यदि अभ्यास में इ, उ, ऋ हो तो उसके स्थान पर ए, ओ, अर् गुण[6]। यथा—पठ्+यङ्। पठ्य। पठ्य् पठ्य् अ। पपठ्य् अ। पपठ्य। पापठ्य। चिञ्+यङ्। चिय। चीय। चीय् चीय् अ। चीचीय। चिचीय। चेचीय। इत्यादि। यङ्न्त की पूर्ववत् धातुसञ्ज्ञा भी होगी।

(१) पठ व्यक्तायां वाचि (=पढ़ना), पापठ्य=बार-बार पढ़ना, अधिक पढ़ना

पापठ्य आदि यङ्न्त धातुओं से भी प्रायः सभी साधारण कृत्प्रत्यय (धातु मात्र से होने वाले कृत्प्रत्यय) होते हैं। भाव अर्थ में 'अ' प्रत्यय भी होता है[7]। तिङ् प्रत्ययों में से केवल आत्मनेपद ही होते हैं, क्योंकि यङ्न्त धातु ङित् हैं और ङित् से आत्मनेपद होते हैं[8]।

लट्

पापठ्यते	पापठ्येते	पापठ्यन्ते
पापठ्यसे	पापठ्येथे	पापठ्यध्वे
पापठ्ये	पापठ्यावहे	पापठ्यामहे

लिट्

(१)[9] पापठाञ्चक्रे पापठाञ्चक्राते पापठाञ्चक्रिरे

(२) पापठाम्बभूव पापठाम्बभूवतुः पापठाम्बभूवुः

(३) पापठामास पापठामासतुः पापठामासुः

लुट्

पापठिता	पापठितारौ	पापठितारः
पापठितासे	पापठितासाथे	पापठिताध्वे
पापठिताहे	पापठितास्वहे	पापठितास्महे

लृट्

पापठिष्यते	पापठिष्येते	पापठिष्यन्ते
पापठिष्यसे	पापठिष्येथे	पापठिष्यध्वे
पापठिष्ये	पापठिष्यावहे	पापठिष्यामहे

लोट्

पापठ्यताम्	पापठ्येताम्	पापठ्यन्ताम्
पापठ्यस्व	पापठ्येथाम्	पापठ्यध्वम्
पापठ्यै	पापठ्यावहै	पापठ्यामहै

लङ्

अपापठ्यत	अपापठ्येताम्	अपापठ्यन्त
अपापठ्यथाः	अपापठ्येथाम्	अपापठ्यध्वम्
अपापठ्ये	अपापठ्यावहि	अपापठ्यामहि

---

१. सन्यङोः (अष्टा० ६.१.९) २. पूर्वोऽभ्यासः (अष्टा० ६.१.४)
३. हलादिः शेषः (अष्टा० ७.४.६०) ४. ह्रस्वः (अष्टा० ७.४.५९)
५. दीर्घोऽकितः (अष्टा० ७.४.८३) ६. गुणो यङ्लुकोः (अष्टा० ७.४.८२)
७. अ प्रत्ययात् (अष्टा० ३.३.१०२)
८. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (अष्टा० १.३.१२)
९. लिट्, लुट्, लृट् आदि लकारों में तथा अन्य आर्धधातुक प्रत्ययों में, हलन्त धातु से उत्पन्न यङ् के य् का 'यस्य हलः' (६.४.४९) से लोप हुआ।

वि० लिङ्		
पापठ्येत	पापठ्येयाताम्	पापठ्येरन्
पापठ्येथा:	पापठ्येयाथाम्	पापठ्येध्वम्
पापठ्येय	पापठ्येवहि	पापठ्येमहि

लुङ्		
अपापठिष्ट	अपापठिषाताम्	अपापठिषत
अपापठिष्ठा:	अपापठिषाथाम्	अपापठिढ्वम्
अपापठिषि	अपापठिष्वहि	अपापठिष्महि

लृङ्		
अपापठिष्यत	अपापठिष्येताम्	अपापठिष्यन्त
अपापठिष्यथा:	अपापठिष्येथाम्	अपापठिष्यध्वम्
अपापठिष्ये	अपापठिष्यावहि	अपापठिष्यामहि

तव्यत्—पापठितव्यम् । यत्—पापठ्यम् । अनीयर्—पापठनीयम् ।
क्त्वा—पापठित्वा । क्त—पापठित: । क्तवतु—पापठितवान् ।
णमुल्—पापठं पापठम् । तृच्—पापठिता । ण्वुल्—पापठक: ।
तुमुन्—पापठितुम् । अ—पापठा । शानच्—पापठ्यमान: ।

१. जो विद्यार्थी बहुत पढ़ते हैं उनका गुरु आदर करते हैं।
पापठ्यमानान् छात्रान् गुरव: सदा आद्रियन्ते ।

अथवा

ये छात्रा: पापठ्यन्ते तान् गुरव: सदा आद्रियन्ते ।

२. यह बार-बार पढ़ता है फिर भी अनुत्तीर्ण हो जाता है ।
पापठ्यमान: अपि अयम् अनुत्तीर्ण: एव भवति । अथवा
अयं पापठ्यते तथापि न उत्तरति परीक्षाम् ।

३. प्राचीन आश्रमों में ब्रह्मचारी खूब वेद पढ़ते थे ।
प्राचीनेषु आश्रमेषु ब्रह्मचारिभ्य: वेदान् पापठाञ्चक्रिरे ।

४. जैसे गुरुदत्तजी ने सत्यार्थप्रकाश बार-बार पढ़ा था वैसे तू भी उसे बार-बार पढ़ ।
यथा गुरुदत्तमहाभाग: सत्यार्थप्रकाशम् अपापठ्यत (अपापठिष्ट) तथैव त्वम् अपि तं ग्रन्थं पापठ्यस्व (पापठ्येथा:) ।

५. प्राचीन कानून को जानने के लिए यह वकील मनुस्मृति को बार-बार पढ़ेगा ।
प्राग्विधिज्ञानाय अयं प्राड्विवाक: मनुस्मृतिं पापठिष्यते (पापठिता) ।

६. यदि नागेश भट्ट महाभाष्य को बार-बार न पढ़ता तो उत्तम वैयाकरण न बनता—यदि नागेशभट्ट: महाभाष्यं न अपापठिष्यत तर्हि स: वैयाकरण-शिरोमणि: न अभविष्यत् ।

७. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका बार-बार पढ़ने योग्य है ।
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पापठितव्या (पापठ्या, पापठनीया) अस्ति ।

८. प्रेमचन्द के उपन्यासों को लोगों ने बार-बार पढ़ा।

प्रेमचन्द्रस्य उपन्यासान् जनाः पापठितवन्तः। अथवा—

प्रेमचन्द्रस्य उपन्यासाः जनैः पापठिताः।

९. तू बार-बार पढ़के भी इस पत्र का अभिप्राय न जान सका।

त्वं पापठं पापठम् अपि अस्य पत्रस्य अभिप्राय ज्ञातुं न अशकः।

१०. ग्रन्थों को बार-बार पढ़ने वाला शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है।

ग्रन्थानां पापठिता (पापठकः) शास्त्रज्ञाता (शास्त्रज्ञः) जायते।

११. यह उसी ग्रन्थ को बार-बार पढ़ने के लिये पुस्तकालय जाता है।

अयं तम् एव ग्रन्थं पापठितुम् पुस्तकालयं गच्छति।

१२. तेरी इस धुआंधार पढ़ाई को देखकर कौन तेरे उत्तीर्ण होने में सन्देह करेगा?

तव एनां पापठां (पापठनम्) प्रेक्ष्य कः तव उत्तीर्णतां सन्धेक्ष्यति?

(२) गद व्यक्तायां वाचि (=बोलना), जागद्य (=गद्+यङ्)=बार-बार बोलना, अधिक बोलना

जागद्यते। जागदाञ्चक्रे। जागदिता। जागदिष्यते। जागद्यताम्। अजागद्यत।

जागद्येत। अजागदिष्ट। अजागदिष्यत।

जागदितव्यम्, जागद्यम्, जागदनीयम्। जागदित्वा। जागदितः। जागदितवान्।

जागदं जागदम्। जागदिता। जागदकः। जागदितुम्। जागदा। जागद्यमानः।

१. एक ही बात को बार-बार क्यों कहता है।=कथम् एकाम् एव वार्तां जागद्यसे।

२. अधिक बोलने वाले की बात का महत्त्व कम हो जाता है।

जागदितुः (जागदकस्य) वार्तायाः महत्त्वं हीयते।

३. तेरे निरन्तर बोलने से मेरा सिर भन्ना गया है।

तव जागदया (जागदनेन) शिरो मे भिन्नमिव।

(३) भण व्यक्तायां वाचि (=बोलना, पढ़ना), बम्भण्य[1]=बार-बार पढ़ना, अधिक पढ़ना

बम्भण्यते। बम्भणाञ्चक्रे। बम्भणिता। बम्भणिष्यते। बम्भण्यताम्। अबम्भण्यत।

बम्भण्येत। अबम्भणिष्ट। अबम्भणिष्यत।

बम्भणितव्यम्। बम्भण्यम्। बम्भणनीयम्। बम्भणित्वा। बम्भणं बम्भणम्।

बम्भणितः। बम्भणितवान्। बम्भणिता। बम्भणकः। बम्भणितुम्। बम्भणा।

बम्भण्यमानः।

---

१. यङ् परे रहने पर भण् के अभ्यास 'ब' को नुक् (न्) का आगम 'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य (अष्टा० ७.४.८५) से हुआ। न् को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्णादेश होने पर—बम्भण्य।

१. मुनि देवराज जी कांगड़ी गुरुकुल में बार-बार पढ़े।
मुनिः देवराजमहाभागः कांगड़ीस्थे गुरुकुले बम्भणाञ्चक्रे।

(४) हन् हिंसागत्योः (=मारना, जाना), जङ्घन्य[1]=बुरी तरह से जाना,[2] जेघ्नीय[3]=बार बार या अधिक मारना अथवा हिंसा करना

जङ्घन्यते=टेढ़ा मेढ़ा जाता है। जङ्घनाञ्चक्रे। जङ्घनिता। जङ्घनिष्यते। जङ्घन्यताम्। अजङ्घन्यत। जङ्घन्येत। अजङ्घनिष्ट। अजङ्घनिष्यत। जङ्घनितव्यम्। जङ्घनित्वा। जङ्घना। जङ्घन्यमानः।

जेघ्नीयते=बार-बार या अधिक मात्रा में हिंसा करता है। जेघ्नीयाञ्चक्रे। जेघ्नीयिता। जेघ्नीयिष्यते। जेघ्नीयताम्। अजेघ्नीयत। जेघ्नीयेत। अजेघ्नीयिष्ट। अजेघ्नीयिष्यत।

जेघ्नीयितव्यम्। जेघ्नीय्यम्। जेघ्नीयनीयम्। जेघ्नीयित्वा। जेघ्नीयितः। जेघ्नीयितवान्। जेघ्नीयं जेघ्नीयम्। जेघ्नीयिता। जेघ्नीयकः। जेघ्नीयितुम्। जेघ्नीया। जेघ्नीयमानः। इत्यादि।

१. राम के द्वारा अधिक और बार-बार मारे जाते हुए राक्षसों को देखकर रावण को बहुत दुःख हुआ।
रामेण जेघ्नीय्यमानान्[4] राक्षसान् दर्शं दर्शं रावणः दोदूयमानमनाः बभूव।
२. सांप सदा टेढ़ा चलता है=सर्पः सदा जङ्घन्यते।
३. जो अधिक हिंसा करते हैं, वे अधिक पाप के भागी होते हैं।
ये जेघ्नीयन्ते ते पापभागिनः बोभूयन्ते।
४. चाणक्य ने अपनी कुटिल चाल से खूब हिंसा करने वाले नन्दों का नाश किया।
चाणक्यः निज-जङ्घमया जेघ्नीयकान् (जेघ्नीयितॄन्) नन्दान् जघान।
५. पाकिस्तान की असीम हिंसा को देखकर भारत भी पुनः पुनः हिंसा करने में प्रवृत्त हो गया।
पाकिस्तानस्य जेघ्नीयां विलोक्य भारतम् अपि जेघ्नीयितुं प्रववृते (प्रावर्तत)।

---

१. पूर्ववत् अभ्यास को नुगागम।
२. 'नित्यं कौटिल्ये गतौ' (अष्टा० ३.१.२३) से गत्यर्थक धातु से कुटिलता अर्थ में ही यङ् होता है।
३. हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वक्तव्यः [वा०] (अष्टा० ७.४.३०) से, हिंसा अर्थ में वर्त्तमान हन् से यदि यङ् होगा तो हन् के स्थान पर घ्नी भाव होगा।
४ 'जेघ्नीय' इस यङन्त धातु से कर्मवाच्य में शानच् है। मध्य में 'सार्वधातुके यक्' अष्टा ३.१.६७) से यक् (=य) विकरण हुआ। 'अतो लोपः ६.४.४८ से धातु के अन्त्य अकार का लोप—जेघ्नीय्यमानान्।

(५) अट गतौ (=घूमना, भ्रमण करना), अटाट्य (=टेढ़ा-मेढ़ा चलना या घूमना)

अटाट्यते । अटाटाञ्चक्रे । अटाटिता । अटाटिष्यते । अटाट्यताम् । आटाट्यत । अटाट्येत । आटाटिष्ट । आटाटिष्यत ।

अटाटितव्यम् । अटाट्यम् । अटाटनीयम् । अटाटित्वा । अटाटितः । अटाटितवान् । अटाटम् अटाटम् । अटाटिता । अटाटकः । अटाटितुम् । अटाटा । अटाट्यमानः ।

१. हम छात्रावस्था में मेवाड़ के जङ्गलों में खूब घूमे ।
   वयं छात्रावस्थायां मेदपाटविपिनेषु आटाट्यामहि (अटाटितवन्तः) ।
२. रात्रि में बहुत नहीं घूमना चाहिए = निशायां न अटाटितव्यम् (अटाटनीयम्)
३. ये घुमक्कड़ अपनी घुमक्कड़ी को नहीं त्याग सकते ।
   एते अटाटितारः (अटाटकाः) स्वीयाम् अटाटां न हातुम् अर्हन्ति ।

(६) घ्रा गन्धोपादाने (=सूंघना), जेघ्रीय[1] = बार बार या अधिक सूंघना

जेघ्रीयते । जेघ्रीयाञ्चक्रे । जेघ्रीयिता । जेघ्रीयिष्यते । जेघ्रीयताम् । अजेघ्रीयत । जेघ्रीयेत । अजेघ्रीयिष्ट । अजेघ्रीयिष्यत ॥

जेघ्रीयितव्यम् । जेघ्रीय्यम् । जेघ्रीयणीयम् । जेघ्रीयित्वा । जेघ्रीयितः । जेघ्रीयितवान् । जेघ्रीयं जेघ्रीयम् । जेघ्रीयिता । जेघ्रीयकः । जेघ्रीयितुम् । जेघ्रीया । जेघ्रीयमाणः ।

१. जो बहुत अधिक नसवार सूंघते हैं, उनको फफड़े का कैंसर हो जाता है ।
   नस्यं जेघ्रीयमाणाः पुरुषाः फुफ्फुसे घातकम् अर्बुदं लभन्ते ।
२. गाय आदि पशु, खाने से पहिले भक्ष्य पदार्थ को बार-बार सूंघते हैं ।
   गवादयः पशवः भक्षणात् पूर्वं भक्ष्यं वस्तु जेघ्रीयन्ते ।
३. कुत्ते बार-बार सूंघकर मार्ग को खोजते हैं ।
   सारमेयाः जेघ्रीयं जेघ्रीयं पन्थानं मार्गयन्ति ।
४. हम इसे बार बार सूंघते हुए भी तृप्त नहीं हुए ।
   वयम् इदं जेघ्रीयमाणाः अपि न अतृप्याम (अतृपाम) ।

(७) शीङ् स्वप्ने (=सोना, शाशय्य[2] = पुनः पुनः अथवा अधिक सोना

शाशय्यते । शाशयाञ्चक्रे । शाशयिता । शाशयिष्यते । शाशय्यताम् । अशाशय्यत । शाशय्येत । अशाशयिष्ट । अशाशयिष्यत ।

---

१. 'ई घ्राध्मोः' (अष्टा ७.४.३१) से घ्रा के आ को ईकारादेश हुआ ।
२. 'अयङ् यि क्ङिति' (अष्टा. ७.४.२२) से 'शी' के ई के स्थान पर अयङ् (=अय्) आदेश ।

शाशयितव्यम् । शाशय्यम् । शाशयनीयम् । शाशयित्वा । शाशयं शाशयम् । शाशयितः । शाशयितवान् । शाशयिता । शाशयकः । शाशयितुम् । शाशया । शाशय्यमानः ।

१. केशवदेव के द्वारा बार-बार जगाये जाते हुए भी ब्रह्मचारी बार बार सो जाते हैं।
केशवदेवेन पुनः पुनः बोध्यमानाः,[1] अपि ब्रह्मचारिणः शाशय्यन्ते ।

२. ये इतना अधिक सोने वाले व्यक्ति क्या विद्वान् बनेंगे ।
एते शाशयितारः (शाशयकाः) जनाः कथमिव विद्वांसः सम्पत्स्यन्ते ।

३. तुम यदि बार बार न सोते तो पाठ याद कर लेते ।
यूयं यदि न अशाशयिष्यध्वं तर्हि पाठम् अस्मरिष्यत ।

४. तुम्हारे बार बार सोने को देखकर वे भी अधिक सोने के लिए कमरे में घुस गये ।
युष्माकं शाशयां वीक्ष्य ते अपि शाशयितुं प्रकोष्ठं प्राविशन् (प्राविक्षन्) ।

(८) गै शब्दे (=गाना) जेगीय[2]=बार बार अथवा अधिक गाना

जेगीयते । जेगीयाञ्चक्रे । जेगीयिता । जेगीयिष्यते । जेगीयताम् । अजेगीयत । जेगीयेत । अजेगीयिष्ट । अजेगीयिष्यत ।।

जेगीयितव्यम् । जेगीय्यम् । जेगीयनीयम् । जेगीयित्वा । जेगीयं जेगीयम् । जेगीयितः । जेगीयितवान् । जेगीयिता । जेगीयकः । जेगीयितुम् । जेगीया । जेगीयमानः ।

१. देश के लिए प्राण देने वाले और जनहित करने वाले लोगों की कीर्ति सब जगह बार बार गायी जाती है ।
देशाय प्राणान् उपहरतां जनहितकर्तॄणां च कीर्तिः सर्वत्र जेगीयते ।

२. लव और कुश ने रामचरित का खूब गान किया ।
कुशलवौ रामचरितं जेगीयाञ्चक्राते ।

३. परमेश्वर की महिमा का खूब गान करो ।
परमेश्वरस्य महिमानं जेगीयध्वं (जेगीयेध्वम्) ।

४. ये बार बार गीत गाते हुए भी थके नहीं हैं ।
एते गीतानि जेगीयमानाः अपि न श्राम्यन्ति ।

(९) नृती गात्रविक्षेपे (=नाचना), नरीनृत्य[3]=बार बार अथवा खूब नाचना

नरीनृत्यते । नरीनृताञ्चक्रे । नरीनृतिता । नरीनृतिष्यते । नरीनृत्यताम् । अनरीनृत्यत । नरीनृत्येत । अनरीनृतिष्ट । अनरीनृतिष्यत ।।

---

१. बुध् के णिजन्त 'बोधि' से शानच् । णिजन्त धातु से यङ् नहीं होता क्योंकि वह अनेकाच् हो जाती है ।

२. 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' (अष्टा. ६.४.६६) से 'गा' (=गै) के आ के स्थान पर ईकारादेश ।

३. 'रीगृदुपधस्य च' (अष्टा. ७.४.९०) से नृत् (यङन्त) के अभ्यास 'न' को रीक् (=री) आगम हुआ । 'नरीनृत्य' में 'नृ' के न् को णत्व 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (अष्टा. ८.४.२) से प्राप्त था, उसका निषेध 'क्षुभ्नादिषु च' ८.४.३९ से हुआ ।

नरीनृतितव्यम् । नरीनृत्यम् । नरीनृतनीयम् । नरीनृतित्वा । नरीनृतं नरीनृतम् । नरीनृतितः । नरीनृतितवान् । नरीनृतिता । नरीनृतकः । नरीनृतितुम् । नरीनृता । नरीनृत्यमानः ।

१. आजकल सब मनुष्य रात दिन धन के लिए बार-बार नाचते हैं।

अद्यत्वे सर्वे मनुष्याः अहर्निशं धनाय नरीनृत्यन्ते ।

२. बार-बार नाचते हुए मोरों को देखकर किसका मन प्रसन्न नहीं होता।
नरीनृत्यमानान् मयूरान् निभाल्य कस्य चित्तं न प्रसीदति ?

३. यह नाचने वाली बार बार नाच करके भी इस स्त्रीसभा को सन्तुष्ट न कर सकी।

इयं नृत्याङ्गना नरीनृतं नरीनृतम् अपि इदं स्त्रीसभं[1] न तोषितुम् अशकत् ।

४. तेरे ये अनेक नाच मुझे प्रभावित नहीं करेंगे।
तव इयं नरीनृता मां न प्रभावयिष्यति ।

यङ्लुगन्त-प्रक्रिया

यङन्त और यङ्लुगन्त के अर्थों में कोई भेद नहीं, केवल रूपों में भिन्नता है। पूर्ववत् धातुओं से यङ् प्रत्यय होने पर उसका (=य का) लुक् हो जाता है।[2] प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्'[3] के अनुसार प्रत्यय की पूर्व उपस्थिति के प्रभाव से यङ्लुगन्त शब्द की धातु सञ्ज्ञा[4] और फिर लट् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है। अदादिगणस्थ 'चर्करीतं च' इस धातु-सूत्र से यङ्-लुगन्त धातु को अदादिगण के अन्तर्गत गिना जाता है और वह परस्मैपदी ही होता है यह भी माना जाता है। अदादि के अन्तर्गत मानने से, यङ्लुगन्त धातु से (लट्-लोट्-लङ्-विधिलिङ्) में जो शप् होता है उसका लुक् हो जाता है। यङ्लुगन्त धातु से परे जो हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय (=अर्थात् तिप्, सिप्, मिप्) आते हैं उनके आरम्भ में विकल्प से ईट् (=ई) आगम हो जाता है[5]; परिणामतः तिप्, सिप्, मिप् में दो दो रूप बनते हैं। भू धातु और पठ् धातु के यङ्लुगन्त के रूप सभी लकारों में दर्शाते हैं।

---

१. 'अशाला च' (अष्टा. २.४.२४) से नपुंसकलिङ्गता।
२. यङोऽचि च (अष्टा. २.४.७४) ३. (अष्टा १.१.६२)
४. सनाद्यन्ता धातवः (३.१.३२) ५. यङो वा (अष्टा० ७.३.९४) से।

(१) भू सत्तायाम् (=होना), बोभू=बार बार होना अथवा अधिक होना

लट्

(१) बोभवीति, बोभोति बोभूतः बोभुवति
बोभवीषि, बोभोषि बोभूथः बोभूथ
बोभवीमि, बोभोमि बोभूवः बोभूमः

लिट्

(१) बोभवाञ्चकार बोभवाञ्चक्रतुः बोभवाञ्चक्रुः
(२) बोभवाम्बभूव बोभवाम्बभूवतुः बोभवाम्बभूवुः
(३) बोभवामास बोभवामासतुः बोभवामासुः

लुट्

बोभविता बोभवितारौ बोभवितारः
बोभवितासि बोभवितास्थः बोभवितास्थ
बोभवितास्मि बोभवितास्वः बोभवितास्मः

लृट्

बोभविष्यति बोभविष्यतः बोभविष्यन्ति
बोभविष्यसि बोभविष्यथः बोभविष्यथ
बोभविष्यामि बोभविष्यावः बोभविष्यामः

लोट्

बोभवीतु, बोभूतु / बोभूतात् बोभूताम् बोभुवतु
बोभूहि / बोभूतात् बोभूतम् बोभूत
बोभवानि बोभवाव बोभवाम

लङ्

अबोभवीत् / अबोभोत् अबोभूताम् अबोभवुः[1]
अबोभवीः / अबोभोः अबोभूतम् अबोभूत
अबोभवम् अबोभूव अबोभूम

वि० लिङ्

बोभूयात् बोभूयाताम् बोभूयुः
बोभूयाः बोभूयातम् बोभूयात
बोभूयाम् बोभूयाव बोभूयाम

लुङ्

अबोभूवीत् / अबोभोत् अबोभूताम् अबोभूवन्[2]
अबोभूवीः / अबोभोः अबोभूतम् अबोभूत
अबोभूवम् अबोभूव अबोभूम

लृङ्

अबोभविष्यत् अबोभविष्यताम् अबोभविष्यन्
अबोभविष्यः अबोभविष्यतम् अबोभविष्यत
अबोभविष्यम् अबोभविष्याव अबोभविष्याम

कृत्प्रत्यय—बोभवितव्यम् । बोभव्यम् । बोभवनीयम् । बोभूतः । बोभूतवान् । बोभूत्वा । बोभावं बोभावम् । बोभविता । बोभावकः । बोभवितुम् । बोभुवत्[3] (शतृ) ।

अभ्यास

१. यह कार्य अत्यन्त सम्भव है—इदं कार्यं सम्बोभवीति (सम्बोभोति) ।

---

१. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च (अष्टा० ३.४.१०९) से झि के स्थान पर जुस् आदेश । 'जुसि च' (अष्टा० ७.३.८३) से जुस् परे रहते उ को गुण ।

२. भट्टोजिदीक्षित के मत में 'अबोभूवुः' होना चाहिये ।

३. यहाँ शतृ के उगित् हो जाने से जो 'उगिदचां सर्वनामस्थाने' (७.१.७०) से नुम् प्राप्त था उसका 'नाभ्यस्ताच्छतुः' (अष्टा० ७.१.७८) से निषेध हुआ ।

२. ईश्वर में मन लगा, अन्यथा दुःख बार बार होंगे।
ईश्वरे मनः निवेशय, नोचेत् दुःखानि बोभविष्यन्ति (बोभवितारः)।

३. मुझे जो सिरदर्द बार-बार हो जाता था उसकी निवृत्ति इस ओषधि से हुई।
मम या शिरोवेदना अबोभवीत् (अबोभोत्, अबोभूवीत्) तस्याः निवृत्तिः अनेन औषधेन अजायत।

४. यह बार-बार रोगी होता हुआ भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।
अयं रुग्णः बोभुवत् अपि प्रथमविभागे समुत्तीर्णः अभवत्।

(२) पठ व्यक्तायां वाचि (=पढ़ना), पापठ्=बार-बार या अधिक पढ़ना

लट्

पापठीति / पापट्टि	पापट्टः	पापठति
पापठीषि / पापट्षि	पापट्ठः	पापट्ठ
पापठीमि / पापठ्मि	पापठ्वः	पापठ्मः

लिट्

(१) पापठाञ्चकार पापठाञ्चक्रतुः पापठाञ्चक्रुः

(२) पापठाम्बभूव पापठाम्बभूवतुः पापठाम्बभूवुः

(३) पापठामास पापठामासतुः पापठामासुः

लुट्

पापठिता	पापठितारौ	पापठितारः
पापठितासि	पापठितास्थः	पापठितास्थ
पापठितास्मि	पापठितास्वः	पापठितास्मः

लृट्

पापठिष्यति	पापठिष्यतः	पापठिष्यन्ति
पापठिष्यसि	पापठिष्यथः	पापठिष्यथ
पापठिष्यामि	पापठिष्यावः	पापठिष्यामः

लोट्

पापठीतु / पापट्टु / पापट्टात्	पापट्टाम्	पापठतु
पापड्ढि / पापट्टात्	पापट्टम्	पापट्ट
पापठानि	पापठाव	पापठाम

लङ्

अपापठीत् / अपापट्	अपापट्टाम्	अपापठुः
अपापठीः / अपापट्	अपापट्टम्	अपापट्ट
अपापठम्	अपापठ्व	अपापठ्म

वि० लिङ्

पापठ्यात्	पापठ्याताम्	पापठ्युः
पापठ्याः	पापठ्यातम्	पापठ्यात
पापठ्याम्	पापठ्याव	पापठ्याम

लुङ्

अपापाठीत् / अपापठीत्	अपापाठिष्टाम् / अपापठिष्टाम्	अपापाठिषुः / अपापठिषुः
अपापाठीः / अपापठीः	अपापाठिष्टम् / अपापठिष्टम्	अपापाठिष्ट / अपापठिष्ट
अपापाठिषम् / अपापठिषम्	अपापाठिष्व / अपापठिष्व	अपापाठिष्म / अपापठिष्म

लृङ्

अपापठिष्यत्	अपापठिष्यताम्	अपापठिष्यन्
अपापठिष्यः	अपापठिष्यतम्	अपापठिष्यत
अपापठिष्यम्	अपापठिष्याव	अपापठिष्याम

कृत्प्रत्यय—पापठितव्यम् । पापाठ्यम्[1] । पापठनीयम् । पापठित्वा । पापठं पापठम् । पापठितः । पापठितवान् । पापठिता । पापठकः ! पापठितुम् । पापठत् ।

१. तुम दोनों बार-बार पाठ पढ़ते हो फिर भी भूल जाते हो।
युवां पाठं पापठ्ठः तथापि विस्मरथः ।

२. तू इस पृष्ठ को बार-बार पढ़=त्वम् इदं पृष्ठं पापड्ढि (पापठ्याः)

३. ये खूब पढ़ते हुए छात्र दुर्बल हो गये।
इमे पापठतः छात्राः दुर्बलाः अजनिषत ।

४. ये आख्यान बार-बार पढ़ने योग्य हैं इन्हें हम बार बार पढ़ेंगे ।
इमानि आख्यानानि पापाठ्यानि सन्ति इमानि वयं पापठिष्यामः (पापठितास्म,:)

(३) मुद हर्षे (=प्रसन्न होना), मोमुद्=बार बार या खूब प्रसन्न होना

मोमोत्ति—मोमुदीति[2] । मोमोदाञ्चकार । मोमोदिता । मोमोदिष्यति । मोमोत्तु, मोमुदीतु । अमोमोत्-अमोमुदीत्[2] । मोमुद्यात् । अमोमोदीत् । अमोमोदिष्यत् । कृत्प्रत्यय—मोमोदितव्यम् । मोमोद्यम् । मोमोदनीयम् । मोमुदितः । मोमुदितवान् । मोमुदित्वा, मोमोदित्वा[3] । मोमोदं मोमोदम् । मोमोदितुम् । मोमुदत् । मोमोदिता । मोमोदकः ।।

१. आप जैसे मित्रों को देखकर यह मनुष्य बड़ा प्रसन्न होता है।
भवादृशान् सुहृदः अवलोक्य अयं मनुष्यः मोमोत्ति (मोमुदीति)

२. हे शिष्य ! विद्या में उन्नति करते हुए तुझे देख देखकर मैं बहुत खुश हुआ था।
भो वत्स ! विद्यायाम् उत्तिष्ठमानं त्वां दर्शं दर्शम् अमोमोदिषम् अहम् ।

३. सुख की प्राप्ति में बहुत खुश नहीं होना चाहिए।
सुखलाभे न मोमोदितव्यम् (मोमोद्यं, मोमोदनीयम्) (मा मोमोदीः)

४. माता को देखकर अति प्रसन्न होते हुए बालकों के मुखों को देख।
मातरं दृष्ट्वा मोमुदतां बालकानां मुखानि पश्य ।

(४) स्वप् (=ञिष्वप्) शये=सोना, सास्वप्=बार बार या अधिक सोना

सास्वपीति सास्वप्ति । सास्वपाञ्चकार । सास्वपिता । सास्वपिष्यति । सास्वपीतु-सास्वप्तु । असास्वपीत्-असास्वप् । सास्वप्यात् । असास्वापीत्-असास्वपीत् । असास्वपिष्यत् ।

---

१. यङ्लुगन्त 'पापठ्' के हलन्त होने से यहाँ 'ऋहलोर्ण्यत्' (अष्टा ३.१.१२७) से ण्यत् प्रत्यय हुआ। अतएव धातु की उपधा को वृद्धि हुई।

२. 'मोमुदीति' आदि में लघूपधगुण का निषेध 'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके' (अष्टा. ७.३.८७) से हुआ।

३. 'रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च' (अष्टा १.२.२६) से क्त्वा के कित्व का विकल्प।

सास्वपितव्यम् । सास्वप्यम्[1] । सास्वपनीयम् । सासुपितः । सासुपितवान् । सासुपित्वा । सास्वापं सास्वापम् । सास्वपितुम् । सास्वपत् । सास्वपिता । सास्वापकः ।

१. नशे में चूर मूर्ख लोग आवश्यक कार्य को भी छोड़कर दिन भर बहुत अधिक सोते हैं ।
   मदविह्वलाः मूर्खाः अनतिक्रमणीयं कार्यमपि अपहाय समस्तं दिनं यावत् सास्वपति ।
२. मेरे द्वारा बार बार जगाये जाने पर भी सुरेन्द्र बहुत सोया ।
   मया मुहुः मुहुः बोध्यमानः अपि सुरेन्द्रः असास्वापीत् (असास्वपीत्)
३. तेरी परीक्षा समाप्त हुई अब तो तू खूब सोयेगा ।
   अवसिता ते परीक्षा अधुना त्वं सास्वपिष्यसि (सास्वपितासि) ।
४. अरक्षित स्थान में बहुत नहीं सोना चाहिए ।
   अरक्षिते स्थले न सास्वप्यम् (सास्वपितव्यम्, सास्वपनीयम्) ।

(५) वृतु वर्तने (=होना), वरीवृत्-वरिवृत्-वर्वृत्=बार बार या अधिक होना

वरीवर्त्ति[2]-वरिवर्ति-वर्वर्त्ति-वरीवृतीति-वरिवृतीति-वर्वृतीति । वरीवर्ताञ्चकार-वरिवर्ताञ्चकार-वर्वर्ताञ्चकार । वरीवर्तिता-वरिवर्तिता-वर्वर्तिता । वरीवर्तिष्यति-वरिवर्तिष्यति-वर्वर्तिष्यति । वरीवर्त्तु-वरिवर्त्तु-वर्वर्त्तु-वरीवृतीतु-वरिवृतीतु-वर्वृतीतु । अवरीवर्त्-अवरिवर्त्-अवर्वर्त्-अवरीवृतीत्-अवरिवृतीत्-अवर्वृतीत् । वरीवृत्यात्-वरिवृत्यात्-वर्वृत्यात् । अवरीवर्तीत्-अवरिवर्तीत्-अवर्वर्तीत् । अवरीवर्तिष्यत्अवरिवर्तिष्यत्-अवर्वर्तिष्यत् ।

कृत्प्रत्यय→वरीवर्तितव्यम्-वरिवर्तितव्यम्-वर्वर्तितव्यम् । वरीवृत्यम्-वरिवृत्यम्-वर्वृत्यम्[3] । वरीवर्तनीयम्-वरिवर्तनीयम्-वर्वर्तनीयम् । वरीवृत्तः[4]-वरिवृत्तः-वर्वृत्तः । वरीवृत्तवान्[4]-वरिवृत्तवान्-वर्वृत्तवान् । वरीवर्तित्वा-वरिवर्तित्वा-वर्वर्तित्वा । वरीवृत्त्वा[5]-वरिवृत्त्वा-वर्वृत्त्वा । वरीवर्तं वरीवर्तम्-वरिवर्तं वरिवर्तम्-वर्वर्तं-वर्वर्तम् । वरीवर्तिता-वरिवर्तिता-वर्वर्तिता । वरीवर्तकः-वरिवर्तकः-वर्वर्तकः । वरीवृतत्-वरिवृतत्-वर्वृतत् (शतृ) । वरीवर्तितुम्-वरिवर्तितुम्-वर्वर्तितुम् ।

१. आज ठंड अधिक है=अद्य शैत्यं वरीवर्ति (वरिवर्ति, वर्वर्ति, वरीवृतीति…)

---

१. पोरदुपधात् (अष्टा. ३.१.९८) से यत् प्रत्यय हुआ ।
२. वृत् (यङ्लुगन्त) के अभ्यास को (रीगृदुपधस्य च; रुग्रिकौ च लुकि ७.४.९;९२) से रीक्, रिक् और रुक् आगम हुए । तीनों अवस्थाओं में पक्ष में ईट् हुआ ।
३. 'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः (अष्टा. ३.१.११०) से क्यप् प्रत्यय हुआ ।
४. 'यस्य विभाषा' (अष्टा. ७.२.१५) से इट् का निषेध ।
५. 'उदितो वा' (अष्टा. ७.२.५६) से इट् का विकल्प ।

२. सायंकाल तू कहां था = सायंकाले त्वं क्व अवर्वाः (अवरिवाः, अवरीवाः, अवर्वर्त्-अवरिवर्त्-अवरीवर्त्; अवर्वृतीः, अवरिवृतीः, अवरीवृतीः)?

३. देश में बार बार होने वाले ये दुष्ट रोग कब खत्म होंगे।
देशे वरीवर्तितारः (वरिवर्तितारः, वर्वर्तितारः, वरीवर्तकाः, वरिवर्तकाः, वर्वर्तकाः) एते दुष्टरोगाः कदा नंक्ष्यन्ति (नशिष्यन्ति)?

(६) तॄ प्लवनसन्तरणयोः (= तैरना), तातॄ = बार बार अथवा अधिक तैरना

तार्तर्ति। तातराञ्चकार। तातरिता-तातरीता[1]। तातरिष्यति-तातरीष्यति[1]। तातर्तु। अतातः। तातीर्यात्। अतातारीत्। अतातरिष्यत्-अतातरीष्यत्[1]।

कृत्प्रत्यय—तातरितव्यम्-तातरीतव्यम्[1]। तातार्यम्[2]। तातरणीयम्। तातीर्णः[3] तातीर्णवान्[3]। तातीर्त्वा[3]। तातारं तातारम्। तातरितुम्-तातरीतुम्[1]। तातरिता-तातरीता[1]। तातारकः। तातिरत् (शतृ)।

१. पढ़ते हुए मैंने बहुत से कष्ट-सागरों को बार-बार पार किया।
अधीयानः अहं बहून् कष्ट-सागरान् अतातारिषम् (अतातरम्)।

२. मिहिरसेन ने खाड़ी को अनेक बार पार किया।
मिहिरसेनः उपसागरं तातराञ्चकार (अतातः, अतातारीत्, तातीर्णवान्)।

३. तालाब में बार बार तैरते हुए बालक जल को गन्दा कर रहे हैं।
तडागे तातिरतः बालकाः मलिनयन्ति सलिलम्।

४. देवदत्त परीक्षा में बार बार फेल हुआ।
देवदत्तः परीक्षाम् अनूदतातः [अनु + उत् + तॄ (यङ्लुक्) + लङ्. प्र. ए.]

(७) गृधु अभिकाङ्क्षायाम् (= लालच करना), जरीगृध्-जरिगृध्-जर्गृध् = बार बार अथवा अधिक लालच करना।

जरीगर्द्धि-जरिगर्द्धि-जर्गर्द्धि जरीगृधीति-जरिगृधीति-जर्गृधीति। जरीगर्धाञ्चकार-जरिगर्धाञ्चकार-जर्गर्धाञ्चकार। जरीगर्धिता-जरिगर्धिता-जर्गर्धिता। जरीगर्धिष्यति-जरिगर्धिष्यति-जर्गर्धिष्यति। जरीगर्द्धु-जरिगर्द्धु-जर्गर्द्धु-जरीगृधीतु-जरिगृधीतु-जर्गृधीतु। अजरीघर्त्-अजरिघर्त्-अजर्घर्त्-अजरीगृधीत्-अजरिगृधीत्-अजर्गृधीत्। जरीगृध्यात्-जरिगृध्यात्-जर्गृध्यात्। अजरीगर्धीत्-अजरिगर्धीत्। अजर्गर्धीत्। अजरीगर्धिष्यत्-अजरिगर्धिष्यत्-अजर्गर्धिष्यत्॥

---

१. वॄतो वा (अष्टा. ७.२.३८) से इट् को विकल्प से दीर्घत्व।
२. ऋहलोर्ण्यत् (अष्ट. ३.१.१२४) से ण्यत् प्रत्यय। णित्वात् ॠ को आर् वृद्धि।
३. श्र्युकः किति (अष्टा. ७.२.११) से इट् का निषेध।

कृत्प्रत्यय—जरीगर्धितव्यम्-जरिगर्धितव्यम्-जर्गर्धितव्यम् । जरीगृध्यम् (क्यप्)-जरिगृध्यम्-जर्गृध्यम् । जरीगर्धनीयम्-जरिगर्धनीयम्-जर्गर्धनीयम् । जरीगृद्धः-जरिगृद्धः-जर्गृद्धः । जरीगृद्धवान्-जरिगृद्धवान्-जर्गृद्धवान् । जरीगृध्वा-जरिगृध्वा-जर्गृध्वा-जरीगर्धित्वा-जरिगर्धित्वा-जर्गर्धित्वा । जरीगर्धं-जरीगर्धम्, जरिगर्धं-जरिगर्धम्, जर्गर्धं-जर्गर्धम् जरीगर्धिता-जरिगर्धिता-जर्गर्धिता । जरीगर्धकः-जरिगर्धकः-जर्गर्धकः । जरीगर्धितुम्-जरिगर्धितुम्-जर्गर्धितुम् । जरीगृधत्-जरिगृधत्-जर्गृधत् (शतृ) ।

१. श्वशुर के धन का अधिक लालच मत कर ।
   मा स्म श्वशुरस्वं जर्घाः (जरीघाः, जरिघाः, जर्घर्त्, जरिघर्त्, जरीघर्त्) मा श्वशुरस्वं जरीगर्धीः (जरिगर्धीः, जर्गर्धीः) ।
२. कन्जूस सदा धन का लालच बहुत करता है ।
   कृपणः सर्वदा धनं जरीगर्द्धि (जरिगर्द्धि, जर्गर्द्धि, जरीगृधीति···)
३. उस बुढ़िया ने अन्त समय तक अपनी रत्नों की पेटी का बार बार लालच किया ।
   सा वृद्धा अन्तकालं यावत् स्वरत्नमञ्जूषां अजरीधर्त् (अजरिघर्त्, अजर्घर्त्, अजरीगृधीत्···)
४. तुझे ब्लड प्रेशर हो गया पर तू धन का लालच करता ही रहा ।
   त्वं रक्तचापेन समाक्रान्तः अपि धनम् अजर्घाः (अजरिघाः, अजरीघाः, अजर्घर्त्, अजरिघर्त्, अजरीघर्त्) ।

मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः (मूर्छित होना), मोमूर्छ्=बार बार मूर्छित होना

मोमोर्ति-मोमूर्च्छीति । मोमूर्छाञ्चकार । मोमूर्छिता । मोमूर्छिष्यति । मोमोर्तु-मोमूर्च्छीतु । अमोमोः-अमोमूर्च्छीत् । मोमूर्च्छ्यात् । अमोमूर्छीत् । अमोमूर्छिष्यत् ॥

कृत्प्रत्यय—मोमूर्छितव्यम् । मोमूर्छ्यम् । मोमूर्छनीयम् । मोमूर्छितः । मोमूर्छितवान् । मोमूर्छित्वा । मोमूर्छं मोमूर्छम् । मोमूर्छिता । मोमूर्छकः । मोमूर्छितुम् । मोमूर्छत् (शतृ) ।

१. अपने सभी पुत्रों के विनाश का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र बार बार मूर्छित हुआ ।
   अशेषाणां निजसुतानां निधनस्य वार्तां निशम्य धृतराष्ट्रः मोमूर्छाञ्चकार ।
२. गोदाम में लगी आग को देखकर दोनों व्यापारी बार-बार मूर्छित हुए ।
   वस्तुभण्डारे ज्वलन्तं वह्निं विलोक्य उभौ वणिजौ अमोमूर्ताम् (अमोमूर्छिष्टाम्, मोमूर्छितवन्तौ) ।
३. बारहठ उमरदान को पुत्रमरण का शोक तो हुआ पर वह बार बार मूर्छित नहीं हुआ ।
   बारहठ उमरदानमहाभागः पुत्रमरणेन अशोचत् परं न अमोमोः (अमोमूर्छीत्) ।
४. पुत्री को मरता देखकर बार-बार मूर्छित होते हुए माता-पिता विलाप कर रहे हैं
   सुताम् आसन्ननिधनां निभाल्य मोमूर्छन्तौ पितरौ विलपतः ।

कर्मकर्तृ-प्रक्रिया

इस प्रक्रिया में कर्म को कर्त्ता के समान मान लिया जाता है। क्रिया, कर्म को कर्ता मानकर उसी के अनुसार आती है। हिन्दी में भी ऐसे वाक्य होते हैं। जैसे—दाल पक रही है। रोटी बन रही है। चाकू बड़ा अच्छा काटता है। तलवार बहुत अच्छा काटती है। ढोल बड़ा अच्छा बजता है। साइकिल बड़ी अच्छी चलती है। मेरा यह पेन बड़ा अच्छा लिखता है। संस्कृत में भी यह व्यवहार है और इसे कर्मकर्तृवाच्य अथवा कर्मकर्तृप्रक्रिया कहते हैं।

१. चावल पक रहे हैं=ओदनाः पच्यन्ते।

२. लकड़ी फट रही है=काष्ठं भिद्यते।

३. लकड़ियाँ जल रही हैं=काष्ठानि दह्यन्ते।

४. साइकिल हल्की चलती है=द्विचक्रिका लघु चल्यते।

कहीं करण को भी कर्ता मान लिया जाता है—

१. तलवार अच्छा काटती है=साधु असिः छिनत्ति।

२. कलम अच्छा लिखती है=लेखनी सम्यक् लिखति।

कहीं अधिकरण को भी कर्ता माना जाता है—

१. हंडिया पका रही है=स्थाली पचति। स्थाली पच्यते।

द्विकर्मक वाक्य

१. आजकल दिन दहाड़े पुरुष लूटे जा रहे हैं।
अद्यत्वे विद्योतमाने दिवसे पुरुषाः द्रव्याणि मुष्यमाणाः सन्ति।

२. ब्राह्मणों को लड्डू खिलाये जा रहे हैं=ब्राह्मणाः मोदकान् भोज्यमानाः सन्ति।

३. सञ्जय गांधी के स्मारक के लिये लोगों से धन मांगा जा रहा है।
सञ्जयगांधीस्मारकभवनस्य कृते पुरुषाः धनं याच्यमानाः सन्ति।

४. वृक्षों से फल तोड़े जा रहे हैं=वृक्षाः फलानि अवचीयमानाः सन्ति।

५. व्यापारियों पर रोज जुर्माना किया जा रहा है, किन्तु वे अपना काला धन्धा नहीं छोड़ते।

६. प्रत्यहं दण्ड्यमानाः अपि वणिजः निजकूटव्यापारं न मुञ्चन्ति।

७. पुलिस द्वारा जेल को ले जाये जाते हुए बन्दी को छुड़ाने के लिये यत्न करते हुए लोगों से मैंने कहा—पापी को मत छुड़ाओ।

राजपुरुषैः कारां नीयमानं बन्दिनं मोचयितुं यतमानान् पुरुषान् अहम् अवादिषम् अरे! मा स्म पापिनं मोचयत (मा मूमुचत)।

८. सौ चोरों को जेल में बन्द किया जाता हुआ देखकर मैंने सोचा, ये चौर्यकर्म क्यों नहीं छोड़ते ?
शतं कर्णिसुतान् काराम् अवरुध्यमानां दृक्पथम् अवतार्य अहं व्यचिचिन्तं, कथम् एते चौर्यकर्म न परिहरन्ति ?

विविध-वाक्यप्रकार

अब हम अनुवाद के वाक्यों को भिन्न भिन्न प्रकार से बनाना सिखाते हैं—

१. मैं जब तक तुम्हें पढ़ा नहीं दूँगा तब तक मेरे दिल में चैन नहीं आयेगी।
(i) यावद् अहं युष्मान् न पाठयिष्यामि तावत् मम हृदये शान्तिः न भविष्यति।
(ii) कुतः शान्तिः हृदयस्य मे अपाठितेषु युष्मासु।

२. जब तक वह व्याख्यान नहीं दे लेता था तब तक उसे शान्ति नहीं होती थी।
(i) सः ऋते व्याख्यानात् तोष न प्राप्तवान्।
(ii) सः व्याख्याय एव अतुष्यत्।
(iii) न खलु अनुपदिष्टवते तस्मै भोजनम् अरुचत्[1] (अरोचिष्ट)।

३. बहुत से छात्र ऐसे मिट्टी के माधो होते हैं, कि उनको किसी तरह भी समझाया नहीं जा सकता।
(i) केचित् मृत्पिण्डबुद्धयः छात्राः यतमानेन अपि अध्यापकेन बोधयितुं न शक्यन्ते।
(ii) न खलु मृत्पिण्डबुद्धीनां किञ्चिदध्यापकोक्तं बुद्धिपथम् आरोहति।

४. मेरी लड़की के पास बुद्धि है, वह अपनी रक्षा अपने आप कर सकती है।
(i) मम सुतायाः समीपे मतिः अस्ति सा स्वयम् एव स्वरक्षां करिष्यति।
(ii) मतिमती मे बाला आत्मानं रक्षितुम् ईशा।

अब हम कुछ फुटकर वाक्यों को समझाते हैं—

१. एक दूसरे के बाल पकड़कर जब मनीषा और उमा युद्ध कर रहीं थीं तब सर्वमित्र के साथ ज्ञानचन्द्र आ गया, यह सब देखकर उनकी माता इन्दुबाला ने ज्ञानचन्द्र से कहा—ये दिनभर लड़ने और खेलने के अतिरिक्त कुछ नहीं करतीं, आप इन्हें अपने सामने दुकान पर बिठाकर पढ़ाइये।
केशाकेशि युध्यमानयोः उमामनीषयोः ज्ञानचन्द्रः सर्वमित्रेण सह सदनम् आयासीत्, ते युध्यमाने अवलोक्य तयोः माता इन्दुबाला ज्ञानचन्द्रम् अवादीत्— 'एते ऋते युद्धात् क्रीडनाद् वा नान्यत् किमपि कुरुतः, आपणम् आदाय समक्षम् उपवेश्य पाठ्येताम् भवता'।

२. जब दोनों तरफ से युद्ध के शङ्ख बज रहे थे, तब अर्जुन ने कृष्ण से कहा।
उभयतः ध्मायमानेषु युद्धशङ्खेषु अर्जुनः कृष्णं निजगाद।

---

१. 'द्युद्भ्यो लुङि' (अष्टा. १.३.९१) से विकल्प से परस्मैपद।

३. माली से सींचे जाते हुए और बढ़ाये जाते हुए वृक्षों को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ।
मालाकारेण सिच्यमानान् वर्ध्यमानान् च वृक्षान् वीक्ष्य नितराम् अमोदिषि अहम्।

४. चौधरी दीनदयालु ने राकेश और नरेश से कहा—तुम्हारा बड़ा भाई रमेश बड़ी मुश्किल से धन कमाता है, खेती को शास्त्रकारों ने भी क्लिष्टा विद्या कहा है, इसलिए तुम्हें इसके धन का नाश नहीं करना चाहिए और परिश्रम से पढ़ना चाहिये।
चौधरी दीनदयालु: राकेशनरेशौ अभ्यधात्, युवयोः ज्यायान् भ्राता रमेशः अतिकाठिन्येन वित्तम् उपार्जयति, शास्त्रकाराः अपि कृषिं क्लिष्टाम् आहुः, अतएव युवाभ्यां अनेन उपार्जितं वित्तं मुक्तहस्तं न व्ययितव्यम्, अपि तु पठने कृतश्रमाभ्यां भवितव्यम्।

५. जब मैं पहुंचा तब चोर पिट रहे थे=चौरेषु ताडयमानेषु अहम् अयासिषम्।

६. प्रतिदिन पिटते हुए लड़के को मैंने कहा-कम्बख्त क्यों पिटता है, याद कर लिया कर।
प्रतिदिनं ताड्यमानं बालकम् अहम् अवादिषम्-दुर्भग! कथं ताड्यसे, पाठः स्मर्यताम्।

७. ये धोबी के धोये हुए वस्त्र देखिये, मैल ही नहीं छूटा।
पश्य, रजकेन प्रक्षालितानि वस्त्राणि, मध्ये मध्ये मलिनानि सन्ति।

८. तुम्हारे वस्त्र धोये जा रहे हैं, तुम जाने के लिये तैयार हो जाओ।
यौष्माकीणाः पटाः प्रक्षाल्यमानाः सन्ति, गमनाय सज्जाः भवत।

९. अभी लड़के पढ़ाये जा रहे हैं=अधुना बालकाः पाठ्यमानाः सन्ति।

१०. आपके लिए भोजन बन रहा है, बिना खाये मत जाना।
भवतां कृते भोजनं पच्यमानम् अस्ति, अभुक्त्वा मा गमः।

११. दुनिया से ठुकराये जाते हुए मनुष्य प्रभु का आसरा लेते हैं।
लोकैः पादघातं हन्यमानाः पुरुषाः प्रभोः शरण्याः भवन्ति।

१२. आजकल बीज बोये जा रहे हैं=अद्यत्वे बीजानि उप्यमानानि सन्ति।

१३. जब मैं जाऊंगा शायद पत्र लिखे जा रहे हों।
मन्ये लेखिष्यमाणेषु पत्रेषु गच्छेयम्।

पर्यायवाचि-शब्द-प्रकरण

अब हम कुछ पर्याय-वाची शब्द समझा रहे हैं, जिससे सब बालकों के ज्ञान में वृद्धि होगी।

जल के लिए संस्कृत में लगभग १२५ नाम (=शब्द) हैं। उनमें से अधिक नाम ऐसे हैं, जो वेदसंहिताओं में प्रयुक्त हैं। लौकिक संस्कृत ग्रन्थों में अर्थात् महाकाव्य, नाटक आयुर्वेद आदि में जल के वाचक शब्द सीमित हैं। वैजयन्ती-कोष में जल के २९ पर्यायवाची लिखे हैं। अमर-कोष में जल के २७ नाम हैं। इनमें से अधिक प्रसिद्ध ये हैं—जलम्, वारि, तोयम्, पाथः, कमलम्, वनम्, जीवनम्, भुवनम्, कीलालम्, आपः, पानीयम्, पयः, उदकम्, अम्बु, अम्भः, नीरम्।

इन जलवाची शब्दों के साथ 'द' अथवा 'धर' लगा देने से इनका अर्थ बादल होगा तथा उनके रूप 'राम' शब्द के समान चलेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ 'मुक्' (=मुच्) लगाने से भी इनका अर्थ बादल होगा तथा उनके रूप 'वाक्' (=वाच्) शब्द के समान चलेंगे, किन्तु वे पुंल्लिङ्ग माने जायेंगे।

पानी के पर्यायवाची	मेघ के पर्यायवाची		
जलम्	जलदः	जलधरः	जलमुक्
वारि	वारिदः	वारिधरः	वारिमुक्
तोयम्	तोयदः	तोयधरः	तोयमुक्
पाथः	पाथोदः	पाथोधरः	पाथोमुक्
कमलम्	कमलदः	कमलधरः	कमलमुक्
वनम्	वनदः	वनधरः	वनमुक्
जीवनम्	जीवनदः	जीवनधरः	जीवनमुक्
भुवनम्	भुवनदः	भुवनधरः	भुवनमुक्
कीलालम्	कीलालदः	कीलालधरः	कीलालमुक्
आपः	अब्दः	अब्धरः	अम्मुक्
पानीयम्	पानीयदः	पानीयधरः	पानीयमुक्
पयः	पयोदः	पयोधरः	पयोमुक्
उदकम्	उदकदः	उदकधरः	उदकमुक्
अम्बु	अम्बुदः	अम्बुधरः	अम्बुमुक्
अम्भः	अम्भोदः	अम्भोधरः	अम्भोमुक्
नीरम्	नीरदः	नीरधरः	नीरमुक्

'पयः' शब्द के दो अर्थ होते हैं—जल और दूध, अतः 'पयोधर' के भी दो अर्थ होते हैं—बादल और स्तन। आयुर्वेद में नुस्खों के प्रकरण में ये मेघवाची शब्द नागरमोथा के अर्थ में आते हैं। न केवल इनका, अपितु अन्य भी जो घन, बलाहक, तडित्वान् धूमयोनि, नदनु आदि मेघवाची शब्द हैं इनका प्रयोग आयुर्वेद में नुस्खों के प्रसङ्ग में 'नागरमोथा' के अर्थ में होता है।

जलवाची शब्दों के अन्त में 'धि' 'निधि, 'राशि' अथवा 'पति' लगा देने से, इनका अर्थ सागर हो जायेगा और पुंल्लिङ्ग 'हरि' शब्द के समान उनके रूप चलेंगे।

जलवाची शब्द	समुद्र के पर्यायवाची			
जलम्	जलधिः	जलनिधिः	जलराशिः	जलपतिः
वारि	वारिधिः	वारिनिधिः	वारिराशिः	वारिपतिः
तोयम्	तोयधिः	तोयनिधिः	तोयराशिः	तोयपतिः
पाथः	पाथोधिः	पाथोनिधिः	पाथोराशिः	पाथस्पतिः
कमलम्	कमलधिः	कमलनिधिः	कमलराशिः	कमलपतिः
वनम्	वनधिः	वननिधिः	वनराशिः	वनपतिः
जीवनम्	जीवनधिः	जीवननिधिः	जीवनराशिः	जीवनपतिः
भुवनम्	भुवनधिः	भुवननिधिः	भुवनराशिः	भुवनपतिः
कीलालम्	कीलालधिः	कीलालनिधिः	कीलालराशिः	कीलालपतिः
आपः	अब्धिः	अम्निधिः	अब्राशिः	अप्पतिः
पानीयम्	पानीयधिः	पानीयनिधिः	पानीयराशिः	पानीयपतिः
पयः	पयोधिः	पयोनिधिः	पयोराशिः	पयस्पतिः
उदकम्	उदकधिः	उदकनिधिः	उदकराशिः	उदकपतिः
अम्बु	अम्बुधिः	अम्बुनिधिः	अम्बुराशिः	अम्बुपतिः
अम्भः	अम्भोधिः	अम्भोनिधिः	अम्भोराशिः	अम्भस्पतिः
नीरम्	नीरधिः	नीरनिधिः	नीरराशिः	नीरपतिः

पृथ्वी-वाची और मनुष्य-वाची शब्दों के अन्त में ईश, ईश्वर, प, पति अथवा भृत् शब्द लगाने से इनका अर्थ 'राजा' हो जाता है। ईश, ईश्वर, और प शब्दान्त शब्दों के रूप 'राम' के समान, पति जिसके अन्त में हो उसके 'हरि' के समान और 'भृत्' जिसके अन्त में हो उसके 'भूभृत्' के समान रूप चलेंगे।

पृथ्वीवाची शब्द	राजा के वाचक शब्द				
पृथ्वी	पृथ्वीशः	पृथ्वीश्वरः	पृथ्वीपः	पृथ्वीपतिः	पृथ्वीभृत्
पृथिवी	पृथिवीशः	पृथिवीश्वरः	पृथिवीपः	पृथिवीपतिः	पृथिवीभृत्
मही	महीशः	महीश्वरः	महीपः	महीपतिः	महीभृत्
धरणी	धरणीशः	धरणीश्वरः	धरणीपः	धरणीपतिः	धरणीभृत्
मेदिनी	मेदिनीशः	मेदिनीश्वरः	मेदिनीपः	मेदिनीपतिः	मेदिनीभृत्
उर्वी	उर्वीशः	उर्वीश्वरः	उर्वीपः	उर्वीपतिः	उर्वीभृत्
क्षोणी(क्षोणिः)	क्षोणीशः	क्षोणीश्वरः	क्षोणीपः	क्षोणीपतिः	क्षोणीभृत्
क्षितिः	क्षितीशः	क्षितीश्वरः	क्षितिपः	क्षितिपतिः	क्षितिभृत्
भूमिः	भूमीशः	भूमीश्वरः	भूमिपः	भूमिपतिः	भूमिभृत्
अवनिः	अवनीशः	अवनीश्वरः	अवनिपः	अवनिपतिः	अवनिभृत्
भूः	भ्वीशः	भ्वीश्वरः	भूपः	भूपतिः	भूभृत्
धरा	धरेशः	धरेश्वरः	धरापः	धरापतिः	धराभृत्
इला	इलेशः	इलेश्वरः	इलापः	इलापतिः	इलाभृत्
क्ष्मा	क्ष्मेशः	क्ष्मेश्वरः	क्ष्मापः	क्ष्मापतिः	क्ष्माभृत्
वसुधा	वसुधेशः	वसुधेश्वरः	वसुधापः	वसुधापतिः	वसुधाभृत्
कुः	क्वीशः	क्वीश्वरः	कुपः	कुपतिः	कुभृत्

मनुष्यवाची शब्द	राजा के वाचक शब्द				
मनुष्य	मनुष्येशः	मनुष्येश्वरः	मनुष्यपः	मनुष्यपतिः	मनुष्यभृत्
ना(=नृ)	नृशः	नृश्वरः	नृपः	नृपतिः	नृभृत्
नरः	नरेशः	नरेश्वरः	नरपः	नरपतिः	नरभृत्
मनुज	मनुजेशः	मनुजेश्वरः	मनुजपः	मनुजपतिः	मनुजभृत्
मानव	मानवेशः	मानवेश्वरः	मानवपः	मानवपतिः	मानवभृत्
मर्त्य	मर्त्येशः	मर्त्येश्वरः	मर्त्यपः	मर्त्यपतिः	मर्त्यभृत्
मानुष	मानुषेशः	मानुषेश्वरः	मानुषपः	मानुषपतिः	मानुषभृत्

इसी प्रकार इन (पृथ्वी-वाची और मनुष्य-वाची) शब्दों के अन्त में इन्द्र, नाथ, पाल, अधिप ये शब्द लगाने से भी उनका 'राजा' अर्थ हो जाता है।

यथा—पृथ्वीन्द्रः, अवनीन्द्रः, पृथ्वीनाथः, भूपालः, वसुधाधिपः, नरेन्द्रः, नरनाथः, नृपालः, नराधिपः आदि। पृथ्वीवाची शब्दों के अन्त में 'जानि' लगाने से भी राजा अर्थ होता है। यथा—पृथ्वीजानिः, भूजानिः[1]। पृथ्वीवाची शब्दों के अन्त में 'धर' अथवा 'भृत्' लगा देने से इनका अर्थ पर्वत हो जाता है तथा 'रुह्', 'जन्मा' अथवा 'ज' लगा देने से इनका अर्थ वृक्ष हो जाता है—

पृथ्वीवाची	पर्वतवाची		वृक्षवाची		
पृथ्वी	पृथ्वीधरः	पृथ्वीभृत्	पृथ्वीरुहः	पृथ्वीजन्मा	पृथ्वीजः
पृथिवी	पृथिवीधरः	पृथिवीभृत्	पृथिवीरुहः	पृथिवीजन्मा	पृथिवीजः
मही	महीधरः	महीभृत्	महीरुहः	महीजन्मा	महीजः
धरणी	धरणीधरः	धरणीभृत्	धरणीरुहः	धरणीजन्मा	धरणीजः
मेदिनी	मेदिनीधरः	मेदिनीभृत्	मेदिनीरुहः	मेदिनीजन्मा	मेदिनीजः
उर्वी	उर्वीधरः	उर्वीभृत्	उर्वीरुहः	उर्वीजन्मा	उर्वीजः
क्षोणी(क्षोणिः)	क्षोणीधरः	क्षोणीभृत्	क्षोणीरुहः	क्षोणीजन्मा	क्षोणीजः
क्षितिः	क्षितिधरः	क्षितिभृत्	क्षितिरुहः	क्षितिजन्मा	क्षितिजः
भूमिः	भूमिधरः	भूमिभृत्	भूमिरुहः	भूमिजन्मा	भूमिजः
अवनिः	अवनिधरः	अवनिभृत्	अवनिरुहः	अवनिजन्मा	अवनिजः
भूः	भूधरः	भूभृत्	भूरुहः	भूजन्मा	भूजः
कुः	कुधरः	कुभृत्	कुरुहः	कुजन्मा	कुजः
धरा	धराधरः	धराभृत्	धरारुहः	धराजन्मा	धराजः
इला	इलाधरः	इलाभृत्	इलारुहः	इलाजन्मा	इलाजः
क्ष्मा	क्ष्माधरः	क्ष्माभृत्	क्ष्मारुहः	क्ष्माजन्मा	क्ष्माजः
वसुधा	वसुधाधरः	वसुधाभृत्	वसुधारुहः	वसुधाजन्मा	वसुधाजः

ऊपर दर्शायी गई तालिकाओं से ज्ञात होता है कि 'भृत्' शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे पृथ्वीवाची शब्द राजा और पर्वत दोनों के वाचक होते हैं। जहां ऐसे शब्द आयें वहां प्रसङ्ग और पूर्वापर प्रकरण से सही अर्थ का ज्ञान कर लेना चाहिए।

---

१. भूः जाया यस्य सः भूजानिः 'जायाया निङ्' (अष्टा. ५.४.१३४) से समासान्त निङ्।

जलवाची शब्दों के साथ 'ज' लगाने से उनका अर्थ 'कमल' अथवा 'जल के जीव' हो जाता है —यथा—

जलजम्, वारिजम्, नीरजम्, अब्जम्, तोयजम्, अम्भोजम्, पयोजम्, अम्बुजम्, सलिलजम्, कजम् आदि।

रात्रिवाची शब्द

निशा, दोषा, क्षपा, क्षणदा, त्रियामा, तमिस्रा, रात्रिः, तमी, तमस्विनी, रजनी, यामिनी, शर्वरी, विभावरी आदि।

ये रात्रिवाची शब्द आयुर्वेद के नुस्खों के प्रकरण में हल्दी के वाचक होते हैं।

रात्रिवाची शब्दों के अन्त में 'ईश, नाथ, कर, पति अथवा जानि' शब्द लगा देने से इनका अर्थ चन्द्रमा हो जाता है—

रात्रिवाची शब्द	चन्द्रमावाची शब्द				
निशा	निशेशः	निशानाथः	निशाकरः	निशापतिः	निशाजानिः
दोषा	दोषेशः	दोषानाथः	दोषाकरः	दोषापतिः	दोषाजानिः
क्षपा	क्षपेशः	क्षपानाथः	क्षपाकरः	क्षपापतिः	क्षपाजानिः
क्षणदा	क्षणदेशः	क्षणदानाथः	क्षणदाकरः	क्षणदापतिः	क्षणदाजानिः
त्रियामा	त्रियामेशः	त्रियामानाथः	त्रियामाकरः	त्रियामापतिः	त्रियामाजानिः
तमिस्रा	तमिस्रेशः	तमिस्रानाथः	तमिस्राकरः	तमिस्रापतिः	तमिस्राजानिः
रात्रिः	रात्रीशः	रात्रिनाथः	रात्रिकरः	रात्रिपतिः	रात्रिजानिः
तमी	तमीशः	तमीनाथः	तमीकरः	तमीपतिः	तमीजानिः
तमस्विनी	तमस्विनीशः	तम…नाथः	तम—करः	तम…पतिः	तम—जानिः
रजनी	रजनीशः	रजनीनाथः	रजनीकरः	रजनीपतिः	रजनीजानिः
यामिनी	यामिनीशः	यामिनीनाथः	यामिनीकरः	यामिनीपतिः	यामिनीजानिः
शर्वरी	शर्वरीशः	शर्वरीनाथः	शर्वरीकरः	शर्वरीपतिः	शर्वरीजानिः
विभावरी	विभावरीशः	विभा…नाथः	विभा करः	विभा पतिः	विभा जानिः

ये तथा अन्य जो चन्द्रमावाची शब्द चन्द्रः, शशाङ्कः, उडुराजः, ओषधीशः, चन्द्रमाः, विधुः, इन्दुः, शीतांशुः, क्लेदुः, तुहिनदीधितिः, हिमद्युतिः, शशी (=शशिन्), ग्लौः आदि हैं उन सबका आयुर्वेद में (नुस्खा प्रकरण में) कपूर अर्थ होता है।

सूर्यवाची शब्द

अर्कः, सूर्यः, सूरः, मार्तण्डः, मार्ताण्डः, तपनः, प्रभाकरः, भास्करः, अहस्करः, दिनमणिः, दिनकरः, दिवाकरः, विभाकरः, खाध्वनीनः, खतिलकः, आदित्यः, मिहिरः, मित्रः दिनेशः, अर्यमा, द्वादशात्मा, पूषा, सविता, सप्तसप्तिः, तिग्मदीधितिः, रविः, अहर्पतिः, अनूरुसारथिः, रश्मिमाली, दिनप्रणीः, भानुः, भातुः, पद्मबन्धुः, तमोरिपुः, चण्डांशुः, सहस्रांशुः, अंशुमान् आदि शब्द सूर्यवाची हैं।

सूर्यवाचक समस्त शब्द, आयुर्वेद में (नुस्खों के प्रकरण में) आक (=अकौआ) अर्थ के वाचक होते हैं।

अग्निवाचक शब्द

ज्वलनः, दहनः, अनलः, पावकः, उषर्बुधः, आश्रयाशः, शुक्रः, हव्यवाहनः, वैश्वानरः, अग्निः, वह्निः, कृपीटयोनिः, आशुशुक्षणिः, शुचिः, कृशानुः, चित्रभानुः, विभावसुः, जातवेदाः, कृष्णवर्त्मा, हुतभुक् आदि शब्द अग्निवाची हैं।

अग्निवाची समस्त शब्द आयुर्वेद के नुस्खों के प्रकरण में 'चित्रक' बूटी के लिये प्रयुक्त होते हैं।

वायुवाचक शब्द

वातः, पवनः, पवमानः, प्रभञ्जनः, समीरः, समीरणः, श्वसनः, स्पर्शनः, गन्धवहः, गन्धवाहः, अनिलः, आशुगः, मारुतः, जगत्प्राणः, सदागतिः, नभस्वान्, मातरिश्वा, वायुः, मरुत् आदि शब्द वायुवाची हैं।

कुछ ज्ञातव्य बातें

[१] लट् लकार भी 'स्म' अव्यय साथ लगाने पर भूतकालिक अर्थ देता है[1] अर्थात् वर्तमान काल की क्रिया के अन्त में 'स्म' लगा देने से वह अनद्यतन भूतकाल की क्रिया बन जाती है। जैसे—पठति स्म=पढ़ता था। पिबति स्म=पीता था। गच्छति स्म=जाता था। खादति स्म=खाता था।

मैं ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त को गुरुकुल कुरुक्षेत्र में पढ़ाता था।
अहं ब्रह्मचारिणं ब्रह्मदत्तं गुरुकुल-कुरुक्षेत्रे पाठयामि स्म।
साथ ही पक्ष में अपाठयम् (लङ्), अपीपठम् (लुङ्) का भी प्रयोग होता है।

[२] अभिज्ञा अर्थात् भूली हुई बात को याद दिलाने के विषय में अनद्यतन भूतकाल के अर्थ में लृट् लकार का भी प्रयोग होता है[2]। जैसे कोई दो मित्र आपस में बात कर रहे हों, तब एक मित्र दूसरे मित्र को पुरानी बात का स्मरण कराता हुआ कहता है।—

यज्ञदत्त! क्या तुम्हें याद है अपन अम्बाला शहर की पाठशाला में पढ़ते थे।
अपि स्मरसि यज्ञदत्त! अम्बाला-नगरस्य पाठशाले (पाठशालायां) पठिष्यावः।

किन्तु इस प्रकार के वाक्यों में कहीं 'यत्' शब्द का प्रयोग हो जाय तो फिर लृट् लकार नहीं होगा[3]। यथा—अपि स्मरसि यज्ञदत्त! यत् अम्बालानगरस्य पाठशाले (पाठशालायां) अपठाव।

---

१. लट् स्मे (अष्टा० ३.२.११८); अपरोक्षे च (अष्टा. ३.२.११९)
२. अभिज्ञावचने लृट् (अष्टा० ३.२.११२) ३. न यदि (अष्टा० ३.२.११३)

[३] धातुमात्र से वर्तमान काल में उत्पन्न लट् के स्थान पर यथायोग्य शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं, किन्तु उनका प्रथमा विभक्ति के साथ समानाधिकरण न हो। ऐसा पाणिनि के सूत्र में कहा गया है।[१] तथापि साहित्य में ऐसे प्रयोग देखे जाते हैं जहां प्रथमा-समानाधिकरण में भी शतृ-शानच् का प्रयोग होता है। इसके लिये वैयाकरणों ने पाणिनि के शतृ-शानच्-विधायक सूत्र में से ही समाधान खोज निकाला है। पहिले के 'वर्त्तमाने लट्'[२] सूत्र में 'लट्' की अनुवृत्ति आ ही रही थी, तब फिर 'लटः शतृशानचा०' इस सूत्र में 'लट्' पद क्यों रक्खा? सो इस प्रकार 'लटः' पद का ग्रहण व्यर्थ होकर किसी अतिरिक्त (=अधिक) विषय की ओर सङ्केत कर रहा है और वह यह है कि कहीं कहीं प्रथमा-समानाधिकरण में भी लट् के स्थान पर शतृशानच् होते हैं।[३]

[४] 'वह खा रहा था। मैं खा रहा हूं। शायद वह खा रहा हो।' इत्यादि वाक्यों में शतृ-शानच्-प्रत्ययान्त शब्द के साथ 'भू' या 'अस्' धातु का प्रयोग किया जाता है।

१. वह जा रहा है=सः गच्छन् अस्ति
२. विमला जा रही है=
विमला गच्छन्ती अस्ति
३. जल बह रहा है=जलं वहद् अस्ति
४. मैं जा रहा हूं=अहं गच्छन् अस्मि
५. हम दो जा रहे हैं=
आवां गच्छन्तौ स्वः
६. हम सब जा रहे हैं=
वयं गच्छन्तः स्मः
७. तू जा रहा है=त्वं गच्छन् असि
८. तुम दो जा रहे हो=
युवां गच्छन्तौ स्थः
९. तुम सब जा रहे हो=
यूयं गच्छन्तः स्थः
१०. मैं जा रहा था=
अहं गच्छन् आसम् (अभूवम्)
११. हम दो जा रहे थे=
आवां गच्छन्तौ आस्व (अभूव)
१२. हम सब जा रहे थे=
वयं गच्छन्तः आस्म (अभूम)
१३. लड़कियां जा रहीं थीं=
बालिकाः गच्छन्त्यः आसन्
१४. दो फल गिर रहे थे=
फले पतन्ती आस्ताम्।
१५. शायद वे इस समय भोजन खा रहे हों=मन्ये इदानीं ते खादन्तः भवेयुः।

[५] 'जा चुका है', 'खा चुका था', 'जा चुका होगा' इस प्रकार के वाक्यों में 'क्तवतु' का प्रयोग करके 'अस्' या 'भू' धातु का प्रयोग करते हैं।

---

१. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे (अष्टा० ३.२.१२४)
२. अष्टा० ३.२.१२३.
३. 'लडिति [अनु] वर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणमधिकविधानार्थम् प्रथमासमानाधिकरणेऽपि भवति—सन् ब्राह्मणः।······विद्यमानो ब्राह्मणः' (काशिका ३. २. १२४)

यथा—१. मैं फल खा चुका हूं=अहं फलानि भुक्तवान् अस्मि ।

२. क्या तू फल खा चुका ?=किं त्वं फलानि खादितवान् असि ?

३. शायद ये फल तोतों ने गिराये हैं=मन्ये एतानि फलानि शुकाः पातितवन्तः स्युः

४. अथवा स्वयं गिरे हैं=स्वयमेव पतितानि (पतितवन्ति) वा भवेयुः ।

इस प्रकार के वाक्य कर्मवाच्य में 'क्त' से भी बन सकते हैं । यथा—'एतैः फलैः स्वयं पतितं भवेत्; एतानि फलानि शुकैः पातितानि भवेयुः' ।

५. वह गया होगा=सः गतवान् भविष्यति अथवा 'सः गतः भविष्यति ।'

६. लड़की गई होगी=बालिका गतवती भविष्यति ।

ये दोनों वाक्य इस प्रकार भी बन सकते हैं—

तेन गतं भविष्यति । बालिकया गतं भविष्यति ।

[६] 'मुझे जाना है', 'उनको जाना है', 'हमें जाना होगा, 'उन्हें जाना था' इस प्रकार के वाक्यों में कर्मवाच्य में तव्य, अनीयर्, यत् आदि के साथ अस् या 'भू' धातु का प्रयोग होता है । यथा—

१. मुझे घर जाना है=मया गृहं गन्तव्यम् (गम्यं, गमनीयम्) अस्ति ।

२. कुछ काम मुझे ही करने होंगे=कानिचित् कर्माणि मयैव कर्त्तव्यानि (कार्याणि, करणीयानि) भविष्यन्ति ।

३. ये कार्य मुझे ही करने पड़ेंगे=एतानि कर्माणि अनिच्छता अपि मयैव कर्तव्यानि (करणीयानि, कार्याणि) भविष्यन्ति ।

४. आपको घर जाना था=भवद्भिः गृहं गन्तव्यम् आसीत् ।

५. ये फल आपने ही खाने हैं=एतानि फलानि भवतैव खादितव्यानि सन्ति ।

६. शायद इन लड़कियों को ही ये कपड़े सिलने पड़ें ।
मन्ये आभिः बालिकाभिः एव एतानि वस्त्राणि सेवितव्यानि भवेयुः ।

७. वहां उन्हें ही जाना होगा=तत्र तैः एव गन्तव्यं भविष्यति ।

[७] "इसके बाल या आंखें सुन्दर हैं" इस प्रकार के वाक्यों में जो कर्त्ता सबसे अन्त में होगा उसके अनुसार क्रिया आयेगी । यथा—

१. अस्य केशाः वा नेत्रे वा सुभगे स्तः ।

२. बैल के सींग, पांव या पूंछ कांपती है=वृषभस्य शृङ्गे वा पादाः वा पुच्छं वा कम्पते ।

[८] जिन वाक्यों में अन्य कर्ताओं (अथवा कर्ता) के साथ सर्वनाम रूपी कर्त्ता भी प्रयुक्त हो वहां उस सर्वनाम के अनुसार क्रिया आती है[1]। यथा—

(i) तू और मोहन वहां जायेंगे = त्वं च मोहनः च तत्र गमिष्यथः।

(ii) तू, सुभाष और नरेन्द्र नहीं जायेंगे = त्वं च सुभाषः च नरेन्द्रः च न गमिष्यथ।

(iii) मैं और भृत्य खोदेंगे = अहं भृत्याः च खनिष्यामः।

[९] किन्तु जहां सब कर्त्ता सर्वनाम रूप में प्रयुक्त हों वहां सर्वनाम के त्यदादि गण में जो जो परे पढ़ा है उसके अनुसार क्रिया आयेगी[2]। वहां क्रम इस प्रकार है—'त्यत्, (तत्,) यद्, एतद्, (इदम्,) अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्'। इन में से वाक्य में जो जो प्रयुक्त होंगे, उन प्रयुक्तों में, इस उपर्युक्त क्रम में से जो परे होगा तदनुसार क्रिया होगी। यथा—

१. वह, यह और तू लड्डू खायेंगे = सः च अयं (एषः) च त्वं च मोदकान् खादिष्यथ।

२. तू और यह पढ़ोगे = त्वं च अयं च पठिष्यथः।

३. तू, वह और यह लेख लिखेंगे = त्वं च सः च एषः च लेखं लिखिष्यथ।

४. ये और हम तैरेंगे = एते च वयं च तरिष्यामः (तरीष्यामः)।

५. हम और तुम खूब हसेंगे = वयं यूयं च जाहसिष्यामहे।

६. हम और आप क्या कर सकते है = वयं भवन्तः च किं कर्तुं शक्नुवन्ति।

[१०] 'पिटते हुए लड़कों को मैंने देखा' इस प्रकार के वाक्यों में पिटते हुए आदि शब्द कर्मवाच्य में ही बनते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं। कर्मवाच्य में या तो शानच् से बनते हैं या भूतकालिक क्त प्रत्यय से। यथा—

(i) ताड्यमानान् बालकान् अहम् अवालूलुकम् (अवालोकयम्)।

(ii) लड़के पिट रहे हैं = बालकाः ताड्यमानाः सन्ति।

इस वाक्य में पीटने वाला कोई और अध्यापक आदि है उसमें तृतीया विभक्ति आयेगी। यथा—[अध्यापकेन बालकाः ताड्यमानाः सन्ति]

(iii) पुलिस से चोर पिट रहे थे = राजपुरुषैः चौराः ताड्यमानाः आसन्।

(iv) धोबी के धुले कपड़े यहां ले आओ।

रजकेन प्रक्षालितानि वस्त्राणि अत्र आनय।

कहीं कहीं सीधा कर्तृवाक्य में अकर्मक धातुओं से क्त प्रत्यय प्रयुक्त होता है।

(v) स्वयं सोये हुए उपदेशक सोये समाज को कैसे जगा सकते हैं?

स्वयं सुप्ताः उपदेशकाः कथं सुप्तं समाजं बोधयितुम् ईशाः।

---

१. त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् (अष्टा. १. २. ७२)।

२. त्यदादीनां मिथो यद्यत्परं तच्छिष्यते [वा.] (अष्टा. १. २. ७२)।

(vi) मैंने तो वृक्ष से गिरे फल उठाए हैं।
मया तु वृक्षात् पतितानि फलानि गृहीतानि। आदि।

(vii) बहुत से, हिन्दुओं से ठुकराये हुए मनुष्यों ने पर धर्म स्वीकार कर लिया।
हिन्दुभिः पादघातम् आहताः बहवः पुरुषाः परधर्मम् अङ्गीकृतवन्तः (अङ्ग्यकार्षुः)

(viii) कञ्जूस का खाया हुआ अन्न हजम नहीं होता।
कृपणस्य जग्धम् अन्नं दुष्पचं भवति।

— ० —

अब मैं 'सन्धि' और 'समास' के विषय में समझाता हूं। मुझे पूछा जा सकता है कि आप, सन्धि और समास को सबसे पीछे समझा रहे हैं? इस विषय में मेरा कहना है कि—जब तक हमें शब्दों का अर्थ न आ जाये तब तक हम उनकी सन्धि या समास नहीं कर सकते और न ही उनको खोल सकते हैं। इसलिये पहिले मैंने विभक्त्यर्थ और क्रियाएं समझायी हैं। तदनन्तर अब मैं सन्धि और समास के विषय में कुछ समझाना उचित समझता हूं। पहिले सन्धि का विषय लेता हूं।

सन्धि-प्रकरण

'सन्धिः' शब्द पुंल्लिङ्ग है। यह सम् उपसर्गपूर्वक धा (=डुधाञ्) धातु से कि (=इ) प्रत्यय[1] करने पर बनता है। सन्धि का दूसरा नाम 'संहिता' भी है। 'परः सन्निकर्षः संहिता'[2] अर्थात् वर्णों की अत्यन्त समीपता को 'संहिता' या 'सन्धि' कहते हैं। सन्धि के खोलने को विग्रह[3] या सन्धि-विच्छेद कहते हैं। समास के खोलने को भी विग्रह कहा जाता है। यह बात समास-प्रकरण में आयेगी।

सन्धि को लोग कई तरह से पढ़ाते या समझाते हैं। किन्तु मैं इसे अति सरलता से समझाने का प्रयत्न किया करता हूं। वैसा ही तुम्हें समझा रहा हूं। मेरी इस संस्कृत समझाने की पद्धति का नाम मैंने 'संस्कृत-शिक्षण-सरणी' रक्खा है। इसका अर्थ है 'संस्कृत सिखाने का मार्ग'। इसका अर्थ 'संस्कृत सीखने का मार्ग' ऐसा नहीं है। क्योंकि 'विना गुरु के कोई स्वयं भाषा सीख सकता है' ऐसा मैं नहीं मानता हूं। अतः जैसा मैं समझाता हूं ध्यान से समझो।

अ, इ, उ, ऋ, क, ख, प आदि को ही अकार, इकार, उकार, ऋकार,

---

१. उपसर्गे घोः किः (अष्टा. ३.३.९२)

२. अष्टा. १.४.१०९

३. विग्रह के अन्य अर्थ शरीर, लड़ाई आदि भी हैं, किन्तु व्याकरण में इसका अर्थ सन्धि अथवा समास का खोलना ही है।

ककार खकार, पकार आदि कहते हैं। अक्षरों से स्वार्थ में ही 'कार' प्रत्यय होता है[1] अ या अकार में कोई फर्क नहीं है। र से 'इफ' प्रत्यय होकर 'रेफ' बनता है। रकार कहना अशुद्ध है। र को रेफ बोलना चाहिए।

अच्-सन्धि

अच्सन्धि को स्वर-सन्धि भी कहते हैं।

१. अ या आ से परे अ या आ होने पर दोनों के स्थान पर एक दीर्घ आ हो जाता है[2]। यथा—

मम+अपि=ममापि। न+अस्ति=नास्ति। अत्र+अयम्=अत्रायम्। कक्षा+अन्तरः=कक्षान्तरः। भिक्षा+अस्ति=भिक्षास्ति। या+अनु=यानु। तव+आश्रम्=तवाश्रम्। देव+आलयः=देवालयः। विद्या+आलयः=विद्यालयः। महा+आत्मा=महात्मा।

२. अ या आ से परे इ या ई हो तो दोनों के स्थान पर ए गुण हो जाता है[3]। यथा—

देव+इन्द्रः=देवेन्द्रः। मम+इह=ममेह। तव+इदम्=तवेदम्। महा+इन्द्रः=महेन्द्रः। यथा+इदम्=यथेदम्। भिक्षा+इच्छुकः=भिक्षेच्छुकः। सुर+ईशः=सुरेशः। वीर+ईश्वरः=वीरेश्वरः। अन्न+ईहा=अन्नेहा रमा+ईशः=रमेशः। धरा+ईश्वरः=धरेश्वरः। विद्या+ईहा=विद्येहा।

३. अ या आ से परे उ या ऊ हो तो दोनों के स्थान पर ओ गुण हो जाता है।[3] यथा—
सूर्य+उदयः=सूर्योदयः। वृक+उदरः=वृकोदरः। सर्व+उत्तमः=सर्वोत्तमः। महा+उदयः=महोदयः। शिक्षा+उन्नतिः=शिक्षोन्नतिः। पाद+ऊनः=पादोनः। तव+ऊतिः=तवोतिः। शरीर+ऊष्मा=शरीरोष्मा। महा+ऊषरः=महोषरः। सर्वा+ऊतिः=सर्वोतिः। या+ऊर्क्=योर्क्।

४. अ या आ से परे ऋ या ॠ हो तो दोनों के स्थान पर अ (=अर्) गुण हो जाता है[3]।

देव+ऋषिः=देवर्षिः। तव+ऋद्धिः=तवर्द्धिः। भरत+ऋषभः=भरतर्षभः।

---

१. वर्णात् कारः [वा.] (अष्टा. ३.३.१०८)
२. अकः सवर्णे दीर्घः (अष्टा. ६.१.१०१)
३. आद्गुणः (अष्टा. ६.१.८७)

महा+ऋषिः=महर्षिः। सदा+ऋणः=सदर्णः। उत्तम+ॠकारः=उत्तमर्कारः। तथा+ॠकारः=तथर्कारः।

किन्तु अ या आ से परे ह्रस्व ऋ हो तो कुछ लोगों के मत में उस अ या आ के स्थान पर ह्रस्व अ हो जाता है और उसके स्थान पर अन्य कोई सन्धि नहीं होती[1]। यथा=देव+ऋषिः=देवऋषिः। महा+ऋषिः=महऋषिः आदि।

५. अ या आ से परे ए या ऐ हो तो दोनों के स्थान पर ऐ वृद्धि हो जाती है[2]। यथा—

मम+एतत्=ममैतत्। तव+एवम्=तवैवम्। वित्त+एषणा=वित्तैषणा। विद्या+एषणा=विद्यैषणा। यदा+एषः=यदैषः। सदा+एव=सदैव। मम+ऐश्वर्यम्=ममैश्वर्यम्। सर्व+ऐक्यम्=सर्वैक्यम्। तव+ऐतिह्यम्=तवैतिह्यम्। महा+ऐरावतः=महैरावतः। सदा=ऐहलौकिकम्=सदैहलौकिकम्।

६. किन्तु अकारान्त या आकारान्त उपसर्ग से परे अर्थात् उपसर्ग के अ या आ से परे धातु का ए या ओ हो तो दोनों के स्थान पर यथायोग्य ए या ओ हो जाता है[3]। यथा—

उप+एलयति=उपेलयति। प्र+ओषति=प्रोषति। परा+एलयति=परेलयति।

पर यह नियम एति, एधते आदि परे रहने पर नहीं लगता वहां तो दोनों के स्थान पर ऐ वृद्धि ही होती है।[4]

७. अ या आ से परे 'ओम्' अव्यय अथवा आ (=आङ्) अव्यय परे हो तो दोनों के स्थान पर यथायोग्य ओ या आ हो जाता है।[5] यथा—

शिवाय+ओम् नमः=शिवायोम् नमः। ईश्वराय+ओम् नमः=ईश्वरायोम् नमः। कदा+ओम्+इत्यवोचत्=कदोम् इत्यवोचत्। सदा+ओम् इत्याह=सदोम् इत्याह। यदा+ओढा (आ+ऊढा)=यदोढा। अद्य अर्श्यात् (आ ऋश्यात्)=अद्यर्श्यात्।

८. अ या आ किसी पद (=शब्द) के मध्य में हो और उससे परे 'उस्' शब्द का (=शब्द के=अंश का) उ परे हो तो दोनों के स्थान पर 'उ' हो जाता है।[6] यथा—

---

१. ऋत्यकः (अष्टा. ६.१.१२८) २. वृद्धिरेचि (अष्टा. ६.१.८८)
३. एङि पररूपम् (अष्टा. ६.१.८४) ४. एत्येधत्यूठ्सु (अष्टा. ६.१.८९)
५. ओमाङोश्च (अष्टा. ६.२.८५) ६. उस्यपदान्तात् (अष्टा ६.१:८६)

भिन्द्या + उस् = भिन्द्युः । छिन्द्या + उस् = छिन्द्युः । अया + उस् = अयुः ।

९. ह्रस्व अ यदि पद के मध्य में हो और उससे परे अ या ए हो तो दोनों के स्थान पर यथायोग्य अ या ए हो जाते हैं ।[1] यथा—
पच + अन्ति = पचन्ति । यज + अन्ति = यजन्ति । पच + ए = पचे । यज + ए = यजे । लभ + ए = लभे ।

१०. अ या आ से परे ओ या औ हो तो दोनों के स्थान पर औ वृद्धि हो जाती है ।[2] यथा—
रक्त + ओष्ठम् = रक्तौष्ठम् । मधुर + ओदनः = मधुरौदनः । महा + औषधम् = महौषधम् । मम + औत्कण्ठ्यम् = ममौत्कण्ठ्यम् । सदा + औत्सुक्यम् = सदौत्सुक्यम् । तव + औदार्यम् = तवौदार्यम् ।

११. इ या ई से परे इ या ई हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ई हो जाता है ।[3] यथा-
गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः । बुद्धि + इन्द्रियम् = बुद्धीन्द्रियम् । यदि + इच्छा = यदीच्छा । रति + ईशः = रतीशः । सम्पत्ति + ईर्ष्या = सम्पत्तीर्ष्या । शुचि + ईहा = शुचीहा । नदी + इन्द्रः = नदीन्द्रः । पञ्चमी + इयम् = पञ्चमीयम् । मही + इति = महीति । श्री + ईशः = श्रीशः । मेदिनी + ईश्वरः = मेदिनीश्वरः । महती + ईहा = महतीहा ।

१२. इ या ई से परे इ और ई को छोड़कर अन्य कोई स्वर हो तो उस पूर्व इ के स्थान पर 'य्' हो जाता है ।[4] यथा—
यदि + अत्र । यद्यत्र । यदि + अपि = यद्यपि । गच्छामि + अहम् = गच्छाम्यहम् । दधि + आनय = दध्यानय । हरि + आशा = हर्याशा । अधि + आपयति = अध्यापयति । शुचि + उदकम् = शुच्युदकम् । गति + ऊर्जा = गत्यूर्जा । वारि + ऊर्मिः = वार्यूर्मिः । ऋषि + ऋषभः = ऋष्यर्षभः । शुचि + ऋतुः = शुच्यृतुः । सपदि + ऋणम् = सपद्यृणम् । यदि + एवम् = यद्येवम् । तर्हि + एकम् = तर्ह्येकम् मुनि + ऐतिह्यम् = मुन्यैतिह्यम् । मति + ऐक्यम् = मत्यैक्यम् । दधि + ओदनः = दध्योदनः । वारि + ओघः = वार्योघः । हृदि + औषधम् = हृद्यौषधम् । नदी + अम्भः = नद्यम्भः । कुमारी + अर्थम् = कुमार्यर्थम् । मही + आरूढः = मह्यारूढः महती + आहुतिः = महत्याहुतिः । नारी + उक्तम् = नार्युक्तम् । नदी + उदकम् = नद्युदकम् । अवी + ऊर्णा = अव्यूर्णा । नाडी + ऊष्मा = नाड्यूष्मा । तारणी — ऋक् = तारण्यृक् । महती + ऋक्षी = महत्यृक्षी । स्त्री + एषणा =

---

१. अतो गुणे (अष्टा. ६.१.९७) २. वृद्धिरेचि (६.१.८८)
३. अकः सवर्णे दीर्घः (अष्टा. ६.१.१०१) ४. इको यणचि (अष्टा. ६.१.७७)

स्त्र्येषणा । लघ्वी+एला=लघ्व्येला । गौरी+ऐश्वर्यम्=गौर्यैश्वर्यम् । सुन्दरी+ओकः=सुन्दर्योकः । नारी+औदार्यम्=नार्यौदार्यम् ।

१३. किन्तु कुछ वैयाकरणों के मत में इ या ई से परे असवर्ण अच् हो अर्थात् इ या ई को छोड़कर अन्य कोई स्वर परे हो तो इ या ई को ह्रस्व इ हो जायेगा और वह वैसा ही रहेगा, उसके स्थान पर और कोई सन्धि नहीं होगी।[1] यथा—यदि+अपि=यदि अपि । दधि+आनय=दधि आनय । नदी+अम्भः= नदि अम्भः । नारी+ऊर्णा=नारि ऊर्णा । महती+ऋक्षी=महतिऋक्षी आदि ।

किन्तु यह वैकल्पिक नियम सित् प्रत्यय परे हो तब लागू नहीं होता और नित्यसमास में भी इसका असर नहीं होता।[2] वहां पूर्ववत् इ या ई के स्थान पर य् ही होगा । यथा—ऋतु+इयः (=घस्)[3]+ऋत्वियः । कुमारी+ अर्थम्=कुमार्यर्थम् ।[4]

१४. दीर्घ ई यदि द्विवचन का हो तो उससे परे चाहे कोई स्वर हो वहाँ कोई सन्धि नहीं होगी।[5] यथा—
मुनी अत्र निवसतः । कवी आम्राणि चूषतः । हरी ओदनं भुञ्जाते । दम्पती ईश्वरं भजतः । जम्पती औषधं पिबतः ।

१५. उ या ऊ से परे उ या ऊ हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ऊ हो जाता है।[6] यथा—
भानु+उदयः=भानूदयः । मधु+उदकम्=मधूदकम् । वधू+उत्सवः= वधूत्सवः । चमू+उत्थानम्=चमूत्थानम् । लघु+ऊर्णा=लघूर्णा । ऋजु+ ऊरुः=ऋजूरुः । यवागू+ऊष्मा=यवागूष्मा । वधू+ऊहा=वधूहा ।

१६. उ या ऊ से परे कोई असवर्ण अच् (अर्थात् उ और ऊ से भिन्न कोई स्वर) हो तो उ या ऊ के स्थान पर व् हो जाता है।[7] यथा—
मधु+अपि=मध्वपि । मृदु+अस्थि=मृद्वस्थि । वधू+अलङ्कारः= वध्वलङ्कारः । चमू+अश्वाः=चम्वश्वाः । साधु+आश्रमः=साध्वाश्रमः ।

---

१. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च (अष्टा. ६.१.१२७)
२. सिन्नित्यसमासयोः शाकलप्रतिषेधो वक्तव्यः (अष्टा. ६.१.१२७ [वा.])
३. छन्दसि घस् (अष्टा. ५.१.१०६) से ऋतु शब्द से घस् प्रत्यय हुआ ।
४. अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या [वा.] (अष्टा. २.१.३६)
५. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्; प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (अष्टा. १.१.११; ६.१.१२५)
६. अकः सवर्णे दीर्घः (अष्टा. ६.१.१०१) ७. इको यणचि (अष्टा० ६.१.७०)

यवागू+आशा=यवाग्वाशा। जतु+इदम्=जत्विदम्। कर्कन्धू+इच्छा=कर्कन्ध्विच्छा। खर्जू+ईहा=खर्ज्वीहा। वधू+ऋक्थम्=वध्वृक्थम्। लघु+ऋतुः=लघ्वृतुः। लघु+एष्यति=लघ्वेष्यति। कण्डू+एषणा=कण्ड्वेषणा। मृदु+ओषधिः=मृद्वोषधिः। वधू+ओकः=वध्वोकः। साधु+औत्सुक्यम्=साध्वौत्सुक्यम्। यवागू+औष्ण्यम्=यवाग्वौष्ण्यम्॥

१७. किन्तु कुछेक के मत में उ या ऊ से परे कोई असवर्ण अच् (=स्वर) परे हो तो वहाँ उस उ या ऊ के स्थान पर केवल ह्रस्व उ ही रह जाता है और वह अपनी प्रकृति में ही रहता है अर्थात् उसके स्थान पर अन्य कोई सन्धि नहीं होती।[1] यथा—मधु+अपि=मधुअपि। वधू+अलङ्कारः=वधुअलङ्कारः। यवागू+आशा=यवागुआशा। वधू+ऋक्थम्=वधुऋक्थम्। आदि।

पर नित्यसमास में यह निगम लागू नहीं होता[2]। वहाँ उ या ऊ के स्थान पर व् हो जायेगा। यथा साधु+अर्थम्=साध्वर्थम् [साधवे इदं पयः=साध्वर्थं पयः] वधू+अर्थः=वध्वर्थः [वध्वै अयं पटः=वध्वर्थः पटः][3]।

१८. यदि दीर्घ ऊकार द्विवचन का होगा तो उससे परे चाहे कोई भी स्वर हो, वहां कोई सन्धि नहीं होगी[4]। यथा—
साधू अत्रोपविशतः। सेतू आरभ्येते। केतू इह स्तः। वटू ईक्षेते। कारू उपवस्त्रं वयतः। जिष्णू ऊर्ध्वबाहू भाषेते। शिशू एडकां गृह्णीतः। गुरू ऐश्वर्यं विलोकयतः। रिपू ओघे प्रवहतः। प्रभू औषधं पिबतः। ऊरू ऋषभस्य कम्पेते।

१९. ऋ या ॠ से परे ऋ या ॠ हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ॠ हो जाता है[5]। यथा—
पितृ+ऋणम्=पितॄणम्। होतृ+ऋषिः=होतॄषिः। तृ+ऋकारः=तॄकारः।

२०. ऋ या ॠ से परे यदि कोई असवर्ण स्वर हो तो उस ऋ या ॠ के स्थान पर र् हो जाता है[6]। यथा—
पितृ+अंशः=पित्रंशः। मातृ+अङ्कः=मात्रङ्कः। होतृ+आवृत्तः=होत्रावृत्तः। दुहितृ+इच्छा=दुहित्रिच्छा। ननान्दृ+ईशः=ननान्द्रीशः। कर्तृ+उत्तमः=कर्त्रुत्तमः। भ्रातृ+ऊढा=भ्रात्रूढा। गन्तृ+एधः=गन्त्रेधः। पातृ+ऐश्वर्यम्=पात्रैश्वर्यम्। यातृ+ओदनः=यात्रोदनः। सवितृ+औदार्यम्=सवित्रौदार्यम्।

---

१. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च (अष्टा० ६.१.१२७)
२. सिन्नित्यसमासयोः शाकलप्रतिषेधः [वा०] (अष्टा० ६.१.१२७)
३. अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.१.३६)
४. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्; प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (अष्टा० १.१.११; ६.१.१२५)
५. अकः सवर्णे दीर्घः (अष्टा० ६.१.१०१)   ६. इको यणचि (अष्टा० ६.१.७७)

२१. किन्तु कुछ विद्वानों के मत में ऋ या ॠ से परे असवर्ण अच् हो तो उस ऋ या ॠ के स्थान पर ह्रस्व ऋ हो जाता है और उसके स्थान पर अन्य कोई सन्धि नही होती[1]। यथा—

मातृ+अङ्कः=मातृअङ्कः। ननान्दृ+ईशः=ननान्दृईशः आदि।

पर यह नियम नित्यसमास में प्रभावी नहीं होता[2]। वहां पर तो ऋ या ॠ के स्थान पर र् हो जाता है। यथा—मातृ+अर्थम्=मात्रर्थम्[3]। [मात्रे इदं धनम्=मात्रर्थम् धनम्]।

२२. ए से परे ह्रस्व अकार को छोड़कर अन्य कोई स्वर हो तो, ए के स्थान पर 'अय्' हो जाता है[4]। यथा—

चे+अनम्=चयनम्। जे+अः=जयः। हरे+ए=हरये। ते+एते=तयेते। ते+औषधे=तयौषधे।

२३. शब्द के अन्त में विद्यमान ए से परे ह्रस्व अकार हो तो उन दोनों के स्थान पर ए हो जाता है।[5] यथा—

ते+अपि=तेऽपि (तेपि)। हरे+अव=हरेव (हरेऽव)।

२४. ए यदि द्विवचन का होगा तो उससे परे चाहे कोई स्वर हो वहां सन्धि नहीं होगी[6]। यथा—

कन्ये अत्र क्रीडतः। मित्रे आम्रे चूषतः। महिले अन्धः पचेते अन्तः। बालिके इक्षुरसं पिबतः। इमे अम्बे औरसान् शिशून् धापयेते। महिले ऐश्वर्यम् अनुभवतः। महिले अधीयाते ऋग्वेदम्॥

२५. ऐ से परे कोई भी स्वर हो, उस ऐ के स्थान पर आय् हो जाता है।[4] यथा—

[चि+ण्वुल्→चि+अक→चै+अकः] चै+अकः=चायकः नै+अकः=नायकः। तस्मै+अपि=तस्मायपि। वध्वै+इदम्=वध्वायिदम्।

२६ ओ से परे ह्रस्व अकार को छोड़कर अन्य कोई भी स्वर हो तो उस ओ के स्थान पर 'अव्' हो जाता है[4]। यथा—

---

१. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च (अष्टा० ६.१.१२७)

२. सिन्नित्यसमासयोः शाकलप्रतिषेधः [वा०] (६.१.१२७)

३. अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या [वा०] (अष्टा० २.१.३६)

४. एचोऽयवायावः (अष्टा० ६.१.७८)

५. एङः पदान्तादति (अष्टा० ६.१.१०९)

६. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्; प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (अष्टा० १.१.११; ६.१.१२३)

[स्तु+ल्युट्→स्तु+यु→स्तु+अन→स्तो+अनम्] स्तो+अनम्=स्तवनम्।
[लू+ल्युट्···→लो+अनम्=लवनम्] वटो !+ऋक्षः=वटव्ऋक्षः=
वटवृक्षः [=हे वटो (हे ब्रह्मचारी) रीछ है]।

श्लोक—वटवृक्षो महानेष मार्गमवरुध्य तिष्ठति।
तावत् त्वया न गन्तव्यं यावद् अन्यत्र न गच्छति॥

—हे ब्रह्मचारिन्! यह बहुत बड़ा रीछ मार्ग को रोककर खड़ा है। जब तक यह दूसरे स्थान पर न चला जाय, तब तक तू मार्ग में न जाना।

२७. शब्द के अन्त में विद्यमान ओ से हरे ह्रस्व अकार हो तो, उन दोनों के स्थान पर ओ हो जाता है[1]। यथा—
वायो+अत्र=वायोऽत्र। साधो+अपेहि=साधोऽपेहि।

२८. औ से परे कोई स्वर हो तो औ के स्थान पर 'आव्' हो जाता है[2]। यथा—
तौ+अपि=तावपि। नरौ+आप्नुतः=नरावाप्नुतः। बालौ+इच्छतः=बालाविच्छतः। छात्रौ+ईक्षेते=छात्रावीक्षेते। वध्वौ+उत्तिष्ठतः=वध्वावुत्तिष्ठतः। रुग्णौ(२.२)+ऊर्जयिष्यति=रुग्णावूर्जयिष्यति भेषजम्। द्वौ+अत्र=द्वावत्र।

अ या आ से परे जो व् अथवा म् हो तो उनका विकल्प से लोप हो जाता है यदि कोई स्वर उनसे परे हो[3]। व् तथा य् का लोप हो जाने पर जो आमने सामने स्वर रहते हैं, उनमें फिर कोई सन्धि नहीं होती। यथा—
[द्वौ+अत्र]=द्वाव् अत्र=द्वा अत्र। [तौ+अपि]=ताव्+अपि ता अपि।
[तस्मै+अपि]=तस्माय् अपि=तस्मा अपि। [ते+एते]=तय् एते=त एते। इत्यादि। पक्ष में यहाँ—द्वावत्र, तावपि, तस्मायपि और तयेते भी रहेगा जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है।

२९. कुछ शब्द ऐसे हैं, जहाँ ऊपर के नियमों से भिन्न कार्य होगा। जैसे—शक+अन्धुः=शकन्धुः। कुल+अटा=कुलटा। मार्त+अण्डः=मार्तण्डः। कर्क+अन्धुः=कर्कन्धुः। इनमें नियम (१) से अ+अ के स्थान पर आ होना चाहिये था, किन्तु वैसा नहीं हुआ और अ+अ के स्थान पर एक 'अ' रह गया। सार+अङ्गः=सारङ्गः। यहाँ भी वही बात हुई, किन्तु ऐसा रूप तभी होगा जब पशु या पक्षी का वाचक सारङ्ग शब्द होगा। अन्यथा साराङ्गः हो जायेगा। स्थूल+ओतुः=स्थूलोतुः, स्थूलौतुः। बिम्ब+ओष्ठः=बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः। यहाँ नियम (१०) से अ+ओ के स्थान पर नित्य औ ही होना चाहिये था, पर

---

१. एङः पदान्तादति (अष्टा. ६.१ १०९) २. एचोऽयवायावः (अष्टा. ६.१.७८)।
३. लोपः शाकल्यस्य (अष्टा. ८.३.१९)।

विकल्प से ओ भी हो गया। सीम+अन्तः=सीमन्तः। यह केशवेश के विषय में बनेगा अन्यथा 'सीमान्तः' होगा। मनस्=ईषा=मनीषा, पतत्+अञ्जलिः=पतञ्जलिः। यहाँ क्रमशः स्+ई के स्थान पर केवल ई और त्+अ के स्थान केवल अ रह गया[1]।

व्यञ्जन-सन्धि (हल्सन्धि)

१. पद के अन्त में जो झल्, (अर्थात् वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षर और ऊष्म) उनके स्थान पर जश् (अर्थात् उस उस वर्ग का तृतीय अक्षर) हो जाता है[2]। यथा—
वाक्+ईश्वरी=वागीश्वरी। अच्+आदिः=अजादिः। षट्+आननः=षडाननः। सत्+आनन्दः=सदानन्दः। सुप्+अन्तः=सुबन्तः। त्वक्+धारणम् =त्वग्धारणम्। उत्+देशः=उद्देशः। ककुप्+गामी=ककुब्गामी।

२. पद के अन्त में जो 'म्' उसके स्थान पर अनुस्वार हो जाता है यदि कोई व्यञ्जन परे हो तो[3]। यथा—
ग्रामम् याति=ग्रामं याति। सत्यम्+वद=सत्यं वद। यवम्+लुनीहि=यवं लुनीहि। गाम्+रुणद्धि=गां रुणद्धि। गृहम्+गच्छ=गृहं गच्छ। पाठम् पठ=पाठं पठ। नदीम्+तर=नदीं तर।

३. पद के मध्य में जो न् या म् हो उनके स्थान पर अनुस्वार हो जाता है यदि झल् (=वर्गीय प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ अक्षर तथा ऊष्म) परे हो तो[4]। यथा—
यशान्+सि=यशांसि। मन्+स्यते=मंस्यते। दन्शति=दंशति। पिन्षन्ति=पिंषन्ति। आक्रम् स्यते=आक्रंस्यते। अधिजिगाम् सते=अधिजिगांसते। शन् का=शङ्का। कुन्डिता=कुण्डिता[5]।

४. सम् उपसर्ग के म् से परे यदि 'राज्' (क्विप्प्रत्ययान्त) शब्द हो तो उस म् के स्थान पर म् ही हो जाता है[6], अर्थात् नियम (२) से प्राप्त अनुस्वार नहीं होता है। यथा—

---

१. शकन्ध्वादिषु पररूपं वक्तव्यम्; सारङ्गः पशुपक्षिणोः; ओत्वोष्ठयोः समासे वा०; सीमन्तः केशवेशे [वा०] (अष्टा. ६.१.९४)।

२. झलां जशोऽन्ते (अष्टा. ८.२.३९)। ३. मोऽनुस्वारः (अष्टा. ८.३.२३)।

४. नश्चापदान्तस्य झलि (अष्टा. ८.३.२४)।

५. शङ्का और कुण्डिता आदि में न् को अनुस्वार होने के बाद उस अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण ङ् तथा ण् आदि हो जाता है।

६. मो राजि समः क्वौ (अष्टा. ८.३.२५)।

सम्+राज्=सम्राज्=सम्राट्। सम्+राजौ=सम्राजौ। सम्+राजः=सम्राजः।

५. जिस धातु के आरम्भ में ह् हो और उससे मिला हुआ न् हो (जैसे—ह्नु) तो ऐसी धातु परे रहने पर उससे पूर्व के म् के स्थान पर विकल्प से न् हो जाता है[1]। पक्ष में नियम (२) से अनुस्वार होगा। यथा—
किम्+ह्नुते=किन् ह्नुते, किं ह्नुते। ओम् ह्नुते=ओन् ह्नुते, ओं ह्नुते। गन्तुम् ह्नुते=गन्तुन् ह्नुते गन्तुं ह्नुते।

६. ङ् या ण् से परे शर् (=श्, ष्, स्) हो तो विकल्प से ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट् लग जाता है[2]। पक्ष में वैसा ही रहेगा। यथा—
प्राङ्+शेते=प्राङ्क्शेते, प्राङ्शेते। प्रत्यङ्+षष्ठः=प्रत्यङ्क्षष्ठः, प्रत्यङ्षष्ठः। क्रुङ्+सरति=क्रुङ्क्सरति, क्रुङ्सरति॥ सुगण्+श्यति=सुगण्ट्श्यति, सुगण्श्यति। विपण्+षोडशः=विपण्ट्षोडशः, विपण्षोडशः। सम्भण्+साध्नोति=सम्भण्ट्साध्नोति, सम्भण् साध्नोति।

७. ड् से परे स् हो तो बीच में विकल्प से ध् लग जाता है[3]। तब ध् के स्थान पर त् और ड् के स्थान पर ट् हो जाता है[4]। यथा—
मधुलिड्+सृजति=मधुलिड् ध् सृजति→मधुलिट्त्सृजति, मधुलिट् सृजति
परिव्राड्+सरति=परिव्राड्ध्सरति→परिव्राट् त्सरति, परिव्राट् सरति।

८. पद के अन्त में स्थित न् से परे स् हो तो बीच में विकल्प से ध् लग जाता है[5]। तब ध् के स्थान पर त् हो जाता है[4]। यथा—
गच्छन्+सुरेन्द्रः=गच्छन् ध् सुरेन्द्रः→गच्छन्त्सुरेन्द्रः, गच्छन् सुरेन्द्रः। आसन्+सप्त=आसन् ध् सप्त→आसन्त्सप्त, आसन् सप्त।

९. पद के अन्त में स्थित न् से परे श् हो तो न् के बाद विकल्प से त् लग जाता है[6]। तब श् को छ्[7], त् को च् और न् को ञ्[8] हो जायेगा। यथा—उपदिशन्+शङ्करः=उपदिशन्त् शङ्करः→उपदिशञ्च्छङ्करः, उपदिशन् शङ्करः। हसन्+शब्दायते=हसन् त् शब्दायते→हसञ्च्छब्दायते, हसन् शब्दायते।

१०. ह्रस्व स्वर जिससे पहिले हो ऐसा जो पद के अन्त में स्थित ङ् या ण् या न् उनसे क्रमशः ङ् के बाद एक और ङ्, ण् के बाद एक और ण् और न् के बाद

---

१. नपरे नः (अष्टा. ८.३.२७)। २. ङ्णोः कुक् टुक् शरि (अष्टा. ८.३.२८)।
३. डः सि धुट् (अष्टा. ८. ३. २९) ४. खरि च (अष्टा. ८. ४. ५५)
५. नश्च (अष्टा. ८. ३. ३०) ६. शि तुक् (अष्टा. ८. ३. ३१)
७. शश्छोऽटि (अष्टा. ८. ४. ६३) ८. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा. ८. ४. ४०)

एक और न् लग जाता है, यदि परे कोई स्वर हो तो[1]। यथा—प्रत्यङ्+आत्मा =प्रत्यङ्ङात्मा। प्राङ्+ईश्वरः=प्राङ्ङीश्वरः। सुभण्+अध्यापयति= सुभण्णध्यापयति। सुगण्+ऐक्यम्=सुगण्णैक्यम्। कुर्वन् आस्ते=कुर्वन्नास्ते। पश्यन्+उपविशति=पश्यन्नुपविशति। सन्+अन्तः=सन्नन्तः।

११. सम्, परि और उप उपसर्गों से परे कृ धातु हो तो बीच में अर्थात् कृ से पहिले स् (सुट्) लग जाता है[2]। यथा—सम्+करोति→सम् स् करोति→संस्करोति। सम्+कर्ता=सम्स्कर्ता→संस्कर्ता। परि+करोति=परिस्करोति→परिष्करोति[3]। परि+कर्तुम्=परिस्कर्त्तुम्=परिष्कर्त्तुम्। उप+करोति=उपस्करोति (उपस्करोति)। उप+कर्ता=उपस्कर्ता→उपस्कर्ता।

१२. सम् उपसर्ग से परे सुट् का स् हो तो सम् के म् के स्थान पर र् हो जाता है और क्रमशः र् के स्थान पर स् होता है तथा उससे पहिले का अ (=सम् के स का अ) सानुनासिक 'अँ' हो जाता है अथवा उस अ के बाद अनुस्वार—लग जाता है अर्थात् एक पक्ष में सानुनासिक 'अँ' रहेगा और एक पक्ष में अनुस्वार सहित अ (=अं) रहेगा। इस प्रकार सम् के म् के स्थान पर जो स् होगा उसका एक पक्ष में लोप भी होगा[4]। यथा—सम्+स्कर्ता=सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता, सँस्कर्ता, संस्कर्ता। सम्+स्करोति=सँस्स्करोंति, संस्स्करोति; सँस्करोति, संस्करोति॥

१३. पुम् के म् के स्थान पर र् (और फिर उस र् के स्थान पर क्रमशः स्) हो जाता है यदि अम्परक खय् परे हो अर्थात् ऐसे वर्गीय तृतीय-चतुर्थ अक्षर परे हों जिनसे परे कोई स्वर, अन्तस्थ अथवा वर्गीय पांचवां अक्षर हो; साथ ही 'पु' का उ एक पक्ष में सानुनासिक होगा और एक पक्ष में अनुस्वार सहित हो जायेगा[5]। यथा पुम्+कामा=पुँस्कामा, पुंस्कामा। पुम्+खादकः= पुँस्खादकः, पुंस्खादकः। पुम्+चली=पुँश्चली पुंश्चली[6]। पुम्+छोपिका= पुँस्छोपिका, पुंश्छोपिका[6]। पुम्+टीका=पुँष्टीका, पुंष्टीका[7]। पुम्+तुष्टा=

---

१. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् (अष्टा. ८. ३. ३२)

२. सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे (अष्टा. ६. १. १३७)

३. परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् (अष्टा. ८. ३.७०) से स् को ष्।

४. समःसुटि; संपुंकानां सो वक्तव्यः [वा०]; अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा; अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः (अष्टा. ८. ३. ५; ;२;४); समो वा लोपमेके [महाभाष्य ८.३.५]

५. पुमः खय्यम्परे (अष्टा. ८. ३. ६)

६. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा. ८. ४. ४०) से स् के स्थान पर श्।

७. ष्टुना ष्टुः (अष्टा. ८. ४. ४१) से स् के स्थान पर ष्।

पुँस्तुष्टा, पुंस्तुष्टा। पुम्+थुडित्री=पुँस्थुडित्री, पुंस्थुडित्री; पुम्+पुत्रः=पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः। पुम्+फलम्=पुँस्फलम्, पुंस्फलम्॥

१४. पद के अन्त में स्थित न् के स्थान पर र् (→:, स्) हो जाता है यदि अम्परक च् छ् ट् ठ् त् या थ् परे हो; साथ ही उस न् से पूर्व का अच् पूर्ववत् सानुनासिक अथवा अनुस्वारसहित हो जायेगा[1], किन्तु यह नियम 'प्रशान्' शब्द में लागू नहीं होगा। यथा—

कस्मिन्+चित्=कस्मिँश्चित्, कस्मिंश्चित्। महान्+छात्रः=महाँश्छात्रः; महांश्छात्रः। पिबन्+टिट्टिभः=पिबँष्टिट्टिभः, पिबंष्टिट्टिभः। ज्यायान्+ठारः (=बर्फ)=ज्यायाँष्ठारः, ज्यायांष्ठारः। यस्मिन्+तडागे=यस्मिँस्तडागे, यस्मिंस्तडागे।+महान्+थूत्कारः=महाँस्थूत्कारः, महांस्थूत्कारः।

१५. पुँल्लिङ्ग किम् शब्द की द्वितीया का बहुवचन 'कान्' जब दोबार प्रयुक्त होगा अर्थात् 'कान् कान्' ऐसा प्रयोग होगा तब पहिले 'कान्' के न् के स्थान पर र् (:, स्) होगा और उससे पहिले के 'का' का आ सानुनासिक अथवा अनुस्वार सहित होगा[2]। यथा—

कान् कान्=काँस्कान्, कांस्कान् [=किन किन को]

१६. स् से परे या पहिले श् या चवर्गीय अक्षर हो तो उस स् के स्थान पर श् हो जाता है; इसी प्रकार तवर्गीय अक्षर से परे या पहिले श् या चवर्गीय अक्षर हो तो उस तवर्गीय अक्षर के स्थान पर चवर्गीय अक्षर हो जाता है[3]। यथा—

छात्रस्+शेते=छात्रश्शेते। तेजस्+चीयते=तेजश्चीयते। चरणस्+छाद्यते=चरणश्छाद्यते। सर्वजित्+शोभते=सर्वजिच्छोभते[4]। सत्+चिदानन्दः=सच्चिदानन्दः। कश्चित्+छिनत्ति=कश्चिच्छिनत्ति। वहत्+जलम्=वहज्जलम्। पतत्+झरः [=झरना]—पतज्झरः। शरद्+चन्द्रः=शरच्चन्द्रः। तद्+छदिः=तच्छदिः। दरद् [=पर्वत]+जलम्=दरज्जलम्। दृषद्+झटिति=दृषज्झटिति। यज्+नः=यज्ञः [=यज्ञः]। याच्+ना=याच्ञा॥

१७. किन्तु श् के बाद तवर्गीय अक्षर हो तो उस तवर्गीय अक्षर के स्थान पर चवर्गीय अक्षर नहीं होता[5]। यथा—

प्रश्+नः=प्रश्नः। विश्नः।

---

१. नश्छव्यप्रशान (अष्टा. ८. ३. ७) २. कानाम्रेडिते (अष्टा० ८.३.१२)

३. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा० ८.४.४०)

४. शश्छोऽटि (अष्टा० ८.४.६३) से श् के स्थान पर छ्।

५. शात् (अष्टा० ८.४.४४)

१८. स् से परे या पहिले ष् या टवर्गीय अक्षर हो तो उस स् के स्थान पर ष् हो जाता है; इसी प्रकार तवर्गीय अक्षर से परे या पहिले ष् या टवर्गीय अक्षर हो तो उस तवर्गीय अक्षर के स्थान पर टवर्गीय अक्षर हो जाता है[1]। यथा—
ऋतुस्+षष्ठः=ऋतुष्षष्ठः। तीक्ष्णस्+टङ्कः=तीक्ष्णष्टङ्कः। कठोरस्+ठवर्णः =कठोरष्ठवर्णः। तीव्रस्+डिण्डिमघोषः=तीव्रष्डिण्डिमघोषः। पशुस्+ ढौकते=पशुष्ढौकते। पिष्+तम्=पिष्टम्। तद्+टीका=तट्टीका। उत्+ डीनः=उड्डीनः। जिष्+नुः=जिष्णुः। कृष्+नः=कृष्णः। ददत्+ढौकते= ददड् ढौकते।

१९. किन्तु पद के अन्त में स्थित टवर्गीय अक्षर से परे यदि स् या तवर्गीय अक्षर होगा तो उसको क्रमशः ष् या टवर्गीय अक्षर नहीं होगा[2]। यथा—
षट्+सन्ति=षट् सन्ति। परिव्राट्+तिष्ठति=परिव्राट् तिष्ठति। सम्राट्+ ददाति=सम्राड् ददाति। विराट्+धारयति=विराड् धारयति। सर्वराट्+ नयति=सर्वराट् नयति॥

पर यह निषेध 'नाम्' (=नुट्सहित षष्ठी-बहुवचन), 'नवतिः' और 'नगरी' इन पर प्रभावी नहीं होगा[2]। अर्थात् इनके न् को ण् नियम (१८) से हो जायेगा। यथा—
षट्+नाम्=षण्णाम्। षट्+नवतिः=षण्णवतिः। षट्+नगर्यः=षण्णगर्यः॥

२०. तवर्गीय अक्षर के बाद ष् हो तो उस तवर्गीय के स्थान पर टवर्गीय नहीं होता[3]। यथा—
रामः हसन्+षष्ठं मोदकं भुङ्क्ते=रामः हसन् षष्ठं मोदकं भुङ्क्ते।

२१. पद के अन्त में स्थित व्यञ्जन (ह् को छोड़कर) से परे यदि कोई अनुनासिक (=ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) हो तो उस पूर्व व्यञ्जन के स्थान पर उसी के वर्ग का अनुनासिक विकल्प से हो जाता है[4]। यथा—

पृथक्+नरेन्द्रः वसति=पृथङ् नरेन्द्रः वसति, पृथक् नरेन्द्रः वसति।
उदक्+मयूरः नृत्यति=उदङ् मयूरः नृत्यति, उदक् मयूरः नृत्यति।
परिव्राट्+नरान् उपदिशति=परिव्राण् नरान् उपदिशति, परिव्राट् नरान् उपदिशति। सम्राट्+मनुष्यान् रक्षति=सम्राण् मनुष्यान् रक्षति, सम्राट् मनुष्यान्

---

१. ष्टुना ष्टुः (अष्टा० ८.४.४१)
२. न पदान्ताट्टोरनाम् [सू०]; अनाम्नवतिनगरीणामिति वक्तव्यम् [वा०] (अष्टा० ८.४.४२)
३. तोः षि (अष्टा० ८.४.४३)
४. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (अष्टा० ८.४.४५)

रक्षति । भूभृत्+नित्यं यजति=भूभृन्नित्यं यजति, भूभृत् नित्यं यजति । विपश्चित्+मन्त्रान् ब्रूते=विपश्चिन्मन्त्रान् ब्रूते, विपश्चित् मन्त्रान् ब्रूते । त्रिष्टुप्+महच्छन्दः= त्रिष्टुम्महच्छन्दः, त्रिष्टुप् महच्छन्दः ।

पर यदि अनुनासिक अक्षर, प्रत्यय का हो तो पूर्व व्यञ्जन के स्थान पर नित्य अनुनासिक हो जाता है[1] । यथा—

दिक्+मात्रम्—दिङ्मात्रम् । तत्+मात्रम्=तन्मात्रम् । चित्+मयम्= चिन्मयम् । वाक्+मयम्=वाङ्मयम् । विराट्+मयम्=विराण्मयम् ।

२२. तवर्गीय अक्षर से परे ल् हो तो उस तवर्गीय अक्षर के स्थान पर ल् हो जाता है[2] । यथा—

तत्+लीनः=तल्लीनः । उत्+लेखः=उल्लेखः । हसन्+लिखति= हसँल्लिखति ।।

२३. उत् उपसर्ग से परे स्था, स्तम्भ और स्कन्द धातु का सकार हो तो उस स् के स्थान पर पूर्वसवर्ण [=थ्→त्) हो जाता है[3] । यथा—
उत्+स्थातुम्=उत्थातुम् । उत्+स्तम्भिता=उत्तम्भिता । उत्+स्कन्दः= उत्कन्दः । उत्+स्कन्दकः=उत्कन्दकः (रोग विशेषः)

इन उदाहरणों में स् के स्थान पर जो त् (=थ्→त्) हुआ था उसका लोप हो गया है[4] ।

२४. प्रत्येक वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षर से परे यदि ह् अक्षर हो तो उस ह् के स्थान पर पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर विकल्प से हो जाता है[5] । यथा—

ऋत्विक्+होष्यति=ऋत्विग्घोष्यति, ऋत्विक् होष्यति (ऋत्विग् होष्यति) ।
यादृक्+हविः=यादृग्घविः, यादृक् हविः (यादृग् हविः) ।
मधुलिट्+हरति=मधुलिड्ढरति, मधुलिट् हरति (मधुलिड् हरति) ।
भूभृत्+हसति=भूभृद्धसति, भूभृत् हसति (भूभृद् हसति) ।
ककुप्+हितम्=ककुब्भितम्, ककुप् हितम् (ककुब् हितम्) ।

२५. प्रत्येक वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षर से परे शकार हो तो उस

---

१. यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यवचनं कर्त्तव्यम् [वा०] (अष्टा० ८.४.४५)
२. तोर्लि (अष्टा० ८.४.६०) ३. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य (अष्टा० ८.४.६१)
४. झरो झरि सवर्णे (अष्टा० ८.४.६५) ५. झयो होऽन्यतरस्याम् (अष्टा० ८.४.६२)

श् के स्थान पर विकल्प से छ् हो जाता है यदि श् से परे स्वर अथवा अन्तःस्थ (=य्, व्, र्, ल्) हो[1]। यथा—
ऋत्विक्+शोभते=ऋत्विक् छोभते, ऋत्विक् शोभते।
सम्राट्+शास्ति=सम्राट् छास्ति, सम्राट् शास्ति।
भूभृत्+शङ्कते=भूभृच्छङ्कते, भूभृत् शङ्कते।
ददत्+शौण्डः=ददच्छौण्डः, ददत् शौण्डः। दधत्+श्यति=दधच्छ्यति, दधत् श्यति। स्रक्+श्लाघ्या=स्रक्छ्लाघ्या स्रक् श्लाघ्या। पृथक्+श्रीणाति=पृथक्छ्रीणाति। परिव्राट्+श्वसिति=परिव्राट् छ्वसिति, परिव्राट् श्वसिति॥

२६. अन्तःस्थ और अनुनासिक अक्षरों को छोड़कर अन्य किसी व्यञ्जन से परे यदि किसी वर्ग का प्रथम अथवा द्वितीय अक्षर हो तो, उस पूर्व व्यञ्जन के स्थान पर उसी वर्ग का प्रथम अक्षर हो जाता है[2]। यथा—

भेद्+तुम्=भेत्तुम्। युयुध्+सते=युयुत्सते। आलिभ्+सते=आलिप्सते)।

२७. परन्तु पूर्वोक्त व्यञ्जन से परे यदि कुछ नहीं होता है अर्थात् वहां अवसान (विराम) होता है तो उस व्यञ्जन के स्थान पर विकल्प से प्रथम अक्षर होता है, पक्ष में तृतीय अक्षर हो जायेगा[3]। यथा—
वाक्, वाग्। मधुलिट्, मधुलिड्। रामात्, रामाद्। [त्रिष्टुभ्→] त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब्।

२८. अनुस्वार से परे ऊष्म (श्, ष्, स्, ह्) और रेफ को छोड़कर अन्य कोई भी व्यञ्जन हो तो उस अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण अर्थात् परले अक्षर के वर्ग का पाँचवा अक्षर हो जाता है[4]। यथा—
शंकते=शङ्कते। वांछति=वाञ्छति। गुंजति=गुञ्जति। लंठति=लुंठति। चंडः=चण्डः। चिंतयति=चिन्तयति। वंदे=वन्दे। मंथति=मन्थति। स्कंभते=स्कम्भते। चुंबति=चुम्बति। पिंवति=पिंँवति।

२९. पद के अन्त में स्थित अनुस्वार से परे यदि कोई ऊष्मवर्जित तथा रेफवर्जित व्यञ्जन परे हो तो उस अनुस्वार के स्थान पर विकल्प से परसवर्ण (अर्थात् परवर्ती अक्षर के वर्ग का पञ्चम अक्षर) होता है[5]। यथा—
भोजनं करोषि=भोजनङ्करोषि, भोजनं करोषि। विद्यालयं गच्छसि=विद्यालय-

---

१. शश्छोऽटि (अष्टा० ८.४.६३) २. खरि च (अष्टा० ८.४.५५)
३. वावसाने (अष्टा. ८.४.५६)।
४. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (अष्टा. ८.४.५८)।
५. वा पदान्तस्य (अष्टा. ८.४.५९)।

ङ्गच्छसि, विद्यालयं गच्छसि। तृणं+चरति=तृणञ्चरति, तृणं चरति। रिपुं+जयति=रिपुञ्जयति, रिपुं जयति। प्रमाणं+टीकते=प्रमाणण्टीकते; प्रमाणं टीकते। नदीं+तरति=नदीन्तरति, नदीं तरति। धनं+ददाति=धनन्ददाति, धनं ददाति। स्तनं+धयति=स्तनन्धयति, स्तनं धयति। वेदं+पठति=वेदम्पठति, वेदं पठति। पायसं+भुङ्क्ते=पायसम्भुङ्क्ते, पायसं भुङ्क्ते। ग्रामं+याति=ग्रामँय्याति, ग्रामं याति। भारं+वहति=भारँव्वहति, भारं वहति। शाखां+लुनाति=शाखाँल्लुनाति। शाखां लुनाति।

३०. किसी वर्ग के चतुर्थ अक्षर से परे किसी भी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ अक्षर हो तो उस पहिले चतुर्थ अक्षर के स्थान पर उसी वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है[1]। यथा—

दुघ्+धम्=दुग्धम्। बुध्+धिः=बुद्धिः। लभ्+धः=लब्धः। आरभ्+धा=आरब्धा।

३१. ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर से परे छ् हो तो उस स्वर के बाद और छ् से पहिले त् (तुक्) लग जाता है[2]। फिर त् को च् हो जाता है[3]। यथा—

स्व+छाया=स्वच्छाया। तृण+छदिः=तृणच्छदिः। स्व+छन्दः=स्वच्छन्दः। चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते। ह्री+छति=ह्रीच्छति। म्ले+छति=म्लेच्छति।

किन्तु पद के अन्त में स्थित दीर्घ स्वर से परे यदि छ् होगा तो बीच में विकल्प से त् लगेगा[4]। यथा—

कुटी+छाया=कुटीच्छाया, कुटीछाया। ग्रीवा+छेदः=ग्रीवाच्छेदः, ग्रीवाछेदः। वधू+छविः=वधूच्छविः, वधूछविः। नौ+छिद्रम्=नौच्छिद्रम्, नौछिद्रम्।

पर पदान्त-दीर्घ के त् का विकल्प, पदान्त के आङ् (आ) और माङ् (मा) पर प्रभावी नहीं होता[5]। अर्थात् वहाँ तो नित्य त्, नियम (३१) से हो ही जायेगा। यथा—

आ+छादयति=आच्छादयति। मा+छैत्सीः=माच्छैत्सीः।

विसर्ग-सन्धि

१. पद के अन्तिम स् के स्थान पर तथा सजुष् के ष् के स्थान पर र् (रु) हो जाता है[6]। यथा—

---

१. झलां जश् झशि (अष्टा. ८.४.५३)।

२. छे च; दीर्घात् (अष्टा. ६.१.७३.;७५)।

३. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा. ८.४.४०)। ४. पदान्ताद्वा (अष्टा. ६.१.७६)।

५. आङ्माङोश्च (अष्टा. ६.१.७४)। ६. ससजुषो रुः (अष्टा. ८.२.६६)।

कविस् + अगायत् = कविरगायत् । चमूस् + उत्तिष्ठति = चमूरुत्तिष्ठति । पितुस् + इच्छा = पितुरिच्छा । विष्णोस् + माया = विष्णोर्माया । रवेस् + गतिः रवेर्गतिः ।

२. यदि र् से परे, खर् अर्थात् वर्ग का प्रथम या द्वितीय अक्षर अथवा श् ष् स् हो तो र् के स्थान पर विसर्ग हो जाते हैं । तथा र् अवसान में (विराम में) हो तब भी र् के स्थान पर विसर्ग हो जाते हैं[1] । यथा—

रामर् + खनति = रामः खनति → राम≍खनति[2] । साधुर् + चलति = साधुः + चलति → साधुस्चलति[3] → साधुश्चलति[4] ।

वर्धकिर् + छिनत्ति = वर्धकिः छिनत्ति → वर्धकिस्छिनत्ति → वर्धकिश्छिनत्ति ।

मीमांसायार् + टीका = मीमांसायाः टीका → मीमांसायास्टीका → मीमांसाया[5]-ष्टीका । द्वितीयर् + ठकारः = द्वितीयः ठकारः → द्वितीयस्ठकारः → द्वितीय-ष्ठकारः[5] । साधुर् + तरति = साधुः तरति → साधुस्तरति । बालार् + पठन्ति = बालाः पठन्ति → बाला≍पठन्ति[2] । रामर् = रामः रामेभ्यर् = रामेभ्यः । भवतर् = भवतः । भूयार् = भूयाः ।

३. विसर्ग से परे खर् (= वर्गों के प्रथम-द्वितीय अक्षर अथवा श, ष्, स् हो तो विसर्ग के स्थान पर स् हो जाता है ।[6] यथा—

साधुः + चलति = साधुस्चलति → साधुश्चलति । मीमांसायाः + टीका = मीमांसायास्टीका → मीमांसायाष्टीका[5] । साधुः + तरति = साधुस्तरति ।

४. किन्तु विसर्ग से परे श्, ष्, स् हो तो उस विसर्ग के स्थान पर स् विकल्प से होता है अर्थात् एक पक्ष में विसर्ग ही रहता है ।[7] यथा—

कविः + शोभते = कविस्शोभते → कविश्शोभते[8], कविः शोभते । मोहनः + षष्ठः = मोहनस्षष्ठः → मोहनष्षष्ठः, मोहनः षष्ठः । सर्पः + सरति = सर्पस्सरति, सर्पः सरति ।

किन्तु विसर्ग के परे यदि ऐसा श् या ष् या स् हो जिसके बाद कोई वर्गीय प्रथम द्वितीय अक्षर हो तो उस विसर्ग का विकल्प से लोप भी हो जाता है ।[9]

---

१. खरवसानयोर्विसर्जनीयः (अष्टा. ८.३.१५) । जिह्वामूलीय/

२. कुप्वो≍क≍पौ च (अष्टा. ८.३.३७) से विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय/उपध्मानीय आदेश हुआ ।

३. विसर्जनीयस्य सः (अष्टा. ८.३.३४) । ४. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा. ८.४.४०) ।

५. ष्टुना ष्टुः (अष्टा. ८.४.४१) से स् को ष्

६. विसर्जनीयस्य सः (अष्टा. ८.३.३४) ७. वा शरि (अष्टा. ८.३.३६)

८. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा ८.४.४०)

९. खर्परे शरि वा लोपो वक्तव्यः [वा.] (अष्टा. ८.३.३६)

अर्थात् एक बार विसर्ग का लोप एक बार विसर्ग और एक बार विसर्ग के स्थान पर स् आदेश रहेगा। यथा—

वृक्षाः+स्थातारः=वृक्षा स्थातारः, वृक्षास्स्थातारः, वृक्षाः स्थातारः। वृद्धः+स्खलति=वृद्ध स्खलति, वृद्धस्स्खलति, वृद्धः स्खलति। बालकः+ष्ठीवति=बालक ष्ठीवति, बालकस्ष्ठीवति,→बालकष्ष्ठीवति, बालकः ष्ठीवति। उपासकः+स्तौति=उपासक स्तौति, उपासकस्स्तौति, उपासकः स्तौति। जनः+स्कुनाति=जन स्कुनाति, जनस्स्कुनाति, जनः स्कुनाति। हविः+प्साति=हवि प्साति, हविस्प्साति, हविःप्साति।

५. विसर्ग से परे यदि ऐसा खर् (=वर्गीय प्रथम-द्वितीय अक्षर···) हो जिसके बाद श्, ष्, स् हो तो उस विसर्ग के स्थान पर स् आदेश नहीं होता अपितु विसर्ग ही रहते हैं[1]। यथा—

रजकः+क्षालयति=रजकः क्षालयति। दृढः+त्सरुः=दृढः त्सरुः। कपिः+प्साति फलानि=कपिः प्साति फलानि।

६. विसर्ग से परे क या ख हो तो उस विसर्ग के स्थान पर विकल्प से जिह्वामूलीय (ᳵक) हो जाता है, इसी प्रकार विसर्ग से परे प या फ हो तो विसर्ग के स्थान पर विकल्प से उपध्मानीय (ᳶप) हो जाता है।[2] यथा—

विप्रः+कथयति=विप्रᳵकथयति, विप्रः कथयति।

श्रमिकः खनति=श्रमिकᳵखनति, श्रमिकः खनति।

छात्रः+पठति=छात्रᳶपठति, छात्रः पठति।

वृक्षः+फलति=वृक्षᳶफलति, वृक्षः फलति।

७. किन्तु विसर्ग से परे यदि पाश, कल्प, क और काम्य ये प्रत्यय हों तो विसर्ग के स्थान पर स् हो जाता है[3]। यथा—

पयः+पाशम्=पयस्पाशम् (=विकृत दूध)। रजः+कल्पम्=रजस्कल्पम् (=लगभग धूल बना हुआ)। पयः+कम्=पयस्कम् (=निन्द्य दूध)। यशः+काम्या=यशस्काम्या (=कीर्ति की कामना)

८. गतिसंज्ञा वाले[4] नमस् और पुरस् के विसर्ग से परे क, ख या प, फ हों तो उस विसर्ग के स्थान पर भी स् हो जाता है।[5] यथा—

---

१. शर्परे विसर्जनीयः (अष्टा. ८.३.३५) २. कुप्वोᳵकᳶपौ च (अष्टा. ८.३.३७)

३. सोऽपदादौ (अष्टा. ८.३.३८) 'पाशकल्पककाम्येषु' [इष्टिः] (अष्टा. ८.३.३८)।

४. 'साक्षात्प्रभृतीनि च' (अष्टा. १.४.७४) से नमस् की और 'पुरोऽव्ययम्' (अष्टा. १.४.६७) से पुरस् की गति सञ्ज्ञा होती है।

५. नमस्पुरसोर्गत्योः (अष्टा. ८.३.४०)

नमः+कारः=नमस्कारः। नमः+कर्तव्यम्=नमस्कर्तव्यम्। पुरः+कारः=पुरस्कारः। पुरः+कर्त्ता=पुरस्कर्त्ता।

९. समास में ह्रस्व अ के बाद स्थित विसर्ग से परे कृ, कम्, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी शब्द हों तो उस विसर्ग के स्थान पर स् हो जाता है, पर वह विसर्ग किसी अव्यय शब्द का न हो और उत्तरपद का न हो।[1] यथा—

अयः+कारः=अयस्कारः (लुहार)। पयः+कामः=पयस्कामः (=दूध की कामना वाला)। पयः+कंसः=पयस्कंसः (=दूध भरा कटोरा)। अम्भः+कुम्भः=अम्भस्कुम्भः (=जल भरा घड़ा)। अयः+पात्रम्=अयस्पात्रम् (=लोहे का बर्त्तन)। अयः+कुशा=अयस्कुशा (लोहे की बनी लगाम अर्थात् जंजीर वाली लगाम)। अयः+कर्णी=अयस्कर्णी (=खूंटी के समान कानों वाली)।

१०. समास में अधस् और शिरस् शब्द के विसर्ग से परे 'पद' शब्द हो तो उस विसर्ग के स्थान पर स् हो जाता है।[2] यथा—

अधः+पदम्=अधस्पदम्। शिरः+पदम्=शिरस्पदम्। अधः+पदी=अधस्पदी। शिरः+पदी=शिरस्पदी।

११. इ अथवा उ के बाद स्थित विसर्ग से परे पाश, कल्प, क अथवा काम्य हो तो उस विसर्ग के स्थान पर ष् हो जाता है[3]। यथा—

सर्पिः+पाशम्=सर्पिष्पाशम् (=निन्दनीय घी)। त्रपुः+पाशम्=त्रपुष्पाशम् (=खराब रांगा)। हविः+कल्पम्=हविष्कल्पम् (=हवि जैसा)। चक्षुः+कल्पम्=चक्षुष्कल्पम् (=आँख के समान)। धनुः+कम्=धनुष्कम् (=छोटा धनुष)। ज्योतिः+कम्=ज्योतिष्कम् (=धीमा प्रकाश)। सर्पिः+काम्यति=सर्पिष्काम्यति (=घी की कामना करता है)। आयुः+काम्या=आयुष्काम्या (=आयु की कामना)।

१२. निस्, दुस्, बहिस्, आविस्, चतुर् और प्रादुस् इन शब्दों के विसर्ग से परे क, ख या प, फ हो तो उस विसर्ग के स्थान पर ष् हो जाता है[4]। यथा—

निः+कृतम्=निष्कृतम्। निः+पीतम्=निष्पीतम्। दुः+कृतम्=दुष्कृतम्। दुः+प्रतीकारः=दुष्प्रतीकारः। बहिः+कारः=बहिष्कारः। बहिः+प्रकोष्ठः==बहिष्प्रकोष्ठः (=बाहर का कमरा)। आविः+कारः=आविष्कारः। आविः+पूतः=आविष्पूतः (=सामने शुद्ध किया हुआ)। चतुः+कलम्=चतुष्कलम् (=चार कलाओं वाला)। चतुः+पीतम्=चतुष्पीतम् =(चार

---

१. अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य (अष्टा. ८.३.४६)

२. अधः शिरसीपदे (अष्टा० ८.३.४७)

३. इणः षः (अष्टा० ८.३.३९)

४. इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य (अष्टा० ८,३.४१)

पेयों का पीना)। प्रादुः+करणम्=प्रादुष्करणम् (प्रकट करना)। प्रादुः+परः =प्रादुष्परः (=प्रकट करने में लगा हुआ)।

१३. कृत्वसुच् अर्थ वाले अर्थात् क्रिया की गणना करने के अर्थ में प्रसिद्ध द्विस् त्रिस् और चतुर् इन शब्दों के विसर्ग से परे क-ख या प-फ हों तो उस विसर्ग के स्थान पर विकल्प से ष् होता है[1]। यथा—

द्विः+करोति=द्विष्करोति, द्विःकरोति। द्विःखनति=द्विष्खनति, द्विःखनति। त्रिः+किरति=त्रिष्किरति, त्रिःकिरति। त्रिः+खौनाति=त्रिष्खौनाति, त्रिःखौनाति। चतुः+क्रीणाति=चतुष्क्रीणाति, चतुःक्रीणाति। चतुः+खादति =चतुष्खादति, चतुःखादति। द्विः+पठति=द्विष्पठति, द्विःपठति। त्रिः+फलति=त्रिष्फलति, त्रिःफलति। चतुः+पचति=चतुष्पचति, चतुःपचति।

१४. इस्-प्रत्ययान्त और उस्-प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्ग से परे क, ख या प, फ हो तो उस विसर्ग के स्थान पर विकल्प से ष् हो जाता है। पर यह नियम तभी लागू होगा जब दोनों शब्दों का आपस में अपेक्षा-सम्बन्ध हो अर्थात् वे दोनों एक दूसरी की अपेक्षा रखते हों[2]। यथा—

छदिः+करोति=छदिष्करोति, छदिःकरोति। छदिः+खनति=छदिष्खनति, छदिःखनति। सर्पिः+पिबति=सर्पिष्पिबति, सर्पिःपिबति। ज्योतिः+फेलति= ज्योतिष्फेलति, ज्योतिःफेलति। त्रपुः+क्रीणाति=त्रपुष्क्रीणाति, त्रपुःक्रीणाति। यजुः+ख्याति=यजुष्ख्याति, यजुःख्याति। धनुः+पाति=धनुष्पाति, धनुःपाति। चक्षुः+फुल्लति=चक्षुष्फुल्लति, चक्षुःफुल्लति।

१५. किन्तु ये इस्-प्रत्ययान्त और उस्-प्रत्ययान्त शब्द यदि समास में हों और इनके विसर्ग से परे क, ख या प, फ हों तो उस विसर्ग के स्थान पर नित्य ष् हो जायेगा[3], इसमें एक शर्त यह है कि ये इस्-प्रत्ययान्त या उस्-प्रत्ययान्त शब्द समास के आरम्भ में होने चाहियें अर्थात् इनसे पूर्व दूसरा पद उस समास में नहीं होना चाहिये। यथा—

ज्योतिः+किरणः=ज्योतिष्किरणः (प्रकाश की किरण)।
अर्चिः+खेलनम्=अर्चिष्खेलनम् (लपटों का खेल)
सर्पिः+पानाय=सर्पिष्पानाय (घी पीने के लिये)
छदिः+फेलिता=छदिष्फेलिता (छत पर फैलने वाला)।

---

१. द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे (अष्टा० ८.३.४३)
२. इसुसोः सामर्थ्ये (अष्टा० ८.३.४४)
३. नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य (अष्टा० ८.३.४५)

वपुः+कुम्बिता=वपुष्कुम्बिता (शरीर को ढकने वाला)
धनुः+खण्डनम्=धनुष्खण्डनम् (धनुष के टुकड़े करना)
यजुः+पारायणम्=यजुष्पारायणम् (यजुर्वेद का लगातार पाठ)
त्रपुः+फलनम्=त्रपुष्फलनम् (रांगे का पिघलना)

१६. कुछ अन्य शब्दों में भी विसर्ग से परे क, ख या प, फ हो तो उस विसर्ग के स्थान पर स् (अथवा इ-पूर्वक विसर्ग के स्थान पर ष्) हो जाता है[1]। यथा—
कः+कः=कस्कः (कौन कौन ?)। कौतः+कुतः=कौतस्कुतः (=कुतः+कुतः =कुतस्कुतः→कौतस्कुतः)। भ्रातुः+पुत्रः=भ्रातुष्पुत्रः(=भतीजा) शुनः+कर्णः=शुनस्कर्णः (=कुत्ते का कान)। मेदः+पिण्डः=मेदस्पिण्डः (चर्बी का पिण्डा)। आदि।

१७. तिरस् शब्द के विसर्ग से परे क, ख या प, फ हो तो उस विसर्ग के स्थान पर विकल्प से स् होता है[2]। यथा—
तिरः+कर्ता=तिरस्कर्ता, तिरःकर्ता। तिरः+प्रेक्षणम्=तिरस्प्रेक्षणम्, तिरःप्रेक्षणम्।

१८. ह्रस्व अकार के बाद स्थित र् को (=रु के र् को) उ हो जाता है यदि उस र् के बाद भी ह्रस्व अ हो तो[3]। यथा—
देवर्+अर्चनीयः=देव उ+अर्चनीयः (→देवो[4] अर्चनीयः→देवोऽर्चनीयः[5])
कर्+अयम्=क उ अयम् (→को[4] अयम्→कोऽयम्[5])।

१९. ह्रस्व अकार के बाद स्थित र् को तब भी उ हो जाता है जब उस र् से परे हश् (=ह्, अन्तःस्थ वर्ण, वर्गीय तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण) हो तो[6]। यथा→
राम र्+गच्छति=राम उ गच्छति (→रामो[4] गच्छति)। बाल र्+हसति=बाल उ हसति (→बालो[4] हसति)। अर्जुनर्+जयति=अर्जुनउ जयति (→अर्जुनो[4] जयति)। नृप र्+दास्यति=नृपउ दास्यति (नृपो[4] दास्यति)। घटर्+नास्ति=घट उ नास्ति (→घटो[4] नास्ति)।

२०. अकारान्त शब्द, भो शब्द, भगो शब्द और अघो शब्द के बाद स्थित र् के स्थान पर य् हो जाता है यदि उस र् से परे अश् (=कोई भी स्वर, ह्, अन्तःस्थ वर्ण; तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण हो तो[7]। पदान्त में स्थित य् का लोप हो जाता

---

१. कस्कादिषु च (अष्टा० ८.३.४८) २. तिरसोऽन्यतरस्याम् अष्टा० ८.३.४२)
३. अतोरोरप्लुतादप्लुते (अष्टा० ६.१.११३)
४. आद् गुणः (अष्टा० ६.१.८७) से गुणैकादेश।
५. एङः पदान्तादति (अष्टा० ६.१.१०९)। ६. हशि च (अष्टा० ६.१.११४)
७. भोभगोअघोअपूर्वस्ययोऽशि (अष्टा० ८.३.१७)

है यदि व्यञ्जन परे हों[1] और स्वर परे हों तो य् का लोप विकल्प से होता है[2]। यथा→

पुरुषर्+आगच्छति=पुरुषयागच्छति, पुरुष आगच्छति।
नृपा र्+दास्यन्ति=(नृपाय् दास्यन्ति→)नृपा दास्यन्ति।
जना र्+हसन्ति=(जनाय् हसन्ति→) जना हसन्ति।
छात्रा र्+भुञ्जते=(छात्राय् भुञ्जते→) छात्रा भुञ्जते)
पण्डितर्+ईक्षते=पण्डितयीक्षते, पण्डित ईक्षते।
वृक्षर्+एधते=वृक्षयेधते, वृक्ष एधते।

भोर्+अशान=भोयशान, भो अशान। भगोर्+अटिष्यसि=भगोयटिष्यसि, भगो अटिष्यसि आदि।

२१. अहन् शब्द के न् को रु (=र्) होता है यदि वह पदान्त में हो[3]। यथा— अहन्+भ्याम्= (अहरुभ्याम्→अहर्भ्याम् = अहउभ्याम्[4]→) अहोभ्याम्[5]। अहन्+भिस्=अहरुभिस्→अहर्भिस्→अहउभिस्→) अहोभिः।

२२. किन्तु अहन् शब्द से परे सुप् प्रत्ययों को छोड़कर अन्य कोई शब्द होगा तो अहन् के न् के स्थान पर सीधा र् ही होगा[6]। सीधा र् होने से यहाँ र् के स्थान पर उ नहीं होगा। यथा—अहन्+अहः=अहरहः। अहन्+गणः=अहर्गणः। अहन्+भोजकः=अहर्भोजकः। अहन्+गामी=अहर्गामी।

२३. किन्तु रूप, रात्रि और रथन्तर शब्द परे रहने पर तो अहन् के न् के स्थान पर रु (=र्) ही होगा[7]। और तब उसके र् के स्थान पर उ (नियम १९ से) हो जायेगा। यथा–अहन्+रूपम्=(अहरु रूपम्→अहर् रूपम्→अहउ रूपम्→) अहोरूपम्। अहन्+रात्रः= (अहरुरात्रः→अहर्रात्रः→अहउरात्रः→) अहोरात्रः। अहन्+रथन्तरम्→ (अहरुरथन्तरम्→ अहर् रथन्तरम्→अहउरथन्तरम्) अहोरथन्तरम्।

२४. अहर् आदि शब्दों के र् के स्थान पर विकल्प से र् ही हो जाता है, यदि पति

---

१. हलि सर्वेषाम् (अष्टा० ८.३.२२) २. लोपःशाकल्यस्य (अष्टा० ८.३.१९)
३. अहन् (अष्टा. ८. २. ६८)
४. हशि च (अष्टा. ६. १. ११४) से रु के र् के स्थान पर उ।
५. आद् गुणः (अष्टा. ६. १. ८७) से गुण एकादेश।
६. रोऽसुपि (अष्टा. ८. २. ६९)
७. अह्नो रुविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम् [वा०] (अष्टा. ८. २. ६८)

आदि शब्द परे हों[1]। पक्ष में विसर्ग रहेंगे। यथा—अहर्+पतिः=अहर्पतिः, अहःपतिः। गीर्+पतिः=गीर्पतिः, गीःपतिः। धूर् पतिः=धूर्पतिः, धूःपतिः।

२५. सप्तमी का बहुवचन सु (=सुप्) परे रहने पर रु के र् के स्थान पर ही विसर्ग होता है सामान्य र् के स्थान पर नहीं[2]। यथा—[पयस्+सु→पयरु+सु→] पयर्+सु=पयःसु। [सर्पिस्+सु→सर्पिरु+सु→] सर्पिर्+सु→सर्पिःसु=सर्पिःषु। अन्य र् के स्थान पर विसर्ग नहीं होता→गीर्+सु=गीर्सु →गीर्षु। धूर्+सु=धूर्सु=धूर्षु। आदि।

२६. र् के बाद र् हो तो पहिले र् का लोप हो जाता है[3]। और जहां ढ् या र् का लोप हुआ हो वहाँ उस लोप से पूर्ववर्त्ती स्वर को दीर्घ हो जाता है[4]। यथा—पुनर्+रमते=पुन रमते→पुना रमते। प्रातर्+राजते=प्रात राजते→प्राता राजते। शिशुर्+रोदिति=शिशु रोदिति→शिशू रोदिति। गुरुर्+रुग्णः=गुरु रुग्णः=गुरू रुग्णः। लिढ्+ढः=लिढः→लीढः। आदि।

२७. एतत् और तत् अर्थात् एष और स इन शब्दों के बाद स्थित प्रथमा के एकवचन सु के स् का लोप हो जाता है यदि व्यञ्जन परे हो[5] किन्तु वहाँ नञ्समास अथवा अकच् प्रत्यय का विषय नहीं होना चाहिये। यथा—

एष स्+ददाति=एष ददाति। एष स्+भुङ्क्ते=एष भुङ्क्ते। स स्+गच्छति =स गच्छति। स स्+पठति=स पठति।

२८. तत् शब्द के (=स शब्द के) बाद स्थित सु के स् का लोप हो जाता है यदि स्वर परे हो और स्लोप होने से यदि पादपूर्त्ति करना इष्ट हो[6]। यथा—

सस् एष दाशरथी रामः, सस् एष राजा युधिष्ठिरः=

'सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः' ॥

सस् एष कर्णो महात्यागी, सस् एष भीमो महाबलः=

'सैष कर्णो महात्यागी, सैष भीमो महाबलः' ॥

———

१. अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफो वाच्यः [वा०] (अष्टा० ८.२।७०)

२. रोः सुपि (अष्टा. ८. ३. १६)

३. रो रि (अष्टा. ८. ३. १४)

४. ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (अष्टा. ६. ३. १११)

५. एतत्तदोः सुलोपो ऽकोरनञ्समासे हलि (अष्टा. ६. १. १३२)

६. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् (अष्टा. ६. १. १३४)

समास-प्रकरण

अब मैं समास का विषय समझाता हूं। दो या दो से अधिक पदों के संक्षेप को समास कहते हैं। समास के लिए कम से कम दो शब्दों का होना आवश्यक है। पहले शब्द को पूर्वपद और बाद वाले शब्द को उत्तरपद कहते हैं। ये दोनों पद समर्थ होने चाहिएँ अर्थात् परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होने चाहियें। समर्थ पदों का ही समास होता है असमर्थों का नहीं।[१] समास में पूर्वपद की विभक्ति का प्रायः लोप हो जाता है,[२] क्योंकि समास के घटक पदों को मिलाने पर उनकी एक 'प्रातिपदिक' सञ्ज्ञा हो जाती है[३]। इस प्रकार विभक्ति का लोप करने से उसका आकार छोटा हो जाता है अर्थात् वह संक्षिप्त हो जाता है, किन्तु अर्थ वही रहता है। यथा—सभायाः पतिः=सभापतिः। समास वाले शब्द को (=समस्त शब्द को) पूर्व वाली अवस्था में अर्थात् विभक्तियुक्त अवस्था में रखना 'विग्रह' कहलाता है। यथा—'सभापति' इस समस्त शब्द का विग्रह होगा—सभायाः पतिः।

दो या दो से अधिक शब्दों का जब इस प्रकार संक्षेप करके (=समास करके) उनका एक शब्द बनाया जाएगा तो प्रश्न उठता है कि उस समस्त शब्द में किसकी प्रधानता रहेगी? पूर्वपद की अथवा उत्तरपद की? इसका उत्तर यह है कि भिन्न भिन्न समासों में भिन्न भिन्न पदों की प्रधानता रहती है और इस दृष्टि से सम्पूर्ण समास वाले शब्दों को चार भागों में बांटा जा सकता है।

१. पूर्वपदार्थप्रधान। जहाँ पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता रहती हो, जैसे—उपकुम्भम्, यथाशक्ति, प्रतिशतम् आदि।
२. उत्तरपदार्थप्रधान। जहां उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता हो। जैसे—सभापतिः, दन्तदष्टः, वृकभयम्, गणितनिपुणः, वीरपुरुषः आदि।
३. उभयपदार्थप्रधान। जहाँ पूर्वपद और उत्तरपद दोनों के अर्थों की प्रधानता हो। जैसे—रामलक्ष्मणौ, युधिष्ठिरभीमार्जुनाः, निम्ब-कुटज-लकुच-न्यग्रोधाः।
४. अन्यपदार्थप्रधान। जहाँ पूर्वपद और उत्तरपद से भिन्न किसी अन्य पद के अर्थ की प्रधानता हो। जैसे—नीलभवनः, पीताम्बरः, दिगम्बरः, ऊढभार्यः आदि।

इन चार विभागों के कारण ही समास मुख्यरूप से चार प्रकार के माने जाते हैं। (१) अव्ययीभाव (२) तत्पुरुष (३) द्वन्द्व (४) बहुव्रीहि।

अव्ययीभाव समास में प्रायः पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता होती है। तत्पुरुष समास में प्रायः उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है। द्वन्द्व समास में प्रायः दोनों

---

१. समर्थः पदविधिः (अष्टा. २.१.१) २. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (अष्टा. २.४.७१)
३. कृत्तद्धितसमासाश्च (अष्टा. १.२.४६)

की अर्थात् पूर्वपद और उत्तरपद दोनों के अर्थों की प्रधानता रहती है। बहुव्रीहि समास में प्रायः समास के पदों से भिन्न अन्य पद के अर्थ की प्रधानता रहती है। इस प्रकार ये समास के चार विभाग हुए। कुछ विद्वानों के मत में समास का पांचवां प्रकार भी है, जिसे वे 'केवल समास' कहते हैं। जैसे भूतपूर्वः, वागर्थाविव आदि में 'केवल समास' है।

इन समासों की पहचान, पूर्वप्रदत्त पूर्वपदार्थप्रधानता आदि से कर लेनी चाहिये। कहीं कहीं इनका अपवाद भी देखने को मिलता है। यथा—उन्मत्तगङ्गं देशः यहां उन्मत्तगङ्गं में अव्ययीभाव समास है किन्तु पूर्वपदार्थप्रधानता नहीं है अपितु अन्य-पदार्थप्रधानता है। अतिमालः (=अतिक्रान्तः मालाम्, अतिमालः) यहां तत्पुरुषसमास है, पर उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता न होकर पूर्वपद (अति) के अर्थ की प्रधानता है। पाणिपादम् (पाणी च पादौ च इति पाणिपादम्) यहां द्वन्द्व समास में उभय-पदार्थ-प्रधानता न होकर समाहार की प्रधानता है। द्वित्राः (द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः) यहां बहुव्रीहि समास में अन्य-पदार्थ-प्रधानता नहीं है अपितु दोनों पदों के अर्थों की प्रधानता है।

कुछ समास वाले शब्दों में (=समस्त शब्दों में) अन्त में कुछ विशिष्ट प्रत्यय लगते हैं। इन्हें 'समासान्त' प्रत्यय कहते हैं। कहीं समास के अन्त्य अवयव का लोप भी हो जाता है। यह बात उस उस समास के साथ समझा दी जायेगी।

अब हम क्रम से प्रत्येक समास के विषय को उदाहरण सहित समझाते हैं।

अव्ययीभाव समास

अव्ययीभाव समास में पूर्वपद प्रायः अव्यय होता है और उत्तरपद कोई सुबन्त शब्द। दोनों का आपस में समास (=अव्ययीभाव समास) हो जाने पर वह समस्त शब्द भी अव्यय कहलाता है।[1] फलतः उसके रूप नहीं चलते। सुप् प्रत्यय उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका लोप हो जाता है।[2] यथा—अधिस्त्रि, यथाशक्ति आदि। अकारान्त अव्ययीभाव समास के सुप् प्रत्ययों के स्थान पर 'अम्' हो जाता है।[3] यथा—उपकुम्भम्, प्रतिद्वारम् आदि। पर पञ्चमी के प्रत्ययों (ङस्, भ्याम्, भ्यस्) का न तो लोप होता है और न ही उनके स्थान पर अम् आदेश। उनका श्रवण होता है। यथा—उपकुम्भात्, उपकुम्भाभ्याम्, उपकुम्भेभ्यः। कहीं कहीं तृतीया और सप्तमी के प्रत्ययों

१. अव्ययीभावश्च (अष्टा. १.१.४१)

२. अव्ययादाप्सुपः (अष्टा. २.४.८२)

३. नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः (अष्टा. २.४.८३)

का भी श्रवण होता है[1] और कहीं कहीं उनके स्थान पर अम् आदेश हो जाता है। यथा—उपकुम्भेन कृतम्। उपकुम्भं कृतम्। उपकुम्भे निधेहि। उपकुम्भं निधेहि।

अब जिन जिन अव्ययों का जिन जिन अर्थों में सुबन्तों के साथ अव्ययीभाव समास होता है, उसे दर्शाते हैं—

१. सप्तमी आदि विभक्तियों के अर्थ में वर्तमान अधि आदि अव्ययों का सुबन्त शब्द के साथ अव्ययीभाव समास होता है[2]—अधिहरि (हरौ इति=अधिहरि=हरि के विषय में)। अधिस्त्रि (स्त्रियाम् इति=अधिस्त्रि=स्त्री के विषय में)।

२. समीप अर्थ में वर्त्तमान उप आदि अव्ययों का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[2] यथा—उपकुम्भम् (=कुम्भस्य समीपम्→उपकुम्भम्=घड़े के समीप)। इसी प्रकार—उपयज्ञम्, उपनगरम्, आदि।

३. समृद्धि अर्थ वाले सु आदि अव्ययों का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[2] यथा—सुमद्रम् (=मद्राणां समृद्धिः→सुमद्रम्=मद्रदेश की सम्पन्नता) इसी प्रकार—सुमगधम्, सुभारतम्, सुहरिवर्षम्, सुपातालम् आदि।

४. व्यृद्धि (=दरिद्रता, नाश) अर्थ वाले दुर् आदि अव्ययों का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[2] यथा—दुर्हरिवर्षम् (हरिवर्षस्य व्यृद्धिः→दुर्हरिवर्षम्=हरिवर्ष का नाश या दरिद्रता)। इसी प्रकार—दुर्यवनम्, दुर्बङ्गदेशम् आदि।

५. अभाव अर्थ वाले निर् आदि अव्ययों का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[2] यथा—निर्मक्षिकम् (मक्षिकाणाम् अभावः→निर्मक्षिकम्=मक्खियों का अभाव) इसी प्रकार—निर्मशकम्, निर्जनम्, निर्विघ्नम् आदि।

६. अत्यय (=समाप्ति, बीत जाना) अर्थ वाले निर् आदि का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[2] यथा—निःशीतम् (शीतस्य अत्ययः→निःशीतम्=सर्दी की समाप्ति) इसी प्रकार—निर्हिमम्, निर्निदाघम्, निष्प्रावृट् आदि।

७. असम्प्रति (=असमयोचित) अर्थ में वर्त्तमान अति अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[2] यथा—अतिनिद्रम् (निद्रा सम्प्रति न युज्यते →अतिनिद्रम्=निद्रा इस समय अनुचित है)। इसी प्रकार—अतिहासम्, अतिक्रोधम्, अतिमौनम् आदि।

---

१. तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् (अष्टा. २.४.८४)

२. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धि-अर्थाभाव-अत्यय-असम्प्रति-शब्द प्रादुर्भाव-पश्चात्-यथा-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु (अष्टा. २.१.६)

८. शब्द-प्रादुर्भाव अर्थ वाले इति अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा–इतिपाणिनि (पाणिनि शब्दस्य प्रकाशः→इतिपाणिनि = पाणिनि शब्द प्रसिद्ध है) इसी प्रकार–इतिकपिलम्, इतिजैमिनि, इतिपतञ्जलि, इतियाज्ञवल्क्यम् आदि।

९. पश्चात् अर्थ वाले अनु अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा–अनुविष्णु (विष्णोः पश्चात्→अनुविष्णु = विष्णु के पीछे—विष्णु के अनुसार) इसी प्रकार–अनुगुरु,अनुमुनि, अनुपितृ, अनुभार्यम् आदि।

१०. 'यथा' शब्द के तीन अर्थों (=योग्यता, वीप्सा (=व्याप्ति) और अनतिक्रमण) में वर्त्तमान अनु, प्रति और यथा इन अव्ययों का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा

(i) योग्यता—अनुरूपम् (रूपस्य योग्यम्→अनुरूपम् = रूप के योग्य)

(ii) वीप्सा—प्रत्यर्थम् (अर्थम् अर्थं प्रति→प्रत्यर्थम् = हर अर्थ के लिये) इसी प्रकार—प्रतिद्वारम्, प्रतिराष्ट्रम्, प्रतिशतम् आदि।

(iii) अनतिक्रमण—यथाशक्ति (शक्तिम् अनतिक्रम्य→यथाशक्ति = शक्ति से बाहर न जाकर—शक्त्यनुसार) इसी प्रकार यथामति, यथाकालम्, यथा-नियमम् आदि।

११. आनुपूर्व्य (=क्रम) अर्थ वाले अनु अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा—अनुज्येष्ठम्, (ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण→अनुज्येष्ठम् = बड़े के क्रम से) इसी प्रकार अनुकनिष्ठम्, अनुदीर्घम्, अनुह्रस्वम्, अनुपुराणम्, अनु-नवीनम्।

१२. यौगपद्य (=एक साथ होना) अर्थ वाले सह अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययी-भाव समास होता है।[1] यथा—सचक्रम्[2] (चक्रेण युगपत् (=सह)→सचक्रम् = चक्र के साथ) इसी प्रकार—सपुस्तकम् आदि।

१३. सादृश्य अर्थ वाले सह अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा—सहरि[2] (हरेः सादृश्यम्→सहरि = हरि के सदृश) इसी प्रकार—सपितृ, सगुरु, समित्रम्, सभार्यम्[3]।

---

१. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धि-अर्थाभाव-अत्यय-असम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चात्-यथा-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु (अष्टा. २.१.६)

२. अव्ययीभावे चाकाले (अष्टा. ६.३.८१) से सह के स्थान पर 'स' आदेश हुआ

३. अव्ययीभावश्च (अष्टा. २.४.१८) से अव्ययीभाव समास की नपुंसकलिङ्गता तथा ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (अष्टा. १.२.४७) से ह्रस्वता।

१४. सम्पत्ति (=स्वानुरूपता) के अर्थ वाले सह अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है[1]; यथा—सक्षत्रम्[2] (क्षत्राणां सम्पत्तिः→सक्षत्रम्) इसी प्रकार—सब्राह्मणम्, सविपश्चितम् आदि।

१५. साकल्य (=सारा) अर्थ वाले सह अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा—सतृणम्[2] (तृणम् अपि अपरित्यज्य→सतृणम्=तिनके को भी न छोड़ते हुए सारा का सारा) इसी प्रकार—सबुसम्, सशल्कम्, ससिकतम्[3] समृत्तिकम्[3] आदि।

१६. अन्त अर्थ वाले सह अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[1] यथा—साग्नि अधीते (अग्निग्रन्थपर्यन्तम्→साग्नि=अग्नि-प्रकरण-पर्यन्त) इसी प्रकार—सेन्द्रम्। सतद्धितम्। साङ्गम्। ससमासम्। सनैगमम् आदि

१७. सादृश्य को छोड़कर अन्य अर्थों में वर्त्तमान 'यथा' अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[4] यथा—यथावृद्धम् (ये ये वृद्धाः→यथावृद्धम्=जो जो बूढ़े हैं उन्हें) यथाबालकम्। यथागौरम्। यथावैद्यम् आदि।

१८. अवधारण (=परिमाण का निश्चय) अर्थ में वर्त्तमान 'यावत्' अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।[5] यथा—यावदमत्रम् विदुषः निमन्त्रयस्व (=जितने पात्र हैं उतने विद्वानों को निमन्त्रण दे दो) [यावन्ति अमत्राणि→यावदमत्रम्]। यावदासनम् उपवेशय अतिथीन्। यावदासन्दि[2] आह्वय आगन्तुकान्।

१९. मात्रा (=थोड़ा) अर्थ वाले 'प्रति' अव्यय के साथ सुबन्त का अव्ययीभाव समास होता है।[6] यथा—शाकप्रति (अल्पं शाकं→शाकप्रति=थोड़ा शाक)। सूपप्रति। सर्पिःप्रति। यशःप्रति।

अभी तक के अव्ययीभाव समास नित्यसमास हैं अर्थात् इनका समस्त रूप ही प्रयोग में आता है। इनका विग्रह केवल समझाने के लिये बताया गया है, प्रयोग में वह विग्रह काम में नहीं आता। अब कुछ ऐसे अव्ययीभाव समास बताते हैं जो विकल्प से होते हैं। उनका विग्रह भी प्रयोग में आता है और समास भी।

---

१. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धि-अर्थाभाव-अत्यय-असम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चात्-यथा-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु (अष्टा० २.१.६)

२. अव्ययीभावे चाकाले (अष्टा. ६.३ ८१) से सह के स्थान पर 'स' आदेश हुआ।

३. अव्ययीभावश्च (अष्टा० २.४.१८) से नपुंसकलिङ्गता तथा ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (अष्टा० १.२.४०) से ह्रस्वता। ४. यथाऽसादृश्ये (अष्टा २.१.७)

५. यावदवधारणे (२.१.८) ६. सुप्प्रतिना मात्रार्थे (२.१.९)

यहां से आगे के सभी समास चाहे वहां विकल्प शब्द दिया हो चाहे न दिया हो विकल्प से होते हैं। जहां नित्यसमास अभीष्ट होगा वहां वैसा निर्देश कर देंगे।

२०. अप, परि, बहिर् इन अव्ययों का और प्राग्, प्रत्यग्, उदग्, अवाग् आदि शब्दों का पञ्चम्यन्त सुबन्तों के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है[1] यथा—अपत्रिगर्तं वर्षा जाता, अप त्रिगर्तेभ्यो वर्षा जाता (=त्रिगर्त प्रान्त से हटकर वर्षा हुई है। परिराजस्थानं (परि राजस्थानात्) वृष्टिः जाता=राजस्थान के चारों ओर वर्षा हुई है। बहिर्ग्रामम् (बहिःग्रामात्) गजः तिष्ठति=गांव के बाहर हाथी खड़ा है। प्राग्ग्रामम् (प्राग् ग्रामात्) महान् गिरिः=गांव के पूर्व में बड़ा पर्वत है। प्रत्यग्ग्रामम् (प्रत्यग् ग्रामात्)। उदङ्नगरम् (उदग् नगरात्)। अवाग्वृक्षम् (अवाग् वृक्षात्)।

२१. मर्यादा (=वस्तुरहित सीमा) और अभिविधि (=वस्तुसहित सीमा) इन दो अर्थों वाले आङ् (=आ) अव्यय का पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है[2]। यथा—आजयपुरं (आ जयपुरात्) वृष्टो देवः=जयपुर तक अर्थात् जयपुर से परे परे वर्षा हुई है। आकुमारम् (आ कुमारेभ्यः) यशः पाणिनेः=बच्चे बच्चे तक पाणिनि का यश पहुंचा हुआ है।

२२. आभिमुख्य (=सामने) अर्थ में वर्त्तमान अभि और प्रति अव्ययों का लक्षण (=चिह्न) रूप सुबन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है[3]। यथा-अभ्यग्नि (अग्निम् अभि) शलभाः पतन्ति=अग्नि को लक्ष्य करके पतंगे गिर रहे हैं। प्रत्यग्नि (अग्निम् प्रति)। अभिमानससरोवरं हंसाः उड्डीयन्ते (अभि मानससरोवरम्······)।

२३. अनु अव्यय का उस लक्षण (=चिह्न) रूप सुबन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है, जिसके सामीप्य के कथन के लिए अनु का प्रयोग हो रहा हो[4]। यथा—अनुवनम् (अनु वनम्) विद्युत् विद्योतते=जङ्गल की ओर बिजली चमक रही है। अनुगिरि।

२४. अनु अव्यय का उस लक्षण रूप सुबन्त के साथ भी विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है जिसके फैलाव के अर्थ में अनु प्रयुक्त हो रहा हो[5]। यथा—अनुगङ्गं (अनु गङ्गाम्) वाराणसी=गङ्गा के फैलाव के अनुसार बनारस बसा हुआ है।

---

१. अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (अष्टा. २. १. १२)

२. आङ् मर्यादाभिविध्योः (अष्टा. २. १. १३)

३. लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये (अष्टा. २. १. १४)

४. अनुर्यत्समया (अष्टा. २. १. १५)   ५. यस्य चायामः (अष्टा. २. १. १६)

अनुयमुनम् (अनु यमुनाम्) मथुरा। अनुगोदावरि (अनु गोदावरीम्) नासिक-नगरम्।

२५. पार और मध्य शब्दों का षष्ठयन्त सुबन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है, अव्ययीभाव समास के समय पार और मध्य के अन्तिम अ के स्थान पर ए हो जाता है[1]। पक्ष में षष्ठी-तत्पुरुष समास होगा।
पारेगङ्गम् (पारं गङ्गायाः, गङ्गापारम्)=गङ्गा के उस पार। मध्येगङ्गम् (मध्यं गङ्गायाः, गङ्गामध्यम्)=गङ्गा के बीच। मध्येऽध्ययनम् (मध्यम् अध्ययनस्य, अध्ययनमध्यम्)=पढ़ाई के बीच।

२६. सङ्ख्यावाची शब्दों का नदीविशेषवाची शब्दों के साथ समाहार अर्थ में अव्ययीभाव समास होता है[2]। यथा – सप्तगङ्गम् (=सात गङ्गाएँ)। द्वियमुनम् (=दो यमुनाएँ)। पञ्चनदम् (=पांच नदियाँ)। यह नित्यसमास है।

२७. अन्यपदार्थ के कथन में सुबन्त का नदीविशेषवाची सुबन्त के साथ सञ्ज्ञा विषय में अव्ययीभाव समास होता है[3]। यथा—उन्मत्तगङ्गम् देशः (=वह देश जहाँ गङ्गा ऊधम मचाती हुई बहती है। शनैर्गङ्गं देशः। लोहितगङ्गं देशः। शान्त-गोदावरि देशः। यह नित्यसमास है।

२८. कुछ अन्य भी ऐसे शब्द हैं जिनमें अव्ययीभाव समास होता है[4]। उनका विग्रह केवल अर्थ-प्रदर्शनार्थ किया जाता है अन्यथा वे नित्यसमास हैं।
तिष्ठद्गु (=वह समय जब गौएँ दुहाने के लिए खड़ी होती हैं) वहद्गु। खले-बुसम्। खलेयवम्। लूनयवम्। लूयमानयवम्। आदि। ये सब काल के विशेषण-वाची शब्द हैं।
विषमम्। प्राह्णम्। प्रदक्षिणम्। सम्प्रति। असम्प्रति। दण्डादण्डि। मुसला-मुसलि। कचाकचि। आदि।

अब अव्ययीभाव समास के अन्त में लगने वाले प्रत्ययों का बोध कराते हैं—

(i) अन् जिनके अन्त में हो ऐसे राजन्-आत्मन्-शब्दान्त उपराजन्, अध्यात्मन् आदि अव्ययीभाव समास और शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह् दिव्, हिमवत्, अनडुह्, दिश्, दृश्, चतुर्, यद्, तद्, जरा (जरस्), सदृश्, ये शब्द जिनके अन्त में हों ऐसे अव्ययीभाव समास और प्रत्यक्षि, परोक्षि, समक्षि, अन्वक्षि, प्रतिपथिन्, परपथिन्, सम्पथिन्, अनुपथिन् आदि अव्ययी-

---

१. पारे मध्ये षष्ठ्या वा (अष्टा. २. १. १८) २. नदीभिश्च (अष्टा. २. १. २७)
३. अन्यपदार्थे च सञ्ज्ञायाम् (अष्टा. २. १. २१)
४. तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च (अष्टा. २. १. २२)

भाव समास वाले शब्दों के अन्त में टच् (=अ) प्रत्यय लग जाता है[1]। टच् (=अ) परे आने पर उपर्युक्त शब्दों के अन्, अ, इ, इन् भाग का लोप भी हो जाता है[2]। इनके टच् (=अ) प्रत्ययान्त स्वरूप देखो—

उपराजम्[3] (=राजा के समीप)। अध्यात्मम्[4] (आत्मा के विषय में)। निःशरदम्[5] (शरद ऋतु की समाप्ति)। उपविपाशम्[3] (विपाश् नदी के पास) अध्यनसम्[4] (=गाड़ी में)। प्रतिमनसम्[6] (=प्रत्येक मन में)।

ओपानहम्[7] कञ्चुकम् (=जूते तक का लम्बा कुर्त्ता)। अनुदिवम्[8] (=द्युलोक की ओर)। उपहिमवतम्[3] (=हिमालय के समीप)। सानुडहम्[9] (=बैल के सदृश)। प्रतिदिशम्[6] (=प्रत्येक दिशा में)। यथादृशम्[10] (=दृष्टि के अनुसार)। उपचतुरम्[3] (=चार के आस पास)। अनुयदं[11] वस्त्रम् अनुतदं[11] पात्रमपि (=जिसके योग्य वस्त्र हो उसी के योग्य पात्र भी चाहिए)। अधिजरसम्[4] (=बुढ़ापे में)। अनुसदृशम्[8] (=सदृश को लक्ष्य करके)। प्रत्यक्षम्[6] (=आँखों के सामने)। परोक्षम् (=आँखों के पीछे)। समक्षम् (=आँखों के सामने)। अन्वक्षम्[11] (=आँखों के अनुरूप)। प्रतिपथम्[6] (=प्रत्येक रास्ते में)।

(ii) किन्तु यदि अव्ययीभाव समास के ये अन्-शब्दान्त उत्तरपद नपुंसकलिङ्ग वाले हों तो उनसे विकल्प से टच् (=अ) प्रत्यय लगता है[12]। यथा—

प्रतिचर्मम्, प्रतिचर्म। उपचर्मम्, उपचर्म।

(iii) यदि अव्ययीभाव समास में नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी उत्तरपद में हो तो इनसे विकल्प से टच् (=अ) प्रत्यय होता है[13]। यथा—

उपनदम्, उपनदि (नद्याः समीपम्→उप नदी→उप नदी+टच्=उपनदम्)

उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि। उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि।

(iv) अव्ययीभाव समास में उत्तरपद यदि झयन्त हो अर्थात् वर्गीय प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-वर्णान्त हो तो उससे विकल्प से टच् (=अ) प्रत्यय होता है[14]। यथा—अधिवाचम्[4], अधिवाक्[4] (=वाणी में)। उपसमिधम्[3], उपसमित्[3] (=समिधा के समीप)। प्रतिककुभम्[6], प्रतिककुप्[6] (प्रत्येक दिशा में)।

---

१. अनश्च; अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः (अष्टा० ५.४.१०८; १०७)
२. नस्तद्धिते; यस्येति च (अष्टा० ६.४.१४४; १४८)
३. नियम सं. (२) से अव्ययीभाव समास। ४. नियम सं. (१) से अ. स.।
५. नियम सं. (६) से अ. स.। ६. नियम सं. (१०) (ii) से अ. स.।
७. नियम सं. (२१) से अ. स.। ८. नियम सं. (२३) से अ. स.।
९. नियम सं. (१३) से अ. स.। १०. नियम सं. (१०) (iii) से अ. स.।
११. नियम सं. (१०) (i) से अ. स.।
१२. नपुंसकादन्यतरस्याम् (अष्टा. ५.४.१०९)।
१३. नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः (अष्टा. ५.४.११०) १४. झयः (अष्टा. ५.४.१११)

(v) अव्ययीभाव समास में गिरि शब्द उत्तरपद हो तो किन्हीं के मत में उससे भी टच् (=अ) प्रत्यय होता है[1]। यथा—

अन्तर्गिरम्, अन्तर्गिरि[2] (गिरौ→ अन्तर्+ गिरि→ अन्तर्गिरि+ टच् →अन्तर्गिरम्=पहाड़ के अन्दर)।

उपगिरम्, उपगिरि[3] (=पर्वत के समीप)। अनुगिरि[4] (=पर्वत की ओर)।

अभ्यास

१. आर्यसमाज ने स्त्रियों में सुशिक्षा का प्रचार किया।
आर्यसमाजोऽधिस्त्रि सुशिक्षाम्प्रासीसरत्।

२. गङ्गा के समीप की इस बस्ती में मच्छरों का अभाव देखकर हम प्रसन्न हुए।
उपगङ्गमस्यां वसतौ निर्मशकमवलोक्य वयममोदिष्महि।

३. भारतीय तो बङ्गला देश की दरिद्रता को देखकर दुःखी होते हैं, किन्तु पड़ोसी देश, भारत की समृद्धि देखकर जलते हैं।
भारतीयास्तु दुर्बङ्गदेशं वीक्ष्य चेखिद्यन्ते परम्प्रतिवेशिदेशाः सुभारतन्निभाल्य दुर्मनायन्ते।

४. वर्षा ऋतु के बीत जाने पर अब छाते की आवश्यकता नहीं है।
निष्प्रावृड् इदानीम्, अनावश्यकञ्छत्रम्।

५. छात्रो! सावधानी से पढ़ो, कक्षा में नींद लेना अनुचित है।
छात्राः! सावहिताः पठत कक्षायामतिनिद्रं वर्त्तते।

६. संस्कृत साहित्य में पाणिनि शब्द प्रसिद्ध है=संस्कृतसाहित्ये इतिपाणिनि विद्यते।

७. ये लोग पिता के पीछे चलते हैं हम गुरु के पीछे।
एते अनुपितृ समाचरन्ति वयञ्चानुगुरु समाचरामः।

८. देवसभा में अर्जुन का सत्कार उसके रूप के योग्य ही था।
अधिदेवसभमर्जुनस्य सत्करणमनुरूपमेवाऽऽसीत्।

९. आज हर दरवाजे पर कार खड़ी है।
अद्य प्रतिद्वारं (प्रतिद्वारे) कारयानं राजते।

१०. जितनी मेरी बुद्धि और जितनी शक्ति थी, तदनुसार मैंने परिष्कार किया है।
यथामति यथाशक्ति चाहम्परिष्कारमकार्षम्।

---

१. गिरेश्च सेनकस्य (अष्टा. ५. ४. ११२)।

२. नियम सं. १ से अव्ययीभाव समास।

३. नियम सं. २ से अ० स०।

४. नियम सं. २३ से अ० स०

११. तुम लोग बड़े के क्रम से यज्ञशाला में और छोटे के क्रम से भोजनशाला में प्रवेश करो।
यूयमनुज्येष्ठं यज्ञशालायामनुकनिष्ठञ्च भोजनशाले प्रविशत।

१२. उषा ने पुस्तकों के साथ ही पाटिया उठा लिया।
उषा सपुस्तकङ् काष्ठपटलमुदतिष्ठिपत्।

१३. यह अपने मित्र के समान ही, जो जो बूढ़े हैं उनकी सेवा करता है।
अयं समित्रं (ससखि) यथावृद्धम्परिचरति।

१४. वे भूख से व्याकुल गरीब, तिनकों को भी बिना निकाले सारा का सारा भोजन खा गये।
ते क्षुत्पीडिता निर्धनाः सतृणमखिलङ् खाद्यमखादिषुः।

१५. रघुवंशियों का स्वानुरूप क्षत्रियत्व जगत्प्रसिद्ध है।
रघूणां सक्षत्रं जगद्विख्यातं वर्त्तते।

१६. दया की लड़कियां तद्धित प्रकरण तक व्याकरण पढ़कर अब सङ्गीत सीखेंगी।
दयाया दुहितरः सतद्धितं व्याकरणमधीत्य सङ्गीतं शिक्षिष्यन्तेऽधुना।

१७. जितनी कुर्सियां हैं, उतनी शिक्षिकाओं को निमन्त्रण दे।
यावदासन्दि निमन्त्रय शिक्षिकाः।

१८. इन पाखण्डियों के कार्य में थोड़ा सा भी यश नहीं है।
पाखण्डिनामेषां कार्ये न यशःप्रति।

१९. राजस्थान के परे विन्ध्यपर्वत के चारों ओर खूब वर्षा हुई है।
अपराजस्थानम् (अप राजस्थानात्) परिविन्ध्याचलं (परि विन्ध्याचलात्) पुष्कलो वर्षोऽवर्षीत्।

२०. गांव के बाहर नदी के पूर्व में, आम का सुन्दर बगीचा है।
बहिर्ग्रामम् (बहिर् ग्रामात्) प्राक्सरितं (प्राक् सरितः) रमणीयं रसालोद्यानमस्ति।

२१. उदयपुर के उत्तर में और पहाड़ के पश्चिम में गुरुकुल था।
उदगुदयपुरम् (उदग् उदयपुरात्) प्रत्यक्पर्वतं (प्रत्यक् पर्वतात्) च गुरुकुलमासीत्।

२२. पढ़ाई के बीच इसका विवाह मत करो।
मध्येऽध्ययनं (मध्ये अध्ययनस्य, अध्ययनमध्ये) माऽस्य विवाहङ् कार्ष्ट।

२३. इस प्रदेश को पांच नदियां सींचती हैं—प्रदेशमेतम्पञ्चनदं सिञ्चति।

२४. जब जौ काटे जा रहे थे, तब वेदपारायण आरम्भ हुआ था और जब जौ खलियान में आ गये तब उसकी समाप्ति हुई।
लूयमानयवमारब्धं वेदपारायणं खलेयवमवसितिमापत्।

२५. पाणिनि की कीर्ति बच्चे बच्चे तक फैली हुई है।
आकुमारम् (आ कुमारेभ्यः) यशः प्रसृतमस्ति पाणिनेः।

तत्पुरुष-समास

तत्पुरुष समास में प्रायः उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है। तत्पुरुष समास वाले शब्द के रूप सभी विभक्तियों में चलते हैं। यह व्यधिकरण और समानाधिकरण भेद से मुख्यतया दो प्रकार का है। जहां विभिन्न पदार्थों के वाचक दो शब्दों का समास हो वह व्यधिकरण समास है और जहां एक ही पदार्थ के विशेषण-विशेष्य रूप दो शब्दों का समास हो वह समानाधिकरण समास है। व्यधिकरण समास में विग्रहावस्था में पूर्वपद और उत्तरपद में भिन्न भिन्न विभक्तियां होती हैं जब कि समानाधिकरण समास में विग्रहावस्था में दोनों पदों में एकसी विभक्ति होगी। व्यधिकरण तत्पुरुष मुख्यतया बारह प्रकार का है—

१. द्वितीया-तत्पुरुष। २. तृतीया-तत्पुरुष। ३. चतुर्थी-तत्पुरुष। ४. पञ्चमी-तत्पुरुष। ५. षष्ठी-तत्पुरुष। ६. सप्तमी-तत्पुरुष। ७ अवयवावयवि-तत्पुरुष। ८. नञ्तत्पुरुष। ९. गति-तत्पुरुष। १०. प्रादि-तत्पुरुष। ११. उपपद-तत्पुरुष। १२. अन्यपदार्थादिप्रधान-तत्पुरुष।

(१) द्वितीया-तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास के विग्रह में पूर्वपद में द्वितीया विभक्ति हो वह द्वितीया-तत्पुरुष समास होता है।

(i) द्वितीया-विभक्त्यन्त सुबन्त का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न इन सुबन्तों के साथ तत्पुरुष समास होता है।[1]

जनकश्रितः (जनकम्+श्रितः→जनकश्रितः=पिता के सहारे)।
दुःखातीतः (दुःखम्+अतीतः→दुःखातीतः=दुःख के पार गया हुआ)।
शोकपतितः (शोकम्+पतितः→शोकपतितः=शोक में पड़ा हुआ)।
अवसानगतः (अवसानम्+गतः→अवसानगतः=समाप्ति को पहुंचा हुआ।
परतीरात्यस्तः (परतीरम्+अत्यस्तः→परतीरात्यस्तः=परले पार पहुंचा हुआ।

---

१. द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः (अष्टा. २.१.२४)

प्राप्त और आपन्न शब्दों का पूर्व में भी प्रयोग होता है[1]। यथा—
प्राप्तसुखः (प्राप्तः सुखम्→प्राप्तसुखः=सुख पाया हुआ)।
आपन्नभयः (आपन्नः+भयम्→आपन्नभयः=भय को प्राप्त)।

(ii) द्वितीयान्त सुबन्त का गमी, गामी, बुभुक्षु आदि शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[2]। यथा—
ग्रामगमी (ग्रामम्+गमी→ग्रामगमी=गांव को जाने वाला।
ग्रामगामी (ग्रामम्+गामी=ग्रामगामी=गांव को जाने वाला)।
ओदनबुभुक्षुः (ओदनम्+बुभुक्षुः→ओदनबुभुक्षुः=भात का भूखा)।

(iii) द्वितीयान्त कालवाची सुबन्त का क्तप्रत्ययान्त सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—
मासप्रमितः (मासम्+प्रमितः→मासप्रमितः=महीने को बनाने में प्रवृत्त [चन्द्रमा])

(iv) द्वितीयान्त कालवाची सुबन्त का अत्यन्त संयोग के विषय में अन्य सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास होता है[4]। यथा—
मुहूर्त्तसुखम् (मुहूर्तम्+सुखम्→मुहूर्त्तसुखम्=पूरे मुहूर्त भर सुख)
सप्ताहज्वलितः (सप्ताहम्+ज्वलितः→सप्ताहज्वलितः=सप्ताह भर जलता रहा)
प्रहरपाचितः (प्रहरम्+पाचितः→प्रहरपाचितः=पूरे पहर तक पकाया गया)।

(२) तृतीया-तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष के विग्रह में पूर्वपद में तृतीया हो उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं।

(i) तृतीयान्त सुबन्त का ऐसे गुणवाणी सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास होता है जिसका वाच्य पदार्थ तृतीयान्त सुबन्त के वाच्य पदार्थ के द्वारा सम्पन्न किया गया हो[5]। यथा—
शङ्कुलाखण्डः (शङ्कुलया खण्डः→शङ्कुलाखण्डः=सरोते से किया गया टुकड़ा)।
किरिकाणः (किरिणा काणः→किरिकाणः=सुअर के द्वारा काणा किया हुआ)।

(ii) तृतीयान्त सुबन्त का 'अर्थ' शब्द के साथ भी तत्पुरुष समास होता है[5]। यथा—धान्यार्थः (धान्येन+अर्थः=धान्यार्थः=धान्य से प्रयोजन)

(iii) तृतीयान्त शब्द का पूर्व, सदृश, सम, न्यूनवाची शब्द, कलह, निपुण, मिश्र, श्लक्ष्ण और अवर इन शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[6]। यथा—

---

१. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया (अष्टा. २.२.४)।
२. श्रितादिषु गम्यादीनामुपसङ्ख्यानम् [वा०] (अष्टा. २.१.२४)।
३. कालाः (अष्टा. २.१.२८)। ४. अत्यन्तसंयोगे च (अष्टा. २.१.२९)।
५. तृतीयातत्कृतार्थेन गुणवचनेन (अष्टा. २.१.३०)।
६. पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः [सू०], पूर्वादिष्ववरस्योपसङ्ख्यानम् [वा०] (अष्टा. २.१.३१)।

मासपूर्वः (मासेन पूर्वः→मासपूर्वः=एक महीने पहिले का)।

मातृसदृशः (मात्रा सदृशः→मातृसदृशः=माता के समान)।

भ्रातृसमः (भ्रात्रा समः→भातृसमः=भाई के बराबर)।

रूप्यकोनम् (रूप्यकेण ऊनम्→रूप्यकोनम् [शतम्]=एक रुपये कम [सौ रुपये])।

किलोग्रामोनम् (किलोग्रामेण ऊनम्→किलोग्रामोनम्=एक किलो कम)।

लिटरविकलम् (लिटरेण विकलम्→लिटरविकलम्=एक लिटर कम)।

वाक्कलहः (वाचा कलहः→वाक्कलहः=वाणी के द्वारा हुआ झगड़ा)।

आचारनिपुणः (आचारेण निपुणः→आचारनिपुणः=आचरण की दृष्टि से निपुण)।

सितामिश्रम् (सितया मिश्रम्→सितामिश्रम्=मिश्री से युक्त)।

व्यवहारश्लक्ष्णः (व्यवहारेण श्लक्ष्णः→व्यवहारश्लक्ष्णः=व्यवहार की दृष्टि से साफ)।

मासावरः (मासेन अवरः→मासावरः=एक मास छोटा)।

(iv) कर्तृवाची तृतीयान्त शब्द और करणवाची तृतीयान्त शब्द का कृत्-प्रत्ययान्त शब्द के साथ प्रायः तत्पुरुष समास होता है[1]। यथा—

अहिहतः (अहिना हतः→अहिहतः=सांप के द्वारा मारा गया)।

वृकत्रासितः (वृकेण त्रासितः→वृकत्रासितः=भेड़िये के द्वारा डराया हुआ)।

गुरुपालितः (गुरुणा पालितः→गुरुपालितः=गुरु के द्वारा पाला गया)।

नखनिर्भिन्नः (नखैः निर्भिन्नः→नखनिर्भिन्नः=नखों के द्वारा फाड़ा हुआ)।

परशुछिन्नः (परशुना छिन्नः→परशुछिन्नः=फरसे से काटा हुआ)।

सूचीस्यूतः (सूच्या स्यूतः→सूचीस्यूतः=सुई से सिला हुआ)।

(v) कर्तृवाची और करणवाची तृतीयान्त शब्द का कृत्यप्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है यदि प्रशंसाविषयक या निन्दाविषयक अतिशयोक्ति का विषय हो[2]। यथा—

काकपेया नदी (काकैः पेया→काकपेया नदी=ऐसी लबालब भरी नदी कि कौए भी जिसके किनारे बैठकर पानी पी सकें अथवा इतने कम पानी वाली नदी कि जिसका पानी कौए भर के लिए हो)।

श्वलेह्यः कूपः (शुना लेह्यः→श्वलेह्यः कूपः=पानी से ऐसा लबालब भरा हुआ कुआ कि जिसका पानी कुत्ता भी जीभ से पी सके)।

---

१ कर्तृकरणे कृता बहुलम् (अष्टा. २.१.३२)।

२. कृत्यैरधिकार्थवचने (अष्टा. २.१.३३)।

वाष्पछेद्यानि तृणानि (वाष्पेण छेद्यानि→वाष्पछेद्यानि=इतने कोमल तिनके कि जो भाप से छेदे जा सकें।)

कण्टकसञ्चेयः ओदनः (कण्टकेन सञ्चेयः→कण्टकसञ्चेयःओदनः=इतना खिला हुआ भात कि जिसके चावलों को कांटे से बीना जा सके।)

(vi) व्यञ्जनवाची तृतीयान्त शब्द का अन्नवाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[१]। यथा—

दध्योदनः (दध्ना उपसिक्तः ओदनः→दध्योदनः=दही डला हुआ भात)।

क्षीरयवागू (क्षीरेण उपसिक्ता यवागूः→क्षीरयवागूः=दूध डला हुआ दलिया)

सितारसकुण्डलिनी (सितारसेन पूरिता कुण्डलिनी→सितारस कुण्डलिनी=चाशनी से भरपूर जलेबी)

(vii) मिलाने के साधन भूत तृतीयान्त शब्द का भक्ष्यवाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[२]। यथा—

गुडधानाः (गुडेन मिश्राः धानाः→गुडधानाः=गुड़ मिले धान)।

गुडतिलाः (गुडेन मिश्राः तिलाः→गुडतिलाः=गुड़ मिले तिल)।

३. चतुर्थी-तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष के विग्रह में पूर्वपद में चतुर्थी विभक्ति हो उसे चतुर्थी-तत्पुरुष समास कहते हैं।

(i) विकृति (+तैयार माल) वाची चतुर्थी-विभक्त्यन्त का प्रकृति (=कच्चा माल—उपादानकारण) वाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[३]। यथा—

शङ्कुकाष्ठम् (शङ्कवे काष्ठम्→शङ्कुकाष्ठम्=खूंटी बनाने के लिए लकड़ी)।

यूपदारु (यूपाय दारु→यूपदारु=यज्ञस्तम्भ के लिये उपयोगी लकड़ी)।

कुण्डलहिरण्यम् (कुण्डलाय हिरण्यम्→कुण्डलहिरण्यम्=कुण्डलोपयोगी सोना)।

कुम्भमृत्सा (=कुम्भाय मृत्सा→कुम्भमृत्सा=घड़े बनाने योग्य बढ़िया मिट्टी)।

(ii) चतुर्थी-विभक्त्यन्त शब्द का अर्थ शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[४]। यह समास नित्यसमास है[४]। यहां स्वपदविग्रह नहीं होता अर्थात् विग्रह करते समय अन्य पद का सहयोग लेना पड़ता है। तीनों लिङ्गों में यह समास होगा[४]। यथा—

---

१. अन्नेन व्यञ्जनम् (अष्टा. २. १. ३४)
२. भक्ष्येण मिश्रीकरणम् (अष्टा. २.१.३५)
३. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (अष्टा. २.१.३६) 'तदर्थेन प्रकृतिविकार-भावे समासोऽयमिष्यते' [इष्टिः] (काशिका २.१.३६)
४. अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या [वा.] (अष्टा. २.१.३६)

ब्राह्मणार्थः कम्बलः (ब्राह्मणाय अयम्→ब्राह्मणार्थः कम्बलः=ब्राह्मण के लिए कम्बल)।
छात्रार्थं पुस्तकम् (छात्राय इदं→छात्रार्थं पुस्तकम्=छात्र के लिए पुस्तक)।
पित्रर्था लेखनी (पित्रे इयं→पित्रर्था लेखनी=पिता के लिये कलम)।

(iii) चतुर्थ्यन्त शब्द का बलि, हित, सुख और रक्षित इन शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[1]। यथा—
अतिथिबलिः (अतिथये बलिः→अतिथिबलिः=अतिथि के लिए भोजन)।
गोहितम् (गवे हितम्→गोहितम्=गाय के लिये हितकारी)।
मातृसुखम् (मात्रे सुखम्→मातृसुखम्=माता को सुख)।
शिशुरक्षितम् (शिशुभ्यः रक्षितम्=बच्चों के लिए रक्खा हुआ)।

४. पञ्चमी-तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष के विग्रह में पूर्वपद में पञ्चमी विभक्ति होती है वह पञ्चमी-तत्पुरुष कहलाता है।[2]

(i) पञ्चम्यन्त शब्द का भय, भीत, भीति और भी इन शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[2]। यथा—
सिंहभयम् (सिंहात् भयम्→सिंहभयम्=शेर से डर)।
सिंहभीतिः („ भीतिः→सिंहभीतिः= „)।
सिंहभीः („ भीः→सिंहभीः= „)।
सिंहभीतः („ भीतः→सिंहभीतः=शेर से डरा हुआ)।

(ii) कुछ पञ्चम्यन्त शब्दों का अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त इन शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—
सुखापेतः (सुखाद् अपेतः→सुखापेतः=सुख से हटा हुआ)।
कल्पनापोढः (कल्पनायाः अपोढः→कल्पनापोढः=कल्पना से बाहर)।
चक्रमुक्तः (चक्रात् मुक्तः→चक्रमुक्तः=चक्कर से छूटा हुआ)।
तरङ्गापत्रस्तः (तरङ्गेभ्यः अपत्रस्तः→तरङ्गापत्रस्तः=तरङ्गों से डरा हुआ)।

(iii) पञ्चमी-विभक्त्यन्त स्तोक, अन्तिक और दूर के पर्यायवाची शब्दों का और कृच्छ्र शब्द का क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[4]। यहां पञ्चमी विभक्ति का लुक् (=लोप)नहीं होगा[5]। फिर भी दोनों (=पूर्वपद और

---

१. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (अष्टा. २.१.३६)
२. पञ्चमी भयेन; भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम् [वा.] (अष्टा. २.१.३७)
३. अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः (अष्टा. २.१.३८)
४. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन (अष्टा. २.१.३९)
५. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः (अष्टा. ६.३.२)

उत्तरपद) मिलकर एक पद कहलायेंगे और एक ही स्वर रहेगा।

स्तोकान्मुक्तः (स्तोकात्+मुक्तः→स्तोकान्मुक्तः=थोड़े से मुक्त)।

अल्पान्मुक्तः (अल्पात्+मुक्तः→अल्पान्मुक्तः= ,, ,,)।

अन्तिकादागतः (अन्तिकात्+आगतः→अन्तिकादागतः=पास से आया हुआ)।

अभ्याशादागतः (अभ्याशात्+आगतः→अभ्याशादागतः= ,, ,,)।

दूरादायातः (दूरात्+आयातः→दूरादायातः=दूर से आया हुआ)।

विप्रकृष्टादायातः (विप्रकृष्टात्+आयातः→विप्रकृष्टादायातः= ,, ,,)।

कृच्छ्रान्मुक्तः (कृच्छ्रात्+मुक्तः→कृच्छ्रान्मुक्तः=कठिनाई से मुक्त)।

(iv) पञ्चम्यन्त शत और सहस्र शब्दों का पर शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[1]। यहां 'पर' शब्द का पूर्वनिपात (=पूर्वपद के रूप में प्रयोग) होता है और शत तथा सहस्र का परनिपात[2]। पर के बाद सुट् (=स्) भी लग जाता है[3]।

परश्शताः (शतात्+परे→परश्शताः=सौ से अधिक)।

परस्सहस्राः (सहस्रात्+परे→परस्सहस्राः=हजार से अधिक)।

५. षष्ठी-तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष के विग्रह में पूर्वपद में षष्ठी विभक्ति हो वह षष्ठी-तत्पुरुष कहलाता है।

(i) षष्ठी-विभक्त्यन्त शब्द का अन्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[4]। यथा—

राष्ट्रपतिः (राष्ट्रस्य पतिः→राष्ट्रपतिः=राष्ट्र का स्वामी)।

राजपुरुषः (राज्ञः पुरुषः→राजपुरुषः=राजा का पुरुष)।

छात्रपुस्तकम् (छात्रस्य पुस्तकम्→छात्रपुस्तकम्=छात्र की पुस्तक)।

(ii) षष्ठ्यन्त शब्द का उसमें स्थित रहने वाले गुणवाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[5]। यथा—

चन्दनगन्धः (चन्दनस्य+गन्धः→चन्दनगन्धः=चन्दन की गन्ध)।

कपित्थरसः (कपित्थस्य+रसः→कपित्थरसः=कैथ का रस)।

षष्ठी-तत्पुरुष समास का उपरिलिखित नियम सं. (i) बहुत व्यापक है। उससे सभी षष्ठ्यन्त शब्दों का तत्पुरुष समास प्राप्त होता है, जबकि अनेक शब्दों

---

१. शतसहस्रौ परेणेति वक्तव्यम् [वा.] (अष्टा. २.१.३९)

२. राजदन्तादिषु परम् (अष्टा. २.२.३१)

३. निपातनात् सुडागमः (काशिका २.१.३९) ४. षष्ठी (अष्टा. २.२.८)

५. तत्स्थैश्च गुणैः षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम् [वा.] अष्टा. २.२.९)

का समास इष्ट नहीं है। अतः जहाँ जहाँ षष्ठी-तत्पुरुष समास अभीष्ट नहीं है, उन स्थानों का निर्देश करते हैं—

(क) निर्द्धारण के विषय में जो षष्ठी[1] विभक्ति होती है तदन्त शब्द का अन्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता[2]। यथा—

भटानां वीरेन्द्रः शूरतमः। मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः। आदि।

किन्तु निर्धारण में विहित जो षष्ठी है तदन्त शब्द से परे यदि तरप्रत्ययान्त गुणवाची शब्द होगा तो तत्पुरुष समास हो जायेगा[3] और तर भाग का लोप भी होगा। यथा— सर्वश्वेतः (सर्वेषाम् श्वेततरः→सर्वश्वेतः=सबसे अधिक सफेद)

सर्वमहान् (सर्वेषाम् महत्तरः→सर्वमहान्=सबमें बड़ा)।

(ख) प्रतिपद-विधाना जो षष्ठी है तदन्त शब्द का अन्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता[4]। जो मुख्य नियम (पृष्ठ ३८९ पर नियम सं० [१]) से षष्ठी का विधान किया गया है उसको छोड़कर अन्य जो नियम (पृष्ठ ३८९ के नियम सं. [२] से लेकर पृष्ठ सं. ३९४ के नियम सं. [२०] तक) हैं, उनसे निर्दिष्ट षष्ठी प्रतिपद-विधाना षष्ठी कहलाती है। तदन्त शब्द के तत्पुरुष समास का यहाँ निषेध किया गया है।

सर्पिषो ज्ञानम्। मधुनो ज्ञानम्। यहाँ पृष्ठ सं. ३८९ के नियम सं० [२] से षष्ठी हुई अतः समास नहीं हुआ।

किन्तु कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में विहित [पृष्ठ सं० ३९२ के नियम सं०(१३)] जो षष्ठी है तदन्त शब्द का अन्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है[5]। यथा—
इध्मप्रव्रश्चनः (इध्मानाम् प्रव्रश्चनः→इध्मप्रव्रश्चनः=ईंधन को काटने वाला)।
पलाशशातनः (पलाशस्य शातनः→पलाशशातनः=ढ़ाक का काटने वाला)।
गृहजिगमिषा (गृहस्य जिगमिषा→गृहजिगमिषा=घर को जाने की इच्छा)।
ग्रामगमनम् (ग्रामस्य गमनम्→ग्रामगमनम्=गाँव को जाना)।

(ग) षष्ठी-विभक्त्यन्त शब्द का पूरण-प्रत्ययान्त पञ्चम-सप्तम आदि शब्दों के साथ, गुणवाची शब्दों के साथ, तृप्त के पर्यायवाची शब्दों के साथ, शतृ-शानच्-प्रत्ययान्त शब्दों के साथ, कृत्प्रत्ययान्त अव्यय शब्दों के साथ, तव्यप्रत्ययान्त शब्दों के

---

१. पृष्ठ ३९८ पर नियम सं० [६] से। २. न निर्धारणे (अष्टा. २.२.१०)
३. गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् [वा.] (अष्टा. २.२.९)
४. प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यत इति वक्तव्यम् [वा.] (अष्टा. २.२.१०)
५. कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम् [वा.] (अष्टा. २.२.९)

साथ और समानाधिकरण विशेषण वाची शब्दों के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता[1]। यथा—

छात्राणां पञ्चमः। बालकानां सप्तमः। वर्णानां चतुर्थः। नक्षत्राणां दशमः।
दुग्धस्य शौक्ल्यम्। जपाकुसुमस्य लौहित्यम्। काकस्य कार्ष्ण्यम्।
पायसान्नस्य तृप्तः। फलानां सुहितः। रसगोलानां सन्तुष्टः।
ब्राह्मणस्य कुर्वन् (=भृत्य)। क्षत्रियस्य कुर्वाणः (=भृत्य)।
रामस्य कृत्वा। रावणस्य हृत्वा।
पाणिनेः सूत्रकारस्य। उत्पलस्य नीलस्य। पतेः राष्ट्रस्य।

(घ) षष्ठ्यन्त शब्द का क्तप्रत्ययान्त शब्द के साथ समास नहीं होता, यदि वह क्त प्रत्यय पूजा अर्थ में किया गया हो[2]। यथा—
राज्ञां मतः। राज्ञां पूजितः। राज्ञां बुद्धः।

(ङ) षष्ठयन्त शब्द का उस क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ भी समास नहीं होता जिसका क्त, अधिकरण अर्थ में किया गया हो[3]। यथा—
एषां यातम् (=इनके जाने का क्षेत्र)। अस्माकं भुक्तम् (=हमारा खाने का स्थान)।
छात्राणां पठितम् (=छात्रों का पढ़ने का स्थान)।
रामशास्त्रिणः साक्षात्कृतम् (=रामशास्त्री का मिलने का स्थान)

(च) कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में कर्त्ता और कर्म दोनों को प्राप्त होने की स्थिति में जो षष्ठी कर्म में (नियम सं० [१३] पृष्ठ ३९२) विहित है तदन्त शब्द का अन्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता[4]। यथा—
आश्चर्यमिदं यत् महेन्द्रः गवां दोहं गोपेन विनैवाकरोत्।
विचित्रमिदं यदशिक्षकेन वेदानाम् अध्यापनमक्रियत।

(छ) कृत्प्रत्ययों के प्रयोग में कर्म में जो षष्ठी (पृष्ठ सं० ३९२ के नियम सं० [१२]) विहित है तदन्त शब्द का तृच्-प्रत्ययान्त और अक-प्रत्ययान्त शब्द के साथ समास नहीं होता, यदि वे तृच् और अक प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में विहित हों तो[5]। यथा—

पुरां भेत्ता। काष्ठानां छेत्ता। व्याकरणस्य कर्त्ता। यवानां लावकः। वेदस्य शिक्षकः। घटानां कर्त्ता। पटानां कारकः।

---

१. पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन (अष्टा० २.२.११)
२. क्तेन च पूजायाम् (अष्टा० २.२.१२)
३. अधिकरणवाचिना च (अष्टा० २.२.१३)
४. कर्मणि च (अष्टा० २.२.१४)
५. तृजकाभ्यां कर्त्तरि (अष्टा० २.२.१५)

किन्तु कर्म में विहित षष्ठी विभक्ति वाले शब्दों का याजक आदि कुछ शब्दों के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है[1]। यथा—

दशरथयाजक: (दशरथस्य याजक:→दशरथयाजक:=दशरथ को यज्ञ कराने वाला)।
ब्राह्मणपूजक: (ब्राह्मणस्य पूजक:→ब्राह्मणपूजक:=ब्राह्मण की पूजा करने वाला)।
रुग्णपरिचारक: (रुग्णानां परिचारक:)। आम्रपरिषेचक: (आम्राणां परिषेचक:)।
विद्यास्नातक: (विद्यानां स्नातक:)। छात्राध्यापक: (छात्राणाम् अध्यापक:)। आदि।

(ज) कर्त्ता में जो षष्ठी विभक्ति (पृष्ठ ३९? के नियम सं० [१२] से) विहित है तदन्त शब्द का भी अक-प्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता[2]। यथा—

भवत: शायिका (=आपकी सोने की बारी)। मम जागरिका (मेरी जागने की बारी)। अस्माकं भक्षिका (=हमारी खाने की बारी)।

(iii) क्रीडा और जीविका अर्थ में, षष्ठ्यन्त शब्द का अक-प्रत्ययान्त शब्द के साथ नित्य तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—
उद्दालकपुष्पभञ्जिका (लिसोड़े के फूलों को तोड़ने का खेल)
वीरणपुष्पप्रचायिका (खस के पौधे के फूलों को चुनने का खेल)
पाटलपुष्पगुम्फिका (गुलाब के फूलों को गूंथने का खेल)
दन्तलेखक: (दांतों पर चित्रकारी करके जीविका करने वाला)
नखलेखक: (नखों पर " " " ")

विशेष—जब कालवाची शब्दों का षष्ठ्यन्त परिमाणि-वाची शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[4] तब षष्ठ्यन्त उत्तरपद में रहता है। यथा—
मासजात: (मास: जातस्य→मासजात:=महीने भर की आयु का)।
संवत्सरजात: (संवत्सर: जातस्य→संवत्सरजात:=वर्ष भर की " ")।

(६) सप्तमी-तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास के विग्रह में पूर्वपद में सप्तमी विभक्ति प्रयुक्त होती है वह सप्तमी-तत्पुरुष कहलाता है।

(i) सप्तमी-विभक्त्यन्त शब्द का शौण्ड आदि शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[5]। यथा—

अक्षशौण्ड: (अक्षेषु शौण्ड:=अक्षशौण्ड:=जुआ खेलने में निपुण)।
अक्षधूर्त: (अक्षेषु धूर्त:)। कटप्रवीण: (कटे प्रवीण:=चटाई बनाने में चतुर)।

---

१. याजकादिभिश्च (अष्टा. २.२.९)। २. कर्त्तरि च (अष्टा. २.२.१६)।
३. नित्यं क्रीडाजीविकयो: (अष्टा. २.२.१७)।
४. कालाः परिमाणिना (अष्टा. २.२.५)। ५. सप्तमी शौण्डैः (अष्टा. २.१.४०)।

गणितपण्डितः (गणिते पण्डितः)। पाककुशलः (पाके कुशलः)। अनुवादनिपुणः (अनुवादे निपुणः)। आदि।

(ii) सप्तम्यन्त शब्द का सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[1]। यथा—

साङ्काश्यसिद्धः (सांकाश्ये सिद्धः→साङ्काश्यसिद्धः=साङ्काश्य नामक नगर में बना हुआ)। भारतसिद्धः (भारते सिद्धः→भारतसिद्धः=भारत में निर्मित)। जयपुरसिद्धः (जयपुरे सिद्धः)। आतपशुष्कः (आतपे शुष्कः→आतपशुष्कः=धूप में सूखा हुआ)। छायाशुष्कः (छायायां शुष्कः)। स्थालीपक्वः (स्थाल्यां पक्वः)। कुम्भीपक्वः (कुम्भ्यां पक्वः)। चक्रबन्धः (चक्रे बन्धः)।

(iii) सप्तम्यन्त शब्द का कौए वाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है, यदि निन्दा का विषय हो तो[2]। यथा—

तीर्थध्वाङ्क्षः (तीर्थे ध्वाङ्क्षः इव→तीर्थध्वाङ्क्षः=जैसे तीर्थ-स्थानों पर कौआ एक स्थान पर स्थिर न बैठकर इधर से उधर उड़ता बैठता फिरता है, उसी प्रकार एक स्थान पर स्थिर न रहकर, पढ़ने के बहाने इधर उधर चक्कर लगाने वाला (छात्र) तीर्थध्वाङ्क्ष कहलाता है। इधर उधर फिरते रहना ही यहां निन्दा है। तीर्थकाकः। तीर्थवायसः। आदि।

(iv) सप्तम्यन्त शब्द का कृत्यप्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है, यदि ऋण का विषय हो तो[3]। यथा—

मासदेयम् ऋणम् (मासे देयम्→मासदेयम् ऋणम्=महीने में चुका देने योग्य ऋण) संवत्सरदेयम् ऋणम् (संवत्सरे देयम्→संवत्सरदेयम्)। त्र्यहदेयम् (त्र्यहे देयम्→त्र्यहदेयम्)।

(v) सप्तम्यन्त शब्द का अन्य शब्दों के साथ सञ्ज्ञा विषय में तत्पुरुष समास होता है[4]। यह नित्य समास है। इसका विग्रह नहीं होगा।

अरण्येतिलकाः[5] (जंगली तिल)। अरण्येमाषाः[5] (जङ्गली उड़द)। वनेकिंशुकाः[5] (जंगली ढाक)। वनेबिल्वकाः[5] (जङ्गली बेल फल)।

(vi) दिन और रात्रि के अवयववाची सप्तम्यन्त शब्दों का क्तप्रत्ययान्त शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[6]। यथा—

---

१. सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च (अष्टा. २.१.४१) २. ध्वाङ्क्षेण क्षेपे (अष्टा. २.१.४२)
३. कृत्यैर्ऋणे (अष्टा. २.१.४३) ४. सञ्ज्ञायाम् (अष्टा. २.१.४४)
५. हलदन्तात् सप्तम्याः सञ्ज्ञायाम् (अष्टा. ६.३.९) से सप्तमी का अलुक्।
६. क्तेनाहोरात्रावयवाः (अष्टा. २.१.४५)

पूर्वाह्णकृतम् (पूर्वाह्णे कृतम्→पूर्वाह्णकृतम्=दोपहर से पहले किया हुआ)। अपराह्णकृतम् (अपराह्णे कृतम्)। मध्याह्नपठितम् (मध्याह्ने पठितम्)। पूर्वरात्रभुक्तम् (पूर्वरात्रे भुक्तम्)। अपररात्रचिन्तितम् (अपररात्रे चिन्तितम्)। मध्यरात्रपीतम् (मध्यरात्रे पीतम्) सन्ध्यागर्जितम् (सन्ध्यायां गर्जितम्)।

(vii) 'तत्र' इस (सप्तम्यर्थ) अव्यय का क्तप्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है।[1] यथा—

तत्रभुक्तम्। तत्रपीतम्। तत्रपठितम्। तत्रनिर्मितम्॥ 'तत्र' के अव्यय होने के कारण यद्यपि यहां समास करने या न करने से स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता, तथापि दोनों पदों का मिलकर एक पद कहलाता है और एक ही स्वर रहता है।[2]

(viii) सप्तम्यन्त शब्द का क्तप्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है, यदि निन्दा का विषय हो तो।[3]

अवतप्तेनकुलस्थितम्[4] (तपी हुई भूमि पर नेवले के इधर उधर भागने के समान की जाने वाली चञ्चलता)।

प्रवाहेमूत्रितम्[4] (पानी की धारा में मूत्र करने के समान अशुद्धि फैलाना या अच्छी वस्तु को बिगाड़ना)।

भस्मनिहुतम्[4] (राख में होम करने के समान निष्फल कार्य)।

(ix) कुछ 'पात्रेसम्मिताः' आदि शब्द और भी हैं जिनमें सप्तमी तत्पुरुष समास हुआ है और जो निन्दा में प्रयुक्त होते हैं।[5] यथा—

पात्रेसम्मिताः (पात्र अर्थात भोजन के समय ही जो इकट्ठे हों और किसी कार्य में न जुटें वे)

कूपमण्डूकः (कुए में मेंढक के समान कम अनुभव या ज्ञान वाला)

पिण्डीशूरः (खाने मात्र में बहादुर और काम करने से पीछे हटने वाला)

गेहेशूरः (घर में डींगें हांकने वाला और बाहर भीगी बिल्ली के समान रहने वाला)

इसी प्रकार गर्भेतृप्तः, नगरकाकः, उदरकृमिः: कर्णेटिट्टिभः आदि अन्य शब्द हैं।

---

१. तत्र (अष्टा. २.१.४६)

२. ऐकपद्यमैकस्वर्यं च समासत्वाद् भवति (काशिका २.१.४६)

३. क्षेपे (अष्टा. २.१.४७)

४. तत्पुरुषे कृति बहुलम् (अष्टा. ६.३.१४) से सप्तमी का अलुक

५. पात्रेसम्मितादयश्च (अष्टा. २.१.४८)

(७) अवयवावयवि-तत्पुरुष समास—जिस तत्पुरुष का पूर्वपद अवयववाची हो और उत्तरपद अवयवि-वाची हो वह अवयवावयवि-तत्पुरुष कहलाता है।

(i) पूर्व, अपर, अधर और उत्तर इन अवयववाची शब्दों का अवयवि-वाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है यदि अवयव और अवयवी का आधार एक ही पदार्थ (=वस्तु) हो, अनेक न हों।[1] यथा—

पूर्वकाय: (पूर्वं कायस्य→पूर्वकाय:=शरीर का पूर्व भाग)
अपरकाय: (अपरं „ →अपरकाय:=शरीर का पिछला भाग)
उत्तरकाय: (उत्तरं „ →उत्तरकाय:=शरीर का ऊपरला भाग)

इसी प्रकार—पूर्वमेघ: (=मेघदूत ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध)। उत्तरमेघ: (=मेघदूत ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध)। पूर्वभारतम् (=पूर्वी भारतवर्ष)। उत्तरभारतम् (=उत्तरी भारतवर्ष)। आदि।

(ii) नपुंसकलिङ्ग वाले अवयववाची अर्द्ध शब्द का अवयवि-वाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है यदि उनका आधार एक ही वस्तु हो[2]। यथा—

अर्धनगरी (अर्धं नगर्या:→अर्धनगरी=आधा नगर)
अर्धपुस्तकम् (अर्धं पुस्तकस्य→अर्धपुस्तकम्=आधी पुस्तक)
अर्धकम्बल: (अर्धं कम्बलस्य→अर्धकम्बल:=आधा कम्बल)

(iii) द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, तुर्य और तुरीय इन अवयववाची शब्दों का अवयवि-वाची शब्दों के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है, यदि उनका आधार एक ही वस्तु हो।[3] यथा—

द्वितीयभिक्षा (द्वितीयं भिक्षाया:→द्वितीयभिक्षा=भिक्षा का दूसरा भाग)
तृतीयभिक्षा (तृतीयं भिक्षाया:→तृतीयभिक्षा= „ „ तृतीय „)
चतुर्थभिक्षा (चतुर्थं भिक्षाया:→चतुर्थभिक्षा= „ „ चौथा „)
तुर्यभिक्षा (तुर्यं भिक्षाया:→तुर्यभिक्षा= „ „ „ „)
तुरीयभिक्षा (तुरीयं भिक्षाया:→तुरीयभिक्षा= „ „ „ „)

इनमें पक्ष में षष्ठी-तत्पुरुष समास भी होता है। यथा—

भिक्षाद्वितीयम् (=भिक्षाया: द्वितीयम्→भिक्षाद्वितीयम्=भिक्षा का द्वितीय भाग)

---

१. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे (अष्टा. २.२.१)
२. अर्द्धं नपुंसकम् (अष्टा. २.२.२)
३. द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् (अष्टा. २.२.३)
तुरीयशब्दस्यापीष्यते (काशिका २.२.३)

इसी प्रकार—भिक्षातृतीयम्, भिक्षाचतुर्थम्, भिक्षातुर्यम्, भिक्षातुरीयम्।

(८) नञ्तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास का पूर्वपद नञ् अव्यय हो, वह नञ्तत्पुरुष कहलाता है।

(i) नञ् अव्यय का अन्य समर्थ शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है।[1] नञ् के ञ् की इत्सञ्ज्ञा और लोप होने पर न रहेगा। 'न' के नकार का भी लोप होगा[2] और अ बचेगा। यदि उत्तरपद के आरम्भ में कोई स्वर होगा तो उस नञ् के अ के बाद और स्वर से पहिले न् (नुट्) लग जाएगा।[3]

अब्राह्मणः (न ब्राह्मणः→अब्राह्मणः=ब्राह्मण से भिन्न)

अधर्मः (न धर्मः→अधर्मः=धर्म से अन्य)

असत्यम् (न सत्यम्→असत्यम्=सत्य से विपरीत)

अनीश्वरः (न ईश्वरः→अनीश्वरः=ईश्वर का अभाव)

अनश्वः (न अश्वः→अनश्वः=घोड़े से भिन्न)

कुछ नञ्समासों में नञ् के नकार का लोप नहीं भी होता है।[4] यथा—

नपुंसकम् (न स्त्री न पुमान्→नपुंसकम्[5] =स्त्री-पुरुष से भिन्न)

नासत्याः (न असत्याः→नासत्याः[6]=जो झूठे नहीं हैं=पूरे सच्चे)

नभ्राट् (न भ्राट्→नभ्राट्=काला बादल)

नपात् (न पात्→नपात्=अरक्षक अथवा पौत्र)

नवेदाः (न वेदाः→नवेदाः=अजानकार)

नमुचिः (न मुचिः→नमुचिः=न छोड़ने वाला=कामदेव)

(९) गतितत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास का पूर्वपद गतिसञ्ज्ञा से युक्त हो उसे गतितत्पुरुष कहते हैं।

(i) गति सञ्ज्ञा वाले शब्द का अन्य समर्थ शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है।[7] यथा—

ऊरीकृत्य (ऊरी[8] कृत्वा→ऊरीकृत्य[9]=स्वीकार करके)

---

१. नञ् (अष्टा. २.२.६) २. नलोपो नञः (अष्टा. ६.३.७३)

३. तस्मान्नुडचि (अष्टा. ६.३.७४)

४. नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या (अष्टा. ६.३.७५) ५. 'स्त्री-पुमान्' के स्थान पर 'पुंसक' आदेश हुआ।

६. यहाँ नुट् भी नहीं हुआ। ७. कुगतिप्रादयः (अष्टा. २.२.१८)

८. ऊर्यादिच्विडाचश्च (अष्टा. १.४.६१) से गति सञ्ज्ञा।

९. समास होने के फलस्वरूप 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (अष्टा. ७.१.३७) से क्त्वा को ल्यप्।

उररीकृत्य (उररी[1] कृत्वा→उररीकृत्य[2]=स्वीकार करके)
प्रादुष्कृत्य (प्रादुस्[1] कृत्वा→प्रादुष्कृत्य[2]=उत्पन्न करके)
आविष्कृत्य (आविस्[1] कृत्वा→आविष्कृत्य[2]=प्रकट करके)
शुक्लीकृत्य (अशुक्लं शुक्लं कृत्वा→शुक्लकृत्वा→शुक्ली[1] कृत्वा→शुक्लीकृत्य[2] =जो सफेद नहीं है उसे सफेद बनाकर)। अस्य च्वौ (अष्टा. ७.४.३२) से अ के स्थान पर ई आदेश।
सत्कृत्य (सत्[3] कृत्वा→सत्कृत्य[2]=आदर करके)
असत्कृत्य (असत्[3] कृत्वा→असत्कृत्य[2]=अनादर करके)
अलङ्कृत्य (अलम्[4] कृत्वा→अलङ्कृत्य[2]=सूभूषित करके)
पुरस्कृत्य (पुरस्[5] कृत्वा→पुरस्कृत्य[2]=आगे करके)
तिरस्कृत्य (तिरस्[6] कृत्वा→तिरस्कृत्य[2]=छुपाकर, तिरस्कार करके)
कणेहत्य (कणे[7] हत्वा→कणेहत्य[2]=मन भरकर)
मनोहत्य (मनस्[7] हत्वा→मनोहत्य[2]=मन भरकर)
साक्षात्कृत्य (साक्षात्[8] कृत्वा→साक्षात्कृत्य[2]=साक्षात्कार करके)
पाणौकृत्य (पाणौ[9] कृत्वा→पाणौकृत्य=विवाह करके)

(१०) प्रादितत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास के पूर्वपद प्र, सु, अति, अव, परि, निर् आदि अव्यय हों वह प्रादि-तत्पुरुष कहलाता है।

(i) प्र, सु, आ, दुर् आदि अव्ययों का प्रथमा-विभक्त्यन्त शब्दों के साथ गतः आदि अर्थों में तत्पुरुष समास होता है।[10] यथा—

प्राचार्यः (प्रगतः आचार्यः→प्रआचार्यः→प्राचार्यः=प्रधानाचार्य)

---

१. ऊर्यादिच्विडाचश्च (अष्टा. १.४.६१) से गति सञ्ज्ञा।
२. समास होने के फलस्वरूप 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७ १.३५) से क्त्वा के स्थान पर ल्यप् (=य) आदेश होता है।
३. आदरानादरयोः सदसती (अष्टा. २.४.६३) से सत् असत् की गति सञ्ज्ञा।
४. भूषणेऽलम् (अष्टा. १.४.६४) से 'अलम्' की गति सञ्ज्ञा।
५. पुरोऽव्ययम् (अष्टा. १.४.६७) से पुरस् की गति सञ्ज्ञा।
६. विभाषा कृञि (अष्टा. १.४.७२) से तिरस् की गति सञ्ज्ञा।
७. कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते (अष्टा. १.४.६६) से कणे तथा मनस् की गति सञ्ज्ञा।
८. साक्षात्प्रभृतीनि च (अष्टा. १.४.७४) से साक्षात् की गति सञ्ज्ञा।
९. नित्यं हस्ते पाणावुपयमने (अष्टा. १.४.७७) से पाणौ की गति सञ्ज्ञा।
१०. कुगतिप्रादयः (अष्टा. २.२.१८), प्रादयः गताद्यर्थे प्रथमया [वा.] (अष्टा. २.२.१८).

प्रान्तेवासी (प्रकृष्टः अन्तेवासी→प्र अन्तेवासी→प्रान्तेवासी=पट्ट शिष्य)
सुपुरुषः (शोभनः पुरुषः→सुपुरुषः=अच्छा आदमी)
आरक्तः (ईषत् रक्तः→आङ् रक्तः→आरक्तः=थोड़ा लाल)
दुष्पुरुषः (दुष्टः पुरुषः→दुष्पुरुषः=दुष्ट पुरुष)

प्रादि तत्पुरुष के इस प्रथम भेद के पूर्वपद और उत्तरपद समानाधिकरण हैं, अतः इसको समानाधिकरण तत्पुरुष के प्रकरण में देना चाहिये था। किन्तु प्रादितत्पुरुष के अन्य भेदों के पद व्यधिकरण हैं, इसलिये इस भेद को भी उन्हीं के साथ यहां दिया गया है।

(ii) अति आदि अव्ययों का द्वितीया-विभक्त्यन्त शब्दों के साथ 'क्रान्तः' आदि अर्थों में तत्पुरुष समास होता है।[1] यथा—

अतिखट्वः (अतिक्रान्तः खट्वाम्→अतिखट्वः[2]=खाट से बड़ा)
अतिमालः (,, ,, मालाम्→अतिमालः[2]=माला से भी बढ़कर)
अभिमुखः (अभिगतः मुखम्→अभिमुखः=सामने की ओर आया हुआ)
प्रत्यक्षम् (प्रतिगतम् अक्षम्→प्रत्यक्षम्=इन्द्रियों को प्राप्त ज्ञान)।

(iii) अव आदि उपसर्गों का तृतीया-विभक्त्यन्त शब्दों के साथ क्रुष्टः आदि अर्थों में तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—

अवकोकिलः (अवक्रुष्टः कोकिलेन→अवकोकिलः[2]=कोयल से निनादित)।
परिवीरुत् (परिणद्धः वीरुधा→परिवीरुत्=बेल के द्वारा लपेटा हुआ।
संवर्मा (सम् नद्धः वर्मणा→संवर्मा=कवच से युक्त)।

(iv) परि आदि उपसर्गों का चतुर्थी-विभक्त्यन्त शब्दों के साथ 'ग्लानः' आदि अर्थों में तत्पुरुष समास होता है[4]। यथा—

पर्यध्ययनः (परिग्लानः अध्ययनाय→पर्यध्ययनः=पढ़ने के लिये अनुत्साही)।
उत्सङ्ग्रामः (उद्युक्तः सङ्ग्रामाय→उत्सङ्ग्रामः=युद्ध के लिये तैयार)।

(v) निर् आदि उपसर्गों का पञ्चमी-विभक्त्यन्त शब्दों के साथ 'क्रान्तः' आदि

---

१. अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया [वा.] (अष्टा. २.२.१८)।
२. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते (अष्टा. १.२.४४) से खट्वा, माला और कोकिला की उपसर्जन सञ्ज्ञा और 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' (अष्टा. १.२.४८) से ह्रस्वता।
३. अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया [वा०] (अष्टा. २.२.१८)।
४. पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या [वा०] (अष्टा. २.२.१८)।

अर्थों में तत्पुरुष समास होता है[1]। यथा—

निर्वाराणसिः (निष्क्रान्तः वाराणस्याः→निर्वाराणसिः=बनारस से निकला हुआ)।
उत्कुलः (उत्क्रान्तः कुलात्→उत्कुलः=कुल से निकला हुआ)।
निरङ्गुलम् (निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः→निरङ्गुलम्=अङ्गुलियों से भी आगे निकला हुआ वस्त्र)।

(११) उपपदतत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास का पूर्वपद 'उपपद' सञ्ज्ञा वाला हो और उत्तरपद कृत्प्रत्ययान्त शब्द हो, वह उपपदतत्पुरुष कहलाता है।

कृत्प्रत्ययों के विधायक सूत्रों में जो सप्तम्यन्त शब्द हैं, उनके द्वारा निर्दिष्ट शब्दों की 'उपपद' सञ्ज्ञा है[2]। जैसे—

कर्मण्यण् (अष्टा. ३.२.१) इस सूत्र में 'कर्मणि' शब्द सप्तम्यन्त है। उसके द्वारा निर्दिष्ट 'कुम्भ' आदि कर्मकारक शब्दों की 'उपपद' सञ्ज्ञा हो जायेगी। उपपद सञ्ज्ञा वाले कुम्भ शब्द का कार (अण् रूप कृत्प्रत्ययान्त) शब्द के साथ समास होगा।

(i) उपपद सञ्ज्ञा वाले शब्दों का अन्य समर्थ शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है, किन्तु वह उपपद तिङन्त न हो[3]। यथा—

कुम्भकारः (कुम्भं करोतीति→कुम्भ ङस् कृ अण्[4]→कुम्भकारः=घड़ा बनाने वाला)।
नगरकारः (नगरं करोतीति→नगर ङस् कृ अण्[4]→नगरकारः=नगर-निर्माता)।
तन्तुवायः (तन्तून् वयतीति→तन्तु आम् वेञ् अण्[5]→तन्तुवायः=जुलाहा)।
द्विपः (द्वाभ्यां पिबतीति→द्वि भ्याम् पा क[6]→द्विपः=हाथी)।
पादपः (पादैः पिबतीति→पाद भिस् पा क[6]→पादपः=पेड़)।
शङ्करः (शम् करोतीति→शम् कृ अच्[7]→शङ्करः=शान्ति करने वाला)।

---

१. निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या [वा०] (अष्टा. २.२.१८)।
२. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (अष्टा. ३.१.९२)।
३. उपपदमतिङ् (अष्टा. २.२.१९)।
४. कर्मण्यण् (अष्टा. ३.२.१)।
५. ह्वावामश्च (अष्टा. ३.२.२)।
६. सुपिस्थः (अष्टा. ३.२.४)।
७. शमि धातोः सञ्ज्ञायाम् (अष्टा. ३.२.१४)।

यशस्करी (यशः करोतीति→यशस् कृ ट[1] ङीप्→यशस्करी=कीर्त्ति करने वाली)।

जनमेजयः (जनान् एजयतीति→जन आम् एज् णिच् खश्[2]→जनमेजयः= मनुष्यों को कंपाने वाला)।

उरगः (उरसा गच्छतीति→उरस् टा गम् ड[3]→उरगः=सांप)।

भुजगः (भुजं (=कुटिलं) गच्छतीति→भुज ङस् गम् ड[4]→भुजगः=सांप)।

उष्णभोजी (उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः→उष्णङस् भुज 'णिनि'[5]→उष्णभोजी= गरमागरम खाने के स्वभाव वाला)।

वृत्रहा (वृत्रं हतवान् इति→वृत्र ङस् हन् क्विप्[6]→वृत्रहा=वृत्रासुर को जिसने मार दिया वह=इन्द्र)।

(१२) अन्यपदार्थादिप्रधान तत्पुरुष—जिस तत्पुरुष समास में उत्तरपद के अर्थ के अतिरिक्त अन्यपद अथवा उभयपद आदि के अर्थ की प्रधानता हो उसे अन्य-पदार्थादिप्रधान तत्पुरुष कहते हैं।

(i) 'एहि' आदि शब्दों का 'ईडे' आदि शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है और प्रायः अन्यपद के अर्थ की प्रधानता होती है[7]। यथा—

एहीडम् ('एहि ईडे' इति उच्चारणं यस्मिन् कर्मणि तत्→एहीडम्[8]=ऐसा कार्य जिसमें 'आओ स्तुति करूं' ऐसा कहा जाय)।

एहियवम् ('एहि यौमि' इति यस्मिन् कर्मणि तत्→एहियवम्[8]=ऐसा कार्य जिसमें 'आओ मिलाता हूं' ऐसा कहा जाय)।

उद्धरोत्सृजा (उद्धर (=निस्सारय) उत्सृज (=देहि) इति यस्यां क्रियायां सा→उद्धरोत्सृजा=(ऐसी क्रिया जिसमें 'निकालो और दो' ऐसा कहा जाय)।

अकिञ्चनः (न [अस्ति] किञ्चन यस्य सः→अकिञ्चनः=वह जिसके पास कुछ भी नहीं है=दरिद्र)।

---

१. कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (अष्टा. ३.२.२०)।

२. एजेः खश् (अष्टा. ३.२.२८)।

३. उरसो लोपश्च [वा०] (अष्टा. ३.२.४८)।   ४. डप्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते।

५. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये (अष्टा. ३.२.७८)।

६. ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् (अष्टा. ३.२.८७)।

७. एहीडादयोऽन्यपदार्थे [गणसूत्र] (अष्टा. २.१.७२)।

८. यहां निपातन से 'ईडे' के स्थान पर 'ईड' आदेश हुआ और 'यौमि' के स्थान पर 'यव' आदेश हुआ।

अकुतोभयः (न [अस्ति] कुतः [अपि] भयं यस्य सः→अकुतोभयः=सब ओर से भयरहित)।

उच्चावचम् (उदक् च अवाक् च→उच्चावचम्=ऊंचा-नीचा, छोटा-बड़ा)।

निश्चप्रचम् (निश्चितं च प्रचितं च→निश्चप्रचम्=सुनिश्चित)।

राजान्तरम् (अन्यो राजा→राजान्तरम्=अन्य राजा)।

ग्रामान्तरम् (अन्यो ग्रामः→ग्रामान्तरम्=अन्य गांव)।

(ii) जहि आदि क्रियावाची शब्दों का 'जोडम्' आदि कर्मकारक वाची शब्दों के साथ क्रिया के बार-बार कहने अर्थ में तत्पुरुष समास होता है और समास का वाच्य कर्त्ता कारक होता है[1]।

जहिजोडः ('जहि जोडम्' इति पुनः पुनः य आह स→जहिजोडः=)

जहिस्तम्बः ('जहि स्तम्बम्' ,, ,, ,, →जहिस्तम्बः=)

(iii) 'अश्नीत' आदि तिङन्त शब्दों का 'पिबत' आदि तिङन्त शब्दों के साथ क्रिया के नैरन्तर्य बताने के अर्थ में तत्पुरुष समास होता है[2] और अन्य पदार्थ की प्रधानता होती है।

अश्नीतपिबता ('अश्नीत पिबत' इति सततं यत्र कथ्यते सा क्रिया→अश्नीतपिबता=जहां 'खाओ पिओ' ऐसा निरन्तर कहा जाय वह क्रिया)।

पचतभृज्जता ('पचत भृज्जत' इति सततं यत्र कथ्यते सा क्रिया→पचतभृज्जता=जहां 'पकाओ भूंजो' ऐसा निरन्तर कहा जाय वह क्रिया)।

खादतमोदता ('खादत मोदध्वम्) इति सततं यत्र कथ्यते सा क्रिया→खादतमोदता[3]=जहां 'खाओ मौज करो' ऐसा निरन्तर कहा जाय वह क्रिया)।

समानाधिकरण (=कर्मधारय) तत्पुरुष

जिस तत्पुरुष समास के पूर्वपद और उत्तरपद दोनों एक ही पदार्थ (वस्तु) के वाचक हों, वह समानाधिकरण तत्पुरुष कहलाता है। यहां पूर्वपद और उत्तरपद विशेषण और विशेष्य रूप में अथवा विशेष्य और विशेषण रूप में अथवा उपमान और सामान्य धर्म रूप में अथवा उपमेय और उपमान रूप में अथवा विशेषण और विशेषण रूप में आते हैं।

समानाधिकरण तत्पुरुष समास का ही दूसरा नाम कर्मधारय तत्पुरुष है[4]।

कर्मधारय (समानाधिकरण) तत्पुरुष के मुख्य रूप से छः भेद हैं। १. विशेषण-

---

१. जहि कर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्त्तारं चाभिदधाति [गणसूत्र] (अष्टा. २.१.७२)।

२. आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये [गणसूत्र] (अष्टा. २.१.७२)।

३. गणपाठ में निपातन करने से 'मोदध्वम्' के स्थान पर 'मोदत' आदेश हुआ।

४. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (अष्टा. १.२.४२)।

पूर्वपद कर्मधारय । २. द्विगु । ३. विशेष्य-पूर्वपद कर्म० । ४. विशेषणोभयपद कर्म० । ५. उपमान-पूर्वपद कर्म० । ६. उपमेय-पूर्वपद कर्म० । इन्हें क्रम से समझाते हैं—

(१) **विशेषण-पूर्वपद कर्मधारय** :—जिस कर्मधारय तत्पुरुष समास में पूर्वपद तो विशेषण हो और उत्तरपद विशेष्य हो, वह विशेषण-पूर्वपद कर्मधारय कहलाता है ।

(i) विशेषणवाची शब्द का समानाधिकरण विशेष्यवाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[1] । यथा—

नीलोत्पलम् (नीलम् उत्पलम् → नीलोत्पलम् = नीला कमल) ।
रक्तोत्पलम् (रक्तम् उत्पलम् → रक्तोत्पलम् = लाल कमल) ।

श्वेतवस्त्रम् (श्वेतं वस्त्रम्) । गौरमुखम् । स्थूलपुरुषः । आदि ।
'कृष्णसर्पः' में नित्यसमास होगा ।

कहीं-कहीं विशेषण और विशेष्य का आपस में समास नहीं भी होता । यथा—
रामो जामदग्न्यः, कार्त्तवीर्यः अर्जुनः आदि ।

(ii) पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम और वीर इन विशेषण शब्दों का भी समानाधिकरण विशेष्य शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[2] । यथा—

पूर्वपुरुषः (पूर्वः पुरुषः → पूर्वपुरुषः = पहिले का पुरुष = बुजुर्ग) ।
अपरपुरुषः (अपरः पुरुषः → अपरपुरुषः = बाद का पुरुष = वंशज) ।

इसी प्रकार—प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः । जघन्यपुरुषः । समानपुरुषः । मध्यपुरुषः । मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः ।

(iii) सत्, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट इन पूजावाची विशेषण शब्दों का पूज्यवाची समानाधिकरण विशेष्य शब्दों के साथ ही तत्पुरुष समास होता है[3] । यथा—

सत्पुरुषः (सन् पुरुषः → सत्पुरुषः = सज्जन पुरुष) ।
सच्छात्रः (सन् छात्रः → सच्छात्रः = अच्छा छात्र) ।
महापुरुषः (महान् पुरुषः → महापुरुषः = बड़ा पुरुष = महान् पुरुष) ।
परमपुरुषः (परमः पुरुषः) । उत्कृष्टपुरुषः (उत्कृष्टः पुरुषः) ।

---

१. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (अष्टा. २.१.५७) ।
२. पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च (अष्टा. २.१.५८) ।
३. सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः (अष्टा. २.१.६१) ।

(iv) एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल इन विशेषण-वाची शब्दों का समानाधिकरण विशेष्य शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[1]। यथा—

एकशाटी (एका शाटी→एकशाटी[2]=एक साड़ी)।

एकभिक्षा (एका भिक्षा→एकभिक्षा[2]=एक भीख)।

सर्वदेवाः (सर्वे देवाः→सर्वदेवाः=सारे देव)।

जरद्धस्ती (जरन् हस्ती→जरद्धस्ती=बूढ़ा हाथी)।

पुराणान्नम् (पुराणम् अन्नम्→पुराणान्नम्=पुराना अन्न)।

नवभवनम् (नवं भवनम्→नवभवनम्=नया मकान)।

केवलदुग्धम् (केवलं दुग्धम्→केवलदुग्धम्=केवल दूध)।

(v) दिशावाची और संख्यावाची विशेषण शब्दों का समानाधिकरण विशेष्य शब्दों के साथ सञ्ज्ञा विषय में तत्पुरुष समास होता है[3]। यह नित्यसमास है।

पूर्वेषुकामशमी। अपरेषुकामशमी। (ये दोनों गांवों के नाम हैं)।

पञ्चाम्राः। (किन्हीं आम के पेड़ों का नाम है)।

सप्तर्षयः (ध्रुव तारे के चारों ओर चक्कर काटने वाले सदा साथ रहने वाले सात तारों का नाम है)।

[vi] पाप और अणक इन निन्दावाची विशेषण शब्दों का निन्द्यवाची समानाधिकरण विशेष्य शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[4]। यथा—

पापपुरुषः [पापः (पापी) पुरुषः→पापपुरुषः=पापी पुरुष]।

पापस्वामी [पापः स्वामी→पापस्वामी=पापी मालिक]।

अणकाधिकारी [अणकः अधिकारी→अणकाधिकारी=तिरस्करणीय अफसर]

अणकपुरुषः [अणकः पुरुषः→अणकपुरुषः=तुच्छ आदमी]।

[vi] कुत्सित तथा अल्प अर्थ वाले 'कु' अव्यय का विशेष्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[5]। यथा—

कुपुरुषः [कुत्सितः पुरुषः→कुपुरुषः=खराब आदमी]।

कापुरुषः [कुत्सितः पुरुषः→कापुरुषः[6]=खराब आदमी]।

---

१. पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन [अष्टा. २.१.४९]।

२. एकतद्धिते च [अष्टा. ६.३.६२] से एका के आ को ह्रस्व अ हो गया।

३. दिक्संख्ये सञ्ज्ञायाम् [अष्टा. २.१.५०]।

४. पापाणके कुत्सितैः [अष्टा. २.१.५४]।

५. कुगतिप्रादयः [अष्टा. २.२.१८]।

६. विभाषा पुरुषे [अष्टा. ६.३.१०६] से कु के स्थान पर का आदेश हुआ।

कदन्नम् [कुत्सितम् अन्नम्→कदन्नम्[१]=खराब अन्न]।
कदश्वः [कुत्सितः अश्वः→कदश्वः[१]=कमजोर घोड़ा]।
कद्रथः [कुत्सितः रथः→कद्रथः[२]=खराब रथ]।
कापथः [कुत्सितः पन्थाः→कापथः[३]= ,, रास्ता]।
कवोष्णम् [ईषत् (अल्पम्) उष्णम्→कु उष्णम्→कवोष्णम्[४]=थोड़ा गरम]।
कोष्णम् [,, (,,) ,, → ,, ,, →कोष्णम्[४]=थोड़ा गरम]।
कदुष्णम् [,, (,,) ,, → ,, ,, →कदुष्णम्[४]=थोड़ा गरम]।
कामधुरम् [ईषत् मधुरम्→कु मधुरम्→कामधुरम्[५]=थोड़ा मीठा]।

[vii] कतर और कतम शब्द का समानाधिकरण जातिवाची [=वर्गविशेष-वाची] विशेष्य के साथ तत्पुरुष समास होता है, यदि पूछताछ का विषय हो[६]। यथा—

कतरकठः [कतरः कठः→कतरकठः=दो में से कठ जाति का कौन है?]
कतमकठः [कतमः कठः→कतमकठः=बहुतों में से कठ जाति का कौन सा है?]
कतरभारतीयः [कतरः भारतीयः→कतरभारतीयः=दो में से भारतवासी कौन है?]
कतमभारतीयः [कतमः भारतीयः→कतमभारतीयः=तुम सबमें भारतवासी कौन है?]

[viii] किम् शब्द का समानाधिकरण विशेष्य के साथ निन्दा विषय में तत्पुरुष समास होता है[७]। यथा—

किंराजा [किम् राजा→किंराजा=निन्दनीय राजा]।
किंसखा [किम् सखा→किंसखा=निन्दनीय मित्र]।
किङ्गौः [किम् गौः→किङ्गौः=निन्दनीय बैल]।
किंराजा यो न रक्षति=वह भी कोई राजा है जो रक्षा नहीं करता।
किंसखा यो अभिद्रुह्यति=वह भी कोई मित्र है जो द्रोह करता है।
किङ्गौः यो न वहति=वह भी कोई बैल है जो भार नहीं ढोता।

[ix] शाकप्रधान आदि विशेषण शब्दों का पार्थिव आदि समानाधिकरण

---

१. कोः कत् तत्पुरुषेऽचि [अष्टा. ६.३.१०१] से कु के स्थान पर कत् आदेश हुआ।
२. रथवदयोश्च [अष्टा. ६.३.१०२] से कु के स्थान पर कत् आदेश हुआ।
३. का पथ्यक्षयोः [अष्टा. ६.३.१०४] से कु के स्थान पर का आदेश हुआ।
४. कवं चोष्णे [अष्टा. ६.३.१०७] से कु के स्थान पर कव, का तथा कत् आदेश हुआ।
५. ईषदर्थे [अष्टा. ६.३.१०५] से कु के स्थान पर का आदेश हुआ।
६. कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने [अष्टा. २.१.६३]।
७. किं क्षेपे [अष्टा० २.१.६४.]।

विशेष्य शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है और विशेषण शब्दों के उत्तरभाग का लोप हो जाता है[1]। यथा—

शाकपार्थिवः [शाकप्रधानः पार्थिवः→शाकपार्थिवः = भोजन में शाक को प्रधानता देने वाला राजा]।

शाकपार्थिवः (शाकप्रियः पार्थिवः→शाकपार्थिवः = शाक को चाव से खाने वाला राजा)।

कुतुपसौश्रुतः [कुतुपप्रधानः सौश्रुतः→कुतुपसौश्रुतः = कुप्पियाँ अधिक रखने वाला वैद्य]

[x] श्रेणि आदि शब्दों का कृत आदि समानाधिकरण शब्दों के साथ च्व्यर्थ विषय में (अर्थात् जो वस्तु उस रूप में नहीं है उसे उस रूप में लाने के विषय में) तत्पुरुष समास होता है[2]। यथा—

श्रेणिकृताः [अश्रेणयः श्रेणयः कृताः→श्रेणिकृताः = जो पंक्ति में नहीं थे वे पंक्ति में किये गये]।

एककृताः [अनेके एके कृताः→एककृताः = जो एक नहीं थे वे एक किये गये]।

राशिकृताः [अराशयः राशयः कृताः→राशिकृताः = जो बिखरे हुए थे वे ढेरी रूप में किये गये]।

पण्डितकृताः [अपण्डिताः पण्डिताः कृताः→पण्डितकृताः = जो अविद्वान् थे वे विद्वान् बनाये गये]।

श्रेणिमताः [अश्रेणयः श्रेणयः मताः→श्रेणिमताः = जो पंक्ति रूप में नहीं थे वे पंक्ति रूप में माने गये]।

श्रेण्युक्ताः [„ „ उक्ताः→श्रेण्युक्ताः = जो पंक्ति रूप में नहीं थे वे पंक्ति रूप में कहे गये]।

इसी प्रकार—एकमताः, एकोक्ताः। राशिमताः, राश्युक्ताः। पण्डितमताः, पण्डितोक्ताः। अध्यापककृताः, अध्यापकमताः, अध्यापकोक्ताः। चपलकृताः, चपलमताः, चपलोक्ताः। पटुकृताः, पटुमताः, पटूक्ताः। आदि।

[xi] दिशावाची विशेषण शब्द का तद्धितार्थ के विषय में और उत्तरपद परे रहने पर, समानाधिकरण विशेष्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—

पौर्वशालः [पूर्वस्यां शालायां जातः→पौर्वशालः[4] = पूर्व दिशा वाली शाला में उत्पन्न]

दाक्षिणशालः [दक्षिणस्यां शालायां जातः→दाक्षिणशालः[4] = दक्षिण वाले कमरे में उत्पन्न]।

---

१. शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च (वा.) [अष्टा.२.१.६०]।
२. श्रेण्यादयः कृतादिभिः [अष्टा. २.१.५९]।
३. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च [अष्टा. २.१.५१]।
४. दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः [अष्टा. ४.२.१०७] से तद्धितार्थ (शेष 'जात' अर्थ) में ञ [=अ] प्रत्यय हुआ। आदिवृद्धि आदि कार्य होने पर पौर्वशालः।

पूर्वशालाप्रियः [पूर्वा शाला प्रिया अस्य→पूर्वशालाप्रियः[१]=पूर्व के कमरे से लगाव रखने वाला]।

दक्षिणशालाप्रियः [दक्षिणा शाला प्रिया अस्य→दक्षिणशालाप्रियः[१]=दक्षिण कमरे से लगाव रखने वाला]।

[xii] ईषत् अव्यय का गुणवाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है पर वह गुणवाची, कृदन्त न हो[२]। यथा—

ईषद्रक्तम् [ईषत् रक्तम्→ईषद्रक्तम्=थोड़ा लाल]।
ईषन्निपुणः [ईषत् निपुणः→ईषन्निपुणः=कम चतुर]।

[२] द्विगु (संख्याविशेषण-पूर्वपद) तत्पुरुष—जिस कर्मधारय-तत्पुरुष समास के पूर्वपद में संख्यावाची शब्द हो और जो तद्धितार्थ समाहार आदि अर्थों में होता हो, उसे द्विगु-तत्पुरुष या द्विगु-कर्मधारय-तत्पुरुष कहते हैं। यद्यपि यह भी विशेषण-पूर्वपद कर्मधारय का ही अङ्ग है तथापि इसका प्रयोग 'द्विगु' नाम से होता है, अतः इसका पृथक्शः निर्देश किया गया है।

(i) संख्यावाची विशेषण शब्द का तद्धितार्थ के विषय में, समाहार के वाच्यार्थ होने पर और उत्तरपद परे रहने पर समानाधिकरण विशेष्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[३]। इसी को 'द्विगु' भी कहते हैं[४]। द्विगु वस्तुतः तत्पुरुष का ही भेद है[५]।

यह द्विगु समास समाहार में सदा एकवचन में ही प्रयुक्त होता है[६]। इसका लिङ्ग सामान्यतया नपुंसक लिङ्ग रहता है[७]। जिस द्विगु का उत्तरपद अकारान्त होगा वह स्त्रीलिङ्ग हो जायेगा[८]। स्त्रीलिङ्ग में उससे ङीप् (ई) प्रत्यय लगेगा[९]। परन्तु पात्र आदि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके अन्त में रहने पर भी द्विगु समास स्त्रीलिङ्ग नहीं होगा[१०] अपितु नपुंसक लिङ्ग ही रहेगा। आबन्त (=आकारान्त) उत्तरपद वाला

---

१. यहां 'प्रिय' उत्तरपद में होने से पूर्वा और दक्षिणा शब्दों का शाला शब्द के साथ समास हुआ। 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' [अष्टा. ६.३.४२] से पुंवद्भाव होने से पूर्वा के स्थान पर पूर्व और दक्षिणा के स्थान पर दक्षिण हुआ।

२. ईषदकृता; ईषद् गुणवचनेनेति वक्तव्यम् (वा०) [अष्टा. २.२.७]।

३. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (अष्टा. २.१.५१)।

४. संख्यापूर्वो द्विगुः (अष्टा. २ १.५२)।

५. द्विगुश्च (अष्टा. २.१.२१)। ६. द्विगुरेकवचनम् (अष्टा. २.४.१)।

७. स नपुंसकम् (अष्टा. २.४.२७)।

८. अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते [वा०] (अष्टा. २.४.१७)।

९. द्विगोः (अष्टा. ४.१.२१)।

१०. पात्रादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः [वा०] (अष्टा. २.४.१७)।

द्विगु विकल्प से स्त्रीलिङ्ग होगा[1], पक्ष में नपुंसक-लिङ्ग रहेगा। जब द्विगु के उत्तरपद में कोई अनन्त (तक्षन् आदि) शब्द हो तो उसके न् का लोप हो जाता है और द्विगु विकल्प से स्त्रीलिङ्ग रहता है[2]।

तद्धितार्थ में—पाञ्चनापितिः (पञ्चानां नापितानाम् अपत्यम्→पाञ्चनापितिः[3]=पाँच नाइयों की सन्तान)।

समाहार में—पञ्चगवम् (पञ्चानां गवां समाहारः→पञ्चगवम्[4]=पांच गायें)।

पञ्चकुमारि (पञ्चानां कुमारीणां समाहारः→पञ्चकुमारि[5]=पांच कुमारियां)।

दशपूली (दशानां पूलानां समाहारः→दशपूली=दस घास के पूले)।

अष्टाध्यायी (अष्टानाम् अध्यायानां समाहारः→अष्टाध्यायी=आठ अध्याय)।

पञ्चपात्रम् (पञ्चानां पात्राणां समाहारः→पञ्चपात्रम्=पांच पात्र)।

चतुर्युगम् (चतुर्णां युगानां समाहारः→चतुर्युगम्=चार युग)।

त्रिभुवनम् (त्रयाणां भुवनानां समाहारः→त्रिभुवनम्=तीन भुवन)।

सप्तखट्वम् (सप्तानां खट्वानां समाहारः→सप्तखट्वम्=सात खाटें)।

सप्तखट्वी (,, ,, ,, →सप्तखट्वी= ,, ,,)।

अष्टतक्षम् (अष्टानां तक्ष्णां ,, →अष्टतक्षम्=आठ बढ़ई)।

अष्टतक्षी (,, ,, ,, →अष्टतक्षी= ,, ,,)।

उत्तरपद परे रहने पर—पञ्चगवधनः (पञ्च गावः धनं यस्य→पञ्चगवधनः=पांच गौ रूपी धन वाला)।

चतुर्मिष्टान्नप्रियः (चत्वारि मिष्टान्नानि प्रियाणि यस्य=चार मिठाईयों को चाव से खाने वाला)।

[३] विशेष्य-पूर्वपद कर्मधारय—जिस कर्मधारय तत्पुरुष समास में पूर्वपद विशेष्य हो और उत्तरपद विशेषण हो, उसे विशेष्य-पूर्वपद पर कर्मधारय कहते हैं।

[i] जातिवाची विशेष्य शब्द का प्रशंसावाची समानाधिकरण विशेषण शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[6]। यथा—

---

१. वाऽऽबन्तः स्त्रियामिष्टः [वा०] (अष्टा. २.४.१७)।

२. अनो नलोपश्च वा च द्विगुः स्त्रियाम् [वा०] (अष्टा. २.४.१७)।

३. अत इञ् (अष्टा. ४.१.९५) से इञ् प्रत्यय।

४. गोरतद्धितलुकि (अष्टा. ५.४.९२) से समासान्त टच् [=अ] प्रत्यय।

५. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (अष्टा. १.२.४७) से ह्रस्व।

६. प्रशंसावचनैश्च [अष्टा. २.१.६६]।

गोप्रकाण्डम्	[बढ़िया गाय या बैल]	अश्वप्रकाडम्	[बढ़िया घोड़ा]
गोमतल्लिका	[,, ,,]	अश्वमतल्लिका	[,, ,,]
गोमर्चचिका	[,, ,,]	अश्वमर्चचिका	[,, ,,]
गवोद्धः	[,, ,,]	अश्वोद्धः	[,, ,,]
गोतल्लजः	[,, ,,]	अश्वतल्लजः	[,, ,,]

मनुष्यप्रकाण्डम् [श्रेष्ठ मनुष्य], मनुष्यमतल्लिका, मनुष्यमर्चचिका, मनुष्योद्धः, मनुष्यतल्लजः। वृक्षप्रकाण्डम्। वृक्षोद्धः। आदि।

(ii) जातिवाची विशेष्य शब्द का पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक, और धूर्त्त इन समानाधिकरण विशेषण शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[1]। यथा—

हस्तिपोटा (हस्तिनी पोटा→हस्तिपोटा[2]=नर और मादा दोनों के चिह्नों से युक्त हथिनी)।

हस्तियुवतिः (हस्तिनी युवतिः→हस्तियुवतिः[2]=जवान हथिनी)।

अग्निस्तोकः (अग्निः स्तोकः→अग्निस्तोकः=थोड़ी अग्नि)।

दधिकतिपयम् (दधि कतिपयम्→दधिकतिपयम्=कुछ दही)।

गोगृष्टिः (गौः गृष्टिः→गोगृष्टिः=पहिली बार ब्याई हुई गाय)।

गोधेनुः (गौः धेनुः→गोधेनुः=नई ब्याई हुई गाय)।

गोवशा (गौः वशा→गोवशा=बांझ गाय)।

गोवेहत् (गौः वेहत्→गोवेहत्=गर्भ गिरा देने वाली गाय)।

गोवष्कयणी (गौः वष्कयणी→गोवष्कयणी=जवान बछड़े वाली गाय)।

कठप्रवक्ता (कठः प्रवक्ता→कठप्रवक्ता=कठ जाति का व्याख्याता)।

कठश्रोत्रियः (कठः श्रोत्रियः→कठश्रोत्रियः=कठ जाति का वेदपाठी)।

कलापाध्यापकः (कलापः अध्यापकः→कलापाध्यापकः कलाप जाति का अध्यापक)।

कलापधूर्त्तः (कलापः धूर्त्तः→कलापधूर्त्तः=धूर्त्त कलाप)।

(iii) चतुष्पाद् (=चार पांव वाले) वाची विशेष्य शब्द का समानाधिकरण गर्भिणी (रूप विशेषण) शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—

---

१. पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्त्तैर्जातिः (अष्टा. २.१.६५)।

२. पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु (अष्टा. ६.३.४२) से हस्तिनी के स्थान पर पुंवद्-भाव से हस्तिन् शब्द हुआ। न् का लोप।

३. चतुष्पादो गर्भिण्या (अष्टा. २.१.७१)।

गोगर्भिणी (गौः गर्भिणी→गोगर्भिणी=गर्भवती गाय)।
अजागर्भिणी (अजा गर्भिणी→अजागर्भिणी=गर्भवती बकरी)।

(iv) विशेष्य रूप युवन् शब्द का विशेषण रूप खलति, पलित, वलिन और जरन् शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[1]। ये पुंल्लिङ्ग शब्द हैं। इनके स्त्रीलिङ्ग का स्त्रीलिङ्ग के साथ समास होगा। अर्थात् युवति शब्द का खलती, पलिता, वलिना और जरती शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होगा।

युवखलतिः (युवा खलतिः→युवखलतिः=गंजा जवान पुरुष)
युवखलती (युवतिः खलती→युवखलती[2]=गंजी जवान स्त्री)
युवपलितः (युवा पलितः→युवपलितः=सफेद बालों वाला जवान पुरुष)
युवपलिता (युवतिः पलिता→युवपलिता[2]=सफेद बालों वाली जवान स्त्री)
युववलिनः (युवा वलिनः→युववलिनः—झुर्रियों वाला जवान पुरुष)
युववलिना (युवतिः वलिना→युववलिना[2]=झुर्रियों वाली जवान स्त्री)
युवजरन् (युवा जरन्→युवजरन्=जवान होते हुए भी बुढ्ढ़ा लगने वाला)
युवजरती (युवतिः जरती→युवजरती[2]=जवान होते हुए भी बूढ़ी लगने वाली स्त्री)

(v) विशेष्य भूत 'कुमारी' शब्द का विशेषण भूत समानाधिकरण 'श्रमणा' आदि शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है।[3] श्रमणादिगण में श्रमणा, प्रव्रजिता, कुलटा आदि जो स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं उनके साथ 'कुमारी' शब्द का और अध्यापक, अभिरूपक, पण्डित आदि पुंलिङ्ग शब्द हैं उनके साथ 'कुमार' शब्द का समास होगा तथा अध्यापिका, पण्डिता आदि के साथ कुमारी का समास होगा। यथा—

कुमारश्रमणा (कुमारी श्रमणा→कुमारश्रमणा[2]=कुंआरी जो संन्यासिनी बनी हुई है)
कुमारप्रव्रजिता (कुमारी प्रव्रजिता→कुमारप्रव्रजिता[2]=,, ,, ,, ,,)
कुमारगर्भिणी (,, गर्भिणी→कुमारगर्भिणी[2]=कुँआरी जो गर्भवती हो गई है)
कुमारदासी (,, दासी→कुमारदासी[2]=दासी कुंआरी)
कुमाराध्यापकः (कुमारः अध्यापकः→कुमाराध्यापकः=अध्यापक कुमार)
कुमारपण्डितः (,, पण्डितः→कुमारपण्डितः=पण्डित कुमार)

---

१. युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः (अष्टा. २.१.६७)
२. पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु (अष्टा. ६.३.४२) से पुंवद्भाव हुआ, अतः युवति के स्थान पर युव (=युवन्) शब्द हो गया और कुमारी के स्थान पर कुमार।
३. कुमारः श्रमणादिभिः (अष्टा. २.१.७०)

कुमारनिपुणः (कुमारः निपुणः→कुमारनिपुणः = निपुण कुमार)
कुमाराध्यापिका (कुमारी अध्यापिका→कुमाराध्यापिका[1] = पढ़ाने वाली कुमारी)
कुमारपण्डिता (कुमारी पण्डिता→कुमारपण्डिता[1] = पण्डिता कुमारी)
कुमारपटुः (कुमारः पटुः→कुमारपटुः→ चतुर कुमार)
कुमारपट्वी (कुमारी पट्वी→कुमारपट्वी[1] = चतुर कुमारी) ॥ आदि ।

(vi) विशेष्य रूपी कृत्य-प्रत्ययान्त शब्दों का और तुल्य के पर्यायवाची शब्दों का समानाधिकरण विशेषण शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है, किन्तु वे जाति-वाची न हों।[2] यथा—

भोज्योष्णम् (भोज्यम् उष्णम्→भोज्योष्णम् = गरम भोज्य पदार्थ)
भोज्यलवणम् (भोज्यम् लवणम्→भोज्यलवणम् = नमकीन भोज्य पदार्थ)
पानीयशीतम् (पानीयं शीतम्→पानीयशीतम् = ठंडा पीने योग्य पदार्थ)
तुल्यश्वेतः (तुल्यः श्वेतः→तुल्यश्वेतः =)
सदृशश्वेतः (सदृशः श्वेतः→सदृशश्वेतः =)
सदृशमहान् (सदृशः महान्→सदृशमहान् =)

(vii) निन्दित रूप विशेष्य शब्दों का निन्दावाची समानाधिकरण विशेषण शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है।[3] यथा—

वैयाकरणखसूचिः (वैयाकरणः खसूचिः→वैयाकरणखसूचिः = अयोग्य वैयाकरण (= व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर आकाश ताकने वाला वैयाकरण)।
याज्ञिककितवः (याज्ञिकः कितवः→याज्ञिककितवः = द्रव्योपार्जन मात्र के लिये पात्र कुपात्र सबका यज्ञ कराने वाला)।
मीमांसकदुर्दुरूढः (मीमांसकः दुर्दुरूढः→मीमांसकदुर्दुरूढः = नास्तिक मीमांसक)

(viii) मयूर आदि कुछ विशेष्य शब्दों का भी व्यंसक आदि कुछ समानाधिकरण विशेषण शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है।[4]

मयूरव्यंसकः (मयूरः व्यंसकः→मयूरव्यंसकः = चालाक मोर)
छात्रव्यंसकः (छात्रः व्यंसकः→छात्रव्यंसकः = ,, छात्र)
काम्बोजमुण्डः (काम्बोजः मुण्डः→काम्बोजमुण्डः = मुण्डित कम्बोडिया वासी)
यवनमुण्डः (यवनः मुण्डः→यवनमुण्डः = मुण्डित यवन)

---

१. पृष्ठ ५१९ की टि० सं० २ देखो।
२. कृत्यतुल्याख्या अजात्या (अष्टा. २.१.६८)
३. कुत्सितानि कुत्सनैः (अष्टा. २.१.५३)
४. मयूरव्यंसकादयश्च (अष्टा. २.१.७२)

[४] **विशेषणोभयपद-कर्मधारय**—जिस कर्मधारय तत्पुरुष समास का पूर्वपद भी विशेषण हो और उत्तरपद भी विशेषण हो, वह विशेषणोभयपद कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है।

(i) वर्ण (=रंग) वाची विशेषण शब्द का समानाधिकरण वर्ण (=रंग) वाची विशेषण शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है।[1] यथा—

कृष्णसारङ्गः (कृष्णः सारङ्गः→कृष्णसारङ्गः=काला और चितकबरा)
[=काले आधार पर चितकबरा रंग]

रक्तकृष्णः (रक्तः कृष्णः→रक्तकृष्णः=लाल और काला)
[=लाल भूमि पर काली बून्दियाँ]

लोहितशबलः (लोहितः शबलः→लोहितशबलः=लाल और चितकबरा)
[=लाल आधार पर चितकबरी छाप]।

नीललोहितः (नीलः लोहितः→नीललोहितः=नीला और लाल)
[=नीले आधार पर लाल रंग की चित्रकारी]।

(ii) ऐसा क्तप्रत्ययान्त विशेषण शब्द जिसके पूर्व में नञ् (=अ) नहीं लगा हो उसका नञ्-सहित क्तप्रत्ययान्त समानाधिकरण विशेषण शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[2]। यथा—

कृताकृतम् [कृतम् अकृतम्→कृताकृतम्=कुछ किया, कुछ न किया]।

भुक्ताभुक्तम् [भुक्तम अभुक्तम्→भुक्ताभुक्तम्=कुछ खाया, कुछ न खाया]।

पीतापीतम् [पीतम् अपीतम्→पीतापीतम्=कुछ पिया, कुछ न पिया]।

उदितानुदितम् [उदितम् अनुदितम्→उदितानुदितम्=कुछ उदय हुआ और कुछ न उदय हुआ]।

(iii) पूर्वकाल की क्रिया के वाचक विशेषण शब्द का अपरकाल की क्रिया के वाचक समानाधिकरण विशेषण शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है[3]। यथा—

स्नातानुलिप्तः [पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः→स्नातानुलिप्तः=नहाकर चन्दन लगाया हुआ]।

कृष्टसमीकृतम् [पूर्वं कृष्टं पश्चात् समीकृतम्→कृष्टसमीकृतम्=जोतकर बराबर किया हुआ]।

(iv) कृत, भुक्त, क्रय आदि विशेषण शब्दों का समानाधिकरण अपकृत, विभुक्त, क्रयिका आदि विशेषण शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[4]। यथा—

---

१. वर्णो वर्णेन [अष्टा. २.१.६९]

२. क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् [अष्टा. २.१.६०]।

३. पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन [अष्टा. २.१.४९]।

४. कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् [वा०] [अष्टा. २.१.६०]।

कृतापकृतम् [कृतम् अपकृतम्→कृतापकृतम्=कुछ किया हुआ और कुछ बिगाड़ा हुआ]।

भुक्तविभुक्तम् [भुक्तम् विभुक्तम्→भुक्तविभुक्तम्=कुछ खाया और कुछ बिगाड़ा]।

पीतविपीतम् [पीतं विपीतम्→पीतविपीतम्=कुछ पिया और कुछ विगाड़ा]

गतप्रत्यागतम् [गतं प्रत्यागतम्→गतप्रत्यागतम्=जाना-आना]।

क्रयाक्रयिका [क्रयः क्रयिका→क्रयाक्रयिका[1]=खरीद-फरोख्त]।

मानोन्मानिका [मानम् उन्मानिका→मानोन्मानिका=तोलना-उठाना]।

[५] **उपमानपूर्वपदकर्मधारय**—जिस कर्मधारय तत्पुरुष समास में उपमान-वाची शब्द पूर्वपद में हो वह उपमानपूर्वपद कर्मधारय कहलाता है।

(i) उपमानवाची शब्दों का साधारण-धर्मवाची [=उपमान और उपमेय के सामान्य धर्म के वाचक] शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है[2]। यथा—

घनश्यामः कृष्णः [घन इव श्यामः→घनश्यामः=बादल के समान सांवला]।

दधिश्वेतम् [दधीव श्वेतम्→दधिश्वेतं वस्त्रम्=दही के समान सफेद वस्त्र]।

चन्द्रमनोहरः [चन्द्र इव मनोहरः→चन्द्रमनोहरः बालः=चन्द्रमा के समान सुन्दर बालक]।

सूर्यतीव्रः [सूर्य इव तीव्रः→सूर्यतीव्रः पार्थिवः=सूर्य के समान तेज राजा]।

किसलयकोमलः [किसलय इव कोमलः→किसलयकोमलः करः=नये पत्ते के समान कोमल हाथ]।

वातचपलम् [वात इव चपलम्→वातचपलम् मनः=वायु के समान चञ्चल मन]।

[६] **उपमेयपूर्वपद तत्पुरुष**—जिस तत्पुरुष समास में पूर्वपद उपमेय शब्द हो वह उपमेयपूर्वपद तत्पुरुष कहलाता है।

(i) उपमेयवाची शब्दों का व्याघ्र आदि उपमानवाची शब्दों के साथ तत्पुरुष समास होता है, यदि सामान्य-धर्म-वाची शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा रहा हो तो[3]। यथा—

---

१. अन्येषामपि दृश्यते [अष्टा. ६.३.१३७] से पूर्वपद को दीर्घत्व।

२. उपमानानि सामान्यवचनैः [अष्टा. २.१.५५]।

३. उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे [अष्टा. २.१.५६]।

पुरुषव्याघ्रः [पुरुषः अयं व्याघ्रः इव → पुरुषव्याघ्रः = पुरुष जो व्याघ्र के समान हो]।

पुरुषसिंहः [पुरुषः अयं सिंहः इव → पुरुषसिंहः = पुरुष, जो सिंह के समान हो]।

मुखपद्मम् [मुखं पद्ममिव → मुखपद्मम् = कमल के समान मुख]।

करकिसलयः [करः किसलयः इव → करकिसलयः = नवपल्लव सरीखा हाथ]।

पार्थिवचन्द्रः [पार्थिवः चन्द्रः इव → पार्थिवचन्द्रः = चन्द्रमा सा राजा]।

तत्पुरुष समास के समासान्त प्रत्यय

अब तत्पुरुष समास वाले शब्दों के अन्त में लगने वाले प्रत्ययों का बोध कराते हैं।

(क) जिस तत्पुरुष के पूर्वपद में संख्यावाची शब्द या अव्यय शब्द हों और उत्तरपद में अङ्गुलि शब्द हो तो उससे अच् [= अ] प्रत्यय होता है[1]। यथा—

द्व्यङ्गुलम् [द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य → द्विअङ्गुलि[2] → द्विअङ्लि अच् = द्व्यङ्गुलम्[3] = दो अङ्गुल लम्बा [कोई पदार्थ]]।

त्र्यङ्गुलम् [तिस्रः अङ्गुलयः प्रमाणम् अस्य → त्रि अङ्गुलि[2] → त्रि अङ्गुलि-अच् → त्र्यङ्गुलम्[3] = तीन अङ्गुल लम्बा [कोई पदार्थ]]।

निरङ्गुलम् [निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः → निर्अङ्गुलि[4] → निर्अङ्गुलि अच् → निरङ्गुलम्[3] = अङ्गुलियों से आगे निकला हुआ]।

अत्यङ्गुलम् [अतिक्रान्तम् अङ्गुलीः → अति अङ्गुलि।[2] अति अङ्गुलि अच् → अत्यङ्गुलम्[3] = अङ्गुलियों से आगे लटकता [कुर्ता आदि]

[ख] जिस तत्पुरुष समास के पूर्वपद संख्या-वाची शब्द, अव्यय शब्द, 'सर्व' शब्द, पूर्व अपर आदि अवयववाची शब्द, संख्यात शब्द और पुण्य शब्द हों तथा उत्तर-पद रात्रि शब्द हो उससे अच् (= अ) प्रत्यय होता है।[5] यथा—

---

१. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः [अष्टा. ५.४.८६]।
२. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च [अष्टा. २.१.५१] से द्विगुतत्पुरुष, 'प्रमाणे लो द्विगो०' से मात्रच् प्रत्यय का लोप।
३. यस्येति च [अष्टा. ६.४.१४८] से इ का लोप।
४. निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या [वा०] [अष्टा. २.२.१८] से प्रादितत्पुरुष।
५. अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः [अष्टा. ५.४.८७]

द्विरात्रः [द्वयोः रात्र्योः समाहारः→द्विरात्रि[1] अच्→द्विरात्रः[2]=दो रातें]
नवरात्रः [नवानां रात्रीणां समाहारः→नवरात्रि[1] अच्→नवरात्रः[2]=नौ रातें]
अतिरात्रः [अतिक्रान्तः रात्रिम्→अति रात्रि[3] अच्→अतिरात्रः=रात्रि से बढ़कर]
नीरात्रः [निष्क्रान्तः रात्रेः→निर् रात्रि[4] अच्→[5]नीरात्रः[2]=रात्रि से निकाला हुआ]
सर्वरात्रः [सर्वा रात्रिः→सर्वा रात्रि[6] अच्→सर्वरात्रः[2]=सारी रात)
पूर्वरात्रः [पूर्वं रात्रेः→पूर्व रात्रि[7] अच्→पूर्वरात्रः[2]=रात का पहिला भाग]
अपररात्रः [अपरं रात्रेः→अपर रात्रि[7] अच्→अपररात्रः[2]=रात का पिछला भाग]
सङ्ख्यातरात्रः [सङ्ख्याता रात्रिः→संख्याता रात्रि[8] अच्→सङ्ख्यातरात्रः[2]=गिनी हुई रात]
पुण्यरात्रः [पुण्या रात्रिः→पुण्या रात्रि[8] अच्→पुण्यरात्रः[2]=पवित्र रात]

[ग] जिस तत्पुरुष समास के पूर्वपद सङ्ख्यावाची शब्द, अव्यय शब्द, 'सर्व' शब्द, पूर्व अपर आदि अवयववाची शब्द और सङ्ख्यात शब्द हों और उत्तरपद अहन् शब्द हो तो उस अहन् के स्थान पर अह्न आदेश होता है।[9]

द्व्यह्नः [द्वयोः अह्नोः भवः→द्वि अहन्[1] टच्[10]→द्वि अह्न अ→द्व्यह्नः[2]=दो दिन में हुआ कार्य]
त्र्यह्नः [त्रिषु अहःसु भवः→त्रि अहन्[10] टच्[10]→त्रि अह्न अ→त्र्यह्नः[2]=तीन दिन में हुआ कार्य]

किन्तु समाहार के विषय में संख्यावाची पूर्वपद हो तो अहन् को अह्न आदेश नहीं होता।[11]

द्व्यहः [द्वयोः अह्नोः समाहारः→द्वि अहन्[1] टच्[10]→द्व्यहः=दो दिन]
सप्ताहः [सप्तानाम् अह्नां समाहारः→सप्त अहन्[1] टच्[10]→सप्ताहः[2]=सात दिन]

---

१. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च [अष्टा २.१.५१] से द्विगु तत्पुरुष।
२. रात्राह्नाहाः पुंसि [अष्टा. २.४ २९] से पुंल्लिङ्गता।
३. अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया [वा०] २.१.१८] से प्रादितत्पुरुष।
४. निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या [वा०] [२.१.१८] से प्रादितत्पुरुष।
५. रोरि [८.३.१४] से र् का लोप, ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः [अष्टा ६ ३.१११] से दीर्घता।
६. पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन [अष्टा. २.१.४९] से विशेषणपूर्वपद तत्पुरुष।
७. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे [अष्टा. २.२.१] से अवयवावयवि तत्पुरुष।
८. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् [अष्टा० २.१.५०] से विशेषणपूर्वपद तत्पुरुष।
९. अह्नोऽह्न एतेभ्यः [अष्टा. ५.४.८८]
१०. राजाहःसखिभ्यष्टच् [अष्टा ५;४.५१] से टच् प्रत्यय।
११. न संख्यादेः समाहारे [अष्टा. ५.४.८९]

[घ] जिस तत्पुरुष समास के उत्तरपद में राजन्, अहन् और सखि शब्द हों उससे टच् (अ) प्रत्यय होता है[1]। यथा—

महाराजः [महान् राजा→महत् राजन्[2] टच्→[3] महाराजः[4]=बड़ा राजा]
योगिराजः [योगिनां राजा→योगिन् राजन्[5] टच्→योगिराजः[4]=योगियों का राजा]
परमाहः [परमम् अहः→परम अहन्[2] टच्→परमाहः[4]=श्रेष्ठ दिन]
द्व्यहः [द्वयोः अह्नोः समाहारः→द्वि अहन्[6] टच् →द्व्यहः=दो दिन]
राजसखः [राज्ञः सखा→राजन् सखि[5] टच्→राजसखः=राजा का मित्र]

[ङ] तत्पुरुष समास में गो शब्द अन्त में हो तो उससे टच् प्रत्यय होता है परन्तु वहाँ किसी तद्धित प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ हो।[7] यथा—
पञ्चगवम् [पञ्चानां गवां समाहारः→पञ्चन् गो[6] टच्→पञ्चगवम्=पांच गायें]
परमगवः [परमः गौः→परम गो[2] टच्→परमगवः=श्रेष्ठ बैल]
परमगवी [परमा गौः→परमा गो[2] टच्→परमगवी[8]=श्रेष्ठ गाय]

[च] तत्पुरुष समास में प्रधान अर्थ का वाचक उरस् शब्द अन्त में हो तो उससे टच् प्रत्यय होता है।[9] यथा —

अश्वोरसम् [अश्वानाम् उरः→अश्व उरस्[5] टच्→अश्वोरसम्=घोड़ों में प्रधान=प्रधान घोड़ा]
पुरुषोरसम् [पुरुषानाम् उरः→पुरुष उरस्[5] टच्→पुरुषोरसम्=प्रधान पुरुष]

[छ] जाति और सञ्ज्ञा के विषय में निष्पन्न तत्पुरुष समास में यदि अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् शब्द अन्त में हों तो इनसे टच् प्रत्यय होता है।[10] यथा—

---

१. राजाहःसखिभ्यष्टच् [अष्टा. ५.४.९१]
२. सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः [२.१.६१] से विशेषणपूर्वपद कर्म० त०।
३. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः [६.३.४६] से महत् के त् के स्थान पर आ।
४. नस्तद्धिते [अष्टा. ६.४.१४४] से अन् भाग का लोप।
५. षष्ठी [अष्टा. २.२.८] से षष्ठी तत्पुरुष।
६. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च [अष्टा. २.१.५१] से द्विगु त० समास।
७. गोरतद्धितलुकि [अष्टा. ५.४.९२]
८ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः [अष्टा. ४.१.१५] से ङीप् [=ई]
९. अग्राख्यायामुरसः [अष्टा. ५.४.९३]
१०. अनोश्मायःसरसां जातिसञ्ज्ञयोः [अष्टा. ५.४.९४]

उपानसम् [उपगतम् अनः→उप अनस्[1] टच्→उपानसम्=]
.ताश्मः [अमृतः अश्मा→अमृत [2]अश्मन्[3] टच्→अमृताश्मः=]
कालायसम् [कालम् अयः→काल अयस्[3] टच्→कालायसम्=इस्पात लोहा]
मण्डूकसरसम् [मण्डूकानां सरः→मण्डूक सरस्[4] टच्→मण्डूकसरसम्=]
महानसम् [महत् अनः→महत् अनस्[5] टच्→[3] महानसम्=रसोईघर]
पिण्डाश्मः [पिण्डः अश्मा→पिण्ड अश्मन्[3] टच्→पिण्डाश्मः=]
लोहितायसम् [लोहितम् अयः→लोहित अयस्[3] टच्→लोहितायसम्=तांबा]
जलसरसम् [जलस्य सरः→जल सरम्[4] टच्→जलसरसम्=]

[ज] जिस तत्पुरुष का पूर्वपद ग्राम या कौट शब्द हो और उत्तरपद तक्षन् शब्द हो उससे टच् प्रत्यय होता है।[6] यथा—

ग्रामतक्षः [ग्रामस्य तक्षा→ग्राम तक्षन्[6] टच्→ग्रामतक्षः[2]=गांव भर का बढ़ई]
कौटतक्षः [कौटः तक्षा→कौट तक्षन्[2] टच्→कौटतक्षः[2]=स्वतन्त्र बढ़ई]

[झ] तत्पुरुष समास के पूर्वपद में अति शब्द हो और अन्त में श्वन् शब्द हो तो उससे टच् प्रत्यय होता है[7]। यथा—

अतिश्वः (अतिक्रान्तः श्वानम्→अतिश्वन्[8] टच्→अतिश्वः[2]=कुत्ते से भी तेज घोड़ा आदि अथवा कुत्ते से भी बढ़कर स्वामिभक्त सेवक)।

[ञ] द्विगु तत्पुरुष समास में अन्त में यदि नौ शब्द हो तो उससे टच् प्रत्यय होता है[9]। यथा—

द्विनावम् (द्वयोः नावोः समाहारः→द्वि नौ[10] टच्→द्विनावम्=दो नौकाएं)।
पञ्चनावम् (पञ्चानां नावां ,, → पञ्चन् नौ[10] टच्→पञ्चनावम्=पांच नौकाएँ)।
पञ्चनावप्रियः (पञ्च नावः प्रियाःयस्य→पञ्चन् नौ[10] टच् प्रिय→पञ्चनावप्रियः=पांच नौकाएँ रखने का शौकीन)।

---

१. कुगतिप्रादयः [अष्टा. २.२.१८] से प्रादितत्पुरुष।
२. नस्तद्धिते (अष्टा० ६.४.१४४) से अन् भाग का लोप।
३. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् [अष्टा. २.१.५७] से विशेषणपूर्वपदकर्म० तत्पुरुष।
४. षष्ठी (अष्टा. २.२.८) से षष्ठी तत्पुरुष।
५. देखो पृ० ५२५ की टि० सं० २।
६. ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः [अष्टा. ५.४.९५]।
७. अतेः शुनः (अष्टा० ५.४.९६)।
८. अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया [वा०] (अष्टा० २.२.१८)
९. नावो द्विगोः (अष्टा० ५.४.९९)।
१०. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (अष्टा० २.१.५१) से द्विगु तत्पुरुष।

[ट] तत्पुरुष समास में पूर्वपद में अर्ध शब्द हो और नौ शब्द अन्त में हो तो उससे भी टच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

अर्द्धनावम् (अर्धं नावः→अर्ध नौ[2] टच्→अर्धनावम्=नौका का आधा भाग)।

[ठ] द्विगु तत्पुरुष समास में पूर्वपद में द्वि या त्रि हो और उत्तरपद में अञ्जलि शब्द हो तो उससे टच् प्रत्यय होता है[3]। यथा—

द्व्यञ्जलम् (द्वयोः अञ्जल्योः समाहारः→द्विअञ्जलि[4] टच्=द्व्यञ्जलम्[5] =दो अञ्जलि)।

त्र्यञ्जलम् (त्रयाणाम् अञ्जलीनां समाहारः→त्रि अञ्जलि[4] टच्→त्र्यञ्जलम्[5]=तीन अञ्जलि)।

[ड] तत्पुरुष समास में अन् अन्त वाले या अस् अन्त वाले नपुंसकलिङ्ग शब्द उत्तरपद में हों तो उनसे टच् प्रत्यय होता है वेद विषय में।[6] यथा—

हस्तिचर्मे जुहोति (हस्तिनः चर्म→हस्तिन् चर्मन्[7] टच्→हस्तिचर्म→हस्तिचर्मे)। देवच्छन्दसानि।

[ढ] जिस तत्पुरुष के पूर्वपद में कु अथवा महत् शब्द हो और अन्त में ब्रह्मन् शब्द हो उससे विकल्प से टच् प्रत्यय होता है[8]। यथा—

कुब्रह्मः (कुत्सितः ब्रह्मा→कुब्रह्मन्[9] टच्→कुब्रह्मः=निन्दनीय ब्राह्मण)।

कुब्रह्मा (कुत्सितः ब्रह्मा→कु ब्रह्मन्→कुब्रह्मा=निन्दनीय ब्राह्मण)।

महाब्रह्मः [महान् ब्रह्मा→महत् ब्रह्मन्[10] टच्→[11]महाब्रह्मः[12]=महा ब्राह्मण]।

महाब्रह्मा [महान् ब्रह्मा→महत् ब्रह्मन्[10]→[11]महाब्रह्मा=महा ब्राह्मण]।

---

१. अर्धाच्च (अष्टा० ५.४.१०७)।
२. अर्धं नपुंसकम् (अष्टा० २.२.२) से अवयवावयवि-तत्पुरुष।
३. द्वित्रिभ्यामञ्जलेः(अष्टा.५.४.१०२)।
४. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (अष्टा. २.१.५१) से द्विगु तत्पुरुष।
५. यस्येति च (अष्टा० ६.४.१४८) से इ का लोप।
६. अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि (अष्टा० ५.४.१०३)।
७. षष्ठी (अष्टा० २.२.८) से षष्ठीतत्पुरुष।
८. कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् (अष्टा० ५.४.१०५)।
९. कुगतिप्रादयः (अष्टा० २.२.१८) से विशेषणपूर्वपद तत्पुरुष।
१०. सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः (अष्टा. २.१.६१) से विशेषणपूर्वपद तत्पुरुष।
११. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः (अष्टा. ६.३.४६) से त् के स्थान पर आ।
१२. नस्तद्धिते (अष्टा. ६.४.१४४) से अन भाग का लोप।

[ण] तत्पुरुष समास में पुरुष या द्वि या त्रि शब्द पूर्वपद में हों और आयुस् शब्द उत्तरपद में हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

पुरुषायुषम् [पुरुषस्य आयुः→पुरुष आयुस्[2] अच्→पुरुषायुषम्=पुरुष की आयु]।

द्व्यायुषम् [द्वयोः आयुषोः समाहारः→द्विआयुस्[3] अच्→द्व्यायुषम्=दो आयु]।

त्र्यायुषम् [त्रयाणाम् आयुषां समाहारः→त्रि आयुस्[3]→त्र्यायुषम्=तीन आयु]।

[त] षष्ठी तत्पुरुष समास में ब्रह्मन्, हस्तिन्, पल्ल्य और राजन् शब्द पूर्वपद में हों और वर्चस् शब्द उत्तरपद में हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है[4]। यथा—

ब्रह्मवर्चसम् [ब्रह्मणः वर्चः→ब्रह्मन् वर्चस्[2] अच्→ब्रह्मवर्चसम्=ब्राह्मण का तेज]।

हस्तिवर्चसम् [हस्तिनः वर्चः→हस्तिन् वर्चस्[2] अच्→हस्तिवर्चसम्=हाथी का मल]।

पल्ल्यवर्चसम् [पल्ल्यस्य वर्चः→पल्ल्य वर्चस्[2] अच्→पल्ल्यवर्चसम्=मांसाहारी का मल]।

राजवर्चसम् [राज्ञः वर्चः→राजन् वर्चस्[2] अच्→राजवर्चसम्→राजा का तेज]।

[थ] सप्तमी-तत्पुरुष समास में पूर्वपद में गोष्ठ शब्द हो और उत्तरपद में श्वन् शब्द हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

गोष्ठश्वः [गोष्ठे श्वा→गोष्ठश्वन् अच्→गोष्ठश्वः=गोशाला में रहने वाला कुत्ता]

[द] तत्पुरुष समास में निस् शब्द पूर्वपद में हो और उत्तरपद में श्रेयस् शब्द हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

निःश्रेयसम् [निश्चितं श्रेयः→निस् श्रेयस्[5] अच्→निःश्रेयसम्=कल्याण]।

[ध] तत्पुरुष समास में पूर्वपद में जात, महत् और वृद्ध शब्द हों तथा उत्तरपद में उक्षन् शब्द हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

जातोक्षः [जातः उक्षा→जात उक्षन्[6] अच्→जातोक्षः=नया बैल]।

महोक्षः [महान् उक्षा→महत् उक्षन्[6] अच्→[7]महोक्षः=बड़ा बैल]।

वृद्धोक्षः [वृद्धः उक्षा→वृद्धः उक्षन्[6] अच्→वृद्धोक्षः=बूढ़ा बैल]।

---

१. अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपद-ष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातो-क्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः (अष्टा. ५.४.७७)।

२. षष्ठी (अष्टा. २.२.८) से षष्ठी-तत्पुरुष।

३. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (अष्टा. २.१.५१) से द्विगु तत्पुरुष।

४. ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः; पल्ल्यराजभ्याञ्चेति वक्तव्यम् [वा.] (अष्टा. ५.४.७८)।

५. कुगतिप्रादयः (२.२.१८) से प्रादितत्पुरुष समास।

६. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (अष्टा. २.१.५७) से विशेषण-पूर्वपद तत्पुरुष।

७ पृ० ५२७ की टि० सं० १० तथा ११ देखो।

(न) तत्पुरुष समास में उपसर्ग पूर्वपद में हों और अध्वन् शब्द उत्तरपद में हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

प्राध्व: [प्रगतः अध्वानम्→प्र अध्वन्[2] अच्→प्राध्वः=मार्ग से बड़ा रथ आदि]।

अभ्यास

१. ये दुःख से पार पहुंचे हुए योगी, शोक में डूबे हुए उन गृहस्थों को उपदेश देंगे।
एते दुःखातीता योगिनः शोकपतितान् तान् गृहस्थानुपदेक्ष्यन्ति।

२. ये सुख पाये हुए बालक, आज इस बड़े जङ्गल को देखकर डर गये हैं।
इमे सुखप्राप्ताः (प्राप्तसुखाः) बालका अद्येमामरण्यानीं विलोक्य भयापन्नाः (आपन्नभयाः) समजनिषत।

३. गांव जाने वाले उन दानियों ने, भात के भूखे इन भिखारियों को पहर तक पकाई गई कढ़ी के साथ भात खिलाया।
ग्रामगामिनस्ते दानिन ओदनबुभुक्षून् तान् भिक्षुकान् प्रहरपाचितया क्वथिकया सार्द्धमोदनमाशिशन् (आशयन्)।

४. सरोते से काटी हुई इन सुपारियों से, बादाम चाहने वाला कब सन्तुष्ट होगा?
शङ्कुलाखण्डैरेतैः पूगीफलैर्वातादार्थी कथं सन्तोक्ष्यति?

५. भाई के समान लक्ष्मण भी, आचरण की दृष्टि से बड़ा निपुण था।
भ्रातृसमो लक्ष्मणोऽपि सदाचारनिपुण आसीत्।

६. यह वाणी से हुआ झगड़ा, मिश्री मिले पानी से शान्त हो जायेगा क्या?
वाक्कलहोऽयं किमु शमिष्यति सितामिश्रेण वारिणा?

७. गुजरात के बनिये, व्यवहार के साफ-सुथरे होते हैं।
गुर्जरप्रान्तवणिजो व्यवहारश्लक्ष्णा भवन्ति।

८. मैंने पूरा कार्य किया है, एक रुपया कम वेतन क्यों लूं?
सम्पूर्णमहमकार्षङ्कार्यम्, कथङ्कारं रूप्यकोनं वेतनमाददीय?

९. गुरु के द्वारा पाले हुए इस बालक ने महीने भर पहिले हुई इस घटना को भुला दिया।
गुरुपालितोऽयम्माणवको मासपूर्वामिमाङ्घटनां व्यसस्मरत्।

१०. सूई से सिले कपड़े पहनने वाले ये नागरिक, नखों से छिदी सब्जियों और चाकू से कटे फलों को अभक्ष्य मानते हैं।

---

१. उपसर्गादध्वनः (अष्टा. ५.४.८५)।

२. कुगतिप्रादयः (अष्टा. २.२.१८) से प्रादि-तत्पुरुष०।

सूचीस्यूतानि वासांसि दधाना एते नागरा नखनिर्भिन्नानि शाकानि व्रश्चनच्छिन्नानि फलानि चाभक्ष्याणि मन्वते ।

११. कौए भी जिनका पानी पी लें ऐसी नदियां और कुत्ते भी जिनका पानी पी सकें ऐसे कुए देखकर ऐसा लगता है कि यहां भरपूर वर्षा हुई है ।

काकपेयाः स्रोतस्विनीः श्वलेह्यानन्धूंश्च दृष्ट्वा ऽनुमीयते यदत्र प्रचुरो वर्षोऽवर्षत् ।

१२. आशा की पाक विद्या का क्या कहना, ऐसा भात बनाती है कि कण-कण को कांटे से बीन लो ।

अहो ! आशायाः पाकविद्या, कण्टकसञ्चेयमोदनम्पचति ।

१३. हमने अतिथियों के लिये चाशनी से भरपूर जलेबियां, गुड़ मिले तिल, और दही सिंचे भात तैयार किये हैं तथा रोगियों के लिये दूध डाला दलिया पकाया है ।

अतिथिभ्यो वयं सितारसकुण्डलिनीर्गुडतिलान्दध्योदनञ्च सज्जकार्ष्म, रुग्णेभ्यस्तु क्षीरयवागूमपाक्ष्म ।

१४. कुछ लोग यज्ञस्तम्भ के लिये उपयोगी लकड़ी से, कुछ लोग कुण्डलोपयोगी सोने से और कुछ लोग घड़े बनाने के लिये आवश्यक मिट्टी से अपनी जीविका आरम्भ करते हैं ।

केचन यूपदारुणा, केचित्कुण्डलहिरण्येनापरे च कुम्भमृत्तया स्वजीविकामारभन्ते ।

१५. मैं बाजार से पिताजी के लिये लेखनी, माताजी के लिये कम्बल और पुत्र के लिये पुस्तक लाया हूं ।

विपणेर्मया पित्रर्था लेखनी मात्रर्थः कम्बलः सुतार्थं पुस्तकञ्च समानायिषत ।

१६. बच्चों के लिये रक्खा हुआ भोजन, अतिथियों का भोजन कैसे बनेगा ?

शिशुरक्षितमशनं कथमिवातिथिबलिर्भविष्यति ?

१७. जिसको ईश्वर से डर नहीं, उसे सुख से दूर हुआ हुआ ही समझो ।

यस्य परमेश्वरभीतिर्नास्ति तं सुखापेतमेव विद्धि ।

१८. पास से ओर दूर से आये हुए हजारों यात्री इस सभा में बैठेंगे ।

अभ्याशादागता विप्रकृष्टादायाताश्च परस्सहस्रा यात्रिण इमां सभामध्यासिष्यन्ते ।

१९. वह राजा का भृत्य, सिर पर विद्यमान चन्दन की गन्ध को और होठों पर लगे कैथ के रस को न छिपा सका ।

स राजपुरुष उत्तमाङ्गस्थितं चन्दनगन्धमधरावलिप्तं कपित्थरसञ्च निह्वा-तुन्नाशक्नोत् ।

२०. तेरा गांव को जाना देखकर, मेरी घर जाने की इच्छा बलवती हो रही है।
तव ग्रामगमनन्निभाल्य मम गृहजिगमिषा बलवती जायते ।

२१. रसगुल्लों से छके हुए रामशास्त्री को खीरा कब भायेगा ?
रसगोलानां सुहिताय (=तृप्ताय) रामशास्त्रिणे कदा रोचिष्यते त्रपु ?

२२. इस गुरुकुल के ब्रह्मचारी, विद्वानों की पूजा करने वाले और रोगियों की सेवा करने वाले हैं।
अस्य गुरुकुलस्य वर्णिनो विप्रपूजका रुग्णपरिचारकाश्च विद्यन्ते ।

२३. लिसोड़े के फूलों को तोड़ना, खस के फूलों को चुनना और गुलाब के फूलों को गूंथना ये भी कोई खेल हैं ?
उद्दालकपुष्पभञ्जिका, वीरणपुष्पप्रचायिका पाटलपुष्पगुम्फिका चैता अपि काश्चन क्रीडा: सन्ति ?

२४. दांतों और नखों पर चित्रकारी करने वाले, पहिले हर गली में घूमते थे।
दन्तलेखका नखलेखकाश्च पुरा प्रतिवीथि प्राटन्ति स्म ।

२५. इनमें से पांच चटाई बनाने में कुशल हैं, आठ पकाने में चतुर हैं और सोलह गणित में निपुण हैं।
एतेषु (एतेषां) पञ्च कटप्रवीणा अष्टौ पाककुशला: षोडश च गणितपण्डिता: सन्ति ।

२६. उदयपुर के बने हुए लकड़ी के खिलौने और जयपुर में बने हुए रत्न जड़े आभूषण विदेशी यात्रियों का मन मोह लेते हैं।
उदयपुरसिद्धानि दारुक्रीडनकानि जयपुरसिद्धानि च रत्नजटितानि भूषणानि विदेशिपर्यटकानां मनांसि हरन्ति ।

२७. घड़े में पकाई हुई और छाया में सुखाई हुई इस दवाई को अब गूलर के दूध में घोटो।
कुम्भीपक्वञ्छायाशुष्कञ्चैतदौषधं सम्प्रति औदुम्बरेण पयसा सह घोटय ।

२८. ये तीर्थों के कौओं के समान इधर-उधर भटकने वाले अस्थिरमति छात्र, विद्वान् कभी नहीं बन सकते।
एते अस्थिरमतयस्तीर्थध्वाङ्क्षाश्छात्रा: कदाचिदपि सुधियो न भवितुमर्हन्ति ।

२९. जो महीने में चुकाने योग्य ऋण को, वर्ष में चुकाने योग्य कर देते हैं, उन्हें फिर ऋण नहीं मिलता।

ये मासदेयमृणं संवत्सरदेयम्भावयन्ति, न पुना ऋणमादातुम्प्रभवन्ति ते ।

३०. उन तपस्वी शूरवीरों ने जङ्गली तिल और उड़द खा-खाकर देश की शत्रुओं से रक्षा की थी ।

त्ये तपस्विनः शूरा अरण्येतिलकानरण्येमाषांश्च भक्षम्भक्षमरक्षन्देशं शत्रुभ्यः ।

३१. जो दोपहर में पढ़ाये हुए को सायङ्काल भूल जाता है, उसको पढ़ाना राख में होम करना है ।

यो मध्याह्नपठितं सायं विस्मरति तदध्यापनं भस्मनिहुतमस्ति ।

३२. तपी भूमि पर नेवले के भागने के समान तुम्हारी यह चञ्चलता, तुम्हारी उन्नति में बाधक बनेगी ।

अवतप्तेनकुलस्थितन्ते चापल्यं त्वत्प्रगतौ बाधकम्भविष्यति ।

३३. ये भोजन के समय ही इकठ्ठे होने वाले छात्र, पढ़ने के समय अनेक बहाने बनाते हैं ।

पात्रेसम्मिता एते छात्रा अध्ययनवेलायान्नाना व्याजान् आकलयन्ति ।

३४. ये खाने मात्र में बहादुर नौकर, अनुभव में भी कुए के मेंढक हैं ।

एते पिण्डीशूरा भृत्या अनुभूतावपि कूपमण्डूकास्सन्ति ।

३५. घर में डींग हांकने वाले इन लोगों के मुंह से, बाहिर आवाज भी नहीं निकलती ।

गेहेनर्दिनाम् (गेहेशूराणाम्) एतेषाम्मुखाद् बहिर्गृहं वाक्प्रसारोऽपि न जायते ।

३६. इस पक्षी का पिछला शरीर काला और अगला शरीर सफेद है ।

अस्य विहगस्यापरकायः कृष्णः पूर्वकायश्च श्वेतो वर्त्तते ।

३७. आधी नगरी में अंधेरा है और आधी में उजाला ।

अर्धनगर्यान्तमो विद्यतेऽर्धनगर्याञ्च प्रकाशो विराजते ।

३८. इस भिक्षुक की भिक्षा का दूसरा भाग इसके पुत्र और चतुर्थ भाग इसकी पत्नी खाते हैं ।

अस्य भिक्षुकस्य द्वितीयभिक्षां (=भिक्षाद्वितीयम्) अस्य पुत्रास्तुरीयभिक्षां (=भिक्षातुरीय) चास्य भार्या भुञ्जते ।

३९. मनुष्य कभी धर्म और सत्य से विपरीत आचरण न करे ।

जातुचिन्न समाचरेन्मानवोऽधर्ममसत्यञ्च ।

४०. उन अपराधियों ने अपना अपराध स्वीकार करके और अपने मनोभावों को प्रकट करके, सबको चकित कर दिया ।

अपराधिनस्ते स्वीयमपराधमूरीकृत्य (=उररीकृत्य) स्वमनोभावांश्चाऽऽविष्कृत्य

सर्वान् दर्शकानाश्चर्यान्वितानकार्षुः ।

४१. आज हम दोनों, अतिथि भवन को सजाकर, अगवानी के लिये पिता जी को आगे करके और अतिथियों का सत्कार करके, अपने आप को धन्य मानेगें।
अद्यावामतिथिसदनमलङ्कृत्य प्रत्युद्गमनाय जनकम्पुरस्कृत्यातिथींश्च सत्कृत्यात्मानौ धन्यौ मंस्यावहे ।

४२. जब हमारा बड़ा भाई विवाह करके लौटेगा, तब हम बहिनें जी भरकर मिठाइयाँ खायेंगी।
यदाऽस्मदग्रजः पाणीकृत्य प्रतिनिवर्त्स्यति, तदा वयम्भगिन्यो मनोहत्य (कणेहत्य) मिष्टान्नानि भोक्ष्यामहे ।

४३. इस प्रधानाचार्य के सभी पट्ट शिष्य अच्छे आदमी बनेंगे, कोई भी दुष्ट नहीं बनेगा।
एतस्य प्राचार्यस्य समेऽपि प्रान्तेवासिनः सुपुरुषा भवितारो न कश्चिदपि दुष्पुरुषः ।

४४. गत वर्ष, कोयल से निनादित और बेलों से समाच्छादित इस कुञ्ज में हल्के लाल फूल खिले थे।
परुद् एतस्मिन्नवकोकिले परिवीरुधि च कुञ्जे प्राफुल्लन्नारक्तानि प्रसूनानि ।

४५. पढ़ने से ऊबे हुए और युद्ध के लिए तैयार इन युवकों को सेना में भर्ती कर दो।
पर्यध्ययनानुत्सङ्ग्रामांश्चैतान् यूनो वाहिन्याम्प्रवेशयत ।

४६. बनारस से निकले हुए इन पण्डितों की स्त्रियाँ, अब भी अङ्गुलियों से नीचे कपड़े पहनती हैं।
निर्वाराणसीनामेषां सुधियां योषितोऽधुनावधि निरङ्गुलानि वासांसि प्रतिमुञ्चन्ति।

४७. मनुष्य को कम्पित कर देने वाले उस बड़े पहलवान के सभी शिष्य गरम भोजन को खाने के अभ्यासी थे।
जनमेजयस्य तस्य महामल्लस्य समेऽपि शिष्या उष्णभोजिन आसन् ।

४८. हमारे जीवन का लक्ष्य, केवल खाना और मौज करना नहीं है।
खादतमोदतैव न केवलमस्मज्जीवनोद्देश्यमस्ति ।

४९. उस सेठ के भण्डारे में, ''निकालो और बांटो, निकालो और दो' इस प्रकार की ध्वनि वाले कार्यक्रम को देखकर मैंने निश्चय ही जान लिया कि यहां दरिद्र भी संतुष्ट हो जायेंगे।
तस्य श्रेष्ठिनोऽधिभाण्डागारम् (अधिभाण्डागारे) उद्धरोत्सृजां वीक्ष्य निश्चप्रचमहमज्ञासिषं यदकिञ्चना अप्यत्र सन्तोक्ष्यन्ति ।

५०. इस मोटे आदमी को सफेद कपड़े, लाल कमल और नीले जामुन अच्छे लगते हैं।

अस्मै स्थूलपुरुषाय श्वेतवस्त्राणि रक्तोत्पलानि नीलजम्बूफलानि च रोचन्ते।

५१. बड़े आदमी अच्छे गुणों से ही संसार में पूजे जाते हैं।

महापुरुषा उत्कृष्टगुणैरेवाधिसंसारम् (अधिसंसारे) समर्च्यन्ते।

५२. उस बूढ़े हाथी का महावत, उस नये भवन में निवास करता हुआ केवल दूध ही पीता था।

तस्य जरद्धस्तिनो महामात्रस्तस्मिन् नवभवने वसन् केवलदुग्धमपिबत्।

५३. कर्ण की जङ्घा से निकलते हुए थोड़े-थोड़े गरम खून के स्पर्श से परशुराम जग गये।

कर्णोरोः प्रवहतः कवोष्णस्य (कोष्णस्य, कदुष्णस्य) शोणितस्य स्पर्शेन परशुरामो जजागार।

५४. अध्यापक बनाये हुए ये छात्र, पंक्ति में बिठाये हुए इन घुमक्कड़ लड़कों को कैसे पढ़ायेंगे?

अध्यापककृता एते छात्राः श्रेणिकृतानेतानटनशीलान् बालान् कथमध्यापयिष्यन्ति?

५५. पूर्व के घर से लगाव रखने वाला यह देवेन्द्र, बढ़िया गौओं को सौ पूले प्रतिदिन डालता है।

पूर्वशालाप्रियोऽयं देवेन्द्रो गोप्रकाण्डेभ्यः (गोमतल्लिकाभ्यः, गवोद्धेभ्यः, गोतल्लजेभ्यः) प्रत्यहं शतपूलीं वितरति।

५६. ये आठ बढ़ई, पांच कुमारियों के भावी पतियों के लिए पलंग बनायेंगे।

इदमष्टतक्षं (इयमष्टतक्षी) पञ्चकुमारेर्भविष्यद्भ्यः पतिभ्यः पर्यङ्कान् रचयिष्यति।

५७. यह पहिली बार ब्याई हुई गाय, थोड़ा ही दूध देती है।

इयं गोगृष्टिर्दुग्धकतिपयमेव प्रयच्छति।

५८. ये बूढ़े से लगने वाले युवक और बुढ़िया सी दिखने वाली युवतियाँ, गृहस्थ धर्म को कैसे निबाहेंगी?

एते युवजरन्त एताश्च युवजरत्यः कथङ्कारङ् गृहस्थधर्मन्निर्वक्ष्यन्ति।

५९. इस अध्यापिका कुमारी का और इस उत्तम प्रवक्त्री का दोनों का आचरण अनुकरणीय है।

अस्याः कुमाराध्यापिकाया अस्याः प्रवक्तृवृन्दारिकायाः (प्रवक्तृकुञ्जरायाः, प्रवक्तृनागायाः) च शीलमनुसरणीयङ् खलु।

६०. इन गर्भवती गायों और बकरियों के लिये मीठा दलिया पका।

एताभ्यो गोगर्भिणीभ्योऽजागर्भिणीभ्यश्च मिष्टयवागूम्पच ।

६१. अरुणा को ठण्डे पेय और चन्द्रप्रकाश जी को नमकीन अच्छे लगते हैं ।
अरुणायै पानीयशीतानि रोचन्ते चन्द्रप्रकाशमहोदयाय च भोज्यलवणानि रोचन्ते ॥

६२. हे पुत्रो ! पढ़ने में श्रम करो, नहीं तो आकाश ताकने वाले'वयाकरण कहलाओगे ॥
भोः पुत्राः ! अध्ययनेऽध्यवसायं विधत्त, नो चेद् वैयाकरणखसूचयः कथयिष्यध्वे ॥

६३. ये लाल काले और नीले लाल फूल किसको नहीं रुचेंगे ?
इमानि रक्तकृष्णानि नीललोहितानि च फुल्लानि कस्मै न रोचिष्यन्ते ?

६४. बम्बई के बाजार में व्यापारियों का आना जाना, खरीद-फरोख्त और तोलना-उठाना देखने योग्य है ।
मुम्बापुर्यां विपणौ वणिजाङ्गतप्रत्यागतानि क्रयाक्रयिका मानोन्मानिकाश्च दर्शनीयानि खलु ।

६५. कृष्ण का बादल सा सांवला शरीर, बलराम के दही से गौरे शरीर से कम सुन्दर न था ।
कृष्णस्य घनश्यामङ्गात्रं हलायुधस्य दधिश्वेतात्संहननान्न कनीयः कमनीयमासीत् ॥

६६. सिंह के से उद्यमशील पुरुष को लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है ।
'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' ।

द्वन्द्व-समास

द्वन्द्व समास में प्रायः पूर्वपद और उत्तरपद दोनों के अर्थों की प्रधानता रहती है । द्वन्द्व समास दो प्रकार का है । इतरेतरयोग द्वन्द्व और समाहार द्वन्द्व । इतरेतरयोग द्वन्द्व में समास के घटकों का भेद स्पष्टतः प्रकट रहता है । समाहार समूह को कहते हैं । समाहार द्वन्द्व में समास के घटकों का भेद अप्रकट रहता है और समूह की प्रधानता हो जाती है । इतरेतरयोग द्वन्द्व में द्विवचन अथवा बहुवचन रहता है । जहाँ दो पदों (=शब्दों) का इतरेतरयोग द्वन्द्व हो वहां द्विवचन और जहाँ दो से अधिक शब्दों का समास हो वहाँ बहुवचन । समाहारद्वन्द्व में सदा एकवचन ही रहता है और वह नपुंसक लिङ्ग वाला होता है ।[1]

(१) 'च' अव्यय के अर्थों में (=इतरेतरयोग में और समाहार में) विद्यमान शब्द का उसी प्रकार के अर्थ वाले अन्य शब्द के साथ द्वन्द्व समास होता है ।[2]

रामकृष्णौ (रामश्च कृष्णश्च→राम कृष्ण→रामकृष्णौ=राम और कृष्ण)

---

१. स नपुंसकम् (अष्टा २.४.१७) २. चार्थे द्वन्द्वः (अष्टा २.२.२९)

नरेन्द्रमहेन्द्रशचीन्द्राः (नरेन्द्रश्च महेन्द्रश्च शचीन्द्रश्च→नरेन्द्रमहेन्द्रशचीन्द्राः= नरेन्द्र, महेन्द्र और शचीन्द्र)

वाक्त्वचम् (वाक् च त्वक् च→वाक्त्वचम्[1]=वाणी और त्वचा)

मृद्दृषदम् (मृत् च दृषद् च→मृद्दृषदम्[1]=मिट्टी और पत्थर)

दम्पती (जाया च पतिश्च→जायापति→दम्पती[2]=पत्नी और पति)

जम्पती („ „ „→„ „→जम्पती[2]=„ „ „)

जायापती („ „ „→„ „→जायापती=„ „ „)

अव्ययीभाव, तत्पुरुष और बहुव्रीहि इन तीनों समासों में तो जिस समासविधायक नियम में जिस शब्द का प्रथम उल्लेख[3] किया है प्रायः वही पूर्वपद में रहता है। किन्तु द्वन्द्व समास में इस विषय में कई नियम हैं। उनको ध्यान से देखो—

(i) द्वन्द्व समास में कम स्वर वाला शब्द पूर्वपद में और अधिक स्वर वाला शब्द उत्तरपद में रहता है।[4] यथा—

व्यासकपिलौ (व्यासश्च कपिलश्च→व्यासकपिलौ=व्यास और कपिल)

वृक्षवनस्पती (वृक्षश्च वनस्पतिश्च→वृक्षवनस्पती=पेड़ और वनस्पति)

आम्रन्यग्रोधौ (आम्रश्च न्यग्रोधश्च→आम्रन्यग्रोधौ=आम और बड़)

पतञ्जलिबादरायणौ (पतञ्जलिश्च बादरायणश्च→पतञ्जलिबादरायणौ= पतञ्जलि और बादरायण (=व्यास)

जहाँ द्वन्द्व समास में दो से अधिक शब्द होंगे वहां सबसे पहिले शब्द (=पूर्वपद) में ही यह नियम लगेगा। दूसरे तीसरे आदि शब्दों में इच्छानुसार रख सकते हैं।[5] दो समान शब्द होंगे तो पहिले में भी विकल्प रहेगा। यथा—

---

१. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (अष्टा. ५.४.१०६) से टच् (=अ) प्रत्यय हुआ।

२. राजदन्तादि (राजदन्तादिषु परम् (अष्टा. २.२.३१) में निपातन से जाया के स्थान पर 'दम्' और 'जम्' आदेश हुआ।

३. समास-विधायक सूत्रों की दृष्टि से ऐसा समझना चाहिए कि समास-प्रकरण के सूत्रों में जो शब्द प्रथमा-विभक्त्यन्त हैं उनके द्वारा निर्दिष्ट जो शब्द हैं वे उपसर्जन कहलाते हैं। (=प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् (अष्टा. १.२. ४३) वही उपसर्जन सञ्ज्ञा वाला शब्द पूर्वपद में रहता है। (=उपसर्जनं पूर्वम् (अष्टा. २.२.३०)

४. अल्पाच्तरम् [अष्टा. २.२.३४]

५. बहुष्वनियमः [काशिका २.२.३४]

व्यासकपिलकण्वाः (व्यासश्च कपिलश्च कण्वश्च=व्यासकपिलकण्वाः)। अथवा
व्यासकण्वकपिलाः (,, कण्वश्च कपिलश्च=व्यासकण्वकपिलाः)।
धौम्यलोमशद्वैपायनाः(धौम्यश्च लोमशश्च द्वैपायनश्च=धौम्यलोमशद्वैपायनाः)।
धौम्यद्वैपायनलोमशाः(धौम्यश्च द्वैपायनश्च लोमशश्च=धौम्यद्वैपायनलोमशाः)।
जैमिनिकणादविश्वामित्राः (जैमिनिश्च कणादश्च विश्वामित्रश्च=…,,)।
कणादजैमिनिविश्वामित्राः (कणादश्च जैमिनिश्च विश्वामित्रश्च=…,,)।
कणादविश्वामित्रजैमिनयः (कणादश्च विश्वामित्रश्च जैमिनिश्च=…,,)।
जैमिनिविश्वामित्रकणादाः (जैमिनिश्च विश्वामित्रश्च कणादश्च=जैमिनि-विश्वामित्रकणादाः)।

(ii) समान स्वर वाले ऋतुवाची और नक्षत्रवाची शब्दों के द्वन्द्व समास में आनुपूर्व्य से अर्थात् क्रम की दृष्टि से पूर्वपद और उत्तरपद होंगे[1]। यथा—

हेमन्तशिशिरवसन्ताः (हेमन्तश्च शिशिरश्च वसन्तश्च=हेमन्तशिशिरवसन्ताः।
ग्रीष्मवर्षाशरदः (ग्रीष्मश्च वर्षा च शरद् च=ग्रीष्मवर्षाशरदः)।
चित्रास्वाती (चित्रा च स्वातिश्च=चित्रास्वाती)।
भरणीकृत्तिकारोहिण्यः (भरणी च कृत्तिका च रोहिणी च=भरणीकृत्तिका-रोहिण्यः)।

(iii) द्वन्द्व समास में जिस शब्द में अधिक ह्रस्व स्वर होंगे वह प्रायः पूर्वपद में रहेगा।[2]

कुशकाशम् (कुशश्च काशश्च→कुशकाशम्=डाभ और कांस)।
यवमाषौ (यवश्च माषश्च→यवमाषौ=जौ और उड़द)।
चणकगोधूमौ (चणकश्च गोधूमश्च→चणकगोधूमौ=चना और गेहूं)।

(iv) द्वन्द्व समास में जो अधिक पूजनीय होता है उसका वाचक शब्द पूर्वपद में रहता है[3]। यथा—

मातापितरौ [माता च पिता च=मातापितरौ[4]=माता और पिता]।
पिताभ्रातरौ [पिता च भ्राता च=पिताभ्रातरौ=पिता और भाई]।
पितामहपितरौ [पितामहश्च पिता च=पितामहपितरौ=दादा और पिता]।
श्वशुरश्यालौ [श्वशुरश्च श्यालश्च श्वशुरश्यालौ=श्वशुर और साला]।

---

१. ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्येण समानाक्षराणां पूर्वनिपातो वक्तव्यः [वा०] अष्टा. २.२.३४
२. लघ्वक्षरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् [वा०] [अष्टा. २.२.३४]
३. अभ्यर्हितं च पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् [वा०] [अष्टा. २.२.३४]:
४. आनङ् ऋतो द्वन्द्वे [अष्टा. ६.३.२५] से मातृ के ऋ को आनङ् [=आ] आदेश।

(v) चार वर्णों के द्वन्द्व समास में आनुपूर्व्य से पूर्व निपात होगा अर्थात् श्रेष्ठतर वर्ण का शब्द पूर्वपद में रहेगा[1]। यथा—

क्षत्रियवैश्यौ [क्षत्रियश्च वैश्यश्च=क्षत्रियवैश्यौ=क्षत्रिय और वैश्य]।
ब्राह्मणक्षत्रियौ [ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च=ब्राह्मणक्षत्रियौ]।
ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः [ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च वैश्यश्च शूद्रश्च=...]।

(vi) भाइयों के द्वन्द्व समास में बड़े भाई का नाम पूर्वपद में रहेगा[2]। यथा—

युधिष्ठिरार्जुनौ [युधिष्ठिरश्च अर्जुनश्च=युधिष्ठिरार्जुनौ]।
भीमार्जुनौ [भीमश्च अर्जुनश्च=भीमार्जुनौ]।
भरतलक्ष्मणौ [भरतश्च लक्ष्मणश्च=भरतलक्ष्मणौ]।

(vii) द्वन्द्व समास में घि-संज्ञक शब्द अर्थात् ह्रस्व इकार और ह्रस्व उकार जिसके अन्त में होगा वह शब्द पूर्वपद में रहेगा[3]। यथा—

मधुसर्पिषी [मधु च सर्पिश्च=मधुसर्पिषी=शहद और घी]।
विष्णुरुद्रौ [विष्णुश्च रुद्रश्च=विष्णुरुद्रौ=विष्णु और रुद्र]।

(viii) द्वन्द्व समास में ऐसा शब्द पूर्वपद में रहता है जिसके आरम्भ में कोई भी स्वर हो किन्तु अन्त में ह्रस्व अकार हो[4]। यथा—

उष्ट्रखरम् [उष्ट्रश्च खरश्च=उष्ट्रखरौ=ऊंट और गधा]।
अश्वरथौ [अश्वश्च रथश्च=अश्वरथौ=घोड़ा और रथ]।
इन्द्रवायू [इन्द्रश्च वायुश्च=इन्द्रवायू=इन्द्र और वायु]।
अवनीन्द्रमोहनौ [अवनीन्द्रश्च मोहनश्च=अवनीन्द्रमोहनौ]।

ऊपर बताया गया था कि समाहार द्वन्द्व समास में सदा एकवचन रहता है। किन्तु इसमें यह संशय उत्पन्न होता है कि क्या सभी शब्दों का समाहार द्वन्द्व हो सकता है अथवा कुछ विशिष्ट शब्दों का? इस सन्देह के निवारणार्थ वैयाकरणों ने कुछ नियम निश्चित कर रक्खे हैं कि इस-इस प्रकार के शब्दों का द्वन्द्व समास नित्य समाहार द्वन्द्व होता है और अमुक शब्दों का विकल्प से समाहार द्वन्द्व होता है। इस विषय को एकवद्भाव के नाम से भी कहा जाता है। अभिप्राय वही है। 'अमुक शब्दों का द्वन्द्व एकवद्भाव वाला होता है' अथवा 'अमुक शब्दों का द्वन्द्व समाहार द्वन्द्व होता है' दोनों का तात्पर्य एक ही है।

---

१. वर्णानामानुपूर्व्येण पूर्वनिपातः [वा०] [अष्टा. २.२.३४]।
२. भ्रातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो वक्तव्यः [वा०] [अष्टा. २.२.३४]।
३. द्वन्द्वे घि [अष्टा. २.२.३२]। ४. अजाद्यदन्तम् [अष्टा. २.२.३३]।

एकवद्‌भाव के विषय को विस्तार से समझाते हैं—

(क) प्राणी के अङ्गों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास, वाद्यों के अङ्गों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास और सेना के अङ्गों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास एकवद्‌भाव वाला होता है[1]=एक अर्थ का वाचक होता है=समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

पाणिपादम् [पाणी च पादौ च→पाणिपादम्[2]=हाथ और पांव]।
शिरोग्रीवम् [शिरश्च ग्रीवा च→शिरोग्रीवम्[3]=सिर और गर्दन]।
उदरहृदयम् [उदरञ्च हृदयञ्च→उदरहृदयम्=पेट और हृदय]।
मार्दङ्गिकपाणविकम् [मार्दङ्गिकश्च पाणविकश्च→मार्दङ्गिकपाणविकम्=ढोलक और ढोल बजाने वाले]।
वंशीवीणम् [वंशी च वीणा च→वंशीवीणम्=बांसुरी और वीणा]।
शङ्खमुरजम् [शङ्खश्च मुरजश्च→शङ्खमुरजम्=शङ्ख और ढोलक]।
रथिकाश्वारोहम् [रथिकाश्च अश्वारोहाश्च→रथिकाश्वारोहम्→रथसवार और घुड़सवार]।
सादिपादातम् [सादिनश्च पादाताश्च→सादिपादातम्=घुड़सवार और पैदल समूह]।
सादिपदातम् [सादयश्च पदाताश्च→सादिपदातम्=रथ हांकने वाले और पैदल]।

(ख) यजुर्वेद-विहित यज्ञ-विशेष-वाची शब्दों का द्वन्द्व समास एकवद्‌भाव वाला होता है किन्तु वे शब्द नपुंसकलिङ्ग वाले न हों[4]। यथा—
अर्काश्वमेधम् [अर्कश्च अश्वमेधश्च→अर्काश्वमेधम्=अर्क और अश्वमेध नाम के यज्ञ]।

(ग) अध्ययन की दृष्टि से जिनकी समीपता प्रसिद्ध है उनका द्वन्द्व समास एकवद्‌भाव वाला होता है[5]। यथा—
व्याकरणनिरुक्तम् [व्याकरणञ्च निरुक्तञ्च=व्याकरणनिरुक्तम्=व्याकरण और निरुक्त]।

---

१. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् [अष्टा. २.४.२]।
२. जहां-जहां एकवद्‌भाव होगा वहां-वहां नपुंसकलिङ्ग रहेगा [='स नपुंसकम्' अष्टा. २.४.१७]।
३. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य [१.२.४७] से ग्रीवा के आ को ह्रस्व।
४. अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् [अष्टा. २.४.४.]।
५. अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् [अष्टा. २.४.५]।

छन्दःशास्त्रकाव्यशास्त्रम् [छन्दःशास्त्रं च काव्यशास्त्रं च = छन्दःशास्त्रकाव्यशास्त्रम्] ।

(घ) प्राणियों को छोड़कर अन्य पदार्थों (= वस्तुओं) की जाति के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवद्भाव वाला होता है[1] । यथा—

अपूपपायसम् [अपूपाश्च पायसं च → अपूपपायसम् = पुए और खीर] ।

घटपटम् [घटश्च पटश्च → घटपटम् = घड़ा और कपड़ा] ।

छत्रपादुकम् [छत्रञ्च पादुका च → छत्रपादुकम् = छाता और खड़ाऊँ] ।

(ङ) नदीवाची शब्दों और देशवाची शब्दों के द्वन्द्व समास में यदि पूर्वपद और उत्तरपद भिन्न-भिन्न लिङ्ग वाले हों तो उनका द्वन्द्व एकवद्भाव वाला होता है। किन्तु देशवाची शब्दों में से ग्रामवाची शब्दों को छोड़ देना है[2] ।

उद्ध्यैरावति (उद्ध्यश्च इरावती च → उद्ध्यैरावति = उज्झ और रावी नामक नदियां) ।

गङ्गाशोणम् (गङ्गा च शोणश्च → गङ्गाशोणम् = गङ्गा और सोन नदी) ।

कुरुकुरुक्षेत्रम् (कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च → कुरुकुरुक्षेत्रम् = कुरु देश और कुरुक्षेत्र देश) ।

(च) छोटे छोटे जन्तुओं के वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास एकवद् भाव वाला होता है[3] । यथा—

दंशमशकम् (दंशाश्च मशकाश्च → दंशमशकम् = डांस और मच्छर) ।

यूकालिक्षम् (यूकाश्च लिक्षाश्च → यूकालिक्षम् = जुंएँ और लीखें) ।

मत्कुणपिपीलिकम् (मत्कुणाश्च पिपीलिकाश्च → मत्कुणपिपीलिकम् = खटमल और चींटियाँ) ।

वृश्चिकमूषकम् (वृश्चिकाश्च मूषकाश्च → वृश्चिकमूषकम् = बिच्छू और चूहे) ।

(छ) जिन प्राणियों का परस्पर जन्मजात वैर होता है उनके वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास एकवद्भाव वाला होता है[4] । यथा—

मार्जारमूषकम् (मार्जारश्च मूषकश्च → मार्जारमूषकम् = बिलाव और चूहा) ।

अहिनकुलम् (अहिश्च नकुलश्च → अहिनकुलम् = सांप और नेवला) ।

काकोलूकम् (काकश्च उलूकश्च → काकोलूकम् = कौआ और उल्लू) ।

---

१. जातिरप्राणिनाम् [अष्टा. २.४.६.] ।
२. विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः (अष्टा. २.४.७) ।
३. क्षुद्रजन्तवः (अष्टा. २.४.८) ।
४. येषां च विरोधः शाश्वतिकः (अष्टा. २.४.९) ।

(ज) 'गवाश्वम्' आदि कुछ द्वन्द्व समास वाले शब्द और भी हैं जिनमें एकवद्भाव माना जाता है[1]। यथा—

गवाश्वम् (गौश्च अश्वश्च→[2]गवाश्वम्=गौ और घोड़ा)।

गवैडकम् (गौश्च एडका च→गवैडकम्=गौ और भेड़)।

कुब्जवामनम् (=कुबड़ा और बौना)। पुत्रपौत्रम् (=पुत्र और पौत्र)। उष्ट्रखरम् (=ऊंट और गधा)। मूत्रशकृत् (मूत्र और मल)। मूत्रपुरीषम् (=मूत्र और मल)। मांसशोणितम् (=मांस और रक्त)। दर्भशरम् (=डाभ और सरकण्डा)। अर्जुनशिरीषम् (=अर्जुन नाम का पेड़ और सिरस का पेड़)। तृणोलपम् (=घास और बेल)। आदि।

(झ) वृक्षविशेषवाची, हरिणविशेषवाची, तृणविशेषवाची, अन्नविशेषवाची, व्यञ्जनविशेषवाची, पशुविशेषवाची और पक्षीविशेषवाची शब्दों का द्वन्द्वसमास तथा अश्ववडव, पूर्वापर और अधरोत्तर ये द्वन्द्वसमास विकल्प से एकवद्भाव वाले होते हैं[3]। यथा—

प्लक्षन्यग्रोधम् (प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च→प्लक्षन्यग्रोधम्=पाकड़ और बड़)।

प्लक्षन्यग्रोधाः (प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च→प्लक्षन्यग्रोधाः=पाकड़ और बड़)।

रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः (=रुरु और पृषत नाम के हरिण)। कुशकाशम्, कुशकाशाः (=डाभ और कांस)। व्रीहियवम्, व्रीहियवाः (=चावल और जौ)। दधिघृतम्, दधिघृते (=दही और घी)। गोमहिषम्, गोमहिषाः (=बैल और भैंसे)। तित्तिरिकपिञ्जलम्, तित्तिरिकपिञ्जलाः (=तीतर और चातक)। अश्ववडवम्, अश्ववडवौ[4] (=घोड़ा और घोड़ी)। पूर्वापरम्, पूर्वापरे (=पहिला और पिछला)। अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे (=निचला और ऊपर का)।

(ञ) एक दूसरे के विपरीत-वाची जो शब्द हैं उनका द्वन्द्व समास भी विकल्प से एकवद्भाव वाला होता है, किन्तु वे शब्द द्रव्यवाची न हों[5]। यथा—

शीतोष्णम् (शीतं च उष्णं च→शीतोष्णम्=सरदी और गरमी)।

शीतोष्णे (,, ,, ,, ,,→शीतोष्णे=सरदी और गरमी)।

---

१. गवाश्वप्रभृतीनि च (अष्टा. २.४.११)।

२. अवङ् स्फोटायनस्य (अष्टा. ६.१.) से गो के ओ के स्थान पर अवङ् आदेश।

३. विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् (अष्टा. २.४.१२)।

४. पूर्ववदश्ववडवौ (अष्टा. २.४.२७) से पुंल्लिङ्गता।

५. विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि (अष्टा. २.४.१४)।

सुखदुःखम्, सुखदुःखे (=सुख और दुःख)। जीवितमरणम्, जीवितमरणे (=जीना और मरना)। आदि।

एकवद्भाव के विधायक इन नियमों के कारण पूर्वनिर्दिष्ट सभी स्थानों में एकवद्भाव होता है। किन्तु ये नियम कुछ द्वन्द्व समास वाले शब्दों में प्रभावी नहीं होते। यथा[1]—

दधिपयसी[2] (दधि च पयश्च→दधिपयसी=दही और दूध)।
सर्पिर्मधुनी[2] (=घी और शहद)। मधुसर्पिषी[2] (=शहद और घी)।
शुक्लकृष्णौ[3] (=सफेद और काला)। आद्यावसाने[3] (=आरम्भ और अन्त)
ऋक्सामे[4] (=ऋग्वेद और सामवेद)। वाङ्मनसे[5] (=वाणी और मन)।
आदि आदि।

द्वन्द्व समास के समासान्त प्रत्यय

[१] समाहार द्वन्द्व समास के अन्त में यदि चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त शब्द हों तो उनसे टच् [=अ] प्रत्यय होता है[6]। यथा—

वाक्त्वचम् [वाक् च त्वक् च→वाच् त्वच् टच्→वाक्त्वचम्=वाणी और त्वचा]।
त्वक्स्रजम् [त्वक् च स्रक् च→त्वच् स्रज् टच्→त्वक्स्रजम्=त्वचा और माला]।
समिद्दृषदम् [समित् च दृषत् च→समिद्दृषद् टच्→समिद्दृषदम्=समिधा और पत्थर]।
सम्पद्विपदम् [सम्पत् च विपत् च→सम्पद् विपद् टच्→सम्पद्विपदम्=सम्पति और विपत्ति]।
वाक्त्विषम् [वाक् च त्विट् च→वाच् त्विष् टच्→वाक्त्विषम्=वाणी और सौन्दर्य]।

---

१. न दधिपयआदीनि (अष्टा. २.४.१४)।
२. विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जन······तराणाम् (अष्टा. २.४.१२) से विकल्प से एकवद्भाव प्राप्त था।
३. विप्रतिषिद्ध···=[नियम (अ)] से विकल्प से एकवद्भाव प्राप्त था।
४. अध्ययनतोऽविप्रकष्टाख्यानाम् (अष्टा. २.४.५) से एकवद्भाव प्राप्त था। यहाँ अचतुर······(अष्टा. ५.४.७७) से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ।
५. द्वन्द्वश्च प्राणि० (अष्टा. २.४.२) से एकवद्भाव-प्राप्ति थी। 'अचतुर०' से समासान्त अच् प्रत्यय।
६. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे [अष्टा. ५.४.१०६]।

वातविप्रुषम् [वातश्च विप्रुषश्च → वातविप्रुष् टच् → वातविप्रुषम् = हवा और बूंदें]।

छत्रोपानहम् [छत्रञ्च उपानहौ च → छत्र उपानह् टच् → छत्रोपानहम् = छाता और जूते]।

[२] स्त्री + पुमान्, धेनु + अनडुह्, ऋच् + सामन्, वाच् + मनस्, अक्षि + भ्रू, दारा + गो' ऊरु + अष्ठीवत्, पाद + अष्ठीवत्, नक्तम् + दिवा, रात्रि + दिवा, और अहन् + दिवा इन ग्यारह द्वन्द्व समास वाले शब्दों से भी अच् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

स्त्रीपुंसौ [स्त्री च पुमान् च → स्त्री पुंस् अच् → स्त्रीपुंसौ = स्त्री और पुरुष]।

धेन्वनडुहौ [धेनुश्च अनड्वान् च → धेनु अनडुह् अच् → धेन्वनडुहौ = गाय और बैल]।

ऋक्सामे [ऋक् च साम च → ऋच् सामन् अच् → ऋक्सामे[2] = ऋग्वेद और सामवेद]।

वाङ्मनसे [वाक् च मनश्च → वाच् मनस् अच → वाङ्मनसे = वाणी और मन]।

अक्षिभ्रुवम् [अक्षिणी च भ्रुवौ च → अक्षिभ्रू अच् → अक्षिभ्रुवम्[3] = आंखें और भौंहें]।

दारगवम् [दाराश्च गावश्च → दार गो अच् → दारगवम् = स्त्री और गौएँ]।

ऊर्वष्ठीवम् [ऊरू च अष्ठीवन्तौ च → ऊरु अष्ठीवत् अच् → ऊर्वष्ठीवम् = जांघें और घुटने]।

पदष्ठीवम् [पादौ च अष्ठीवन्तौ च → पाद अष्ठीवत् अच् → '[4]पदष्ठीवम्'[5] = पांव और घुटने]।

नक्तन्दिवम् [नक्तञ्च दिवा च → नक्तम् दिवा अच् → नक्तन्दिवम्—रात में और दिन में]।

---

१. अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिश्श्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः [अष्टा. ५.४.७७]।

२. नस्तद्धिते [अष्टा. ६.४.१४४] से अन् भाग का लोप।

३. टि० सं० १ वाले सूत्र में निपातन के सामर्थ्य से भ्रू के ऊ को उवङ् (=उव्) आदेश।

४. निपातन से पाद के स्थान पर पद् आदेश।

५. निपातन से अष्ठीवत् के अत् भाग का लोप।

रात्रिन्दिवम् [रात्रौ च दिवा च→रात्रि दिवा अच्='रात्रिन्दिवम्=रात में और दिन में]।

अहर्दिवम् [अहनि च दिवा च→अहन् दिवा अच्→अहर्दिवम्'=प्रत्येक दिन में=हर रोज]।

अभ्यास

१. नरेन्द्र, महेन्द्र और सुरेन्द्र, हाथ पांव धोकर भोजन करते हैं।
नरेन्द्रमहेन्द्रसुरेन्द्राः पाणिपादम्प्रक्षाल्य भोजनम्भुञ्जते।

२. इन स्त्री पुरुषों ने सारे दिन मिट्टी और पत्थर हटाकर यह स्थान शुद्ध किया है।
इमौ दम्पती [जम्पती] निखिलमहो मृद्दृषदमपनीय स्थलमेतदशूशुधताम्।

३. बच्चो ! पिता और दादा को प्रणाम करो=बालाः पितामहपितरौ प्रणमत।

४. घी और शहद के सेवन से बल बढ़ जाता है=मधुसर्पिषोः सेवनेन बलं वर्धते।

५. मोहन और अवनीन्द्र, लोमश और व्यास के ग्रन्थों को पढ़ेंगे।
अवनीन्द्रमोहनौ व्यासलोमशयोर्ग्रन्थान् पठिष्यतः।

६. इन चार घरों में कल मालपुआ और खीर बनेगी।
एषु चतुर्षु गृहेषु श्वोऽपूपपायसं पक्ता।

७. उस मन्दिर के बाहर से कोई मेरा छाता और जूता ले गया।
तस्य मन्दिरस्य बहिःप्रदेशात् कश्चिन्मे छत्रोपानहमचूचुरत्।

८. गङ्गा और सोन, भारत के बड़े भूभाग को सींचती हैं।
गङ्गाशोणं भारतस्य पर्याप्तम्भूभागं सिञ्चति।

९. अलवर में डाँस और मच्छर तो बहुत हैं, पर बिच्छू और चूहे कम हैं।
अलवरनगरे दंशमशकन्तु प्रचुरमस्ति परं वृश्चिकमूषकङ्कनीयोऽस्ति।

१०. सांप और नेवले के समान, इन दोनों की आपस मे शत्रुता है।
अहिनकुलवदनयोर्मिथो वैरं विद्यते।

११. महेन्द्र के घर में पुत्रों और पौत्रों को तथा गौओं और घोड़ों को देखकर सभी मित्र बड़े हर्षित हुए।
महेन्द्रमन्दिरे पुत्रपौत्रङ्गवाश्वञ्च विलोक्य समानि मित्राण्यमोदन्त [अमोदिषत]।

१२. वाणी और मन जिसके वश में हैं, वही ऋग्वेद और सामवेद को पढ़ सकता है।
वाङ्मनसे यस्य वशानुगे स एव ऋक्सामे अध्येतुमर्हति।

१३. तू दही और घी तो जी भर कर खाना चाहता है, पर गौएं और भैंसें नहीं पालना चाहता।
त्वं दधिघृतं [दधिघृते] तु मनोहत्य बुभुक्षसि, किन्तु गोमहिषीं [गोमहिषीः] तु न पिपालयिषसि।

---

१. निपातन से रात्रि के अन्त मे मकार हुआ। म् का अनुस्वार और फिर परसवर्ण पूर्ववत्।

२. निपातन से वीप्सा में द्वन्द्व समास।

बहुव्रीहि समास

बहुव्रीहि समास में प्रायः अन्यपदार्थ की प्रधानता होती है। बहुव्रीहि समास मुख्य रूप से दो प्रकार है। (१) समानाधिकरण और (२) व्यधिकरण। जिस बहुव्रीहि के पूर्वपद और उत्तरपद दोनों विशेषण विशेष्य आदि रूप में एक ही वस्तु के बोधक होते हैं, वह समानाधिकरण बहुव्रीहि कहलाता है। जिस बहुव्रीहि के दोनों पद भिन्न-भिन्न वस्तु का बोध कराते हैं वह व्यधिकरण बहुव्रीहि है।

समानाधिकरण-बहुव्रीहि-समास के पूर्वपद और उत्तरपद समान विभक्ति वाले होते हैं और व्यधिकरण-बहुव्रीहि के पूर्वपद और उत्तरपद प्रायः भिन्न-भिन्न विभक्ति वाले होते हैं।

समानाधिकरण बहुव्रीहि

समानाधिकरण बहुव्रीहि मुख्यतः पांच प्रकार का है—

(१) **सामान्य बहुव्रीहि**—अन्यपद के अर्थों में विद्यमान प्रथमाविभक्त्यन्त शब्दों का उसी प्रकार के प्रथमाविभक्त्यन्त शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है[1]। इसके पांच भेद हैं—

(i) **द्वितीयाविभक्त्यर्थ-प्रधान बहुव्रीहि**—

प्राप्तरथः (प्राप्तः रथः यं [ग्रामम्]→प्राप्तरथः ग्रामः=ऐसा गांव जिसको रथ पहुंच गया है)।

प्राप्तोदकः (प्राप्तम् उदकं यं [देशम्]→प्राप्तोदकः देशः=ऐसा स्थान जहां पानी पहुंच गया है)।

प्राप्तविद्यः (प्राप्ता विद्या यं [छात्रम्]→प्राप्तविद्यः[2] छात्रः=ऐसा छात्र जिसको विद्या प्राप्त हो गई है)।

(ii) **तृतीयाविभक्त्यर्थप्रधान बहुव्रीहि**—

ऊढरथः (ऊढः रथः येन सः→ऊढरथः अनड्वान्=ऐसा बैल जिसने रथ का वहन किया है)।

भुक्तौदनः (भुक्तः ओदनः येन सः→भुक्तौदनः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसने भात खा लिया हो)।

हुतहोमः (हुतः होमः येन सः→हुतहोमः द्विजः=ऐसा द्विज जिसने होम कर लिया हो)।

---

१. अनेकमन्यपदार्थे (अष्टा. २.२.२४)।

२. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (अष्टा. २.२.४८) से ह्रस्वता।

(iii) चतुर्थीविभक्त्यर्थप्रधान बहुव्रीहि—

उपहृतमधुपर्कः (उपहृतः मधुपर्कः यस्मै सः→उपहृतमधुपर्कः वरः=ऐसा वर जिसके लिये मधुपर्क भेंट किया गया हो)।

दत्तभिक्षः (दत्ता भिक्षा यस्मै सः→दत्तभिक्षः[1] भिक्षुकः=ऐसा भिक्षुक जिसे भिक्षा दे दी गई हो)।

पक्वापूपः (पक्वाः अपूपाः यस्मै सः→पक्वापूपः अतिथि=ऐसा अतिथि जिसके लिए मालपुए पकाये गये हों)।

(iv) पञ्चमीविभक्त्यर्थप्रधान बहुव्रीहि—

उद्धृतौदना (उद्धृतः ओदनः यस्याः सा→उद्धृतौदना स्थाली=ऐसी बटलोई जिसमें से भात निकाल लिया गया हो)।

निस्सारितनीरः (निस्सारितं नीरं यस्मात् सः→निस्सारितनीरः घटः=ऐसा घड़ा जिसमें से पानी निकाल दिया गया हो)।

उड्डीनविहगः (उड्डीनाः विहगाः यस्मात् सः→उड्डीनविहगः वृक्षः=ऐसा पेड़ जिस पर से पक्षी उड़ गये हों)।

अपगतश्रीकम्[2] (अपगता श्रीः यस्मात् तत्→अपगतश्रीकं मुखम्=ऐसा मुख जिस पर से आभा (सौन्दर्य) उड़ गई हो)।

(v) षष्ठीविभक्त्यर्थप्रधान बहुव्रीहि—

चित्रगुः (चित्राः गावः यस्य सः→चित्रगुः[1] पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसकी गायें रंग-बिरंगी हों)।

दिगम्बरः (दिशः अम्बरं यस्य सः→दिगम्बरः तापसः=ऐसा तपस्वी जिसका कपड़ा दिशाएं हों अर्थात् नग्न)।

पीताम्बरः (पीतानि अम्बराणि यस्य सः→पीताम्बरः पुरोहितः=ऐसा पुरोहित जिसके वस्त्र पीले हों)।

अस्तङ्गमितमहिमा (अस्तङ्गमितः महिमा यस्य सः→अस्तङ्गमितमहिमा यक्षः =ऐसा यक्ष जाति का व्यक्ति जिसका गौरव नष्ट कर दिया गया हो)।

(vi) सप्तमीविभक्त्यर्थप्रधान बहुव्रीहि—

वीरपुरुषकः (वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः→वीरपुरुषकः[3] ग्रामः=ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हों)।

---

१. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (अष्टा. १.२.४८) से ह्रस्वता।

२. नद्यृतश्च (अष्टा. ५.४.१५३) से समासान्त कप् (=क) प्रत्यय।

३. शेषाद् विभाषा (अष्टा. ५.४.१५४) से समासान्त कप् प्रत्यय।

शिक्षितकन्यः (शिक्षिताः कन्याः यस्मिन् सः→शिक्षितकन्यः ग्रामः=ऐसा गाँव जहाँ शिक्षित कन्याएँ रहती हों)।

बहुपण्डिता (बहवः पण्डिताः यस्यां सा→बहुपण्डिता नगरी=ऐसी नगरी जिसमें बहुत से पण्डित रहते हों)।

(२) **समुदायविकारषष्ठीसम्बद्ध बहुव्रीहि**—ऐसे समस्त शब्द जो कि षष्ठीतत्पुरुष समास से युक्त हैं और जिनके पूर्वपदों की षष्ठी, समुदाय-सम्बन्धी षष्ठी अथवा विकार-सम्बन्धी षष्ठी रही हो, उनका अन्य शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है और तब उस षष्ठी समास वाले शब्द के उत्तरभाग का लोप हो जाता है[1]। यथा—

केशचूडः (केशानां सङ्घातः→केशसङ्घातः→केशसङ्घातः चूडा यस्य सः→केशसङ्घात चूडा→केशचूडः बालकः=ऐसा बालक जिसके सारे केश ही चोटी हैं)।

सुवर्णालङ्कारः (सुवर्णस्य विकारः→सुवर्णविकारः→सुवर्णविकारः अलङ्कारः यस्य सः→सुवर्णविकार अलङ्कार→सुवर्णालङ्कारः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसके आभूषण सोने के बने हुए हैं)।

(३) **प्रादिबहुव्रीहि**—ऐसे समस्त शब्द जिनके पूर्वपद में प्र आदि उपसर्ग हों और उत्तरपद में कृदन्त शब्द हों, उन शब्दों का अन्य शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है और उन कृदन्त शब्दों का विकल्प से लोप भी हो जाता है[2]। यथा—

प्रपर्णः (प्रकर्षेण पतितानि→प्रपतितानि[3]→प्रपतितानि पर्णानि यस्य सः→प्रपतितपर्ण→प्रपर्णः वृक्षः=ऐसा वृक्ष जिसके पत्ते बिल्कुल झड़ गये हैं)।

प्रपतितपर्णः (प्रकर्षेण पतितानि[3]→प्रपतितानि→प्रपतितानि पर्णानि यस्य सः→प्रपतितपर्ण→प्रपतितपर्णः वृक्षः=ऐसा वृक्ष जिसके पत्ते बिल्कुल झड़ गये हैं)।

प्रपलाशा, प्रपतितपलाशा (प्रकर्षेण पतितानि→प्रपतितानि[3]→प्रपतितानि→पलाशानि यस्याः सा→प्रपतित पलाश→प्रपलाशा, प्रपतितपलाशा वल्लरी=ऐसी बेल जिसके पत्ते सर्वथा झड़ गये हैं)।

(४) **नञस्त्यर्थपूर्वपदबहुव्रीहि**—ऐसे समासयुक्त शब्द जिनके पूर्वपद में नञ् (=अ) हो और उत्तरपद में 'विद्यमान' आदि शब्द हों, उन समासयुक्त शब्दों का

---

१. समुदायविकारषष्ठ्याश्च बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्चेति वक्तव्यम् [वा०] (अष्टा. २.२.२४)।

२. प्रादिभ्यो धातुजस्योत्तरपदलोपश्च वा [वा०] (अष्टा. २.२.२४)।

३. प्रादितत्पुरुष समास (—कुगतिप्रादयः २.२.१८)।

अन्य शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है और 'विद्यमान' आदि शब्दों का विकल्प से लोप भी हो जाता है[1]।

अपुत्रः, अविद्यमानपुत्रः (न विद्यमानाः→अविद्यमानाः[2]→अविद्यमानाः पुत्राः यस्य सः→अविद्यमान पुत्र→अपुत्रः, अविद्यमानपुत्रः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसके पुत्र अब विद्यमान नहीं हैं)।

अभार्यः, अविद्यमानभार्यः (न विद्यमाना→अविद्यमाना[2]→अविद्यमाना भार्या यस्य सः→अविद्यमाना भार्या→अभार्यः, [3]अविद्यमानभार्यः पुरुषः—ऐसा पुरुष जिसकी पत्नी विद्यमान नहीं है)।

इसी प्रकार—अशिष्यः, अविद्यमानशिष्यः गुरुः। अलवणा, अविद्यमानलवणा यवागूः।

(५) अस्तिक्षीरादि बहुव्रीहि—

तिङन्त रूपों के समान प्रतीत होने वाले 'अस्ति', 'अस्तु', 'अस्मि' आदि अव्यय शब्दों का क्षीर आदि शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है[4]। यथा—

अस्तिक्षीरा (अस्ति क्षीरं यस्याः सा→अस्तिक्षीर→अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी= ऐसी ब्राह्मणी जिसके दूध है)।

अस्मिरुग्णम् (अस्मि रुग्णः यस्मिन् तत्→अस्मि रुग्ण→अस्मिरुग्णम् गृहम्= ऐसा घर जिसमें मैं रोगी हूं)।

व्यधिकरण बहुव्रीहि

व्यधिकरण बहुव्रीहि मुख्यतः सात प्रकार का है।

(१) अव्ययपूर्वपद बहुव्रीहि—अव्यय शब्दों का प्रथमान्त शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है[5]। यथा—

उच्चैर्मुखः (उच्चैः दिशि मुखं यस्य सः→उच्चैर्मुखः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसका मुख ऊपर की ओर हो)।

---

१. नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः [वा०] (अष्टा. २.२.२४)।

२. नञ् (अष्टा. २.२.६) से नञ्तत्पुरुष समास।

३. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (अष्टा. ६.३.३४) से पुंवद्भाव।

४. सुबधिकारेऽस्तिक्षीरादीनां बहुव्रीहिर्वक्तव्यः [वा०] (अष्टा. २.२.२४)।

५. अव्ययानां च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः [वा०] (अष्टा. २.२.२४)।

नीचैर्मुखः (नीचैः दिशि मुखं यस्य सः→नीचैर्मुखः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसका मुख नीचे की ओर हो)।

(२) **सप्तमीपूर्वपद बहुव्रीहि**—सप्तम्यन्त शब्दों का प्रथमान्त शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है[1]। यथा—

कण्ठेकालः (कण्ठे कालः यस्य सः→कण्ठेकालः[2] पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसके कण्ठ में काला चिह्न हो)।

उरसिलोमा (उरसि लोमानि यस्य सः—उरसिलोमन्→उरसिलोमा[2] नरः= ऐसा पुरुष जिसके सीने पर लोम हों)।

कुछ बहुव्रीहि समास वाले शब्द ऐसे हैं जिनमें सप्तम्यन्त शब्दों का प्रथमान्त शब्दों के साथ जब बहुव्रीहि समास होता है तो सप्तम्यन्त शब्द उत्तरपद में चले जाते हैं[3]। यथा—

गडुकण्ठः (कण्ठे गडुः यस्य सः→गडुकण्ठः छात्रः=ऐसा छात्र जिसके कण्ठ में गांठ हो)।

चक्रपाणिः (पाणौ चक्रः यस्य सः→चक्रपाणिः कृष्णः=ऐसे श्रीकृष्ण जिनके हाथ में चक्र है)।

चन्द्रशेखरः (शेखरे चन्द्रः यस्य सः→चन्द्रशेखरः हिमाचलः=ऐसा हिमालय पर्वत जिसके शिखर पर चन्द्र प्रतीत हो रहा है)।

(३) **उपमानपूर्वपद बहुव्रीहि**—ऐसे उपमानवाची शब्द जो कि स्वयं पहिले से समासयुक्त हों उनका अन्य शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है और उन उपमान शब्दों के उत्तर भाग का लोप हो जाता है[1]। यथा—

उष्ट्रमुखः (उष्ट्रमुखम् इव मुखं यस्य सः→उष्ट्रमुख मुख→उष्ट्रमुखः पुरुषः= ऐसा पुरुष जिसका मुख ऊँट के मुख के समान हो)।

गजकर्णी (गजकर्णौ इव कर्णौ यस्याः सा→गजकर्ण कर्ण→गजकर्णी[4] गौः= ऐसी गौ जिसके कान हाथी के कानों के समान हों)।

---

१. सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः [वा०] (अष्टा. २.२.२४)।

२. अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे (अष्टा. ६.३.१२) से सप्तमी का अलुक्।

३. सप्तम्याः पूर्वनिपाते प्राप्ते गड्वादिभ्यः सप्तम्यन्तं परम् [वा०] (अष्टा. २.२.३५)।

४. नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च (अष्टा. ४.१.५५) से विकल्प से ङीष् (=ई) प्रत्यय।

उलूकपक्षी (उलूकपक्षो इव पक्षो यस्याः सा→उलूकपक्ष पक्ष→उलूकपक्षी[1] सेना =ऐसी सेना जिसके पंख (=पार्श्व) उल्लू के पंखों के समान हों)।

(४) **सङ्ख्योत्तरपद बहुव्रीहि**—अव्यय शब्द, आसन्न, अदूर, अधिक ये शब्द और सङ्ख्यावाची शब्द; इन शब्दों का ऐसे सङ्ख्यावाची शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है जो कि सङ्ख्येय (=गिनने योग्य पदार्थ) के वाचक हों[2]। यथा—

उपदशाः (दशानां समीपे ये सन्ति ते→उप दशन् डच्[3]=उपदशाः[4]=दस के लगभग (नौ या ग्यारह पदार्थ)।

उपविंशाः (विंशतेः समीपे ये सन्ति ते→उप विंशति डच्[3]=उपविंशाः[5]= बीस के समीप [=उन्नीस या इक्कीस] पदार्थ)।

आसन्नत्रिंशाः (त्रिंशतः आसन्नाः→आसन्न त्रिंशत् डच्[3]=आसन्नत्रिंशाः[4]= तीस के समीप=उनतीस या इकत्तीस पदार्थ)।

अदूरचत्वारिंशाः (चत्वारिंशतः अदूराः→अदूरचत्वारिंशत् डच्[3] अदूरचत्वारिंशाः[4]=चालीस से दूर नहीं अर्थात् चालीस के समीप= इकचालीस या बयालीस पदार्थ)।

अधिकपञ्चाशाः (पञ्चाशतः अधिकाः→अधिकपञ्चाशत् डच्[3]=अधिकपञ्चाशाः[4]=पचास से अधिक)।

द्वित्राः (द्वौ वा त्रयो वा→द्वि त्रि डच्[3]→द्वित्राः[4]=दो या तीन वस्तुएं)।

त्रिचतुराः (त्रयो वा चत्वारो वा→त्रि चतुर् [6]अच्→त्रिचतुराः= तीन या चार चीजें)।

पञ्चषाः (पञ्च वा षट् वा→पञ्चन् षष् डच्[3]→पञ्चषाः=पांच या छः पदार्थ)।

द्विदशाः (द्विः आवृत्ताः दश→द्वि दशन् डच्[3]→द्विदशाः[4]=दुगुने दस [= बीस] चीजें।

(५) **दिगुभयपद बहुव्रीहि**—दिशाओं के नामवाची शब्दों का अन्य दिशानामवाची शब्दों के साथ अन्तराल (=मध्यभाग) के कहने में बहुव्रीहि समास होता है[7]।

---

१. उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च [वा०] (अष्टा. ४.१.५५) से नित्य ङीष् [=ई] प्रत्यय।
२. अव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये (अष्टा. २.२.२५)।
३. बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् (अष्टा. ५.४.७३)।
४. टेः (अष्टा. ६.४.१४३) से टि भाग का लोप [=अन् भाग का लोप, अत् भाग का लोप, इ का लोप और अष् भाग का लोप]।
५. ति विंशतेर्डिति (अष्टा. ६.४.१४२) से ति भाग का लोप।
६. चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसङ्ख्यानम् [वा०] (अष्टा. ५.४.७७)।
७. दिङ्नामान्यन्तराले (अष्टा. २.२.२६)।

दक्षिणपूर्वा (दक्षिणस्याः च पूर्वस्याः च दिशोः अन्तरालं=दक्षिणा पूर्वा→ [1]दक्षिणपूर्वा दिक्=दक्षिण और पूर्व के बीच की दिशा=आग्नेय दिशा)।
पूर्वोत्तरा (पूर्वस्याः च उत्तरस्याः च दिशोः अन्तरालम्→पूर्वा उत्तरा→ [1]पूर्वोत्तरा दिक्=पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा=ईशान दिशा)।
उत्तरपश्चिमा (उत्तरस्याः च पश्चिमायाः च दिशोः अन्तरालम्→उत्तरा पश्चिमा→[1]उत्तरपश्चिमा दिक्=उत्तर और पश्चिम के बीच की दिशा= वायव्य दिशा)।
पश्चिमदक्षिणा (पश्चिमायाः च दक्षिणस्याः च दिशोः अन्तरालम्→पश्चिमा दक्षिणा→[1]पश्चिमदक्षिणा दिक्=पश्चिम और दक्षिण के बीच की दिशा= नैर्ऋत्य दिशा)।

(६) व्यतीहार बहुव्रीहि—

(i) सप्तम्यन्त शब्दों का अन्य समान रूप वाले सप्तम्यन्त शब्दों के साथ 'पकड़कर यह युद्ध हुआ' इस अर्थ में बहुव्रीहि समास होता है।[2] यथा—

केशाकेशि (केशेषु केशेषु च 'गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्'→केश केश→केशाकेशि[3]=ऐसी लड़ाई जो एक दूसरे के बाल पकड़कर लड़ी गई हो)।
कचाकचि (कचेषु कचेषु च 'गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्'→कच कच→कचाकचि[3]=ऐसी लड़ाई जो एक दूसरे के बाल पकड़कर लड़ी गई हो)।

(ii) तृतीयान्त शब्दों का अन्य समान रूप वाले तृतीयान्त शब्दों के साथ 'प्रहार करके यह युद्ध हुआ' इस अर्थ में बहुव्रीहि समास होता है[2]।

दण्डादण्डि (दण्डैः दण्डैः च 'प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्'→दण्ड दण्ड→दण्डादण्डि[3]=ऐसी लड़ाई जो एक दूसरे पर डण्डों का प्रहार करके लड़ी गई हो)।
मुसलामुसलि (मुसलैः मुसलैः च 'प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्→मुसल मुसल→मुसलामुसलि[3]=ऐसी लड़ाई जो एक दूसरे पर मूसलों का प्रहार करके लड़ी गई हो)।

---

१. सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः [वा०] (अष्टा. २.२.२६) से पूर्वपद को पुंवद्भाव।
२. तत्र तेनेदमिति सरूपे (अष्टा. २.२.२७)।
३. यहां 'इच् कर्मव्यतिहारे' (अष्टा. ५.४.१२७) से समासान्त इच् (=इ) प्रत्यय। 'अन्येषामपि दृश्यते' (अष्टा. ६.३.१३७) से पूर्वपद को दीर्घत्व। 'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च' (अष्टा. २.१.१७) से केशाकेशि आदि को अव्ययीभावत्व। 'अव्ययीभावश्च' (अष्टा. १.१.४१) से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' (अष्टा. २.४.८२) से सुब्लुक्।

मुष्टीमुष्टि (मुष्टिभिः मुष्टिभिः च 'प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्'→मुष्टि मुष्टि→मुष्टीमुष्टि[१]=ऐसी लड़ाई जो परस्पर मुट्ठियों के प्रहार से लड़ी गई हो)।

[७] तुल्ययोग अर्थ वाले सह अव्यय का तृतीयान्त शब्द के साथ बहुव्रीहि समास होता है[२]।—यथा

सपुत्रः, सहपुत्रः [सह पुत्रेण→सह पुत्र→सपुत्रः[३] सहपुत्रः=पुत्रसहित]

ससीतः, सहसीतः [सह सीतया→सहसीता→ससीतः, सहसीतः[४]=सीतासहित]

सकर्मकरः, सहकर्मकरः [सह कर्मकरेण→सह कर्मकर→सकर्मकरः,[३] सहकर्मकरः=कर्मचारी सहित]

बहुव्रीहि समास में पूर्वनिपात के नियम

[i] बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त शब्दों को और विशेषण शब्दों को पूर्व में रखते हैं।[५] यथा—

कण्ठेकालः [कण्ठे कालः यस्य सः→कण्ठेकालःपुरुषः=ऐसा पुरुष जिसके गले में काला चिह्न हो]

इसी प्रकार—उरसिलोमा। उदरेमणिः। आदि

चित्रगुः [चित्रा गावो यस्य सः→चित्रगुः पुरुषः= ऐसा पुरुष जिसकी गायें रंग बिरंगी हैं]

इसी प्रकार—पीतगुः, रक्ताश्वः, पीताम्बरः, स्वच्छदन्तः, स्वस्थकायः आदि।

[ii] कुछ बहुव्रीहि समास वाले शब्दों में सप्तम्यन्त शब्द को उत्तरपद में भी रखते हैं।[६] यथा—

गडुकण्ठः [कण्ठे गडुः यस्य सः→गडुकण्ठः पुरुषः। इसी प्रकार—

चन्द्रशेखरः [चन्द्रः शेखरे यस्य सः]

[iii] बहुव्रीहि समास में सर्वनामसञ्ज्ञक शब्दों को और सङ्ख्याशब्दों को भी पूर्व में रखते हैं[७]।यथा—

---

१. पृ० ५५१ की टि० सं० ३ देखो।

२. तेन सहेति तुल्ययोगे [अष्टा. २.२.२८]; 'प्रायिकं तुल्ययोग इति विशेषणमन्यत्रापि समासो दृश्यते'। काशिका

३. वोपसर्जनस्य [अष्टा. ६.३.८२] से सह के स्थान पर स आदेश विकल्प से]

४. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य [अष्टा. १.२.४८] से ह्रस्वता।

५. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ [अष्टा. २.२.३५]

६. सप्तम्याः पूर्वनिपाते प्राप्ते गड्वादिभ्यः सप्तम्यन्तं परम् (वा०)[अष्टा. २.२.३५]।

७. सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम् [वा०] [अष्टा. २.२.३५]

सर्वकृष्णम् [सर्वे कृष्णाः (केशाः) यस्मिन् तत्→सर्वकृष्णम् शिरः]।
सर्वश्वेतम् [सर्वे श्वेताः (दन्ताः) यस्मिन् तत्→सर्वश्वेतम् मुखम्]।
द्विशुक्लः [द्वे शुक्ले (गावौ) यस्मिन् सः→द्विशुक्लः गोसङ्घातः]।
पञ्चकृष्णः [पञ्च कृष्णानि गृहाणि यस्मिन् सः→पञ्चकृष्णः गृहसमुदायः]।

[iv] यदि सर्वनाम-सञ्ज्ञक शब्दों के साथ सङ्ख्यावाची शब्दों का बहुव्रीहि होगा तो वहां सङ्ख्यावाची शब्द ही पूर्वपद के रूप में रहेंगे।[1] यथा—

द्व्यन्यः [द्वे अन्ये शक्ती यस्य सः→द्व्यन्यः शक्तिमान् जनः]

[v] बहुव्रीहि समास में 'प्रिय' शब्द हो तो उसको विकल्प से पूर्वपद के रूप में रखेंगे[2] अर्थात् पक्ष में वह उत्तरपद में भी रहेगा। यथा=

प्रियगुडः, गुडप्रियः [प्रियः गुडः यस्य सः→प्रियगुडः, गुडप्रियः बालकः]
प्रियाध्ययनः, अध्ययनप्रियः [प्रियम् अध्ययनं यस्य सः→प्रियाध्ययनः, अध्ययनप्रियः छात्रः]

[vi] बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त अर्थात् क्तप्रत्ययान्त शब्द को पूर्वपद में रखते हैं।[3] यथा—

कृतकृत्यः [कृतं कृत्यं येन सः→कृतकृत्यः=ऐसा पुरुष जिसने करने योग्य कार्यों को कर लिया है]
विदितवेदितव्याः [विदितं वेदितव्यं यैः ते→विदितवेदितव्याः विद्वांसः=ऐसे विद्वान् जिन्होंने जानने योग्य को जान लिया है]
अधिगतयाथातथ्याः [अधिगतं याथातथ्यं यैः ते→अधिगतयाथातथ्याः=ऐसे महर्षि जिन्होंने प्राप्त करने योग्य तत्त्व को पा लिया है]

[vii] किन्तु जातिवाची, कालवाची और सुख आदि शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होने की स्थिति में निष्ठाप्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद में रहते हैं।[4] यथा—

शार्ङ्गजग्धः [जग्धं शार्ङ्गं येन सः→शार्ङ्गजग्धः=]
पलाण्डुभक्षितः [भक्षितः पलाण्डुः येन सः→पलाण्डुभक्षितः=ऐसा पुरुष जिसने प्याज खाया हो]

---

१. अनयोरेव मिथः सम्प्रधारणायां परत्वात् संख्यायाः पूर्वनिपातः [काशिका-२.२.३५]।
२. वा प्रियस्य पूर्वनिपातः [वा०] [अष्टा. २.२.३५]
३. निष्ठा [अष्टा. २.२.३६]
४. निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् [वा०] [अष्टा. २.२.३६]

मासजातः [जातः मासः यस्य सः→मासजातः=जिसको एक महीना हो गया है=एक महीने की आयु का]

संवत्सरजातः [जातः संवत्सरः यस्य सः→संवत्सरजातः=एक साल की आयु का]

सुखजातः [जातं सुखं यस्य सः→सुखजातः=जिसको सुख हुआ हो ऐसा पुरुष]

दुःखजातः [जातं दुःखं यस्य सः→दुःखजातः=ऐसा पुरुष जिसको दुःख हुआ हो]

कहीं कहीं जातिवाची शब्द के साथ निष्ठान्त शब्द का बहुव्रीहि हो तो वहां निष्ठान्त शब्द ही पूर्वपद में रहता है। यथा—

कृतकटः [कृतः कटः येन सः→कृतकटः=जिसने चटाई बना ली हो ऐसा पुरुष]

भुक्तौदनः [भुक्तः ओदनः येन सः→भुक्तौदनः=जिसने भात खा लिया हो ऐसा पुरुष]

[viii] प्रहरण [=हथियार] वाची शब्दों के साथ जब निष्ठाप्रत्ययान्त शब्दों अथवा सप्तम्यन्त शब्दों का बहुव्रीहि हो तो निष्ठान्त शब्द और सप्तम्यन्त शब्द उत्तरपद में रहते हैं।[1] यथा—

अस्युद्यतः [उद्यतः असिः यस्य सः→अस्युद्यतः=तैयार है तलवार जिसकी ऐसा पुरुष]

दण्डपाणिः [पाणौ दण्डः यस्य सः→दण्डपाणिः=जिसके हाथ में दण्ड है ऐसा पुरुष]

चक्रपाणिः [पाणौ चक्रः यस्य सः→चक्रपाणिः=जिसके हाथ में चक्र है ऐसा कृष्ण]

कहीं कहीं इसके विपरीत भी होता है।

उद्यतगदः (उद्यता गदा यस्य सः→उद्यतगदः=तत्पर है गदा जिसकी वह पुरुष)।

उद्यतासिः (उद्यतः असिः यस्य सः→उद्यतासिः=तैयार है तलवार जिसकी।

(ix) 'आहिताग्नि' आदि कुछ बहुव्रीहि समास वाले शब्दों में निष्ठा-प्रत्ययान्त शब्द विकल्प से पूर्वपद में रहता है[2]। यथा—

आहिताग्निः, अग्न्याहितः (आहितः अग्निः येन सः→आहिताग्निः, अग्न्याहितः=ऐसा पुरुष जिसने अग्नि का आधान किया है)।

---

१. प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम् [वा०][अष्टा. २.२.३६]

२. वाऽऽहिताग्न्यादिषु (अष्टा. २.२.३७)।

जातपुत्रः, पुत्रजातः (जातः पुत्रः यस्य सः→जातपुत्रः, पुत्रजातः)। जातदन्तः, दन्तजातः (जाताः दन्ताः यस्य सः→······)। जातश्मश्रुः, श्मश्रुजातः (जातं श्मश्रु [=दाढ़ीमूंछ] यस्य सः→······)। तैलपीतः, पीततैलः (पीतं तैलं येन सः······)। घृतपीतः, पीतघृतः (पीतं घृतं येन सः······)। ऊढभार्यः, भार्योढः (ऊढा भार्या येन सः······)। गतार्थः, अर्थगतः (गतः अर्थः येन सः······)। इत्यादि।

बहुव्रीहि समास के समासान्त प्रत्यय

(क) सङ्ख्येय विषय में जो बहुव्रीहि समास है उससे डच् (=अ) प्रत्यय होता है, किन्तु उस समास के उत्तरपद बहु या गण शब्द नहीं होने चाहिये[1]। यथा—

उपदशाः (दशानां समीपे ये सन्ति ते→उपदशन् डच्→उपदशाः[2]=दस के समीप अर्थात् नौ या ग्यारह)।

इसी प्रकार—उपविंशाः। आसन्नदशाः। आसन्नविंशाः। आसन्नषष्टाः आसन्नाः षष्टेः→···=साठ के पास)। अदूराशीताः (अदूराः अशीतेः→अदूराशीताः=अस्सी के लगभग)। अधिकत्रिंशाः (अधिकाः त्रिंशतः→अधिकत्रिंशाः=तीस से अधिक)। सप्ताष्टाः (सप्त वा अष्टौ वा→सप्ताष्टाः=सात आठ)।

(ख) अचतुर्, विचतुर्, सुचतुर्, त्रिचतुर् और उपचतुर् इन बहुव्रीहि समास वाले शब्दों से अच् प्रत्यय होता है[3]। यथा—

अचतुरः (अविद्यमानानि चत्वारि यस्य सः→नञ् चतुर् अच्→अचतुरः= ऐसा पुरुष जिसके चार वस्तुएं नहीं हैं)।

विचतुरः (विगतानि चत्वारि यस्य सः→वि चतुर् अच्→विचतुरः नरः= ऐसा पुरुष जिसकी चार चीजें बीत गई हैं)।

सुचतुरः (शोभनानि चत्वारि यस्य सः→सु चतुर् अच्→सुचतुरः=ऐसा पुरुष जिसकी चार वस्तुएं श्रेष्ठ हैं)।

त्रिचतुराः (त्रयो वा चत्वारो वा→त्रि चतुर् अच्=त्रिचतुराः=तीन या चार)।

उपचतुराः (चतुर्णां समीपे ये सन्ति ते→उपचतुर् अच्→उपचतुराः=चार के आस पास अर्थात् तीन या पांच)।

---

१. बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डजबहुगणात् (अष्टा. २.२.७३)।

२. डच् (=अ) प्रत्यय के डित् होने से टि भाग का लोप 'टेः' (अष्टा. ६.४.१४३) से होगा।

३. अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंस०······ (अष्टा. ५.४.७७)। चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसंख्यानम् [वा०] (अष्टा ५.४.७७)।

(ग) [i] बहुव्रीहि समास में शरीरावयव-वाची सक्थि और अक्षि शब्द अन्त में हों तो उनसे षच् (=अ) प्रत्यय होता है[1]। यथा—

दीर्घसक्थः (दीर्घं सक्थि यस्य सः→दीर्घ सक्थि षच्→दीर्घसक्थः[2] पुरुषः= बड़ी जांघ वाला पुरुष)। स्त्रीलिङ्ग में—दीर्घसक्थी[3]।

विशालाक्षः (विशाले अक्षिणी यस्य सः→विशाल अक्षि षच्→विशालाक्षः[2]→ बड़ी हैं आंखें जिसकी वह पुरुष)। **विशालाक्षी**[3]।

[ii] बहुव्रीहि समास में अङ्गुलि शब्द अन्त में हो तो उससे भी षच् [=अ] प्रत्यय होता है, यदि लकड़ी के बने उपकरण का विषय हो[4]। यथा—

द्व्यङ्गुलम् (द्वे अङ्गुली यस्य तत्→द्वि अङ्गुलि षच्→द्व्यङ्गुलम्[2]= ऐसा कृषि का उपकरण जिसकी लकड़ी की बनी दो लम्बी अंगुलियां सी हों =जेई)।

त्र्यङ्गुलम् (तिस्रः अङ्गुलयः यस्य तत्→त्रि अङ्गुलि षच्→त्र्यङ्गुलम्[2] =तीन अंगुलियों वाला लकड़ी का बना कृषि का उपकरण)।

पञ्चाङ्गुलम् (पञ्च अङ्गुलयः यस्य तत्→पञ्चन् अङ्गुलि षच्→पञ्चाङ्गुलम्[6]→पांच अङ्गुलियों वाला लकड़ी का कृषि-उपकरण)।

(घ) बहुव्रीहि समास में पूर्वपद द्वि या त्रि शब्द हो और उत्तरपद मूर्धन् शब्द हो, तो उससे ष [=अ] प्रत्यय होता है[5]। यथा—

द्विमूर्धः (द्वौ मूर्धानौ यस्य सः→द्वि मूर्धन् ष→द्विमूर्धः[6]=दो सिर वाला)।

त्रिमूर्धः (त्रयो मूर्धानो यस्य सः→त्रि मूर्धन् ष→त्रिमूर्धः=तीन सिर वाला)।

[ङ] (i) बहुव्रीहि समास में पञ्चम षष्ठ आदि पूरणप्रत्ययान्त शब्द अथवा प्रमाणी शब्द अन्त में हो तो उनसे अप् प्रत्यय होता है[7]। यथा—

कल्याणीपञ्चमाः (कल्याणी पञ्चमी यासां [रात्रीणां] ताः→कल्याणी पञ्चमी अप्→कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः=जिनमें से पांचवीं रात कल्याणी हो ऐसी रात्रियाँ)।

स्त्रीप्रमाणाः (स्त्री प्रमाणी येषां [कुटुम्बिनां] ते→स्त्री प्रमाणी अप्→स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः=ऐसे कुटुम्बी लोग जहाँ गृहपत्नी का वर्चस्व हो)।

---

१. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् (अष्टा. ५.४.११३)।
२. यस्येति च (अष्टा. ६.४.१४८) से इ का लोप।
३. षिद्गौरादिभ्यश्च (अष्टा. ४.१.४१) से ङीष् [=ई] स्त्री-प्रत्यय।
४. अङ्गुलेर्दारुणि (अष्टा. ५.४.११४)।
५. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः (अष्टा. ५.४.११५)।
६. नस्तद्धिते (अष्टा. ६.४.१४४) से अन् भाग का लोप।
७. अप्पूरणीप्रमाण्योः (अष्टा. ५.४.११६)।

(ii) बहुव्रीहि समास में पूर्वपद अन्तर् अथवा बहिर् शब्द हो और उत्तरपद लोमन् शब्द हो तो उससे भी अप् प्रत्यय होता है[1]। यथा

अन्तर्लोमः (अन्तर्गतानि लोमानि यस्य सः→अन्तर् लोमन् अप्→अन्तर्लोमः प्रावारः=ऐसी चद्दर जिसके रोएँ अन्दर की ओर झुके हों)।

बहिर्लोमः (बहिर्गतानि लोमानि यस्य सः→बहिर् लोमन् अप्→बहिर्लोमः पटः=ऐसा कपड़ा जिसके रोएँ बाहर की ओर झुके हों)।

[च] (i) बहुव्रीहि समास में स्थूल को छोड़कर अन्य कोई भी शब्द पूर्वपद हो और नासिका शब्द उत्तरपद हो तो उससे सञ्ज्ञा विषय में अच् प्रत्यय होता है और नासिका शब्द के स्थान पर नस आदेश हो जाता है[2]। यथा—

द्रुणसः [द्रुः (=काष्ठम्) इव नासिका यस्य सः→द्रु नासिका अच्→द्रुनसः→द्रुणसः[3])।

वद्ध्रीणसः [वद्ध्री (=चर्मरज्जुः) इव नासिका यस्य सः→वद्ध्री नासिका अच्→वद्ध्रीनसः→वद्ध्रीणसः[3]]।

(ii) सञ्ज्ञा विषय में बहुव्रीहि समास में पूर्वपद खुर या खर शब्द हो और उत्तरपद नासिका शब्द हो तो उस नासिका शब्द के स्थान पर नस् आदेश हो जाता है और उससे विकल्प से अच् प्रत्यय भी होता है[4]। यथा—

खुरणाः, खुरणसः (खुर इव नासिका यस्य सः→खुर नासिका→खुर नस्→खुरनाः→खुरणाः[3]। खुर नस् अच्→खुरनसः→खुरणसः[3])।

खरणाः, खरणसः (खरा (=कठोरा) नासिका यस्य सः अथवा खरनासिका इव नासिका यस्य सः→खरनासिका→खरनस्→खरणाः, खरनस् अच्→खरणसः)।

(iii) बहुव्रीहि समास में पूर्वपद उपसर्ग हो और उत्तरपद नासिका शब्द हो तो उससे अच् प्रत्यय होता है और नासिका शब्द के स्थान पर नस आदेश[5]।

उन्नसः (उन्नता नासिका यस्य सः→उद् नासिका अच्→उन्नसः=ऊँची नाक वाला)।

प्रणसः (प्रकृष्टा नासिका यस्य सः→प्र नासिका अच्→प्रनसः→प्रणसः=श्रेष्ठ नाक वाला)।

---

१. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः (अष्टा० ५.४.११७)।
२. अञ्नासिकायाः सञ्ज्ञायां नसं चास्थूलात् (अष्टा० ५.४.११८)।
३. पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः (अष्टा० ८.४.३) से न को ण।
४. खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः [वा०]; पक्षेऽच्प्रत्ययोऽपीष्यते (अष्टा० ५.४.११८)।
५. उपसर्गाच्च (अष्टा० ५.४.११९)।

(iv) 'सुप्रातर्' आदि अन्य भी कुछ बहुव्रीहि समास वाले ऐसे शब्द हैं जिनसे अच् प्रत्यय होता है और टिलोप आदि कार्य भी होता है[1]। यथा—

सुप्रातः (शोभनं प्रातर् यस्य सः→सु प्रातर् अच्→सुप्रातः=सुन्दर प्रातः काल वाला)। इसके रूप 'सुप्रातः सुप्रातौ सुप्राताः' ऐसे चलेंगे।

सुश्वः (शोभनं श्वः यस्य सः→सु श्वस् अच्→सुश्वः=सुन्दर कल वाला। इसके रूप—सुश्वः सुश्वौ सुश्वाः।

सुदिवः (शोभनानि [कर्माणि] दिवा यस्य सः→सु दिवा अच्→सुदिवः= दिन में जिसके अच्छे कर्म हुए हैं वह) सुदिवौ सुदिवाः।

चतुरश्रः (चतस्रः अश्रयः यस्य सः→चतुर् अश्रि अच्→चतुरश्रः = चार किनारों वाला)।

एणीपदः, अजपदः, प्रोष्ठपदः (एणीपादाः इव, अजपादाः इवः, प्रोष्ठपादाः इव वा पादौ पादाः वा यस्य सः→एणीपाद पाद अच्, अजपाद पाद अच्, प्रोष्ठ-पाद पाद अच्→एणीपदः[2], अजपदः[2], प्रोष्ठपदः[2]=हरिणी के पांवों के समान पांव वाला, बकरे के पैरों के समान पैर वाला, बैल के पांवों के समान पांव वाला)।

(v) बहुव्रीहि समास में नञ् या दुस् या सु पूर्वपद हों और हलि या सक्थि (कुछेक के मत में शक्ति) शब्द उत्तरपद हो तो उससे विकल्प से अच् प्रत्यय होता है[3]। यथा—

अहलः, अहलिः। दुर्हलः, दुर्हलिः। सुहलः, सुहलिः। असक्थः, असक्थिः। दुःसक्थः दुःसक्थिः। सुसक्थः, सुसक्थिः। अशक्तः, अशक्तिः। दुःशक्तः, दुःशक्तिः। सुशक्तः, सुशक्तिः।

(छ) बहुव्रीहि समास में पूर्वपद नञ्, दुस्, सु, अथवा अल्प शब्द हों और उत्तर-पद प्रजा या मेधा शब्द हों तो उनसे असिच् (=अस्) प्रत्यय होता है[4]। यथा—

अप्रजाः (अविद्यमाना प्रजा यस्य सः→अविद्यमाना प्रजा असिच्→अप्रजा अस्→अप्रजाः[5]=निःसन्तान पुरुष)। अप्रजाः अप्रजसौ अप्रजसः।

---

१. सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः (अष्टा० ५.४.१२०)।

२. सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च [वा०] (अष्टा० २.२.२४) से बहुव्रीहि समास और पूर्वपद के उत्तर भाग 'पाद' शब्द का लोप हुआ। निपातन से द्वितीय पाद के स्थान पर पद् आदेश हुआ।

३. नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् (अष्टा० ५.४.१२१)।

४. नित्यमसिच् प्रजामेधयोः (अष्टा. ५.४.१२२)

५. यस्येति च (६.४.१४८) से आ का लोप। प्रथमा के एकवचन में अत्वसन्तस्य चाधातोः (अष्टा.६.४.१४) से उपधादीर्घत्व।

दुष्प्रजाः (दुष्टा प्रजा यस्य सः→दुस् प्रजा असिच्→दुष्प्रजा अस्→दुष्प्रजाः[1] =कुसन्तान वाला पुरुष)। दुष्प्रजाः दुष्प्रजसौ दुष्प्रजसः।

सुप्रजाः (शोभना प्रजा यस्य सः→सु प्रजा असिच्→सु प्रजा अस्→सुप्रजाः[1] =उत्तम सन्तान वाला पुरुष)। सुप्रजाः सुप्रजसौ सुप्रजसः।

अमेधाः (अविद्यमाना मेधा यस्य सः→अविद्यमाना मेधा असिच्→अमेधा अस्→अमेधाः[1]=निर्बुद्धि मनुष्य)। अमेधाः अमेधसौ अमेधसः। इसी प्रकार—

दुर्मेधाः (=दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य)। दुर्मेधाः दुर्मेधसौ दुर्मेधसः।

सुमेधाः (=सद्बुद्धि वाला मनुष्य) सुमेधाः सुमेधसौ सुमेधसः।

अल्पमेधाः (अल्पा मेधा यस्य सः→अल्पमेधा असिच्→अल्पमेधा अस्→अल्पमेधाः[1]=कम बुद्धि वाला मनुष्य)। अल्पमेधाः अल्पमेधसौ अल्पमेधसः।

बहु शब्द के साथ प्रजा शब्द से (बहुव्रीहि समास में) असिच् प्रत्यय केवल वेद में होता है।[2] यथा—बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश।[3]

(ज) बहुव्रीहि समास में उत्तरपद धर्म शब्द हो तो उससे अनिच् (=अन्) प्रत्यय होता है किन्तु पूर्वपद एक से अधिक शब्द वाला न हो[4]। यथा—

प्रियधर्मा (प्रियः धर्मः यस्य सः→प्रिय धर्म अनिच्→प्रियधर्मा=प्रिय है धर्म जिसको ऐसा मनुष्य)। प्रियधर्मा प्रियधर्माणौ प्रियधर्माणः।

इसी प्रकार—कल्याणधर्मा। वेदधर्मा। सेवाधर्मा। आदि।

(झ) क्रिया-व्यतीहार में अर्थात् 'पकड़कर (=गृहीत्वा)' और 'प्रहार करके (=प्रहृत्य)' इन दो क्रियाओं के परस्पर करने के अर्थ में हुए बहुव्रीहि समास वाले शब्द से इच् (=इ) प्रत्यय होता है[5]। यथा—

केशाकेशि (केशेषु केशेषु च गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं→केश केश इच्→केशाकेशि[6]=ऐसी लड़ाई जो एक दूसरे के केश पकड़ कर लड़ी जाए)।

इसी प्रकार—कचाकचि[6]।

---

१. पृ० ५५८ की टि० स० ५ देखो।) २. बहुप्रजाश्छन्दसि (अष्टा. ५.४.१२३)

३. ऋग्वेद (१.१६४.३२) ४. धर्मादनिच् केवलात् (अष्टा. ५.४.१२४)

५. इच् कर्मव्यतिहारे (अष्टा. ५.४.१२७)

६. अन्येषामपि दृश्यते (अष्टा. ६.३.१३७) से पूर्वपद को दीर्घत्व। 'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च (अष्टा. २.१.१७) से 'केशाकेशि' आदि इच्प्रत्ययान्त शब्दों का अव्ययीभावत्व। अव्ययीभावश्च (अष्टा. १.१.४१) से इनकी अव्ययसञ्ज्ञा और 'अव्ययादाप्सुपः' (अष्टा. २.४.८२) से सुप् का लुक्

दण्डादण्डि (दण्डैः च दण्डैः च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्→दण्ड दण्ड इच्→दण्डादण्डि[1]=ऐसा युद्ध जिसमें एक दूसरे पर डण्डों से प्रहार किया जाए)। इसी प्रकार— मुसलामुसलि[1]। मुष्टीमुष्टि[1]। बाहूबाहवि[2]।

(ञ) (i) बहुव्रीहि समास में उरस्, सर्पिस् आदि शब्द उत्तरपद हों तो उनसे कप् (=क) प्रत्यय होता है[3]। यथा—

व्यूढोरस्कः (व्यूढम् उरः यस्य सः→व्यूढ उरस् कप्→व्यूढोरस्कः=गठे हुए सीने वाला पुरुष)।

प्रियसर्पिष्कः (प्रियं सर्पिः यस्य सः→प्रिय सर्पिस् कप्→प्रियसर्पिष्कः=प्रिय है घी जिसको ऐसा पुरुष)।

धृतोपानत्कः (धृते उपानहौ येन सः→धृत उपानह् कप्→धृतोपानत्कः=धारण किये हैं जूते जिसने वह पुरुष)।

अनर्थकः (अविद्यमानः अर्थः यस्य सः→अविद्यमान अर्थ कप्→अनर्थकः=प्रयोजनरहित पदार्थ)।

(ii) जिस बहुव्रीहि समास के अन्त में 'इन्' हो उससे स्त्रीलिङ्ग विषय में कप् प्रत्यय होता है।[4]

बहुवाग्मिका सभा (बहवः वाग्मिनः यस्यां सा→बहु वाग्मिन् कप्→बहुवाग्मिका सभा=ऐसी सभा जिसमें बहुत से अच्छे वक्ता हों)।

बहुस्वामिका नगरी (बहवः स्वामिनः यस्याः सा→बहु स्वामिन् कप्→बहुस्वामिका नगरी=ऐसी नगरी जिसके अनेक अधिपति हों)।

(iii) बहुव्रीहि समास में यदि उत्तरपद दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द हों अथवा ऋकारान्त शब्द हो तो उससे भी कप् प्रत्यय होता है[5]। यथा—

बहुकुमारीकः देशः (बह्व्यः कुमार्यः यस्मिन् देशे सः→बहुकुमारीकः देशः=ऐसा देश जिसमें बहुत कुआँरी कन्याएं हों)।

बहुगोपीकः ग्रामः (बह्व्यः गोप्यः यस्मिन् ग्रामे सः→बहुगोपीकः ग्रामः=ऐसा गांव जिसमें अनेक ग्वालिनें हों)।

मिष्टयवागूकं भोजनम् (मिष्टा यवागूः यस्मिन् तत्→मिष्टयवागूकं भोजनम्=ऐसा भोजन जिसमें मीठा दलिया हो)।

---

१. पृ० ५५९ की टि० सं० ६ देखो।

२. ओर्गुणः (अष्टा. ६.४.१४६) से अन्त के बाहु के उकार को ओ गुण।

३. उरःप्रभृतिभ्यः कप् (अष्टा. ५.४.१५१)

४. इनः स्त्रियाम् (अष्टा ५.४.१५२)

५. नद्यृतश्च (अष्टा. ५.४.१५३)।

सुशीलवधूकः परिवारः (सुशीलाः वध्वः यस्मिन् स;→सुशीलवधूकः परिवारः =ऐसा परिवार जिसमें सुशील बहुएं हों।

बहुनेतृकं राष्ट्रम् (बहवो नेतारो यस्य तत्→बहुनेतृकं राष्ट्रम्=ऐसा राष्ट्र जिसके बहुत से नेता हों)।

द्विकर्तृकः ग्रन्थः (द्वौ कर्त्तारौ यस्य सः→द्विकर्तृकः ग्रन्थः=ऐसा ग्रन्थ जिसके दो रचयिता हों)।

[iv] बहुव्रीहि समास के विभिन्न शब्दों से विभिन्न परिस्थितियों में होने वाले लगभग नौ प्रत्यय [डच्, अच्, षच्, ष, अप्, असिच, अनिच्, इच् और कप्] ऊपर बताये गये हैं। जो शब्द, ऊपर के इन प्रत्ययों के क्षेत्र में नहीं आते हैं और जिनके उत्तरपद में किसी अन्य प्रकार का समासान्त परिवर्तन नहीं होता उन शेष [बहुव्रीहि समास वाले] शब्दों से विकल्प से कप् प्रत्यय होता है[1]। यथा—

बहुकक्षाकः, बहुकक्षकः, बहुकक्षः विद्यालयः (बह्व्यः कक्षाः यस्मिन् विद्यालये सः→बहुकक्षाकः, बहुकक्षकः[2], बहुकक्षः विद्यालयः=ऐसा विद्यालय जिसमें बहुत सी कक्षाएँ हों)।

बहुस्वामिकं, बहुस्वामि भवनम् (बहवः स्वामिनः यस्य तत् बहुस्वामिकं, बहुस्वामि भवनम्=अनेक स्वामियों वाला भवन)।

बहुव्रीहि समास में उत्तरपद में होने वाले परिवर्तन

अभी ऊपर मैंने बहुव्रीहि समास के समासान्त प्रत्यय संक्षेप से समझाये हैं। बहुव्रीहि समास के कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनसे कोई प्रत्यय तो नहीं होता, किन्तु उनके उत्तरपद में परिवर्त्तन होता है। कुछ शब्दों में पूरा उत्तरपद बदल जाता है, कुछेक के उत्तरपद के एक अंश के स्थान पर परिवर्त्तन होता है और किन्हीं शब्दों के उत्तरपद के किसी अक्षर का लोप मात्र होता है। उन शब्दों को भी समझ लो—

(१) [i] बहुव्रीहि समास में प्र या सम् उपसर्ग पूर्वपद हों और जानु शब्द उत्तरपद हो तो उस 'जानु' के स्थान पर ज्ञु आदेश होता है[3]। यथा—

प्रज्ञुः (प्रकृष्टे जानुनी यस्य सः→प्रजानु→प्रज्ञुः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसके घुटने उत्तम हों)।

सञ्ज्ञुः (सङ्गते संश्लिष्टे वा जानुनी यस्य सः→सम् जानु→सञ्ज्ञुः पुरुषः= ऐसा पुरुष जिसके घुटने मिले हुए [सटे हुए] हों।

---

१. शेषाद् विभाषा (अष्टा. ५.४.१५४)।

२. आपोऽन्यतरस्याम् (अष्टा. ७.४.१५) से विकल्प से ह्रस्वता।

३. प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः (अष्टा. ५.४.१२९)।

[ii] किन्तु बहुव्रीहि समास में ऊर्ध्व शब्द पूर्वपद और जानु शब्द उत्तरपद हो तो 'जानु' के स्थान पर विकल्प से 'ज्ञु' आदेश होता है[1]। यथा—

ऊर्ध्वज्ञुः, ऊर्ध्वजानुः (ऊर्ध्वे जानुनी यस्य सः→ऊर्ध्वज्ञुः, ऊर्ध्वजानुः पुरुषः= ऐसा पुरुष जिसके घुटने ऊँचे हों)।

(२) [i] बहुव्रीहि समास में संख्यावाची शब्द अथवा 'सु' उपसर्ग पूर्वपद हो और उत्तरपद दन्त शब्द हो तो उस 'दन्त' के स्थान पर 'दतृ' [=दत्] आदेश हो जाता है, यदि आयु का कथन किया जा रहा हो[2]। यथा—

द्विदन् शिशुः (द्वौ दन्तौ यस्य सः→द्वि दन्त→द्वि दतृ→द्विदन्[3] शिशुः= दो दन्त वाला छोटी आयु का शिशु)।

इसी प्रकार—त्रिदन्[3], चतुर्दन्[3], पञ्चदन्[3] शिशुः।

स्त्रीलिङ्ग में—द्विदती[4], त्रिदती[4], चतुर्दती[4], पञ्चदती[4] कन्या।

सुदन् कुमारः (शोभनाः [समस्ताः] दन्ताः जाताः यस्य सः→सु दन्त→ सु दतृ→सुदन्[3] कुमारः=सुन्दर [पूरे] दाँतों वाला बच्चा)।
सुदती[4] कन्या।

[ii] बहुव्रीहि समास में दन्त शब्द उत्तरपद हो तो स्त्रीलिङ्ग में उस 'दन्त' के स्थान पर दतृ [=दत्] आदेश होता है, सञ्ज्ञा विषय में[5]। यथा—

अयोदती[4] (

फालदती[4] (

[iii] बहुव्रीहि समास में यदि पूर्वपद श्याव, अथवा अरोक, शब्द कुड्मलाग्र, कोरकाग्र आदि अग्रान्त शब्द; शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह शब्द हों और उत्तरपद में दन्त शब्द हो तो उस 'दन्त' के स्थान पर 'दतृ' आदेश विकल्प से होता है[6]। यथा—

श्यावदन्, श्यावदन्तः (श्यावाः दन्ताः यस्य सः→श्यावदन्[3], श्यावदन्तः= धुमैले दांतों वाला)।

अरोकदन्, अरोकदन्तः (=निस्तेज दांतों वाला)। कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्तः (कली के समान दांतों वाला)। शुद्धदन्, शुद्धदन्तः। शुभ्रदन्, शुभ्र-

---

१. ऊर्ध्वाद् विभाषा (अष्टा. ५.४.१३०)।
२. वयसि दन्तस्य दतृ (अष्टा. ५.४.१४१)।
३. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (अष्टा. ७.१.७०) से नुम् (न्)।
४. उगितश्च (अष्टा. ४.१.६) से ङीप् (=ई) प्रत्यय।
५. स्त्रियां सञ्ज्ञायाम् (अष्टा. ५.४.१४३)।
६. विभाषा श्यावारोकाभ्याम्; अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च (अष्टा. ५.४.१४४; १४५)।

दन्तः। वृषदन्, वृषदन्तः (वृषदन्ताः इव दन्ताः यस्य सः=बैल के दांतों के समान दांतों वाला)

(३) (i) बहुव्रीहि समास में उत्तरपद ऊधस् शब्द हो तो स्त्रीलिङ्ग में उसके स् के स्थान पर अनङ् (=अन्) आदेश होता है।[१] यथा—

कुण्डोघ्नी (कुण्डम् इव ऊधः यस्याः सा→कुण्ड ऊधस्→कुण्ड ऊध अनङ्→कुण्डोधअन्→कुण्डोधन्→कुण्डोधन् ङीप्[२]→कुण्डोघ्नी[३]=ऐसी गाय जिसका एन कूंडे के समान विस्तृत हो)

घटोघ्नी (घटः इव ऊधः यस्याः सा→घट ऊधस्—घट ऊध अनङ्→घट ऊध अन्→घटोधन् ङीप्[२]→घटोघ्नी[३] गौः=ऐसी गाय जिसका एन घड़े के समान गोल तथा विशाल हो)।

(ii) बहुव्रीहि समास में उत्तरपद धनुस् शब्द हो तो उसके स् के स्थान पर अनङ् आदेश होता है।[४] यथा—

गाण्डीवधन्वा (गाण्डीवं धनुः यस्य सः→गाण्डीवधनुस्→गाण्डीवधनु अनङ्→गाण्डीवधनु अन्→गाण्डीवधन्वन्→गाण्डीवधन्वा[५]=गाण्डीव है जिसका धनुष वह=अर्जुन)।

पुष्पधन्वा (पुष्पाणि धनूंषि यस्य सः→पुष्पधनुस्→पुष्पधनु अनङ्→पुष्पधनु-अन्→पुष्पधन्वन्→पुष्पधन्वा[५]=फूल हैं धनुष के समान जिसके वह कामदेव)।

(iii) किन्तु बहुव्रीहि समास में उत्तरपद में विद्यमान धनुस् के स् के स्थान पर विकल्प से अनङ् होता है यदि सञ्ज्ञा का विषय हो तो।[६] यथा—

शतधन्वा, शतधनुः (शतं धनूंषि यस्य सः→शतधन्वा, शतधनुः=   )
दृढधन्वा, दृढधनुः।

(४) बहुव्रीहि समास में उत्तरपद जाया शब्द हो तो उसके अन्तिम आ के स्थान पर 'निङ्' (=नि) आदेश होता है।[७] यथा—

युवजानिः (युवतिः जाया यस्य सः→युवति जाया→युवन्[८] जाया→युवन्-

---

१. ऊधसोऽनङ् (अष्टा. ५.४.१३१)।   २. ऋन्नेभ्यो ङीप् (अष्टा. ४.१.५)।
३. अल्लोपोऽनः (अष्टा. ६.४.१३४) से उपधा के अ का लोप।
४. धनुषश्च (अष्टा. ५.४.१३२)।
५. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (अष्टा. ६.४.८) से उपधा को दीर्घत्व।
६. वा सञ्ज्ञायाम् (अष्टा. ५.४.१३३)।   ७. जायाया निङ् (अष्टा. ५.४.१३४)।
८. स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (अष्टा. ६.३.३४) से पुंवद्भाव के द्वारा युवति का युवन् और वृद्धा का वृद्ध हुआ)।

जाय् निङ्→युवन् जाय् नि→युवन् जानि[1]→[2]युवजानिः=जिसकी पत्नी युवती है वह पुरुष)

वृद्धजानिः (वृद्धा जाया यस्य सः→वृद्धा जाया→वृद्ध[3] जाया→वृद्ध जाय् निङ्→वृद्धजाय्नि→वृद्धजानिः[2]=जिसकी पत्नी वृद्धा है वह पुरुष)

सीताजानिः (सीता जाया यस्य सः→सीताजानिः=रामचन्द्रः)

पार्वतीजानिः (पार्वती जाया यस्य सः→पार्वतीजानिः=शिवः)

लक्ष्मीजानिः (लक्ष्मी जाया यस्य सः→लक्ष्मीजानिः=विष्णुः)

भूजानिः (भूः (=पृथ्वी) जाया यस्य सः→भूजानिः=नृपः)

(५) (i) बहुव्रीहि समास में पूर्वपद उत्, पूति, सु, सुरभि ये शब्द हों और उत्तरपद गन्ध शब्द हो तो गन्ध शब्द के अन्तिम अ के स्थान पर इत् (=इ) आदेश होता है।[4] यथा—

उद्गन्धिः (उत्क्रान्तः गन्धः यस्मात् सः→उत् गन्ध→उत् गन्ध् इत्→उद्-गन्धिः अपूपः=ऐसा पुआ जिसमें से गन्ध निकल गयी है)

पूतिगन्धिः (पूतिः गन्धः यस्य सः→पूतिगन्ध→पूतिगन्ध् इत्→पूतिगन्धिः स्फोटः=दुर्गन्ध वाला फोड़ा)

सुगन्धिः (शोभनः गन्धः यस्य सः→सुगन्ध→सुगन्ध् इत्→सुगन्धिः संयावः= उत्तम गन्ध वाला हलवा)

सुरभिगन्धि (सुरभिः गन्धः यस्य तत्→सुरभिगन्ध→सुरभिगन्ध् इत्→सुरभि-गन्धि पुष्पम्=मनोहर गन्ध वाला फूल)

(ii) बहुव्रीहि समास में उत्तरपद गन्ध शब्द हो तो उस 'गन्ध' के अन्त्य अकार के स्थान पर इत् (=इ) आदेश होता है यदि पूर्वपद वाले पदार्थ की अल्पता बताई जा रही हो[5]। यथा—

सूपगन्धि भोजनम् (सूपः अल्पः यस्मिन् तत्→सूप गन्ध→सूपगन्ध् इत्→सूप-गन्धि भोजनम्=ऐसा भोजन जिसमें बहुत कम दाल हो)

घृतगन्धि शाकम् (घृतम् अल्पम् यस्मिन् तत्→घृत गन्ध→घृतगन्ध् इत्→घृत-गन्धि शाकम्=बहुत कम घी वाला शाक)

(iii) बहुव्रीहि समास में पूर्वपद उपमानवाची शब्द हों और उत्तरपद गन्ध शब्द हो तो 'गन्ध के अन्त्य अकार के स्थान पर 'इत्' (=इ) आदेश होता है।[6] यथा—

---

१. लोपो व्योर्वलि (अष्टा. ६.१.६६) से य् का लोप।

२. नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (अष्टा. ८.२.७) से न् का लोप।

३. पृ० ५६३ की टि० सं० ८ देखो।

४. गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः (अष्टा. ५.४.१३५)।

५. अल्पाख्यायाम् (अष्टा. ५.४.१३६)। ६. उपमानाच्च (अष्टा. ५.४.१३७)।

पद्मगन्धिः [पद्मगन्धः इव गन्धः यस्य सः→पद्मगन्ध गन्ध→पद्मगन्ध→पद्म गन्ध् इत्→पद्मगन्धिः पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसकी गन्ध कमल की गन्ध के समान हो]।

दशाङ्गुलगन्धि [दशाङ्गुलगन्धः इव गन्धः यस्य तत्→दशाङ्गुलगन्ध गन्ध→[1]दशाङ्गुल गन्ध→दशाङ्गुलगन्ध् इत्→दशाङ्गुलगन्धि→चम्पकपुष्पम् =खरबूजे की गन्ध के समान गन्ध वाला चम्पा का फूल)।

करीषगन्धिः (करीषगन्धः इव गन्धः यस्य सः→······करीषगन्धिः पुरुषः जिसके शरीर से कण्डे की सी गन्ध आती हो वह पुरुष)।

(६) [i] बहुव्रीहि समास में पूर्वपद उपमानवाची शब्द हो और उत्तरपद पाद शब्द हो तो उस 'पाद' शब्द के अन्तिम अ का लोप हो जाता है, परन्तु उपमानवाची शब्दों में हस्तिन्, महिला, गणिका, दासी, कुसूल, कटोल, गण्डोल और गण्डोलक शब्द नहीं होने चाहियें[2]। यथा—

व्याघ्रपात् (व्याघ्रपादाः इव पादौ यस्य सः→व्याघ्रपाद पाद→[1]व्याघ्र पाद →व्याघ्र पाद्→व्याघ्रपात् पुरुषः=ऐसा पुरुष जिसके पैर बाघ के पैरों के समान हों।

वृषभपात् [वृषभपादाः इव पादाः यस्य सः→वृषभ पाद पाद→वृषभ पाद→ वृषभपाद्→वृषभपात् अजः=ऐसा बकरा जिसके पांव बैल के से हों]।

इसी प्रकार—सिंहपात्। हरिणपात्। कुक्कुरपात्। मनुष्यपात् आदि।

हस्तिन् आदि शब्द पूर्वपद होंगे तो अ का लोप नहीं होगा। हस्तिपादः= [हाथी के पांवों के समान पांव वाला)। महिलापादः। कुसूलपादः [=कोठी के पायों के समान पांव वाला]। आदि।

[ii] बहुव्रीहि समास में कुम्भ, शत, अष्टन् आदि शब्द पूर्वपद हों और पाद शब्द उत्तरपद हो तो 'पाद' के अन्त्य अ का लोप केवल स्त्रीलिङ्ग में ही होता है[3]। यथा—

कुम्भपदी [कुम्भः इव पादौ यस्याः सा→कुम्भ पाद→कुम्भ पाद्→कुम्भपाद् ङीप्[4]→कुम्भपद्[5] ई→कुम्भपदी=घड़े के समान पांवों वाली स्त्री]।

---

१. सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च० [वा०] (अष्टा. २.२.२४) से बहुव्रीहि समास और पूर्वपद के उत्तरभाग का लोप।

२. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः (अष्टा. ५.४.१३८)।

३. कुम्भपदीषु च (अष्टा. ५.४.१३९)।

४. पादोऽन्यतरस्याम् (अष्टा. ४.१.८) से प्राप्त वैकल्पिक ङीप् को बाधकर 'कुम्भपदीषु च' निपातन से नित्य ङीप्।

५. पादः पत् (अष्टा. ६.४.१३०) से पाद् के स्थान पर पद्।

शतपदी [शतं पादाः यस्याः सा→शत पाद→शत पाद्→शतपाद् ङीप्→ शतपद्[३] ई→शतपदी=सौ पांवों वाली=कनखजूरी] अथवा—
शतं पादाः [=पादक्रमणानि] यस्यां क्रियायां सा→शतपदी भ्रमणक्रिया= सायं भोजन के बाद कुछ पग टहलने की क्रिया]।
इसी प्रकार—अष्टापदी। एकपदी। गोपदी। आदि।

[iii] बहुव्रीहि समास में यदि पूर्वपद सङ्ख्यावाची शब्द हों अथवा सु उपसर्ग हो और उत्तरपद में पाद शब्द हो तो उस 'पाद' के अन्त्य अ का लोप हो जाता है[१]। यथा—

द्विपात् [द्वौ पादौ यस्य सः→द्वि पाद→द्विपाद्→द्विपात् मनुष्यः]।
चतुष्पात् [चत्वारः पादाः यस्य सः→चतुर् पाद→चतुर् पाद्→चतुष्पाद्→ चतुष्पात् पशुः]।
स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप्[२] होगा—द्विपात् स्त्री, द्विपदी[३] स्त्री, चतुष्पात् वडवा, चतुष्पदी[३] वडवा आदि।
सुपात् [शोभनौ पादौ यस्य सः→सु पाद→सुपाद्→सुपात् पुरुषः=सुन्दर पांवों वाला पुरुष]। सुपात्, सुपदी[३] स्त्री।

(७) [i] बहुव्रीहि समास में यदि ककुद शब्द उत्तरपद हो तो उस 'ककुद' के अन्त्य अकार का लोप होता है आयु बताने के विषय में[४]। यथा—

असञ्जातककुत् [असञ्जातं ककुदं यस्य सः→असञ्जात ककुद→असञ्जात-ककुद्→असञ्जातककुत्=ऐसा बछड़ा जिसके अभी खुम्ब उभरा नहीं है= छोटा बछड़ा]।
पूर्णककुत् [पूर्णं ककुदं यस्य सः→पूर्णककुद→पूर्णककुद्→पूर्णककुत्=जवान बैल जिसका खुम्ब भर गया है]।
उन्नतककुत् [उन्नतं ककुदं यस्य सः→उन्नत ककुद→उन्नतककुद्→उन्नत-ककुत्=प्रौढ़ बैल जिसका खुम्ब खूब ऊँचा हो गया है]।
इसी प्रकार—स्थूलककुत्। क्षीणककुत् आदि।

[ii] बहुव्रीहि समास में त्रि पूर्वपद हो तो उत्तरपद के 'ककुद' के अन्त्य अ का लोप पर्वतविशेष के कथन में होता है[५]। यथा—

---

१. सङ्ख्यासुपूर्वस्य [अष्टा. ५.४ १४०]। २. पादोऽन्यतरस्याम् [अष्टा. ४.१.८]
३. पादः पत् [अष्टा. ६.४.१३०] से पाद् के स्थान पर पत् आदेश।
४. ककुदस्यावस्थायां लोपः [अष्टा. ५.४.१४६]।
५. त्रिककुत् पर्वते [अष्टा. ५.४.१४७]।

त्रिककुत् पर्वतः [त्रीणि ककुदानि (=ककुदाकाराणि शृङ्गाणि) यस्य सः→ त्रिककुद→त्रिककुद्→त्रिककुत् पर्वतः=तीन शिखरों वाला पर्वत]।

(८) [i] बहुव्रीहि समास में यदि उत् और वि उपसर्ग पूर्वपद हों और काकुद शब्द उत्तरपद हो तो 'काकुद' के अ का लोप होता है[1]। यथा—

उत्काकुत् [उद्गतं काकुदं यस्य सः→उत् काकुद→उत् काकुद्→उत्काकुत् =जिसका तालु उठा हुआ हो वह पुरुष]।

विकाकुत् [विकृतं काकुदं यस्य सः→विकाकुद्→विकाकुत्=बिगड़े हुए तालु वाला पुरुष]।

(ii) बहुव्रीहि समास में यदि पूर्वपद 'पूर्ण' शब्द हो और उत्तरपद काकुद शब्द हो तो उसके अ का लोप विकल्प से होता है।[2] यथा—

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः (पूर्णं काकुदं यस्य सः→पूर्णं काकुद→पूर्णकाकुद्→ पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः=पूरे तालु वाला पुरुष)

अभ्यास

१. जिन्होंने हवन कर लिया है और भात खा लिया है उन अतिथियों को विदा करो।
हुतहोमान् भुक्तौदनांश्च प्राघुणिकान् विसर्जय साम्प्रतम्।

२. जिन्हें भिक्षा दी जा चुकी है ऐसे संन्यासियों के बाहर चले जाने पर, जिनके लिये पुए पकाए हैं, वे ऋत्विक् भोजनालय में प्रविष्ट हुए हैं।
दत्तभिक्षेषु यतिषु गृहाद् बहिर्गतवत्सु पक्वापूपा ऋत्विजो भोजनालयम्प्राविक्षन्।

३. यह नहर-निरीक्षक, जिस गाँव तक पानी पहुंचा है उस गांव का निरीक्षण करेगा।
अयङ् कुल्यानिरीक्षकः प्राप्तोदकं ग्रामन्निरीक्षिष्यते।

४. सभी मेहमानों के चले जाने पर, यह घर, उड़े हुए पक्षियों वाले पेड़ के समान शोभा से रहित प्रतीत हो रहा है।
गतवत्सु सर्वेष्वभ्यागतेषु गृहमेतदुड्डीनविहगवृक्षवद् अपगतश्रीकम्प्रतीयते।

५. चितकबरी गौओं वाले इस गोपाल का पीले कपड़े पहनने वाला पुत्र रात-दिन पढ़ता है।
चित्रगोरस्य गोपालस्य पीताम्बरः सूनू रात्रिन्दिवमधीते।

६. जहां कन्याएं शिक्षित हैं, ऐसे गाँव में अन्ध विश्वास क्यों पनपेंगे ?

---

१. उद्विभ्यां काकुदस्य (अष्टा. ५.४.१४८)।

२. पूर्णाद् विभाषा (अष्टा. ५.४.१४९)।

शिक्षितकन्ये ग्रामे कुतोऽन्धविश्वासा उदेष्यन्ति (उदयिष्यन्ते)।

७. सोने के गहने वाली स्त्री में विद्या का लेश भी न हो तो उसका जीवन व्यर्थ है।
सुवर्णालङ्कारायां ललनायां विद्यालेशोऽपि न स्यात्ततोऽपार्थकमेव तस्य जीवितम्।

८. इन झड़े हुए पत्तों वाले पेड़ों के झुंड में, उस जवान गंजे को कैसे ढूंढ़ोगे?
एषां प्रपर्णानां (प्रपतितपर्णानां) पादपानां समूहे कथमिव तं युवखलतिङ् गवेषयिष्यथ?

९. निपूतों की उत्तम गति नहीं होती, ऐसी प्रसिद्धि नैष्ठिक ब्रह्मचारियों में नहीं घटती।
अपुत्राणाम् (अविद्यमानपुत्राणां) सद्गतिर्न जायत इतीयं लोकोक्तिर्न सङ्गच्छते नैष्ठिकवर्णिषु।

१०. मैं जिसमें रोगी पड़ा हूं ऐसे इस घर में, तुम शोर क्यों मचा रहे हो?
अस्मिरुग्णेऽस्मिन्नोकसि कथङ् कोलाहलङ् कुरुथ?

११. अत्याचार होने पर भी नीचे मुख किये हुए ये विद्वान् क्या तिरस्कार के पात्र नहीं हैं?
अत्याचारे सत्यपि (अधोमुखाः) नीचैर्मुखा इमे विपश्चितो न (किमु) विडम्बनाभाजनानि सन्ति?

१२. देखो! जिसके सीने पर बाल हैं वह पहलवान दयालु और विश्वासपात्र है।
पश्यत! उरसिलोमा स मल्लो दयालुर्विश्रम्भभाजनञ्च वर्त्तते।

१३. तब हाथ में चक्र धारण किए हुए श्री कृष्ण, महाधनुर्धारी भीष्म की ओर दौड़े।
तदा चक्रपाणिर्मधुसूदनो दधाव महाधनुर्धरम्भीष्मं प्रति।

१४. ऊँट के से मुँह वाले बन्दर ने अनेक वृक्ष उजाड़ दिये हैं।
उष्ट्रमुखेनानेन शाखामृगेण नैकेऽनोकहा व्यनाश्यन्त।

१५. ब्रह्मदेव के बाड़े में दस के लगभग घोड़े, बीस के आस पास गायें, लगभग तीस बकरियां और पचास से अधिक भेड़े हैं।
ब्रह्मदेवस्य गोष्ठे उपदशास्तुरगा उपविंशा गाव आसन्नत्रिंशा अजा अधिकपञ्चाशा अवयश्च सन्ति।

१६. इस विद्वान् ने बारह महीनों में बीस ग्रन्थ लिखे हैं।
अयं विपश्चिद् द्वादशभिः मासैः द्विदशान् (=विंशतिं) ग्रन्थान् अलेखीत्।

१७. इन पांच छः लड्डुओं से इसका पेट भरेगा क्या?
एभिः पञ्चषैर्मोदकैः पूरयिष्यते किमस्योदरदरी?

१८. अजमेर नगर की उत्तर पश्चिम दिशा में एक बड़ी झील है।
अजमेरनगरस्योत्तरपश्चिमायामाशायाम्महती ह्येका सरसी विद्यते।

१९. वे शराबी एक दूसरे के केश पकड़कर लड़ते हुए चिल्लाने लगे और पहिले मुक्कों से और फिर लाठियों से लड़ने लगे।

मद्यपास्ते कचाकचि युध्यमानाः प्राक्रोशन्, तदनन्तरञ्च पूर्वं मुष्टीमुष्टि पश्चाच्च दण्डादण्डि योद्धुम्प्रावर्त्तन्त।

२०. राम और लक्ष्मण सीता के साथ नाव में बैठे।
ससीतौ (सहसीतौ) रामलक्ष्मणौ नावमध्यारुरुहतुः।

२१. जिनको पढ़ना प्यारा लगता है, वे ही छात्र मेरे पास पढ़ने आवें।
प्रियाध्ययनाः (अध्ययनप्रियाः) एव छात्रा मामध्येतुमुपेयुः।

२२. नियम के अनुसार जिन्होंने अग्नि का आधान किया है और जिनके पुत्र उत्पन्न हो गया है वे विद्वान् इस उत्सव में आयेंगे।
यथानियमम् आहिताग्नयः (अग्न्याहिताः) जातपुत्राः (पुत्रजाताः) च सुधियोऽस्मिन्नुत्सवे समेष्यन्ति।

२३. यह बड़ी-बड़ी आंखों वाला किसान, तीन अङ्गुलियों वाली जेई से पूले उठा उठा कर गाड़ी में डालेगा।
अयं विशालाक्षः कृषीवलस्त्र्यङ्गुलेन पूलानुत्थापमुत्थापं शकटे पातयिष्यति।

२४. आज एक गाय ने दो सिर वाला बछड़ा जना था।
अद्यैका गौर्द्विमूर्ध वत्समसोष्ट (अजीजनत्)।

२५. यह ऊंची नाक वाला वैयाकरण और सुन्दर नाक वाला मीमांसक, दोनों उत्तम बुद्धि वाले और श्रेष्ठ संतान वाले हैं।
एष उन्नसः पदज्ञः प्रणसो वाक्यज्ञश्चोभावपि सुमेधसौ सुप्रजसौ च स्तः।

२६. जिन्हें धर्म प्यारा है, वे निरन्तर प्राणियों पर दया करें।
प्रियधर्माणोऽनवरतम्प्राणिषु दयन्ताम्।

२७. यह गठे हुए सीने वाला युवक, जूते पहने हुए अपने छोटे भाई के साथ, दूसरे गाँव को जाएगा।
व्यूढोरस्कोऽयं युवा धृतोपानत्केन निजानुजेन समं ग्रामान्तरं व्रजिष्यति।

२८. बहुत ग्वालिनों वाले इस गांव में, सुशील बहुओं वाला यह घर सबसे अधिक सुखी है।

बहुगोपीकेऽस्मिन् ग्रामे सुशीलवधूकोऽयङ् कुटुम्बः सुखितमः खलु।

२९. इस दो दांत वाले शिशु को कड़वी दवाई मत दो।
अस्मै द्विदते शिशवे मा स्म ददाः (मा दाः) तिक्तमौषधम्।

३०. यह बालिका धुमैले (भूरे) दांतों वाली है, परन्तु इसकी बड़ी बहन तो सुन्दर दांतों वाली है।
बालेयं श्यावदती (श्यावदन्ती, श्यावदन्ता) वर्त्तते, परमस्या अग्रजा तु सुदती खलु।

३१. जिस देश में घड़े जैसे एन वाली गौएं हों, वहां दूध की बहुतायत क्यों न हो?
यस्मिन्देशे घटोध्न्यो गावःस्युः कथन्न भवेत्तत्र दुग्धस्य बहुलता (बहुलत्वं, बंहिमा)।

३२. इस श्रमसाध्य यात्रा में युवती पत्नियों वाले पुरुष ही जायेंगे, बूढ़ी पत्नियों वाले नहीं।
अस्यां श्रमसाध्यायां यात्रायां युवजानयो यात्रिण एव यास्यन्ति न पुनर्वृद्धजानयः।

३३. इस कम घी वाले शाक को कोई बीमार चाटे, मैं तो बढ़िया गन्ध वाला हलुआ खाऊंगा।
एतद् घृतगन्धि शाकमामयी कश्चिल्लेढु, सुगन्धि संयावमहन्तु समास्वदिष्ये।

३४. तीन चार दिनों में यह कार्य पूरा नहीं होगा, इसके लिए कम से कम आठ नौ दिन चाहिए।
त्रिचतुरेष्वह:सु नेदङ् कार्यं सेत्स्यति, न्यूनान्न्यूनान्यष्टनवानि दिनान्यपेक्ष्यन्ते ह्येतदर्थानि।

केवल समास

जो समास, अव्ययीभाव आदि चारों समासों की परिधि में नहीं आता वह केवल समास कहलाता है।

(१) सुबन्त शब्द का सुबन्त शब्द के साथ समास होता है[१]। यथा—
भूतपूर्वः (पूर्वं भूतः [=पूर्वकाले भूतः[पूर्व भूत→भूतपूर्वः[२]=पहिले हुआ हुआ)।

(२) कहीं कहीं वेद में सुबन्त (परि, अनु आदि) का तिङन्त के साथ भी समास होता है[१]। यथा—
पर्यभूषत् (परि अभूषत्→पर्यभूषत्=
अनुव्यचलत् (अनु वि अचलत्→अनुव्यचलत् =

---

१. सुपा (सह सुपा [अष्टा० २ १.४] के विभाग करने पर बना सूत्र) से समास हुआ।
२. भूतपूर्वे चरट् (अष्टा० ५.३.५३) सूत्र में पाणिनि के व्यवहाररूपी निर्देश से भूत शब्द पूर्वपद में आ गया।

(३) सुबन्त का इव अव्यय के साथ समास होता है किन्तु मध्यवर्ती विभक्ति का लोप नहीं होता और पूर्वपद का प्रकृतिस्वर ही सारे समस्त शब्द पर लागू होता है[1]। यथा—

वाससी इव (वाससी इव=कपड़ों के समान)।
वागर्थाविव (वागर्थौ इव→वागर्थाविव=शब्द और अर्थ के समान)।
जीमूतस्येव (जीमूतस्य इव→जीमूतस्येव=बादल के समान)।
उद्बाहुरिव (उद्बाहुः इव→उद्बाहुरिव=ऊपर भुजा उठाये हुए व्यक्ति के समान)।

× × ×

श्लोक-सङ्ग्रह

संस्कृत साहित्य उत्तमोत्तम श्लोकों से भरा पड़ा है। उन सबका रसास्वादन तो साहित्यसरोवर में प्रत्यक्ष स्नान करने से होता है। किन्तु कतिपय श्लोक हम नमूने के लिये यहां दे रहे हैं।

१. विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।
[महर्षि दयानन्द; सत्यार्थप्रकाश, समु० ३]

२. यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।

३. वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितः प्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः॥
[कालिदास, विक्रमोर्वशीयम्]

ऊर्णां नैव ददाति नैष विषयो वाहस्य दोहस्य वा
हा कष्टं कथमस्य पृष्ठशिखरे गोणी समारोप्यते?

---

१. इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च पूर्वपदप्रकृतिप्रकृतिस्वरत्वञ्च [वा०] (अष्टा० २.२.१८)।

तृप्तिर्नास्य महोदरस्य बहुभिर्ग्रासैः पलालैरपि
को गृह्णाति कपर्दकैरलमिति ग्राम्यैर्गजो हस्यते ॥

५. अस्यां सखे ! बधिरलोकनिवासभूमौ
किं कूजितेन खलु कोमलकोकिलेन ।
एते हि दैवहतकास्तदभिन्नवर्णं
त्वां काकमेव कलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥

६. किं कोमलैः कलरवैः पिक ! तिष्ठ तूष्णीम्
एते हि पामरजनाः स्वरमाकलय्य ।
को वा रटत्ययमये निकटे कटूनि
रे ! वध्यतामिति वदन्ति गृहीतदण्डाः ॥

७. रे बालकोकिल ! करीरमरुस्थलेषु
किं दुर्विदग्धमधुरध्वनिमा तनोषि ।
अन्यः स कोऽपि सहकारतरुप्रदेशो
मूल्यन्तु यत्र तव विभ्रमभाषितानाम् ॥

८. विश्वाभिराम-गुण-गौरव-गुम्फितानां
कोपोऽपि निर्मलधियां रमणीय एव ।
लोकप्रियैः परिमलैः परिपूरितस्य
काश्मीरजस्य कटुताऽपि नितान्तरम्या ॥

९. यन्नादृतस्त्वमलिना मलिनाशयेन
किं तेन चम्पक ! विषादमुरी करोषि ।
विश्वाभिराम-नव-नीरद-नीलवेशाः
केशाः कुशेशयदृशां कुशलीभवन्तु ॥

१०. क्रुद्धोलूक-नख-प्रपात-विगलत्-पक्षा अपि स्वाश्रयं
ये नोज्झन्ति पुरीष-पुष्ट-वपुषस्ते केचिदन्ये द्विजाः ।
ये तु स्वर्ग-तरङ्गिणी-बिसलता-लेशेन संवर्द्धिता
गङ्गातीरमपि त्यजन्ति मलिनं ते राजहंसा वयम् ॥

[पण्डितराज जगन्नाथ,

११. यत्रापि कुत्रापि गता भवन्ति
हंसा महीमण्डल-मण्डनानि ।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां
येषां मरालैः सह विप्रयोगः ॥

१२. किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्र स्थितास्तु तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥

१३. अयि दलदरविन्द ! स्यन्दमानं मरन्दं
तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गाः ।
दिशि दिशि निरपेक्षस्तावकीनं विवृण्वन्
परिमलमयमन्यो बान्धवो गन्धवाहः ॥

१४. ग्रीष्मे भीष्मतरैः करैर्दिनकृता दग्धोऽपि यश्चातकः
त्वां ध्यायन् घन ! वासरान् कथमपि द्राघीयसो नीतवान् ।
दैवाल्लोचनगोचरेण भवता तस्मिन्निदानीं यदि
स्वीचक्रे करकानिपातनकृपा तत् कं प्रति ब्रूमहे ॥

१५. भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि ।
रे राजहंस ! वद तस्य सरोवरस्य
कृतेन केन भवितासि कृतोपकारः ॥

१६. आपेदिरे ह्यम्बरपथं परितः पतङ्गा
भृङ्गा रसालमुकुलानि समाश्रयन्ते ।
सङ्कोचमञ्चति वद त्वयि दीननाथे
मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु ॥

१७. आपद्गतं हससि किं द्रविणान्धमूढ !
लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीति विचित्रमेतत् ।

एतान् प्रपश्यसि घटान् जलयन्त्रचक्रे
रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ताः ।

१८. अस्तङ्गतो ऽयमरविन्दवनैकबन्धुर्
भास्वान्, न लङ्घयति कोऽपि विधिप्रणीतम् ।
हे चक्र ! धैर्यमवलम्ब्य विमुञ्च शोकं
धीरास्तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः ॥

१९. आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्त—
मुद्दाम-दाव-विधुराणि च काननानि ।
नाना-नदी-नद-शतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद ! सैव तवोत्तमा श्रीः ॥

२०. अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागे रतिं वहति दुर्ललितं मनो मे ।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः ! स्वयं व्रजत किं परिदेवितेन ॥

२१. कस्त्वं भोः, कथयामि दैवहतकं शाखोटकं विद्धि मां,
वैराग्यादिव वक्षि, साधुविदितं, कस्मादिदं कथ्यते ?
वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते
न च्छायाऽपि परोपकारकरणे मार्गस्थितस्यापि मे ॥

२२. कस्त्वं भद्र, खलेश्वरोऽहमिह किं घोरेवने स्थीयते,
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिः खाद्योऽहमित्याशया ।
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितं, मद्देहमांसाशिनः
प्रत्युत्पन्न-नृमांस-भक्षणधियस्ते घ्नन्तु सर्वान् नरान् ॥

२३. कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधिति—
र्धर्मः परः कः कविवाचि कः स्थितः ?
का कण्ठभूषा न यमाद् बिभेति कः ?
स्वामी दयानन्द-सरस्वती यतिः ॥

२४. अस्मानवेहि कलमानलमाहतानां
येषां प्रकाण्डमुसलैरवदाततैव ।
स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां प्रयान्ति
ये स्वल्पमर्दनवशान्न वयं तिलास्ते ।।

२५. मम भवपथिकस्य कर्मभोग्यं
प्रलयनिशि त्वमवैक्षथाः शयालोः ।
त्वयि सकलमकिञ्चनो बुभूषुः
प्रहरिकवेतनमेतदर्पयामि ।।

वेद-मन्त्राः

ओ३म् अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ।।
[ऋग्वेद ४.२६.२]

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।।
[ऋग्वेद १०.७१.२]

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।।
[ऋग्वेद १०.११७.६]

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ।।
[अथर्ववेद ११.१०.१]

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः । अस्य लोकः सुतावतः ।
द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तंयमो ददात्ववसानमस्मै ।।
[यजुर्वेद ३५.१]

प्रशस्य-प्रशस्तिः

जगदेव जी सिद्धान्ती*

कश्चिच्चौधरी जगदेवाभिधो मैट्रिकपरीक्षामुत्तीर्य निजपितरमनुहरमाण इंग्लैण्डजर्मनदेशयोः प्रथमे विश्वयुद्धे आङ्ग्लपक्षं कक्ष्यीकृत्य सेनां प्रविश्य वेदाध्ययनाय स्पृहयन्नन्तरेण संस्कृताध्ययनं वेदज्ञानस्यासम्भवतामाकलय्याष्टाध्यायीमहाभाष्यादीनि पुस्तकानि क्रेतुमजमेरनगरं धनादेशं प्राहिणोत्। तदा पुस्तकान्युपलभ्यर्ते गुरोः पुस्तकाध्ययने काठिन्यमनुभूय प्रत्यहमुपचीयमानां पदोन्नतिं तृणाय मन्यमानस्तद्वृत्तिं परिहृत्य गृहस्थसुखमप्यनादृत्य मटिण्डूगुरुकुलमध्युष्य विशारदपरीक्षायामधीत इति मटिण्डूगुरुकुलान्तेवासी बलवीरसिंह आम्रेडं मामश्रुश्रवत्। तत्कीर्तिं कर्णपुटाभ्यां निपीय तेन महोदयेन सञ्जिगमिषा मम मनस्यजरीजृम्भ्यत। मम भाग्योदयाल्लवपुरमधिवसन्नहं तच्छ्रवणरमणीयानि वचांसि श्रावं श्रावं रसमयं समयमयीयपम्। तद्दिनात् प्रभृति सरलतमे साधावस्मिन् नितरां श्रद्दधानो निजाध्यनमविगणय्य तदधिष्ठितं किरठलमहाविद्यालयमयासिषम्। तत्राधिवसता मया शास्त्रेष्वधीतो गुरुशिष्यस्नेहः साक्षादन्वभावि। बहुधा विद्यालयं व्यवतिष्ठापयिषोस्तस्य साधोर्जाग्रत एव रजन्यक्षणोरेव प्रभातायितेत्यज्ञायि।

महता श्रमेणैष त्यागमूर्ती रघुवीरसिंहप्रमुखानि भारतरत्नान्यजीजनत्। अद्यापि निजपुत्रीकृताय निजशिष्यावतंसाय चन्द्रमोहनशास्त्रिणे सर्वस्वमहासीत्। चन्द्रमोहनमपि स्वपितृनिर्विशेषं निजगुरुं सेवमानमक्षिलक्ष्यीकृत्यानिशं भृशममोदिष्यहम्।

गुणगौरवगुम्फितस्यास्य साधोर्विषये कथयतो मे वाग्विभवोऽवसितिं याति। कथमेष त्यागावतारो लोकसभासदस्यः सन्नपि लघिष्ठं कुटीरमधिवसतीति दर्शं दर्शं विशाखदत्तकवेरयं श्लोकः पण्डापथमधिरुह्य जगदेवमेनत् चाणक्यकोटिकं मानयितुं हठयति स्म—

> उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
> वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
> शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
> र्विनमित- पटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।

इत्याचार्यरामशास्त्रिणः
श्रीजगदेवमहाभागाय सिद्धान्तिपदोपबृंहिताय
श्रद्धाप्रसूनाञ्जल्युपहारः।

---

* इयं प्रशस्तिः 'सिद्धान्ति-अभिनन्दनग्रन्थ' इत्याख्यरचनायां प्रकाशनाय प्रेषितचराऽऽसीत्।

श्री राजवैद्य ओम्प्रकाशः

कथं स शय्याकृतिमाप विष्णोः
शेषो ह्यवागच्छमहं त्विदानीम् ।
ह्रीणोऽसमर्थो गुणकीर्त्तने ते
हरिं निजं प्रावरणं करोति ॥

निरवद्यविद्याविद्योतमानायाऽऽयुर्वेदविद्वज्जननिकर-
निकषायमाणायाऽनूचानाय राजवैद्याय
कविराजाय मम शिष्यवंशावतंसाय
श्रीमत ओम्प्रकाशाय
आचार्यरामशास्त्रिणः
प्रेमपुष्पोपहारः ।

आशीराश्यम्भसा परिपूरितेन हृद्घटेनानिशमहर्निशमभिषिञ्चामि मलयज-वृक्षकं भवन्तम् । यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजादयः कटुतमाः कुजन्मानश्चन्दनी-भवन्ति । परद्रव्यं लोष्ठवद् वीक्षमाणा भूयिष्ठा जागतिका दृक्पथमवतरन्ति । परन्तु निजद्रव्यं लोष्ठाय मन्यमानो भवानिव कश्चिद् वैद्यो न श्रुतिपथमधिरूढः का कथा प्रत्यक्षस्य ? वैद्यविषये तु 'कथं दद्याद् यो मर्तुकामादपि हर्तुकामः' इत्याभाणकं सहासं भणन्ति लोकाः । एतादृशीं प्रसरन्तीं वैद्यापकीर्तिं स्वदानशीतलेन सलिलेन सलीलं प्राचीक्षलद् भवान् । मानवगुणवर्णनाय कल्पमानोऽपि मन्मतिविभवोऽतिमानवगुण-वर्णनाय परिसमाप्नोति । इत्थं मानवगुणातिशायिभिर्गुणप्रसूनैर्गुम्फितगौरवस्रजं शिशुमहं कञ्चित् कालमध्यापिपम् इति विविच्य मोमुद्यमानमानसस्समपत्सीति—

आचार्य रामशास्त्री वैद्यः ।

परिशिष्ट (१)

संख्यावाची शब्द

सुबन्तप्रकरण के अन्त में (पृष्ठ २०६ तथा २०७ पर) मैंने सङ्ख्यावाची शब्दों के विषय में थोड़ा सा समझाया था। एक से लेकर नवदश (=१९) तक के लिङ्गों तथा वचनों का विषय तुम समझ ही चुके हो। अब आगे के सङ्ख्या शब्दों को समझ लो। विंशतिः से लेकर नवनवतिः तक के शब्द नियत स्त्री-लिङ्ग हैं।[1] एकोनविंशतिः भी स्त्रीलिङ्ग है। विंशतिः, षष्टिः, सप्ततिः, अशीतिः और नवतिः इन शब्दों के रूप तथा इनके पूर्व सङ्ख्यावाची शब्द लगाने पर जो एकविंशतिः, द्विषष्टिः, त्रिसप्ततिः, चतुरशीतिः, पञ्चनवतिः आदि जो शब्द बनते हैं उनके रूप 'रुचिः' शब्द के समान चलेंगे। त्रिंशत्, चत्वारिंशत् और पञ्चाशत् तथा एकोनत्रिंशत्, एकत्रिंशत् द्विचत्वारिंशत्, त्रिपञ्चाशत् आदि शब्दों के रूप 'सरित्' शब्द के समान बनेंगे।

इन विंशतिः आदि और त्रिंशत् आदि शब्दों का दो प्रकार से प्रयोग होता है। एक शुद्ध सङ्ख्या शब्दों के रूप में और दूसरा सङ्ख्येयसङ्ख्या के रूप में। सङ्ख्या के वाच्य पदार्थ को सङ्ख्येय कहते हैं। उस सङ्ख्येय का विशेषण जो सङ्ख्याशब्द होता है, वह सङ्ख्येय सङ्ख्या कहलाता है। जब विंशति, त्रिंशत् आदि शब्द सङ्ख्येय-सङ्ख्या के रूप में प्रयुक्त होंगे सदा इनका एकवचनान्त प्रयोग ही होगा[2] और सङ्ख्येय-पदार्थवाची शब्द चाहे किसी भी लिङ्ग का हो विंशति, त्रिंशत् आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग के रूप में ही प्रयुक्त होंगे। यथा—मयङ्कः विंशतिं पुरुषान् पश्यति (=मयङ्क बीस पुरुषों को देखता है)। नवोदिता पञ्चषष्ठिं द्राक्षाफलानि भक्षयति (=नवोदिता पैंसठ किशमिश खाती है)। अद्य अष्टाशीतौ विद्यालयेषु अवकाशो वर्तते (=आज अठासी स्कूलों में छुट्टी है)। त्रिंशते छात्रेभ्यो रामशास्त्री पुस्तकानि वितरति (=रामशास्त्री तीस छात्रों को पुस्तक बांटते हैं)। इत्यादि। किन्तु जब विंशतिः, त्रिंशत् आदि शब्द शुद्ध सङ्ख्याशब्दों के रूप में प्रयुक्त होंगे तो इनके द्विवचन और बहुवचन में भी प्रयोग होंगे।[3] यथा आनन्द प्रकाशः आम्राणां द्वे विंशती क्रीणाति (=आनन्द प्रकाश आमों की दो बीसियां खरीदता है)। इत्यादि।

---

१. विंशत्यादिरानवतेः (लिङ्गानु० स्त्री० १३)।

२. विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः सङ्ख्येयसङ्ख्ययोः (अमरकोष २.९.८३)।

३. सङ्ख्यार्थे द्वित्वबहुत्वे स्तः (अमरकोषे २.९.८३)।

शतम् (=सौ), सहस्रम् (=हजार) और लक्षम् (=लाख) ये तीनों शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग है।[1] यथा—सुरेन्द्रः शतेन रूप्यकैः कम्बलमक्रीणात् (=सुरेन्द्र ने सौ रुपये में कम्बल खरीदा हैं)। जनको याज्ञवल्क्याय सहस्रं गाः प्रादात् (=जनक ने याज्ञवल्क्य को एक हजार गायें दीं)। विक्रमदेवः लक्षस्य ग्रामाणामधिपतिर्बभूव (विक्रमदेव एक लाख गांवों का स्वामी था)। सेनापतिः सहस्राभ्यां सैनिकैः शत्रौ प्रत्याक्रमणमकरोत् (=सेनापति ने दो हजार सैनिकों के साथ शत्रु पर प्रत्याक्रमण कर दिया)। भारते लक्षे गावः बहुक्षीराः सन्ति (=भारत में दो लाख गायें खूब दूध देने वाली हैं)।

अयुत (=दस हजार) शब्द और प्रयुत (=दस लाख) शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं, पर कहीं कहीं पुंल्लिङ्ग के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं[2]। कोटि (=करोड़) शब्द स्त्रीलिङ्ग है[3]। अर्बुद (=दस करोड़) शब्द पुंल्लिङ्ग है[4]। अब्ज (=एक अरब) शब्द नपुंसकलिङ्ग है। अरब के लिये न्यर्बुद (पंल्लिङ्ग) शब्द का भी प्रयोग होता है। खर्वं (=दस अरब) नपुंसकलिङ्ग है। शङ्कु (=एक नील अर्थात् दस लाख करोड़) शब्द पुंल्लिङ्ग है[5]। रामदुर्गे अयुतं जनाः सन्ति (=रामगढ़ में दस हजार मनुष्य रहते हैं) जयपुरेऽधुना प्रयुतं जनान् द्रष्टुं शक्नुथ (=जयपुर में इस समय दस लाख लोगों को देख सकते हो)। हरयाणाप्रदेशस्य कोटये जनेभ्यः शिक्षाव्यवस्था साधीयसि नास्ति (=हरयाणा प्रान्त में एक करोड़ मनुष्यों के लिये शिक्षाव्यवस्था अच्छी नहीं है) अयं विशालबन्धः अब्जेन रूप्यकैः निर्मास्यते (=यह बड़ा बांध एक अरब रुपयों में बनेगा)। भारतराष्ट्रं विश्वाधिकोषात् खर्वं रूप्यकाणि पर्युदञ्चिष्यति (=भारत देश विश्वबैंक से दस अरब रुपये उधार लेगा)। कृषिविभागो निखर्वं रूप्यकाणि अपेक्षते (=कृषि विभाग एक खरब रुपये चाहता है) शङ्कुं शङ्कु रूप्यकाणि अण्वायुधनिर्माणे व्ययीक्रियन्ते अमरीकादिराष्ट्रैः (=अमरीका आदि देश सम्भवतः अणु-हथियारों के निर्माण में एक नील रुपया खर्च करते हैं)।

---

१. शतादिः सङ्ख्या (लिङ्गानु० नपु० २९)

२. शतायुतप्रयुताः पुंसिच (लिङ्गानु० नपुं० ३०)

३. लक्षाकोटी स्त्रियाम् (लिङ्गानु० नपुं० ३१)। इसके अनुसार लक्ष शब्द भी स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु व्यवहार में लक्ष शब्द नपुंसकलिङ्ग ही प्रयुक्त होता है।

४. कासमर्दोऽर्बुदः कुन्दः (अमरकोष, ३.५.१९)

५. अब्ज आदि शब्दों के विषय में संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ' कोष देखिये।

१ एकम्
२ द्वे
३ त्रीणि
४ चत्वारि
५ पञ्च
६ षट्
७ सप्त
८ { अष्टौ / अष्ट }
९ नव
१० दश
११ एकादश
१२ द्वादश
१३ त्रयोदश
१४ चतुर्दश
१५ पञ्चदश
१६ षोडश
१७ सप्तदश
१८ अष्टादश
१९ { नवदश / एकोनविंशतिः }

२० विंशतिः
२१ एकविंशतिः
२२ द्वाविंशतिः
२३ त्रयोविंशतिः
२४ चतुर्विंशतिः
२५ पञ्चविंशतिः
२६ षड्विंशतिः
२७ सप्तविंशतिः
२८ अष्टाविंशतिः
२९ { नवविंशतिः / एकोनत्रिंशत् }
३० त्रिंशत्
३१ एकत्रिंशत्
३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्
३८ अष्टत्रिंशत्

३९ { नवत्रिंशत् / एकोनचत्वारिंशत् }
४० चत्वारिंशत्
४१ एकचत्वारिंशत्
४२ { द्विचत्वारिंशत् / द्वाचत्वारिंशत् }
४३ { त्रिचत्वारिंशत् / त्रयश्चत्वारिंशत् }
४४ चतुश्चत्वारिंशत्
४५ पञ्चचत्वारिंशत्
४६ षट्चत्वारिंशत्
४७ सप्तचत्वारिंशत्
४८ { अष्टाचत्वारिंशत् / अष्टचत्वारिंशत् }
४९ { नवचत्वारिंशत् / एकोनपञ्चाशत् }
५० पञ्चाशत्
५१ एकपञ्चाशत्
५२ { द्विपञ्चाशत् / द्वापञ्चाशत् }
५३ { त्रिपञ्चाशत् / त्रयःपञ्चाशत् }

५४ चतुःपञ्चाशत्
५५ पञ्चपञ्चाशत्
५६ षट्पञ्चाशत्
५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ { अष्टपञ्चाशत् / अष्टापञ्चाशत् }
५९ { नवपञ्चाशत् / एकोनषष्टिः }
६० षष्टिः
६१ एकषष्टिः
६२ { द्विषष्टिः / द्वाषष्टिः }
६३ { त्रिषष्टिः / त्रयःषष्टिः }
६४ चतुःषष्टिः
६५ पञ्चषष्टिः
६६ षट्षष्टिः
६७ सप्तषष्टिः
६८ { अष्टषष्टिः / अष्टाषष्टिः }
६९ { नवषष्टिः / एकोनसप्ततिः }

७० सप्ततिः
७१ एकसप्ततिः
७२ द्विसप्ततिः / द्वासप्ततिः
७३ त्रिसप्ततिः / त्रयःसप्ततिः
७४ चतुःसप्ततिः
७५ पञ्चसप्ततिः
७६ षट्सप्ततिः
७७ सप्तसप्ततिः
७८ अष्टसप्ततिः / अष्टासप्ततिः

७९ नवसप्ततिः / एकोनाशीतिः
८० अशीतिः
८१ एकाशीतिः
८२ द्व्यशीतिः
८३ त्र्यशीतिः
८४ चतुरशीतिः
८५ पञ्चाशीतिः
८६ षडशीतिः
८७ सप्ताशीतिः
८८ अष्टाशीतिः
८९ नवाशीतिः / एकोननवतिः

९० नवतिः
९१ एकनवतिः
९२ द्विनवतिः / द्वानवतिः
९३ त्रिनवतिः / त्रयोनवतिः
९४ चतुर्णवतिः
९५ पञ्चनवतिः
९६ षण्णवतिः
९७ सप्तनवतिः
९८ अष्टनवतिः / अष्टानवतिः

९९ नवनवतिः / एकोनशतम्
१०० शतम्
१००० सहस्रम्
अयुतम् (दस हजार)
लक्षम् (एक लाख)
प्रयुतम् (दस लाख)
कोटिः (एक करोड़)
अर्बुदः (दस करोड़)
अब्जम् (एक अरब)
खर्वम् (दस अरब)
निखर्वम् (एक खरब)
शङ्कुः (एक नील)

पूरणप्रत्ययान्त-सङ्ख्या-शब्द

सङ्ख्यावाची शब्दों से पूरा करने अर्थ में जो प्रत्यय होते हैं उन्हें पूरण-प्रत्यय कहते हैं। पूरण-प्रत्यय मुख्य रूप से दो ही हैं— डट् और तीय। तीय प्रत्यय केवल 'द्वि' और 'त्रि' इन दो शब्दों से ही होता है[1]। द्वितीयः (द्वयोः पूरणः) —द्वि+तीय=द्वितीयः=दूसरा। स्त्रीलिङ्ग में द्वितीया=दूसरी। नपुं० में द्वितीयम् =दूसरा। त्रयाणां पूरणः→त्रि+तीय→तृ+तीय=तृतीयः=तीसरा। तृतीया[2]= तीसरी। तृतीयम्=तीसरा। चतुर्थः, पञ्चमः आदि समस्त अन्य पूरण-प्रत्यान्त शब्द वस्तुतः डट् प्रत्यय वाले हैं। सङ्ख्यावाची सब शब्दों (द्वि और त्रि को छोड़कर) से पूरण अर्थ में डट् (=अ) प्रत्यय होता है[3]। डट् के ड् और ट् की इत्सञ्ज्ञा होने पर अ शेष रहता है।

१. द्वेस्तीयः, त्रेः सम्प्रसारणञ्च (अष्टा. ५·२·५४,५५)
२. अजाद्यतष्टाप् (अष्टा. ४·१·४) से टाप् (=आ)।
३. तस्य पूरणे डट् (अष्टा. ५·२·४८)

यथा—एकदशानां पूरणः→एकादशन्+डट्→एकादशन्+अ→एकादश्[1]+अ =एकादशः (=ग्यारहवां)। इसी प्रकार द्वादशानां पूरणः→द्वादशन्+डट्→द्वादशन्+अ=द्वादश्+अ=द्वादशः (=बारहवां)। त्रयोदशः=तेहरवां। इसी प्रकार चतुर्दशः से नवदशः तक बनेंगे। स्त्रीलिङ्ग में एकादशी,[2] द्वादशी[2] आदि तथा नपुं० में एकादशम् आदि बनेंगे। पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन् से जब डट् (=अ) होगा तो बीच में मट् (=म्) आगम हो जाता है।[3] पञ्चानां पूरणः→पञ्चन्+डट्→पञ्चन्+अ→पञ्चन्+म् अ→पञ्चमः[4] (पांचवां)। पञ्चानां पूरणी पञ्चमी (=पांचवीं)। पञ्चानांपूरणम् पञ्चमम् (=पांचवां)। इसी प्रकार सप्तमः[4], अष्टमः, नवमः, दशमः, सप्तमी,[2] दशमी[2] आदि। षट् (=षष्) और चतुर शब्दों से जो डट् होगा वहाँ मध्य में थुक् (=थ्) आगम होगा[5]। षण्णां पूरणः→षट्+डट्→षष्+अ→षष्+थुक्+अ→षष् थ अ→षष्ठः (=छठा)। षष्ठी[2] (=छठी)। षष्ठम् (=छठा)। चतुर्णां पूरणः→चतुर्+डट्→चतुर+अ→चतुर थुक्+अ→चतुर थ् अ→चतुर्थः (=चौथा)। चतुर्थी[2] (चौथी)। चतुर्थम् (=चौथा)।

षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत, सहस्र और लक्ष इन सङ्ख्याशब्दों से तथा इनसे बड़ी संख्या के वाचक शब्दों से जब डट् प्रत्यय होगा तो वहाँ बीच में सदा तमट् (=तम्) आगम आ जाता है[6]। षष्टेः पूरणः→षष्टि+डट्→षष्टि+अ→षष्टितमी[2] (=साठवीं) षष्टितमम् (=साठवां)। सप्ततेः पूरणः→सप्ततितमः। स्त्रियाम्→सप्ततितमी। नपुं०—सप्ततितमम्। अशीतेः पूरणः अशीतितमः इत्यादि। शतस्य पूरणी→शततमी (=सौवीं)। शततमः (पुं०)=सौवां सहस्रस्य पूरणम्→सहस्रतमम् (न०)=हजारवां। सहस्रतमी (स्त्री०)। सहस्रतमः पु०। इत्यादि।

एकोनविंशति से लेकर एकोनषष्टि तक के शब्दों से तथा एकषष्टि से नवनवति तक (षष्टि, सप्तति, अशीति तथा नवति को छोड़कर) के शब्दों से जब डट् प्रत्यय होता है तो मध्य में विकल्प से तमट् (=तम्) आगम होता है। एकोनविंशतेः पूरणः→एकोनविंशतितमः (=उन्नीसवां)। पक्ष में जब तमट् नहीं होगा तो विंशति

---

१. टेः (अष्टा. ६. ४. १४३) से टिकालोप
२. टिड्ढाणञ्० (अष्टा. ४.१.१५) से ङीप्।
३. नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् (अष्टा. ५.२.४६)
४. वेद में पञ्चथः (=पांचवां), सप्तथः (=सातवां) आदि प्रयोग भी होते हैं [थट् च च्छन्दसि (अष्टा. ५.२.५०)]
५. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्। (अष्टा. ५.२.५१)
६. षष्ट्यादेश्चासङ्ख्यादेः, नित्यं शतादिमासार्ध······(अष्टा. ५.२.५८,५७)

के ति का लोप हो जायेगा'। एकोनविंश: (=उन्नीसवां [एकोनविंशति+डट्→ एकोनविंशति+अ=एकोनविंश+अ→एकोनविंश्+अ→एकोनविंश:। इसी प्रकार विंशते: पूरण: विंशतितम:, विंश: (-बीसवां) स्त्रियाम्—विंशतितमी, विंशी। नपुं—विंशतितमम्, विंशम्। एकषष्टे: पूरण: एकषष्टितम:, एकषष्ट:। एकषष्टितमी, एकषष्टी। एकषष्टितमम्, एकषष्टम्। आदि।

अभ्यास

१. कक्षा के तीसरे पांचवें, दसवें अठारवें छात्र को बुलाओ।
कक्षाया: तृतीयं पञ्चमं दशमं अष्टादशं च छात्रम् आह्वय।

२. कमलानगर की बीसवीं, इकतीसवीं और साठवीं गली में प्रकाश नहीं है।
कमलानगरस्य विंश्याम् (विंशतितम्याम्) एकत्रिंशत्तम्यां (एकत्रिंश्यां), षष्टितम्यां च वीथ्यां प्रकाशो न विद्यते।

३. अपनी सम्पत्ति का पचासवां भाग स्कूल को और सौवां भाग अनाथों को दूंगा।
मम सम्पद: पञ्चाशं (पञ्चाशत्तमम्) अंशं विद्यालयाय शततमं चांशं अनाथेभ्य: प्रदास्यामि।

४. सातवीं कक्षा के चौथे छात्र ने चौदहवीं के पच्चीसवें छात्र को भाषण प्रतियोगिता में हरा दिया।
सप्तम्या: कक्षाया: चतुर्थ: छात्र: चतुर्दश्या: पञ्चविंशं (पञ्चविंशतितमं) छात्रं भाषणप्रतियोगितायां पराजेष्ट।

५. अणु बाल के अग्रभाग के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म होता है।
अणु: बालाग्रभागस्य सहस्रतमादप्यंशात्सूक्ष्मतमो भवति।

६. अस्सी फल चालीसवीं लड़की को और सौ पूरियां साठवें भिक्षुक को दे दो।
अशीतिं फलानि चत्वारिंश्यै बालिकायै शतं शष्कुलीश्च षष्टितमाय भिक्षुकाय यच्छ।

अब सुविधा के लिये पूरणप्रत्ययान्त शब्दों को क्रमश: तालिकाबद्ध कर देते हैं। ये पुंल्लिङ्ग रूप हैं। स्त्री॰ तथा नपुं॰ में पूर्वानुसार बना लो।

प्रथमः
द्वितीयः
तृतीयः
चतुर्थः
पञ्चमः
षष्ठः
सप्तमः
अष्टमः
नवमः
दशमः
एकादशः
द्वादशः
त्रयोदशः
चतुर्दशः
पञ्चदशः
षोडशः
सप्तदशः
अष्टादशः
नवदशः
एकोनविंशतितमः
एकोनविंशः
विंशतितमः
विंशः
एकविंशतितमः
एकविंशः

↓

नवविंशतितमः
नवविंशः
एकोनत्रिंशत्तमः
एकोनत्रिंशः
त्रिंशत्तमः
त्रिंशः
एकत्रिंशत्तमः
एकत्रिंशः

↓

नवत्रिंशत्तमः
नवत्रिंशः
एकोनचत्वारिंशत्तमः
एकोनचत्वारिंशः
चत्वारिंशत्तमः
चत्वारिंशः
एकचत्वारिंशत्तमः
एकचत्वारिंशः

↓

नवचत्वारिंशत्तमः
नवचत्वारिंशः
एकोनपञ्चाशत्तमः
एकोनपञ्चाशः
पञ्चाशत्तमः
पञ्चाशः

एकपञ्चाशत्तमः
एकपञ्चाशः

↓

नवपञ्चाशत्तमः
नवपञ्चाशः
एकोनषष्टितमः
एकोनषष्टः
षष्टितमः
एकषष्टितमः
एकषष्टः

↓

नवषष्टितमः
नवषष्टः
एकोनसप्ततितमः
एकोनसप्ततः
सप्ततितमः
एकसप्ततितमः
एकसप्ततः

↓

नवसप्ततितमः
नवसप्ततः
एकोनाशीतितमः
एकोनाशीतः
अशीतितमः

एकाशीतितमः
एकाशीतः

↓

नवाशीतितमः
नवाशीतः
एकोननवतितमः
एकोननवतः
नवतितमः
एकनवतितमः
एकनवतः

↓

नवनवतितमः
नवनवतः
एकोनशततमः
शततमः
एकशततमः
द्विशततमः
सहस्रतमः
लक्षतमः
कोटितमः
अब्जतमः
अर्बुदतमः
खर्वतमः
निखर्वतमः
शङ्कुतमः

परिशिष्ट (२)

नामधातु-प्रकरण

नाम अर्थात् सुबन्त शब्दों से जो धातुयें बनती हैं उन्हें नामधातु कहते हैं। इन्हें नाम प्रत्यय धातु भी कहते हैं क्योंकि नाम (=सुबन्त) शब्दों से कुछ विशिष्ट प्रत्ययों के लगने के बाद ही उनकी धातु सञ्ज्ञा होती है[१]। ऐसे प्रत्यय सात हैं—क्यच्, क्यङ्, क्यष्, काम्यच्, णिङ्, णिच् और क्विप्। इनके लगने पर किस अवस्था में किस सुबन्त शब्द से कैसे धातु बनती है सो समझ लो।

(i) कर्मकारक सुबन्त शब्द मात्र से अपने की इच्छा करने अर्थ में विकल्प से क्यच् (=य) प्रत्यय होता है[१]। आत्मनः पुत्रम् इच्छति→पुत्रीयति। पुत्र+अम्+क्यच्→पुत्र अम्+य। इस अवस्था में क्यच्प्रत्ययान्त शब्द की धातु सञ्ज्ञा होगी[२]। धातुसञ्ज्ञा के कारण मध्यगत सुप् (=अम् आदि प्रत्यय) का लुक्[३]→पुत्र+य→पुत्रीय[४]। पुत्रीय+लट्→पुत्रीय+तिप्। पुत्रीय शप् तिप्→पुत्रीय अ ति→पुत्रीयति (=अपने पुत्र को चाहता है)। इसके रूप अन्य धातुओं के समान चलेंगे—पुत्रीयति पुत्रीयतः, पुत्रीयन्ति। पुत्रीयसि, पुत्रीयथः पुत्रीयथ। पुत्रीयामि पुत्रीयावः पुत्रीयामः। लिट्—पुत्रीयाञ्चकार—पुत्रीयामास—पुत्रीयाम्बभूव। लुट्—पुत्रीयिता। लृट्—पुत्रीयिष्यति। लोट्—पुत्रीयतु। लङ्—अपुत्रीयत्। वि० लिङ्—पुत्रीयेत्। लुङ्→अपुत्रीयीत्। लृङ्—अपुत्रीयिष्यत्। धातुमात्र से होने वाले क्त्वा आदि कृत्प्रत्यय भी नामधातुओं से होते हैं। क्त्वा—पुत्रीयित्वा। तुमुन्—पुत्रीयितुम्। क्तवतु—पुत्रीयितवान्। क्त—पुत्रीयितम्। तृच्—पुत्रीयिता। यत्—पुत्रीय्यः[५]। इत्यादि। इन पुत्रीय आदि सभी नाम धातुओं से यङ्, णिच्, (सन्) आदि प्रत्यय भी होते हैं। इसी प्रकार—आत्मनः भवनम् इच्छति—भवनीयति। आत्मनः छात्रम् इच्छति छात्रीयति। इत्यादि। समस्त सुबन्तों से इसी प्रकार धातुरूप बन सकते हैं।

(ii) इसी प्रकार, कर्मकारक सुबन्त शब्द से अपने की इच्छा करने के अर्थ

---

१. सुप आत्मनः क्यच् (अष्टा० ३.१.८)

२. सनाद्यन्ता धातवः (अष्टा० ३.१.३२)

३. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (अष्टा० २.४.७१)

४. क्यचि च (अष्टा० ७.४.३३) से अकार को ईकारादेश।

५. पुत्रीय धातु अजन्त है अतः 'अचो यत्' (अष्टा० ३.१.९७) से यत् प्रत्यय हुआ।

में विकल्प से काम्यच् प्रत्यय होता है[1]। आत्मनः पुत्रम् इच्छति→पुत्रकाम्यति। पुत्र+अम्+काम्यच् पुत्र+अम्+काम्य→पुत्रकाम्य। पुत्रकाम्य+लट्। पुत्रकाम्य+पुत्रकाम्य+शप्+तिप्→पुत्रकाम्यति (=अपने पुत्र को चाहता है)। पुत्रकाम्याञ्चकार। पुत्रकामिता[2]। पुत्रकामिष्यति[2]। पुत्रकाम्यतु। अपुत्रकाम्यत्। पुत्रकाम्येत्। अपुत्रकामीत्[2]। अपुत्रकामिष्यत्॥ पुत्रकामित्वा[2]। पुत्रकामितुम्[2] आदि।

(iii) उपमान रूपी कर्मकारक सुबन्त शब्द से आचरण करने के अर्थ में विकल्प से क्यच् (=य) प्रत्यय होता है[3]। पुत्रम् इव आचरति पुत्रीयति छात्रम् (=छात्र के साथ पुत्र के समान आचरण करता है)। छात्रमिवाचरति छात्रीयति पुत्रम् (=पुत्र के साथ छात्र के समान आचरण करता है)। इसी प्रकार—क्षीरीयति जलम्। (=जल को दूध के समान काम में लेता है)। इत्यादि।

(iv) उपमानरूपी अधिकरणकारक सुबन्त शब्द से भी आचरण अर्थ में क्यच् (=य) प्रत्यय होता है[4]। प्रासादे इवाचरति प्रासादीयति कुट्याम् (=कुटी में महल में रहने के समान रहता है)। नगरीयति ग्रामे। पर्यङ्कीयति खट्वायाम्। इत्यादि॥

(v) उपमानभूत कर्तृकारक सुबन्त शब्द से आचरण अर्थ में विकल्प से क्यङ् (=य) प्रत्यय होता है[5]। यदि किसी सकारान्त शब्द से क्यङ् होगा तो उस शब्द के अन्तिम सरकार का लोप भी हो जाता है[5]। पण्डितः इव आचरति पण्डितायते[6] (=पण्डित के समान आचरण करता है)। पण्डितायाञ्चक्रे। पण्डितायिता पण्डितायिष्यते। पण्डितायताम्। अपण्डितायत। पण्डितायेत। अपण्डितायिष्ट। अपण्डितायिष्यत॥ इत्यादि। श्येन इव आचरति श्येनायते। गृहस्थ इवाचरति गृहस्थायते अप्सराः इव आचरति अप्सरायते (अप्सरस्+सु+क्यङ्→अप्सरस्+य→अप्सर[5]+य→अप्सराय+लट्→अप्सरायते (=अप्सरा के समान आचरण करती है)।

(vi) उपमानरूपी कर्तृकारक सुबन्त मात्र से आचरण अर्थ में विकल्प से

---

१. काम्यच्च (अष्टा० ३.१.९)।

२. यस्य हलः (अष्टा० ६.४.४९) से यकार का लोप।

३. उपमानादाचारे (अष्टा० ३.१.१०)।

४. अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् [वा०] (अष्टा० ३.१.१०)

५. कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च (अष्टा० ३.१.११)

६. क्यङ् प्रत्यय के ङित् होने से तदन्त 'पण्डिताय' आदि धातुओं से (अनुदात्तङित० १.३.१२ आत्मनेपद होता है।

क्विप् प्रत्यय भी होता है[1] अश्व इवाचरति→अश्वति (=अश्व के समान आचरण करता है) [अश्व सु क्विप्→अश्व सुव्। अश्व सु। अश्व। अश्व लट्→अश्व शप् तिप्→अश्व अ ति। अश्वति[2]। अश्वाञ्चकार। अश्विता। अश्विष्यति। अश्वतु। आश्वत्। अश्वेत्। आश्वीत्। आश्विष्यत्। आदि। पक्ष में—क्यङ् प्रत्यय होने पर अश्वायते आदि। (पण्डित इवाचरति पण्डितति। कविरिवाचरति कवयति। गुरुरिवाचरति गुरवति। पितेवाचरति पितरति। शास्त्रीवाचरति शास्त्रिणति। गौरिवाचरति गवति। इत्यादि। इन्ही शब्दों से क्यङ् करने पर कवीयते। गुरूयते। पित्रीयते। शास्त्रिण्यते। गव्यते। आदि बनेंगे।

ये उपर्युक्त प्रत्यय इन उपर्युक्त अर्थों में प्रायः समस्त शब्दों से होते हैं। अब कुछ विशिष्ट शब्दों से होने वाले प्रत्यय और तदन्त धातुरूपों के विषय में समझाते हैं।

(vii) भृश आदि कुछ कर्तृकारक सुबन्त शब्दों से अभूततद्भाव अर्थ में (=जो जैसा नहीं है उसके वैसा होने के अर्थ में) क्यङ् प्रत्यय होता है, किन्तु भृश आदि शब्द च्विप्रत्ययान्त न हों[3]। इन भृश आदि शब्दों में से जो शश्वत्, उन्मनस् आदि हलन्त शब्द हैं उनके अन्तिम हल् का लोप भी हो जाता है[3]। अभृशो भृशो भवति भृशायते (=जो बहुत नहीं है वह बहुत होता है) अचपलश्चपलो भवति चपलायते। अशश्वत् शश्वद् भवति शश्वायते। अनुन्मना उन्मना भवति उन्मनायते। आदि।

(viii) लोहित आदि कुछ शब्दों से और डाच् प्रत्ययान्त शब्दों से अभूततद्भाव अर्थ में क्यष् (=य) प्रत्यय होता है[4]। अलोहितो लोहितो भवति लोहितायति, लोहितायते[5]। आदि।

(ix) कर्मकारक रोमन्थ शब्द से जुगाली करने के अर्थ में तथा कर्मकारक तपस् शब्द से [तपस्या] करने के अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है[1]। रोमन्थं वर्त्तयति रोमन्थायते गौः (=गाय जुगाली करती है)। तपश्चरति तपस्यति[2] (=तपस्या करता है)।

(x) कर्मकारक सुबन्त बाष्प, उष्मन् और फेन इन शब्दों से उद्वमन

---

१. सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येके [वा०] (अष्टा० ३.१.११)।

२. अतो गुणे (अष्टा० ६.१.) से पररूपैकादेश।

३. भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः (अष्टा० ३.१.१२)।

४. लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् (अष्टा० ३.१.१३)

५. वा क्यषः (अष्टा० १.३.९०) से विकल्प से आत्मने पद।

(=उगलना) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है[३]। वाष्पम् उद्वमति→वाष्पायते (=भाप को उगलता है)। उष्माणम् उद्वमति उष्मायते। फेनम् उद्वमति→फेनायते।

(xi) कर्मकारक सुबन्त शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ, सुदिन, दुर्दिन, नीहार, अटा, अट्टा, शीका, कोटा, पोटा, सोटा और कष्टा शब्दों से 'करण' अर्थ में (=करना, सम्पादन करना, निर्माण करना आदि अर्थों में) क्यङ् प्रत्यय होता है[४]। शब्दं करोति→शब्दायते। वैरं करोति→वैरायते। कलहायते। अभ्रायते। कण्वायते। (=पाप करता है) मेघायते।। सुदिनं करोति→सुदिनायते। दुर्दिनायते। निहारायते।। अटाम् (=भ्रमणम्) करोति अटायते। अट्टाम् (=अतिक्रमणम्) करोति अट्टायते। शीकायते। इत्यादि।

(xii) कर्मकारक सुबन्त सुख आदि कुछ शब्दों से कर्त्ता सम्बन्धी अनुभव अर्थ में क्यङ् होता है[५]। सुखं वेदयते→सुखायते (=सुख का अनुभव करता है)। दुःखायते। आदि।

(xiii) नमस् शब्द से पूजा करने के अर्थ में, वरिवस् शब्द से परिचर्या करने के अर्थ में और चित्रङ् (=चित्र) शब्द से आश्चर्य करने के अर्थ में क्यच् (=य) प्रत्यय होता है[६]। नमस् करोति→नमस्यति विदुषः। वरिवस्करोति→वरिवस्यति गुरून्। चित्रं करोति→चित्रीयते[७] (=आश्चर्य करता है)।

(xiii) कर्मकारक सुबन्त पुच्छ, शब्द से ऊपर उठाने के या चारों ओर घुमाने के अर्थ में, भाण्ड शब्द से इकट्ठा करने के अर्थ में और चीवर शब्द से धारण करने के अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है[८]। पुच्छम् उदस्यति→उत्पुच्छयते (उत्+पुच्छ+अम्+णिङ्→उत्+पुच्छ+इ→उत्पुच्छि→उत्पुच्छि+लट्→उत्पुच्छि+शप्+

---

१. कर्मणो रोमन्थतपोभ्या वर्त्तिचरोः (अष्टा० ३.१.१५)
२. तपसः परस्मैपद च [वा०] अष्टा० ३.१.१५) से परस्मैपद।
३. वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने (अष्टा० ३.१.१६); फेनाच्चेति वक्तव्यम् [वा०]।
४. शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे (अष्टा० ३.१.१७); सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्चेति वक्तव्यम् [वा०], अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटाकष्टाग्रहणं कर्त्तव्यम् [वा०]।
५. सुखादिभ्यः कर्त्तृवेदनायाम् (अष्टा० ३.१.१८)।
६. नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् (अष्टा० ३.१.१९)।
७. चित्र के ङित् होने के कारण (अनुदत्ताङित० १.३.१२) आत्मनेपद।
८. पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् (३.१.२०); पुच्छादुदसने पर्यसने वा; भाण्डात् समाचयने; चीवरादर्जने परिधाने वा [वा.]

त→उत्पुच्छयते (=पूंछ को ऊपर उठाता है)। परिपुच्छयते। भाण्डान् समाचिनोति→सम्भाण्डयते (=बरतन इकट्ठे करता है) चीवरं परिधत्ते→सञ्चीवरयते।

(xiv) मुण्ड, मिश्र, श्लक्षण और लवण इन कर्मकारक सुबन्त शब्दों से सामान्य करण (=करना, बनाना) अर्थ में तथा व्रत, वस्त्र, हलि; कलि, कृत और तूस्त इन शब्दों से विशिष्ट करण अर्थों में (=भिन्न भिन्न अर्थों में) णिच् प्रत्यय होता है[1]।

मुण्डं करोति→मुण्डयति (=मुण्डित करता है)। मिश्रं करोति→मिश्रयति। श्लक्ष्णं करोति→श्लक्ष्णयति। लवणं करोति लवणयति। व्रतं करोति→व्रतयति पयः (=केवल दूध ही भोजन के रूप में लेता है)। व्रतं करोति→व्रतयति वृषलान्नम् (=गन्दे व्यक्ति का भोजन ग्रहण नहीं करता है)। वस्त्राणि समाच्छादयति→संवस्त्रयति। हलिं गृह्णाति हलयति→हलि→हल[3]+णिच्→हल+इ→हल्+इ→हलि→हलि+लट्→हलि+शप्+तिप्→हलि+अ+ति - हलयति। (=हल चलाता है)। कलिं गृह्णाति→कलयति (=बाण को ग्रहण करता है) कृतं गृह्णाति→कृतयति (=फल को ग्रहण करता है)। तूस्तानि विहन्ति→वितूस्तयति केशान्→(=केशों को सुलझाता है)।

(xv) सत्य, अर्थ; वेद, पाश रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोमन्, त्वच, वर्मन् वर्ण और चूर्ण इन सुबन्त शब्दों से विभिन्न अर्थों में णिच् प्रत्यय होता है[4]। सत्य, अर्थ और वेद इन प्रातिपदिकों को आपुक् (=आप्) आगम भी होता है[4]। विधानसामर्थ्य से टि भाग का लोप नहीं होता है।

सत्यम् आचष्टे→सत्यापयति (=सत्य बताता है)। अर्थम् आचष्टे→अर्थापयति (=अर्थ बताता है) वेदमाचष्टे→वेदापयति (वेद पढ़ाता है)। पाशाद् विमुञ्चति→विपाशयति (=बन्धन से मुक्त करता है)। रूपयति (=दिखाता है)। उपवीणयति (=वीणा के साथ गाता है)। अनुतूलयति (=रूई से कुरेदता है=

---

१. 'णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य' [वा० अष्टा० ६-४.१५५] से णि परे रहने पर भी प्रातिपदिक को इष्ठपरवत् कार्य का विधान और 'टेः' (अष्टा० ६.४.१५५) से टिका लोप।

२. मुण्डमिश्रश्लक्षणलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् (अष्टा० ३.१.२१)

३. सूत्र में 'हल' अदन्त निपातन किया है जिससे लुङ् में 'अनग्लोपे' प्रतिषेध से सन्वद्भाव का अभाव रहता है और 'अजहलत्' आदि रूप बनते हैं।

४. सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् (अष्टा० ३.१.२५); अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्यः [वा०]

कान का मल निकालता है)। उपश्लोकयति (=श्लोकों से स्तुति करता है)। अभिषेणयति (=सेना के साथ चढ़ाई करता है) [अभि+सेना+टा+णिच्→ अभि+सेना+इ→अभि+सेन्+इ→अभिषेणि→अभिषेणि+लट्→ अभिषेणि+ शप्+तिप्→अभिषेणयति]। अनुलोमयति (=रोओं को साफ करता है) त्वच-यति[1] (=त्वचा अर्थात् छाल को पकड़ता है)। संवर्मयति (=कवच सहित तैयार होता है)। वर्णयति (=रंग पकड़ता है)। अवचूर्णयति ।। धूल फेंकता है।

(xvi) कर्मकारक सुबन्त से करता है इस अर्थ में तथा 'कहता है' इस अर्थ में णिच् (=इ) प्रत्यय होता है[2]। सूत्रं करोति सूत्रयति (=सूत्र बनाता है)। कटं करोति→कटयति (=चटाई बनाता है)। पुरुषमाचष्टे→पुरुषयति (=पुरुष का वर्णनकरता है)। पटुमाचष्टे→पटयति (=पटु [=चतुर] को कहता है) लघु-माचष्टे→लघयति।

(xvii) कृत्प्रत्ययान्त आख्यानवाची कर्मकारक सुबन्त से 'वर्णन करता है' इस अर्थ में णिच् (=इ) प्रत्यय होता है और तब कृत्प्रत्यय का लुक् हो जाता है, प्रकृति अपने मूल धातुरूप में आती है और कारक प्रकृतिवत् हो जाता है[3]। कंसवधम् आचष्टे→कंसं घातयति (कंसवध की घटना का वर्णन करता है='कंसवध' आख्यान को कहता है) [कंसवध+अम्+णिच्→कंसवध+इ→वध्+इ→हम्+इ→हत्+ इ→घात्+इ→घाति→घाति+लट्→घातयति]। बलिबन्धम् आचष्टे→बलिं बन्धयति (=बलि राजा को बांधने की घटना का वर्णन करता है)। इत्यादि।

अभ्यास

१. ये पति पत्नी अपने पुत्र को चाहते हैं।
   इमौ दम्पती पुत्रीयत (पुत्रकाम्यतः)।
२. अपने पुत्र की कामना करने वाला यह मनुष्य अब अपने मकान की कामना करता है।
   पुत्रीयिताऽयं जनोऽधुना भवनीयति (भवनकाम्यति)।
३. इस स्कूल के शिक्षक छात्रों से पुत्रों के समान व्यवहार करते हैं।
   अस्य विद्यालयस्य शिक्षकाः पुत्रीयन्ति छात्रान्।
४. पढ़े लिखे माता पिता पुत्रों के साथ छात्रों के समान आचरण करते हैं।
   शिक्षितौ पितरौ छात्रीयतः पुत्रान्।

---

१. सूत्र में 'त्वच' अदन्त निपातन करने से स्थानिवद्भाव के कारण टिलोप नहीं हुआ।
२. तत्करोति तदाचष्टे (धातुसूत्र, चुरादि०)
३. आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे इति णिच् कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम् [वा०] अष्टा० ३.१.२६.

५. मारवाड़ में लोग जल को दूध के समान काम में लाते हैं।
मरुभूमौ क्षीरीयन्ति जलं जनाः।

६. महामति चाणक्य कुटिया में भी महल में रहने के समान आचरण करता था।
महामतिश्चाणक्यः कुट्यामप्यप्रासादयत् (=प्रासादयाञ्चकार)।

७. इस आर्यसमाज के सभी सदस्य पण्डितों सा आचरण करते हैं।
अस्य आर्य समाजस्य समेऽपि सभ्याः पण्डितायन्ते (पण्डितन्ति)।

८. रमेश गुरु के समान आचरण करता है और मनीषी कवि के समान आचरण करता है।
रमेशो गुरवति (गुरुयते) मनीषी च कवयति (कवीयते)।

९. जो पिता के समान आचरण करे उसे ही संरक्षक बनाओ।
यः पितरेत् (पित्रीयेत) तमेव संरक्षकं कुरुथ।

१०. ये हलवाहे भी शास्त्रियों का सा आचरण करते हैं।
एते हलिनोऽपि शास्त्रिणन्ति (शास्त्रिण्यन्ते)।

११. कभी कभी अस्थायी रीतियां भी सनातन बन जाती हैं।
कदाचिद् अस्थायिन्यो रीतयोऽपि शश्वायन्ते।

१२. रामशास्त्री जी की दवाई खाकर ये आलसी बच्चे भी चंचल बन जायेंगे।
रामशास्त्रिमहाभागस्य भेषजम्भुक्त्वाऽलसा अप्येते बालाश्चपलायिष्यन्ते।

१३. जुगाली करती हुई गौएँ देखने योग्य हैं।
रोमन्थायमाणा गावो दर्शनार्हाः खलु।

१४. तपस्या करते हुए मुनि को देखकर महिलाओं ने प्रणाम किया।
तपस्यन्तम्मुनिमवलोक्य प्रणेमुर्योषितस्तम्।

१५. उपनयन के दिन नापित ने उदयन को मुण्डित कर दिया।
उपनयनदिवसे दिवाकीर्त्तिरुदयनममुमुण्डत्।

१६. यह प्रवक्ता उसके लेख को सत्य बताता है।
अयम्प्रवक्ता तल्लेखं सत्यापयति।

१७. पाणिनि ने सूत्र बनाये और कात्यायन ने वार्त्तिक बनाये।
पाणिनिः असूत्रयत् (=असुसूत्रत्) कात्यायनश्चावार्त्तिकयत् (अववार्त्तिकत्)।

१८. शास्त्री जी पुत्र को पटु कहते हैं और सुमित्रा उसे लघु कहती है।
शास्त्रिमहोदयः पुत्रम्पटयति सुमित्रा च तं लघयति।

१९. आज सभागृह में पण्डित जी कंसवध का आख्यान सुनायेंगे।
अद्य सभागारे पण्डितवर्यः कंसं घातयिष्यति।

२०. श्रुतिधर ने पहिले दिन केवल दूध का व्रत किया।
श्रुतिधरः पूर्वदिवसे पयोऽव्रतयत् (अवव्रतत्)।

धातु-वर्णानुक्रमसूची

धातु	पृष्ठाङ्क	धातु	पृष्ठाङ्क	धातु	पृष्ठाङ्क	धातु	पृष्ठाङ्क
भिद्	१५१	यज्	७५	विज्	१४४	सेव्	६५
भी	१०६	यत्	५८	विद्	९०	स्खल्	५३
भुज्	१५६	याच्	८३	विश्	१४३	स्था	२९
भू	२२	युज्	१५४	वृत्	६०	स्ना	१००
भृ	११३	रक्ष्	५१	वृध्	६१	स्निह्	१२९
भ्रम्	४४	रच	१८९	शक्	१३६	स्पृश्	१४२
मन्	१३४	रम्	६८	शङ्क्	५९	स्पृह	१९१
मन्त्र्	१८२	रुच्	६३	शप्	७८	स्मृ	३८
मन्थ्	१६९	रुद्	९२	शम्	१३०	स्वद्	१८३
मस्ज्	१४०	रुध्	१५०	शास्	९७	स्वप्	९४
मा	९८	लभ्	७०	शीङ्	१०४	हन्	८८
मार्ग्	१८४	लिख्	१३९	शुच्	४९	हस्	५४
मिल	१४७	लष्	८५	श्रु	३९	हा	१११
मुच्	१४८	लू	१६६	श्लिष्	१२१	हृ	८२
मुद्	५७	वद्	३५	सिच्	१४९	हृष्	१३१
मुष्	१७१	वप्	७९	सिध्	१२३	ह्वेञ्	८६
मुह्	१२८	वस्	५१	सिव्	११७		
मृ	१४४	वह्	७६	सू	१०५		

शिक्षक निधि

"तू मुझे कुछ मत कहना"

यह वाक्य आप इतनी विधियों से बना सकते हैं ।

त्वम् माम् मा गादीः, मा गदीः, मा स्म गदः ।

वाच्यपरिवर्तन —त्वया अहम् मा गदिषि, मा स्म गद्ये ।

कहीं-कहीं मा के योग में लोट्, विधिलिङ् का प्रयोग होता है। उसका समाधान वैयाकरण इस प्रकार करते हैं। पाणिनि ने माङि लुङ् (अष्टा० ३.३.१७५) सूत्र लिखा है। इस प्रकार माङ् के योग में लुङ् होगा, और मा अव्यय के योग में लोट् विधिलिङ् भी आ जाता है। तब वाक्य इस प्रकार बनेगा ।

त्वम् माम् मा गद, मा गदेः ।

कर्मवाच्य— त्वया अहम् मा गद्यै, मा गद्येय ।

तव्य-अनीयर-यत् में —त्वया अहम् न गादितव्यः, न गदनीयः, न गद्यः ।

क्त्वा के साथ अलम् या खलु—जोड़ने से भी निषेध अर्थ होता है ।

अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ।

(अष्टा० ३.४.१८)

तब वाक्य ऐसे बनेगा—

अलं गदित्वा माम् ।

खलु गदित्वा माम् ।।

ल्युट् के कर्ता कर्म में षष्ठी होती है। (ये पहले हम बता चुके हैं)।

अलं को तृतीया के साथ प्रयुक्त करने पर भी निषेधार्थ हो जाता है ।

यथा—अलं मम किञ्चित् गदनेन ।

कृतं (अव्यय) भी आ जाता है—

कृतं मम किञ्चित् गदनेन ।

संस्कृत और भारतीय संस्कृति पर प्रत्येक भारतीय को गर्व करना चाहिये, संस्कृत में भारत की आत्मा बसती है। संस्कृत शिक्षण सरणी से संस्कृत सीखने वालों को आसानी होगी, इस कार्य के लिये मैं आचार्य राम शास्त्री जी को बधाई देती हूँ।

इन्दिरा गांधी

21-1-1983